श्रम अर्थशास्त्र

(Labour Economics)

अर्द्धविकसित राष्ट्रों के संदर्भ में
विभिन्न विश्वविद्यालयों की एम० ए० (अर्थशास्त्र)
परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार

लेखक

डॉ० वी० सी० सिन्हा
एम ए, एम कॉम., पी-एच डी.
अध्यक्ष, व्यावसायिक अर्थशास्त्र विभाग
अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा, म० प्र०

एवं

पुष्पा सिन्हा
एम. ए., एल टी.

1986

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली □ जयपुर □ इलाहाबाद

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
34, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-3

ISBN 81—214—0011—2

मूल्य : 100 00

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 द्वारा प्रकाशित / पांचवां संस्करण 1986 / विशाल ऑफसेट शाहदरा, दिल्ली 110032 में मुद्रित।
[417 5 (03B-13PB) 786/N]

प्रिय समरेन्द्र और सुशील
को

पांचवें संस्करण की भूमिका

पुस्तक का पूर्णतया संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष एवं गौरव का अनुभव हो रहा है। विषय सामग्री में नये विकासों को दृष्टिगत रखते हुए प्रत्येक सुधार किये गये हैं।

आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि एक मानवीय उपक्रम है और समस्त मानवीय उपक्रमों के समान इसकी सफलता भी अंतिम रूप से इसे क्रियान्वित करने वाले मनुष्यों की कुशलता, गुण और प्रवृत्तियों पर निर्भर करती है। कुशाग्र बुद्धि, कर्त्तव्यपरायण, जागरूक, स्वस्थ और सुखी श्रमिक किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास की आधारशिला है। यदि देश में विकास की आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में श्रमशक्ति है, यदि वह आवश्यक कुशलताओं और शिक्षा प्रशिक्षण तथा तकनीकी ज्ञान से सम्पन्न है, यदि उसकी कार्यक्षमता उच्च स्तर की है, यदि उसमें आर्थिक प्रगति की उत्कट अभिलाषा और उसके लिए पर्याप्त प्रेरणाएं हैं तो वह देश द्रुत गति से आर्थिक विकास करेगा। यदि भारत, चीन तथा एशिया और अफ्रीका के अनेक अर्द्ध-विकसित राष्ट्र आज आर्थिक विकास की दौड़ में इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी जैसे विकसित राष्ट्रों की तुलना में पिछड़े हुए हैं तो इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह रहा है कि, यहां श्रम-शक्ति की श्रेष्ठता का स्तर भी अपेक्षाकृत नीचा रहा है अर्थात् 'मानवीय पूंजी' घटिया किस्म की रही है। स्पष्टतः भारत जैसी अर्थव्यवस्था, जो आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी पिछड़ी है, में श्रमिकों का महत्त्व निःसन्देह अधिक है। इस पिछड़ेपन को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि देश का तीव्र गति से औद्योगिक विकास हो, परंतु औद्योगिक विकास की गति त्वरित करने के लिए यह अति आवश्यक है कि उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों का जीवन सुखमय हो, उन्हें अपने कार्य की उचित मजदूरी मिले, कार्य की दशाएं श्रेष्ठ हों, सामाजिक सुरक्षा और कल्याण संबंधी सुविधाएं पर्याप्त रूप में उपलब्ध हों और श्रम के वास्तविक अधिकारों तथा आकांक्षाओं सहित सम्मान को स्वीकार किया जाय। प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य 'श्रम अर्थशास्त्र' के सिद्धांतों की सापेक्षिक पृष्ठभूमि में श्रम समस्याओं का एक विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत करके श्रमिक और श्रम-समस्याओं की वास्तविकताओं से परिचित कराना है। अधिकांश विश्लेषण नियोजित आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि में ही किया गया है।

पुस्तक मे दी गई विषय-सामग्री को यथासभव नवीनतम बनाने का प्रयास किया गया है और इस उद्देश्य से नवीन ग्रथो, प्रतिवेदनो और पत्रिकाओ मे प्रकाशित लेख एव समको से सहायता ली गई है अत लेखक उनके लेखको के प्रति कृतज्ञ है। लेखक अपने उन सभी मित्रो का कृतज्ञ है जिन्होने अनेक प्रकार से प्रस्तुत पुस्तक को अतिम रूप देना सभव बनाया है। पाडुलिपि को स्वच्छ रूप से तैयार करने मे मेरे विद्यार्थी श्री एन० पी० पाठक व्याख्याता, नेहरू स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चाकघाट का परिश्रम प्रशसनीय है।

यदि यह पुस्तक श्रम समस्याओ के प्रति अध्येता की रुचि उत्पन्न कर सकी तो मैं अपने इस प्रयास को सफल समझूगा।

पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने की दिशा मे अध्यापको एव विद्यार्थियो के सुझाव आमत्रित हैं।

—लेखक

विषय-सूची

भाग 1

भाग 2

अध्याय 1

श्रम अर्थशास्त्र—परिभाषा और क्षेत्र

(Labour Economics—Definition and Scope)

श्रम अर्थशास्त्र की परिभाषा श्रम अर्थशास्त्र एक विस्तृत वाक्यांश है जिसका विगत कुछ दशकों मे सयुक्त राज्य अमेरिका के साहित्य मे प्रचार होने लगा है। कहा जाता है कि श्रम अर्थशास्त्र आर्थिक अध्ययन के एक प्रमुख अग के रूप मे अर्थशास्त्र के अध्ययन की वह शाखा है जिसके अतर्गत श्रम एव उसकी समस्याओ और उनसे सबधित सिद्धातो आदि का अध्ययन किया जाता है। परतु श्रम अर्थशास्त्र को हम केवल अर्थशास्त्र का एक अग नही मान सकते क्योकि श्रम अर्थशास्त्र पर अर्थशास्त्र के अतिरिक्त समाजविज्ञान मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र व नीतिशास्त्र आदि अनेक सामाजिक विज्ञानो का प्रभाव पडा है। श्रम की समस्याए केवल आर्थिक समस्याए ही नही बल्कि राजनीतिक मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक समस्याए भी है। यद्यपि श्रम अर्थशास्त्र मे भी अन्य सामाजिक विज्ञानो की भाति अनेक विज्ञानो का प्रभाव पडा है परतु इसका अपना एक अलग अस्तित्व है। श्रम अर्थशास्त्र सामाजिक उत्पादन मे श्रम की बढती हुई भूमिका तथा प्रस्थिति (Status) की ओर सकेत करता है। हम श्रम अर्थशास्त्र की एक सामान्य परिभाषा इस प्रकार कर सकते है 'श्रम अर्थशास्त्र वह विज्ञान तथा कला है जिसमे विभिन्न श्रम समस्याओ का सैद्धातिक और व्यावहारिक रूपों मे अध्ययन किया जाता है।"

श्रम अर्थशास्त्र एक विज्ञान है क्योकि श्रम की किसी समस्या पर तब तक विचार नही किया जाता जब तक हम ज्ञान न हो कि श्रम का व्यवहार कैसे होता है क्यो होता है? व्यवहार मे कुछ नियम होते है। अत व्यवहार का सैद्धातिक विवेचन भी हो सकता है। श्रम की कुछ समस्याए भी होती हैं जिनके कारण और परिणामो पर विचार करके उनका निदान खोजने की आवश्यकता पडती है। इस प्रकार श्रम अर्थशास्त्र के अध्ययन का सैद्धातिक पक्ष भी है और व्यावहारिक उपयोग भी। इसीलिए हम कह सकते हैं कि श्रम अर्थशास्त्र एक विज्ञान और कला दोनो ही है।

ऊपर हमने देखा कि श्रम अर्थशास्त्र मे श्रम की समस्याओ और सिद्धातो का अध्ययन किया जाता है। अत यह ज्ञान होना आवश्यक है कि श्रम से हमारा तात्पर्य क्या है।

श्रम अर्थशास्त्र मे श्रम की परिभाषा : साधारण बोलचाल की भाषा मे सभी प्रकार की चेष्टाओ के लिए आवश्यक परिश्रम को श्रम कहते हैं। परतु श्रम अर्थशास्त्र

मे श्रम का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ मे किया जाता है। प्रो० जेवन्स के शब्दो में "श्रम वह मानसिक तथा शारीरिक प्रयत्न है जो अंशत या पूर्णत कार्य से प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाले सुख के अतिरिक्त किसी आर्थिक उद्देश्य से किया जाता है।"[1] मार्शल ने भी इस परिभाषा को स्वीकार किया है परतु इसमे यह स्पष्ट नही है कि आर्थिक उद्देश्य क्या है? प्रो० थामस का कथन है "सभी प्रकार का मानव श्रम चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, परंतु जो पारिश्रमिक प्राप्त करने की आशा से किया जाता है अर्थशास्त्र मे श्रम कहलाता है।"[2] वास्तव मे इस पीढी के सभी अर्थशास्त्रियो ने श्रम को समाज के दृष्टिकोण मे देखने का प्रयत्न नही किया। वस्तुत श्रम के अतर्गत समाज और व्यक्ति के सपूर्ण मानवीय प्रयास आते हैं जिनके द्वारा उन वस्तुओं और सेवाओं का निर्माण होता है जिनकी मानवीय जीवन के लिए उपयोगिता है। सक्षेप मे, श्रम अर्थशास्त्र मे श्रम से तात्पर्य नियुक्त श्रम (Employed Labour) से है। वे सभी व्यक्ति, जिनकी जीविका का प्रमुख साधन श्रम का विक्रय है अर्थात् जो श्रमिक हैं, इस शास्त्र के अध्ययन के विषय हैं।

श्रम की विशेषताए

उत्पत्ति के एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप मे श्रम की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताए हैं--

1 **श्रम उत्पत्ति का अनिवार्य साधन है** बिना श्रम के किसी भी प्रकार का उत्पादन सभव नही है।

2 **श्रम नश्वर है** श्रम को सचय करके नही रखा जा सकता। यदि किसी दिन श्रमिक कार्य नही करता तो उस दिन का उसका श्रम सदा के लिए नष्ट हो जाता है।

3 **श्रम को श्रमिक से पृथक् नहीं किया जा सकता** श्रमिक को श्रम करने के लिए कार्य स्थान पर स्वय जाना पडता है। इसीलिए श्रमिक अपने कार्य तथा उससे सबधित अन्य बातो मे बहुत रुचि रखता है।

4 **श्रम गतिशील होता है** वह एक स्थान से दूसरे स्थान और एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे आसानी से जा सकता है।

5 **श्रम उत्पादन का सक्रिय साधन है** भूमि और पूजी स्वय कोई उत्पत्ति नही कर सकते। जब श्रम का सहयोग साधनो से होता है तब धन का उत्पादन होता है। इस प्रकार श्रम उत्पादन क्रिया मे सक्रिय रूप मे भाग लेता है।

6 **श्रमिक अपने श्रम को बेचता है परतु अपनी आय नहीं** जैसे टैक्सी ड्राइवर सवारियो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुचाता है तो उस समय वह अपना श्रम

1. "Labour is that exertion of the mind or body undertaken partly or wholly with a view to some good other than the pleasure derived directly from the work" —Jevons
2. "Labour connotes all human effort of body or mind which is undertaken in the expectation of some reward' —Thomas

बेचता है, अपनी आय को नहीं।

7 **श्रम उत्पत्ति का साधन और साध्य दोनों ही है** मजदूर लोग केवल उत्पादन मे ही सहायक नही होते बल्कि जिन वस्तुओ का वे उत्पादन करते हैं उनका वे स्वयं भी उपभोग करते हैं। इस प्रकार श्रम उत्पादक और उपभोक्ता अथवा साधन और साध्य दोनो ही है।

8 **श्रम की पूर्ति बेलोचदार होती है** श्रम की पूर्ति में परिवर्तन करने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि श्रम की पूर्ति मे दो प्रकार से घट-बढ़ की जा सकती है (i) जनसंख्या मे परिवर्तन द्वारा और (ii) श्रमिको की कार्य कुशलता मे वृद्धि अथवा कमी के द्वारा। परतु इन दोनो ही प्रकार से श्रम की मात्रा मे परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं।

9 **श्रम मे पूंजी लगाई जा सकती है** जिस प्रकार विभिन्न उद्योगो मे पूजी लगाकर आय प्राप्त की जा सकती है उसी प्रकार श्रम की कार्य-कुशलता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण आदि पर रुपया खर्च करके इससे अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है।

10 **श्रम की सौदा करने की शक्ति कम होती है इसके कई कारण हैं** (i) श्रम नश्वर होता है (ii) श्रमिको में अर्थ तथा सगठन का अभाव रहता है, (iii) श्रमिको की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है, और (iv) रोजगार के क्षेत्र मे श्रमिको का अधिकार नही रहता।

11 **श्रम आर्थिक वस्तुओ से भिन्न है** इसलिए इसके मूल्य के निर्धारण के लिए अलग सिद्धांतो की आवश्यकता होती है। बहुत सीमा तक श्रम की प्रतिस्थापना मशीनो से हो सकती है। स्मरण रहे कि मशीनो मे मनुष्य के शारीरिक श्रम की प्रतिस्थापना हो सकती है लेकिन बुद्धि की नही।

श्रम का वर्गीकरण

श्रम का तीन प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

1 **उत्पादक और अनुत्पादक श्रम** अर्थशास्त्रियो का इस बात पर मतभेद है कि किस प्रकार के श्रम को उत्पादक कहा जाय और किस प्रकार के श्रम को अनुत्पादक माना जाय। इस सबध मे विभिन्न अर्थ शास्त्रियो के विचार इस प्रकार हैं—

(अ) **वाणिज्यवादी अर्थशास्त्रियो (Mercantilist) का मत** इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार केवल वही श्रम उत्पादक कहलाता था जिसके द्वारा निर्यात के लिए वस्तुए तैयार की जाती थी तथा अन्य सभी प्रकार के श्रम को वे अनुत्पादक मानते थे।

(ब) **निर्बाधावादी (Physiocrats) का मत** इन अर्थशास्त्रियो का विचार था कि केवल वही श्रम उत्पादक है जो उन उत्पादक कार्यो मे लगा हुआ है जहा प्रकृति मनुष्य के कार्य मे सहायक है। उनके विचार मे कृषि खनिज उद्योग मछली पकडना आदि कुछ ऐसे उद्योग एव व्यवसाय हैं जिनमे मनुष्य प्रकृति की सहायता प्राप्त करता है और उसकी दयालुता के कारण ही उत्पादन मे वृद्धि करने मे समर्थ हो पाता है। अत इन उद्योगो मे लगा श्रम उत्पादक है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के कार्यो मे बुद्धि

प्रकृति सहायक नहीं होती इसलिए उनमे लगा हुआ श्रम अनुत्पादक है।

(स) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का मत प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री एडम स्मिथ तथा जे० एस० मिल ने केवल उन्ही श्रमो को उत्पादक माना है जिनसे किसी ठोस भौतिक तथा विक्रय योग्य वस्तु का निर्माण होता है। इस प्रकार अन्न, वस्त्र, मेज, बर्तन, मशीन आदि भौतिक वस्तुओ का उत्पादन करने वाले श्रमिकों का श्रम उत्पादक होगा परतु एक वकील, डाक्टर, अध्यापक, गायक, पुजारी, कलाकार आदि का श्रम अनुत्पादक होगा, क्योंकि उसके फलस्वरूप किसी ठोस भौतिक वस्तु का निर्माण नही होता बल्कि अमूर्त सेवाए उत्पन्न होती हैं।

(द) आधुनिक विचारधारा (Modern Concept) आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार किसी प्रकार का भी श्रम जिससे उपयोगिता का सृजन या उसमे वृद्धि होती है, उत्पादक श्रम कहलाता है। यह उपयोगिता की वृद्धि किसी मूर्त वस्तु मे हो सकती है और अमूर्त मे भी। इस परिभाषा के अनुसार डाक्टर वकील, शिक्षक आदि की सभी सेवाए उत्पादक श्रम के अतर्गत आ जाती हैं। अनुत्पादक श्रम वह होता है जिससे न तो उपयोगिता का सृजन होता है और न उपयोगिता मे वृद्धि ही होती है, जैसे—एक ऐसे लेखक के श्रम को अनुत्पादक कहा जाएगा जिसकी पुस्तक छपी नही है।

बेन्हम जैसे आधुनिक अर्थशास्त्रियो का मत है कि श्रम के उद्देश्य की सफलता के आधार पर उसे उत्पादक तथा अनुत्पादक वर्गों मे बाटना उचित नहीं है। बेन्हम का कहना है कि जो श्रम आय अर्जित करते हैं वे उत्पादक है तथा जो आय अर्जित नही करते वे अनुत्पादक हैं। फ्रेजर ने इस सबध मे एक ऐसे गायक का उदाहरण दिया है जिसके गर्दभ राग के शोर से पीछा छुडाने के लिए मुहल्ले वाले उसे कुछ पैसा देते हैं। यह गवैये का सगीत उसके लिए उत्पादक है क्योकि वह उससे आय प्राप्त करता है यद्यपि यह समाज के लिए अनुत्पादक है क्योंकि वह किसी प्रकार की उपयोगिता का सृजन नही करता।

2. कुशल तथा अकुशल श्रम *जिस मानसिक अथवा शारीरिक श्रम के लिए* किसी विशेष शिक्षा तथा ट्रेनिंग की जरूरत होती है उसे कुशल श्रम कहते हैं। इजीनियर, अध्यापक, चिकित्सक, मशीन चालक आदि का श्रम कुशल होता है क्योकि इन सभी को अपना-अपना कार्य सपादित करने से पहले प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, *जिस श्रम को करने के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नही होती* उसे अकुशल श्रम कहते हैं। चपरासी, बोझा ढोने वाला श्रमिक, घरेलू नौकर व होटल के बैरों का श्रम अकुशल होता है।

कुशल व अकुशल श्रमो का वर्गीकरण सापेक्षिक है क्योकि कुशल एव अकुशल श्रम का अतर देश एव परिस्थितियो के अनुसार निरतर बदलता रहता है तथा इस अतर को शिक्षा प्रसार, औद्योगिक विकास तथा श्रमिको के प्रशिक्षण की सुविधाओ द्वारा दूर किया जा सकता है।

3. मानसिक तथा शारीरिक श्रम जिस कार्य को करने मे मस्तिष्क की अपेक्षा

शरीर के अगो अथवा मासपेशियो के कार्य की प्रधानता होती है उसे शारीरिक श्रम कहा जाता है, जैसे—एक कुली का श्रम शारीरिक श्रम है। इसके विपरीत, जिस कार्य को सपन्न करने मे शारीरिक शक्ति की अपेक्षा मानसिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है उसे मानसिक श्रम कहते है, जैसे—शिक्षक, वकील, डाक्टर आदि का श्रम मानसिक श्रम है। किंतु इस सबध मे ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रत्येक मानसिक कार्य के लिए शारीरिक श्रम आवश्यक होता है और कोई भी शारीरिक कार्य बिना मस्तिष्क की सहायता लिये सपन्न नही किया जा सकता। अतर केवल इतना ही है कि एक मे शारीरिक शक्ति की प्रधानता रहती है और दूसरे मे मानसिक शक्ति की।

श्रम अर्थशास्त्र का क्षेत्र (Scope of Labour Economics)

श्रम अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे श्रम से सबधित आर्थिक समस्याए सम्मिलित हैं। इसम श्रम सिद्धातो व व्यवहारो का अध्ययन किया जाता है। श्रम अर्थशास्त्र एक स्वतत्र विज्ञान के रूप मे विकसित हो गया है। इसके अपने सिद्धात, नियम, उपनियम व व्यवस्थित ज्ञान भडार हैं। एडम्स व समर (Adams and Summar) के शब्दो मे "श्रम समस्या का क्षेत्र इतना विशाल है कि श्रम सघवाद एव औद्योगिक शाति की समस्याए उसके अतर्गत आ जाती हैं। श्रम समस्या के अतर्गत श्रमिको की भर्ती से लेकर उत्पादकता वृद्धि तक की सपूर्ण समस्याए सम्मिलित की जाती हैं।

सक्षेप मे श्रम समस्याओ का निम्नलिखित शीर्षको के अतर्गत अध्ययन कर सकते हैं—

1 मजदूरी सबधी समस्याए।
2 श्रम के कार्य से सबधित समस्याए।
3 रोजगार की सुरक्षा से सबधित समस्याए।
4 सामाजिक सुरक्षा सबधी समस्याए।

1 मजदूरी सबधी समस्याए मजदूरो की सेवाओ के लिए जो पारितोषण दिया जाता है उसे साधारणतया मजदूरी कहते हैं। वस्तुत: मजदूरी ही ऐसी धुरी है जिस पर अधिकाश श्रम समस्याए चक्कर काटती हैं। मजदूरी ही श्रमिको के जीवन का आधार है। एक श्रमिक को जितनी मजदूरी मिलती है उसी के अनुसार उसका जीवन-स्तर निश्चित होता है। श्रमिक उद्योग के सैनिक होते हैं तथा जब तक पेट भरने, तन ढकने व उचित आवास के लिए उन्हें पर्याप्त मजदूरी नही दी जाती, वे पूर्ण कार्य-क्षमता के साथ काय नही कर सकते। मजदूरी का महत्त्व केवल जीवन-यापन-स्तर तथा प्रति व्यक्ति आय के रूप मे ही नही, बल्कि उत्पादन बढाने व अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने के साधन के रूप मे भी है। सेवायोजको की दृष्टि मे मजदूरी इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योकि उत्पादन लागत का एक प्रमुख तत्व मजदूरी सबधी व्यय होता है। सेवायोजको के लिए मजदूरी के महत्त्व का एक अन्य कारण यह भी है कि मजदूरी तथा श्रेष्ठ कार्य दशाओ के लिए माग मूल्य बाजार एव उत्पादन की अनेक समस्याए उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार श्रमिक व सेवायोजक तथा राष्ट्र सभी मजदूरो की समस्या से प्रत्यक्ष व परमा-

वश्यक रूप से सबधित हैं। वर्तमान समय म मजदूरी सबधी ऐसी तीन धारणायें प्रचलित है - प्रथम, रहन-सहन मजदूरी अथवा जीवन मजदूरी जिसे श्रमिक सघो का समर्थन प्राप्त है। द्वितीय, जीवन निर्वाह मजदूरी, जिसका समर्थन सेवायोजको द्वारा किया जाता है और तृतीय, उचित मजदूरी जिसे सरकार एक माध्यम वर्ग के रूप मे अपनाने का प्रयास करती है। न्यूनतम मजदूरी जीवन-निर्वाह मजदूरी स अधिक होती है और उचित मजदूरी न्यूनतम मजदूरी और रहन-सहन मजदूरियो के बीच होती है।

भारतीय श्रमिको की मजदूरी की समस्याओ के कई रूप हैं, जैसे (अ) मजदूरी इतनी कम है कि जीवन निर्वाह सभव नहीं है। (ब) मजदूरी की दर सभी उद्योगो मे समान नहीं है। (स) मजदूरी देने के ढग दोषपूर्ण है। (द) मजदूरी उतनी नही मिलती जितनी कि श्रम के वास्तविक प्रतिफल के रूप मे मिलनी चाहिए। भारतीय श्रमिक की मजदूरी की इन समस्याओ का परिणाम यह होता है कि श्रमिको का जीवन-स्तर निम्न बना रहता है और निम्नतर होता जाता है। जीवन स्तर निम्न बने रहने से श्रमिको के स्वास्थ्य एव काय-क्षमता की अनेक समस्याए उत्पन्न हो जाती हैं। स्वास्थ्य और कार्य-क्षमता की समस्याए उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। इन मजदूरी की समस्याओ को लेकर प्राय औद्योगिक सघर्ष होते रहते हैं जिनका दुष्परिणाम सारे राष्ट्र पर पडता है। इसलिए कहा जाता है कि मजदूरी वह धुरी है जिस पर अधिकाशतम श्रम समस्याए चक्कर काटती है।

2 **श्रम के कार्य से सबधित समस्याए** - कुछ समस्याए ऐसी होती हैं जो श्रम के कार्य से सबधित होती है। श्रम की प्रवासी प्रवृत्ति, श्रम की कार्य कुशलता व गतिशीलता, दुर्घटना, अनुपस्थितता व श्रम परिवर्तन इसी प्रकार की समस्याए हैं। ये समस्याए श्रमिको के साथ साथ उद्योगपतियो व राष्ट्र को भी प्रभावित करती है। ये श्रम समस्याए भारतवष मे काफी उग्र हैं।

3 **रोजगार की सुरक्षा से सबधित समस्याए** रोजगार-सुरक्षा के क्षत्र का अध्ययन किये बिना श्रम समस्याओ के स्वभाव को समझना कठिन है। कारण यह है कि श्रम समस्याओ का मुख्य स्रोत रोजगार सबधी सुरक्षा का अभाव है। औद्योगिक बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी और कृषिक बेरोजगारी ये तीनो वर्ग श्रम समस्याओं के मुख्य स्रोत है। किसी श्रमिक को रोजगार सबधी सुरक्षा प्राप्त नही है तो उसके परिवार का भविष्य और उसके समुदाय का कल्याण कुप्रभावित होगा। बेरोजगारी का विचार मात्र ही श्रमिक के सुख और शाति को हानि पहुचाता है। **लैसकोहियर** ने कहा है 'बेरोजगारी श्रमिको को तीन प्रकार से प्रभावित करती है—यह श्रमिक की आय को कम करती है आय मे अनिश्चितता लाती है और यह श्रमिक की कार्य कुशलता को कम करती है।' सक्षेप म बेरोजगारी से व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन मे अनेक प्रकार की बाधाओं का जन्म होता है जिनका राष्ट्र पर बुरा प्रभाव पडता है।

विगत वर्षो म रोजगार की सुरक्षा निम्न कारणो से खतरे म पड गई है (i) जनसख्या म तीव्र गति से वृद्धि (ii) उद्योगो मे निरन्तर मशीनीकरण का प्रयोग

(iii) औद्योगीकरण की धीमी गति, (iv) ग्रामीण उद्योगों की समाप्ति, (v) विवेकीकरण व आधुनिकीकरण के कार्यक्रमों को अपनाया जाना आदि।

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के परिणामस्वरूप श्रम की अधिकता के कारण भारत में बेरोजगारी और अल्प बेरोजगारी की समस्या बहुत उग्र है। बेरोजगारी को दूर करने के लिए हमें शीघ्र ही सबके लिए रोजगार की भावना से युद्ध-स्तर पर सक्रिय उपाय करने होंगे।

4 सामाजिक सुरक्षा संबंधी समस्याएं : एक कल्याणकारी राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक न्याय का आश्वासन होता है परंतु इसकी आवश्यकता श्रमिकों को अधिक है। अधिकांश मजदूरी पर कार्य करने वाले व्यक्ति अपनी जीविका के लिए किसी-न-किसी व्यवसाय के नियमित रूप से चलते रहने पर निर्भर होते हैं। जब ये व्यवसाय किसी कारण से बंद हो जाते हैं या जब व्यक्ति औद्योगिक दुर्घटना, वृद्धावस्था, आकस्मिक मृत्यु बीमारी या अपंगता अथवा बेरोजगारी के कारण जीविका कमाने के लिए असमर्थ हो जाता है तब उसका और उसके आश्रितों का पालन-पोषण कैसे हो ?—इन सब कठिनाइयों पर कोई श्रमिक एकाकी रूप में विजय नहीं प्राप्त कर सकता। केवल समाज ही, जिसका कि वह एक अंग है, इन सभी जोखिमों और आकस्मिकताओं के विरुद्ध *पर्याप्त व्यवस्था कर सकता है। यदि इस प्रकार की व्यवस्था न की गई तो अनेक श्रम* समस्याओं को बढ़ावा मिलेगा, अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी व समाज का विघटन होने लगेगा। अतः समाज की शांति, समृद्धि और स्थिरता के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना एक अनिवार्यता है। यही कारण है कि सामाजिक सुरक्षा संबंधी समस्याओं का अध्ययन भी श्रम अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

श्रम समस्याओं के संबंध में डेल योडर (Dale Yoder) का मत[1]

श्रम समस्याओं के संबंध में डेल योडर का विचार कुछ भिन्न है। उनका कहना है कि श्रमिक के समक्ष कुछ विशिष्ट लक्ष्य होते हैं और जब इन लक्ष्यों की पूर्ति नहीं होती तब श्रम समस्याएं उत्पन्न होती हैं। योडर के शब्दों में . *"श्रम की समस्याएं उन अवस्थाओं को इंगित करती हैं जिनमें श्रम लक्ष्यों की पूर्ति में अवरोध उत्पन्न होता है।"* व्यक्ति का अधिकतम विकास, श्रम शक्ति का अपव्यय न होना व श्रम का अच्छे ढंग से उपयोग आदि वे लक्ष्य हैं जिनकी पूर्ति श्रमिक करना चाहता है। इस प्रकार योडर के अनुसार *श्रम समस्याओं का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है*—

1 श्रमिक के व्यक्तिगत विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाली समस्याएं, जैसे निम्न जीवन स्तर और कार्य-कुशलता, ऋणग्रस्तता, अशिक्षा आदि।

2 श्रम शक्ति के सही उपयोग में बाधा डालने वाली समस्याएं जैसे बेरोजगारी अनुपस्थितता *व श्रम परिवर्तन की समस्या व औद्योगिक संघर्ष आदि।*

3 समाज में भाग लेने में बाधा डालने वाली समस्याएं, जैसे तरह-तरह के

1 Dale Yoder 'Man-power Economics', p. 10

कर व अधिनियम आदि।

डाफर्टी (Daugherty) का मत[1]

इनका मत यह है कि श्रम की समस्या का मूल कारण मानवीय व मनोवैज्ञानिक है। डाफर्टी के शब्दो मे "श्रम समस्या एक मानवीय समस्या है जो कि उस समय उत्पन्न होती है जब व्यक्ति आर्थिक उपक्रमो मे भाग लेने के परिणामस्वरूप सुख-समृद्धि प्राप्त करने मे असफल रहते है। यह उस समय भी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति या व्यक्तियो का समूह अपने को दूसरे सबधित व्यक्तियो व समूहो से समायोजित नही कर पाते अथवा उद्योग के अनुकूल अपने को नही बना पाते।"

इस प्रकार डाफर्टी का मत है कि श्रम समस्या मानवीय अथवा मनोवैज्ञानिक समस्या है और उसी के अनुसार उसका समाधान ढूढना चाहिए।

यद्यपि इस बात से इकार नही किया जा सकता कि श्रम समस्या का एक महत्त्वपूर्ण कारण मनोवैज्ञानिक है, परतु प्रत्येक श्रम समस्या को इसके द्वारा नहीं समझाया जा सकता। श्रम की अनेको समस्याए आर्थिक व सामाजिक भी हैं।

निष्कर्ष

क्या श्रम समस्याए प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्था मे विद्यमान रहती हैं? ऊपर हमने देखा कि श्रम समस्याओ से आशय उन समस्त समस्याओ से है जिनका प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप मे श्रमिको स सबध है। अब प्रश्न यह उठता है कि श्रम समस्याए प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्थाओ मे विद्यमान हैं या नही? मोटे तौर पर अर्थव्यवस्था दो प्रकार की हो सकती है - पूजीवादी और समाजवादी। विचारणीय विषय यह है कि श्रम समस्याए पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे ही विद्यमान रहती हैं अथवा समाजवादी अर्थव्यवस्था मे भी इनका जन्म हो सकता है? यह विषय विवादग्रस्त है अत इसके लिए अलग अलग विचार करना होगा।

समाजवादी विचारधारा समाजवादियो का विचार है कि पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे ही श्रम समस्याओ का जन्म होता है। इसका कारण यह है कि पूजीवाद की लाभ की प्रेरणा सबसे महत्त्वपूर्ण आधार-शिला है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था म प्रत्येक वस्तु व सेवाओ की उत्पत्ति स्वार्थ-सिद्धि और अधिकतम लाभ के उद्देश्य से की जाती है। पूजीपति अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए श्रमिको को कम मजदूरी देता है व अधिक घटो काम करवाता है। इस प्रकार वह श्रम शोषण की नीति अपनाता है जिससे श्रम समस्यायें जन्म लेती हैं। श्रमिक वर्ग एडी-चोटी का पसीना एक करके परिश्रम करता है फिर भी उसे उचित मजदूरी उचित सामान और पर्याप्त वस्त्र प्राप्त नही होता दूसरी ओर पूजीपति मनमाने वैभव मे मस्त रहते हैं।

इसके अतिरिक्त समाजवादियो का कथन है कि समाजवादी अथवा नियत्रित

1. C R Daugherty 'Labour Problems in American Industry', p 20.

अर्थव्यवस्था मे व्यक्तिगत स्वामित्व के अभाव के कारण किसी भी प्रकार से श्रम शोषण की नीति नही अपनाई जा सकती जिससे श्रम समस्याओ का जन्म ही नही होता। इस अर्थव्यवस्था मे सरकार अथवा कोई सर्वोच्च सत्ता श्रमिको की मजदूरी, काम करने के घटे अवकाश व आवास आदि के सबध में नियमो द्वारा निर्णय कर देती है जो प्रत्येक को मान्य होता है। इस प्रकार से श्रम समस्याए जन्म नही लेगी।

विरोधी मत समाजवादियो के विचारो का खडन करते हुए कुछ विचारको ने लिखा है कि श्रम समस्यायें केवल पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे ही नहीं बल्कि प्रत्यक प्रकार की अर्थव्यवस्था मे विद्यमान रहती हैं। यह मत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योकि श्रम समस्याओ को जन्म देने वाली श्रम की विशेषताए सभी व्यवस्थाओ मे मौलिक रूप से बनी रहती हैं और श्रम समस्याए अनिवार्यत उदय होती है। अगर श्रम की मौलिक विशेषताए केवल पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे ही जन्म लें और समाजवादी अर्थव्यवस्था मे इन विशेषताओ का लोप हो जाय तो समाजवादी अर्थव्यवस्था मे श्रम समस्याओ का जन्म नहीं होगा। परन्तु चूकि श्रम की विशेषताए प्रत्येक अर्थव्यवस्था मे विद्यमान रहती हैं इसलिए श्रम समस्याओ के जन्म को भी समाजवादी अर्थव्यवस्था मे नही रोका जा सकता। राष्ट्रीयकरण कोई सजीवनी नही है जो श्रम समस्याओ को मूलत नष्ट कर दे। हा, यह अवश्य है कि पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे श्रम समस्याओ का रूप अधिक जटिल होता है जबकि एक समाजवादी अर्थव्यवस्था मे वे इतनी जटिल और व्यापक नही होती। विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि पूजीवादी अथवा समाजवादी किसी भी प्रकार के देश श्रम समस्याओ से अछूते नहीं हैं। सोवियत रूस जैसी समाजवादी अर्थव्यवस्था मे भी श्रम समस्याए उसी वेग और गति के साथ उत्पन्न होती हैं जिस गति से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे। भारत मे जहा केवल निजी क्षेत्र मे ही नही, बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र मे भी अनेक कारखाने और उद्योग-धंधे हैं, कोई भी क्षेत्र श्रम समस्याओ से खाली नहीं है। रेलवे, पोस्ट आफिस व अन्य राजकीय उपक्रमो मे हडतालो के होने से यह स्पष्ट है कि इस दृष्टि से इनमे तथा व्यक्तिगत उपक्रमो मे कोई अतर नही है। निष्कर्ष के रूप मे हम कह सकते हैं कि कोई भी अर्थव्यवस्था हो —पूजीवादी, मिश्रित या समाजवादी—श्रम समस्याए सभी मे विद्यमान होती हैं।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ का आर्थिक विकास एवं श्रम का स्थान

आर्थिक विकास की समस्या एक व्यापक मानवीय समस्या है। आज विश्व के सभी राष्ट्र विकसित और अल्पविकसित श्रेणियो मे विभक्त हैं। जहा एक ओर इगलैंड, अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे विकसित देश हैं वहा दूसरी ओर भारत, पाकिस्तान, चीन, चिली आदि देश हैं जो दरिद्र तथा अल्पविकसित हैं। यहा की उत्तरोत्तर बढती हुई जनसख्या के करोडो लोग जघन्य निर्धनता मे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे निर्धनता के उस कुचक्र मे फसे हुए है जिसमे से निकलना उनके लिए कठिन प्रतीत हो रहा है। यहा प्रति व्यक्ति आय, बचत और पूजी-निर्माण की दरें निम्न हैं। फलत. उत्पादन-स्तर भी अत्यन्त निम्न है। अर्द्धविकसित देशो के आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या ने ही अन्य

समस्याओ, जैसे अशिक्षा, अधविश्वास, तकनीकी पिछडापन, ऊंची मृत्यु दर व सामाजिक तथा धार्मिक अवरोध इत्यादि को जन्म दिया है। अत भारत जैसे अर्द्धविकसित राष्ट्रो के आर्थिक विकास की समस्या का प्रमुख स्वरूप यही है कि वहा निर्धनता के कुचक्र को तोड कर किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र आर्थिक विकास की गति को तीव्रतर किया जाय ताकि ये देश एक स्वगतिमान आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होकर आत्मनिर्भर हो सकें।

आर्थिक विकास की परिभाषा आम तौर पर वास्तविक उत्पादन मे अथवा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि द्वारा की जाती है। परतु यह आर्थिक विकास की एक सकीर्ण परिभाषा है। आर्थिक विकास का अर्थ है—राष्ट्रीय आय मे वृद्धि, आर्थिक सरचना मे परिवर्तन, जनता के उच्चतर जीवन-स्तर, उनकी मान्यताओ और दृष्टिकोण मे परिवर्तन देश की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि और **मानव का सर्वागीण विकास**।

अर्थव्यवस्था का विकास एक अत्यत जटिल प्रक्रिया है, यह अनेक प्रकार के ... एवं मानवीय घटको के अतर्सबधो एव व्यवहारो का परिणाम होता है। आर्थिक ... के लिए **तीन महत्त्वपूर्ण साधनो** की आवश्यकता होती है और वे है **मानव, माल व मशीन**। इन तीनो साधनो मे प्रथम साधन अर्थात् श्रम-शक्ति का होना नितात आवश्यक है। आर्थिक विकास पूजी, भूमि आदि अन्य महत्त्वपूर्ण साधनो के अतिरिक्त श्रम जैसे अत्यत आवश्यक और सक्रिय साधन के ऊपर निर्भर करता है। **प्रो० फ्रेड्रिक हार्बीसन और चार्ल्स ए० मोयर्स** (Fredrick Harbison and Charles A Myers) के शब्दो मे : "पूजी, प्राकृतिक साधन, विदेशी सहायता और अतर्राष्ट्रीय व्यापार आर्थिक विकास मे स्वाभाविक रूप से महत्वपूर्ण योग देते हैं किंतु जन-शक्ति (श्रमिक) से अधिक महत्त्वपूर्ण कोई नही है।" श्रम-शक्ति की महिमा के सबध मे **स्वेट मार्डेन** ने लिखा है कि "सतत् परिश्रम के द्वारा ही मिस्र के मैदान मे पिरामिड तैयार किये गये, अथक श्रम के द्वारा ही येरूसलम के विशाल और भव्य मदिर बने, चीन साम्राज्य की सीमा का रक्षण करने वाली दीवार खडी की गई, जगल और पहाडो को काटकर नई दुनिया मे नगर, राज्य व राष्ट्रो का निर्माण हुआ।..."

वास्तव मे अर्द्धविकसित देशो मे विकास के लिए **श्रम-शक्ति का समुचित उपयोग ही आर्थिक विकास की गति को बहुत सीमा तक प्रभावित करता है**। यदि देश मे विकास की आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा मे श्रम-शक्ति है यदि यह आवश्यक कुशलताओं और शिक्षा, प्रशिक्षण तथा तकनीकी ज्ञान से सपन्न है, उसकी कार्य-क्षमता उच्चतर स्तर की है, यदि उसमे आर्थिक प्रगति की उत्कट अभिलाषा और उसके लिए पर्याप्त प्रेरणाएं हैं तो वह देश तीव्र गति से आर्थिक विकास करेगा। **प्रो० फेब्रिकेंट** के अनुमानो के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका मे 1889 से 1957 की अवधि मे हुई राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि का श्रेय जितना श्रम और स्पर्शनीय सपत्ति के रूप मे ससाधनो मे वृद्धि को है उतना ही श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि को है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था की गत 70 वर्षों मे

जिन्होंने लिखा है कि "आर्थिक विकास एक यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं है। यह एक मानवीय उपक्रम है और समस्त मानवीय उपक्रमों के समान इसकी सफलता अंतिम रूप में क्रियान्वित करने वाले मनुष्यों की कुशलता, गुण और प्रवृत्तियों पर निर्भर करेगी।[1]

अर्द्धविकसित कहे जाने वाले देशों में आर्थिक विकास की योजनाओं के अंतर्गत **श्रम** का निर्णायक महत्त्व है जो पूंजी के गम्भीर अभाव से उत्पन्न होता है। इन देशों की अतिरिक्त **श्रम शक्ति का पूंजी निर्माण** में उपयोग किया जा सकता है। अधिकांश अर्द्धविकसित देश अदृश्य बेरोजगारी से पीड़ित हैं। **प्रो० नर्क्स** के अनुसार 'अदृश्य **बेरोजगारी** में छिपी हुई बचत की सम्भावनाएं (Disguised Saving Potential) निहित हैं।'[2]

प्रो० पाल अलपर्ट (Paul Alpert) के मतानुसार भी जनसंख्या समस्त अर्द्धविकसित देशों का एक बड़ा संसाधन है। आम तौर से अर्द्धविकसित देशों में इस छिपी हुई बेरोजगारी की मात्रा लगभग 25% है। इस प्रकार इन देशों में श्रम की भयंकर बरबादी है। यदि इस अतिरिक्त श्रम-शक्ति को कृषि व्यवसाय से हटाकर अन्य कार्यों जैसे सिंचाई परियोजना, सड़कों, रेलों, मकानों और कारखानों—में लगाया जाय तो एक ओर तो कृषि में उत्पादन में कमी नहीं होगी और दूसरी ओर देश की पूंजीगत वस्तुओं का निर्माण होगा। इस प्रकार कृषि से उद्योग में श्रम का हस्तान्तरण आर्थिक विकास के लिए एक आवश्यक दशा और उसका परिणाम दोनों ही है। अर्द्धविकसित देशों में जहां पूंजी नहीं, श्रम पूंजी निर्माण का प्रमुख साधन हो वहां श्रम के महत्त्व को सहज समझा जा सकता है।

किंतु इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अर्द्धविकसित देशों के लिए औद्योगीकरण का कार्यक्रम केवल कृषि संबंधी आधिक्यों और ग्रामीण क्षेत्रों से अतिरिक्त श्रमिकों को उद्योगों की ओर स्थानांतरित करने पर ही निर्भर नहीं है बल्कि इस शक्ति का औद्योगिक व्यवसायों के लिए प्रशिक्षित करने पर भी निर्भर है। अन्य शब्दों में आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से *श्रम शक्ति की अधिकता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इससे भी* महत्त्वपूर्ण बात श्रम शक्ति का गुणात्मक पहलू है। **सोलोमन** के एक अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में 1869-73 से 1949-53 के बीच के 80 वर्षों में प्रति व्यक्ति उत्पादन में 1.9% प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई किंतु इस वृद्धि का 1/10 भाग ही भौतिक पूंजी में वृद्धि के कारण हुआ। शेष 9/10 भाग उत्पत्ति में वृद्धि श्रम के गुणों और उत्पादन कला में सुधार के कारण हुई। भारत की जनसंख्या संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या से ढाई गुना और इंग्लैंड की जनसंख्या से दस गुना अधिक है परंतु इन देशों की प्रति व्यक्ति आय भारत की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में क्रमशः तीन गुना और सोलह गुना अधिक है। अगले पृष्ठ पर दी गई सारणी 1 के अंक भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

1 T Gill, Richard 'Economic Development', p 18
2 R Nurkse 'Problems of Capital Formation'

सारिणी—1 : विश्व मे कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति

	आय वर्ग वाले प्रदेश	जनसख्या हजारो मे	कुल विश्व का प्रतिशत	कुल राष्ट्रीय उपज मिलयन डालरो मे	कुल विश्व का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उपज डालरो मे
1	100 डालर प्रति व्यक्ति कुल राष्टीय उत्पत्ति वाले प्रदेश	13,87 324	49 7	1,00 597	8 7	73
2	101 से 200 डालर प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति वाले प्रदेश	4,77 343	17 1	94,588	8 2	198
3	301 से 600 ’	5 01,641	18	2 45,446	21 3	489
4	601 स 1,200 ”	2 10 247	7 5	2 04,177	17 7	971
5	1 201 डालर प्रति व्यक्ति कुल राष्टीय उत्पत्ति वाले प्रदेश	2 13,578	7 7	5 09,819	44 2	2,387

(Source Adopted from E E Hagen's 'Some Facts about Income Levels and Economic Growth s Review of Economics and Statistics (Feb 1960), pp 62-67)

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि कम आय समूह वाले देशो की 138 73 करोड जनसख्या केवल 1 00 597 मिलियन डालर कुल राष्ट्रीय उत्पादन का ही सृजन करती है जबकि अधिकतम आय समूह वाले देशो की 21 35 करोड जनसख्या ही 5 09 819 मिलियन डालर कुल राष्ट्रीय उत्पादन करन मे समर्थ होती है। यद्यपि विकसित देशो म प्रति व्यक्ति इस अधिक उत्पत्ति का श्रेय अन्य कई तत्त्वो को भी है किंतु इन सब मे योग्य और कुशल श्रम शक्ति का भी बहुत बडा योगदान है। यह इस बात का प्रभाव है कि श्रम शक्ति के परिमाणात्मक पहलू की अपेक्षा उसका गुणात्मक पहलू अधिक महत्त्वपूर्ण है। अत किसी देश की श्रम-शक्ति पर विचार करते समय श्रम-शक्ति म आकार के साथ साथ उसकी कुशलता, दक्षता और कार्य-क्षमता पर भी पूर्ण ध्यान देना चाहिए। परतु अर्द्धविकसित देशो की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि मानव पूजी घटिया किस्म की होती है क्योकि वहा श्रमिको की प्रत्याशित आयु कम है, अधिकाश श्रमिक

अकुशल हैं, पौष्टिक भोजन का अभाव व चिकित्सा सुविधाओं के अभावों के कारण श्रमिक सापेक्षिक दृष्टि से अकुशल हैं। अतः अर्द्धविकसित देशों में श्रम-शक्ति समाधानों के विकास के लिए सामान्य शिक्षा और तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था, आहार की उपलब्धि, रोगों पर नियत्रण, चिकित्सकों और चिकित्सा सुविधाओं की वृद्धि के रूप में स्वास्थ्य सुधार के कार्यक्रम बड़े पैमाने पर सचालित किए जाने चाहिए। यद्यपि ऐसा करने में मृत्यु-दर घटती है जिससे अतिरिक्त जनसख्या की समस्या और भी जटिल हो जाती है। परन्तु जैसा पेपेलेसिस, मियर्स और एडलमैन ने कहा है कि इस बुराई का तो स्वीकार करना ही पड़ेगा क्योंकि इन सुधारों के बिना आर्थिक विकास की सक्रिय प्रक्रिया में बाधाएं उपस्थित होंगी। अतः अर्द्धविकसित देशों के उत्पादन में वृद्धि के लिए भौतिक पूजी की कमी की पूर्ति मानव पूजी निर्माण और उसके सर्वोत्तम उपयोग द्वारा किया जाना चाहिए। यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकार की मानव पूजी निर्माण के लिए इन देशों के पास अधिक साधन नहीं हैं किंतु फिर भी इन देशों में श्रम अधिक अच्छे उपयोग द्वारा उत्पादन में वृद्धि की पर्याप्त सभावनाएं हैं। इस प्रकार उनकी उत्पादकता बढ़ाने से आय बढ़ेगी और फिर भौतिक पूजी निर्माण में भी सहायता मिलेगी।

आर्थिक विकास के लिए श्रम शक्ति का महत्त्व एक अन्य दृष्टिकोण से इसलिए भी है कि इसका आर्थिक विकास से दो प्रकार का सबध है। **मानवीय तत्त्व केवल उत्पादन का साधन ही नहीं, बल्कि उत्पादन और विकास का उद्देश्य भी है।** साधन के रूप में वह आर्थिक विकास की गति को तेज करता है और साध्य के रूप में विकास के फल का उपभोग करता है। दूसरे शब्दों में वह उत्पादन और उपभोक्ता दोनों ही है। आर्थिक विकास में एक ओर मानव के जीवन-स्तर को ऊचा उठाने का प्रयास किया जाता है और दूसरी ओर आर्थिक विकास स्वय मानवीय श्रम द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। **पेपेलेसिस, मियर्स और एडलमैन** के शब्दों में "ससाधन की हैसियत से श्रमिक उत्पादन क्रियाओं में अन्य ससाधनों के साधनों के साथ सयुक्त होने के लिए उत्पादन के साधन के रूप में उपलब्ध होते हैं। उपभोक्ताओं की हैसियत से आर्थिक विकास का उद्देश्य उनकी आकाक्षाओं और अभिलाषाओं की अधिकतम प्राप्ति है। अतः किसी भी विश्लेषण में मानवीय तत्त्वों पर इसके उत्पादक और उपभोक्ता दोनों रूपों में विचार किया जाना चाहिए।'[1]

श्रम की मात्रा या श्रमिकों की सख्या उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व है। मूल्य का श्रम सिद्धात श्रमिकों की सख्या और उत्पादन के सबध को भी स्थापित करता है। आर्थिक क्षेत्र में जर्मनी और जापान की हाल ही की आश्चर्यजनक सफलताओं का एक रहस्य युद्धोत्तर काल में इन देशों के द्वारा अतिरिक्त श्रम-शक्ति की उपलब्धताओं में निहित है। जनसख्या में वृद्धि से बहुत सीमा तक श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण सभव होता है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बढ़ती हुई श्रम शक्ति बढ़ती हुई माग को प्रस्तुत करती है जो उत्पादन क्रिया के विस्तार के लिए आवश्यक होती है।

1. Pepelasis, Mears and Adleman 'Economic Development', p 54.

बढती हुई जनसख्या विकसित अर्थव्यवस्था मे सहायक हो सकती है परतु भारत जैसे अर्द्धविकसित देशो मे बढती हुई श्रम-शक्ति एक अभिशाप है क्योकि (अ) इन दशो मे पहले से ही श्रम-शक्ति अधिक होती है। इसलिए बढती हुई जनसख्या के कारण देश मे बेरोजगारी की समस्या जटिल हो जाती है। (ब) जनसख्या मे वृद्धि होने से वस्तुओ की माग बढती है किंतु पूर्ति उसी अनुपात मे नही बढती। फलत. वस्तुओ के मूल्य बढ जाते हैं। (स) जनसख्या के अत्यधिक भार के कारण उत्पादन वृद्धि का अधिकाश भाग उपभोग मे ही चला जाता है और आगे विनियोग के लिए कम बचता है। इस प्रकार अर्द्धविकसित देशो मे बढती हुई श्रम-शक्ति विकास मे बाधक सिद्ध होती है परतु इस सबध मे ए० बी० माउंटजाय का विचार महत्वपूर्ण है। उनके शब्दो मे: "कुछ दशाओ मे अनेक अर्द्धविकसित देशो मे पायी जाने वाली अपार श्रम-शक्ति एक महान् आर्थिक सम्पत्ति है, जिसका पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। मानव शक्ति पूजी का उपयोग करने के साथ-साथ पूजी का निर्माण (कार्य द्वारा) करती है।" इस प्रकार अर्द्धविकसित देशो मे जहा वह अत्यधिक श्रम-शक्ति के विकास मे बाधक होती है वही आर्थिक विकास मे सहायक भी हो सकती है। परतु यह उसी स्थिति मे होगा जबकि उचित मानव श्रम नियोजन (Proper Manpower Planning) किया जाय।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एक विकासशील अर्थव्यवस्था मे श्रमिको की बहुत बडी भूमिका होती है। अर्थव्यवस्था के विकास म तथा देश के उत्पादन साधनो की वृद्धि मे उन्हे कठोर श्रम का अनुदान देना चाहिए और निजी हित की अपेक्षा सामाजिक हित को प्राथमिकता देनी चाहिए। अर्द्धविकसित देशो मे आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने और उत्पादकता मे वृद्धि के हेतु कठिन परिश्रम के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही है परतु इसके लिए हमारा श्रमिक सतुष्ट और सुखी होना चाहिए। अधिक-से-अधिक लोगो के अधिकतम कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठोर सामाजिक अनुशासन की आवश्यकता है जिससे श्रमिको तथा सेवायोजको को अपने निजी हितो की चिंता न करके राष्ट्रीय विकास के लिए जुट जाना चाहिए। भारत का भावी आर्थिक विकास तथा आर्थिक विकास की दर बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर होगी कि हम देश मे श्रम-शक्ति का किस तरह विकास करते हैं और किस तरह उसका उपयोग करते हैं।

अर्द्धविकसित देशो मे श्रम को उचित स्थान नही दिया गया है। राज्य का आचरण व व्यवहार भी श्रमिको के प्रति बहुत सौहार्द्रपूर्ण नहीं रहा है। पूजीपतियो ने उनका शोषण किया है, परन्तु सोवियत क्रांति ने श्रम के महत्त्व को स्वीकार किया है और वहा श्रमिको को सुखी तथा सतुष्ट रखने के सब प्रकार के प्रयत्न किये गए हैं। वहा श्रमिको को सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक कल्याण की वृहद सुविधाए प्रदान की गई हैं फलत सोवियत रूस औद्योगिक दृष्टि से काफी विकसित है।

अर्द्धविकसित देशो मे श्रम-शक्ति का आर्थिक विकास मे पूर्ण योगदान सभव हो इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं —

1. श्रमिको को शिक्षित व प्रशिक्षित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए और

इसका व्यय मुख्य रूप से सरकार को सहन करना चाहिए।

2. कृषि क्षेत्र में व्याप्त अदृश्य बेरोजगारी, अल्प बेरोजगारी और बेरोजगारी को दूर कर वहां अतिरिक्त जनसख्या के लिए रोजगार की व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. श्रमिको को उचित मजदूरी मिलनी चाहिए तथा मजदूरी में वृद्धि को उत्पादकता से जोडना चाहिए जिससे जब उत्पादकता म वृद्धि हो तो मजदूरी बढे और कीमतो मे वृद्धि न हो।

4. विकास के नाम पर वास्तविक मजदूरी नहीं गिरनी चाहिए। वस्तुत अर्द्ध-विकसित देशो मे मजदूरी का मुद्रा-स्फीति मे अधिक योगदान नही होता।

5 कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के क्षेत्र को विस्तृत करने के प्रयास किए जाने चाहिए। ऐसी पद्धति कर्मचारियो की सहमति के साथ अच्छे औद्योगिक सबधो के वातावरण मे विकसित की जानी चाहिए। महगाई भत्ते को जीवन-निर्वाह मूल्य के साथ सबद्ध करना उपयुक्त है, किंतु सभी स्तरो पर निर्वाह मूल्य मे वृद्धि को प्रभावहीन करना सभव नही है। इस सबध मे मूल्य आकडो के सग्रह एव मूल्य निर्देशाक के साथ उनके प्रकाशन की वर्तमान व्यवस्थाओ मे सुधार करने के लिए भी कदम उठाए जाने चाहिए।

6. देश मे सुदृढ और शक्तिशाली श्रमिक सघो का विकास किया जाना चाहिए, क्योकि एक सुदृढ श्रमिक सघ की सामूहिक सौदेबाजी ही श्रमिको के हितो की सुरक्षा करने और उसे बढाने मे सक्षम हो सकती है। श्रमिक सघ ही श्रमिको मे पर्याप्त आशा और विश्वास उत्पन्न कर सकता है कि उनका किसी भी प्रकार से शोषण नहीं होगा और उन्हें अधिक रुचि तथा लगन के साथ कार्यों का निष्पादन करने तथा उत्पादन को अधिकाधिक बढाने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। पूजी निर्माण के सबध म भी श्रमिक सघ (अ) अल्प-बचत योजनाओ को प्रोत्साहन देकर, (ब) सडक निर्माण तथा इसी प्रकार की योजनाओ के लिए ऐच्छिक श्रमिक दलो का सगठन करके, तथा (स) अनिवार्य बचत योजनाओ को श्रमिको द्वारा स्वीकृति दिलवाकर सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

7 श्रमिको की मनोवृत्ति म इस प्रकार से परिवर्तन करना चाहिए कि वे तकनीकी परिवर्तनो का विरोध न करे।

8. श्रम अधिनियमों के समुचित क्रियान्वयन की व्यवस्था होनी चाहिए।

9. देश में सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक कल्याण सबधी सुविधाओं का विस्तार होना चाहिए।

10. श्रमिको मे भी कर्तव्य, उत्तरदायित्व एव अनुशासन की भावना जागृत की जानी चाहिए।

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि "स्वर्ण युग केवल तभी आयेगा जब हमारे देश की श्रम-शक्ति न केवल उपेक्षा, आवश्यकता, चिंता, क्षीण स्वास्थ्य एव परेशानी से मुक्त हो जायेगी, वरन उच्चतम दक्षता एव मातृभूमि के प्रति उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य की पूर्ण भावना भी विकसित कर लेगी।'

परीक्षा-प्रश्न

1 श्रम अर्थशास्त्र से आप क्या समझते हैं ? श्रम अर्थशास्त्र के क्षेत्र की विवेचना कीजिए।

2. श्रम से आपका क्या आशय है ? इसकी प्रमुख विशेषताओ को सक्षेप मे समझाइए।

3 श्रम के विभिन्न भेदो को उदाहरणो द्वारा समझाइये।

4 ' ऐसे व्यक्ति मूर्खों के स्वर्ग मे रहते है जिनका यह विश्वास है कि श्रम समस्याए केवल पूजीवाद के अतर्गत ही जन्म लेती है और एक नियत्रित अथवा समाजवादी अर्थव्यवस्था के अतर्गत ऐसी समस्याए नही हो सकती।"

उक्त कथन का आलोचनात्मक आधार पर स्पष्टीकरण कीजिए और उन तत्वो को भी स्पष्ट कीजिए जो श्रम समस्याओ को जन्म देते है।

5 अल्प-विकसित देशो के आर्थिक विकास मे श्रम की भूमिका का मूल्याकन कीजिए।

6 "श्रम समस्या, श्रम सघवाद की समस्या से अधिक विस्तृत तथा औद्योगिक शाति की समस्या से अधिक महत्त्वपूर्ण है।' (एडम्स व समर) विवेचन कीजिए।

7 देश की वर्तमान सामाजिक व आर्थिक प्रणाली के अतर्गत श्रम समस्याओ के अध्ययन का महत्त्व सक्षेप मे बताइए।

अध्याय 2

भारत में श्रम-शक्ति
(Labour Power in India)

श्रम-शक्ति से आशय श्रम अर्थशास्त्र मे श्रम शक्ति से आशय उन समस्त व्यक्तियो के समूह से है जो कार्य करते हैं या कार्य करने की इच्छा और योग्यता रखते हैं किंतु उन्हे कार्य करने का अवसर नही मिलता यद्यपि इसके लिए वे सदा प्रयत्नशील रहते हैं। **एल० जी० रेनाल्ड्स** के शब्दो मे 'किसी व्यक्ति को उस समय श्रम-शक्ति मे सम्मिलित समझना चाहिए, यदि वह कार्य करने मे समर्थ हो और या तो कही काम करता हो अथवा सक्रिय रूप से कार्य की खोज मे हो।''[1] किसी देश की सपूर्ण जनसख्या को श्रम-शक्ति नही माना जा सकता बल्कि जनसंख्या का केवल वही भाग श्रम शक्ति मे सम्मिलित किया जाता है जो उत्पादन के लिए सक्रिय होता है। इस सक्रिय श्रम शक्ति को कार्यशील जनसख्या भी कहा जाता है। सपूर्ण जनसख्या का वह भाग जो श्रम शक्ति है उसे एक अनुपात या दर के रूप मे व्यक्त किया जाता है जिसे श्रम शक्ति सहभागिता दर (Labour Participation Rate) कहते हैं।

श्रम-शक्ति का महत्त्व 'साधन' और 'साध्य' दोनों रूपो मे है। समस्त उत्पादन का मूल साधन श्रमिक ही है वही अपनी शारीरिक और बौद्धिक शक्ति तथा भौतिक साधनो का प्रयोग करके नयी रीतियो और प्रक्रियाओं की खोज करके उत्पादन की प्रक्रिया को जन्म देता है और आर्थिक विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। सभी साधनो को जुटाकर वह ही समन्वित करता है और उन्हे सेवा तथा वस्तुओ मे परिवर्तित करके उन्हे राष्ट्रीय धन मे अधिकाधिक उत्पादन मे सहायक बनाता है। यदि देश के प्राकृतिक साधन अत्यत पर्याप्त हो तो भी वह देश गरीब ही रह सकता है यदि उसकी श्रम शक्ति पर्याप्त और कार्य कुशल न हो।

लेकिन श्रम उत्पादन का साधन ही नही, साध्य भी है क्योकि वह जो कुछ उत्पादन करता है उसका उपभोग भी करता है। **मार्शल** के शब्दो मे धन का उत्पादन मनुष्य की जीविका के लिए उसकी इच्छाओ की सतुष्टि के लिए, उसकी क्रियाओ—शारीरिक मानसिक और नैतिक—के विकास के लिए केवल साधन मात्र है। परतु श्रम स्वय ही उस धन की उत्पत्ति का मुख्य साधन है जिसका वह अतिम उद्देश्य है। सक्षेप मे,

1 L G Reynolds 'Labour Economics and Labour Relations', p 24

आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे साधन व साध्य दोनो ही रूपो मे मानव की भूमिका अत्यत महत्त्वपूर्ण है। श्रम की इस भूमिका का स्वरूप समय और स्थान के सदर्भ मे विभिन्न प्रकार का हो सकता है।

यहां एक बात और उल्लेखनीय है कि श्रम शक्ति की प्रचुरता को ही शक्ति का प्रतीक नहीं माना जा सकता। श्रम के सख्यात्मक पहलू की अपेक्षा उसका गुणात्मक पहलू अधिक महत्त्व रखता है। यदि सख्या मे अधिकता के साथ-साथ श्रम दक्ष व योग्य हो और उसकी उत्पादन कुशलता अधिक हो तो निश्चय ही वह राष्ट्र की एक अमूल्य सपदा होगी।

भारतीय श्रमिको की संख्या

(अ) **संगठित क्षेत्र :** सगठित उद्योगो से तात्पर्य उन उद्योगो से है जिन पर कारखाना अधिनियम लागू होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के सगठित क्षेत्र में सबसे अधिक श्रमिक कारखानो मे काम करते हैं। देश के औद्योगीकरण के साथ-साथ कारखानो की सख्या मे वृद्धि होने से श्रमिको की सख्या में भी वृद्धि हुई है, जैसाकि निम्न सारणी के अको से स्पष्ट है

सारणी—1

वर्ष	कारखानो की सख्या	श्रमिको की सख्या (लाखो मे)
1947	14 576	22 75
1950	27,745	25 05
1955	34,275	28 82
1960	48,038	37 64
1965	63,573	47 30
1970	76,549	49 77
1975	78,550	59 04
1981	80 100	66 5

सन 1981 में भारत में श्रमिकों की सख्या लगभग 66 5 करोड़ थी। यह देश की कुल जनसख्या के लगभग 33 45 प्रतिशत थी।

भारतीय अर्थव्यवस्था के सगठित क्षेत्र म सर्वाधिक श्रमिक शक्तियो या कारखानो मे काम करते हैं। 1978 मे चालू फैक्टिरियो मे, जिनक आकडे उपलब्ध हैं, प्रतिदिन का अनुमानित औसत रोजगार 65 24 लाख था।

राज्यानुसार कारखानों मे रोजगार कारखानो मे श्रमिको का वितरण समान नही है क्योकि उद्योगो का केंद्रीयकरण मुख्यत. महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बगाल मे है।

1978 के दैनिक रोजगार आकडो के अनुसार महाराष्ट्र मे फैक्टरी कर्मचारियो की सख्या सबसे अधिक थी (11,60,178)। इसके पश्चात् पश्चिम बगाल (8,69,676), गुजरात (5 88,620), तमिलनाडु (5 99,682) तथा उत्तर प्रदेश (5,32,659) का नम्बर आता है।

उद्योगो के इस असतुलित वितरण के कारण देश के आर्थिक विकास मे भी असतुलन देखने को मिलता है। सूती वस्त्र मिलो का केंद्रीयकरण अधिकतर महाराष्ट्र व गुजरात मे है। इसी प्रकार कोयला, इस्पात, जूट व रासायनिक उद्योगो का जमाव पश्चिमी बगाल बिहार व तमिलनाडु मे है।

उद्योगानुसार श्रम शक्ति विभिन्न उद्योगो मे कारखानो की सख्या तथा उनमे कार्यरत श्रमिको की सख्या सन् 1978 मे अनुमानतः निम्न सारणी के अनुसार थी।

सारणी—2

उद्योग	कारखानो की सख्या	श्रमिको की सख्या ('000 मे)
1 वस्त्र	6,000	1,200
2. खाद्यान्न (पेय के अतिरिक्त)	24,800	650
3 परिवहन इक्विपमेंट	3,500	500
4 अन्य मशीनें	6,000	325
5 बुनियादी धातु उद्योग	2,500	300
6 अधातु खनिज उत्पादन	3,500	250
7 रसायन व रासायनिक उत्पादन	2,700	250
8 धातु उत्पादन	4,500	230
9 विद्युत् मशीनरी व उपकरण	1,500	200
10 विविध उद्योग	2,700	200
11 अन्य	20,952	940
योग	78,652	5 045

(ब) **असगठित उद्योगो में श्रम शक्ति** (असगठित उद्योगो से तात्पर्य उन उद्योगो से है जिन पर कारखाना अधिनियम लागू नही होता (उन पर कारखाना अधिनियम इसलिए लागू नही होता, क्योकि या तो श्रमिको की सख्या 10 से कम रहती है अथवा वे शक्ति का प्रयोग नही करते, और 20 से कम श्रमिको को रोजगार प्रदान करते हैं। असंगठित उद्योगो की श्रेणी मे प्राय निम्नलिखित का समावेश किया जाता है— बीड़ी बनाना, चटाई बुनना, काच की चूड़ी बनाना, जूट बनाना, ऊन साफ करना, हथ-करघा उद्योग तथा इसी प्रकार के अन्य छोटे-छोटे उद्योग। सामान्यतया सभी ग्रामीण कुटीर एव लघु स्तरीय उद्योग, दुकानें एव प्रतिष्ठान, ठेके के श्रम, आकस्मिक श्रम, असुरक्षित श्रम आदि इसी श्रेणी के अतर्गत आते हैं।

असंगठित उद्योगो मे कार्यरत श्रमिको की सही सख्या का अनुमान लगाना कठिन है क्योकि इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एव विस्तृत है। आधुनिक अनुमान के अनुसार लगभग 3 करोड व्यक्ति इन उद्योगो मे लगे थे।

भारतीय श्रमिको की विशेषताएं

यद्यपि भारतीय श्रम मे भी श्रम की समान विशेषताए पायी जाती है परन्तु भारतीय परिवेश के प्रभाव से यहा के श्रमिको की कुछ अपनी निजी विशेषताए है जिनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

1 प्रवासी प्रवृत्ति भारतीय श्रमिको की प्रमुख विशेषता यह है कि शहर मे काम करने वाले श्रमिक अधिकतर गाव से आते हैं। भूमि पर जनसख्या का बढता हुआ भार ग्रामीण उद्योगो का पतन, अनार्थिक कृषि, महाजनो द्वारा शोषण, सयुक्त परिवार के दोष आदि से विवश होकर गाव के लोग अपनी जीविका की खोज मे औद्योगिक नगरो मे आते है। परन्तु गाव के वातावरण मे पले होने के कारण नगरो के कृत्रिम वातावरण और प्रतिकूल परिस्थितियो मे उनका मन नही लगता। अत वे शीघ्र अवसर मिलने पर पुन गाव को वापस लौट जाते हैं। भारतीय श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति की यह विशेषता स्वय ही एक समस्या बन गई है जिसकी विस्तृत विवेचना हम आगे करेंगे।

2 एकता का अभाव भारतीय श्रमिको मे एकता का सर्वथा अभाव है। वे देश के सभी भागो मे और समाज के सभी वर्गों से आये हुए होते हैं। फलत नगरो मे श्रमिको का जो वर्ग बनता है उसमे भाषा, धर्म, रहन सहन, रीति रिवाज आदि की बहुत भिन्नताए होती हैं। उनका सामान्यत अशिक्षित होना और उनके जीवन का स्तर निम्न होना इस विभिन्नता को और भी बढा देते हैं। इस अनेक भिन्नताओ के कारण श्रमिक वर्ग मे सगठन नही है। सगठन तो दूर रहा पारस्परिक मेल जोल भी उनमे बहुत कम है।

3 अधिक अनुपस्थिति भारतीय श्रमिको मे काम से अनुपस्थित रहने का प्रतिशत दूसरे देशो की अपेक्षा काफी अधिक है। काम से अनुपस्थित रहने का विशेष कारण यह है कि श्रमिक मजदूरी पाने के बाद मनोरजन हेतु गाव भाग जाता है। कृषि क्षेत्रो से आने वाले श्रमिक कृषि मौसम मे अथवा फसल पर गाव मे जब अधिक काम होता है, अपना कार्य छोडकर चले जाते है। श्रमिको के कार्य करने की दशाए और काम करने की उदासीनता भी उन्हें यदाकदा गाव चल जाने के लिए प्रेरित करती है। यही नही भारत मे बीमारी और दुर्घटना की दरें भी दूसरे देशो की अपेक्षा कही अधिक है। इसका कारण भी यहा का श्रमिक अपने काम मे अधिक अनुपस्थित रहता है। काम की अनुपस्थिति से एक ओर तो श्रमिको की मजदूरी कम होनी है और दूसरी ओर उनकी कार्य क्षमता घटती है। मिल मालिको को भी हानि होती है क्योकि विकल्प स्वरूप उन्हे दूसरे मजदूर रखने पडते हैं जिसमे उनका व्यय बहुत अधिक बढ जाता है।

4 अज्ञानता तथा शिक्षा का अभाव भारत की कुल जनसख्या मे केवल 32% व्यक्ति ही शिक्षित हैं। इन व्यक्तियो मे से औद्योगिक श्रमिको का भाग तो नाम मात्र का

ही आता है। साथ ही ग्रामीण वातावरण और परिस्थितियों में पले होने के कारण वे बहुत ही भोले-भाले तथा सरल होते हैं। अपनी अज्ञानता और सामान्य तथा औद्योगिक शिक्षा के अभाव मे न तो अपनी समस्याओं को ही समझ पाते हैं और न प्राप्त अवसरो से लाभ उठाने मे ही समर्थ होते हैं। शिक्षा का अभाव होने के कारण श्रमिक पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ अपने कर्तव्य का निष्पादन नही कर पाते।

5 **रूढिवादिता और भाग्यवादिता :** भारतीय श्रमिक अपनी अज्ञानता और शिक्षा के अभाव के कारण अत्यत रूढिवादी और भाग्यवादी हैं। अपने जीवन के सुख-दुःख को वे भाग्य की देन समझते हैं। नया कदम उठाने मे या नया प्रयत्न करने मे वे डरते हैं।

6. **गरीबी तथा रहन-सहन का निम्न स्तर :** भारतीय श्रमिको की आय बहुत कम होने के कारण उनका रहन-सहन का स्तर अत्यन्त गिरा हुआ है। कोई भी व्यक्ति, जब तक उसके पास अपनी समस्त आवश्यकताओ की सतुष्टि हेतु साधन न हो, अपने रहन-सहन का स्तर ऊचा नही कर सकता।

7 **भारतीय श्रमिको की पूर्ति उद्योगो की आवश्यकतानुसार न होना** भारत मे कुशल श्रमिको की अपेक्षाकृत कमी है, और श्रम-शक्ति का विकास उद्योगो की आवश्यकतानुसार नही हो रहा है जिसके कारण भारतीय श्रमिको की पूर्ति उद्योगो की आवश्यकतानुसार नही होती।

8 **सामाजिक व धार्मिक दृष्टिकोण :** भारतीय श्रमिको की एक अन्य विशेषता उनका सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण है। उदाहरणार्थ, जाति प्रथा श्रम की स्वतत्रता एव पूर्ण गतिशीलता मे बाधक है। यह श्रम सगठनो के सगठित रूप मे विकास में भी गतिरोधक है। यही नहीं, भिन्न-भिन्न जातियो के श्रमिक एक सामान्य अधिकार की माग के लिए भी सगठित नही हो पाते। उनके सामाजिक व धार्मिक उत्तरदायित्व इतने अधिक होते हैं कि उनको निभाने मे ही काफी समय, शक्ति व धन नष्ट हो जाता है। परिणामत वे अपनी आर्थिक स्थिति को शीघ्रता से नही सुधार पाते। जाति प्रथा के अतिरिक्त सयुक्त परिवार प्रणाली और इससे सबधित सभी प्रकार की चिंतायें भारतीय श्रमिक के दृष्टिकोण को निराशावादी बनाने के लिए उत्तरदायी हैं। इन सब बातो का उनकी कार्य कुशलता पर गहरा प्रभाव पडता है।

9 **कार्य क्षमता का निम्न स्तर :** भारतीय श्रमिको की एक और विशेषता यह है कि उनकी कार्य-क्षमता का स्तर दूसरे देशो के श्रमिको की तुलना मे काफी कम है। इसका कारण यह नही है कि हमारे श्रमिको मे कोई विशेष कमी है या वे जन्म से ही अकुशल हैं। श्रम अनुसधान समिति ने उपयुक्त ही लिखा है "भारतीय श्रमिक पर लगाया गया अकुशलता का आरोप कल्पना मात्र है। यदि हम अपने श्रमिको को वैसी ही कार्य-दशाए, मजदूरी उचित व्यवस्था, मशीनें और यत्र आदि प्रदान करें जो दूसरे देशो मे श्रमिको को मिलती हैं तो भारतीय श्रमिको की कार्य-कुशलता भी अन्य देशो के श्रमिको से कम न होगी। इतना ही नही, जिस कार्य मे भी यात्रिक सामान व सगठन की व्यवस्था महत्वपूर्ण नही होती वहा भारतीय श्रमिक ने अन्य देशो के अपने साथियो की अपेक्षा अधिक कार्य-कुशलता का प्रमाण दिया है।"

10 गतिशीलता मे कमी . भारतीय श्रमिको मे गतिशीलता की बहुत कमी है। वे सब बाधाए जो श्रम की गतिशीलता मे बाधक होती हैं भारत मे विद्यमान हैं। निर्धनता अज्ञानता, अधविश्वास, महत्वाकाक्षा का अभाव, जन्म स्थान से विशेष अनुराग आदि के कारण यहा व्यक्ति अपने स्थान को नही छोडना चाहता। यातायात की महगाई और असुविधाए भी श्रम की गतिशीलता को रोकती हैं। भारतीय श्रम की इस विशेषता के कारण एक तो आवश्यकतानुसार कुशल श्रम उपलब्ध नही होता और दूसरे, कुशल श्रम को उचित पुरस्कार नही मिल पाता।

उपर्युक्त विशेषताओ के अतिरिक्त यह बात भी उल्लेखनीय है कि (अ) भारतीय श्रमिक अपेक्षाकृत कम सगठित हैं, (ब) श्रम की माग और पूर्ति मे भारी अतर होने के कारण वह एक शोषित वग बना हुआ है। लेकिन इतना सब कुछ होते हुए भी आज का भारतीय श्रमिक अपने अधिकारो के प्रति काफी जागरूक है और उसमे राजनीतिक चेतना भी काफी आ गई है। श्रमिक सगठनो का महत्त्व वह समझने लगा है। बाहरी नेता अब सरलता से उनका शोषण नही कर सकते। श्रमिको की स्थिरता मे भी वृद्धि हुई है और उनका सगठन भी मजबूत हो गया है। राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1969 ने लिखा है कि 'गाव मे सबध क्रमश शिथिल होता जा रहा है। बागानो तक मे स्थिर श्रमिको की सख्या बढ़ती जा रही है। आज के श्रमिक ने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है वह उनके पूर्वजो को प्राप्त नही थी। वह समाज का सम्मानित सदस्य है और कल्याणकारी लाभो को प्राप्त करता है।' परतु आयोग के ये विचार मुख्यत सगठित उद्योगो के श्रमिकों के सबध में ही सत्य हैं क्योकि कृषिक श्रमिको और लघु उद्योगो के श्रमिको की दशा मे कोई विशेष सुधार नही हुआ है।

परीक्षा-प्रश्न

1 भारत की श्रम शक्ति पर एक सक्षिप्त निबध लिखिए।
2 भारतीय औद्योगिक श्रमिको की प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख कीजिए।

अध्याय 3

श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति
(Migratory Character of the Labour)

प्रवासी प्रवृत्ति का अर्थ : प्रवासी प्रवृत्ति दो शब्दो का समूह है—(अ) प्रवासी, एव (ब) प्रवृत्ति। प्रवासी शब्द का अर्थ है किसी मूल स्थान को छोडकर जाना, कही अन्यत्र बस जाना व बार-बार मूल स्थान को जाते रहना। प्रवृत्ति से आशय स्वभाव या आदत से है। इस प्रकार प्रवासी प्रवृत्ति से आशय मूल स्थान को छोडकर कही अन्यत्र जाकर बस जाने और उस मूल स्थान से निरतर सबध बनाये रखने से है। भारतीय श्रम की वर्तमान समय मे यह विशेषता है कि उसकी प्रवृत्ति प्रवासी है जिसके कारण उसमे स्थायित्व की कमी है। भारत के औद्योगिक क्षेत्रो के अधिकाश श्रमिक ग्रामीण होते हैं जो गाव से आते हैं और वे नगरो मे स्थायी निवास न करके समय-समय पर अपने गावो मे लौटते रहते हैं। उनकी यही प्रवृत्ति प्रवासी कहलाती है।

प्रवासिता के दृष्टिकोण से भारतीय एव पाश्चात्य श्रमिको मे अतर पाया जाता है। पाश्चात्य देशो मे श्रमिक प्रवासी नही, बल्कि आवासी होते हैं। अर्थात् श्रमिको का ग्रामो मे कोई सबध नही होता और वे औद्योगिक क्षेत्रों में ही स्थायी रूप से रहते हैं। औद्योगिक केंद्रो को ही वे अपना घर समझते हैं और बार-बार ग्रामो मे ले जाने की प्रवृत्ति वहा देखने को नही मिलती। उदाहरणार्थ, लकाशायर की मिलो मे कार्य करने वाले कर्मचारी इन्ही नगरो मे पैदा हुए, वही शिक्षा-दीक्षा ली तथा बडे होकर वही कार्य करने लगे। सक्षेप मे, पाश्चात्य देशो मे आवासी प्रवृत्ति या स्थायी श्रम-शक्ति पाई जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रवासी प्रवृत्ति का अर्थ स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। सक्षेप मे, हम कह सकते हैं कि नगरो मे परदेशी की तरह रहने वाले भारतीय श्रमिक आतरिक हृदय से ग्रामीण ही रहते हैं। गाव मे पुन वापस जाने की प्रबल इच्छा उनमे सदैव ही बनी रहती है। उनकी इसी इच्छा को देखते हुए पानन्दीकर ने लिखा है : "किसी कारखाने मे काम करने वाले श्रमिक मे, जिसका मन सुस्त और भारी है और जो मशीनो के शोर मे अपना थकान वाला काम करता है, उसके गाव की जहा कि उसका दिल और दिमाग घूम रहा है, बातचीत करके देखिए तो आप यह पायेंगे कि उसके चेहरे मे उदासी होते हुए भी एक चमक आ जाती है।" यही प्रवासी प्रवृत्ति की प्रेरणा शक्ति है और यही उसका वास्तविक अर्थ भी।

भारतवर्ष मे प्रवासिता एक गभीर समस्या है। यहा प्रवास ग्रामो से नगरो की ओर हो रहा है। 1901 से 1971 तक के जनसख्या के आकडो को देखने से यह विदित होता है कि शनैः-शनैः ग्रामीण क्षेत्रो से नगरो की ओर सामान्य जनता का प्रवास बढता जा रहा है, जैसाकि सारणी 1 मे दिखाया गया है—

सारणी—1

वर्ष	ग्रामीण जनसख्या का प्रतिशत	नगरीय जनसख्या का प्रतिशत
1911	88.8	11 2
1931	88 0	12 0
1941	86.1	13 9
1951	82.7	17 3
1961	82 0	18 0
1971	80 0	20 0
1981	76 0	24 0

प्रवासिता की प्रकृति व प्रकार
(Nature and Kinds of Migration)

भारतीय श्रमिको की प्रवासिता की प्रकृति के सबध मे श्रम के शाही आयोग के ये शब्द उल्लेखनीय हैं: "कुछ श्रमिको का गाव के साथ सबध अत्यत घनिष्ठ व निरतर बना रहता है, कुछ के साथ यह सबध केवल सामयिक होता है और कुछ के साथ यह सबध वास्तविक न होकर केवल प्रेरणा मात्र ही रह जाता है।"[1] इस परिभाषा के अनुसार हमारे देश मे प्रवास के विभिन्न प्रकार हो सकते हैं जिनमे से प्रमुख निम्न है—

1. **दैनिक प्रवास** जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है, दैनिक प्रवास ग्रामो से नगरो की ओर वह प्रवास है जो प्रतिदिन समान रूप से होता रहता है। जो ग्राम शहरो के नजदीक होते हैं वहा के निवासी नौकरी या अन्य कार्यों से ग्रामो से नगरो की ओर आते हैं और कार्य समाप्त हो जाने पर शाम को ग्राम को लौट जाते है।

2 **मौसमी प्रवास** · ग्रामो से नगरो की ओर जो दूसरा प्रवास होता है वह एक विशेष मौसम में ही होता है और जैसे-जैसे वह मौसम समाप्त हो जाता है, प्रवासी प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाती है। जैसे फसल के कटने के समय या बीज बोने के समय श्रमिक अपने मूल गाव को चले जाते हैं और कार्य की समाप्ति पर पुन कारखानो की ओर आ जाते हैं।

3 **आकस्मिक प्रवास** : कभी-कभी प्रवास आकस्मिक या अचानक होता है।

1. Report of The Royal Commission on Labour in India', p 13

कभी कभी कुछ विशेष परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण अचानक प्रवास हो जाता है जैसे बीमारी, अदालत, सामाजिक और धार्मिक उत्सव व अन्य इसी प्रकार की परिस्थितियां।

4 स्थायी प्रवास स्थायी प्रवास से हमारा आशय यह है कि कभी कभी श्रमिक सदैव के लिए गांव को छोड़कर नगरों मे चले जाते हैं और स्थायी रूप से वहीं रहने लगते हैं। जब एक बार व्यक्ति गांव को छोड़कर नगर चला जाता है तो फिर उसकी इच्छा गांव की ओर लौटने की नहीं होती। आधुनिक समय में यह प्रवृत्ति विशेष रूप में देखने को मिलती है।

इस प्रकार भारत के औद्योगिक केंद्रों में अधिकांश श्रमिक निकटवर्ती गांव से आते हैं और कई दशाओं में यह प्रवास न केवल अंतर्जिला है बल्कि यह अंतर्राज्यीय भी है। सामान्यतया छोटे और मध्यम आकार वाले औद्योगिक केंद्र समस्त अकुशल श्रम की पूर्ति के लिए निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों पर ही निर्भर करते हैं। किंतु दूसरी ओर बड़े औद्योगिक शहर —जैसे बंबई, कलकत्ता भिलाई, दुर्गापुर आदि- अपने श्रमिक एक अधिक व्यापक क्षेत्र से प्राप्त करते हैं। बंबई के सूती वस्त्र मिल उद्योग में श्रमिक कोंकन के निकटवर्ती जिले से या कुछ अन्य पड़ोसी जिले से ही नहीं बल्कि दक्षिण व उत्तर प्रदेश से भी आये हैं।

भारतीय श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति के कारण श्रमिकों में बड़ी विभिन्नता है क्योंकि देश के सभी भागों और सभी वर्गों से श्रमिक औद्योगिक कार्य में नियोजित होते हैं। किंतु यह उल्लेखनीय है कि जहां रोजगार के लिए भारत में पर्याप्त अंतर्जिला और अंतर्राष्ट्रीय प्रवसन होता है, वहां इस आशय के लिए विदेशों के लंका, बर्मा, मलाया जैसे देशों के अतिरिक्त, बहुत ही कम प्रवसन होता है। हाल के वर्षों में तो इस प्रवास का परिमाण भी घटने लगा है।

विभिन्न भारतीय शहरों और नगरों में नये तथा विकासोन्मुख उद्योगों में श्रम के लिए बढ़ती हुई मांग प्रत्युत्तर में ग्रामीण प्रवासियों की बाढ़ ने, काफी सीमा तक वहां की जनसंख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि कर दी है।

प्रवासी प्रवृत्ति के कारण

भारतीय श्रमिक की प्रवासी प्रवृत्ति के कारणों का विश्लेषण हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं—

1 **संयुक्त परिवार प्रथा :** भारत में ग्रामीण क्षेत्र में संयुक्त परिवार प्रथा अभी भी काफी प्रचलित है। संयुक्त परिवारों में प्रायः अनेक सदस्य होते हैं, जिनमें से कुछ सदस्य औद्योगिक केंद्रों में नौकरी कर परिवार की आय बढ़ाने के लिए आ जाते हैं परंतु वे अपना स्थायी निवास नगरों में नहीं बनाते, क्योंकि उनका अन्य परिवार ग्रामीण क्षेत्रों में ही बसा हुआ रहता है। साधारणतः संयुक्त परिवार प्रथा के कारण ग्रामीण अपनी स्त्री व बच्चों को गांव में ही छोड़ आता है और नगर से धन कमाकर गांव में आता-जाता रहता है।

2 **भूमि पर जनसख्या का बढता हुआ दबाव** बढती हुई जनसख्या के कारण भूमि पर जनसख्या का दबाव बहुत बढ गया है, फलत लोगो को कृषि व्यवसाय मे पूरा काय नही मिलता और न उनका जीवन निर्वाह भली प्रकार हो सकता है। अत वे रोजगार की खोज मे शहरो को जाने के लिए प्रेरित होते हैं। उन्नत परिवहन के साधन उनके इस प्रवास मे सहायक हुए हैं।

3 **कुटीर उद्योग का ह्रास** भारत मे औद्योगीकरण के प्रारभ से ग्रामीण क्षेत्रो के लघु व कुटीर उद्योगो का पतन हो गया क्योकि वे बडी-बडी मिलो के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सके हैं। ऐसी स्थिति म इन कुटीर उद्योगा म काय करने वाले श्रमिको को विवश होकर नगरो की मिलो मे आकर काय करना पडा है।

4 **ऋणग्रस्तता** बहुत-से व्यक्ति घोर निधनता व ऋणग्रस्तता के कारण गाव के महाजनो र बचने के लिए अपने निवास-स्थान को त्याग देते हैं और शहर में आकर कारखानो मे मजदूरी करने लगते है। जब उनकी आर्थिक स्थिति कुछ सुधर जाती है तो वे पुन अपने गाव मे वापस आ जाते हैं।

5 **पारिवारिक सघर्ष** कभी-कभी एक ही परिवार के सदस्यो मे घरेलू सघर्षों के कारण कृषि श्रमिक गाव को छोडकर नगरो म काम करने लगते हैं। बाद मे स्त्री-बच्चो का मोह उन्हें पुन नगरो से गाव की ओर खीच लाता है।

6 **सचार तथा यातायात के साधनों का विकास** सचार तथा यातायात के साधनो के विकास स भी ग्रामीण क्षेत्रो से औद्योगिक केंद्रो की ओर श्रमिको के प्रवास को प्रोत्साहन मिला है। इनके विकास से अब मनुष्य सुदर क्षेत्रा मे जाकर रोजगार कर सकता है।

7 **भूमिहीन श्रमिकों की सख्या मे वृद्धि** ग्रामीण क्षेत्रो मे जितने भी श्रमिक होते हैं उन सब के पास भूमि नही होती बल्कि एक वग भूमिहीन श्रमिको का भी होता है जो ग्रामीण किसानो के अन्य आवश्यक काय करता है। विगत वर्षो मे भूमिहीन श्रमिको की सख्या म तीव्र गति स वृद्धि हुई है। इन भूमिहीन परिवारो के पास एक मात्र उपाय यही रहता है कि गाव म कार्य न मिलने के कारण वे शहरो की ओर अग्रसर हो जायें। परतु वे अपना गावों से सबध पूर्णतया नहीं छोड देते, क्योकि उनके अन्य सबधी उसी गाव मे रहते हैं और बचपन से ही उसी गाव मे निवास करने के कारण उनका सबध ग्राम स बना ही रहता है।

8 **सामाजिक व्यवहार से असतुष्ट होना** ग्रामीण सामाजिक सरचना स्वय भी प्रवास का एक कारण है। ग्रामो मे जाति पाति की भावनायें काफी प्रबल होने के कारण दलित वर्ग के साथ अच्छा व्यवहार नही किया जाता। नगर मे गरीब-अमीर का भेद होता है परतु जातिवाद के आधार पर किसी व्यक्ति को अपमानित नही किया जाता। फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रो से निम्न वर्ग औद्योगिक केंद्रो मे समानता का व्यवहार पाने और अपनी रुचि का काय करने के लिए आ जाते हैं। डॉ॰ राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक मे उदाहरण देते हुए लिखा है कि कानपुर के बडे उद्योगो मे काय करने मे स्त्री श्रमिको म से 60% स्त्री श्रमिक ऐसी हैं जो दलित वग स सबध रखती हैं और पुरुष श्रमिको में

30% श्रमिक दलित वर्ग से सबध रखते हैं। ये ग्राम के अनुचित व्यवहार से असतुष्ट होकर ही नगरो मे आ जाते हैं।[1]

9. ऊंची मजदूरी का आकर्षण ' ग्रामीण क्षेत्रो मे साधारणतः श्रमिको को कम मजदूरी मिलती है परतु नगरो मे उन्हें अधिक मजदूरी मिल सकती है। अत. अनेक ग्रामीण उच्च पारिश्रमिक के प्रलोभन मे नगरो मे जाकर कार्य करते हैं परतु आवास की समस्या व काम करने की दूषित दशाओ के कारण अपने परिवार को गाव मे ही छोड आते हैं। इस कारण भी वे बार-बार नगरो से गाव की ओर आते हैं और यह प्रवास निरतर जारी रहता है।

10 **शिक्षा, इलाज व मनोरंजन की सुविधाएं** . बहुत-से व्यक्ति इसलिए भी शहर मे जाना चाहते है कि उनके बच्चो को अच्छी शिक्षा वहा उपलब्ध हो सकती है और बीमारी का इलाज भी सार्वजनिक अस्पतालो मे किया जा सकता है। शहर की रौनक व सिनेमा का आकर्षण भी गाव के लोगो के लिए कम नही होता।

उपरिलिखित ऐसे कारण हैं जो श्रमिको को ग्राम छोडकर शहर मे जाने के लिए बाध्य कर देते हैं। इन कारणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज व औद्योगिक व्यवस्था मे कुछ ऐसी विशेषताए हैं जिनके कारण यहा के श्रमिको मे प्रवासी प्रवृत्ति स्वत ही उत्पन्न हो गई है। **संयुक्त राष्ट्र संगठन** द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक मे ठीक ही लिखा हुआ है 'शहरो मे जाने की इस प्रवृत्ति की प्रेरणा औद्योगिक रोजगार के प्रलोभनो मे नही पाई जाती बल्कि ग्रामीण दशाओ की विपरीत परिस्थितियो मे उत्पन्न आर्थिक दबाव ही इस प्रेरणा के मुख्य आधार हैं।"[2] इसी मत का समर्थन **शाही श्रम आयोग** ने इस प्रकार से स्पष्ट शब्दो मे किया है: "प्रवास की प्रेरक शक्ति गाव स आती है। श्रमिक नगरीय जीवन के किसी विशेष प्रलोभन से उत्साहित होकर औद्योगिक नगरो मे आकर नही बसते। जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओ की प्राप्ति के उद्देश्य मे ही वे अपने ग्रामो को छोडकर नगरो मे आते हैं। यदि उनको ग्रामो म ही पर्याप्त मात्रा मे आवश्यक पदार्थ उपलब्ध हो जायें तो बहुत कम सख्या मे श्रमिक नगरो मे आयेंगे।"[3] सक्षेप मे, "श्रमिक नगरो मे आकर्षित होकर नही आता बल्कि विवश होकर आता है। इसमे सदेह नही कि गाव की कठिनाइया प्रवास को प्रेरणा देती हैं और श्रमिक विवश होकर नगरो मे आ जाते हैं परतु नगरो मे कोई आकर्षण नही होता, ऐसा कहना कम-से-कम वर्तमान समय मे ठीक नही है। शाही आयोग के समय मे शहरो की परिस्थितिया बहुत ही भयावह थी और मजदूरो के जीवन और कार्य की दशाए अत्यन्त गभीर थी। परतु 1975 तक स्थितियो मे आधारभूत परिवर्तन हुए है। श्रम आदोलन, श्रम विधान, श्रम कल्याण व सामाजिक सुरक्षा की योजनाओ ने श्रमिको की दशाओ मे उस समय की अपेक्षा काफी सुधार किया है। अत वर्तमान परिस्थितियो मे यह कहना

1. R K Mukherjee Indian Working Class, p 3.
2. U.N O : The *Processes and Problems of Industrialisation in* Underdeveloped Countries (1975)
3. Report of The Royal Commission on Labour in India, p 16.

अधिक उपयुक्त है कि प्रवास की प्ररणा शहर और गाव दोनो ही सिरा से प्राप्त होती है अर्थात मजदूर को केवल गाव ही धक्का नही देता बल्कि नगर भी अपनी तरफ खीचता है।

प्रवासी प्रवृत्ति के परिणाम

भारतीय श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति के अनक महत्वपूण आर्थिक और सामाजिक परिणाम निकले है जिनम सपूण समाज प्रभावित हुआ ह। नीच हम प्रवासी प्रवृत्ति क दुष्परिणामो और लाभो की सक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं—

1 **अस्थिर जीवन** प्रवासिता का परिणाम यह होता है कि श्रमिको का जीवन *अस्थिर हो जाता है। वे कभी शहरो म रहते हैं तो कभी गाबो म कभी उद्योग मे काय* करत है तो कभी कृषि कार्यों का प्रतिपादन करते हैं। इसस बेचारे श्रमिको का कोई स्थिर जीवन नही रहता। यह स्थिति सुखी स्वस्थ एव स्वाभाविक जीवन के लिए अहितकर है।

2 **निम्न जीवन स्तर** प्रवासी प्रवृत्ति का श्रमिको के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पडता है। इसके प्रमुख कारण है—(अ) श्रमिको को कठिन परिश्रम करना पडता है। (ब) उन्हे भरपेट पौष्टिक भोजन नही मिल पाता। (स) इनके काम करने की दशायें अस्वास्थ्यकर होती है। (द) ग्रामीण क्षत्रो की अपेक्षा नगरो की जलवायु भिन्न होती है। *(य) परिवार का वियोग उनक मन को व्यथित करता रहता है।* इन सब कारणो से श्रमिको का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। परिणामस्वरूप वह मानसिक रूप स अस्वस्थ एव चिताग्रस्त रहने लगता है।

3 **काय क्षमता मे ह्रास** जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है प्रवासी प्रवृत्ति के कारण श्रमिकों का स्वास्थ्य गिर जाता है और वे प्राय रोगग्रस्त रहते ह। इससे उनकी काय क्षमता स्वत ही घट जाती है। भारतीय औद्योगिक श्रमिकों की काय कुशलता घटने का एक कारण यह भी है कि व स्थायी रूप से एक निश्चित काय नही कर पाते उ ह अपने काय का प्रशिक्षण प्राप्त नही होता लेकिन जो कुछ प्रशिक्षण वे कारखाने मे *प्राप्त करते ह गाव म जाकर वह उन भूल जाता है क्योकि उसे उस काय को करने का* कोई अवसर नही मिलता। इसके अतिरिक्त गाव के साथ सपक होने व निरतर गाव वापस लौटने की अभिलाषा मे वे अपने व्यवसाय को ध्यानपूवक नही सीख पाते।

4 **नतिक पतन** प्रवासी प्रवृत्ति का एक दुष्परिणाम यह भी होता है कि इसम व्यक्ति और समाज का नैतिक पतन होता है। औद्योगिक केंद्रो के भिन्न जीवन गृह समस्या और महगा रहन सहन के कारण श्रमिक अपने परिवारो को साथ नही रखते। फलस्वरूप उ हें अपने आन द मे पारिवारिक जीवन से वचित होना पडता है। इसका श्रमिको की मानसिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पडता है। वे बुरी प्रवृत्तियो जैस जुआ शराब व वेश्यागमन के शिकार हो जाते ह। शहरो मे उन पर परिवार पडोसी या पचायत आदि किसी का भी नियत्रण नही होता और वे मनमाने तौर पर काय करने क लिए स्वतत्र होते है जिसका अतिम परिणाम यह होता है कि उनम चरित्रहीनता बढती है।

5 **श्रमिक और मालिक के बीच श्रेष्ठ सबधों का अभाव** श्रमिकों के बार-बार ग्रामो म चले जान के कारण सवप्रथम मालिको के समक्ष सदैव नये श्रमिको के प्रवध करने की समस्या बनी रहती है और द्वितीय, थोडे समय काय करने से न तो श्रमिक अपन मालिक को भली प्रकार समझ पाता है और न मालिक अपने श्रमिक को। फलस्वरूप श्रमिक और मालिक के बीच घनिष्ठ सबधो का पनपना तो दूर रहा उनमे बीच बीच म सघर्ष तक उत्पन्न हो जाता है।

6 **श्रम सघों के विकास मे बाधा** अपनी प्रवासी प्रवृत्ति के कारण श्रमिक अपन सगठना के कार्यों मे किसी प्रकार की रुचि नही लेते परिणामत न तो वे श्रम सघो को नियमित रूप मे चदा ही देते हैं और न उनको सुदृढ बनाने की दिशा मे ही कोई प्रय न करते हैं। यही कारण है कि भारतीय श्रम सघ आदोलन बहुत धीमी गति के साथ बढा है और इसका नेतृत्व बाहरी लोगों के हाथ मे रहा है।

7 **बेकारी और अद्ध बेकारी का भय** प्रवासिता मे बेकारी और अद्धबेकारी के बढन का भय रहता है। श्रमिक जब भी कारखानो म छुट्टी लेकर जाता है तो वह छुट्टी की समाप्ति पर अपने काम पर नही लौटता और छुट्टियो मे वृद्धि करना रहता है। जब वह एक लबी अवधि तक कार्य पर नही लौटता तो उसके स्थान पर नई नियुक्ति कर ली जाती है। फलत जब वह श्रमिक गाव म लौटकर आता है तो इस बात की कोई निश्चितता नही होती कि उसे फिर काय मिल ही जायेगा। यहा पर स्मरणीय है कि यदि श्रमिक स्थायी रूप से किसी स्थान पर रहे तो उसे बडी आसानी से रोजगार मिल सकता है।

8 **विशेष सुविधाओं से वचित** श्रमिको के कल्याण एव सुरक्षा के लिए उनकी अनेक सुविधाए हैं जिन्हे प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक एक निश्चित समय तक निरतर काय पर उपस्थित रहे। भारतीय श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति उन्हे इन सुविधाओ म वचित कर देती है। इसम मिल मालिको का तो लाभ होता है परन्तु श्रमिको के जीवन म सुधार नही होने पाता

9 **गाव का वातावरण दूषित होना** श्रमिक लोग कुछ समय शहरो म रहन के उपरात प्रवासी प्रवृत्ति के कारण गामो म लौटते हैं तो वे अपन साथ नगरीय जीवन की अनेक बुराइयों को साथ ले आते हैं। वे शहरो की शान शौकत व दिखावे म प्रभावित होकर गाव म जाकर उन्ही का अनुकरण करते हैं अन्य व्यक्ति भी उनका अनुकरण करते हैं। फलस्वरूप गाव का वातावरण दूषित हो जाता है।

10 **सामाजिक अनुकूलता मे बाधा** औद्योगिक नगरो म श्रमिक देश के विभिन्न भागो से आते हैं। फलत उनकी भाषा रहन सहन का तरीका और सस्कृति अलग अलग होता है। इन भिन्नताओं के कारण उनम साम य सगठन ना दूर रहा पारस्परिक मेल जोल भी नही पनप पाता। इससे श्रमिको के सामाजिक अनुकूलन की प्रक्रिया म बाधा उत्पन्न होती है।

11 **राष्ट्रीय उत्पादन मे बाधा** प्रवासी प्रवृत्ति के कारण राष्ट्रीय उत्पादन मे बाधा उत्पन्न होती है क्योंकि (अ) प्रवासिता के कारण उनकी **कुशलता और काय-**

क्षमता मे वृद्धि नही हो पाती, और (ब) औद्योगिक क्षेत्रो में यह अनिश्चितता बनी रहती है कि किस दिन कितने श्रमिक कार्य पर आयेंगे। राष्ट्र के आर्थिक हित की दृष्टि से ये दोनो ही परिस्थितिया हानिकारक है।

प्रवासी प्रवृत्ति के लाभ

औद्योगिक केंद्रो के कष्टमय जीवन अस्वास्थ्यप्रद वातावरण और निम्न मजदूरी इत्यादि की दृष्टि से प्रवासिता श्रमिको के लिए लाभदायक भी है। प्रवासिता के इन लाभो का निम्नलिखित शीर्षको के अतर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

1 **भूमि पर जनसख्या का कम दबाव** जनसख्या की अत्यधिक वृद्धि व जमीन के छोटे छोटे टुकडो मे बट जाने मे कृषि व्यवसाय अलाभकर हो गया है। परतु श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति के कारण गाव की जनसख्या का एक बहुत बडा भाग नगरो को चला जाता है। इस प्रकार भूमि पर जनसख्या का भार कम हो जाता है।

2 **कठिनाइयो से सुरक्षा** बीमारी, बेरोजगारी हडताल, वृद्धावस्था प्रसूतकाल, दुर्घटना आदि के समय जब श्रमिको की आय लगभग समाप्त हो जाती है तो गाव सुरक्षा के रूप मे काय करता है। गाव हर प्रकार से श्रमिको को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सुरक्षा प्रदान करता है।

3 **स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर** • प्रवासी प्रवृत्ति श्रमिको के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। श्रमिको के कभी कभी गाव चले जाने से उन्हें कम से कम कुछ समय के लिए नगरो के दूषित वातावरण से छुटकारा मिल जाता है उनकी थकान समाप्त हो जाती है काय की नीरसता दूर हो जाती है और शारीरिक आराम मिलने से काम करने की नई स्फूर्ति और शक्ति प्राप्त होती है।

4 **आर्थिक दशा मे सुधार** प्रवासिता से श्रमिक और उसके परिवार की आर्थिक दशा सुधरती है। जो श्रमिक शहरो मे कार्य करते हैं वे अपनी आय का कुछ भाग नियमित रूप से अपने परिवार को भेजते रहते हैं जिससे न केवल परिवार की आर्थिक स्थिति मे सुधार होता है बल्कि कृषि सबधी उन्नति भी सभव होती है। ऋण से दबे हुए अनेक श्रमिक नगरो म काय करके इस ऋण को उतारने मे सफल होते हैं।

5 **श्रमिको के जीवन-स्तर मे वृद्धि** नगरो मे काय करने वाले श्रमिका के रहन-सहन व वेश भूषा आदि का ग्रामवासियो पर बहुत प्रभाव पडता है और उनके मन मे भी अपने जीवन स्तर को ऊचा उठाने की तीव्र भावना जागृत हो जाती है। वे अपने उपभोग के स्तर को बढाने के लिए सक्रिय प्रयास भी करते हैं जिसमे स्वभावत उनके रहन सहन का स्तर बढता है।

6 **ग्रामीण क्षेत्रो मे नवीन विचारो का प्रवेश** ग्रामीण जगत अपने सकीर्ण और परपरागत जीवन पद्धति पर चलता है। परतु ग्रामीण क्षेत्रा स श्रमिक जब औद्योगिक क्षेत्रो मे जाते है तो वे औद्योगिक जगत के विचारो से प्रभावित होते हैं और उनका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है। जब वे अपने गाव मे पुन जाते हैं तो नगरीय जीवन के विचारो का ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रसार होता है। फलत ग्रामीण क्षेत्रो म रूढिवादिता व

अन्धविश्वास का ह्रास होता है तथा सामाजिक परिवर्तन और सुधार के लिए पृष्ठभूमि तैयार होती है।

7. श्रम की गतिशीलता में वृद्धि : प्रवासिता के कारण जब श्रमिको का औद्योगिक केंद्रो मे आना-जाना लगा रहता है तो इससे ग्रामीण क्षेत्रो के सभी श्रमिक प्रभावित होते हैं और श्रम की गतिशीलता मे वृद्धि होती है।

8 नगर व गांव के जीवन में समन्वय : श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति से गाव और नगरो के जीवन मे समन्वय स्थापित हो जाता है। यह समन्वय दोनो के लिए लाभदायक है। इससे ग्रामीण जीवन मे बाह्य जगत का आवश्यक ज्ञान आ जाता है। इसी प्रकार नगर निवासियो को भी भारतीय ग्रामीण जीवन की वास्तविकता का सही ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

क्या श्रमिकों को गांवो से सबध विच्छेद कर देना चाहिए ?

प्रवासिता के गुण-दोषो के विवेचन के उपरात स्वभावत यह प्रश्न उठता है कि भविष्य मे हमारी नीति क्या होनी चाहिए—औद्योगिक श्रमिको के गाव से सपर्क समाप्त करने के लिए प्रयत्न किये जायें और नगरो मे ही एक पूर्णतः स्थिर श्रम-शक्ति निर्मित की जाय अथवा गाव से सपर्क श्रमिकों और सेवायोजकों के लिए हितकर है इसलिए इसे प्रोत्साहित व नियमित किया जाय ? —ये दोनो ही प्रश्न विवादग्रस्त हैं जैसाकि निम्नलिखित विवेचन से स्पष्ट हो जाएगा।

श्रमिकों का गांव से सम्पर्क बनाए रखने का महत्त्व

इस सबध मे **श्रम के शाही आयोग** का मत है कि "निष्कर्ष चाहे कुछ भी रहे, उद्योगो को काफी समय तक गाव पर निर्भर रहना पडेगा और जिस दृढ़ता से बिना किसी प्रोत्साहन के श्रमिको ने गाव से अपना सपर्क बना रखा है, उससे यह स्पष्ट है कि इस व्यवस्था की जडें काफी दूर तक चली गई हैं···।"[1] इस तथ्य को दृष्टि मे रखते हुए **श्रम आयोग** ने यह सुझाव दिया है कि "वर्तमान परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए यह सपर्क एक विशेष महत्त्व रखता है। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि इसे समाप्त करने की अपेक्षा सुनियमित एव प्रोत्साहित किया जाय।"[2]

डॉ० राधा कमल मुखर्जी ने भी श्रमिकों के गाव से सपर्क बनाये रखने के पक्ष मे ही सुझाव दिया है। उन्होने रूस, बेल्जियम, हालैंड, जर्मनी व जापान आदि का उदाहरण देते हुए इस मत की पुष्टि की है कि श्रमिकों का गाव से सपर्क बनाये रखने के लिए उद्योगो का विकेंद्रीकरण करके उन्हे गाव के आस-पास स्थापित करना चाहिए।[3]

1. Report of The Royal Commission on Labour, p. 20
2. Ibid , p. 20.
3. R K. Mukherjee : Indian Working Class, p. 13.

उद्योगों पर ही आश्रित रहने वाले श्रमिकों का महत्त्व

इसके बिल्कुल विपरीत कुछ लोगों का विचार है कि देश में औद्योगिक इकाइयों को ठीक ढंग से कार्य करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिक स्थायी रूप से नगरों में निवास करें और एक सगठित श्रम शक्ति का निर्माण करते हुए अपनी तथा राष्ट्र की आर्थिक व सामाजिक प्रगति के कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से हाथ बटायें।

यदि भारत के औद्योगिक विकास के इतिहास का सिंहावलोकन करें तो हमें विदित होगा कि भारत में यदि स्थायी औद्योगिक श्रम शक्ति का निर्माण हो जाय तो इससे औद्योगिक श्रम की कार्य-क्षमता में वृद्धि होगी श्रमिकों व सेवायोजकों के सबंध श्रेष्ठ हो जायेंगे और देश में सुदृढ तथा शक्तिशाली श्रमिक सघों का जन्म होगा। भारत में कुछ बड़े बड़े औद्योगिक क्षेत्रों के विकास का इतिहास यह प्रदर्शित करता है कि किन किन घटकों के कारण उन क्षेत्रों में स्थायी श्रम शक्ति का निर्माण हुआ है। नगरों में स्थायी रूप से रहने के इच्छुक श्रमिकों की सख्या का अनुपात बहुत-सी आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है जैसे—(1) जो औद्योगिक क्षेत्र उन स्थानों के समीप होते हैं जहा जनसख्या अधिक होती है वहा के श्रमिक स्थायी रूप से उन औद्योगिक क्षेत्रों में बस जाते है। उदाहरण के लिए कानपुर, अहमदाबाद नागपुर व तमिलनाडु आदि नगरों में श्रमिक स्थायी इसलिए हैं क्योंकि ये उन क्षेत्रों से आये हुए है जहा कृषि पर जनसख्या का भार बहुत अधिक है और जहा भूमिहीन किसानों की सख्या अधिक है। (2) औद्योगिक केंद्र में श्रम उस समय भी स्थायी हो जाता है जब उस उद्योग की स्थापना किसी बिल्कुल नवीन क्षेत्र में की जाती है। जमशेदपुर दुर्गापुर और डिगबोई में प्रारंभ से ही श्रम स्थिर है क्योंकि इन नगरों को वनों की भूमि पर बसाया गया है। (3) श्रम में अब स्थायी रूप में बसने की प्रवृत्ति है। इस बात की पुष्टि औद्योगिक क्षेत्र में श्रम पूर्ति के लिए दूर के क्षेत्रों से आये हुए प्रवासी लोगों की अधिकता में होती है। उदाहरण के लिए अहमदाबाद पूना व उत्तर प्रदेश में बबई के सूती कपड़े के कारखानों में तथा कलकत्ता के कारखाने में पश्चिमी बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिलों से श्रमिक आये हुए है और उनमें स्थायी रूप से रहने की प्रवृत्ति है।

श्रम अनुसधान समिति[1] (1944) के विचार उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए अधिक उचित प्रतीत होते हैं। इस समिति के अनुसार श्रमिक दो प्रधान कारणों से गाव को जाते हैं—**प्रथम** तो यह है कि गाव एक ऐसा स्थान है जहा श्रमिक कुछ देर के लिए विश्राम कर सकता है और **द्वितीय** बात यह है कि गाव उसका सुरक्षा-स्रोत है। जहा तक पहली बात का प्रश्न है हमारे विचार में औद्योगिक श्रम को विशेष सुविधाए देकर जैसे सस्ते वापसी टिकट व छुट्टियों की व्यवस्था करके गाव को जाने देना चाहिए। ऐसा मजदूरों के स्वास्थ्य और कार्य क्षमता के लिए लाभदायक है। दूसरी ओर श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व गाव पर लादना उपयुक्त नहीं है। श्रेष्ठ

1 Labour Investigation Committee, pp 77-78

यह होगा कि श्रमिको के लिए गाव को आराम और मनोरजन का स्थान मानते हुए औद्योगिक नगरो की दशाओ मे उन्नति की जाय, श्रमिको के लिए आधुनिकतम सामाजिक सुरक्षा सबधी साधन, उत्तम मकान, उचित मजदूरी, अच्छे भोजन आदि की समुचित व्यवस्था की जाय तथा कारखानो मे कार्य करने की दशाओ को सुधारा जाय। यदि नगर का जीवन सुधर जाय, सामाजिक सुरक्षा, श्रम कल्याण, औद्योगिक आवास आदि सतोषजनक हो जाय तो गाव का प्रवास स्वत कम हो जायगा। इस सबध मे **अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन** काग्रेस का मत है "श्रम को स्थायी बनाने के लिए तथा श्रमिक के हितो की रक्षा करने के लिए पहली बात तो यह आवश्यक है कि हम औद्योगिक केंद्रो मे पर्याप्त आवास की व्यवस्था करें और दूसरे, श्रमिक की बीमारी, बेरोजगारी और बुढापे मे उसके लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करें ताकि वह जीवित रह सके।"

राष्ट्रीय श्रम आयोग के विचार[1] - सन् 1969 मे राष्ट्रीय श्रम आयोग ने इस प्रश्न पर पुन विचार किया कि क्या श्रमिको का गाव से सबध जुडा रहना चाहिए? राष्ट्रीय श्रम आयोग ने शाही आयोग (1930) और अनुसधान समिति (1944) के विचारो का अध्ययन किया और लिखा है कि विगत वर्षों मे आज के श्रमिक के रहन-सहन, प्रकृति एव दशा मे बहुत परिवर्तन हुआ है। श्रम आयोग ने आगे लिखा है "पिछले बीस वर्षों मे औद्योगिक श्रमिको की स्थिरता मे काफी सुधार हुआ है। आज का श्रमिक अपने दृष्टिकोण और अभिरुचि मे अपने पूर्वजो की अपेक्षा अधिक नगरीय है।"

विगत वर्षो मे श्रम के लिए उद्योगो की निर्भरता ग्रामीण क्षेत्रो पर कम होती गई है। नगरो की श्रम शक्ति का एक बडा भाग अब शहरो से ही प्राप्त होता है। राष्ट्रीय श्रम आयोग के शब्दो मे 'औद्योगिक नगरो जैसे बबई, पूना, दिल्ली, जमशेदपुर आदि के श्रमिको का सर्वेक्षण करने से विदित होता है कि प्रारभिक श्रमिको की प्रवृत्ति गाव को लौटने की अधिक थी, परतु बाद के मजदूरो की इच्छा शहरो और कारखानो से सबध बनाये रखने की है। इस बात पर आयु का भी प्रभाव पडता है। तरुण श्रमिको को शहर अधिक आकर्षित करता है।"[2]

अत भारत की वर्तमान आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियो के अतर्गत राष्ट्रीय श्रम आयोग के मतानुसार भविष्य मे श्रमिको को गाव से सबध बनाये रखने की आवश्यकता नही रह जाएगी। कारण यह है कि पुराने उद्योगो मे मजदूरो की चार पाच पीढिया काम कर चुकी हैं। नगरो मे जो बच्चे पैदा हुए या बडे हुए हैं उनका ग्रामीण क्षेत्र के प्रति कोई आकर्षण नही है। इसके अतिरिक्त उद्योगो की स्थिति मे भी सुधार हो रहा है और मजदूरो के प्रति अधिक न्याय किया जा रहा है। उनको अधिकाधिक सुविधाए, कल्याणकारी सेवाए तथा सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था मिलने लगी है। ऐसी स्थिति मे श्रमिको का गाव से सबध बनाये रखने की आवश्यकता का महत्व बहुत कम हो जाता है। अत उचित नीति यही होगी कि हम औद्योगिक नगरो म सुधार करें,

1 National Labour Commission, pp 31 32
2 Ibid, p 31

कारखानो मे कार्य परिस्थितिया उन्नत करें, मकान, वेतन व पौष्टिक भोजन आदि उपलब्ध करें व श्रमिको की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करें जिससे श्रमिक नगरो को अपना स्थायी निवास-स्थान मान सके और सुखी समृद्ध तथा प्रगतिशील नागरिक के रूप मे राष्ट्र की आर्थिक प्रगति मे महत्त्वपूर्ण योगदान कर सके।

परीक्षा-प्रश्न

1 "भारतीय श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति" का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा देश मे पाई जाने वाली प्रवासी प्रवृत्ति के लाभ और दोष बतलाइये।

2. "भारतीय औद्योगिक श्रमिको की महत्त्वपूर्ण विशेषता है प्रवासी प्रवृत्ति—इस दृष्टिकोण से कि भारतीय श्रमिक अपने काम करने के स्थान को अपना स्थायी निवास स्थान स्वीकार नही करता।" (सक्सेना)। उपर्युक्त वाक्य की व्याख्या कीजिए तथा इस सबध मे प्रवासी प्रवृत्ति के स्वरूप तथा उसके कारणो पर प्रकाश डालिए।

3. भारतीय श्रमिक के प्रवासी चरित्र के स्वभाव और कारणो का वर्णन कीजिए। क्या इस पर हाल के औद्योगिक विस्तार की कोई टक्कर है ?

4 "भारत के औद्योगिक श्रम के चारित्रिक गुणो मे एक गुण यह है कि वह अधिकाशत प्रवासी स्वभाव का है।"
उक्त कथन को पूर्णतया स्पष्ट कीजिये।

5 "भारतीय फैक्टरी के लगभग सभी काम करने वाले प्रवासित हैं।" प्रवासिता के कारणों और इसके प्रभावो का वर्णन करते हुए इस कथन को स्पष्ट कीजिए। हाल ही के समय मे यह किस प्रकार से स्थायी खानगी, जैसाकि पश्चिम म हो रहा है, बनने के लिए झुक चुका है ?

6 गावो से पृथक् औद्योगिक जनसख्या के निर्माण हेतु प्रयास करना चाहिए अथवा गावो से श्रमिको के विद्यमान सपर्क को बनाये रखना तथा प्रोत्साहित करना चाहिए।' तर्कसगत उत्तर दीजिए।

7 यह कथन कहा तक सत्य है कि "भारतीय श्रमिक औद्योगिक केंद्रो की ओर आकर्षित नहीं होते वरन् ढकेले जाते हैं।" क्या ग्रामीण क्षेत्रो के साथ उनका यह सपर्क (अ) भारतीय श्रमिको, तथा (ब) भारतीय उद्योगो के लिए उपादेय है ?

8 "हमारे विचार से एक स्थायी श्रम शक्ति प्राप्त करने तथा औद्योगिक श्रमिको के हितो की सुरक्षा के लिए प्रथमत औद्योगिक केंद्रो मे उनके लिए पर्याप्त आवास की व्यवस्था होनी चाहिए तथा दूसरे, बीमारी, बेरोजगारी व वृद्धावस्था की अवस्था के लिए भी कुछ प्रावधान होना चाहिए।" उपरोक्त कथन के प्रकाश मे एक स्थायी श्रम-शक्ति प्राप्त करने के लिए अपने सुझाव दीजिए।

अध्याय 4

अनुपस्थितता व श्रम परिवर्तन की समस्या

(Problem of Absenteeism and Labour Turnover)

अनुपस्थितता का अर्थ साधारण बोलचाल की भाषा मे अनुपस्थित से हमारा अभिप्राय बिना सूचना दिये काम पर न आना है। लेकिन उद्योगो मे अनुपस्थित शब्द बड ही सकुचित अर्थो मे प्रयोग होता है। अनुपस्थितता की कुछ प्रचलित परिभाषाए निम्नलिखित हैं—

1 **जे० डी० हैकट** 'अनुपस्थितता से तात्पर्य अस्थायी रूप से काम के रुक जाने से है जिसकी अवधि कम-से-कम एक दिन की अवश्य होनी चाहिए विशेषत उस दिन जबकि श्रमिक के काम पर आने की अपेक्षा की जाती है।'[1]

2 **प्रो० अकालिकार** "अपने कार्य से अनुचित या अनधिकृत रूप से अनुपस्थित हो जाना ही अनुपस्थितता कहलाती है।'[2]

3 **के० जी० फेनेलन** 'जब कार्य हो तब कार्य पर न आना अनुपस्थितता कहलाता है।[3]

4 **श्रम विभाग का परिपत्र** 'अनुपस्थितता की दर कुल श्रमिक कार्यो का वह प्रतिशत है जिनमे कार्य नही हो पाता।''[4]

परिभाषाओं का परीक्षण उपर्युक्त मतो मे श्री फेनेलन और प्रो० अकालिकार के मत अत्यत विस्तृत और अस्पष्ट हैं। इन विद्वानो ने अनुपस्थितता को अन्य दूसरे प्रकार के कार्यों मजदूरी और उत्पादन की हानि से पृथक नही किया है। श्री हैकट और भारत सरकार के श्रम विभागीय परिपत्र मे वर्णित परिभाषा श्रेष्ठतम प्रतीत होती है।

अनुपस्थितता की निम्नलिखित विशेषताए हैं—

1 श्रमिक कार्य पर उपस्थित होने के लिए अनुसूचित होने के बावजूद भी अनुपस्थित रहता है।

1 Absenteeism is 'temporary cessation of work, for not less than one whole working day, on the initiative of the worker, when his presence is expected "
2 Abs-nteeism is "unauthorised absence of the worker from his job "
3 Absenteeism is "absence from work when work is available "

2. यह अनुपस्थितता अनधिकृत होती है।
3. यह अनुपस्थितता स्वेच्छा पर आधारित होती है।
4. इस अनुपस्थितता का उचित कारण श्रमिक द्वारा स्पष्ट नहीं किया जाता है।
5. सार्वजनिक छुट्टियों मे न उसे अनुपस्थित मानना चाहिए और न कार्य के लिए आपेक्षित।
6. अनुपस्थितता को रोका जा सकता है।

अनुपस्थितता की माप

भारत मे विभिन्न कारखानो मे अनुपस्थितता का अनुमान लगाने के लिए अलग-अलग प्रणालियो का सहारा लिया जाता है। यही नही, अलग-अलग स्थानो तथा एक ही उद्योग की विभिन्न इकाइयो मे भी अनुपस्थितता निकालने की अलग-अलग पद्धति प्रचलित है। सक्षेप मे, भारत मे अनुपस्थितता का सही अनुमान लगाने के लिए किसी निश्चित सिद्धात को नही अपनाया जाता।

अनुपस्थितता की सीमा के सबध मे कोई भी सांख्यिकीय अनुमान लगाने मे मुख्य कठिनाई यही सामने आती है कि केवल इसी बात से अनुपस्थितता की दर मालूम नही की जा सकती कि श्रमिक कार्य पर नही आया। ऐसी स्थिति मे तीन सभावनाए हो सकती हैं—(अ) श्रमिक को कार्य पर आने मे विलम्ब हो जाय, (ब) वह अनुपस्थित हो जाय, व (स) कार्य छोड दे। अतः जब तक समय हानि के सबध मे निश्चित नीति का निर्धारण नही किया जायेगा तब तक अनुपस्थितता की दर का सही अनुमान नही लगाया जा सकता। इस सदर्भ मे शाही आयोग के शब्दो को उद्धृत करना उचित होगा—"अनुपस्थित एक जटिल शब्द है जिसमे कितने ही कारणो से होने वाली अनुपस्थिति सम्मिलित है। सभवतः कुछ ऐसे प्रबधक हो जो पहले से ही यह बतला सकें कि कौन-से श्रमिक कार्य पर नही हैं, इसलिए नही हैं कि वे इधर-उधर टहलने गये है या बीमार हैं या छुट्टी पर गये हैं और फिर लौट आयेंगे। इसलिए वे श्रमिक भी जो छोडने के मन से नही गये, अनुपस्थित समझे जा सकते हैं।"[1]

श्रमिको की अनुपस्थितता की प्रतिशत दर का सही व विश्वसनीय माप करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जा सकता है—

$$\text{अनुपस्थितता की दर} = \frac{\text{मानवीय घटो (पालियो) का नुकसान}}{\text{सपूर्ण नियोजित अथवा अनुसूचित कार्य के मानवीय घटे (पालिया)}}$$

अनुपस्थितता का माप करते समय कुछ अन्य ध्यान देने योग्य बातें इस प्रकार है—(1) यदि कोई श्रमिक कारखाने मे थोडे समय के लिए उपस्थित होता है तो उसे अनुपस्थित श्रमिको की श्रेणी मे नहीं गिनना चाहिए। (2) हडताल या तालाबदी की

1. Report of The Royal Commission on Labour in India

दशा मे श्रमिको को अनुपस्थित नही समझना चाहिए क्योंकि हड़ताल आदि के आकड़े अलग से एकत्र किये जाते हैं। (3) एक ऐसा श्रमिक जो बिना सूचना दिये हुए नौकरी छोड देता है उसको निर्धारित कार्य से उस समय तक अनुपस्थित समझना चाहिए जब तक सक्रिय सूची से उसका नाम हटा नही दिया जाता। (4) एक ऐसा श्रमिक जो अपने सेवायोजक की आज्ञा से छुट्टी पर है, उसको न तो कार्य हेतु निर्धारित ही समझना चाहिए और न अनुपस्थित ही। (5) श्रमिक को कार्य के लिए अपेक्षित तब मानना चाहिए जब (अ) उनके लिए कार्य हो (ब) श्रमिक को यह ज्ञात हो कि उसके लिए कार्य है, (स) सेवायोजक को यह पहले से अनुमान न हो कि वह श्रमिक कार्य पर नही आयेगा। यदि व्यवसाय मे मदी के कारण सेवायोजक के पास कार्य नही है और इस बात की सूचना दी जा चुकी है तो वे कार्य के लिए निर्धारित अथवा अनुपस्थित नही समझे जायेंगे। किसी नियमित श्रमिक के चार दिन तक न आने की दशा मे यदि सेवायोजक के द्वारा स्थानापन्न श्रमिक रख लिया जाता है तो सेवायोजक के दृष्टिकोण से भले ही अनुपस्थित न समझा जाय किंतु अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह अनुपस्थित ही है क्योंकि स्थानापन्न श्रम शक्ति को ध्यान में नही रखा जा सकता।

भारत मे अनुपस्थितता की सीमा

अन्य देशो के श्रमिको की अपेक्षा भारतीय श्रमिक मे अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति अधिक है, जिसके कारण भारतीय उद्योगो मे अपेक्षाकृत अनुपस्थितता की दर भी ऊची होती है। खेद का विषय है कि भारत मे औद्योगिक अनुपस्थितता के विषय मे विश्वसनीय आकड़े उपलब्ध नही हैं। महत्वपूर्ण केन्द्रो के चुने हुए उद्योगो के आकड़े लेबर ब्यूरो, कुछ राज्य सरकारो के खानो के मुख्य निरीक्षक के कार्यालय के द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं। उत्तर भारत का मिल मालिक सघ भी कानपुर के कुछ उद्योगो की अनुपस्थितता के आकड़े तैयार करता है। उन आकडो को छोड़कर कोयला खानो को एकत्र करना पड़ता है जो खनिज नियम के अतर्गत आती हैं। शेष अनुपस्थितता के आकड़े इन ऐच्छिक विवरणियो द्वारा प्राप्त होते हैं जो सेवायोजक देते हैं।

इडियन लेबर ईयर बुक, लेबर गजट व अन्य प्रकाशनो के अनुसार सन् 1980 मे अनुपस्थितता प्रतिशत विभिन्न उद्योगो मे इस प्रकार थे—

सारणी—1

उद्योग केन्द्र	अनुपस्थितता प्रतिशत
1 बागान (मैसूर)	22 9
2 कोयला खानें (समस्त भारत)	13 0
3 सोने की खानें (मैसूर)	15 4

सूती वस्त्र मिल—	
बम्बई	19.0
अहमदाबाद	15 0
मदुराई	16.3
कानपुर	16 7
5 ऊनी मिलें—	
कानपुर	12 6
धारीवाल	14 4
6 इंजीनियरिंग उद्योग—	
बम्बई	16 7
पश्चिमी बंगाल	16 7
मैसूर	17 2

अनुपस्थितता के कारण
(Causes of Absenteeism)

यद्यपि भारत के विभिन्न उद्योगों मे अनुपस्थितता के कारण अलग-अलग हैं किंतु कुछ सामान्य कारण जो लगभग सभी उद्योगों व औद्योगिक केन्द्रों मे विद्यमान हैं, निम्नलिखित हैं—

1 **गाव से सबध** भारतवर्ष मे कारखानो मे कार्य करने वाले अधिकतर श्रमिक समीपवर्ती गावो से आते हैं और काम करने के बावजूद भी उनके ग्रामो के साथ सबध इस स्तर के बने रहते हैं कि उन्हें अनेक प्रकार के उत्तरदायित्व निभाने के लिए गावो मे पुन जाना पडता है। गावों मे होता है उनका परिवार, खेती-बाडी मित्र व बन्धु इत्यादि। इस सबका आकर्षण ही उन्हें गांव लौटने के लिए विवश करता है। इसके अतिरिक्त काम करने की थकान व असतोषजनक दशाए, भिन्न जलवायु तथा खाने-पीने का उचित प्रबध न होना इत्यादि घटक भी इस अभिलाषा को और भी बलवती बना देते हैं।

बम्बई मे किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार 47% मजदूर वर्ष मे एक बार गाव जाते हैं, 38% दो बार और 6% तीन बार गाव जाते हैं।

2 **काम की प्रकृति** : कारखानो मे अधिकाश श्रमिक ग्रामीण क्षेत्र स आते हैं। गाव का प्राकृतिक वातावरण उन्हें शहरो मे नही मिल पाता है फिर कार्य की प्रकृति व कार्य की दशाए अत्यन्त सोचनीय होती हैं। लगातार मशीनो पर घटो कार्य करने के कारण उनका जीवन भी यत्रवत् हो जाता है। श्रमिक एक विचित्र थकावट का अनुभव करने लगता है जो कई दिनो तक एक ही प्रकार की दिनचर्या मे अरुचि मे बदल जाती है। साथ ही जैसे-जैसे श्रम-विभाजन का विस्तार होता है वैसे-वैसे उत्पादन

प्रक्रियाए कम रुचिपूर्ण होती चली जाती हैं। प्रो० विलियम्स ने इस सबध मे लिखा है "अनुपस्थिति इस कारण होती है कि श्रमिको को एक अपरिचित उद्योग मे नये प्रकार से काम करने के समय समायोजन की कठिनाई होती है।" प्रो० विलियम्स ने आगे लिखा है "अनुपस्थिति की प्रकृति उन श्रमिको मे सबसे अधिक देखने को मिलती है जिन्हे फैक्टरी अनुशासन की आदत नही है।"

3 सामान्य व औद्योगिक बीमारी अधिकाश स्थानो पर बीमारी ही अनुपस्थितता का मुख्य कारण है। लेबर ब्यूरो द्वारा प्रकाशित अको से स्पष्ट है कि भारत मे लगभग 4% अनुपस्थिति बीमारी की वजह से थी। अतर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा सघ के अनुसार बीमारी के कारण अन्य देशो मे अनुपस्थितता की दर इस प्रकार है—

कनाडा	1 1	सयुक्त राज्य अमेरिका	1 9
इटली	2 6	बेल्जियम	3 2

खराब और अपर्याप्त भोजन, दोषपूर्ण गृह व्यवस्था, गदगी, काम करने की सोचनीय दशाए गरीब श्रमिको को अनेक महामारियो, जैसे—मलेरिया, हैजा, पेचिस, चेचक आदि का सरलता से शिकार बना देती हैं। न केवल श्रमिक की अपनी बीमारी ही अनुपस्थिति का कारण बनती है बल्कि उसके परिवार मे किसी भी सदस्य के अस्वस्थ हो जाने पर वह अनुपस्थित हो ही जाता है क्योकि इससे मन चिन्तित तो रहता ही है, कभी कभी डाक्टर के पास जाने, दवाई लेकर लौटने में भी विलम्ब हो जाता है। इन बातो को ध्यान मे रखकर कुछ उद्योगो ने अपने यहा उचित चिकित्सा की व्यवस्था की है लेकिन फिर भी बहुत-से श्रमिक बीमारी का झूठा बहाना करके भी अनुपस्थित होते पाये गए हैं।

4 बुरी आवास व्यवस्था बडे-बडे औद्योगिक केन्द्रो मे जनसख्या की अधिकता के कारण आवास की समस्या काफी गभीर है। मकानो के किराये बडे ऊचे हैं जिनको एक निर्धन श्रमिक सहन नही कर पाता। उचित आवास सबधी सुविधाए उपलब्ध न होने के कारण श्रमिक परिवार को गाव मे ही छोड जाता है। परिवार के गाव मे होने के कारण वह समय-समय पर अपने बच्चो से गाव मे मिलने जाता रहता है जिससे उसे काम से अनुपस्थित रहना पडता है। एक अनुमान के आधार पर केवल मकान की अच्छी व्यवस्था करने से अनुपस्थितता की दर 4% घटाई जा सकती है।

5 दुर्व्यसन उचित आवास सबधी सुविधाए उपलब्ध न होने के कारण श्रमिक अपने परिवारो के सदस्यो से दूर शहर मे एकाकी जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो जाता है और इसके फलस्वरूप वह शराब, जुआ व वेश्यावृत्ति जैसे दुर्व्यसनो का शिकार होता है। रात्रि जागरण चाहे वह जुए मे हो या मदिरापान मे या वेश्यावृत्ति मे, अगले दिन काम मे बाधा पहुचाता है। यह देखा गया है कि वेतन के दिन उपस्थिति सबसे अधिक होती है और उसके अगले दिन सबसे कम।

6 दुर्घटनाए : भारत मे कारखानो के अदर कार्य करने के स्थान पर सुरक्षा का उचित प्रबध नही रखा गया है। थोडे स्थान में सैंकडो व्यक्ति कार्य करते हैं। मशीनें भी पुराने प्रकार की हैं। इस कारण अधिक दुर्घटनाए होती हैं। दुर्घटनाग्रस्त

होने पर श्रमिक अनुपस्थित होने पर बाध्य हो जाता है।

7 **जलवायु परिवर्तन** भारत मे जलवायु के कारण भी श्रमिक को कठिनाई होती है। यहा अप्रैल से जून के 3 महीनो मे भीषण गर्मी रहती है। ऐसी अधिक गर्मी मे कारखानो के भीतर कार्य करना व गदी श्रम बस्तियो मे रहना श्रमिको के लिए कठिन हो जाता है। फलस्वरूप इन दिनो प्राय श्रमिक गाव चले जाते हैं।

8 **सामाजिक अथवा धार्मिक सस्कार** भारतवर्ष पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के बावजूद आज भी परपराओ व सकीर्णताओ स ग्रस्त है। धार्मिक और सामाजिक आवश्यकताओ का अशदान श्रमिको की अनुपस्थिति मे भी महत्वपूर्ण है। विवाह, शादी, जन्म व मृत्यु आदि सामाजिक व धार्मिक अवसरो के समय श्रमिको की अनुपस्थिति बढ जाती है।

9 **महाजन से छुटकारा** भारतीय श्रमिक का जीवन निर्धनता के कारण सदैव ऋण से दबा रहता है। पठान और महाजन उनसे ऋण का तकाजा करने के लिए कारखाने के दरवाजे तक आ जाते हैं। अत कभी-कभी इन लोगों को निर्दयता स बचने के लिए भी श्रमिक काम पर नही जाता।

10 **जॉबर का अनुचित व्यवहार** श्रमिको का जॉबर द्वारा किये गए विभिन्न प्रकार के अत्याचार भी श्रमिको को कार्य पर जाने के लिए हतोत्साहित कर देते हैं जिससे श्रमिक कुछ दिनो के लिए अनुपस्थित रहते हैं।

11 **आराम** लगातार एक ही प्रकार का कार्य करता हुआ श्रमिक अपने जीवन मे एकरसता का अनुभव करने लगता है और इस कष्टदायक एकरसता स मुक्ति पाने के लिए जान बूझकर कार्य पर नही आता।

12 **मानसिक असतुलन** मानसिक असतुलन और अनुपस्थिति मे भी घनिष्ठ सबध हे। परतु इस तथ्य की हमारे देश मे उपेक्षा की गई है। **श्री दुर्गानन्द सिन्हा** ने अपने अध्ययन मे यह पाया है कि 'अधिक अनुपस्थित रहने वाले श्रमिको के समूह मे बहुत-से व्यक्ति मानसिक तनाव से भी पीडित थे। यह असतुलन जन्मजात भी हो सकता है। इस प्रकार के व्यक्ति न केवल काय मे, बल्कि परिवार व समाज मे भी अपने को अच्छी प्रकार नही मिला सकते। अनुपस्थिति इसका ही एक परिणाम है।'

13 **अन्य कारण** कार्य पर न आने के अनेक अन्य कारण भी हो सकते हैं जैसे—(अ) पारिवारिक कलह, (ब) रात्रि पालियो म काय करना, (स) यातायात की हडताल व न मिलना (द) कट्रोल जोन की समस्या, (य) बच्चो को स्कूल मे भर्ती कराना, व (र) मुकदमे की तारीख का होना।

भारत के कुछ निर्माण उद्योगो मे अनुपस्थितता के कारण सबधी प्रतिशत सारणी न० 1 मे दर्शाये गये हैं। (सारणी न० 2 अगले पृष्ठ पर देखिये)।

सारणी न० 2 के अको से स्पष्ट है कि श्रमिको की अनुपस्थितता के अनेक कारण हैं परतु इन सब कारणो मे बीमारी, दुर्घटना व सामाजिक तथा धार्मिक उत्सव आदि अधिक महत्वपूर्ण हैं।

सारणी—2 अनुपस्थितता के कारण

उद्योग	बीमारी दुर्घटना	सामाजिक धार्मिक	अन्य	वेतन सहित	वेतन रहित	कुल
लोह व इस्पात (बिहार)	29	06	88	81	42	123
आर्डीनेन्स (उ० प्र०)	66	19	39	87	37	124
सीमेंट (बिहार)	28	41	47	85	31	116
दियासलाई (महाराष्ट्र)	27	06	79	54	58	112
सूती वस्त्र (मद्रास)	48	07	47	38	64	102
(मदुराई)	35	29	72	31	105	136
ऊनी मिल (धारीवाल)	39	20	61	61	76	120

अनुपस्थितता के दुष्परिणाम

श्रम जाच समिति ने अनुपस्थितता से होने वाली हानियो का विवरण देते हुए लिखा है अनुपस्थितता से दोनो ही पक्षो को हानि होती है श्रमिक की जहा आय घटती है उत्पादक अनुशासनहीनता व अनियमितता के कारण हानि उठाता है। अनुपस्थितता के दुष्परिणामो को हम निम्नलिखित शीर्षको के अतगत कर सकते हैं-

1. **श्रमिको के लिए हानि** उद्योगो मे प्राय सामान्य नियम यह होता है कि मजदूरी केवल उन्ही श्रमिको को दी जाती है जो काय पर आते है। इसलिए अनुपस्थिति काल मे श्रमिको की आय समाप्त हो जाती है, उसके स्वास्थ्य एव भोजन का स्तर पहले से ही गिरा हुआ होता है। अत आय कम होने से स्वास्थ्य मे किये गये व्यय मे और कमी आ जाती है।

अधिक समय तक अनुपस्थित रहने पर उन श्रमिको को केवल आय की ही हानि सहन नही करनी पड़ती, बल्कि कभी कभी रोजगार से भी हाथ धोना पडता है। **श्री वी० वी० गिरि के शब्दो म** लगातार और अकारण अनुपस्थिति से अभिप्राय रोजगार से वचित हो जाना समझना चाहिये।"

अनुपस्थितता के कारण **श्रमिक सघ आंदोलन** भी कमजोर हो जाता है क्योकि नियमित रूप से काम करने वाला और शहर मे रहने वाला मजदूर ही श्रमिक सघ के सपर्क म रह सकता है। बार बार गाव जाने से सपर्क टूट जाते हैं।

2 सेवायोजक को हानि : श्रमिको की अनुपस्थितता से सेवायोजको को और भी हानि होती है। सेवायोजक को निम्न दो प्रकार स हानि सहन करनी पडती है—

(अ) उत्पादन में कमी : अनुपस्थितता से उद्योग का कार्य अस्त व्यस्त हो जाता है और उससे उत्पादन घटता है। प्राय अनुपस्थित श्रमिको के स्थान पर अन्य श्रमिक रखे जाते हैं जो अनुभवहीन होते हैं जिसका अतिम परिणाम कुल उत्पादन मे कमी होना होता है। यह भी सभव है कि उद्योगपति को आवश्यकतानुसार अन्य श्रमिक न मिल सके तो ऐसी स्थिति मे उद्योग मे श्रमिको की कम सख्या रह जाने से उद्योग के उत्पादन की कुल मात्रा मे कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त अधिक समय तक अनुपस्थित रहने के कारण श्रमिक का कार्य करने का अभ्यास छूटता है और उसकी उत्पादकता घटती है।

(ब) अतिरिक्त श्रमिकों पर निर्भरता अनुपस्थितता की ऊची दर के कारण सेवायोजको को अतिरिक्त मजदूरो की पक्ति रखनी पडती है जिसमे से वे आवश्यकता पडने पर बदली मजदूरो को रख सकें। अतिरिक्त श्रमिको अथवा श्रमिको की द्वितीय पक्ति को बनाये रखने के लिए कभी-कभी सेवायोजक नियमित मजदूरों को अनिवार्य छुट्टी देने के लिए विवश करते हैं। इस प्रवृत्ति का श्रमिको द्वारा विरोध होता है क्योकि उन्हे इस बात की आशका होती है कि हडताल की परिस्थितियो मे मुकाबला करने के लिए एक दूसरी रक्षा पक्ति तैयार की जा रही है।

3 अनुशासन मे बाधा किसी भी कार्य को सुचारु रूप से सचालित करने के लिए काम करने वालो एव काम लेने वालो के बीच अनुशासन का होना बहुत आवश्यक है। यदि श्रमिक अपने कार्य से अनुपस्थित रहते हैं तो काम मे अनुशासनहीनता आ जाती है जिसके फलस्वरूप सबधित उद्योग के प्रबध व उत्पादन मे कठिनाइया उत्पन्न हो जाती हैं। औद्योगिक अनुशासनहीनता से सपूर्ण समाज पर बुरा प्रभाव पडता है।

4 सेवायोजकों और श्रमिकों के बीच सघर्ष बढ़ना यदि श्रमिक अपने कार्य स अनुपस्थित रहते हैं तो सेवायोजक को काफी हानि सहनी पडती है। फलत श्रमिको की बढती अनुपस्थिति को देखकर सेवायोजक कडा व्यवहार करने लगते हैं। श्रमिक सेवायोजकों की इस नीति का घोर विरोध करते है जिसके कारण दोनो वर्गों के बीच सघर्ष बढता है और सबध बिगडने लगता है।

अनुपस्थितता को रोकने के उपाय

उद्योगो मे श्रमिको की अनुपस्थिति की समस्या सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो का मिला जुला परिणाम है। श्री टी० एल० ए० आचार्य लिखते हैं: 'उद्योगो मे काम से अनुपस्थितता इस बात की द्योतक है कि समाज मे बहुत अधिक बुराइया आ गई हैं।'[1] अत अनुपस्थितता की समस्या का समाधान आर्थिक दृष्टिकोण से इतना

1 T L A Acharya Do not punish the Absentee but Recreat Society Planning for Labour.

महत्त्वपूर्ण नही है जितना कि सामाजिक दृष्टिकोण से अनुपस्थितता की प्रवृत्ति को रोकने के विषय पर समय-समय पर नियुक्त की गई श्रम जाच समितियों ने विचार किया है। अनुपस्थितता को यद्यपि बिल्कुल समाप्त नहीं किया जा सकता परन्तु काफी मात्रा मे कम किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं—

1. **श्रम कल्याण** अनुपस्थितता को कम करने के लिए खेल-कूद, मनोरजन, पुस्तकालय इत्यादि के द्वारा श्रमिको को स्वस्थ और प्रसन्न रखा जा सकता है जिससे वे कार्य के भार को कम अनुभव करें।

2 **उचित आवास व्यवस्था :** एक अनुमान के अनुसार अनुपस्थितता मे लगभग 4% की कमी केवल उचित आवास व्यवस्था के द्वारा लाई जा सकती है।

3 **उचित पारितोषण** श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी दी जानी चाहिए जिससे उनको ऋण लेने की आवश्यकता न रहे। श्रमिको की आय मे वृद्धि होने से उनकी कारखाने मे कार्य करने की अभिरुचि बढेगी जिसके परिणामस्वरूप अनुपस्थितता की दर मे स्वाभाविक रूप से कमी आ जायगी।

4 **कार्य की परिस्थितियो मे उचित परिवर्तन .** कारखाने की कार्य की परिस्थितियो मे सुधार किया जाना चाहिए जिससे श्रमिक को कार्य की थकान कम अनुभव हो। जिस स्थान पर श्रमिक कार्य करता है वहा सफाई, रोशनी, वायु आदि का उचित प्रबध होना चाहिए।

5 **छुट्टी की उचित व्यवस्था** कार्य करने की अयोग्यता के समय श्रमिक के लिए छुट्टी की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए और उसे विश्राम पाने की सुविधा दी जानी चाहिए।

6 **अन्य सुझाव** (अ) औद्योगिक दुर्घटनाओ और बीमारी से श्रमिक वर्ग की रक्षा की जानी चाहिए। (ब) श्रमिको को कुछ शिक्षा देकर भी उनको अपने उत्तरदायित्व को समझाकर अनुपस्थित न रहने की प्रवृत्ति बढाई जा सकती है। (स) जॉबर द्वारा होने वाले दुर्व्यवहारो से श्रमिको की रक्षा की जानी चाहिए। **बबई श्रम जाच समिति**[1] के अनुसार अनुपस्थितता को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं—(क) कारखानो मे काम करने की दशाए सुधारी जायें। (ख) श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी दी जाय। (ग) बीमारी एव दुर्घटना से बचाव की व्यवस्था की जाय। (घ) आराम के लिए अवकाश लेने की सुविधा दी जाए।

श्रमिको के हेर-फेर या परिवर्तन की समस्या
(Problem of Labour Turnover)

आशय . एक निश्चित समय के अदर एक उद्योग सस्था मे काम करने वाले कर्मचारियो के परिवर्तन की गति को **श्रम परिवर्तन** कहा जाता है। अन्य शब्दो में उद्योग की सस्था मे काम करने वाले पुराने कर्मचारियो को काम छोड़कर चले जाने

1 Bombay Textile Labour Enquiry Committee Report, p 346.

और नये कर्मचारियों के काम करने के लिए उद्योग मे प्रवेश करने की सीमा का माप ही श्रम परिवर्तन है। श्रम जाच समिति ने श्रम परिवर्तन की परिभाषा करते हुए लिखा है : "किसी निश्चित अवधि मे किसी मिल मे श्रमिको की सख्या मे होने वाले परिवर्तन की दर से श्रम परिभाषित किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे, यह एक प्रकार से पुराने श्रमिको के किसी उद्योग की सेवा त्यागने व नवीन श्रमिकों के भर्ती होने की मात्रा की माप है।"[1]

किसी कारखाने मे जिस दर पर कर्मचारी कार्य छोडकर दूसरे कारखाने आदि मे चले जाते हैं वह श्रम परिवर्तन की दर कहलाती है। उदाहरणार्थ, यदि एक कारखाने मे 100 मजदूरो मे से 10 मजदूर कार्य छोड देते हैं और उनके स्थान पर 10 नये मजदूर रखने पडते हैं तो श्रम परिवर्तन की दर 10 होगी।

श्रम परिवर्तन और अनुपस्थितता मे अतर

श्रम परिवर्तन और अनुपस्थितता दोनो मे अतर है। अनुपस्थितता मे श्रमिक कार्य पर नही आता, पर कार्य छोडता नही है जबकि श्रम परिवर्तन की दशा मे किसी विशेष अवधि मे पुराने श्रमिक कार्य छोडकर चले जाते हैं और उनके स्थान पर नये श्रमिको की भर्ती कर ली जाती है। इस प्रकार श्रम परिवर्तन के दो पहलू हैं—**प्रथम,** कार्य छोडकर जाने वाले श्रमिको का अनुपात और, **द्वितीय,** कार्य पर नियुक्त किये जाने वाले नये श्रमिको का अनुपात।

श्रम परिवर्तन के कारण

भारत मे श्रम परिवर्तन के विभिन्न कारणो पर प्रकाश डालते हुए **श्रम जाच समिति** ने कहा था कि "श्रमिक परिवर्तन अधिकतर दिये गये त्याग-पत्रो के द्वारा ही सभव होता है, नौकरी से अलग किये जाने के उदाहरण यद्यपि प्राप्त होते हैं परन्तु कम मात्रा मे।"

भारत मे श्रम परिवर्तन की ऊची दर के लिए अनेक घटक उत्तरदायी है जो समय, परिस्थिति, देश, व्यवसाय तथा कारखाने विशेष के मालिक व प्रबधक के स्वभाव आदि पर निर्भर करते हैं, परतु उनमे से कुछ प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं—

1 **प्राकृतिक कारण** श्रम परिवर्तन मे प्राकृतिक कारण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन कारणों के अतर्गत उन घटको का समावेश किया जाता है जिनके परिणामस्वरूप श्रमिको को अनिवार्य रूप से कार्य छोडना पडता है, जैसे श्रमिकों की मृत्यु, दुर्घटनाओ के परिणामस्वरूप उनका काम करने के लिए अयोग्य हो जाना। आयु अधिक हो जाने पर भी कार्य करना कठिन हो जाता है।

2. **श्रमिको द्वारा त्याग-पत्र देना :** जब श्रमिक कार्य छोडकर चले जाते है अथवा त्याग-पत्र दे देते हैं, तब भी श्रम परिवर्तन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

1. Labour Investigation Committee, Main Report, p. 101.

श्रमिक प्राय निम्नलिखित बातो के कारण त्याग पत्र देते हैं (अ) उचित मजदूरी न मिलने की दशा मे (ब) बीमारी की परिस्थिति मे (स) संस्था के अधिकारियो व प्रबंधको के दुर्व्यवहार स (द) काम करने का वातावरण खराब होने की दशा मे (य) आवास की असुविधाओ क कारण, (र) पहले की अपेक्षा मजदूरी घट जाने की दशा मे (ल) आकस्मिक अवकाश न मिलने की दशा म ।

3 **सेवायोजकों द्वारा नौकरी से अलग करना** कभी कभी सेवायोजक ही मज दूरो को हटा देता है। इसके भी कई कारण हो सकते हैं, जैसे (i) मजदूरो की अनु शासनहीनता (ii) श्रमिको द्वारा हड़ताल मे सक्रिय भाग लेना (iii) श्रमिको द्वारा कामचोरी करना (iv) विवेकीकरण (v) मदी के कारण उत्पादन घटना (vi) पूंजीकरण (vii) कच्चे माल आदि के न मिलने से श्रमिको की कम माग होना आदि। कभी कभी जॉबर भी पुराने श्रमिको को हटाकर नये लोगो की भरती करना चाहता है क्योंकि इसम उसे कमीशन मिलता है।

4 **बदली प्रणाली** जब किसी औद्योगिक संस्था म बदली प्रणाली प्रचलित होती है तो बदली श्रमिकों को काम देने के लिए सेवायोजक काम करने वाले पुराने कमचारी को अवकाश देने के लिए अलग कर देते है। इस प्रकार श्रम परिवतन की दर बढ़ जाती है।

5 **विशेष काय की समाप्ति** कुछ औद्योगिक संस्थाओ का निर्माण किसी विशेष काय को करने के लिए किया जाता है। जब यह काय समाप्त हो जाता है तो इस काय को करने वाल श्रमिको को भी काम स पृथक कर दिया जाता है और जब पुन कोई काय शुरू किया जाता है तो निकाले गये श्रमिको को पुन रख लिया जाता है। इस प्रकार श्रम परिवतन की दर ऊंची हो जाती है।

6 **श्रम पूर्ति का आधिक्य** भारत म बेरोजगारी की स्थिति बहुत गभीर है। श्रम पूर्ति का बहुत आधिक्य है। फलत सेवायोजक मनमानी करते है और पुराने श्रमिको को निकालकर उनक स्थान पर सस्ते मे सस्ते श्रमिको की नियुक्ति करते हैं ताकि श्रम लागतों में कमी हो। इससे भी श्रम परिवतन होता है।

7 **अन्य कारण** इनके अतिरिक्त अनेको अन्य कारण श्रम परिवतन मे सहायक सिद्ध हुए है जैसे—(i) अन्य औद्योगिक इकाइयो मे पदोन्नति की आशा। (ii) उचित मजदूरी न मिलना। (iii) अवकाश प्राप्त न होना। (iv) गाव जाने की प्रवृत्ति। (v) सयुक्त परिवार प्रणाली। (vi) देश विदेश के आर्थिक पुनगठन। (vii) आवास की कठिनाइयां। (viii) धम जाति तथा भाषा का अन्तर।

श्रम परिवर्तन के कुप्रभाव

श्रम परिवतन के सबध म श्रम जाच समिति का मत था कि श्रमपरिवतन एक ऐसा अवरोध है जिसे हम मानवीय और भौतिक साधनो का पूर्ण उपयोग न होने के लिए उत्तरदायी ठहरा सकते हैं। सामान्यत श्रमपरिवतन से अग्रलिखित प्रभाव देखने को मिलते है—

1 **श्रमिको को हानि** (अ) श्रम परिवर्तन के कारण श्रमिक को विशेष सुविधाओ से वंचित रहना पडता है। लगातार एक स्थान मे कार्य करने से श्रमिक को बोनस, छुट्टी, वेतन वृद्धि, आवास आदि अनेक सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं। ये लाभ नई जगह जाने से तत्काल नही मिल जाते। (ब) बार-बार कार्य बदलने से श्रमिको की कार्य-क्षमता मे कमी आ जाती है। (स) नया कार्य प्राप्त करने मे कठिनाई और व्यय हो सकता है। (द) उद्योगो मे भर्ती की जॉबर प्रणाली होने पर श्रम परिवर्तन की ऊची दर श्रमिको को बार-बार रोजगार पाने के लिए जॉबर को घूस के रूप मे धन देना पडता है। (य) श्रम परिवर्तन की ऊची दर श्रमिको के सगठन मे भी बाधक होती है क्योकि ऐसी दशा मे श्रम-सगठन म कुशल और अनुभवी कार्यकर्त्ताओ की कमी बनी रहती है। (र) कुछ श्रमिको के कार्य बदलने मे शेष श्रमिको पर अधिक कार्य का बोझ बढता है, उनकी योग्यता मे कमी होती है और उनमे अधिक अनुपस्थिति तथा श्रम परिवर्तन बढता है।

2 **सेवायोजको को हानि** (अ) श्रम परिवर्तन से उद्योग की उत्पादन-क्षमता कुप्रभावित होती है। कारण यह है कि पुराने श्रमिक हटने पर नये श्रमिक रखने पडते हैं जो उतना अच्छा उत्पादन नही कर पाते। फलत उत्पादन की मात्रा और गुण मे कमी होती है। (ब) जब नये श्रमिको को कार्य पर लगाया जाता है तो प्रशिक्षण व्ययो मे वृद्धि हो जाती है क्योकि नये कर्मचारियो को कुछ समय तक प्रशिक्षण देना आवश्यक होता है। अमेरिका म एक श्रमिक के हटने से लगभग 200 डालर का खर्च पडता है। भारत मे इस प्रकार का होने वाला व्यय भी कम नही होगा यद्यपि वहा प्रशिक्षण आदि पर व्यय कम है। (स) नये श्रमिको मे दुर्घटनायें अधिक होती है तथा मशीनो को भी अधिक क्षति होती है जिनमे हानि सेवायोजको को ही सहनी पडती है। (द) श्रमिको के कार्य बदलने से मशीन और उसमे लगे हुए मजदूरो का पूरा उपयोग नही हो पाता।

3 **सगठनकर्ताओ को असुविधा** श्रम परिवर्तन से सगठनकर्ताओ को भी बडी असुविधा होती है क्योकि उन्हें कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने अधीन कार्य करने वालो का स्वभाव, अभिरुचि व योग्यता आदि से भली-भाति परिचित हो। इन बातो की जानकारी मे कुछ समय लगता है। अत नित्य नवीन श्रमिको की भर्ती होने मे सगठनकर्ताओ को कठिनाई का सामना करना पडता है।

श्रम परिवर्तन को कम करने के उपाय

श्रम परिवर्तन को कम करने का सबसे प्रभावोत्पादक ढग श्रमिको की उन दशाओ मे सुधार करना है जो इस स्थिति के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी हैं। इस दिशा मे निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है—

1 **भर्ती के तरीके मे सुधार** जब तक श्रमिको की भर्ती का कार्य रोजगार दफ्तर अथवा अन्य सस्थायें अपने हाथ मे नही लेंगी तब तक श्रम परिवर्तन की दर मे आशाजनक कमी नही की जा सकती क्योकि मध्यस्थ लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए श्रम-परिवर्तन को प्रोत्साहन देते हैं।

2 **सुरक्षा** चूकि सामान्य परिस्थितियो मे अकुशल श्रमिक काफी सख्या मे उपलब्ध रहते हैं इसीलिए सेवायोजक कम वेतन पर श्रमिको को रोजगार पर लगाने के प्रलोभन मे पुराने श्रमिको को अन्यायपूर्ण तरीके से निकाल देते हैं। अत श्रम परिवर्तन को कम करने के लिए अन्यायपूर्ण तरीके से श्रमिको को हटाये जाने पर नियत्रण लगाया जाना चाहिए।

3 **श्रमिको की आर्थिक दशा मे सुधार व श्रम कल्याण मे वृद्धि** - मजदूरी, बोनस आदि आर्थिक लाभ मे वृद्धि से श्रम परिवर्तन तुरत घटता है। श्रम-कल्याण मे कार्य, जैसे आवास, शिक्षा, मनोरजन, चिकित्सा आदि की व्यवस्था का भी श्रमिको के मन और शरीर पर स्वस्थ प्रभाव पडता है तथा श्रम परिवर्तन मे कमी आती है।

4 **कार्य की दशाओं मे सुधार** स्वस्थ हवा-पानी प्रकाश की व्यवस्था व शोर-गुल का नियत्रण भी श्रम परिवर्तन मे कमी लाता है।

5 **प्रबन्धकों का अच्छा व्यवहार** प्रबन्धको के व्यवहार का भी श्रम परिवर्तन पर प्रभाव पडता है। जहा प्रबन्धको का श्रमिको के साथ अच्छा व्यवहार रहता है वहा श्रम परिवर्तन की समस्या कम रहती है।

6 **सामाजिक सुरक्षा, पेंशन व प्राविडेंट फड की सुविधा** श्रम परिवर्तन की दर मे कमी लाने के लिए यह आवश्यक है कि बीमारी बेरोजगारी व दुघटना आदि के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था हो तथा वृद्धावस्था के लिए प्राविडेंट फड व पेंशन आदि का आयोजन किया जाय।

7 **सुदृढ श्रम सगठन** श्रमिक सघो को मजबूत किया जाय जो श्रमिको और सेवायोजको के बीच अधिकाधिक उत्तम-सबधो की स्थापना की दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य करें क्योकि श्रमिको एव सेवायोजको का जितना ही अधिक पारस्परिक सहयोग बढगा श्रम परिवर्तन की दर मे उतनी ही कमी आयेगी।

8 **कम कार्य के घटे, विश्राम व छुट्टिया** इनसे भी श्रम परिवतन म कमी आती है क्योंकि इनके द्वारा औद्योगिक थकान कम होती है व स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नही पडता।

बबई सूती मिल श्रम जाच समिति ने श्रम परिवतन मे कमी लाने वाल उपायो का वर्णन सक्षेप मे इन शब्दो मे किया है 'कार्य की परिस्थितियो म सुधार, मजदूरी हस्तान्तरण पदोन्नति, छुट्टियो, शिक्षा और प्रशिक्षण के सबध मे प्रबधक की उदारता पूर्ण नीति म, श्रम-कल्याण के काय से बेरोजगारी और बीमारी के बीमा मे पशन व ग्रेच्युटी से श्रम परिवर्तन वर्तमान समय की अपेक्षा अधिक स्थिर होगा।

श्रम परिवर्तन का माप

श्रम परिवतन को उचित ढग से मापना बहुत कठिन है। यही कारण है कि भारत मे श्रम परिवर्तन के विश्वसनीय आकडे उपलब्ध हैं। बबई सूती मिल श्रम जाच समिति के अनुसार "यद्यपि भारतीय उद्योगो मे श्रमपरिवर्तन अत्यधिक मात्रा मे पाया जाता है, परतु इसके माप क लिए कोई वैज्ञानिक या विश्वसनीय आकडे उपलब्ध नही

6

है।" श्रम परिवर्तन के माप-सबध मे जो कठिनाइया आती हैं वे सक्षेप मे इस प्रकार हैं—

(अ) सस्था को छोडकर जाने वाले और सस्था मे आने वाले कर्मचारियो का कोई विवरण नही रखा जा ता जिससे श्रम परिवर्तन की गणना करना कठिन हो जाता है।

(ब) व्यापारिक तेजी व मदी के समय कर्मचारियो की सख्या अस्थिर हो जाती है।

(स) श्रम परिवर्तन मापने के लिए अनुपस्थितता और श्रम परिवर्तन के बीच अतर स्पष्ट नही हो पाता।

(द) बदली-श्रमिक श्रम परिवर्तन की गणना मे बडी कठिनाई पैदा करते हैं क्योकि स्थायी कर्मचारी न तो त्याग-पत्र देते हैं और न निकाले ही जाते हैं।

यदि किसी व्यवस्था मे कार्य करने वाले श्रमिको की सख्या अपरिवर्तनशील रहती है तो श्रम परिवर्तन की गणना करना सरल हो जाता है क्योकि एक निश्चित समय मे कार्य को छोडकर जाने वाले श्रमिको की सख्या और नये आने वाले श्रमिको की सख्या मालूम करके श्रम परिवर्तन की गणना की जा सकती है। परतु जब व्यापार में मदी अथवा तेजी के कारण किसी सस्थान मे कार्यरत श्रमिको की स्थिति जल्दी-जल्दी बदलती रहती है तो श्रम अनुपात को आसानी से नही मालूम किया जा सकता।

माप का सूत्र

श्रम परिवर्तन की दर को मापने के लिए निम्नलिखित सूत्रो का उपयोग किया जाता है—

1 $\text{श्रम परिवर्तन} = \frac{\text{किसी अवधि मे सस्था से अलग हुए श्रमिको की सख्या}}{\text{काम करने वाले कुल श्रमिको की सख्या}}$

2 अमेरिकी श्रम साख्यिकी विभाग ने श्रम परिवर्तन मापने के लिए निम्नलिखित सूत्र का निर्माण किया है—

$$\text{श्रम परिवर्तन} = \text{अ} + \text{स} - \frac{\text{प}^1 + \text{प}_2}{2} \times \frac{365}{\text{म}}$$

अ=लगाव (accession), स=अलगाव (separation), प¹=महीने के प्रारभ मे काम पर लगे श्रमिको की सख्या, प²=महीने के अत मे काम पर लगे श्रमिको की सख्या म=महीने मे काम मे अनुपस्थित रहने वाले दिनो की सख्या।

श्रम परिवर्तन की सीमा

शाही श्रम आयोग का मत था कि अधिकाश कारखानो के अतर्गत 5% कर्मचारी प्रति मास नय रखे जाते हैं। श्रम जाच समिति के अनुसार सूती वस्त्र उद्योग मे श्रम परिवर्तन की दर लगभग 0 6, ऊनी वस्त्र उद्योग मे 0 4 सोने की खानो मे 1 6, सीमेंट उद्योग मे 2 0, शीशा उद्योग मे 2 1, चावलो के कारखानो मे 3 1 थी।

एक अन्य अनुमान के अनुसार इजीनियरिंग उद्योग मे श्रम परिवर्तन का प्रतिशत

महाराष्ट्र तमिलनाडु व बगाल मे क्रमश 3 1, 3 1 व 1 6 है। गुजरात और महाराष्ट्र की सूती वस्त्र मिलो मे नियमित आकडे श्रम परिवर्तन के सबध मे उपलब्ध हैं।

महाराष्ट्र राज्य मे 2 000 से अधिक श्रमिको वाले कारखानो मे श्रम परिवर्तन दर बहुत कम थी लेकिन गुजरात राज्य मे 501 से लेकर 1 000 श्रमिको तक के कारखाने मे श्रम परिवर्तन दर सबसे कम थी। इसमे कोई सदेह नही है कि श्रम परिवर्तन की प्रवृत्ति भारत के सभी उद्योगो मे देखने को मिलती है। विशेषकर नियमित उद्योगो मे श्रमपरिवर्तन का विस्तार और अधिक है।

परीक्षा-प्रश्न

1 भारतीय उद्योगो मे अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन की ऊची दर के कारणो की विवेचना कीजिए। देश मे स्थित विशेष दशाओ मे वे किस प्रकार से दूर की जा सकती है?

2 भारतीय उद्योगो मे अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन की ऊची दर के कौन कौन-से कारण है? वे किस प्रकार मे दूर की जा सकती है?

3 श्रम परिवर्तन के मापने मे आने वाली कठिनाइयो को स्पष्ट कीजिए तथा इसके प्रभाव (Incidence) को कम करने के लिए सुझाव दीजिए।

4 भारतीय श्रमिको मे ऊची अनुपस्थिति के कारणो का वर्णन कीजिए। वे अपने ग्रामो के साथ निकट सबध क्यो बनाते है?

5 हमारे औद्योगिक केंद्रो मे अनुपस्थिति के कारणो और उनके इलाज के लिए सुझाव दीजिए।

6 भारतीय उद्योगो मे अनुपस्थिति की ऊची दर के कारणो का वर्णन कीजिए। इसे कम करने के लिए कुछ उचित प्रभावो का सुझाव दीजिए।

7 यद्यपि भारतीय उद्योगो मे श्रम परिवर्तन की अत्यधिक ऊची दर पाई जाती है, किंतु श्रम परिवर्तन की सीमा का पता लगाने के लिए विश्वसनीय आकडे उपलब्ध नही हैं। जब तक विश्वसनीय तथा पर्याप्त आकडे फाइल नही किये जाते तथा सावधानीपूर्वक उनका आलोचनात्मक विश्लेषण नही प्राप्त किया जाता तब तक श्रम परिवर्तन के प्रतिशत का कोई व्यावहारिक महत्त्व नही है। इस कथन की आलोचना कीजिए।

आरामदायक व विलासिता सबधी उन आवश्यकताओ स है जिनको पूरा करने का उपभोक्ता आदी बन गया है। प्रो० एलो ने उपयुक्त ही लिखा है कि 'जीवन-स्तर का आशय आवश्यक आरामदायक और विलासिता सबधी उन आवश्यकताओ से है जिन्हे एक व्यक्ति विवाह आदि के मौके पर प्राथमिकता देता है।"

यहा यह उल्लेखनीय है कि किसी व्यक्ति या समाज का जीवन स्तर सदैव सापेक्षिक होता है। इसलिए इसका प्रयोग भी तुलनात्मक या सापेक्षिक रूप मे ही किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, अहमदाबाद के कारखानो मे काम करने वाले दो श्रमिको के बीच उनके रहन सहन के स्तर की तुलना की जा सकती है अथवा कानपुर के चमडा श्रमिक के रहन सहन के स्तर की तुलना आगरे के चमडा श्रमिक के जीवन-स्तर से की जा सकती है अथवा भारतीय श्रमिको के जीवन-स्तर की तुलना इग्लैंड व अमेरिका के श्रमिको से की जा सकती है।

जीवन स्तर दो प्रकार का होता है —ऊचा और नीचा। ऊचा जीवन स्तर वह है जिसमे मनुष्य अपनी अधिक स अधिक आवश्यकताओ की सतुष्टि करता है। इसके विपरीत, निम्न जीवन-स्तर वह है जिसम मनुष्य अपनी सीमित आय म बहुत कम आवश्यकताओ की सतुष्टि करता है।

जीवन-स्तर के निर्णायक तत्त्व
(Determinants of Standard of Living)

किसी भी व्यक्ति परिवार या समाज के जीवन स्तर को प्रभावित करने वाले बहुत से तत्त्व होते हैं जिनका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षको के अतर्गत कर सकते हैं -

1 **भौतिकी तत्त्व** देश की भौगोलिक परिस्थितिया व जलवायु बहुत सीमा तक आवश्यकताओ को प्रभावित करती है जैसे एक ठडे स्थान के निवासी के लिए मदिरा-पान अडे मछली व मास का प्रयोग तथा ऊनी वस्त्र धारण करना अनिवार्य हो जाता है जबकि एक गरम स्थान के निवासी को इनकी आवश्यकता नही पडती। इसके आधार पर भारत और इग्लैंड का उदाहरण प्रत्यक्ष है। इग्लैंड मे अत्यधिक सर्दी होने के कारण वहा ऊनी वस्त्र धारण करना अनिवार्य है परतु भारत एक गरम देश होने के कारण यहा वस्त्र व मदिरा पान की आवश्यकता इतनी नही है। यही कारण है कि इग्लैंड के जन साधारण का जीवन स्तर भारतवासियो के जीवन स्तर की अपेक्षा ऊचा है।

2 **सामाजिक परिस्थितिया** चूकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए उसकी आवश्यकताए तथा जीवन स्तर सामाजिक प्रथाओ द्वारा ही प्रभावित होते हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय समाज म अधिकाश जीवन की कमाई विवाह, दहेज व धार्मिक दान शौकत पर व्यय कर दी जाती है और लोग जीवन भर रोगी व कर्ज मे दबे रह कर व्यतीत किया जाता है। ऐसी परिस्थितिया म हम ऊचे जीवन स्तर की आशा कैसे कर सकते हैं। इसी प्रकार, गाव म रहने वाले जिस सामाजिक वातावरण मे
शहरो के वातावरण से भिन्न होता है। इसलिए उनके जीवन स्तर मे

जाता है।

3. समय-प्रभाव जीवन-स्तर का समय से भी घनिष्ठ सबध है और समयानुसार इसमे भी परिवर्तन होता चला जाता है। समय के परिवर्तन के अनुसार ही विज्ञान की प्रगति बढती जा रही है और मशीनो की सहायता से नई-नई वस्तुए तैयार की जा रही हैं। उदाहरण के लिए, आज तरह-तरह की जीवनोपयोगी वस्तुए कम मूल्य पर जनता के उपभोग के लिए उपलब्ध है, जैसे बिजली का पखा, रेडियो टेलीविजन इत्यादि। पहले इन्हें विलासिता की वस्तुए समझा जाता था लेकिन आज ये आराम व अनिवार्यता की वस्तुए मानी जाती है।

4. धार्मिक प्रवृत्तियां धार्मिक प्रवृत्तिया भी रहन-सहन के स्तर को ऊचा करने अथवा नीचे गिराने मे उत्तरदायी सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए, भारतीय धार्मिक प्रवृत्तिया हिंदुओ को शाकाहारी बनाने की प्रेरणा देती है व सादा जीवन उच्च विचार का पाठ पढाती हैं। इससे व्यक्ति की आवश्यकताओ मे कमी आ जाती है और उनका जीवन-स्तर निम्न बना रहता है।

5. विदेशी सभ्यता व संपर्क : इसका भी जीवन-स्तर पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब कोई भारतीय इग्लैंड के किसी नगर मे एक-दो वर्ष रह जाता है तो वहा जाकर वह नयी-नयी वस्तुओ का उपभोग देखता है और स्वय भी उनका उपभोग करने लगता है, जिससे उसका जीवन स्तर ऊचा हो जाता है। अर्थशास्त्र मे इसे प्रदर्शन प्रभाव कहते हैं। "प्रदर्शन प्रभाव का आशय उपभोग प्रवृत्ति म उस वृद्धि से है जो बढिया उपभोग की वस्तुओ तथा उन्नत जीवन-स्तर से सपर्क बढने मे फलित होती है।" परिवहन मे सुधार के कारण अर्द्धविकसित देशो मे सपर्क सभव हो सका है। इस सपर्क के कारण अर्द्धविकसित देशों के निवासी विकसित देशो के लोगो के रहन-सहन के तरीको से परिचित हो जाते है। वे देखते हैं कि विकसित देश के निवासी सिनेमा, रेडियो, रेफ्रिजरेटर, घडिया, फर्नीचर और अन्य बहुत-सी वस्तुओ का प्रयोग करते है। इससे अर्द्धविकसित देशो के व्यक्तियो मे अतृप्त लालसा उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप उनकी आय मे प्रत्येक वृद्धि इसी प्रकार की वस्तुओ (रेडियो, फर्नीचर, घड़िया आदि) के क्रय पर खर्च कर दी जाती है। प्रो० नर्क्स ने इस सबध मे लिखा है. "जब लोग बढिया वस्तुओ अथवा उन्नत उपभोग-कलाप, नई वस्तुओ अथवा पुरानी इच्छाओ की सतुष्टि की नयी विधियो के सपर्क मे आते हैं तो कुछ समय बाद कुछ बेचैनी तथा असतुष्टि अनुभव करने लगते हैं, उनकी जानकारी बढती है और उनकी कल्पना उत्तेजित होती है। नयी इच्छाए उत्पन्न होती है और उपभोग प्रवृत्ति मे वृद्धि होती है।"

6. आय का आकार : एक व्यक्ति की आय जितनी अधिक होती है वह उतनी ही अधिक सख्या मे आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। यही कारण है कि साधारणतया एक धनी व्यक्ति का जीवन-स्तर एक निर्धन व्यक्ति के जीवन-स्तर की अपेक्षा ऊंचा होता है।

7. व्यय करने की रीति : व्यय करने की रीति का भी जीवन-स्तर पर बहुत

प्रभाव पड़ता है। अधिक आय होने पर भी यदि कोई व्यक्ति शराब या अन्य वस्तुओं पर फिजूल खर्च करता है तो उसका जीवन-स्तर ऊंचा नहीं हो सकता।

8 **यातायात के साधनों का प्रभाव** जैसे-जैसे यातायात के साधनों का विकास हो रहा है, जनता का बाहरी सम्पर्क बढ़ता जा रहा है, और उनके प्रभाव से जीवन-स्तर में सुधार होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, शहरों और गांवों के मध्य सम्पर्क बढ़ जाने से ग्रामवासियों के जीवन-स्तर में पर्याप्त उन्नति हुई है।

9 **शिक्षा एवं बौद्धिक विकास** शिक्षा की प्राप्ति से व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि होने के कारण हमारी रुचि और आवश्यकतायें परिवर्तित हो जाती हैं और उनके प्रभाव के फलस्वरूप रहन-सहन के स्तर में भी परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिए, जब विद्यार्थी गांव के स्कूल में पढ़ता है तो उसे अधिक साफ तथा लोहा किए हुए वस्त्रों या सूट की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु वही विद्यार्थी जब उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है तो उसके लिए साफ तथा लोहा किए हुए वस्त्र या सूट पहनना आवश्यक प्रतीत होता है।

10 **व्यक्तिगत दृष्टिकोण** किसी व्यक्ति के जीवन-स्तर पर उसके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण का भी बहुत प्रभाव पड़ता है, जैसे सन्तोष और आध्यात्मिकता में विश्वास करने वाले व्यक्ति का जीवन स्तर अधिक ऊंचा नहीं होता।

11 **प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता** जिस देश में प्राकृतिक साधनों, जैसे —भूमि, खनिज पदार्थ, शक्ति के साधन, धन की प्रचुरता होती है वहां धन का उत्पादन भी अधिक होता है और इस प्रकार जीवन-स्तर भी सामान्यतः ऊंचा होता है।

12 **प्राकृतिक साधनों का दोहन** केवल प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता से ही देश का जीवन-स्तर ऊंचा होना अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं है। यदि ऐसे देश के निवासी उनका पर्याप्त दोहन (Exploitation) नहीं कर पाए हैं तो उनका जीवन-स्तर ऊंचा नहीं होगा।

13 **राष्ट्रीय आय का विभाजन** यदि देश में राष्ट्रीय आय का विभाजन न्याय-पूर्ण और उचित है, तो साधारण लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा उठ जाता है। इसके विपरीत, यदि राष्ट्रीय आय का विभाजन दोषपूर्ण है तो कुछ लोगों का जीवन-स्तर भले ही ऊंचा हो सकता है परन्तु सामान्य लोगों का स्तर नीचा ही रहेगा।

14 **मुद्रा की क्रय शक्ति** प्रति व्यक्ति आय अधिक होने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि मुद्रा की क्रय शक्ति अधिक हो, तभी जीवन-स्तर ऊंचा हो सकता है। यदि किसी देश में प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है लेकिन उसके साथ-ही-साथ ऊंचे मूल्यों के कारण मुद्रा की क्रय-शक्ति कम हो जाती है तो देश का जीवन-स्तर ऊंचा नहीं हो सकता।

15 **देश में शान्ति व सुरक्षा** जब तक देश में शान्ति व सुरक्षा की व्यवस्था न होगी, व्यक्ति का जीवन स्तर ऊंचा नहीं हो सकता क्योंकि उपभोग की वस्तुओं की पूर्ति शान्तिपूर्ण समय में बढ़ाई जा सकती है। इसी प्रकार, यदि लोगों को सामाजिक सुरक्षा काफी मात्रा में प्राप्त है तो वे अपनी आय के एक बड़े अंश को बचाने की बजाय खर्च करेंगे और उनका जीवन स्तर ऊंचा होगा।

16 जीवन सुधार सगठनो का प्रभाव : आजकल बहुत से ऐसे सगठनो का जन्म हुआ है जो अपने सदस्यों के जीवन-स्तर को ऊचा उठाने का निरतर प्रयास करते हैं। पश्चिमी देशो मे श्रमिको के लिए ऐसे अनेक सगठन कार्य कर रहे है। यद्यपि भारत मे इनका अभाव है।

17 स्वास्थ्य का अभाव मनुष्य के स्वास्थ्य का भी उसके जीवन-स्तर पर प्रभाव पडता है। एक स्वस्थ व्यक्ति की कार्य-क्षमता अस्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होती है। जिसके कारण वह अस्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा अधिक धन कमाने लगता है और अधिक मात्रा मे वस्तुओ का उपभोग करने के योग्य हो जाता है। फलतः उसका जीवन स्तर अधिक ऊचा होता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन-स्तर को प्रभावित करने वाले अनेक घटक है। यही कारण है कि दो व्यक्तियो या दो देशो के निवासियो का जीवन स्तर सामान्य नही होता।

भारतीय श्रमिको का जीवन-स्तर
(Standard of Living of Indian Workers)

भारतीय श्रमिको का जीवन-स्तर विश्व के अन्य देशो के श्रमिको के जीवन स्तर से निम्न है। भारतीय श्रमिको के जीवन-स्तर का अनुमान निम्नलिखित कसौटियो के आधार पर लगाया जा सकता है—

1 आय किसी देश के श्रमिको की प्रति व्यक्ति आय के आधार पर उसके जीवन-स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। हमारे औद्योगिक श्रमिको की औसत वार्षिक आय इतनी कम है कि वे अपनी समस्त अनिवार्यताओ को भी पूरा नही कर पाते। ऐसी परिस्थिति मे उनका जीवन-स्तर नीचा होना स्वाभाविक है। एक अनुमान के अनुसार हमारे अधिकाश श्रमिको की औसत वार्षिक आय 1,500 रु० से भी कम है। इतनी कम आय से आरामपूर्वक जीवन व्यतीत करना सभव नही है। परिणामत उनका जीवन-स्तर भी निम्न है।

2 आयु जीवन-स्तर की दूसरी कसौटी औसत आय है। यद्यपि भारत मे औसत आयु बढी है, फिर भी अन्य देशो की तुलना मे बहुत कम है। विभिन्न देशो की औसत आयु इस प्रकार है न्यूजीलैंड—पुरुष 69 व स्त्री 71, सयुक्त राज्य—पुरुष 65 व स्त्री 71, इग्लैंड—पुरुष 66 व स्त्री 71 तथा भारत—पुरुष 40 व स्त्री 38। ऊचे जीवन स्तर के परिणामस्वरूप ही दीर्घ आयु प्राप्त होती है। चूकि भारतवासियो का जीवन-स्तर बहुत नीचा है इसीलिए इनकी औसत आयु भी बहुत कम है।

3 कार्य-क्षमता कार्य-क्षमता के आधार पर भी अगर भारतीय श्रमिको की तुलना विदेशी श्रमिको से की जाती है तो भारतीय श्रमिक कम कार्य-कुशल सिद्ध होगे। सर अलेक्जेंडर मैकराबर्ट का मत है कि अग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा 3 1/2 गुना अधिक कुशल हैं। अत कार्य-कुशलता का कम होना भारतीय श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर का प्रभाव है।

4 **आधारभूत वस्तुओं की उपलब्धि :** जीवन-स्तर का अनुमान उस उपभोग सामग्री के आधार पर भी लगाया जा सकता है जो एक देशवासी को उपलब्ध होती है। भारतीय श्रमिकों की उपभोग सामग्री के सबध मे अतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, वस्त्र उद्योग, श्रम जाच समिति डॉ० राधा कमल मुकर्जी तथा डॉ० अनवर इकबाल कुरैशी ने गहन अध्ययन किया है। इन लोगो के अनुमानानुसार भारत मे केवल 39% ऐसे व्यक्ति है जिनको पेटभर भोजन प्राप्त होता है और शेष लोगो को आधा पेट भरकर ही जीवन व्यतीत करना पडता है। जिन लोगो को पेटभर भोजन मिलता है उनके सबध म भी ऐसा कहा जाता है कि उनके भोजन मे पौष्टिक पदार्थों का अश बहुत कम है। एक अन्य अनुमान के अनुसार भारत मे प्रति व्यक्ति औसतन केवल 7 औंस दूध प्राप्त होता है जबकि इग्लैड के प्रति व्यक्ति को प्राप्त होने वाले दूध की मात्रा 39 औंस है। भारत मे भारतवासियो की प्रति व्यक्ति औसतन दैनिक उपलब्धि 16 औंस तथा कपडे की प्रति व्यक्ति वार्षिक खपत 16 मीटर है। इससे भी स्पष्ट होता है कि भारतवासियो का जीवन-स्तर अन्य देशों के निवासियो के जीवन-स्तर से काफी निम्न है।

5 *बजटो का निष्कर्ष* औद्योगिक श्रमिको के पारिवारिक बजटो के विश्लेषण से भी श्रमिको के निम्न जीवन-स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। औद्योगिक श्रमिको के पारिवारिक बजटो के विश्लेषण से जो तथ्य सामने आए हैं वे इस प्रकार हैं—

(अ) श्रमिक अपनी आय का 60 से 70% भाग केवल भोजन पर व्यय करते है।

(ब) ईंधन व प्रकाश पर वे 5 से 7% तक धन व्यय करते है।

(स) मकान के किराये पर श्रमिक 4 से 6% तक व्यय करते हैं।

(द) कपडो एव जूतो पर व्यय विभिन्न स्थानो मे 3 से 14% तक आता है।

इन तथ्यो से स्पष्ट है कि श्रमिको की आय का लगभग सपूर्ण भाग अनिवार्यताओ पर ही व्यय हो जाता है और इनके पास शिक्षा, स्वास्थ्य व मनोरजन पर व्यय के लिए कुछ नही बचता जिसस उनका जीवन-स्तर निम्न रहता है।

निम्न जीवन-स्तर के कारण
(Causes of Low Standard of Living)

भारतीय श्रमिको के निम्न जीवन-स्तर के लिए उत्तरदायी कारणो का हम निम्नलिखित तीन शीर्षको के अतर्गत अध्ययन कर सकते हैं—(क) भौगोलिक, (ख) *आर्थिक, तथा (ग) व्यक्तिगत।*

I भौगोलिक कारण

जलवायु भारत की जलवायु गर्म है। इसलिए हमारे देश के व्यक्तियो की आवश्यकताए भी सीमित हैं। यहा मनुष्य अत्यत साधारण जीवन व्यतीत करते हैं जिससे उनका जीवन-स्तर बहुत नीचा है।

II. आर्थिक कारण

1 **कीमतों मे निरंतर वृद्धि** भारतीय श्रमिको के निम्न जीवन स्तर के लिए उत्तरदायी एक महत्वपूर्ण कारण कीमतो मे निरंतर वृद्धि है। जिस अनुपात मे कीमतों मे वृद्धि हो रही है उसी अनुपात मे श्रमिको की मजदूरी में वृद्धि नही हो रही है। फलत श्रमिको का जीवन स्तर गिरता जा रहा है। लेबर ब्यूरो द्वारा अखिल भारतीय उपभोक्ता की कीमत सूचकाक की नयी श्रृखला (Series) का जो सकलन व प्रकाशन किया जाता है उससे यह स्पष्ट होता है कि कीमतो मे निरतर वृद्धि के कारण श्रमिको के जीवन-स्तर मे गिरावट आई है।

2. **कम मजदूरी** भारत मे प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है जिसके कारण भारतीय श्रमिक अपनी न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति भी कठिनाई से कर पाता है। दूध, दही, घी फल आदि वस्तुओ की वह कल्पना भी नहीं कर सकता। कम मात्रा मे वस्तुओ का उपभोग करने से रहन सहन के स्तर का नीचा होना स्वाभाविक ही है।

3 **अशिक्षा, रूढिवादिता व अज्ञानता** अधिकाश भारतीय श्रमिक अशिक्षित हैं। देश मे केवल 22% व्यक्ति ही पढे-लिखे हैं और उनमे औद्योगिक श्रमिको का भाग तो 2 या 3% ही है। अशिक्षित होने के कारण भारतीय श्रमिकों का मानसिक विकास नही हो पाया है और उनमे अपने जीवन स्तर को ऊचा उठाने की भावना का सर्वथा अभाव है। वे अपनी वर्तमान स्थिति से ही सतुष्ट हैं। अशिक्षा के कारण ही भारतीय श्रमिक रूढिग्रस्त हैं और परपरा से चले आये रीति रिवाज का स्वभाव से ही अनुकरण करते हैं। वे जन्म मृत्यु विवाह आदि अवसरो पर वर्षों की बचत को एक दिन मे व्यय कर देते हैं जिससे उनका जीवन स्तर हमेशा निम्न ही बना रहता है।

4 **अकुशलता** भारतीय श्रमिक अन्य देशो के श्रमिको की अपेक्षा कम कार्यकुशल हैं जिसके कारण उनके द्वारा जो उत्पादन किया जाता है उसकी मात्रा बहुत ही कम रहती है। कम उत्पादन कर सकने के कारण सेवायोजक उन्हे कम ही मजदूरी प्रदान करता है जिसके परिणामस्वरूप उनका जीवन-स्तर नीचा रहता है।

III व्यक्तिगत कारण

1 **ऋणग्रस्तता** प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डार्लिंग का कथन है कि भारतीय श्रमिक *ऋण मे ही जन्म लेता है ऋण मे ही उसका पालन पोषण होता है और अत मे ऋण मे ही* उसकी मृत्यु होती है। विभिन्न अनुमानो के अनुसार प्रमुख औद्योगिक केंद्रो मे लगभग 7% श्रमिक परिवार ऋणग्रस्त हैं। ऐसी स्थिति मे आय का अधिकाश भाग ऋण तथा ब्याज के भुगतान मे ही चला जाता है और श्रमिको के पास जो शेष राशि बचती है उसकी मात्रा बहुत ही कम होती है। इससे वह कम मात्रा मे वस्तुओ का उपभोग कर पाता है जिससे उसका जीवन स्तर गिर जाता है।

2 **दुर्व्यसन** महाराष्ट्र, बगाल, उडीसा, उत्तर प्रदेश व बिहार आदि राज्यों द्वारा की गई जाच से यह पता लगता है कि श्रमिक अपनी आय का 10 से 15% भाग

मादक वस्तुओं के सेवन पर व्यय करते हैं। भारतीय श्रमिक आज धूम्रपान, मदिरा, अफीम व वेश्यावृत्ति के आदी बन गये है जिसके कारण उनकी आय का अधिकाश भाग इन्ही क्रियाओं पर व्यय हो जाता है। परिणामस्वरूप उनका जीवन-स्तर गिर जाता है।

3. **शारीरिक दुर्बलता** . भारतीय श्रमिक अधिकतर अस्वस्थ रहते हैं। उनका शरीर दुर्बल होता है, जिसके कारण वे कठोर परिश्रम नही कर पाते और उनकी आय कम रह जाती है। एक बार रोगी हो जाने पर वे अच्छी तरह अपना इलाज भी नही करा सकते। इससे उनकी कार्य-क्षमता गिरती है और उत्पादन में भी क्षति पहुचती है।

4. **असंतुलित एव अपर्याप्त भोजन** निर्धनता एवं अल्प वेतन के कारण भारतीय श्रमिकों का भोजन केवल असतुलित ही नही, बल्कि अपर्याप्त भी हैं। बहुत-से श्रमिकों को एक समय का भोजन भी भरपेट नही मिलता। जब शरीर की अनिवार्य आवश्यकताए पूरी नहीं हो पाती तो सामान्य स्वास्थ्य खराब होने लगता है, अनेक बीमारियां लग जाती हैं और कार्य-कुशलता कम हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप कम मजदूरी मिलती है और जीवन-स्तर नीचा हो जाता है।

5 **जनसख्या की अधिकता** . भारत की जनसख्या विस्फोट की अवस्था मे है अर्थात् यहा जनसख्या मे वृद्धि तीव्र गति से हो रही है। परिणामत हम अपनी राष्ट्रीय आय को अधिक व्यक्तियो मे बाटना पड रहा है जिसस देशवासियो के जीवन-स्तर मे कोई वृद्धि नही हो पा रही है।

6 **धन का असमान वितरण** भारत मे राष्ट्रीय आय का वितरण बहुत असमान है। राष्ट्रीय आय का अधिकाश भाग धनी वर्ग के पास केंद्रित हो गया है और निर्धन वर्ग की आय कम रहने के कारण उनका जीवन-स्तर निम्न है।

जीवन-स्तर ऊचा करने के उपाय
(Measures to Raise the Standard of Living)

उपरोक्त विवेचन मे स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिको का जीवन-स्तर बहुत ही निम्न है। इसलिए उसे ऊचा उठाने की आवश्यकता है। भारतीय श्रमिको के जीवन-स्तर मे वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित उपाय प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

1. **उचित मजदूरी की व्यवस्था** : जब तक मजदूरो की आय मे वृद्धि नही की जायेगी तब तक उचित जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। उत्तर प्रदेश की **श्रम जाच समिति** ने अपनी रिपोर्ट मे एक स्थान पर सकेत किया है : 'मजदूरी एक कीली के समान है जिसके इर्द-गिर्द श्रमिकों की अधिकाश समस्याए चक्कर काटती हैं। इस प्रकार जीवन-स्तर की समस्या, श्रमिको का सामान्य आर्थिक कल्याण उनकी सापेक्षिक कार्य-क्षमता, श्रम की लागत, सभी का इस समस्या से सबध है।" अत बढती हुई राष्ट्रीय आय के साथ मजदूरी का समन्वय आवश्यक है। उन सभी उद्योगो मे, जहा अभी तक न्यूनतम मजदूरी निश्चित नही की गई है सभी श्रमिको के लिए जीवन-निर्वाह-स्तर से कुछ अधिक स्तर न्यूनतम मजदूरी का निश्चित किया जाना चाहिए। उन उद्योगो मे, जहा न्यूनतम

मजदूरी पहले से ही निश्चित है श्रमिकों की बढ़ती हुई उत्पादकता के अनुरूप मजदूरी भी बढ़ती रहनी चाहिए। संक्षेप में मजदूरी बढ़ती रहनी चाहिए जिससे कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र में जीवन यापन मजदूरी का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

2 **श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि** श्रमिकों को शिक्षित करके प्रशिक्षण देकर व स्वास्थ्य सुरक्षा की सुविधायें प्रदान करके अधिक कार्यक्षम बनाया जा सकता है। जब श्रमिक पहले की अपेक्षा अधिक कार्य करने योग्य हो जायेंगे तो उनकी उत्पादकता में वृद्धि होगी और उत्पादन की मात्रा बढ़ जायगी। इससे सेवायोजक भी स्वयं अपनी इच्छा से ही मजदूरी बढ़ा देगा जिससे श्रमिक अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में समर्थ हो जायेंगे।

3 **परिवार नियोजन** बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भी हमारे श्रमिकों का जीवन-स्तर निम्न बना हुआ है। जनसंख्या को कम करने का एक महत्वपूर्ण उपाय परिवार नियोजन है। परिवार नियोजन का अर्थ है परिवार को संयुक्त रूप में सीमित रखना व बच्चों की उत्पत्ति में पर्याप्त फासला रखना। पश्चिमी देशों में जनसंख्या को कम बनाये रखने के लिए यह एक प्रमुख ढंग है। परन्तु भारत में अभी तक इस विषय की ओर पूरी तरह से ध्यान नहीं दिया गया है। अतः हमारे देश के लिए आवश्यक है कि परिवार नियोजन का राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार किया जाय और संतति निरोध की एक ऐसी विधि निकाली जाय जो सुगम सुरक्षित व साध्य हो जिसका साधारण जनता द्वारा उपयोग किया जा सके। शिक्षा से भी जनता में जागृति उत्पन्न होती है और लोग छोटे परिवार के महत्त्व को समझते हैं। अतः छोटे परिवार के महत्त्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि अनिवार्य शिक्षा की व्यापक योजना बनाई जाय।

4 **सामाजिक सुरक्षा व श्रम कल्याण** श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा के कार्यों की व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकार के कार्यों एवं सुविधाओं का प्रत्यक्ष संबंध श्रमिकों के स्वास्थ्य कार्य-क्षमता और जीवन स्तर से है। यह श्रमिकों की स्थायी आय व ऋणग्रस्तता की समस्या का भी समाधान करेगी।

5 **शिक्षा का प्रसार** श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए उन्हें शिक्षित करना होगा। श्रमिकों के सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण में शिक्षा के प्रसार द्वारा ही परिवर्तन लाया जा सकता है। शिक्षा प्रसार से उनका मानसिक दृष्टिकोण न केवल विस्तृत होगा बल्कि वे अपनी आय का विवेकपूर्ण व्यय करना भी सीखेंगे।

श्रमिकों को संतुलित बजट का लाभ भी महसूस कराना चाहिए। सम सीमांत उपयोगिता नियम के अनुसार बजट बनाने और धन व्यय करने की आशा अशिक्षित एवं अनभिज्ञ श्रमिकों से नहीं की जा सकती।

6 **धन का समान वितरण** भारत में अब तक धन का असमान वितरण होता चला आ रहा है जिससे समाज धनी व निर्धन वर्गों में बंट गया है। यदि समाज में धन का समान वितरण कर दिया जाय तो समाज में केवल एक ही वर्ग होगा और सभी व्यक्तियों का जीवन-स्तर एक समान ही उच्च होगा।

7 राष्ट्रीय आय में वृद्धि एक देश का जीवन स्तर ऊंचा करने के लिए यह आवश्यक है कि उस देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का समुचित विकास किया जाए। आर्थिक नियोजन द्वारा प्राकृतिक साधनों का समुचित विदोहन किया जा सकता है। इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी जो प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करके जीवन स्तर को ऊंचा कर देगी।

8 अन्य सुझाव : (अ) श्रमिकों को ऋणग्रस्तता से मुक्त करने के लिए ठोस कदम उठाये जाने चाहिए। (ब) सरकार श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए श्रम सुरक्षा की विभिन्न योजनाएं बनाकर श्रमिकों को स्वस्थ रख सकती है। (स) प्रचार एवं प्रसार द्वारा श्रमिकों को इस बात की शिक्षा दी जा सकती है कि वे अपनी आय का अधिक उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यय करें। (द) औद्योगिक श्रमिकों की गृह समस्या का समाधान के लिए तात्कालिक कदम उठाये जाने चाहिए। (य) श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि जीवन स्तर की लागत में वृद्धि के अनुसार होनी चाहिए ताकि जीवन-स्तर की लागत के निर्देशांक में वृद्धि के परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी पर दुष्परिणाम न पड़े। (र) छुट्टियां व सवेतन अवकाश की व्यवस्था होनी चाहिए।

निष्कर्ष यदि उपरोक्त उपायों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय तो भारतीय श्रमिकों के जीवन स्तर में निःसंदेह वृद्धि होगी। एक देश के उन्नत और समृद्धशाली होने की पहचान उच्च जीवन-स्तर ही हुआ करता है। भारतीय श्रमिक के निम्न जीवन-स्तर की समस्या बहुत दिनों से सरकार के सम्मुख है। समय समय पर स्थापित समितियों ने भी इस संबंध में अपने सुझाव दिये हैं। कानपुर **श्रम जांच समिति** ने कहा था कि 'हमारी इच्छा है, हमारे श्रमिक उचित व आत्म-सम्मान का जीवन व्यतीत करें। हम चाहते हैं कि उनके पास उचित व पर्याप्त घर हो तथा उन्हें उचित भोजन मिले। उनके बच्चों को जीवन की प्रत्येक सुविधा उपलब्ध हो तथा भली प्रकार से शिक्षित हों ताकि देश में कार्य-कुशल श्रम शक्ति का निर्माण हो सके।" **डॉ० राधा कमल मुकर्जी** के शब्दों में 'किसी भी उद्योग की सुदृढ़ता एवं सम्पन्नता उस उद्योग में काम करने वाले कर्मचारियों की कार्य क्षमता एवं उनके जीवन-स्तर पर निर्भर करती है। सामाजिक सुरक्षा द्वारा यह सम्पन्नता पर्याप्त सीमा तक प्राप्त की जा सकती है। औद्योगिक शान्ति और प्रगति की नींव श्रमिक वर्ग की कार्य कुशलता उन्नत जीवन-स्तर सामाजिक सुरक्षा तथा क्रय शक्ति के समस्त जन-साधारण में उचित वितरण पर ही आधारित होती है।"

श्रम की कार्य-कुशलता
(Efficiency of Labour)

परिभाषा श्रम की कार्य कुशलता को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है **एक निश्चित अवधि और सामान्य परिस्थितियों में एक श्रमिक द्वारा अपेक्षाकृत अधिक या श्रेष्ठ अथवा अधिक और श्रेष्ठ दोनों ही प्रकार से वस्तुओं का उत्पादन करने की शक्ति, योग्यता तथा क्षमता को श्रम की कार्य-कुशलता कहते हैं।"**

श्रम की कार्य-कुशलता सापेक्षिक धारणा है इसलिए इसका प्रयोग हमेशा एक तुलनात्मक रूप मे किया जाता है। जब हम किसी श्रमिक की कार्य-कुशलता के बारे मे जानना चाहते है तब हम दो श्रमिको द्वारा नियत समय मे किए गए कार्यों की तुलना करके ही यह ज्ञान कर सकते है कि कौन-सा श्रमिक अधिक कार्य-कुशल है। **कार्य कुशलता के दो पक्ष होते हैं—(1) परिमाणात्मक (Quantitative) पक्ष और (II) गुणात्मक** (*Qualitative*) **पक्ष**। *जब हम ज्ञात करना चाहते हैं कि दो श्रमिको मे कौन-सा श्रमिक* अधिक कार्य-कुशल है तो हम यह देखते हैं कि 'अन्य बातो के समान रहने पर' एक निश्चित समय मे कौन-सा श्रमिक अधिक मात्रा (परिमाणात्मक पक्ष) अथवा अच्छी किस्म (गुणात्मक पक्ष) का उत्पादन करता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि श्रमिक की कार्य-कुशलता से अभिप्राय श्रमिक द्वारा अधिक मात्रा मे या उत्तम कार्य करने अथवा अधिक मात्रा मे उत्तम कार्य करने की क्षमता या सामर्थ्य से है। स्पष्ट है कि श्रमिक की कार्य-कुशलता की तुलना करते समय हमे तीन बातो का ध्यान रखना पडता है —

(i) *कार्य करने की दशाए, सुविधाए और समयावधि,*

(ii) कार्य का परिमाण, तथा

(iii) कार्य की उत्तमता।

कार्य-कुशलता के निर्धारक तत्त्व

श्रम की कार्य-कुशलता को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व है। इन तत्त्वो मे *विभिन्नता के कारण विभिन्न देशो के श्रम की कार्य-कुशलता मे भी विभिन्नता पाई जाती* है। **पेंसन** न उनकी ओर सकेत करते हुए कहा है "श्रम की कार्य-कुशलता आशिक रूप से मालिक पर और आशिक रूप से श्रमिको पर, आशिक रूप से सगठन पर और आशिक रूप से व्यक्तिगत प्रयत्न पर, कुछ अश तक कार्य करने मे औजारो तथा यत्रो आदि पर और कुछ अश तक श्रमिकों की अपनी दक्षता तथा परिश्रम पर निर्भर होती है।"[1]

श्रम की कार्य-कुशलता को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को हम तीन भागो मे बाट सकते है—

(अ) श्रमिक के व्यक्तिगत गुण,

(ब) कार्य की दशाए तथा अन्य सुविधाए, और

(स) अन्य परिस्थितिया।

I **श्रमिक के व्यक्तिगत गुण** : श्रम की कार्य-कुशलता पर मजदूरो के जिन व्यक्तिगत गुणो का प्रभाव पडता है वे इस प्रकार है—

1 **जातीय गुण** · मजदूर की कार्य-क्षमता इस पर निर्भर होती है कि वह किस

जाति का है, क्योंकि कुछ जातियां स्वभाव से ही दूसरी जातियों की अपेक्षा अधिक दक्ष होती है। जैसे—आर्य और मंगोल जाति से संबंधित मजदूर अफ्रीकी जाति से संबंधित मजदूरों की अपेक्षा अधिक हृष्ट-पुष्ट होते हैं, फलतः उनकी कार्यक्षमता भी अधिक होती है।

2 **पैतृक गुण** श्रमिक बहुत मात्रा में अपने पूर्वजों के गुण दाय प्राप्त करता है। मां-बाप के स्वस्थ, मेहनती और बुद्धिमान होने से उनके बच्चों में निःसंदेह कार्य क्षमता अधिक होगी। भारतीय मजदूरों की कार्य कुशलता के कम होने का एक कारण यह भी है कि अधिकांश मजदूर ऐसे माता पिता की संतानें हैं जो कि अनपढ़, रूढ़िवादी व अंध-विश्वासी होते हैं।

3 **नैतिक गुण** **प्रो० मार्शल ने कहा है कि श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर नैतिकता का भी प्रभाव पड़ता है।** कर्त्तव्यनिष्ठ और ईमानदार श्रमिक चरित्रहीन तथा बेईमान श्रमिकों से अधिक कार्य कर सकते हैं।

4 **आत्म-विश्वास** आत्म विश्वास शारीरिक शक्ति का स्रोत होता है। इस-लिए जिस श्रमिक को अपने आप में विश्वास होता है वह अधिक कार्य कर सकता है।

5 **श्रमिकों की सामान्य बुद्धि** एक सामान्य बुद्धिसम्पन्न मजदूर की कार्य-कुशलता एक मूर्ख मजदूर की कार्य कुशलता की अपेक्षा अधिक होती है, क्योंकि जिस श्रमिक में यह गुण होता है वह प्रत्येक कार्य को सोच-समझकर और विधिवत् करता है। यद्यपि सामान्य बुद्धि जन्मजात होती है लेकिन फिर भी उसे शिक्षा तथा वातावरण द्वारा विकसित किया जा सकता है।

6 **शिक्षा** श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर उनकी शिक्षा का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। मजदूरों को निम्न दो प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है—

(i) **सामान्य शिक्षा** सामान्य शिक्षा से मजदूरों की सामान्य बातों के बारे में ज्ञान विकसित होता है, उनका दृष्टिकोण व्यापक होता है और उनकी ग्राह्यशक्ति बढ़ जाती है।

(ii) **विशिष्ट शिक्षा** विशिष्ट शिक्षा के द्वारा मजदूरों को किसी विशेष व्यव-साय के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

शिक्षित तथा विशेष प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त किए हुए मजदूरों की कार्य-कुशलता अशिक्षित तथा गंवार मजदूरों से अधिक होती है।

7 **जीवन-स्तर** जिन श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊंचा होता है, उनको पौष्टिक भोजन, पर्याप्त वस्त्र, स्वस्थ एवं सुविधाजनक मकान आदि उपलब्ध होने के कारण उनमें काम करने की योग्यता उन मजदूरों से अधिक होती है जिनका जीवन स्तर निम्न कोटि का होता है तथा जिन्हें जीवनोपयोगी वस्तुएं न्यूनतम मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

II. कार्य की दशाएं तथा अन्य सुविधाएं श्रमिक की कार्य-कुशलता पर प्रभाव **डालने वाली कार्य संबंधी दशाएं इस प्रकार हैं—**

1. काम के घंटे · कार्य करने का समय भी कार्य-कुशलता पर प्रभाव डालता है। जहां श्रमिकों को अधिक समय तक कार्य करना पड़ता है वहां लगातार काम करने की

वजह स श्रमिकों के बुरी तरह थक जाने के कारण उनकी काय कुशलता कम हो जाती है। लेकिन जहा काम करने क घन्टे कम होते हैं और काय के दौरान श्रमिकों को विश्राम करने दिया जाता है वहा वे थकान का अनुभव नही करते और नित्य नवीन उत्साह के साथ अपना काय सम्पन्न करते हैं। फलत उनकी काय कुशलता बढ जाती है।

2 उचित पारिश्रमिक जहा श्रमिको को उनके का काय उचित पुरस्कार दिया जाता है जहा श्रमिको को ठीक समय पर मजदूरी मिल जाती है और जहा पर बोनस पेंशन तथा लाभ विभाजन सबधी योजनाए अपनायी जाती है वहा पर श्रमिक सतुष्ट होकर अधिक और अच्छा काय करते हैं इसीलिए वहा श्रमिक अधिक काय कुशल होते हैं। उचित पारिश्रमिक के अभाव मे जो परिणाम होता है वह इसके विपरीत ही होता है।

3 काय की प्रकृति मनुष्य के मन मे कष्टकर व नीरस कार्यों का करने की इच्छा कम होती है और मनोरजक तथा आसान कार्यों को करने की रुचि अधिक होती है। जो काय रुचिकर होते हैं उन्हे व्यक्ति लबे समय तक कर सकता है इससे उसकी काय कुशलता बढ जाती है जैसे डाक्टर प्रोफसर सगीतज्ञ व अभिनेता का काय। इसके विपरीत खानो के भीतर काय करने मे अथवा चमडो के कारखानो म काय करने मे श्रमिको की अधिक रुचि नही होती और उनकी काय क्षमता स्वाभाविक रूप म कम हो जाती है।

4 काय करने का स्थान तथा दशाए काय करने के स्थान तथा दशाओं का भी श्रमिको की काय कुशलता पर प्रभाव पडता है—

(i) श्रमिक जिस स्थान पर काय करता है वह स्वच्छ साफ सुथरा व हवादार होना चाहिए। इससे मजदूर की काय करने की इच्छा बढ जाती है और उसकी काय कुशलता मे वद्धि होती है। अधकारपूण गदे और ऐसे स्थान जहा पर मशीनो के चलन से घुटन का अनुभव होता है श्रमिको की काय कुशलता पर बुरा प्रभाव डालते है क्योंकि ऐसी परिस्थिति मे काम करने से उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति का धीरे धीरे ह्रास हो जाता है।

(ii) यदि कारखानो मे खतरनाक मशीनो स मजदूरो को सुरक्षित रखने की सतोषजनक व्यवस्था ह तो इसका श्रमिको की काय क्षमता पर अच्छा प्रभाव पडता है।

(iii) जहा मालिक मजदूरों के साथ अच्छा व्यवहार करता है वहा मजदूरो का काम करने मे ज्यादा मन लगता है और साथ ही उनकी काय क्षमता म भी वद्धि होती है।

5 काय मे स्वतत्रता यदि श्रमिक को अपना काय करने मे स्वतत्रता प्राप्त होती है तो व उत्पत्ति काय म कुछ आनन्द अनुभव करते है और उनका काम म अधिक मन लगा रहता है तथा उनकी काय क्षमता बढ जाती है। इसके विपरीत यदि उन्हे स्वतत्रता नही दी जाती और उनके काय पर आवश्यक नियत्रण लगा दिया जाता है तो वे सदा काम गलत होने अथवा मालिक का समथन प्राप्त न होने की आशका से डरते

रहते है और उनका काम म मन नही लगता। मूलत उनकी काय कुशलता कम हो जाती है।

6 भविष्य मे उन्नति की आशा यदि श्रमिको को इस बात का विश्वास हो जाता है कि अधिक श्रेष्ठ कार्य का करन पर उनकी पदोन्नति हो जाएगी तो उन्हे स्फूर्ति तथा प्ररणा प्राप्त होगी और वे मन लगा कर उत्साह से काम करेंगे। इससे उनकी कार्य-कुशलता म अनिवाय रूप से वृद्धि हो जाएगी लेकिन जहा उनको भविष्य मे किसी प्रकार की पदोन्नति की आशा नही रहती वहा उनकी काम करने की इच्छा शिथिल हो जाती है जिसके फलस्वरूप उनकी काय करने की क्षमता घट जाती है।

III अन्य परिस्थितिया 1 **जलवायु** देश या क्षेत्र की जलवायु श्रमिको की कार्य-कुशलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। इस प्रभाव को हम तीन भागो म बाटकर अध्ययन कर सकते हैं—

(i) काम करने की इच्छा बहुत गम या ठण्डी जलवायु मे मानव के लिए सुचारु रूप से काम कर पाना कठिन होता है। बहुत अधिक गर्मी म व्यक्ति आलसी होता जाता है और उसकी काय करने की इच्छा समाप्त हो जाती है तथा कड़ी सर्दी म अग ठिठुर जाते हैं और काय करना मुश्किल हो जाता है मजदूर शीतोष्ण जलवायु म बहुत अच्छी तरह काम करते है अत जिस देश की जलवायु शीतोष्ण होती है वहा श्रमिको को उपरोक्त परिस्थितियो का सामना नही करना पडता और उनकी कार्य कुशलता बढती है।

(ii) काम करने की आवश्यकता जलवायु मनुष्य की काम करने की आवश्यकता को भी निर्धारित करती है और उसकी काय कुशलता को प्रभावित करती है। जिन प्रदेशो मे जलवायु अच्छी होती है और फसलो की बहुतायत होती है वहा मनुष्य को अपनी आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए अधिक काम नही करना पडता। फलत उनकी कार्य-कुशलता उत्तम स्तर की नही होती।

(iii) आवश्यकताओं की सख्या चूकि गम जलवायु वाले देशो के लोगो की आवश्यकताए कम होती है इसलिए उनकी सतुष्टि के लिए अधिक कडे परिश्रम की आवश्यकता नही होती। थोडे म परिश्रम स ही उन्हे सन्तुष्ट किया जा सकता है और मनुष्य को थोडा सा ही श्रम करने की आदत पड जाती है। फलत उनकी काय कुशलता निम्न स्तर की होती है।

2 **सामाजिक दशाए** श्रम की काय क्षमता को प्रभावित करने वाली दशाओ म सामाजिक दशाए भी महत्वपूण है। जहा पर जातीय परपराओ के अनुसार काय का चुनाव करना पडता है सयुक्त कुटुब का बोझ उठाना पडता है वहा एसे सामाजिक वातावरण म रहने वाले श्रमिको की काय कुशलता कम रहती है।

3 **राजनीतिक परिस्थितियां** श्रम की काय कुशलता पर राजनीतिक परिस्थितियो का भी प्रभाव पडता है जैस—(क) एक परतन्त्र देश के श्रमिको की काय क्षमता बहुत कम रहती है क्योकि उनम नैतिक गुण एव आत्म विश्वास का अभाव रहता है। (ख) शाति और सुरक्षा का वातावरण रहने पर श्रमिक कार्य मे अधिक रुचि लेता है

जिससे उसकी उत्पादकता मे वृद्धि होती है। (ग) राष्ट्र की सकटकालीन परिस्थितियो मे श्रमिक पूर्ण मनोयोग से कार्य करने लगते है और उस समय उनकी कार्य-कुशलता बढ जाती है।

4 **धार्मिक जीवन एव सस्थाए** धर्म का प्रभाव भी श्रमिक की कार्य-क्षमता पर पडता है, जैसे—(क) धर्म लोगो को आध्यात्मवादी बना देता है जिससे व्यक्ति भौतिक सुखो की विशेष चिंता नही करते फलत लागो की कार्य-कुशलता कम हो जाती है। (ख) धार्मिक अध-विश्वासो के कारण ही भाग्यवादी श्रमिक अपने दु खमय जीवन को पूर्वजन्म का अभिशाप मानते है और अपनी कार्य क्षमता को बढाकर आय मे वृद्धि करने के लिए प्रयत्नशील नही होते। परिणामस्वरूप उनकी कार्य-कुशलता निम्न स्तर पर ही स्थिर हो जाती है।

5 **श्रमिक सघ** मजदूर की कार्य-कुशलता पर इस बात का भी प्रभाव पडता है कि श्रमिक सघ सगठित है या नही। यदि मजदूर सघ सगठित है तो वे श्रमिको के मानसिक, नैतिक शारीरिक और आर्थिक स्तर को ऊचा रखने मे सहायक होते हैं और निश्चय ही श्रमिक की कार्य कुशलता मे वृद्धि होती है। यदि श्रमिक सघ सगठित नही हैं और स्वार्थी नेताओ के हाथ मे पड गये हैं तो कार्य-क्षमता मे अवश्य ही कमी आएगी।

6 **अर्थव्यवस्था की प्रकृति** अर्थव्यवस्था तीन प्रकार की हो सकती है: (i) विकसित, (ii) अर्द्धविकसित (iii) अविकसित। चूकि विकसित अर्द्धव्यवस्था मे मजदूरो का जीवन-स्तर ऊचा होता है इसलिए उनकी कार्य क्षमता अर्द्धविकसित व अविकसित अर्थव्यवस्था मे काम करने वाले मजदूरो की अपेक्षा अधिक होती है।

7 **सरकारी नीति** जिस देश मे सरकार की औद्योगिक नीति मजदूरो के हित की रक्षा करती है, वहा श्रमिको की कार्य कुशलता अधिक होती है। श्रमिको के हितो की रक्षा श्रम सबधी कानून बनाकर की जाती है। इसी प्रकार जहा सामाजिक सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था रहती है वहा श्रमिक काम को पूरा मन लगाकर करते हैं और उनकी कार्य-कुशलता अधिक होती है।

8 **प्रबधक की कार्य-कुशलता** श्रमिको की कार्य कुशलता पर प्रबधक की योग्यता का भी प्रभाव पडता है। प्रबधक तीन प्रकार से श्रमिको की कार्य-कुशलता को प्रभावित कर सकता है—

(i) श्रमिको को उनकी योग्यतानुसार कार्य देकर,
(ii) श्रमिको को उत्पत्ति के अन्य साधनो के साथ आदर्श अनुपात मे लगाकर,
(iii) श्रमिको के साथ अच्छा व्यवहार करके।

सक्षेप मे, श्रमिको की कार्य-कुशलता पर प्रभाव डालने वाले तत्त्वो को पृष्ठ 65 पर चार्ट द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

श्रम की कार्य-कुशलता को प्रभावित करने वाले तत्व

(अ) श्रमिक के व्यक्तिगत गुण
- (i) जातीय गुण
- (ii) पैतृक गुण
- (iii) नैतिक गुण
- (iv) आत्म-विश्वास
- (v) श्रमिको की सामान्य बुद्धि
- (vi) शिक्षा—
  - (क) सामान्य शिक्षा
  - (ख) विशिष्ट शिक्षा
- (vii) जीवन-स्तर

(ब) कार्य की दशाए तथा अन्य सुविधाए
- (i) कार्य के घटे
- (ii) उचित पारिश्रमिक
- (iii) कार्य की प्रकृति
- (iv) कार्य करने का स्थान तथा दशाए
  - (क) स्थान की स्वच्छता
  - (ख) मशीनो से सतोष जनक सुरक्षा
  - (ग) मालिक का व्यवहार
- (v) कार्य मे स्वतत्रता
- (vi) भविष्य मे उन्नति की आशा

(स) अन्य परिस्थितियां
- (i) जलवायु
  - (क) काम करने की इच्छा
  - (ख) काम करने की आवश्यकता
  - (ग) आवश्यकताओं की सख्या
- (ii) सामाजिक दशाए
- (iii) राजनीतिक परिस्थितिया
  - (क) देश की स्वतत्रता
  - (ख) शाति और सुरक्षा
  - (ग) राष्ट्र की परिस्थितिया
- (iv) धार्मिक जीवन एव सस्थाए
  - (क) अध्यात्मवादिता
  - (ख) अध-विश्वास, भाग्यवादी
- (v) श्रमिक सघ
- (vi) अर्थव्यवस्था की प्रकृति
  - (1) विकसित
  - (2) अर्द्धविकसित
  - (3) अविकसित
- (vii) सरकारी नीति
- (viii) प्रबधक की कार्य-कुशलता
  - (क) श्रमिक को योग्यतानुसार कार्य
  - (ख) अन्य साधन से आदर्श अनुपात
  - (ग) व्यवहार

श्रमिक की कार्य-कुशलता से लाभ

श्रमिको की कार्य-कुशलता मे वृद्धि हो जाने से समाज के विभिन्न वर्ग लाभान्वित होते हैं।

1. श्रमिक : इससे स्वयं मजदूरों को ही लाभ पहुंचता है क्योंकि उनकी उत्पादकता अधिक होने पर उन्हें ऊंची मजदूरी तथा निरंतर रोजगार प्राप्त होते है।

2. उत्पादक : उत्पादक इससे लाभान्वित होते हैं क्योंकि जिन उत्पादकों के पास अधिक कार्य-कुशल श्रमिक होते हैं उनकी उत्पादन-लागत कम होती है।

3 राष्ट्र : कार्य-कुशल श्रमिक राष्ट्र के लिए मूल्यवान निधि होते हैं, क्योंकि कुशल श्रम से उत्पादन की मात्रा बढ़ती है और इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है।

4 उपभोक्ता : उपभोक्ता भी कुशल श्रमिक के कारण लाभान्वित होता है। क्योंकि इससे उसे अच्छी किस्म का माल सस्ते मूल्यों पर मिल जाता है।

भारतीय श्रमिकों की कार्य-कुशलता
(Efficiency of Indian Workers)

परम्परागत विचार यह है कि अन्य देशों की तुलना मे भारतीय श्रमिक सामान्य रूप मे अकुशल हैं। ऐसा कहा जाता है कि एक वस्त्र मिल मे भारत का श्रमिक 180 तकुओं को संभाल सकता है जबकि जापान का श्रमिक 240 तकुओं को, इंग्लैंड का 540 से 600 तकुओं को और अमेरिका का 1,120 तकुओं को उतने ही समय मे संभाल सकता है। औद्योगिक आयोग के सम्मुख **सर अलक्जेण्डर मैक रॉबर्ट** (**Sir Alexander Mac Robert**) ने स्पष्ट कहा था कि एक अंग्रेज श्रमिक एक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा 3 5 गुना अधिक काम करने की क्षमता रखता है। **श्री क्लीमेंट सिम्पसन** (Clement Simpson) के मतानुसार लंकाशायर के सूती वस्त्र उद्योग का एक श्रमिक भारतीय सूती वस्त्र उद्योग मे काम करने वाले 2 67 श्रमिकों की कार्य-कुशलता के समान है। कोयला खान उद्योग मे एक श्रमिक का औसत उत्पादन 260 टन है, जबकि ब्रिटेन, जर्मनी व अमेरिका के आकड़े क्रमश 629 टन, 899 टन तथा 2 168 टन हैं। भारतीय श्रमिकों की उत्पादकता गत कुछ वर्षों मे और भी कम हो गई है। योजना आयोग के मतानुसार जबकि श्रमिकों की संख्या मे 58 प्रतिशत की वृद्धि की गई, तो उत्पादन केवल 32 प्रतिशत बढ़ा और श्रमिक का प्रति घंटा उत्पादन 127 टन न गिरकर 100 टन रह गया।

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव मे अकुशल है ?
(Are Indian Labourers Really Inefficient ?)

उपरोक्त विवरण से यह धारणा बन जाना स्वाभाविक ही है कि भारतीय श्रमिक अकुशल हैं। यद्यपि यह सत्य है कि भारतीय श्रमिक इंग्लैंड या अमेरिका की तुलना मे कम कार्य-कुशल हैं तथापि उक्त मत एकपक्षीय है क्योंकि भारतीय मिलों के कम उत्पादन का दायित्व केवल भारतीय श्रमिकों का ही नहीं है, इसके लिए वातावरण तथा प्रबंध की अकुशलता भी आंशिक रूप मे उत्तरदायी हैं। हमारे श्रमिकों मे जन्मजात कोई दोष नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय द्वारा की गई जांच तथा श्रम जांच समिति की रिपोर्टों से यह धारणा असत्य सिद्ध होती है कि भारतीय श्रमि·

वास्तव में अकुशल हैं।

श्रम जांच समिति का कहना है : "उपलब्ध प्रकाशित प्रमाणों तथा उन सूचनाओं के आधार पर जिन्हें हम अपनी जांच के दौरान एकत्र कर सके हैं, हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि भारतीय श्रमिक की तथाकथित कार्य-अकुशलता बहुत सीमा तक मिथ्या है। समान कार्य की दशाएं, मजदूरी, कुशल प्रबंध तथा कारखाने के मशीन एवं अन्य उपकरण उपलब्ध होने पर भारतीय श्रमिक की कार्य-कुशलता अन्य देशों के श्रमिकों से कम नहीं है। इतना ही नहीं, जहां यांत्रिक उपकरण तथा प्रबंध-कुशलता का महत्त्व नहीं है, वहां कहीं-कहीं भारतीय श्रमिक विदेशों के श्रमिकों की अपेक्षा अधिक कार्य-कुशल पाए गए हैं।"

इसी प्रकार के विचार भारतीय उद्योगों की प्राविधिक कार्य-कुशलता के संबंध में ग्रेडी मिशन्स रिपोर्ट (Grady Missions Report) में भी प्रकट किए गए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है "भारतीय श्रमिक किसी भी उद्योग के लिए, जो कि देश की परिस्थितियों के अनुकूल हो, उपयुक्त होते हैं। मैंने जमशेदपुर में ऐसे मजदूरों को देखा जो कुछ वर्ष पूर्व संथाल के जंगलों में निवास करते थे और जिनके पास कोई शैक्षिक योग्यता नहीं थी। अब वे इस्पात की लाल तपती हुई छड़ों के बीच काम कर रहे हैं और रेल की पटरियां, चक्के तथा लोहे के कोण उसी कार्य-कुशलता से बनाते हैं जो इंग्लैंड के श्रमिक में पाई जाती है।"

सर थामस हालैंड व श्री सी० डब्लू० जैसे अनेक पाश्चात्य विशेषज्ञों का भी यही मत है कि भारतीय श्रमिकों को अकुशल कहना बहुत बड़ी गलती होगी। इस प्रकार के प्रमाणों की कमी नहीं जिनमें यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि भारतीय श्रमिक कार्य-अकुशल नहीं हैं। इसीलिए हैराल्ड बटलर ने कहा है कि भारतीय श्रमिकों की कार्य-कुशलता विवादग्रस्त है। भारतीय श्रमिकों की कार्य-कुशलता के संबंध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं, जिनके आधार पर ही हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीय श्रमिक कार्य-कुशल हैं या नहीं—

(अ) श्रम की औसत उत्पादकता और श्रम की स्वाभाविक कार्य-कुशलता अलग-अलग वस्तुएं हैं। प्रति व्यक्ति अधिक या कम उत्पादन होने से यह सिद्ध नहीं होता कि श्रम कार्य-कुशल या कार्य-अकुशल है। अतः दोनों में अंतर करना चाहिए।

(ब) उद्योगों में उत्पादन केवल श्रमिकों के कारण नहीं होता बल्कि वह कच्चे माल की प्रकृति, यंत्र या उपकरणों के प्रकार, कार्य-दशाओं व औद्योगिक संगठन आदि पर भी निर्भर करता है। यदि उत्पादन कम है तो उसके लिए केवल भारतीय श्रमिकों को ही उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

(स) बहुधा भारतीय और विदेशी श्रमिकों की तुलना अशिक्षित श्रमिकों की तुलना होती है।

(द) अनेकों आधुनिक भारतीय उद्योग इस बात को प्रमाणित करते हैं कि जिन उद्योगों में विदेशों जैसी सुविधाएं दी गई हैं वहां पर श्रमिकों की कार्य-कुशलता कम नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में अनेकों उद्योगपतियों और विद्वानों ने भारतीय श्रम को

कार्य-कुशलता की सराहना की है।

कुटीर उद्योगो मे जहा प्रबध और यत्र की कुशलता का महत्त्व नही है वहा भारतीय श्रमिको ने चमत्कार दिखाया है।

(य) चूकि भारत मे श्रम सस्ता है और सयत्र महगे हैं इसलिए उद्योगपति अधिक श्रमिक आर्थिक कारणो से रखते है। इस कारण वे अधिक श्रमिक नहीं रखते कि श्रमिक घटिया हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय श्रमिक केवल सापेक्षिक दृष्टि से भले ही अकुशल हो परन्तु वास्तव मे बिल्कुल अक्षम नही हैं। भारतीय श्रमिको की अन्य देशो से तुलना करते समय उपरोक्त अतरो को भी ध्यान मे रखना चाहिए। इस सबध मे रेगे समिति के ये शब्द उल्लेखनीय हैं "यदि यह देखा जाय कि इस देश मे कार्य करने के घटे बहुत लबे हैं, अल्प विश्राम कम है, प्रशिक्षण और परीक्षार्थियो के लिए सुविधाए बहुत अल्प हैं, आहार का स्तर और कल्याण सबधी सुविधाओ का स्तर बहुत निम्न है तथा अन्य देशो की अपेक्षा मजदूरी भी बहुत कम है, तो श्रमिको की तथाकथित कार्य-अकुशलता का कारण यह नही हो सकता कि हमारे देश के लोगो की बुद्धिमत्ता मे कुछ कमी है अथवा हमारे श्रमिको मे कार्य करने की रुचि नही है।"[1]

भारतीय श्रमिको की अकुशलता के कारण
(Causes of the Inefficiency of Indian Workers)

1 **प्रतिकूल जलवायु** भारत एक गर्म देश है। गर्मी के कारण यहा का श्रमिक अधिक परिश्रम नही कर पाता। वह थोडा-सा परिश्रम करने के बाद थकान अनुभव करने लगता है।

2 **प्रवासी प्रवृत्ति :** भारतीय औद्योगिक केंद्रो मे अधिकाश श्रमिक गावो मे आते है और वे गावो को पुन: लौटने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण श्रमिक कहीं भी स्थायी रूप से रहकर कुछ भी ठीक से नही सीख पाता। प्रवासी स्वभाव के कारण सेवायोजक श्रमिको को प्रशिक्षण देने पर भी अधिक व्यय करना पसद नही करता क्योकि वह जानता है कि श्रमिक किसी भी समय कार्य छोडकर जा सकता है।

3 **निम्न स्वास्थ्य स्तर :** अधिकाश श्रमिको को सतुलित भोजन नही मिल पाता, गदे मकानो मे रहना पडता है व अस्वास्थ्यप्रद परिस्थितियो मे काम करना पडता है जिसके परिणामस्वरूप उनका स्वास्थ्य प्राय खराब ही रहता है जिसम वे कठोर परिश्रम करने के अयोग्य हो जाते हैं और उनकी कार्य क्षमता क्षीण होने लगती है।

4 **अज्ञानता एव अशिक्षा :** सामान्यत: भारतीय श्रमिको मे शिक्षा का नितात अभाव है। अशिक्षित होने के कारण भारतीय श्रमिक रूढिवादी, अध-विश्वासी और भाग्यवादी हैं। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त इस देश के लिए तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधायें भी बहुत कम है। शिक्षा के प्रभाव को मार्शल ने व्यक्त करते हुए

1. Report, p 383

लिखा है 'कोई भी शिशु जो अधेरे मकान मे पैदा हुआ हो, अशिक्षित मा द्वारा जिसका पालन पोषण हुआ हो, जो लाभकारी बाहरी प्रभाव के अभाव मे युवा हुआ हो, वह कभी भी अच्छा श्रमिक और सम्मानित नागरिक नही बन सकता।"

5 **अल्प मजदूरी** भारतीय श्रमिको को मजदूरी बहुत कम मिलती है और वे निर्धन हैं। निर्धनता के कारण उन्हे न तो भरपेट भोजन मिल पाता है और न वे शिक्षा और कुशलता की वृद्धि के लिए आवश्यक अन्य सुविधाओ का ही प्रबध कर पाते हैं। फलत उनकी कार्य कुशलता कम रहती है।

6 **कार्य करने की असतोषजनक दशाए** औद्योगिक सस्थाओ मे कार्य करने की दशाए भी अत्यत असतोषजनक हैं, जैसे समुचित प्रकाश एव हवा का प्रबध न होना, नहाने एव विश्राम की सुविधाओ का अभाव, स्वच्छ पानी एव पाखाना-पेशाब व्यवस्था इत्यादि का अभाव। इन सबका श्रमिको की कार्य-क्षमता पर बुरा प्रभाव पडता है।

7 **कार्य के दीर्घ घटे** भारतीय श्रमिको को अपेक्षतया अधिक घटो तक कार्य करना पडता है। काम करने के घटो के फैलाव मे अवकाश की अवधि भी बहुत सीमित है। यद्यपि कारखाना अधिनियम के अतर्गत इस सबध मे सुधार के कुछ प्रयत्न किये गए हैं लेकिन अभी भी बहुत-से उद्योगो मे परिस्थितिया असतोषजनक हैं।

8 **आराम करने की मनोवृत्ति और अनुशासन की कमी** भारतीय श्रमिक की अकुशलता का एक महत्त्वपूण कारण उसकी आराम करने की मनोवत्ति एव अनुशासन की कमी है। यदि श्रमिक अपनी जिम्मेदारी का अनुभव नही करता और स्वय अपने हित तथा सेवायोजक के हित मे समानता नही समझता है तथा काम को टालता है तो इस बात के बावजूद कि उसकी सामर्थ्य अधिक काय अधिक कुशल ढग से करने की है, वह अकुशल बना रहता है। दुर्भाग्यवश भारतीय श्रमिको की मनोवृत्ति स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद से बिगडती गई है। वे अपने अधिकारो के प्रति तो अधिक जागरूक हो गये हैं, परतु कर्त्तव्यो के प्रति सजग नही हैं। प्राय सेवायोजक श्रमिको के कर्त्तव्य के उत्तरदायित्व एव अनुशासन की भावना मे दु खद ह्रास के सबध मे विलाप करते हुए पाते हैं। महगाई भत्ता और बोनस आदि का उत्पादन के आधार पर न करके केवल हाजिरी के आधार पर होने से पिछने कुछ वर्षो मे भारतीय श्रमिको मे अनुशासनहीनता के विकास को प्रोत्साहन मिला है।

9 **वैज्ञानिक प्रबध का अभाव** भारत के अधिकाश प्रबधक अकुशल हैं जो बहुत सीमा तक श्रमिको की कार्य-अकुशलता के लिए उत्तरदायी हैं। प्रबधको का दुर्व्यवहार, काम का दोषपूण विभाजन आदि ऐसे दोष हैं जिससे कार्य मे मन नही लगता।

10 **अन्य कारण** कुछ अन्य कारण भी भारतीय श्रमिको की कार्य-कुशलता के स्तर को घटाते हैं, वे कारण निम्नलिखित हैं—

(अ) श्रमिको की भर्ती की दोषपूर्ण पद्धति,

(ब) रहने की अस्वस्थ आवास व्यवस्था,

(स) ऋणग्रस्तता,

(द) श्रमिको का नैतिक पतन,

(य) निरीक्षण में असावधानी, और
(र) पुरानी मशीनें।

भारतीय श्रमिको की कार्य-क्षमता बढाने के उपाय
(Suggestions for Improving the Inefficiency of Indian Workers)

ऊपर दिये हुए कारणो के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष प र पहुचते हैं कि अधिकाश रूप मे उद्योग से सबधित और बाह्य परिस्थितिया ही भारतीय श्रमिको की कम कार्य-कुशलता के लिए उत्तरदायी हैं। अत उपर्युक्त परिस्थितियो को अनुकूल बनाकर भारतवर्ष म श्रमिकों की कार्य-कुशलता बढाई जा सकती है। भारतीय श्रमिको की कार्य-कुशलता बढान क लिए हमारे सुझाव निम्नलिखित हैं—

1 **स्वास्थ्य रक्षा** भारतीय श्रमिको की काय-कुशलता म वृद्धि करने क लिए आवश्यक है कि श्रमिको के स्वास्थ्य की रक्षा की जाय जिससे उनका शरीर दुबल न होन पाए और बार-बार बीमारी के शिकार न होने पायें।

2 **उचित मजदूरी** श्रमिको के लिए उचित मजदूरी की व्यवस्था होनी चाहिए। मजदूरी निश्चित करते समय रहन-सहन की लागत और श्रमिको की उत्पादकता दोनो ही बातो को ध्यान म रखना चाहिए। महगाई भत्ता व बोनस इत्यादि उत्पादन के आधार पर दिय जान चाहिए।

3 **सामान्य व तकनीकी शिक्षा की उचित व्यवस्था** शिक्षा का प्रसार करके भारतीय श्रमिको का मानसिक विकास किया जा सकता है जिससे वे काय शीघ्र सीख सकेंगे और अपने कत्तव्य को समझ पायेंगे। अत श्रमिकों को सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए हर समव आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। श्रमिको की काय-क्षमता बढाने के लिए उनके प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4 **वैज्ञानिक प्रबध** उद्योगो म प्रबध वैज्ञानिक ढग पर होना चाहिए। अन्य बातों के होते हुए भी यदि प्रबध वैज्ञानिक ढग से नहीं किया जाता तो उत्पादन मे वृद्धि नहीं होगी और प्रति श्रमिक औसत उत्पादन कम ही रहेगा। श्रमिक को प्रबध म भाग लेने के प्रश्न पर भी विचार करना चाहिए तब श्रमिक और अधिक उत्तरदायित्व का अनुभव करेंगे और उनकी काय-क्षमता म वृद्धि हो जायगी।

5 **प्रवासी स्वभाव का अत** अगर भारतीय श्रमिका की प्रवासी प्रवृत्ति का अत करके उनको स्थायी औद्योगिक श्रमिक बना दिया जाय तो उनके गाव चले जाने के कारण कार्य का जो अभ्यास रुक जाता है वह नहीं रुक सकेगा जिसम काय-क्षमता में कमी नहीं आयगी।

6 **कार्य करने की श्रेष्ठ दशाए** यद्यपि भारत सरकार न श्रमिकों की काय दशाओं में सुधार करने के उद्देश्य से कारखाना अधिनियम पारित किया है परतु इस अधिनियम का कठोरता के साथ पालन नहीं किया जा रहा है। फलत भारतीय उद्योग में कार्य करन की दशाए असतोषप्रद हैं। अत यदि उद्योगों में कार्य करने की दशाओं में सुधार करके वहा पर उचित प्रकाश व वायु, स्वच्छ जल तथा अच्छी कैंटीनों आदि की

व्यवस्था कर दी जाय तो श्रमिको का स्वास्थ्य अच्छा हो सकता है और वे अधिक काय-कुशल बन सकते हैं।

7 **कार्य करने के घंटो मे कमी** भारत मे गर्म जलवायु होने पर भी कार्य करने के घंट अधिक हैं जिसमे भारतीय श्रमिक की कार्य कुशलता कम हो गई है। अतः यदि भारत में भी कार्य के घंटो मे कमी कर दी जाय तो यहा के श्रमिको की कार्य-कुशलता बढ सकती है।

8 **मकानो की उचित व्यवस्था** भारतीय श्रमिको की कार्य-कुशलता मे वृद्धि के लिए यह नितात आवश्यक है कि श्रमिको के लिए खुले हुए स्थानो मे स्वच्छ और हवादार मकानो की व्यवस्था की जाय।

9 **ऋणग्रस्तता की समस्या का समाधान** ऋणग्रस्तता की समस्या का समाधान करके श्रमिको को चिंताओ से मुक्त करके उनकी कार्य कुशलता मे वृद्धि की जा सकती है। ऋणग्रस्तता मे मुक्ति प्राप्त करने का सरल उपाय यही है कि श्रमिको को प्राप्त होने वाली मजदूरिया बढा दी जाय जिससे उन्हे ऋणदाता की शरण मे न जाना पडे। इसके अतिरिक्त, सहकारी साख समितियो की स्थापना करके श्रमिको को सस्ते ऋण प्रदान किये जा सकते हैं।

10 **अच्छी मशीनों व यन्त्रो की व्यवस्था** श्रमिको की उत्पादकता बढाने के लिए यह आवश्यक है कि सेवायोजक श्रमिको को काम करने के लिए अच्छी मशीनों व उत्तम यन्त्रो की व्यवस्था करें।

11 **श्रम कल्याण व सामाजिक सुरक्षा** यद्यपि श्रम कल्याण व सामाजिक सुरक्षा की दिशा मे अनेक सराहनीय प्रयास किये गये हैं किंतु आवश्यकताओं को देखते हुए ये बहुत कम हैं। अत श्रम कल्याण-कार्यों मे वृद्धि की जानी चाहिए तथा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 का क्षेत्र और विस्तृत किया जाना चाहिए ताकि अधिक-से-अधिक लोगो को इससे लाभ मिल सके।

12 **श्रम सघों को सुदृढ करना :** श्रमिक सघ भी सदस्य श्रमिको के स्वास्थ्य की रक्षा करके उनके लिए मनोरजन के साधन जुटाकर उन्हें आवास सुविधा प्रदान करके तथा उनमे कर्त्तव्य भावना उत्पन्न करके उनकी कार्य-क्षमता को बढा सकते हैं। अत श्रमिक सघो को सुदृढ करने के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए। भारत मे रस्किन कॉलेज ऑफ़ ऑक्सफोर्ड के नमूने पर श्रम कॉलेजो की स्थापना की जानी चाहिए। कलकत्ते मे एशियन ट्रेड यूनियन कॉलेज की स्थापना करके इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया है।

13. **अन्य सुझाव** · (अ) देश मे इस प्रकार का वातावरण तैयार किया जाना चाहिए कि श्रमिक धूम्रपान, मदिरापान व वेश्यावृत्ति आदि बुरी क्रियाओ के उपभोग से घृणा करने लगें। (ब) भर्ती प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमे कार्य-कुशल श्रमिको को प्रत्येक प्रकार की सुविधा हो और कुशल श्रमिको को असुविधाओं का सामना न करना पडे। (स) श्रमिको का कठोर परिश्रम करने का आदी बनाने के लिए उन पर कठोर नियन्त्रण रखना अनिवार्य है। (द) यदि श्रमिक अच्छी प्रकार काम न

करें और निर्धारित मात्रा से कम उत्पादन करें तो सेवायोजको को उन्हें निकालने का अधिकार होना चाहिए। (य) मिल मालिको का श्रमिको के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। इससे श्रमिक अधिक सतुष्ट रहेंगे और दिल लगाकर कार्य करेंगे।

नियोजित विकास काल मे श्रमिको की कार्य-क्षमता अथवा उत्पादकता को बढाने के लिए हरेक सभव प्रयास किये जा रहे हैं। नियोजित विकास काल के 23 वर्षों में उनकी सभी आवश्यक परिस्थितियो मे सुधार लाने का प्रयत्न किया गया। उचित मजदूरी से लेकर श्रमिको के प्रबध और लाभ मे भाग लेने तक के वातावरण मे उन्नति की गई। सामाजिक सुरक्षा की सुविधाओ मे अधिकाधिक वृद्धि की गई। इन सबके फलस्वरूप उनकी उत्पादकता अथवा कार्य-कुशलता मे अवश्य ही वृद्धि हुई है। उदाहरणार्थ, 1961 में श्रम-उत्पादकता का जो सूचकाक 121 4 था वह 1978 म 152 हो गया। इसके उपरांत इसमे और अधिक वृद्धि हुई है।

वर्तमान परिस्थितियो मे, और विशेषकर पचम पचवर्षीय योजना मे इनकी उत्पादकता को बढाने के लिए क्रमबद्ध एव सगठित प्रयत्न किये गए। श्रमिक का विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन मे अधिक-से-अधिक सहयोग लिया जायेगा।

परीक्षा-प्रश्न

1 जीवन-स्तर की धारणा का भली प्रकार परीक्षण कीजिए। भारतीय श्रमिको का जीवन-स्तर निम्न होने के कारणो पर प्रकाश डालिए।

2 भारतीय श्रमिको के निम्न जीवन-स्तर को किस प्रकार सुधारा जा सकता है?

3 "असमर्थता अधिक काम के विरोध म भारतीय श्रमिक की कला पर आत्म-रक्षा से अधिक कुछ नही।"—विवेचना कीजिए। भारतीय श्रमिक की अक्षमता के क्या कारण हैं? उपायो का सुझाव दीजिए।

4 "भारत मे औद्योगिक श्रम की विचारणीय विशेषतायें, उसकी निर्धनता और उसकी कार्य-क्षमता का निम्न स्तर हैं। इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए। भारतीय श्रमिक की कार्य-क्षमता के सुधार के आवश्यक पगो को स्पष्ट कीजिए।

5 कानपुर श्रम जाच समिति, 1938 ने कहा था कि "हमारी इच्छा है कि हमारे श्रमिक उचित व आत्म-सम्मान का जीवन व्यतीत करें। हम चाहते हैं कि उनके पास उचित व पर्याप्त घर हो तथा उचित भोजन प्राप्त हो। उनके बच्चो को पर्याप्त भोजन प्राप्त हो और भली प्रकार से शिक्षित हो ताकि देश मे कार्य-कुशल श्रम-शक्ति का निर्माण हो सके।" इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए तथा प्रकाश डालिए कि पहली दो पचवर्षीय योजनाओ मे इन उद्देश्यो की पूर्ति कहा तक की जा चुकी है।

6 "औद्योगिक शाति व प्रगति के आधार हैं बढी हुई कार्य-क्षमता, उच्चतर जीवन-स्तर और सामाजिक सुरक्षा का प्राप्त होना तथा विस्तृत व पर्याप्त क्रय-शक्ति का

जनसख्या मे समुचित आबटन।" स्पष्ट कीजिए।

7. "जिसको हम अक्षमता कहते हैं वह भारतीय श्रमिको की दृष्टि से अत्यधिक काम के विरुद्ध एक तर्क से अधिक कुछ नही है।" आलोचना कीजिए। भारतीय श्रमिको की अक्षमता के क्या कारण हैं ? उपचार भी बताइये।

अध्याय 6

औद्योगिक श्रम की भर्ती

(Recruitment of Industrial Labour)

किसी भी उद्योग मे श्रमिको की नियुक्ति के लिए सर्वप्रथम समस्या श्रमिको की भर्ती की है। भर्ती का अर्थ है उद्योगो द्वारा जनसख्या मे से आवश्यक श्रमिको की नियुक्ति करना। भर्ती के बाद ही कोई व्यक्ति श्रम शास्त्र मे श्रमिक कहलाता है। श्रम जाच समिति ने उचित ही लिखा है "श्रमिको को रोजगार देने मे भर्ती प्रथम सोपान है। अतः उद्योगो की सफलता या असफलता स्वभावतः और बहुत कुछ उन उपायो और सगठनो पर निर्भर करती है जिनके द्वारा श्रमिक उद्योगो तक पहुचते हैं।"[1] प्रत्येक श्रमिक यदि अपनी योग्यता के अनुकूल कार्य पाता है और कार्य के अनुकूल श्रमिक की नियुक्ति की जाती है तो कार्य-कुशलता और उत्पादन मे वृद्धि होती है। इसके विपरीत, यदि श्रमिक की नियुक्ति कार्य और उसकी कुशलता के अनुकूल नही होती तो उत्पादन व कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव पडता है। सार्वजनिक नीति तथा देश की आर्थिक स्थिति के अनुकूल मानव-शक्ति के विकास, उपयोग तथा वितरण के दृष्टिकोण से भी भर्ती पद्धति का अध्ययन आवश्यक है। एक विकासशील देश के लिए यह नितात आवश्यक है कि ऐसी नीति और परिस्थितिया विकसित की जाए कि एक स्थायी श्रम-शक्ति का निर्माण हो तथा समुचित रूप से प्रशिक्षित और योग्य श्रमिक उद्योग के लिए निरतर उपलब्ध होते रहें ताकि उद्योग की वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताए पूरी हो सकें। औद्योगिक प्रगति व उन्नतिशील देशो मे श्रमिको की भर्ती इसलिए प्राथमिक विषय हो गई है। परतु दुर्भाग्यवश भारतवर्ष मे विभिन्न उद्योगो मे श्रमिको की भर्ती मे श्रम और श्रम प्रबध के कोई वैज्ञानिक सिद्धात न अपनाये जाने के कारण बडी बेढगी भर्ती पद्धतिया विकसित हो गई हैं। अधिकाश सगठन व असगठित उद्योग श्रमिको की भर्ती के लिए मध्यस्थो पर निर्भर करते हैं। विगत कुछ वर्षों मे स्थिति मे अवश्य परिवर्तन हुआ है और अधिकाश भारतीय उद्योगो को कारखाने के दरवाजे पर ही पर्याप्त और कभी-कभी आवश्यकता से अधिक श्रमिक उपलब्ध हो जाते हैं। सामान्य रूप से श्रमिको की पूर्ति मे मोड़-बिंदु वर्तमान शताब्दी मे 1930 के बाद हुआ। इससे पूर्व श्रमिको की सेवाओ के लिए सेवायोजको मे प्रतियोगिता रहती थी और इसीलिए आवश्यक श्रमिक भर्ती करने हेतु वे सब प्रकार के साधन प्रयोग में लाते थे।

1 Labour Investigation Committee, Main Report, p. 76.

भारत मे भर्ती की पद्धति
(Methods of Recruitment in India)

हमारे देश मे औद्योगिक श्रमिको की भर्ती निम्नलिखित ढग से की जाती है—

मध्यस्थो द्वारा भर्ती

जब किसी उद्योग मे उद्योगपति स्वय प्रत्यक्ष रूप से श्रमिको को कार्य पर न लगाकर किसी मध्यस्थ की सहायता लेता है और उस श्रमिक को कार्य पर लगाने और हटाने का पूर्ण अधिकार इस मध्यस्थ को ही होता है तो ऐसी विधि को मध्यस्थो द्वारा भर्ती कहा जाता है। मध्यस्थो द्वारा श्रमिको की भर्ती हमारे बहुत से उद्योगो की दीर्घ-काल तक एक विशेषता रही है। ये मध्यस्थ विभिन्न भागों मे विभिन्न नामो से पुकारे जाते हैं जैसे—जॉबर (Jobber), सरदार, चौधरी, मिस्त्री, मुकद्दम, फोरमैन, ठकेदार आदि। बडे उद्योगो मे स्त्री मध्यस्थ भी होती है जो कि नाइकीन, मुकद्दमीन, चौधरानी, ठेकेदारिनी आदि कहलाती हैं। प्रारभ मे मध्यस्थों की आवश्यकता गावों से सपर्क रखने के लिए और श्रमिको को नगरो तक लाने के लिए रहती थी। परतु अब स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया है, क्योकि श्रमिक स्वय ही रोजगार की सुविधा अच्छी मजदूरी और अन्य सुविधाओ से आकर्षित होकर नगरो मे आ जाते हैं। फिर भी भर्ती का कार्य सेवा-योजको ने सीधे अपने हाथो में न लेकर बहुत कुछ मध्यस्थो पर छोड रखा है और नयी भर्तिया प्रायः मध्यस्थो द्वारा की जाती हैं।

मध्यस्थो के कार्य

श्रम-भर्ती व श्रम-प्रशासन मे मध्यस्थ बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं जैसे—

1 आवश्यक श्रमिको को खोजकर कार्य करने के लिए लाना।

2. श्रमिको की पदोन्नति, प्रशिक्षण, अवकाश, दड, आवास व्यवस्था आदि का उत्तरदायित्व भी बहुधा इनका होता है।

3. मध्यस्थ श्रमिको के कार्यों की देखभाल भी करता है।

4 श्रमिको के पारिवारिक मामले मे हर प्रकार की सहायता देता है आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण भी देता है। वस्तुत: वह श्रमिको का मित्र, दार्शनिक तथा पथ-प्रदर्शक सभी कुछ होता है।

5 कुछ मध्यस्थ कारखानो मे कुशल कार्य जैसे मिस्त्री आदि का कार्य भी करते हैं और अकुशल श्रमिको की सहायता करते हैं।

6 सेवायोजक मध्यस्थों पर श्रमिको की आवश्यकताओ की शिकायतो को जानने के लिए तथा उनकी योजनायें उन तक पहुचाने के लिए निर्भर रहते हैं।

7. कभी-कभी सरकार को भी इन मध्यस्थो का आश्रय लेना पडता है और उचित कमीशन देना पडता है।

इस प्रकार, मध्यस्थ एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। वह प्रबधको और मजदूरो के

बीच की एक कड़ी होता है। शाही आयोग ने लिखा है 'मध्यस्थ भारत मे सरदार, मिस्त्री, मुकद्दम आदि अनेको नामो से जाना जाता है और अकेला अनेको महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।"[1]

मध्यस्थो द्वारा भर्ती के दोष

1931 मे शाही श्रम आयोग से लगाकर अब तक जितनी भी श्रम अनुसधान समितिया नियुक्त हुई हैं सभी ने इस पद्धति की कटु आलोचना की है। सक्षेप मे, मध्यस्थो द्वारा भर्ती प्रणाली के प्रमुख दोष निम्नलिखित है—

1 **श्रमिकों का शोषण** मध्यस्थो द्वारा श्रमिको का बहुत शोषण होता है। मध्यस्थ मजदूरी का एक भाग अपने हक या दस्तूरी के रूप मे लेते हैं। इनको प्रसन्न रखने के लिए समय समय पर विभिन्न आहार व नशीले पेय पदार्थ भी श्रमिक दिया करते हैं। इसके अतिरिक्त, ऊची ब्याज दर पर मे रुपया उधार देते हैं। इस प्रकार श्रमिको की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है। **श्रम आयोग** के अनुसार मध्यस्थ प्रणाली द्वारा श्रमिको का आर्थिक शोषण होता है। उनका भविष्य मध्यस्थ की कृपा पर निर्भर रहता है। फलस्वरूप मध्यस्थ को प्रसन्न रखने के लिए वह गलत कार्य करने को भी बाध्य रहता है।

2 **भ्रष्टाचार** मध्यस्थो के कारण कारखानो मे बहुत-से अनैतिक कार्य होते हैं। शाही श्रम आयोग ने इस प्रणाली के दोषो को बताते हुए लिखा था "जॉबर की स्थिति के अनेक प्रलोभन होते हैं और यह आश्चर्य की बात होगी कि वे इन अवसरो का लाभ न उठावें।" स्पष्ट है कि रिश्वत और भ्रष्टाचार विभिन्न मध्यस्थो द्वारा श्रमिको की भर्ती करने की प्रणाली के प्रमुख दोष रहे हैं।[2] इन मध्यस्थो का मुख्य उद्देश्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति करना होता है। अत वे इसके लिए भी निंदनीय कार्य कर सकते हैं, जैसे—पुराने श्रमिको को हटाना और उनके स्थान पर नये लोगो को नियुक्त कराना, घूस लेकर अयोग्य व्यक्ति को कार्य पर लगाना। **अहमदाबाद वस्त्र श्रम सगठन** ने इस विषय पर टिप्पणी की है सैकडो कुशल और योग्य श्रमिक सडको पर बेकार घूमते रहते हैं और अनेक अयोग्य श्रमिक कारखानो म उन कामो पर लगे हुए होते हैं जिनके लिए उनमे कोई योग्यता नही होती, अतिरिक्त इसके कि वे उस नौकरी के लिए मध्यस्थो को रिश्वत देने को तैयार हैं।[3] इस प्रकार के कार्यो स सपूर्ण उद्योग का अनुशासन और वातावरण दूषित हो जाता है। अधिकाश अनैतिक कार्यों मे इनका सहयोग रहता है। महिला श्रमिकों के साथ इनका व्यवहार बहुत निर्दयतापूर्ण रहता है। चरित्रहीन स्त्रिया ही प्राय जॉबर हुआ करती हैं जो स्त्री श्रमिको के अस्तित्व को लूटने

1 Report of the Royal Commission on Labour in India, p 21.
2 Ibid.
3. Replies to Questionnaire of the Textile Labour Enquiry Committee submitted by the Textile Association Ahmedabad, p. 49.

मे भी सकोच नही करती। अपने आर्थिक लाभ या अपने किसी अफसर या मालिक को खुश करने के लिए ये स्त्री मध्यस्थ भोली भाली और सच्चरित्र स्त्रियो को अनैतिक रास्तो पर ले जाती हैं। डॉ० राधा कमल मुकर्जी ने अपने अनुसधानो के आधार पर इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

3 **श्रमिक तथा मालिको मे सघर्ष** औद्योगिक सबधो मे मध्यस्थो का बुरा प्रभाव पडता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस प्रकार की भर्ती से श्रमिको व सेवा-योजको के बीच प्रत्यक्ष सबध स्थापित नही हो पाता। झूठी शिकायतें, चुगली, निंदा आदि के द्वारा ये श्रमिको व मालिको म अनावश्यक मतभेद उत्पन्न कर देते हैं जो कभी भी विवाद का रूप धारण कर सकता है।

4 **उत्पादन मे कमी** जो लोग मध्यस्थो द्वारा नियुक्त किये जाते हैं वे अधिकतर उनके मित्र अथवा कुटुम्बी ही होते हैं, अथवा ऐसे लोग होते है जो उन्हे अधिक-स-अधिक घूस दे सकते हैं। फलत उद्योगो मे कुशल श्रमिको के स्थान पर अकुशल श्रमिको की भर्ती हो जाती है। इसका परिणाम उद्योगपतियो को न्यून लाभ के रूप मे तथा देश को कम राष्ट्रीय उत्पादन के रूप मे सहन करना पड़ता है।

5 **अनुपस्थितता व श्रम परिवर्तन मे वृद्धि** मध्यस्थ श्रमिको को गाव स अच्छी मजदूरी तथा अच्छे व्यवसाय का प्रलोभन देकर शहरो म लाते हैं परतु जब उन्ह जीवन-यापन योग्य मजदूरी नही मिलती और व्यवसाय म अस्थिरता का सामना करना पडता है तो वे अपने गाव वापस चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त मध्यस्थो के शोषण से विवश होकर भी अनक श्रमिक पद त्याग करके गाव वापस चले जाते हैं। इसस अनु-पस्थितता बढती है। श्रम परिवतन मे वृद्धि इस कारण होती है कि मध्यस्थ रिश्वत आदि क प्रलोभन मे पुरान कर्मचारियो को नौकरी से निकाल देते हैं और उनक स्थान पर नय श्रमिको को भर्ती कर लेत हैं।

6 **श्रम सघ का कमजोर होना** श्रम सघ क लिए भी मध्यस्थ अभिशाप होते हैं क्योकि उनकी सहानुभूति प्रबधको के साथ होती है। अत श्रमिको क हित के लिए य कभी ईमानदारी स सघर्ष नहा करत। प्राय इनकी सहायता से प्रबधक श्रम आदोलन को कमजोर बनाने का प्रयत्न करते है।

7 **शहरो मे बेरोजगारो की सख्या मे वृद्धि** औद्योगिक नगरो म बेराजगारो की एक बाढ सी आइ रहन का कारण मध्यस्थो द्वारा भर्ती पद्धति ही है। कारण यह है कि मध्यस्थो क हाथ म नौकरी दिलवाने की शक्ति होती ह। इसलिए इनके नात-रिश्तेदार व इष्टमित्र नौकरी पान के लालच म गाव छोडकर शहर आ जात हैं जिसम शहर म बरोजगारो की सख्या बढती है।

उपरोक्त दोषो क रहते हुए भी म यस्थ प्रणाली अभी तक भी समाप्त नहा हो पा रही है। **श्रम जाच समिति** ने लिखा है यद्यपि मध्यस्थ प्रथा अनेक दोषो स युक्त है परतु भारतीय श्रम का इतना विकास नहा हुआ है कि इस प्रणाली को पूरी तरह समाप्त किया जा सक।[1] आधुनिक वर्षो मे इस बात क प्रयत्न किय गय हैं कि उद्योग

1 Labour Investigation Committee Main Report p 78

मे श्रमिको को रोजगार देने के सबध मे मध्यस्थो के अधिकार और प्रभाव घटते जायें।

मध्यस्थो द्वारा भर्ती की पद्धति मे सुधार विगत कुछ वर्षो मे मध्यस्थ की शक्ति को कम करने व भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये है। नियोक्ता सघो व श्रम जाच समितियो ने भ्रष्टाचार चलन को स्वीकार किया है। अहमदाबाद, बबई, शोल पुर कानपुर आदि केंद्रो मे इस दिशा मे अनेक सुधार किये गये हैं। यदि व्यवस्थित रूप से प्रयत्न किया जाय तो रिश्वत के दोष को बहुत कम किया जा सकता है। **शाही श्रम आयोग** ने इस प्रणाली को समाप्त करने के लिए उच्च शिक्षा-प्राप्त श्रम अधिकारियो की नियुक्ति का सुझाव दिया था। आयोग का यह भी सुझाव था कि महिला श्रमिको की देख रेख के लिए शिक्षित महिलाओ की ही नियुक्ति की जानी चाहिए। अनेको उद्योगो ने इस प्रकार के अधिकारी नियुक्त भी किये है। परतु इनका भी काम मध्यस्थो के बिना नही चल पाया है।

भारत मे वतमान समय मे तीव्र औद्योगीकरण के लिए उद्योगो के आधुनिकीकरण की बहुत आवश्यकता है। भर्ती की मध्यस्थ प्रणाली अत्यत पुरानी, अवैज्ञानिक और बेढगी है। अत उद्योगो मे मध्यस्थ प्रणाली को समाप्त करने का समय आ गया है। इनके द्वारा बहुत-सी समस्याए पैदा होती हैं जो औद्योगीकरण की गति को अवरुद्ध करती है। मध्यस्थ चाहे उद्योग मे हो अथवा शासन मे, तभी सहन हो सकते हैं जब उनका कोई वास्तविक उपयोग हो। सक्षेप मे, भारत की वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि मध्यस्थ प्रणाली को पूणतया समाप्त करन की आवश्यकता है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किय जा सकते हैं—

1 रोजगार दफ्तरो का सगठन अधिक श्रेष्ठ ढग से किया जाना चाहिए। यद्यपि रोजगार दफ्तर भी मध्यस्थ सस्थाए ही है परतु वे मध्यस्थ प्रणाली के अनेको दोषो से मुक्त हैं।

2 प्रत्यक्ष भर्ती को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

3 उद्योगो मे कुशल, प्रशिक्षित व सुहृद श्रम अधिकारियो की नियुक्ति होनी चाहिए जो श्रमिकों की समस्याओ को समझ सकें और उनका विश्वास प्राप्त कर सकें।

4 मजदूरो को प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण स्कूल खोले जाने चाहिए।

5 उद्योगो मे सामूहिक सौदेबाजी को अपनाना चाहिए अर्थात् उद्योगपतियो को मजदूरो के सगठनो से प्रत्यक्ष रूप से वार्ता करनी चाहिए।

ठेकेदारो द्वारा भर्ती

भारत के अनक उद्योगो मे श्रमिको की भर्ती के लिए ठेके की प्रथा प्रचलित है। ठेकेदार को श्रमिको की भर्ती का ठेका दे दिया जाता है। ठेकेदार प्रथा भी मध्यस्थ प्रणाली का ही एक रूप है। अतर यह है कि इस प्रथा म ठेकेदार श्रमिको की भर्ती करते है और उनसे स्वय काम लेते है। श्रमिक उद्योगपतियो का कमचारी नही होता, वह ठेकेदारो का ही कर्मचारी होता है। मुख्य उद्योग जिसमे अधिकतर ठेके का श्रम लगाया जाता है वे है— इजीनियरी, **केंद्रीय तथा प्रातीय** विभाग, कुछ क्षेत्रो मे सूती वस्त्र उद्योग, गोदी-

बाडा (dock-yard), सीमेंट, कागज उद्योग, नारियल की रस्सी से चटाई बनाना और खानें+सूती वस्त्र उद्योग मे ठेके का श्रम अधिकतर मिश्रण करना, कधी करना रगना, विरजन तथा परिसज्जा आदि कार्यों के लिए लगाया जाता है। खाना मे अधिकतर श्रम ठेकेदारो द्वारा रखा जाता है।

ठेके का श्रम लोकप्रिय क्यो ? ठेके पर श्रमिको की भर्ती बहुत लोकप्रिय है, इसके प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—(अ) अल्प सूचना पर ही मिल मालिको को आवश्यक श्रम-शक्ति प्राप्त हो जाती है। (ब) श्रमिको से काम लेने व काम निश्चित समय पर समाप्त करने का उत्तरदायित्व उद्योगपतियो पर ही नही होता। (स) ठेके पर काम करवाना सस्ता और आसान पडता है। (द) मालिक श्रमिको के प्रति समस्त उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। श्रम कल्याण एव सामाजिक सुरक्षा के कानूनो के अनुसार श्रमिको को कल्याण एव सुरक्षा सबधी जो सुविधाए अनिवार्यत देनी पडती हैं, मालिक उनसे मुक्त होते हैं और असुविधाओ पर व्यय होने वाली सपूर्ण राशि बच जाती है। अत स्पष्ट है कि ठेके के श्रम मे उद्योगपतियो को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।

ठेके के श्रम के दोष ठेके पर भर्ती प्रणाली के उपरोक्त लाभो से हानिया कही अधिक हैं। इसीलिए शाही श्रम आयोग विहार श्रम जाच समिति, बबई वस्त्र श्रम जाच समिति आदि ने इस प्रणाली की कटु आलोचना की है। इस प्रथा की उल्लेखनीय हानिया इस प्रकार हैं—

(अ) ठेके के श्रमिको को प्राय बहुत कम मजदूरी दी जाती है क्योकि ठेकेदार उन्हीं श्रमिको को भर्ती करते हैं जो कम-से कम मजदूरी पर कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं। यही नहीं ठेकेदार विविध ढगो से श्रमिको का अनावश्यक शोषण करते है। ठेके के श्रमिको से अधिक घटो तक काम लिया जाता है।

(ब) ठेका प्रणाली मे मिल मालिक श्रम अधिनियमो की व्यवस्था से विशेष रूप से कारखाना अधिनियम वेतन अदायगी अधिनियम मातृत्व लाभ अधिनियम आदि से बच जाता है। यह श्रमिको के लिए बहुत बडी हानि है।

(स) ठेकेदार श्रमिको के प्रति किसी भी प्रकार के नैतिक उत्तरदायित्व का अनुभव नही करते। यही कारण है कि श्रमिको के स्वास्थ्य खान पीने, विश्राम आवास-निवास किसी भी विषय पर वे ध्यान नहीं देते।

निष्कर्ष उपर्युक्त दोषो को दृष्टि मे रखकर यह उचित जान पडता है कि जहा भी सभव हो इस पद्धति को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। योजना आयोग ने द्वितीय पचवर्षीय योजना मे ठेका श्रम पर विचार किया है। ठेका श्रम की दो प्रमुख समस्याए हैं —प्रथम उनकी कार्य दशाओ का नियत्रण करना और द्वितीय, लगातार रोजगार सुनिश्चित करना। इन समस्याओ के समाधान के लिए निम्नलिखित कार्य किये जाने आवश्यक है—

1 विभिन्न उद्योगो मे इस समस्या के विस्तार तथा स्वभाव का अध्ययन करना।

2 इस बात की जाच करना कि कहा ठेका श्रम शनै समाप्त किया जा सकता है।

3. उन कार्यों को निश्चित करना जहा मजदूरी का भुगतान तथा अच्छी कार्य-स्थिति की जिम्मेदारी ठेकेदार के साथ-साथ मुख्य सेवायोजक पर भी डाली जा सके।

4 जहा सभव हो, ठेका पद्धति को शनैः-शनैः समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जो श्रमिक बेरोजगार हुए हैं उन्हें दूसरे कार्यों पर लगाया जाय।

5. मुख्य सेवायोजक ने जो दूसरे श्रमिक लगाये हैं और उन्हे जो कार्य स्थिति तथा सुरक्षा प्राप्त है वह ठेका श्रम के लिए भी प्राप्त की जाय।

6 जहा भी सभव हो सके स्थायीकरण की पद्धति प्रारभ की जाय।

प्रत्यक्ष भर्ती की पद्धति

बहुत-से कारखानो मे प्रत्यक्ष रूप से भी भर्ती की जाती है। यह प्रणाली साधारणतया इस प्रकार है—कारखाने के गेट पर इस आशय की सूचना चिपका दी जाती है कि अमुक दिन अमुक पद के लिए इतने श्रमिको की भर्ती की जायेगी। उस दिन बेरोजगार श्रमिक कारखाने के गेट पर आकर उपस्थित हो जाते है और मिल के जनरल मैनेजर अथवा श्रम निरीक्षक आवश्यकतानुसार श्रमिको का चुनाव कुछ पूछ-ताछ या प्राथमिक परीक्षा के उपरात कर लेते हैं। पजाब, बबई, तमिलनाडु व पश्चिमी बगाल मे यह पद्धति बहुत प्रचलित है।

लाभ : इस पद्धति के कुछ अपने लाभ हैं, जैसे—(अ) मध्यस्थ प्रणाली के समस्त दोष इस प्रणाली के द्वारा दूर हो जाते हैं। (ब) इस पद्धति के अनुसार कुशल श्रमिको का चुनाव करके उनकी भर्ती की जाती है जिससे फैक्टरी की उत्पादन-शक्ति बढ जाती है।

दोष : (अ) यह पद्धति वास्तव मे अकुशल श्रमिको की भर्ती के लिए ही अधिक उपयुक्त है। कारण यह है कि कारखाने के दरवाजे पर उपस्थित होने वाले श्रमिको मे अधिकतर फैक्टरी मे कार्य करने वाले श्रमिको के सबधी ही होते हैं और अन्य बेरोजगार श्रमिको को इन रिक्त स्थानो की सूचना तक नही मिल पाती। (ब) इसमे श्रमिकों के चुनाव का अधिकार कारखाने के अधिकारियो के हाथ मे रहता है और प्राय ये लोग उन्ही लोगो की भर्ती करते है जो इन्हे अच्छी रकम घूस के रूप मे देते है अथवा जो इनके पास सिफारिशो को पहुचाने मे सफल होते हैं।

श्रमिक संघो मे भर्ती

इस विधि के अनुसार रिक्त स्थानो की सूचना श्रम सघो को दे दी जाती है और श्रम सघो के पास बेरोजगार श्रमिको की सूची होती है। सूचना मिलते ही श्रम सघ उन उम्मीदवारो के नाम भेज देते हैं। उनके चुनाव के सबध मे अतिम फैसला प्रबधको द्वारा किया जाता है।

बदली पद्धति

1935 मे बबई के मिल मालिक सघ ने बदली पद्धति को शुरू किया था। इस

पद्धति के अंतर्गत प्रत्येक माह की पहली तारीख को कुछ चुने हुए लोगो को बदली-कार्ड दे दिये जाते हैं और उनसे प्रत्येक सुबह को मिल मे उपस्थित होने के लिए कहा जाता है जिससे कि उनमे से भर्ती करके रिक्त स्थानो की पूर्ति की जा सके। स्थायी पद के लिए पुराने लोगो को प्राथमिकता दी जाती है। इस पद्धति मे गुण यह है कि मिलो को स्थिर, पर्याप्त, प्रशिक्षित तथा योग्य बदली श्रमिक प्राप्त हो जाता है। परतु बदली श्रमिक की सख्या अधिक होने के कारण इन्हें इतना कार्य नही मिलता जिससे कि वे अपना जीवन-निर्वाह कर सकें।

श्रम अधिकारियों द्वारा भर्ती

कुछ उद्योगों मे श्रम अधिकारियो द्वारा भर्ती की पद्धति प्रचलित है। ये श्रम अधिकारी अपने ढग से रिक्त स्थानों का प्रचार करते हैं और फिर एक निश्चित तिथि पर श्रमिको को एकत्रित करके उनमे से योग्य श्रमिकों की भर्ती कर लेते हैं। कभी-कभी ये अधिकारी भर्ती के लिए गावो मे जाते हैं और श्रमिको से सबध स्थापित करते हैं। लेकिन उनको अधिक सफलता नही मिल पाती क्योकि अपरिचित होने के कारण वे मजदूरो मे वह विश्वास पैदा नही कर पाते जो कि स्थानीय व्यक्ति कर सकते हैं।

श्रम संबंधियों की नियुक्ति

इस विधि के अनुसार रिक्त स्थानो पर फैक्टरी मे काम करने वाले श्रमिको के पुत्रो और अन्य सबधियो को ही रखा जाता है। इस विधि को अपनाकर उद्योगपति श्रमिको का सहयोग व विश्वास प्राप्त कर सकता है। परतु व्यावहारिक रूप मे यह अधिक पक्षपातपूर्ण सिद्ध हुई है क्योकि मालिक प्राय उन श्रमिको के बच्चो तथा सबधियो को ही भर्ती करते हैं जो उनकी खूब खुशामद करते हैं चाहे ऐसे श्रमिको के बच्चे कितने ही अयोग्य क्यों न हो।

स्थायीकरण पद्धति

कुछ औद्योगिक केन्द्रो मे स्थायीकरण (Decasualization) योजनाए चल रही हैं। इस पद्धति के द्वारा श्रमिको की भर्ती को नियमित करने का प्रयत्न किया जाता है और इस उद्देश्य से बदली के श्रमिको पर नियत्रण रखा जाता है। इसीलिए इसे बदली नियत्रण परियोजना अथवा बदली श्रमिको का स्थायीकरण कहते हैं। इस योजना के मुख्य रूप से दो उद्देश्य हैं—प्रथम, बदली श्रमिकों को नियमित रोजगार दिलाना और दूसरी ओर भर्ती मे मध्यस्थो के प्रभाव को समाप्त करना।

इस योजना का सूत्रपात भारत सरकार ने 1937 मे किया ताकि बदली श्रमिको के रिक्त स्थानो की पूर्ति की जा सके। जिस प्रकार इस पद्धति के द्वारा भारत के कुछ भागो मे कार्य हो रहा है उनके अनुसार इसके मुख्य स्वरूप निम्नलिखित हैं—

1. श्रमिको का एक सामान्य रजिस्टर रखा जाता है।
2. प्रत्येक श्रमिक जिसका नाम रजिस्टर मे लिखा जाता है, प्रतिदिन

स्थायीकरण दफ्तर मे उपस्थित होता है। यदि उस कोई कार्य नही दिया जाता तो उपस्थित होने का कुछ भत्ता मिलता है।

3 श्रमिको का आकार सेवायोजको की आवश्यकता पर निर्भर होता है।

4 मजदूरी, उपस्थिति भत्ता आदि की अदायगी का कार्य एक सत्ता द्वारा किया जाता है और यह सत्ता इसको उन मालिको से वसूल करती है जहा श्रमिको को कार्य करना होता है।

5 सेवायोजको मे प्रशासनिक लागत वसूल की जाती है और यह कुल मज्दूरी के कुछ प्रतिशत के रूप मे होती है।

6 प्राय इस पद्धति के पीछे वैधानिक स्वीकृति होती है।

गुण (अ) इस पद्धति से बहुत सीमा तक मध्यस्था का प्रभाव कम हो गया है।

(ब) इस पद्धति मे मिलो को नियमित और योग्य तथा पर्याप्त बदली श्रमिक प्राप्त हुए हैं।

दोष : (अ) इस पद्धति मे मिला म श्रमिको क उपयुक्त प्रशिक्षण पर कोई ध्यान नही दिया गया है।

(ब) इस पद्धति के अनुसार जो श्रमिक भेजे जाते हैं उन सभी को मिल मालिक कार्य पर नहीं लगाते।

(स) स्थायीकरण दफ्तर म श्रमिको का नाम लिखाना भी त्रुटिपूर्ण है क्योंकि यहा नाम 'सेवा प्रमाण पत्रों' के आधार पर लिखा जाता है। परतु इन प्रमाण पत्रो की सत्यता की जाच नही की जाती।

रोजगार दफ्तरो द्वारा भर्ती

वैज्ञानिक आधार पर श्रमिको की भर्ती करने का सर्वश्रेष्ठ साधन रोजगार दफ्तर है। रोजगार दफ्तर प्रत्येक प्रकार के श्रमिको के विषय मे विस्तृत विवरण अपने यहा रखते हैं और मिल मालिक अपने श्रमिको की माग इन दफ्तरो को भेजते है। उसी के अनसार रोजगार दफ्तर उचित श्रमिको को छाटकर इन उद्योगपतियों के पास भेज देता है। अतिम चुनाव मालिक करता है। (रोजगार दफ्तरो के बारे में विस्तृत विवेचन अगल अध्याय म करेंगे।)

विभिन्न उद्योगो मे भर्ती की प्रणाली
(Recruitment in Various Industries)

कारखानो मे श्रमिको की भर्ती

कारखानो मे अधिकतर प्रत्यक्ष रूप से भर्ती की जाती है। परिवेक्षण सबधी तथा सफेदपोश कार्यों के लिए विज्ञापन दिये जाते है। अकुशल श्रमिको की भर्ती कारखानो के मुख्य द्वार पर श्रम अधिकारियो द्वारा की जाती है। अधिक सगठित उद्योगो मे, जहा अनेक सस्थान एक ही स्थान पर केंद्रित हैं बदली नियत्रण व्यवस्था के द्वारा भर्ती

की जाती है। बबई, तमिलनाडु, पजाव, बिहार, उडीसा राज्यो मे सीधे भर्ती प्रणाली अधिक प्रचलित है जबकि आध्र प्रदेश मे श्रमिको की भर्ती अधिकतर मध्यस्थो द्वारा होती है, लेकिन जब तकनीकी व कुशल श्रमिको की आवश्यकता होती है तो रोजगार दफ्तरो को माग भेज दी जाती है। असम मे मिल मालिक रोजगार दफ्तरो की सेवाओ से अधिकाधिक लाभ उठा रहे हैं। त्रिपुरा मे भवन व निर्माण उद्योगो व वायु परिवहन सेवाओ मे सामान उतारने व चढाने के लिए श्रमिक प्राय सरदारो तथा ठेकेदारो द्वारा रखे जाते है। केरल मे जो व्यापारिक सस्थान राज्य के अधीन हैं उनमे रोजगार दफ्तरो के द्वारा भर्ती की जाती है। मैसूर, दिल्ली, मध्य प्रदेश, जम्मू और काश्मीर मे रोजगार दफ्तरो के माध्यम से भर्ती बडी प्रसिद्ध है। अडमान व निकोबार मे वन और सार्वजनिक निर्माण विभाग के बडे बडे विभाग हैं जो श्रमिको को कार्य पर लगाते हैं। महाराष्ट्र मे मनी श्रमिको मे स्थायीकरण की स्वेच्छा से अपनाई गई एक प्रणाली बबई और शोलापुर मे 1950 से कार्य कर रही है। उत्तर प्रदेश मे पूल तथा स्थायीकरण प्रणाली के अधीन, जो कानपुर मे प्रचलित है, रोजगार चाहने वाले श्रमिको के नाम दर्ज किये जाते हैं। हिमाचल प्रदेश म समस्त राजकीय क्षेत्र मे रोजगार दफ्तरो से श्रमिको की भर्ती की जाती है।

खानो मे भर्ती

मध्यस्थो और ठेकेदारो के माध्यम से खानो मे भर्ती अब भी की जाती है। कोयले की खाना म श्रमिको की नियुक्ति की अत्यत प्राचीन प्रणाली जमीदारी प्रणाली थी जो कि अब समाप्त हो गइ है। वास्तव मे कोयले की खानो म कुल श्रमिको का एक अच्छा प्रतिशत ठेकेदारो द्वारा भर्ती किये गये श्रमिको का है। भर्ती की एक प्रमुख सस्था गोरखपुर श्रम सगठन है। इस सगठन की स्थापना भारत सरकार द्वारा 1 42 मे की गई थी। वर्तमान समय मे भर्ती इस प्रकार की जाती है कि पहले कोयला क्षेत्र म भर्ती सगठन अथवा अन्य कोई श्रमिको की आवश्यकता का अनुभव करने वाली सस्था गोरखपुर श्रम सगठन को इस आवश्यकता स अवगत कराती है और गोरखपुर श्रम सगठन इस कार्य मे सहायता करता है।

अन्य खाना जैसे– लोहे, मैगनीज व सोने चादी आदि मे श्रमिको की नियुक्ति प्रत्यक्ष तथा ठेकेदारी प्रथ ओ का सम्मिश्रण है। जहा रोजगार के दफ्तर उपलब्ध हैं वहा के स्वामी उनकी भी सहायता लेत है।

बागानो मे श्रमिको की भर्ती

असम के चाय बागानो म श्रमिको की भर्ती प्राय बागानो के सरदारो अथवा स्थानीय अन्य व्यक्तियो के माध्यम स होती है। श्रमिको की भर्ती की पूल पद्धति प्रचलित है जिसके अनुगत श्रमिक लोकल फारवर्डिंग एजेंसो के पास पहुच जाते हैं जहा से श्रम चाहने वाले उन्हे बागानो पर भेज देते हैं। विगत वर्षो म असम के चाय बागानो म बेरोजगार श्रमिको की सख्या म वृद्धि होने के कारण तेजपुर, जोरहट डिब्रूगढ के

रोजगार दफ्तरो मे प्रचार सबधी कार्य तीव्रता मे आरभ कर दिया गया है जिससे कि श्रमिक श्रम की अधिकता वाले क्षेत्र से श्रमिको की कमी वाले क्षेत्र की ओर अग्रसर हो सकें।

पश्चिमी बगाल मे चाय के बागानो मे साधारणत' श्रमिको की कमी रहती है अत: भर्ती पर कोई नियत्रण नही है। प्रायः चाय बागान श्रमिक बोर्ड, भारतीय चाय उत्पादको का बोर्ड तथा भारतीय चाय बोर्ड द्वारा भर्ती अपने-अपने सदस्य बागानो के लिए की जाती है। पजाब व त्रिपुरा के बागानो मे मालिक स्वय सीधी प्रणाली द्वारा श्रमिको की भर्ती कर लेते हैं अथवा मध्यस्थो द्वारा भर्ती कराते है। पजाब मे इन मध्यस्थो को चौधरी कहते हैं। केरल राज्य के बागानो मे ऐसे श्रमिक, जिनको समय के लिए कार्य पर लगाया जाता है, बागान के श्रमिको द्वारा ही भर्ती कर लिए जाते हैं। मैसूर मे भर्ती की कगनी पद्धति समाप्त हो गई है और अब प्रत्यक्ष रूप से भर्ती की जा रही है।

रेलवे में भर्ती

रेलवे के विभिन्न विभागो मे श्रमिको की नियुक्ति के लिए विभिन्न पद्धतियो का प्रयोग किया जाता है। तृतीय वर्ग की सेवाओ के लिए भर्ती रेलवे सेवा आयोग द्वारा की जाती है। निम्न वर्ग एव कुशल श्रमिको की नियुक्ति प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली के आधार पर होती है। सबधियो व ठेकेदारो के माध्यम से भी भर्ती की जाती है।

बंदरगाहो व जहाजरानी मे भर्ती

बदरगाहो मे कुशल व अकुशल श्रमिको की भर्ती के लिए प्राय विज्ञापन दिया जाता है। भारत सरकार ने 1948 मे जहाजरानी श्रमिक रोजगार नियमन अधिनियम पास किया है जिसका मुख्य उद्देश्य डाक कर्मचारियो के रोजगार को अधिक व्यवस्थित करना है। इसके अनुसार श्रमिकों के पजीकरण का प्रबध किया गया है जिसका प्रबध द्विदलीय जहाजरानी श्रम बोर्ड के हाथो मे है। इस प्रकार के बोर्ड कलकत्ता, बबई, तमिलनाडु व विशाखापट्टम के बदरगाहो मे पाये जा रहे हैं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि औद्योगिक श्रम की विभिन्न भर्ती की पद्धतिया भारत मे प्रचलित हैं। यही नही, एक ही उद्योग मे भिन्न भिन्न स्थानो मे भर्ती की विभिन्न पद्धतिया प्रचलित हैं जो कि बहुत अनुचित है। अतः इस सबध मे ठोस कदम उठाए जाने चाहिए ताकि भर्ती प्रणाली मे समरूपता लाई जा सके। राष्ट्रीय रोजगार सेवा अब तक प्रमुख रूप से नागरिक क्षेत्रो तक ही सीमित रही है। अत रोजगार दफ्तरो को ग्रामीण क्षेत्रों मे भी स्थापित किया जाना चाहिए और सेवायोजको को कठोरता से इस बात के लिए बाध्य किया जाना चाहिए कि वे अपने सभी रिक्त स्थानो की सूचना दफ्तरो को दें और दफ्तर द्वारा प्रेषित कियेग ये व्यक्तियो मे से ही चुनाव करें।

परीक्षा-प्रश्न

1 भारतीय उद्योगो मे मजदूरो की भर्ती की विभिन्न पद्धतियो की सापेक्ष दक्षता का परीक्षण कीजिए। इस सबध मे रोजगार दफ्तरो के कार्यों की विवेचना कीजिए।

2 भारत मे श्रमिको की भर्ती के विभिन्न तरीको का आलोचनात्मक विवरण दीजिए।

3 "आधुनिक उद्योग भर्ती की वैज्ञानिक पद्धति की माग करता है।" अपने उद्योग मे प्रचलित पद्धतियो के सदर्भ मे इस पर टिप्पणी लिखिए और यह बताइए कि इस समस्या का समाधान करने मे वैज्ञानिक पद्धति बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

4 भारत मे श्रमिको को भर्ती करने के तरीको का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए। किसी भी उद्योग और श्रमदान दोनो के लिए ही एक उचित विधि का क्या महत्त्व हो सकता है ? स्पष्ट कीजिए।

5 भारत मे औद्योगिक श्रमिको की भर्ती के तरीको का वर्णन कीजिए। सुधार के लिए सुझाव भी दीजिये।

6 भारतीय श्रमिको की भर्ती के साथ कौन-कौन-से दुराचार सयुक्त किये जा चुके हैं ? रोजगार दफ्तरो की स्थापना के द्वारा वे कहा तक दूर किये जा चुके हैं ?

7 भारत मे औद्योगिक श्रम की भर्ती के विभिन्न तरीको का सक्षेप मे वर्णन कीजिए। रोजगार के दफ्तर कहा तक भर्ती के अवगुणो और त्रुटियो को दूर करने मे सफल हो पाये हैं ?

8 'मध्यस्थो के द्वारा श्रम की भर्ती गभीर अवगुणो सहित सदा ही डरावनी हो चुकी है।' आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

9 'मध्यस्थ क द्वारा श्रम की भर्ती गभीर अवगुणो सहित सदा ही डरावनी हो चुकी है लेकिन फिर भी वह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है जो कार्यों के एक भयकर व्यूह म अपने आप को मिलाता है। स्पष्ट कीजिए।

10 मध्यस्थो द्वारा श्रमिको की भर्ती की पद्धति सदैव दाष से युक्त रही है, किंतु फिर भी जॉबर श्रम की नियुक्ति के लिए एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है जो कि अनेक कार्य करता है।" विवेचन कीजिए।

11 आधुनिक उद्योग मे भर्ती के वैज्ञानिक साधनो की आवश्यकता है।" देश मे प्रचलित भर्ती की पद्धतियो के सदर्भ मे इस कथन की विवेचना कीजिए तथा यह बताइये कि इनके दोषो के निवारण मे राष्ट्रीय सेवा केन्द्रो का क्या योगदान हो सकता है ?

अध्याय 7

रोजगार दफ्तर या सेवानियोजन कार्यालय

(Employment Exchanges)

आशय रोजगार दफ्तर श्रमिको की भर्ती की आधुनिक पद्धति है। रोजगार दफ्तर एक ऐसी सस्था है जो सेवायोजक और कार्य की खोज करने वाले के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है अर्थात् सेवायोजक को आवश्यक श्रमिक पाने तथा श्रमिको को आवश्यक रोजगार प्राप्त करने मे सहायता देती है। सक्षेप मे, रोजगार दफ्तर वह सगठित सस्था है जो कार्य खोजने वाले श्रमिको और सेवायोजको को एक-दूसरे के सपर्क मे लाती है।

क्या ये रोजगार उत्पन्न करते है ?

कुछ व्यक्तियो का विचार है कि रोजगार दफ्तर रोजगार का निर्माण करते है। परतु यह विचार गलत है क्योकि रोजगार दफ्तर रोजगार का निर्माण नही करते बल्कि श्रमिको की माग और पूर्ति के बीच सुव्यवस्था या सतुलन स्थापित करते हैं, जिससे श्रमिको को कार्य प्राप्त करने मे सरलता हो जाती है और सेवायोजको को भी योग्य व्यक्तियो की सेवाए अल्प सूचना पर ही प्राप्त हो जाती हैं। जिन लोगो को रोजगार की आवश्यकता होती है वे अपना नाम निकटतम रोजगार दफ्तर मे रजिस्टर्ड करा आते है। इसी प्रकार, जो सेवायोजक श्रमिको की आवश्यकता अनुभव करते हैं वे भी रोजगार दफ्तर मे अपनी श्रम आवश्यकताओ सबधी विस्तृत सूचना भेज देते हैं। रोजगार दफ्तर उचित व्यक्ति को चुनकर सेवायोजको के पास विचारार्थ भेज देते हैं। इस प्रकार, रोजगार दफ्तर न तो स्वय नियुक्ति करता है और न किसी प्रकार के रोजगार को उत्पन्न करता है। इसका कार्य काम खोजने वाले श्रमिको और श्रम की आवश्यकता वाले सेवायोजको के मध्य सपर्क स्थापित करवाना है। अतिम निर्णय सेवायोजको व काम चाहने वाले व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है। इस प्रकार, रोजगार दफ्तर श्रमिको की माग और पूर्ति मे सतुलन स्थापित करते हैं तथा प्रत्येक स्थान पर उपयुक्त व्यक्तियो की नियुक्ति कराने मे सहायक होते हैं।

रोजगार दफ्तरो के कार्य (उद्देश्य व महत्त्व)

रोजगार दफ्तरो के कार्यों से ही उनके महत्त्व का आभास होता है। रोजगार

दफ्तर के महत्त्वपूर्ण कार्य व उद्देश्य इस प्रकार हैं—

1 *श्रम की माँग और पूर्ति मे सतुलन स्थापित करना :* प्रत्येक औद्योगिक व्यवस्था के सुसचालन के लिए श्रम की माग और पूर्ति के बीच सतुलन होना आवश्यक है। यह सतुलन उसी समय सभव है जबकि एक ओर रोजगार चाहने वाले श्रमिको को रिक्त स्थानो के विषय मे ठीक-ठीक सूचना उचित समय पर मिलती रहे और दूसरी ओर रोजगार देने वाले सेवायोजको को यह ज्ञान हो कि जिस प्रकार के श्रमिक उन्हें चाहिए उस प्रकार के श्रमिको की पूर्ति सभव है या नही। रोजगार दफ्तर इस कार्य को बडी कुशलता मे सपादित करते हैं। इन दफ्तरो को श्रमिको की माग और पूर्ति दोनो का ही ठीक-ठीक ज्ञान रहता है और जहा जिस प्रकार के श्रमिको की माग होती है वहा उसी के अनुसार श्रमिको की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार रोजगार दफ्तर श्रमिको की माग और पूर्ति के बीच सतुलन स्थापित करके एक महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं।

2 *श्रमिकों की गतिशीलता मे वृद्धि* रोजगार दफ्तर श्रम की गतिशीलता मे वृद्धि करते हैं। प्रो० पीगू ने लिखा है "किसी विशेष स्थान पर अथवा एक समय-विशेष मे किसी उद्योग मे श्रम बेचने वालो का बेरोजगार रहना स्वाभाविक ही है जबकि किसी दूसरे स्थान पर अथवा किसी दूसरे उद्योग मे अच्छी मजदूरी पर उनके लिए कार्य रहता है किंतु वे श्रमिक इन कार्यों को इसलिए नही प्राप्त कर पाते क्योकि इन रिक्त स्थानो के सबध मे उन्हें कुछ भी ज्ञान नही होता।[1] रोजगार दफ्तर देश के विभिन्न क्षेत्रो और व्यवसायो मे होने वाले रिक्त स्थानो की सूचनाए श्रमिको को देकर उनकी गतिशीलता मे वृद्धि कर देता है। रोजगार दफ्तर श्रमिको को यह जानकारी देता है कि किस स्थान पर, किस प्रकार का व कितनी मजदूरी का रोजगार रिक्त है। इससे श्रमिको की गतिशीलता बढ जाती है।

3 *योग्यता के अनुसार श्रमिकों को रोजगार दिलाना :* इन रोजगार दफ्तरो की सहायता से श्रमिको को उनकी योग्यता के अनुसार उचित रोजगार मिल जाता है। *श्रमिको की शिक्षा, स्वास्थ्य, अनुभव व योग्यता का पूरा विवरण* रोजगार दफ्तरो मे लिखा रहता है। सब श्रमिको के विवरण को वर्गीकृत करके रखा जाता है जिससे कि रिक्त स्थान होने पर सरलता से उपयुक्त कर्मचारी को उसके लिए भेजा जा सके।

4 *भर्ती की अन्य प्रणालियों के दोषों को दूर करना* जैसाकि हम अध्ययन कर चुके हैं कि रोजगार दफ्तर के अतिरिक्त उद्योगो मे श्रमिकों की भर्ती की जितनी प्रणालिया प्रचलित हैं वे पूर्णतया दोषो से भरी हैं। इन प्रणालियो से उत्पन्न दोषो के कारण श्रमिको की कार्य-कुशलता मे कमी आती है और उद्योगो का उत्पादन कम होता है। रोजगार दफ्तर भर्ती की अन्य प्रणालियो के दोषो को दूर करता है क्योंकि इस प्रणाली को उचित ढग से काम मे लाया जाय तो इसके द्वारा अन्य प्रणालियो के सभी दोषो से सरलता से बचा जा सकता है।

5 *रोजगार के अवसरों का पूल (Pool)* रोजगार दफ्तरो को रोजगार के

1. Economics of Welfare, p 73

अवसरो का सबसे बडा पूल समझा जाता है। भारतवर्ष मे सार्वजनिक क्षेत्र मे लोक सेवा आयोग द्वारा चुने जाने वाले पदो के अतिरिक्त शेष सभी प्रकार के रिक्त स्थानो की पूर्ति रोजगार दफ्तरो द्वारा की जाती है। रोजगार दफ्तर (अनिवार्य रिक्त स्थानो की सूचना) अधिनियम, 1959 के अनुसार तीन माह से अधिक अवधि वाले सभी पदो के लिए रोजगार दफ्तर से प्रार्थी बुलाना आवश्यक है।

6 **सेवायोजकों के लिए महत्त्व** रोजगार दफ्तर सेवायोजको के लिए भी समान रूप से उपयोगी है। प्रत्येक सेवायाजक के दृष्टिकोण से उसके कारखाने मे किसी भी रिक्त स्थान का श्रेष्ठतम व्यक्ति द्वारा भरा जाना बहुत महत्त्व रखता है। रोजगार दफ्तर इस कार्य मे सेवायोजको की सहायता करता है। यदि रोजगार दफ्तर यह कार्य न करे तो सेवायोजको को शीघ्र योग्य व्यक्ति मिलना कठिन होगा। यही नही, रोजगार दफ्तरो की सेवाओ के कारण ही रिक्त स्थानो का विज्ञापन देने या भर्ती के लिए एक विशेष विभाग खोलने मे सेवायोजको का जो व्यय होता है वह भी बच जाता है।

7 **तकनीकी शिक्षा सुविधाए उपलब्ध कराना** · रोजगार दफ्तर श्रमिको के लाभार्थ विभिन्न व्यवसायो का प्रशिक्षण कार्य भी सगठित करते हैं और इस कार्य के हेतु देश मे प्रशिक्षण सस्थाओ का सगठन करते हैं। भारत मे रोजगार दफ्तरो का यह एक विशिष्ट कार्य समझा जाता है। विदेशो मे उन दफ्तरो द्वारा प्रशिक्षण सस्थायें चलायी जाती हैं, जो विभिन्न उद्योगो के लिए कर्मचारी तैयार करती हैं।

8 **मार्ग-दर्शन प्रदान करना :** रोजगार दफ्तर अनुभवी तथा गैर-अनुभवी वयस्कों को मार्ग-दर्शन प्रदान करने का कार्य भी करते हैं। मार्ग-दर्शन कई तरीको द्वारा प्रदान किया जाता है, जैसे (अ) मार्ग-दर्शन वार्ता के द्वारा जिसमे व्यावसायिक मार्ग-दर्शन अधिकारी प्रतिदिन व्यवसाय मे चुनाव के लिए उचित परामर्श प्रदान करता है। (ब) साक्षात्कार के द्वारा व्यक्ति-विशेष को बुलाकर उसकी समस्या के समाधान का प्रयास किया जाता है। (स) विचार विमर्श के दौरान व्यावसायिक मार्ग दर्शन अधिकारी रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों के साथ सामूहिक रूप से रोजगार अवसरो व प्रशिक्षण सुविधाओ आदि के बारे मे विस्तृत जानकारी उपलब्ध करता है। (द) रोजगार दफ्तर द्वारा प्रकाशित साहित्य भी पूलो, कॉलेजो और वाचनालयो को वितरित किया जाता है। (य) स्कूल, कॉलेजो व विश्वविद्यालयो मे व्यवसाय-वार्ता भी व्यावसायिक मार्ग-दर्शन अधिकारियो द्वारा नवयुवको को प्रदान की जाती है।

9 **व्यावसायिक सूचना का सग्रहण व प्रसारण** रोजगार दफ्तर देश के विभिन्न व्यवसायो के सबध मे सूचना नियमित रूप से एकत्र व प्रकाशित करते रहते हैं जोकि समाज के लिए बहुत उपयोगी है।

10 **रोजगार सबधी आकडे एकत्र करना** ये दफ्तर रोजगार सबधी अनेक उपयोगी आकडो का सकलन करते हैं, जैसे बेरोजगार व्यक्तियों की सख्या, उन लोगों की सख्या जिन लोगो को कार्य मिल गया है इत्यादि। इन आकडो की सहायता से यह पता लगाया जा सकता है कि देश मे रोजगार की क्या स्थिति है, बेरोजगारी घट रही है अथवा बढ़ रही है कितने व्यक्तियो को कार्य दिलाने मे उनको सफलता मिली है, इत्यादि।

11. रोजगार सबंधी शोध करना : चूंकि रोजगार दफ्तरो के पास नये आकडे व नई सूचनाए आती रहती हैं इसलिए रोजगार मे सबधित शोध मे इनको आसानी होती है।

12 राष्ट्रीय लाभांश में वृद्धि · राष्ट्रीय लाभाश या उत्पादन को बढाने के लिए यह आवश्यक है कि देश मे उपलब्ध समस्त श्रम-शक्ति का उपयोग किया जाय अर्थात् बेरोजगार श्रमिको को रोजगार दिया जाय और साथ ही प्रत्येक श्रमिक को उसकी योग्यता के अनुसार ही रोजगार प्रदान किया जाय। रोजगार दफ्तर इन दोनों कार्यों को उचित ढग से करके राष्ट्रीय लाभाश को बढाने मे सहायक होते हैं।

13 योजना बनाने मे सहायक रोजगार दफ्तर उपयोगी योजनाओ के निर्माण व क्रियान्वयन मे सहायता पहुचाते हैं जैसे कर्मचारी राज्य बीमा योजना, बेरोजगारी बीमा योजना, विस्थापित श्रमिको के पुनर्वास की योजना आदि।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि एक देश की अर्थव्यवस्था मे रोजगार दफ्तरो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि रोजगार दफ्तरो के महत्त्व को अतर्राष्ट्रीय आधार पर स्वीकार कर लिया गया है।

भारत मे रोजगार दफ्तरो का महत्त्व अन्य देशो से कही अधिक है क्योंकि हमारे देश मे आर्थिक नियोजन के अतर्गत औद्योगीकरण की योजनायें क्रियान्वित की जा रही हैं। इनकी सफलता के लिए श्रेष्ठ व्यक्तियो की नियुक्ति आवश्यक है। इस कार्य म रोजगार दफ्तर अत्यत उपयोगी योगदान प्रदान करते हैं।

विदेशो मे रोजगार दफ्तर
(Employment Exchanges Abroad)

विश्व मे औद्योगिक क्राति के साथ ही रोजगार दफ्तरो की आवश्यकता भी अनुभव होने लगी थी। यही कारण है कि इनकी स्थापना विश्व मे औद्योगिक क्राति के बाद ही प्रारभ हुई है। सर्वप्रथम, 1833 मे जर्मनी मे ऐसे कार्यालय खोले गये। जर्मनी मे 1918 मे उन समस्त रोजगार दफ्तरो का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जिनकी स्थापना 1883 म ऐच्छिक सस्था के रूप मे की गई थी। 1891 म न्यूजीलैंड की सरकार ने सगठन एव नियमित रोजगार दफ्तरो की स्थापना की। 1927 मे बर्लिन म 'राष्ट्रीय श्रम विनिमय' तथा 'रोजगार बीमा सस्थान' (National Instit te of Labour Exchange and Employment Insurance) की स्थापना हुई। फ्रास मे सर्वप्रथम सामुदायिक रोजगार कार्यालयो की स्थापना की गई। बाद मे इनके स्थान पर 1914 18 के बीच विभागीय रोजगार कार्यालय (Departmental Employmen' Exchanges) चालू किये गये।

रूस मे स्टाफ कार्यालय (जिसकी स्थापना 1931 मे राष्ट्रीय समाजवादी व्यवस्था के अतर्गत की गई) ही उन समस्त कार्यों को करत हैं जो रोजगार दफ्तर करते हैं। अमेरिका म 1915 तक रोजगार दिलाने का कार्य करने की कुछ निजी सस्थायें थी जो यह काम श्रमिकों से कुछ फीस लेकर करती थी। 1923 म सरकारी श्रम

विभाग के माध्यम से इन पर नियन्त्रण रखने का प्रयास किया गया। आजकल भी अमेरिका मे निजी रोजगार दफ्तर अत्यत महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन मे प्रथम रोजगार दफ्तर 1885 मे ऐंघम नामक स्थान पर स्थापित किया गया जो नि शुल्क सेवा प्रदान करता था। 1902 मे एक अधिनियम पास किया गया जिसके अनुसार स्थानीय सस्थाओ को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वे रोजगार दफ्तर स्थापित कर सकती है। सरकारी रोजगार के दफ्तर 1910 मे स्थापित किये गये। 1920 मे उन्हे बेरोजगारी बीमा का एक आवश्यक अग माना गया। अब ग्रेट ब्रिटेन मे लगभग एक हजार रोजगार दफ्तर हैं।

भारत मे रोजगार दफ्तर
(Employment Exchanges in India)

ऐतिहासिक पुनर्वेक्षण

अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने अपने 1919 के अभिसमय (Convention) द्वारा यह सिफारिश की थी कि नि शुल्क रोजगार दफ्तरो की स्थापना समस्त देशो मे की जाय। भारत मे इस अभिसमय का 1921 मे समर्थन किया गया था लेकिन 1938 मे इस पर अस्वीकृत घोषित किया गया। 1929 के शाही श्रम आयोग ने रोजगार दफ्तरो की स्थापना के विरुद्ध सुझाव दिया। शाही श्रम आयोग ने कहा है कि ऐसे समय म जब कि मिल मालिको को मिल के दरवाजे पर ही काफी श्रमिक मिल सकते हैं रोजगार दफ्तर अधिक लाभदायक नही हो सकते। परतु श्रम अनुसधान समिति ने रोजगार दफ्तरो की सख्या बढाने का सुझाव दिया। दूसरी समितियो सेवायोजको व श्रमिक सघो ने भी समिति के इस विचार का समर्थन किया।

द्वितीय महायुद्ध के समय भारत सरकार को युद्ध-सामग्री उत्पन्न करने वाले कारखानो और फौज के लिए तकनीकी कर्मचारियो का अभाव अनुभव होने लगा था। इस अभाव को दूर करने के लिए 1943 44 मे 9 रोजगार दफ्तरो की स्थापना की गई। भारत मे रोजगार दफ्तरो का श्रीगणेश यहीं से हुआ। द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने पर भारत मे अतिरिक्त सैनिको को निकाल दिये जाने पर उनकी बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो गई थी। इस समस्या को हल करने के लिए रोजगार दफ्तरो की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जुलाई, 1945 मे एक डायरेक्टर जनरल ऑफ सेटलमेट एड एम्प्लायमेट की स्थापना की गई और इसकी सेवा के लिए 70 रोजगार दफ्तर खोले गये। 1947 मे इन रोजगार दफ्तरो का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया गया ताकि ये उन सब श्रमिको की सेवा कर सकें जो रोजगार की खोज मे हो। 1 नवम्बर, 1956 से रोजगार दफ्तर और प्रशिक्षण केन्द्र राज्य सरकारो के नियत्रण मे आ गये हैं। अब केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व केवल नीति सबधी कार्य समायोजन और देखभाल तथा व्यवस्था सबधी व्यय का 60 प्रतिशत सहन करने तक ही सीमित रह गया है।

वर्तमान स्थिति

इस समय दफ्तरो का सगठन एक डायरेक्टर जनरल के अधीन रखा गया है। इस डायरेक्टर जनरल के *अन्तर्गत तीन अन्य डायरेक्टर भी हैं जिनके नाम निम्नलिखित* हैं—

1 डायरेक्टरेट ऑफ एम्प्लायमेट एक्सचेंज।

2 डायरेक्टरेट ऑफ ट्रेनिंग।

3 डायरेक्टरेट ऑफ पब्लिसिटी।

क्षेत्रीय सगठन व स्थानीय कार्यालयो द्वारा समस्त देश की आवश्यकता को व्यवस्थित रूप से पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है। नई दिल्ली का केंद्रीय रोजगार दफ्तर *अतप्रांतीय निकासी गृह का कार्य करता है। क्षेत्रीय रोजगार दफ्तरा मे महिला* विभाग है। चलते फिरते रोजगार दफ्तरो की स्थापना भी की गई है। ये चलते फिरते दफ्तर बडी बडी मोटरो मे होत हैं तथा क्षेत्रीय व उपक्षेत्रीय दफ्तरो द्वारा सचालित होते हैं। शारीरिक रूप से अपग व्यक्तियो की नियुक्ति के सबध मे सहायता देने हेतु दो व्यावसायिक पुनर्वास केंद्र (हैदराबाद और बबई) में जून,1 968 से काय करने लगे हैं। रोजगार कार्यालयो का दैनिक प्रशासनिक नियत्रण 1956 मे राज्य सरकारो को सौंप दिया गया था। अप्रैल 1969 से इनको मानवीय शक्ति एव रोजगार प्रायोजनाओ का *वित्तीय नियत्रण भी प्राप्त हो गया है। रोजगार कार्यालयो द्वारा प्रदान की जाने* वाली सेवा के गुण को सुधारने के लिए कई योजनाए—जैसे रोजगार बाजार सबधी सूचना का सग्रह व्यावसायिक अनुसधान एव विश्लेषण तथा व्यावसायिक मार्ग-दर्शन एव रोजगार सबधी परामर्श—शुरू की गई है। 1958 मे केंद्रीय रोजगार समिति गठित की गई जो रोजगार सुअवसरो के सृजन, राष्ट्रीय रोजगार सेवा की काय प्रगति तथा रोजगार सबधी समस्याओ पर सरकार को परामर्श देती रहती है।

वर्तमान समय मे रोजगार दफ्तरो द्वारा जो सवाए प्रदान की जा रही हैं वे इस प्रकार हैं—

(अ) रोजगार बाजार से सबधित सूचनाओ का एकत्र करना।

(ब) पेशा सबधी शोध तथा विश्लेषण (occupational research and analysis)।

(स) पेशे के चुनाव तथा प्रशिक्षण (training) सुविधाओ के सबध मे पुस्तिकाओ (hand books) का प्रकाशन।

(द) मौखिक परीक्षा (oral testing) का विकास।

अगले पृष्ठ पर दी सारणी 1 स रोजगार दफ्तरो के काम की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी—1 : रोजगार कार्यालयो की गतिविधियां

वर्ष	रोजगार कार्यालयो की सख्या	पजीकृत अभ्यर्थियो की सख्या	रोजगार पाने वाले अभ्यर्थियो की सख्या	चालू रजिस्टर मे अभ्यर्थियो की सख्या	रोजगार कार्यालयो का लाभ उठाने वाले मालिको का मासिक औसत	ज्ञापित रिक्त स्थानो की सख्या
1956	143	16,69,985	1,89,855	7,58,503	5,346	2,96,618
1966	396	38,71,162	5,07,342	26,22,460	12,908	8,52,467
1972	453	58,26,916	5,07,111	68,96,238	13,154	8,58,812
1974	481	51,76,274	3,96,898	84,32,869	12,175	6,72,537
1976	517	56,19,397	4,96,781	97,84,332	13,277	8,45,575
1980	567	61,58,242	4,77,651	1,62,00,270	13,227	8,37,725
1982	619	58,62,900	4,73,400	1,97,53,000	—	8,19,900

श्रमिकों को प्रशिक्षण

1954 मे देश के श्रमिको को प्रशिक्षण देकर उन्हे रोजगार प्राप्ति कराने के लिए अधिक योग्य बनाने के उद्देश्य से 'श्रमिको की प्रशिक्षण योजना' नामक एक योजना चलाई गई। प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् व्यक्ति को 'राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाण-पत्र बोर्ड' (National Trade Certificate Board) द्वारा डिप्लोमा प्रदान किया जाता है।

श्रमिको के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता, बबई, दिल्ली, कानपुर, हैदराबाद, तमिलनाडु व लुधियाना मे केंद्रीय प्रशिक्षण सस्थायें प्रारम्भ हो गई हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम मे पर्यवेक्षको, फोरमैनो, आचार्यो और औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थाओ के निरीक्षको का प्रशिक्षण भी सम्मिलित है। प्रशिक्षण कार्यक्रम केवल औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थाओ के कर्मचारियो के लिए ही नही है बल्कि उद्योग के दूसरे श्रमिको के लिए भी है जिनके लिए रात्रि की कक्षायें लगाई जा रही हैं।

एक राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण की भी स्थापना की गई है जो सरकार को प्रशिक्षण की नीति सबधी सभी समस्याओ पर परामर्श देने के अतिरिक्त श्रमिको की कार्य-कुशलता का प्रमाण-पत्र भी प्रदान करता है।

रोजगार दफ्तरो का आलोचनात्मक मूल्याकन
(Critical Appraisal of Employment Exchanges)

रोजगार दफ्तर भारत मे भर्ती के दोषो को दूर करने और भर्ती की एक वैज्ञानिक पद्धति का विकास करने म असफल रहे है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

1 **दिखावटी काम :** अधिकतर रोजगार दफ्तर अपने कर्मचारियो को कारखानो के दरवाजो पर भेज देते हैं जिससे कि वे इन श्रमिको का नाम उन श्रमिको मे, जो उन कारखानों मे पहले से काम कर रहे हैं, लिख लें ताकि वे यह सिद्ध कर सकें कि उनका अस्तित्व न्यायपूर्ण है। बेरोजगार श्रमिक स्वय अपने प्रयास स कार्य पाता है तो भी रोजगार दफ्तर मे यदि उसका नाम दर्ज है तो दफ्तर उसे अपनी उपलब्धि दिखलाता है।

2 **सेवा भाव का नितात अभाव** इन दफ्तरो के कर्मचारियो मे सेवा भाव का नितात अभाव है। एक तो जो व्यक्ति अपना नाम रजिस्टर्ड कराने के लिए जाते हैं उन्हे घटो और कभी-कभी पूरे दिन अनावश्यक रुकना पडता है। प्राय लोगो को कार्य की सूचना उस समय मिलती है जब भर्ती हो चुकती है। चूकि रोजगार दफ्तर एक सरकारी विभाग है अत सरकारी प्रशासन के सब दोष इसमे भी पाये जाते हैं।

3 **भ्रष्टाचार व पक्षपात** इन दफ्तरो म पक्षपात और भ्रष्टाचार के भी बहुत-से प्रमाण मिलते है। यह देखा जाता है कि इन दफ्तरो म काम करने वाले कर्मचारी अपने नाते-रिश्तेदारो और इष्ट मित्रो को कार्य दिलाने म प्राथमिकता देते हैं। इन दफ्तरो स साक्षात्कार-पत्र निकालने के लिए बहुधा सबधित कर्मचारियो को सघू देना पडता है।

4 **अन्य दोष** उपरोक्त दोषो के अतिरिक्त रोजगार दफ्तरो मे और भी दोष हैं, जैसे—

(i) ग्रामीण क्षेत्रो मे इन दफ्तरों का कोई विशेष प्रभाव नही दिखाई देता।

(ii) इनमे लाभदायक रोजगार के प्रशिक्षण का अभाव है।

(iii) ये निर्धन श्रमिकों को किसी प्रकार से आर्थिक सहायता नही प्रदान कर पाते।

(iv) भारत मे रोजगार दफ्तरों के प्रशासन का जो विकेंद्रीकरण कर दिया गया है, इससे श्रमिकों की गतिशीलता और भर्ती का दायरा केवल एक राज्य तक ही सीमित हो गया है।

फिर भी यह कहना उपयुक्त नही है कि दफ्तरो ने कोई काय नही किया है। वस्तुत देश की विशालता और बेरोजगारी के आकार को देखते हुए इन रोजगार दफ्तरो की सख्या बहुत कम है। विगत वर्षों मे जनसख्या मे तीव्र वृद्धि के कारण बेरोजगारी की समस्या इतनी विस्फोटक हो गई है कि कोई भी कार्य पर्याप्त नही हो सकता। यहा इस प्रकार के कार्यो के लिये अपार धैय परिश्रम और साधनों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त भारत के अकुशल श्रमिक अशिक्षित व अज्ञानी होन के कारण भी इन दफ्तरो के महत्व को नही समझ पाये हैं। साथ ही इन दफ्तरो के पास ऐसी शक्ति नहीं है जिसके द्वारा ये सभी सेवायोजको को रोजगार के दफ्तर के द्वारा ही श्रमिको की भर्ती व अन्य पदाधिकारियों व क्लर्कों आदि की नियुक्ति के लिए बाध्य कर सके। रोजगार दफ्तरो की इन सीमाओ को ध्यान मे रखकर ही राष्ट्रीय श्रम आयाग ने लिखा है 'पिछले बीस वर्षो मे राष्ट्रीय नियोजन सेवा ने उद्योगपतियो और काय की तलाश करने वालो को मिलाने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

उन्नति के लिए सुझाव

भारतीय रोजगार दफ्तरो की काय प्रणाली के दोषो को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है—

1 **सख्या मे वृद्धि** भारत की आवश्यकता को देखते हुए रोजगार दफ्तरो की सख्या में पर्याप्त वृद्धि होनी चाहिए। 20 हजार से अधिक जनसख्या वाले प्रत्यक स्थान पर रोजगार दफ्तर होना चाहिए।

2 **श्रमिकों को नौकरी दिलाने मे पूर्ण तटस्थता** रोजगार दफ्तर को श्रमिको को नौकरी दिलाने म पूण तटस्थता दिखानी चाहिये। उन्हे पक्षपात नही करना चाहिए। इन दफ्तरो को श्रम बाजार का अधिक वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करक अधिकाधिक रोजगार दिलाने का प्रयास करना चाहिए।

3 **श्रमिको को आर्थिक सहायता** निधन श्रमिको की आवश्यकता पडने पर आर्थिक सहायता प्रदान करने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए और रोजगार मिल जाने पर यह धन उनसे किस्तो मे वापस लिया जा सकता है।

4 **सेवायोजको का सहयोग** सेवायोजकों का पूर्ण सहयोग आवश्यक है। उन्हें

प्रत्येक रिक्त स्थान की पूर्ति इन्ही दफ्तरो के माध्यम से ही करनी चाहिए। सेवायोजको के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए कि वे रिक्त स्थानों की पूर्ति रोजगार दफ्तरो के माध्यम से ही करें। यह बड़े हर्ष का विषय है कि अहमदाबाद मिल मालिक संघ के सदस्य रोजगार के दफ्तरो के द्वारा अनिवार्य रूप से भर्ती के पक्ष में है।

5 अन्य सुझाव (1) इन दफ्तरो को तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण पर अधिक बल देना चाहिए।

(ii) विशेष प्रकार के रोजगार दफ्तरो की स्थापना की जानी चाहिए जिनसे विशिष्ट उद्योगो के श्रमिक भी लाभ उठा सकें।

(iii) इन दफ्तरो की कार्य-विधि का विशेष निरीक्षण होना चाहिए ताकि भ्रष्टाचार आदि दूर हो जाय।

(iv) रोजगार दफ्तरो को ग्रामीण क्षेत्रो के कस्बो मे भी स्थापित किया जाना चाहिए।

शिवाराव समिति की सिफारिश
(Recommendations of Shiva Rao Committee)

भारत सरकार के योजना आयोग की सिफारिशो के आधार पर नवबर, 1952 में बी० शिवाराव के सभापतित्व में सात सदस्यो की एक कमेटी (जिसमें श्रमिक तथा मालिकों के प्रतिनिधि भी थे) रोजगार दफ्तरो के सगठन, पद्धति व कार्य आदि की जाच करने तथा उनमे सुधार के हेतु सुझाव देने के लिए नियुक्त की गई। इस समिति ने 28 अप्रैल, 1954 को अपनी रिपोर्ट सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की थी। रिपोर्ट की उल्लेखनीय सिफारिशें इस प्रकार हैं—

1 रोजगार दफ्तरो का नाम राष्ट्रीय रोजगार सेवा होना चाहिए।

2 रोजगार दफ्तरो को स्थायी संगठन के रूप मे कार्य करना चाहिए।

3 प्रशासन केंद्रित होना चाहिए अर्थात् रोजगार दफ्तरो का प्रशासनिक नियत्रण राज्य सरकारो को सौंप देना चाहिए और केंद्र सरकार पर केवल नीति आदि बनाने का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

4 सरकारी तथा अर्द्धसरकारी नौकरियो की भर्ती जहा तक सभव हो सके रोजगार दफ्तरो द्वारा ही होनी चाहिए।

5 केंद्र की अनुमति के बिना न तो नये दफ्तर खोले जायें और न बद किये जायें।

6 निजी क्षेत्र के उद्योगो को अपने रिक्त स्थानो की सूचना अनिवार्य रूप से देनी चाहिए।

7 श्रमिकों के नाम दर्ज कराने की पूर्ण स्वतत्रता होनी चाहिए।

8 रोजगार दफ्तरो को श्रमिको व सेवायोजको को अपनी सेवायें बिना किसी शुल्क के देनी चाहिए।

9. अकुशल श्रमिको की भर्ती के लिए किसी प्रकार की अनिवार्यता सेवायोजको

पर नही लानी चाहिए।

10 रोजगार कार्यालयो के कामों का विस्तार करना चाहिए। रोजगार के आकडे एकत्र करना, रोजगार के लिए परामर्श देना, व्यावसायिक अनुसधान, विश्लेषण और प्रशिक्षण आदि कार्य रोजगार दफ्तर को आवश्यक रूप से करना चाहिए।

शिवाराव समिति के अधिकाश सुझाव मान लिए गये हैं और धीरे-धीरे उनके सुझाव के आधार पर रोजगार दफ्तरो की दशा मे सुधार किया जा रहा है।

आर्थिक नियोजन एव रोजगार के दफ्तर
(Economic Planning & Employment Exchanges)

प्रथम पचवर्षीय योजना प्रथम पचवर्षीय योजना मे रोजगार दफ्तरो की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए देश की औद्योगिक व्यवस्था मे इन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। प्रथम पचवर्षीय योजना आयोग ने कहा "सरकार द्वारा स्थापित रोजगार दफ्तर यद्यपि बहुत ही सीमित सेवा कर रहे हैं फिर भी यह सेवा बडी लाभदायक है। यह जानने के लिए कि इसे ठीक करने के लिए इसके तरीकों और सगठन मे क्या परिवर्तन होना चाहिए, एक जाच तुरत ही की जानी चाहिए।" इस सुझाव के अनुसार भारत सरकार ने शिवाराव समिति की स्थापना की। इस समिति ने 1954 मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमे इस सस्था के सुधार के लिए सुझाव दिये गये।

द्वितीय पचवर्षीय योजना : इस योजना मे भारत सरकार ने राव समिति की सिफारिशो को ध्यान मे रखते हुए रोजगार दफ्तरों के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया। इस विषय मे जो प्रस्ताव रखे गये वे इस प्रकार हैं—

(अ) रोजगार दफ्तरो के सेवा क्षेत्र को विस्तृत किया जाय ताकि ये ग्रामीण क्षेत्र मे उचित सेवा कर सकें।

(ब) देश मे एक युवक रोजगार कार्यालय की स्थापना की जाय जो युवा श्रमिको की भर्ती के विषय मे कार्य करे।

(स) इन दफ्तरो को रोजगार बाजार से सबधित विविध प्रकार की सूचनाए एकत्रित करना चाहिए।

(द) रोजगार दफ्तरो को काम चाहने वाले व्यक्तियो को ढूढने अथवा काम चुनने के विषय मे परामर्श देना चाहिए।

(य) इन दफ्तरो को व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक प्रबध करना चाहिए।

द्वितीय योजना अवधि मे 125 अतिरिक्त रोजगार दफ्तर खोले गये

तृतीय पचवर्षीय योजना इस योजना मे बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए ऊपर वर्णित कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप देने के अतिरिक्त श्रमिको को विभिन्न व्यवसायो व उद्योगो मे कार्य करने के योग्य बनाने के लिए उनके प्रशिक्षण पर बहुत जोर दिया गया।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना इस योजना मे रोजगार दफ्तरो को, विश्वविद्यालयो

को सलाह व इन्फॉर्मेशन ब्यूरो को तकनीकी सलाह व सुझाव देते **वाले केंद्रों एव** रोजगार के आकडे इकट्ठे करने वाले रोजगार बाजारों के कार्यक्रम **को शक्तिशाली** बनाकर रोजगार सेवा का अधिक प्रसार किया गया।

पंचम पंचवर्षीय योजना : इस योजना मे अपनाये गये ग्रामीण **निर्माण कार्यक्रम** के साथ इन योजनाओं पर अमल भी किया गया।

षष्ठम पंचवर्षीय योजना इस योजना मे राष्ट्रीय नियोजन **सेवा को और भी** उपयोगी बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

निष्कर्ष : रोजगार दफ्तरो के महत्त्व, उनकी वर्तमान स्थिति, **सेवाओं और** सफलताओं आदि के आलोचनात्मक मूल्यांकन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि रोजगार दफ्तर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्था है। परन्तु यदि इसमे अपेक्षित सुधार नही किए गए तो यह अपने निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति मे असमर्थ रहेगी। **वर्तमान आर्थिक** सरचना मे जहा लोग बेरोजगार हैं और साथ ही प्रशिक्षण सुविधाओं का **भी अभाव है,** *श्रम की माग व पूर्ति मे सामजस्य बनाए रखने के लिए रोजगार दफ्तर अत्यन्त* **उपयोगी** हैं।

परीक्षा-प्रश्न

1. श्रम की माग एव पूर्ति के बीच सबध स्थापित करने वाली एक कडी के रूप मे रोजगार के दफ्तरो के महत्त्व की विवेचना कीजिए।
2. क्या सेवा रोजगार कार्यालय रोजगार उत्पन्न करते हैं? एक अर्द्धविकसित देश के आर्थिक विकास मे इनकी उपयोगिता एव अर्थ बताइये।
3. भारत मे रोजगार के दफ्तरो के इतिहास व सगठन की विवेचना कीजिए। इनकी कार्य प्रणाली मे क्या दोष हैं? इनके सुधार के लिए सुझाव दीजिए।
4. "भारतीय उद्योगो मे श्रम की भर्ती के तरीके इच्छुक होने के लिये बहुत अधिक छोड देते है और कार्य-क्षमता की ओर नही झुकते।" इस कथन के प्रकाश मे भारत मे रोजगार के दफ्तरो का महत्त्व, कार्य और प्रगति की व्याख्या कीजिये।
5. "जिस समय तक समाज की आधुनिक व्यवस्था रहती है और उस समय तक जब तक कि उसका स्थान ऐसी व्यवस्था नही ले लेती जिसमे प्रत्येक नागरिक को शिक्षण और सेवा अवसर प्राप्त नही होता, उस समय तक श्रम की माग और पूर्ति पर आवश्यक सतुलन सम्भव नहीं है।"

   उक्त वाक्य को दृष्टि मे रखते हुए रोजगार के दफ्तर के महत्त्व और कर्त्तव्यों की भारतीय दृष्टिकोण से विवेचना कीजिए।
6. "इस बात की पूर्ण सावधानी रखनी चाहिये कि श्रमिकों की भर्ती करते समय उनमे पूर्ण ज्ञान और योग्यता के साथ चारित्रिक गुण भी पाये जाते हैं जिससे कि वे अपने कर्त्तव्य का पूरा पालन कर सकें।" स्पष्ट कीजिए तथा बताइए कि भारतीय उद्योगो मे श्रम भर्ती का क्या आधार अपनाया जाता है।
7. "रोजगार के दफ्तर, रोजगार को व्यवस्थित करने के लिये हैं, न कि रोजगार को

जन्म देने के लिये।" भारत मे रोजगार के दफ्तरो की कार्य प्रणाली के प्रकाश मे उक्त कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

8 क्या आपके देश मे रोजगार के दफ्तर सतोषप्रद काय कर रहे हैं ? उनकी त्रुटियों की व्याख्या कीजिये और उनकी कार्य-प्रणाली के सुधार के लिये उपायो का सुझाव दीजिये।

9 भारत मे रोजगार के दफ्तरो की कार्य-प्रणाली का आलोचनात्मक विवेचन कीजिये। उनके सुधार के लिए आप कौन-कौन से सुझाव देंगे ?

अध्याय 8

कार्य की दशाये और कार्य के घंटे
(Working Conditions and Hours of Work)

कार्य करने की दशाओ का अर्थ व क्षेत्र
(Meaning and Scope of Conditions of Work)

कार्य करने की दशाओ से तात्पर्य कारखाने के उस वातावरण से है जिसमे श्रमिको को कार्य करना पडता है। इसमे उनके स्वास्थ्य स्वच्छता, सुरक्षा कल्याण संबंधी अनेक बातो का समावेश होता है। संक्षेप मे, कार्य करने की दशाओ के अंतर्गत वह संपूर्ण परिवेश या पर्यावरण आ जाता है, जिसमे एक श्रमिक को कार्य करना पडता है और जो श्रमिक की बाहरी व आंतरिक दोनो ही अवस्थाओ को प्रभावित करता है।

कार्य दशाओ के क्षेत्र मे जिन विविध बातो का समावेश किया जाता है संक्षेप मे वे इस प्रकार है—

1 **स्वच्छता** स्वच्छता से तात्पर्य यह है कि कार्य करने के स्थान पर किसी भी प्रकार की गंदगी न हो और वहा पर प्रतिदिन सफाई की जाय, फर्श पर नमी न हो, दीवारो पर सफेदी हो, शौचालय व मूत्रालय की सफाई का उचित प्रबंध हो, काम करने की मशीनें साफ सुथरी हो पानी निकलने के लिए नालिया बनी हो, इत्यादि।

2 **उचित वायु का प्रबंध** कारखानो मे शुद्ध वायु के अंदर आने तथा गंदी वायु के बाहर जाने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। जहा पर प्राकृतिक वायु के आने की कोई व्यवस्था न हो वहा पर कृत्रिम वायु की व्यवस्था की जानी चाहिए। किन्ही किन्ही उद्योगो मे उत्पादन प्रक्रिया के दौरान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक गैस उत्पन्न होती रहती है इसके लिए रोशनदान तथा गैस निकालने वाले पंखेदार रोशनदान की व्यवस्था होनी जरूरी है। वायु की उचित व्यवस्था न होने से श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है।

3 **पर्याप्त प्रकाश** कार्य करने के स्थान पर उचित प्रकाश की व्यवस्था करना भी आवश्यक है अन्यथा श्रमिको की आंखों पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है और वे सरलता तथा कार्य क्षमता के साथ कार्य नही कर सकते जिससे उत्पादन कम होता है। जहां तक हो सके प्राकृतिक प्रकाश का प्रबंध होना चाहिए और इसके लिए रोशनदान और खिड़कियो का पर्याप्त संख्या मे होना आवश्यक है। यदि कृत्रिम प्रकाश का प्रबंध किया जाय तो मरकरी लैंप और रॉड अधिक उपयुक्त होंगे।

4 **धूल से रक्षा :** धूल श्रमिक के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, इसलिए यह आवश्यक है कि श्रमिको के लिए धूल से रक्षा करने का उचित प्रबंध हो। अत आस-पास की सडको और कारखानो के अदर जल छिडकने की व्यवस्था की जानी चाहिए और यदि निर्माण क्रिया ऐसी है जिसके परिणामस्वरूप धूल, बुकनी आदि उडकर इधर-उधर एकत्रित होती रहती है तो उसकी सफाई की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। भारत मे गर्म जलवायु होने के कारण ग्रीष्म ऋतु मे धूल अक्सर उडा करती है इसलिए भारतीय उद्योगों मे जल के छिडकाव का महत्त्व और भी बढ जाता है।

5 **उचित तापमान :** तापमान का मनुष्य की शारीरिक व मानसिक कार्य-कुशलता से बहुत गहरा सबध होता है। यदि तापमान बहुत ठडा या गर्म है तो दोनो ही दशाओ मे श्रमिक काम नही कर सकेगा। भारत मे ग्रीष्म काल मे इतनी अधिक गर्मी पडती है कि मानसिक कार्य तो दूर रहा, शारीरिक कार्य करने की भी इच्छा नही होती। अत कृत्रिम साधनो द्वारा तापमान को कम करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

6 **यत्रो से सरक्षण** सभी खतरनाक मशीनो के चारो ओर आड की व्यवस्था की जानी चाहिए और यदि किसी यत्र के प्रयोग के सबध में विशेष सावधानी की आवश्यकता हो तो श्रमिकों को उचित आदेश दे देने चाहिए और आवश्यक सावधानी रखने के लिए पोस्टर थोडी-थोडी दूर पर लगा देने चाहिए।

7 **कल्याण-कार्य व्यवस्था** इसके अलावा स्नानागार, पीने योग्य स्वच्छ जल, वाचनालय, शिशु-सदन, शौचालय, मूत्रालय खेल के मैदान तथा कैन्टीन आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इन सुविधाओ का भी श्रमिको की उत्पादकता एव कार्य क्षमता से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

8 **उचित कार्य के घटे** कार्य करने की दशाओ मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात कार्य के घटे हैं। इनका श्रमिको नियोक्ताओ और समाज पर गहरा प्रभाव पडता है। इसका कारण यह है कि कार्य के घटो का श्रमिक की काय-कुशलता, उसके स्वास्थ्य, काम करने की मनोवृत्ति, सामाजिक सम्बन्धो तथा धार्मिक कार्यों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

श्रेष्ठ कार्य-दशाओ का महत्त्व
(Importance of Working Conditions)

व्यक्ति परिस्थितियो की उपज है, जिस प्रकार की परिस्थितियो मे वह रहता है वह ढलकर उसी प्रकार का बन जाता है। कहा जाता है, पर्यावरण मनुष्य का निर्माण करता है और अगर वह पर्यावरण मे सुधार कर ल तो मनुष्य मे भी सुधार कर सकते हैं।" जिन परिस्थितिया मे मनुष्य कार्य करता है उनका उसके स्वास्थ्य, मनोवृत्ति, कार्य क्षमता, उत्पादकता तथा पारिश्रमिक आदि सभी पर गहरा प्रभाव पडता है। यही नही, औद्योगिक सबध, श्रम स्थिरता, श्रम-सघ भी इस प्रभाव स अछूते नही रहते। अत यदि कोई राष्ट्र यह चाहता है कि औद्योगिक दृष्टि से उसकी सम्पन्नता और उत्पादकता अधिकतम हो, तो वहा के श्रमिकों के लिए काम करने की उचित दशाओं का होना बहुत आवश्यक है।

श्रम उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण सक्रिय साधन है और श्रमिक इस साधन का धारक व वाहक है। अच्छे व उत्साहवर्धक वातावरण मे श्रमिक अधिक कार्य करता है तथा गदे व अस्वस्थ वातावरण मे कम कार्य करता है। जब श्रमिक को अस्वस्थ और दूषित वातावरण मे कार्य करना पडता है, जहा पर चारो ओर गदगी रहती है और धूल उडती है तथा वायु एव प्रकाश का समुचित प्रबध नही होता, तो उसका स्वास्थ्य बिगडने लगता है तथा उसकी कार्य-क्षमता घट जाती है।

कार्य करने की दशाओ का प्रभाव केवल श्रमिक के स्वास्थ्य व कार्य-क्षमता पर ही नही पडता, बल्कि श्रमिक की प्रवासी प्रवृत्ति तथा औद्योगिक सबध भी इससे प्रभावित होते हैं। आज भारतीय औद्योगिक श्रमिको का जो प्रवासी स्वभाव पाया जाता है, उसका मूल कारण भी कार्य करने का दूषित वातावरण ही है।

श्रमिको और मालिको के बीच शातिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण सबध पनपाने मे काम करने की दशाओ का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। अनुभव यह बताता है कि जिन कारखानो मे कार्य करने की दशायें अनुकूल होती हैं उनमे औद्योगिक विवाद यदा-कदा ही खडे होते है और वे सद्भावपूर्ण वातावरण मे सुलझ भी जाते हैं।

कारखाना अधिनियम, 1948 के अतर्गत कार्य करने की दशाओ से सबधित व्यवस्था
(Working Conditions Under Factories Act, 1948)

कारखानो मे उत्तम कार्य-दशायें सुनिश्चित करने के लिए भारतीय कारखाना अधिनियम मे निम्न व्यवस्था की गई है, जिसका पालन करना अनिवार्य है—

1 **स्वच्छता** प्रत्येक कारखाना पूर्ण रूप से स्वच्छ रहना चाहिए तथा नाली मे कूडा कचरा, शौचालय आदि के कारण कही भी दुर्गंध नही रहनी चाहिए। झाडू अथवा अन्य साधनो द्वारा प्रतिदिन फर्श, कार्य करने के कमरो की बेंचो आदि मे से गदगी साफ होनी चाहिए कारखानो के अदर की दीवारें, छतें, आने-जाने के मार्गों की दीवारें, सीढिया इत्यादि कम-से कम हर वर्ष साफ किये जाने चाहिए और उन पर सफेदी अथवा वार्निश होनी चाहिए।

2 **गदगीयुक्त पदार्थों की सफाई** यदि कारखानो मे निर्माण क्रिया के फलस्वरूप उसम कूडा करकट या व्यर्थ पदार्थ उत्पन्न होने हैं तो उनकी सफाई के लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

3 **धूल व धुए से सुरक्षा :** यदि किसी कारखाने मे उत्पादन प्रक्रिया इस प्रकार की है कि उसमे धूल व धुआ उत्पन्न होता है जो श्रमिको के लिए हानिकारक व दुर्गंधयुक्त हैं तो उसे काम करने के कमरे से उसी समय निकालने और एकत्रित न होने देने की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे दूषित वायु मे सास न ली जाय।

4 **रोशनदान तथा तापमान** प्रत्येक कारखाने मे शुद्ध वायु के आने-जाने के लिए पर्याप्त रोशनदान होने चाहिए। कमरो मे तापमान इतना होना चाहिए जिससे श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पडे।

5 **कृत्रिम नमी** : जिन कारखानो मे वायु मे कृत्रिम ढग से नमी बढायी जाती है, राज्य सरकारो को अधिकार दिया गया है कि वे उनके सबध मे नमी का प्रतिमान निर्धारित कर सकें और उसके पालन के नियम भी बना सकें।

6 **अधिक भीडभाड़ पर नियत्रण:** कारखान के किसी भी कमरे मे इतने अधिक व्यक्ति नही होने चाहिए जिससे श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडे। अधिनियम मे यह आदेश है कि काम करन के स्थान पर प्रत्येक श्रमिक के लिए कम से-कम 500 घन फुट का स्थान होना चाहिए।

7 **प्रकाश** प्रत्येक कारखाने मे अदर के भागो मे प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप स समुचित प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि किसी कारखाने मे ऐसी खिडकिया प्रयोग की गई हैं जिनके काच चकाचौंध उत्पन्न करते हो, अथवा आखो को हानि पहुचाते हो तो उन पर रोक लगा देनी चाहिए।

8 **पीने योग्य जल** . प्रत्येक कारखाने मे पीने के लिए स्वच्छ जल का भी उचित प्रबध होना चाहिए। जल पीने का स्थान, स्नानागार, शौचालय, मूत्रालय आदि से 20 फुट से अधिक दूर होना चाहिए। यदि कारखाने मे 250 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं तो गर्मी के मौसम मे पानी को ठडा करने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

9 **शौचालय व मूत्रालय** कारखाने म काम करने वाले श्रमिकों के लिए सुविधाजनक स्थानो मे पर्याप्त सख्या मे शौचालय और मूत्रालयो की व्यवस्था की जानी चाहिए। पुरुषों व महिलाओं के लिए अलग-अलग शौचालय व मूत्रालय की व्यवस्था होनी चाहिए।

10 **पीकदान** प्रत्येक कारखाने म थूकने के लिए पीकदानो की व्यवस्था होनी चाहिए और उनकी सफाई होती रहनी चाहिए। राज्य सरकारो का इस सबध म आवश्यक अधिनियम बनाने का अधिकार होगा।

11 **यत्रों की घेराबदी** श्रमिको की सुरक्षा और दुर्घटनाओ की रोक-थाम के लिए खतरनाक मशीनो उनके घूमने वाले भागो और पहियों के चारो ओर पर्याप्त रूप म आड लगाकर रखने की व्यवस्था करनी चाहिए। खतरनाक आड अथवा विस्फोट स सुरक्षा का भी उचित प्रबध होना चाहिए। आग लग जान की स्थिति म आग बुझाने वाले यत्र कारखान मे काफी मात्रा मे उपलब्ध होन चाहिए।

12 **कल्याण कार्य की व्यवस्था** भारतीय कारखाना अधिनियम की 42 से 50 तक की धाराएं निम्न कल्याण कार्यों की व्यवस्था हेतु आदश दती हैं—(अ) कपडे धोन की सुविधा (ब) बैठने की सुविधा, (स) कपडा को सुखाने व रखने की सुविधा, (द) प्राथमिक चिकित्सा के उपकरण रखना (य) आश्रय स्थल विश्राम स्थल एव कैन्टीन की व्यवस्था (र) शिशु सदन की व्यवस्था (ल) जल पान गृह की व्यवस्था, (व) कल्याण अधिकारियों आदि की नियुक्ति।

विभिन्न उद्योगो में कार्य करने की दशाए
(Working Conditions in Various Industries)

यदि श्रमिकों की काय कुशलता और स्वास्थ्य के लिए कार्य करने की दशायें

सतोषजनक बनाना आवश्यक है परतु भारतीय उद्योगो में काम करने की दशाए आदि भी सतोषजनक नही हैं। श्रम जाच समिति के अनुसार "भारतीय कारखानो की बडी इकाइयो की दशाए अत्यत शोचनीय व विशेष सुधार करने के योग्य हैं। भारत मे काम करने की दशाए शोचनीय होने के कारण यह है कि अधिकाश सेवायोजक इस ओर से बिल्कुल उदासीन रहते हैं और यह सोचते हैं कि काम करने की दशाओ मे उन्नति के लिए व्यय करना व्यर्थ है।" भारत मे विभिन्न उद्योगो मे काम करने की दशाए सामान्यत इस प्रकार हैं—

1 **वस्त्र उद्योग** अन्य उद्योगो की अपेक्षा वस्त्र उद्योग मे कार्य करने की दशाए काफी सतोषजनक हैं। लगभग प्रत्येक कपडा मिल मे वायु व प्रकाश का पर्याप्त प्रबध है और सतोषजनक यत्रो का प्रयोग किया जा रहा है। स्वच्छ जल, सफाई आदि की भी समुचित व्यवस्था है। अहमदाबाद, शोलापुर, ग्वालियर, बबई, दिल्ली, मदुराई, मोदीनगर आदि स्थानो की कुछ कपडा मिलो मे मौसम के अनुकूल तापमान बनाये रखने के यत्रो का प्रयोग किया जाता है। बबई व अहमदाबाद की कुछ मिलो ने रुई की हानिकारक गर्द व रेशो को बाहर निकालने के लिए यत्र लगा रखे हैं। पुराने सूती कपडो के कारखानो मे प्रकाश और तापमान का प्रबध सतोषजनक नही है। मशीनें भी इस तरह लगाई गई हैं कि श्रमिको के चलने-फिरने को पर्याप्त स्थान नही है।

2 **चीनी उद्योग** सामान्य रूप से मद्रास और बबई की चीनी मिलो मे उत्तर प्रदेश और बिहार के चीनी के कारखानो की तुलना मे सफाई अधिक है। अहमदनगर के चीनी के कारखानो म उत्तर प्रदेश और बिहार के कारखानो की तरह दुर्गंध नहीं आती। बिहार और उत्तर प्रदेश की चीनी मिलो म मैले पानी, सीरे व जमे हुए कीचड के कारण सफाई की समस्या बढती जा रही है। सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि चीनी उद्योग मे कार्य करने की दशाए सतोषजनक नही हैं।

3 **जूट उद्योग** जूट उद्योग मे वायु, प्रकाश तथा तापमान को अनुकूल बनाये रखने के लिए प्रयोग किये जाने वाले आधुनिक कृत्रिम साधनो का नही के बराबर उपयोग किया जाता है। कलकत्ता की पुरानी जूट मिलो मे हवा और रोशनी का प्रबध असतोषजनक है। कई मिलो मे स्थान अत्यत सकुचित है। इन मिलो में मशीनें भी ठीक से नही लगाई गई हैं। इसलिए मजदूरो को आने-जाने मे काफी कठिनाई होती है। श्रम जाच समिति के अनुसार "जूट उद्योग मे श्रमिको को खडे-खडे काम करना पडता है जिससे उनके स्वास्थ्य व कार्य-क्षमता पर बुरा प्रभाव पडता है। महिला श्रमिको की दशा तो और भी शोचनीय है।"

4 **इजीनियरिंग उद्योग** इजीनियरिंग उद्योग मे कार्य करने की दशाए अधिक सतोषजनक हैं और उनमे वायु तथा प्रकाश की उचित व्यवस्था है जिससे श्रमिकों को काम करने मे किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पडता। परतु कुछ फाउड्री और वर्कशॉपो मे अभी भी स्थिति सतोषजनक नहीं है।

5 **छापाखाना उद्योग** · कुछ बडे-बडे छापेखानो को छोडकर अधिकाश छापेखाने ऐसे मकानो मे स्थित हैं जहा हवा, रोशनी आदि का कोई प्रबध नहीं है। कुछ

छापेखाने तो अस्तबलो, टीन के शेडो व अधेरी गलियो के किन्ही पुराने मकानो मे कायम हैं। इन छापेखानो की सफेदी या रगाई का प्रश्न भी 8-10 साल मे ही उठता है। फर्शों, दीवारो और मशीनो की सफाई भी नियमित रूप से नही होती है। फलतः यहां-वहां कूडा-करकट इकट्ठा रहता है। छापेखानो मे गर्मी मे गर्म और जाडो मे ठडा तापमान होने के कारण तथा वर्षा मे छतो के चूने के कारण सकट और भी बढ जाता है। छापेखानो में पखो के न होने के कारण श्रमिको की समस्या और भी बढ जाती है।

6 **बर्तन बनाने के उद्योग** इस उद्योग मे कलकत्ता और ग्वालियर म काम करने की दशायें बहुत ही असतोषजनक हैं। सुरक्षा की सुविधायें बगलौर के अतिरिक्त और कहीं भी उपलब्ध नही है।

7 **बागान उद्योग :** भारत के बागानो मे कार्य करने की दशायें अत्यधिक शोचनीय हैं। असम और बगाल के चाय बागानो मे तो मलेरिया का प्रकोप बहुत है, जिसके कारण श्रमिक किसी-न-किसी बीमारी के शिकार बने रहते हैं। श्रमिको के रहने के लिए आवास का भी अभाव है और उन्हे धूप, वर्षा तथा सर्दी की कठोरता का सामना करना पडता है। उन बागानो मे श्रमिको के लिए पीने के शुद्ध जल की कोई व्यवस्था नही है और न ही खाद्य पदार्थ पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो पाते हैं। श्रमिको को इस दूषित वातावरण मे अधिक घटो तक कठोर परिश्रम करना पडता है जिसके कारण उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगती है।

8 **अन्य उद्योग** अन्य उद्योग, जैसे—काच, चमडा, बीडी, अभ्रक व खनिज आदि मे भी काम करने की सामान्य दशाओ की हाल बहुत शोचनीय है।

उपर्युक्त वर्णन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि भारतीय उद्योग मे काम करने की दशायें अत्यत शोचनीय हैं जिनके कारण भारतीय श्रमिक अधिक कार्य-कुशल नही हैं।

कार्य के घटे
(Working Hours)

मजदूरी के स्तरो मे वृद्धि के साथ साथ सतोषजनक काम के घटो की माग तीव्रतर होती जा रही है। श्रमिको का स्वास्थ्य कार्य क्षमता, उत्पादकता व कार्य के घटो से सबद्ध है। सेवायोजको के लिए श्रम की उत्पादन लागत, उत्पादन की मात्रा व गुण, सतुष्ट श्रमिक वर्ग महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनका समाधान श्रमिको के काम के घटो से जुडा हुआ है सामाजिक दृष्टिकोण से भी वस्तुओ एव सेवाओ की पूर्ति तथा ससाधनो का उपयोगीकरण श्रमिको के काम के घटो पर निर्भर रहता है। यही नहीं, उपयोगी वस्तुओ व सेवाओ की माग भी परोक्ष रूप से कार्यविधि से प्रभावित होती है। इस प्रकार, कार्य के घटो की समस्या राष्ट्रीय आय की वृद्धि तथा उसके उपभोग से घनिष्ठ रूप से सबधित है। राष्ट्रीय आय या लाभाश का हित इसी बात मे है कि कार्य करने के घटे प्रत्येक उद्योग की परिस्थितियो के अनुसार निश्चित किये जायें। चूकि श्रमिको की योग्यता, उनकी शक्ति तथा सामर्थ्य प्रत्यक उद्योगो मे उस कार्य-परिस्थिति के कारण, जिसमे वह कार्य

करता है, भिन्न-भिन्न होते हैं, इसलिए सभी उद्योगो मे समान कार्य के घटे निश्चित नही किये जा सकते ।

इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि प्रत्येक उद्योग के लिए अनुकूलतम काम के घटे निश्चित किये जायें । अनुकूलतम कार्यावधि से आशय उन कार्य के घटो मे होना है जो कि एक निश्चित उत्पादन प्रणाली के अतर्गत बिना अनावश्यक थकान के अधिकतम उत्पादन करते हैं। अनुकूलतम काम के घटे होने पर ही श्रमिक दीर्घ काल तक एक-से परिश्रम से कार्य कर सकते हैं। अनुकूलतम काम के घटे मालूम करने के लिए अनवरत अनुसधान की आवश्यकता होती है।

कार्य के घटो के परिणाम

कार्य करने के घटो का—उत्पादन, श्रमिको के स्वास्थ्य व कार्य-क्षमता तथा औद्योगिक शाति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है—

1 उत्पादन पर प्रभाव : यद्यपि इस सबध मे कोई निश्चित नियम नही है कि उत्पादन पर कार्य के घटो का क्या प्रभाव पडता है, क्योकि यह बहुत कुछ प्रबध की दक्षता और यत्र की नवीनता पर निर्भर करता है, फिर भी यह देखा गया है कि काम करने के घटो मे वृद्धि करने से उत्पादन घटिया किस्म का होता है, दुर्घटनायें अधिक होती हैं तथा उत्पादन की मात्रा घट जाती है । इसके कई कारण हैं—

(अ) अधिक घटे काम करने मे श्रमिकों मे थकावट पैदा हो जाती है। अत. बाद के घटो मे उत्पादन मदा घटता रहता है ।

(ब) श्रमिक जान-बूझकर अपने श्रम की बचत करते हैं और यह दुर्गुण भारत के श्रमिको मे बहुत अधिक है।

(स) अधिक घटे कार्य कराने स छुट्टी, अनुपस्थिति, दुर्घटना, श्रम परिवर्तन अधिक होते हैं। अत काम के घटो के कम होने से उत्पादन बढ सकता है। एक अध्ययन के अनुसार जब काम करने के 60 घटे प्रति सप्ताह रहे तब बीमारी, चोट व अनुपस्थिति के कारण कम समय नष्ट हुआ, परतु जब 75 घटे प्रति सप्ताह काम कराया गया तो अधिक समय नष्ट होन लगा।

(द) काम करने के घटे कम होने स बिजली व्यय मे कमी होती है।

(य) अधिक समय कार्य लेने स कार्य का गुण भी खराब हो जाता है।

साप्ताहिक दक्षता चक्र (Weekly Efficiency Cycle) और दैनिक दक्षता चक्र के अध्ययन से भी यह पता चलता है कि कार्य के घटे घटने का अर्थ उत्पादन घटना नही है। प्रो० एच० एम० वर्नन ने प्रथम महायुद्ध मे कार्य के घटो के घटाने मे उत्पादन म वृद्धि पाई थी। उनके अध्ययन के कुछ परिणाम सारणी—1 (पृ० 106) मे दिय जा रहे हैं।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि यह कहना त्रुटिपूर्ण है कि यदि कार्य के घटों म वृद्धि की जाय तो राष्ट्रीय उत्पादन या लाभाश मे भी वृद्धि होगी। पूजीपति लोग राष्ट्र के नाम पर श्रमिको का शोषण करने के लिए इस प्रकार के तर्क देते हैं परतु इसका अर्थ

यह नही है कि काम के घटे निरतर घटाने से उत्पादन सदैव ही बढता है। एक बिंदु पर वह घटना भी शुरू हो जाता है उसके बाद कार्य के घटे घटाना समाज और व्यक्ति के लिए हानिप्रद है। काम के घटे निश्चित करते समय यह विचार रखना चाहिए कि अधिकतम घटे निम्नतम न बन जायें तथा घटो को निश्चित करते समय विभिन्न श्रमिको की विभिन्न आवश्यकताओ का भी ध्यान रखना चाहिए।

सारणी—1 महिला श्रमिको का दैनिक और साप्ताहिक उत्पादन[1]

प्रति सप्ताह काय के घटे	प्रतिदिन का उत्पादन	कुल साप्ताहिक उत्पादन	उत्पादन का साप्ताहिक निदेशाक
66 0	100	7 128	100
54 4	122	7,126	100
47 5	156	8,028	113

पुरुष श्रमिको का दैनिक और साप्ताहिक उत्पादन

प्रति सप्ताह काय के घट	प्रतिदिन का उत्पादन	कुल साप्ताहिक उत्पादन	उत्पादन का साप्ताहिक निदेशाक
58 2	100	5,820	100
51 0	110	6 120	105
50 4	137	6,905	119

2 **श्रमिकों पर प्रभाव** सामान्यत कार्य के घटे कम होने से मजदूरों पर अच्छा प्रभाव पडता है। क्योंकि इससे (अ) श्रमिको की कार्य-कुशलता व उत्पादकता मे वृद्धि होती है, (ब) उसके स्वास्थ्य को हानि नही होती, (स) उसकी आयु में वृद्धि होती है, (द) दुर्घटनायें अनुपस्थिति तथा श्रम परिवर्तन कम होता है, (य) वह शिक्षा, प्रशिक्षण आदि कार्यों मे अधिक समय दे सकता है, (र) उसे पारिवारिक जीवन के लिए भी अधिक समय मिलता है। एक थका हुआ श्रमिक परिवार समाज के लिए एक समस्या होता है।

3 **श्रम व पूजी के सबध पर प्रभाव** सेवायोजको के साथ श्रमिक के सबध मे अधिक काम के घटो के प्रश्नो को लेकर अक्सर वैमनस्य हो जाता है। काम के घटे कम होने की दशा मे श्रम और पूजी के बीच मधुर सबध पैदा हो जाते हैं। श्रमिक सेवायोजको को शोषक नही पोषक समझने लगते हैं। इस प्रकार के स्नेहपूर्ण वातावरण मे उत्पादन निश्चय ही बढता है।

1 Quoted by Chaturvedi & Chaturvedi Labour Economics and Labour Problems, p. 407.

कार्य के घटे के परिणाम के अध्ययन मे यह स्पष्ट है कि यदि श्रमिको के काम के घटो की सख्या कम होगी तो निश्चय ही परिणाम अच्छे होगे। उपर्युक्त बातो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय उद्योग मे कम काम के घटे रखने का विशेष महत्त्व है क्योकि (अ) भारत एक गर्म देश है जहा थोडी देर काम करने से थकावट आ जाती है। (ब) काम के घटे कम रखने से अधिक लोगो को रोजगार मिलेगा और श्रम पूजी के बीच मधुर सबध बने रहेगे जिससे औद्योगिक शाति को प्रेरणा मिलेगी। (स) भारत मे अनुपस्थिति की समस्या गभीर है। सेवायोजक श्रमिक के घटे कम कर दें तो अनुपस्थिति काफी सीमा तक कम हो जायेगी।

भारत मे प्रमुख उद्योगो मे काम के घटे
(Working Hours in Main Indian Industries)

भारत के प्रत्येक उद्योग मे काम के घटो का वर्णन करना तो कठिन है। अत कुछ प्रमुख उद्योगो पर प्रकाश डाला जा रहा है—

1 **कारखाने** · भारत मे सगठित उद्योगो मे कार्य के घटो का निधारण विभिन्न नियमो द्वारा होना है। कारखानो म समय समय पर अधिनियमो मे सशोधन हुए हैं और कार्य के घटो मे भी कमी होती रही है। वर्तमान समय मे जहा तक मौसमी व निरन्तर चलने वाले कारखानो मे श्रमिको क काय के घटो का सबध है प्रत्येक सप्ताह मे 48 घटे और प्रत्येक दिन मे अधिक से अधिक काम के घटे 9 हो सकते हैं। बच्चो से दिन मे 4½ घटो से अधिक कार्य नही कराया जा सकता। सप्ताह मे एक दिन अवकाश और प्रत्येक 4 घटो के काम के उपरात आधे घटे का मध्यान्तर विश्राम आवश्यक है।

2 **खदान उद्योग** इनमे भी वे ही व्यवस्थायें है जो कि कारखाना अधिनियम के अतर्गत लागू होती हैं। इनमे एक विशेष व्यवस्था यह है कि जो श्रमिक सतह के अदर कार्य करते हैं उनसे दिन मे 8 घटो से अधिक कार्य नही लिया जा सकता।

3 **बागान उद्योग** बागानो मे कार्य के घटे बागान श्रमिक नियम द्वारा निर्धारित हैं। वयस्को के लिए सप्ताह मे 54 घटे और बच्चो तथा किशोरो के लिए 40 घटे काय की सीमा है। एक दिन मे 12 घटे से अधिक कार्य नही लिया जा सकता। सप्ताह मे एक दिन अवकाश होना चाहिए।

4 **परिवहन उद्योग** रेलवे वर्कशॉप म काम करने वाले कर्मचारियो को छोड सभी रेलवे कर्मचारियो के कार्य के घटो का निर्धारण (Railway Servants Hours of Employment Rules) 1951 के अनुसार होता है। इसके अतगत रेलवे कर्मचारियो को चार भागो मे बाटा गया है और प्रत्यक श्रेणी के श्रमिक के लिए कार्य के घटे अलग अलग निश्चित कर दिये गय हैं। गहन श्रेणी के कमचारी अधिक स अधिक औसत रूप म एक सप्ताह मे 45 घटे से अधिक कार्य नही कर सकते। निरन्तर श्रेणी के कर्मचारियो के लिए यह अवधि 54 घटे की रखी गई है। आवश्यक अन्तविरामी (Intermittant) श्रेणी मे आने वाले कर्मचारियो के लिए कार्य के घटो की सख्या अधिक से-अधिक 75 घटे निश्चित की गई है। रेलवे वर्कशॉप म काम करने वाले श्रमिको क

काम के घटे कारखाना अधिनियम द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।

भारतीय जहाजरानी उद्योग में कार्य करने वाले कर्मचारियो के लिए कार्य के घटो का निर्धारण इण्डियन मर्चेंट शिपिंग एक्ट द्वारा किया जाता है।

5 **व्यापारिक सस्थायें :** व्यापारिक सस्थाओ मे कर्मचारियो के का केर्य घटे उत्तर प्रदेश, पजाब, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश की सरकारो ने क्रमश 8, 10, 8, 9, 9 तथा 9 निर्धारित किये है। उत्तर प्रदेश राज्य मे प्रति पाच घटे के बाद 1 घटे का आराम अनिवार्य है। इसी प्रकार, मध्य प्रदेश व तमिलनाडु राज्यो मे प्रति 4 घटे के बाद 1 घटे का आराम आवश्यक है।

निष्कर्ष · कार्य के घटो के सबध मे राष्ट्रीय श्रम आयोग का यह विचार है कि कारखानो, खदानो और बागानो म कार्य के घटे धीरे-धीरे घटाकर 40 कर देने चाहिए। यह कार्यक्रम दो चरणो मे पूरा किया जाना चाहिए। पहले तो कार्य के घटे 48 से घटाकर 45 किये जाने चाहिए और फिर 40 कर देना चाहिए। हमारे विचार मे वर्तमान परिस्थिति मे मजदूरो के स्वास्थ्य निधनता महगाई व दक्षता मे ह्रास को देखते हुए यह सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि सप्ताह मे कार्य के घटे 48 मे कम करके 40 और कार्य के दिवस 6 से घटाकर 5 कर दिये जाए। इससे हो सकता है कि प्रारम्भ मे उत्पादन पर कुछ हानिकारक प्रभाव पडे, परतु बाद मे श्रमिको की कार्य कुशलता और उत्पादकता मे सुधार होने से उत्पादन मे निश्चित रूप से वृद्धि होगी।

स्वतन्त्रता के उपरान्त कार्य की दशाओ मे वैधानिक सुधार

स्वतत्र भारत सरकार श्रमिको की आर्थिक दशा सुधारने मे काफी प्रयत्नशील है। निम्नलिखित अधिनियमो के अतर्गत भारत सरकार ने श्रमिको की कार्य-क्षमता को बढाने, उनके रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि करने तथा कार्य की दशाओं मे सुधार करने के लिए प्रयास किया है—

1 कारखाना अधिनियम के अतगत व्यवस्था
2 कर्मचारी भविष्य निधि
3 कर्मचारी राज्य बीमा योजना
4 मातृत्व लाभ अधिनियम
5 न्यूनतम भृत्ति अधिनियम
6 औद्योगिक सघर्ष अधिनियम
7 वृद्धावस्था मे पेन्शन

इन अधिनियमो का विस्तृत वर्णन विभिन्न अध्यायो मे किया गया है अत. हम उनकी पुनरावृत्ति यहा नही कर रहे हैं।

परीक्षा-प्रश्न

1 क्या आपकी सम्मति मे भारतीय कारखानो मे काम करने की दशायें सतोषजनक हैं ? यदि नही, तो उनके सुधार के लिए आपके क्या सुझाव है ?

2 कार्य के घटो के सबध मे कारखाना अधिनियम, 1948 के विविध प्रावधानो का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

3 कार्य के न्यून घटो के लाभो की विवेचना कीजिए। क्या आप भारत मे कम कार्य के घटो की पैरवी करेंगे ?

4 स्वतत्रता के उपरात औद्योगिक श्रमिको की काम करने की दशाओ मे क्या सुधार किये गये हैं ? उनका स्पष्ट वर्णन कीजिए।

अध्याय 9

भारत में उत्पादकता आन्दोलन
(Productivity Movement in India)

उत्पादकता का अर्थ उत्पादन कई साधनो, जैसे—भूमि, श्रम, पूजी, सगठन आदि के सहयोग पर निर्भर रहता है। इसमे से किसी एक साधन का उत्पादन मे जो आनुपातिक भाग रहता है उसे ही साधन की उत्पादकता कहते हैं। सक्षेप मे, उत्पादकता का सामान्य अर्थ वस्तुओ और सेवाओ के रूप मे सपत्ति के उत्पादन तथा उत्पादन मे साधनो के उपयोग के अनुपात से है।" सबसे अधिक रुचि श्रम के सबध मे ली जाती है। अत 'उत्पादकता' शब्द का अभिप्राय श्रम के सापेक्षिक सहयोग से लगाया जाता है। प्रति व्यक्ति या प्रति घटा श्रम की उत्पादकता ज्ञात करनी हो तो निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है—

$$उ = \frac{प}{श्र} \text{ or } P = \frac{O}{M}$$

इस सूत्र मे उ (P) = उत्पादकता (Productivity), श्र (M) = श्रमिक घटे (Men-hours) तथा (O) = समस्त उत्पादन।

परतु उत्पादकता को केवल श्रम के दृष्टिकोण से मापना गलत परिणाम प्रस्तुत करेगा क्योंकि श्रम तो उत्पादन के कई साधनो मे से एक है। वास्तव में, उत्पादकता से आशय प्रत्येक क्षेत्र मे प्रत्येक प्रकार के अपव्यय को समाप्त करने हेतु सामूहिक प्रयासो से है और उपलब्ध मानवीय मौद्रिक मशीनरी व पदार्थों के पूर्णरूपेण उपयोग के लिए सगठित प्रयत्नो से है। **अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन** के अनुसार "उत्पादकता से आशय समूह, समाज अथवा देश के सभाव्य प्रसाधनो के साथ उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओ के अनुपात से है। इसमे मानव, मशीन, माल, मुद्रा शक्ति तथा भूमि आदि समस्त उपलब्ध साधनो का पूर्ण उचित एव क्षमतापूर्ण उपयोग निहित है। यह प्रत्येक क्षेत्र मे प्रत्येक प्रकार से अपव्यय के विरुद्ध सगठित आक्रमण है।" **श्री वी० के० आर०. मेनन** के मतानुसार "उत्पादकता के अन्तर्गत मानसिक प्रवृत्ति का विकास गर्भित करना है। इसमे तात्पर्य किसी कार्य को करने, किसी वस्तु का निर्माण करने अथवा किसी सेवा को प्रदान करने का सर्वश्रेष्ठ, सस्ता, गतिवान एव सरल साधन खोज निकालना है।" **डॉ० बी० बी० लाल** के मतानुसार "**उत्पादकता से** तात्पर्य एक निश्चित समय तथा दशाओ मे उत्पादन परि-**मामों तथा सबधित उत्पादन घटको के** मध्य, वित्तीय तथा भौतिक दोनों के मध्य माप

योग्य सुपरिभाषित सबधो से है।"

उत्पादकता के विषय मे भ्रामक धारणाए

(अ) **उत्पादकता बनाम अत्यधिक कार्य-भार** : श्रमिक वर्ग म उत्पादकता से अधिक कार्य-भार एव कठिन परिश्रम का अर्थ समझा जाता है, जिसका उद्देश्य मिल मालिको के लाभ मे वृद्धि करना है। श्रमिको को अपने मस्तिष्क म इस भ्रान्तिपूर्ण धारणा को निकाल देना चाहिए और समझना चाहिए कि उत्पादकता बढाने का उद्देश्य अधिक कुशलता से कार्य करना है जिससे श्रमिको को कम थकावट हो, उनके काम की दशाओ मे सुधार हो और उनकी कार्य विधि सरल हो जाय।

(ब) **उत्पादकता बनाम उत्पादन** : कुछ लोग उत्पादकता को उत्पादन का पर्यायवाची मानते हैं। वास्तव मे, उत्पादन व उत्पादकता मे अतर है। यदि किसी उद्योग मे उत्पादन बढता है तो इसका अर्थ यह नही होता कि उद्योग की उत्पादकता मे वृद्धि हो गई है। *ऐसा हो सकता है कि उद्योग मे उत्पादन बढ जाय परतु उत्पादकता पूर्ववत्* ही रहे अथवा कम हो जाय। इस तथ्य को नीचे सारणी द्वारा समझाया गया है।

सारणी—1

	'अ' फैक्टरी	'ब' फैक्टरी
विनियोजित पूजी	1 लाख रुपये	1 5 लाख रुपये
श्रमिको की सख्या	100	200
उत्पादन इकाइया	3 लाख	1 लाख 10 हजार

उपर्युक्त दोनो फैक्टरियो म से 'ब' म उत्पादन अधिक है परतु श्रम एव पूजी की उत्पादकता 'ब' की अपेक्षा 'अ म अधिक है।

भारत मे उत्पाकता आदोलन का महत्त्व

भारत एक विकासशील देश है जो स्वतत्रता प्राप्ति के बाद केवल पचवर्षीय योजनाओ के माध्यम से अपना विकास करन का प्रयत्न कर रहा है। फिर भी हमारी औद्योगिक प्रगति सतोषजनक नही है। उद्योगो की उत्पादन क्षमता अत्यत ही न्यून है और उत्पादन लागत बहुत अधिक है। इसके लिए उत्तरदायी मुख्य कारण उत्पादन की अवैज्ञानिक एव परम्परागत पद्धतिया पुरानी मशीनें एव यत्र अनुपयुक्त मानवीय सबध, निम्नतर प्रबध प्रणाली तथा विवेकीकरण एव आधुनिकीकरण जैसी नीतियो को न अपनाना है। सक्षेप म, यहा के उद्योगो की उत्पादकता अतर्राष्ट्रीय औद्योगिक क्षेत्र की तुलना मे काफी पिछडी हुई है। अत भारत म उत्पादकता वृद्धि और उत्पादकता आदोलन अपना विशेष महत्त्व रखता है। उत्पादकता आज समृद्धि का प्रतीक है और भारत **के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न है।** वस्तुत आवश्यकता इस बात की है कि उत्पादन

की विकसित पद्धतियो नवीनतम मशीनो एव उपकरणो, श्रेष्ठ मानवीय सबधी तथा प्रबध गतिविधियो द्वारा औद्योगिक उत्पादकता म वृद्धि की जाय। उत्पादकता वृद्धि से ही श्रेष्ठ किस्म की वस्तुओ का कम लागत पर उत्पादन करना, बाजारो को व्यापक करना और जन-सामान्य का जीवन-स्तर ऊचा करना सभव हो सकता है।

स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस तथ्य का आभास करते हुए एक बार कहा था कि "यद्यपि हमारे देश मे पर्याप्त मात्रा मे सस्ती श्रम-शक्ति उपलब्ध है फिर भी हम अन्य देशो से उत्पादन-कला व लागत आदि मे प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते, यहा तक कि हम देश के आतरिक सुरक्षित बाजार मे भी अधिक दिनो तक नही टिक पाते। इस वास्तविकता का उत्तर केवल एक ही बात म निहित है कि हम अपने सीमित साधनों का सर्वोपयुक्त ढग से उपयोग करें और उत्पादन की विकसित तकनीक एव प्रबन्ध की श्रेष्ठतम प्रणालियो को मान्यता प्रदान करें।' स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री ने भी उत्पादकता के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा था "हमे लोगो का जीवन-स्तर उच्च तर करना है। उत्पादकता बढाने से उत्पादन की लागत कम होती है जिससे वस्तुए कम कीमत पर बेची जा सकती हैं और बाजार का विस्तार होता है तथा विश्व के बाजारों मे हमारी वस्तुए महत्त्वपूण ढग से प्रतियोगिता कर सकती हैं।' इसी प्रकार, स्वर्गीय राष्ट्र पति डॉ० जाकिर हुसेन ने राष्ट्रीय विकास परिषद और राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के सम्मिलित अधिवेशन मे बोलते हुए कहा था यह एक विरोधाभास लगता है कि यद्यपि उच्च विकसित राष्ट्रो की तुलना मे हमारे यहा मजदूरी का स्तर नीचा है लेकिन जो वस्तुए हम तैयार करते हैं वे सस्ती नही हैं बल्कि अधिक लागत की हैं जिसमे उनके बिकने मे कठिनाई बनी रहती है। इसका एक ही उत्तर है कि हम अपनी जन शक्ति एव अन्य साधनो का प्रभावशाली ढग से उपयोग करें ताकि उत्पादकता मे वृद्धि हो सके।

भारत मे उत्पादकता आदोलन की आवश्यकता का महत्त्व

1 **आर्थिक पिछड़ापन** भारत आर्थिक दृष्टि से विकसित देशो की तुलना में एक पिछडा हुआ देश है और यह आत्म निभर नही है। अत यह आवश्यक है कि उत्पादकता को बढाकर देश के प्राकृतिक साधनो का अधिक कुशल उपयोग किया जाय जिसके फलस्वरूप देश मे ही उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि होगी और आयात पर निर्भरता कम होगी।

उत्पादकता वृद्धि से एक तरफ तो औद्योगिक इकाइयों की उत्पादन क्षमता बढती है और दूसरी ओर पूजीगत वस्तुओ का अधिक उत्पादन होने के कारण पूजी निर्माण को बढावा मिलता है। बढी हुई उत्पादन क्षमता तथा पूजी निर्माण से विकास की दर म वृद्धि होती है और अथव्यवस्था मे सुदृढता आती है।

2 **जीवन स्तर मे सुधार** भारतवासियो का जीवन स्तर काफी गिरा हुआ है। यद्यपि पचवर्षीय योजनाओ के माध्यम म जन साधारण की दरिद्रता को दूर करने के पुनीत काय म हमारी सरकार सलग्न है लेकिन योजनाए अपने म कोई चमत्कार अथवा दैवी शक्ति नही हैं इसके लिए हमे अतत उत्पादन-क्षमता अर्थात उत्पादकता वृद्धि का

ही आश्रय लेना होगा। उत्पादकता वृद्धि मे श्रमिको की आय बढेगी, उनके जीवन-स्तर में सुधार होगा, उपभोक्ता वर्ग को विभिन्न वस्तुए श्रेष्ठ स्तर की तथा उचित मूल्य पर उपलब्ध होगी और उद्योगपतियो को अपनी पूजी पर समुचित प्रतिफल मिलेगा।

3 **निर्यात प्रोत्साहन** एक अनुमान के अनुसार भारतीय वस्तुओ की उत्पादन लागत तथा मूल्य अतर्राष्ट्रीय स्तर की तुलना मे 50% से 90% तक अधिक है। फलस्वरूप हम विदेशी उत्पादको से प्रतिस्पर्धा नही कर पाते। विदेशी प्रतिस्पर्धा के अतिरिक्त आर्थिक विकास की दृष्टि से हमे देश की आर्थिक योजनाओं को क्रियान्वित करने तथा सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ करने की दृष्टि से विदेशी तकनीकी ज्ञान और विदेशी मशीनों को आयात करने के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता है, परन्तु यह सब कुछ तभी सभव हो सकता है जबकि हमारे उद्योग की उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि हो अन्यथा सभी स्वप्न अधूरे बने रहेंगे। अत विदेशी बाजारो मे अपना स्थान बनाए रखने और आर्थिक विकास की गति तीव्र करने के लिए औद्योगिक उत्पादकता मे वृद्धि आवश्यक है।

4 **उत्पादन मात्रा मे वृद्धि और उत्पादन लागत मे कमी** भारत मे पूजी-निर्माण का अभाव है अत यह आवश्यक है कि हम अपने सीमित पूजीगत साधनों से अधिकतम उत्पादन करें ताकि एक तरफ वस्तुओ की माग एव पूर्ति मे सतुलन बना रहे, और दूसरी तरफ, उत्पादन की लागत मे कमी हो सके। कम पूजी मे उत्पादन लागत मे कमी और उत्पादन मात्रा में वृद्धि के लिए उत्पादकता को बढाना होगा। 1954 मे प्रकाशित अंतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के एक प्रकाशन मे उत्पादकता के इस पहलू के सबध मे कहा गया था "विस्तृत और आधारभूत अर्थ मे उत्पादकता वृद्धि की समस्या को रोजगार मे लगे सभी साधनो को अधिक कुशल प्रयोग मे लगाने की समस्या कहा जा सकता है जिसमे कम से-कम सभावित वास्तविक लागत पर वस्तुए और सेवाए उत्पादित की जा सकें।

5 **उत्पादकता निर्देशाको के विविध प्रयोग** आजकल उत्पादकता का माप सांख्यिकीय विधियो द्वारा किया जाता है जिसमे उत्पादकता निर्देशाको का निर्माण मुख्य है। उत्पादकता निर्देशाक मे होने वाले परिवर्तनो के आधार पर ही (अ) मजदूरी का भुगतान, मौद्रिक एव वास्तविक मजदूरी, कार्य करने की दशाओ, मूल्य नीति, प्रशुल्क नीति तथा मौद्रिक नीति आदि मे यथानुरूप सशोधन किए जाते हैं। (ब) उत्पादकता निर्देशाको मे भूतकाल की स्थिति, वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की क्षमता का अनुमान लगाया जाता है। (स) दो देशो की औद्योगिक प्रगति अथवा दो उद्योगो की तुलना उत्पादक निर्देशाको की सहायता से सरलतापूर्वक की जा सकती है।

6 **अन्य लाभ** (i) उत्पादकता मे वृद्धि होने मे देश की वास्तविक आय मे भी वृद्धि होती है।

(ii) उत्पादकता मे वृद्धि होने से श्रमिको को भी लाभ पहुचता है। उनकी आय म वृद्धि होती है काम के घन्टो मे कमी होती है तथा श्रम कल्याणकारी कार्यों मे वृद्धि होती है।

(iii) विदेशी उत्पादको से सफल प्रतियोगिता की जा सकती है।

(iv) देश की सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए भी उत्पादकता मे वृद्धि करना आवश्यक प्रतीत होता है।

भारत मे उत्पादकता आदोलन की प्रगति

भारत मे उत्पादकता आदोलन के सबध में समय-समय पर जो प्रयास किए गए हैं उनका सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

1 **विदेशी विशेषज्ञ-दलों का आगमन** सितम्बर, 1952 मे अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की ओर से 4 व्यक्तियो का एक शिष्ट मडल भारत पधारा, जिसका उद्देश्य अगले छः महीनों में भारतीय उद्योगो म उत्पादकता के वर्तमान स्तरो का पता लगाना तथा उसमे सुधार हेतु प्रदर्शन एव सुझाव देना था। उस समय भारत म उत्पादकता का कोई केंद्रीय सगठन नही था। इस शिष्ट मडल ने बबई तथा कलकत्ता मे श्रम-उत्पादकता से सबधित अनेक प्रदर्शन सयोजित किए और उत्पादकता आदोलन को सक्रिय आधार पर लागू करने के सुझाव दिए। सितम्बर 1954 म पुन दो विशेषज्ञ भारत आये और उन्होंने भारत मे राष्ट्रीय उत्पादकता केंद्र स्थापित करने का सुझाव दिया।

2 **भारतीय उत्पादकता शिष्ट मडल का जापान भ्रमण** . अक्तूबर-नवम्बर, 1956 मे भारत ने एक दल उत्पादकता बढाने की प्रचलित विधियो का अध्ययन करने के लिए डॉ० विक्रम साराभाई की अध्यक्षता मे जापान भेजा। दल ने विस्तृत अध्ययन एव गहन सर्वेक्षण के बाद 1957 मे अपने प्रतिवेदन मे यह सुझाव दिया कि जापान की भांति भारत में भी राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादकता वृद्धि आदोलन चलाया जाए और इस कार्य के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की स्थापना की जाए।

3 **उत्पादकता सेमिनार का आयोजन** जापान से लौटे अध्ययन-दल की सिफारिशों पर विचार करने के लिए सरकार द्वारा 1957 मे एक सेमिनार का आयोजन किया गया ताकि सपूर्ण स्थिति पर विचार करते हुए उत्पादकता आदोलन के आधारभूत सिद्धात निश्चित किए जा सकें। इस सेमिनार मे आदोलन की प्रगति के लिए जो आधारभूत सिद्धात निश्चित किए गए वे सक्षेप मे इस प्रकार हैं—(i) उत्पादकता आदोलन को बल देने हेतु राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की स्थापना की जाय। (ii) सुधरी हुई तकनीक का प्रयोग करके उत्पादन की मात्रा और गुण मे सुधार किया जाय। (iii) रोजगार सभावनाओ मे वृद्धि उत्पादकता वृद्धि पर ही निर्भर है। (iv) उत्पादकता वृद्धि के सपूर्ण लाभ सभी वर्गों—श्रम पूजी तथा उपभोक्ता—म समान रूप से वितरित किए जाए। (v) उत्पादकता वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करने के लिए औद्योगिक सबध मधुर बनाए जाए। (vi) उत्पादकता आदोलन का क्षेत्र विस्तृत बनाया जाए अर्थात् लघु एव वृहत तथा सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के सभी उद्योगो मे इस आदोलन को एक साथ लागू किया जाए।

4 **राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना** उत्पादकता सेमिनार के निष्कर्षों के आधार पर जनवरी, 1958 मे भारत सरकार ने राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की

स्थापना करने का निश्चय किया और फरवरी, 1958 मे सार्वभौमिक संस्था के रूप में इसकी स्थापना की गई। उत्पादकता परिषद् की विस्तृत विवेचना हम इसी अध्याय मे आगे करेंगे।

5 **उत्पादकता वर्ष 1966 का निर्धारण :** उद्योगपतियो के मध्य उत्पादकता के प्रति उत्साह, जागरूकता और उत्प्रेरणा उत्पन्न करने की दृष्टि से भारत सरकार ने 1966 का कैलेण्डर वर्ष 'भारत उत्पादकता वर्ष' के रूप मे मनाया। इस वर्ष मे उत्पादकता आदोलन को अधिक गतिशील तथा राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए हर सभव कदम उठाया गया। सरकार की ओर से एक नया नारा **'अधिक उपजाओ, कम उपभोग करो, नष्ट कुछ मत करो'** (Grow more, Consume less, Waste nothing) चलाया गया, स्थान-स्थान पर उत्पादकता सेमिनार आयोजित किए गए तथा काफी प्रचार किया गया।

6. **पचवर्षीय योजनाओ मे उत्पादकता वृद्धि प्रयास** योजना के अनुसार ' देश की पचवर्षीय योजनाओं का मुख्य लक्ष्य औद्योगिक एव आर्थिक विकास को हर कीमत पर तीव्रता प्रदान करना है लेकिन यह तभी सभव हो सकता है जब उत्पादन के प्रत्येक मोर्चे पर हम सक्रिय बने रहे।'' विकास की दर पर ही अतिम रूप से उत्पादकता वृद्धि निर्भर करती है इसलिए हमे इस दृष्टि से पूर्ण सतर्क रहना है।" पचवर्षीय योजनाओ म उत्पादकता आदोलन के लिए उचित वातावरण तैयार हो सके, इस दृष्टि से हर सभव प्रयास किया गया। उदाहरणार्थ, क्षमता-सहिता और आचार-सहिता (Capacity Code, and Code of Conduct) तैयार की गई। श्रमिको एव प्रबधको के समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई, श्रमिको के कार्य की दशाओ मे सुधार किया गया, श्रमिको एव सेवायोजको के सबधो को मधुर बनाने के प्रयास किए गए। भारत सरकार ने उत्पादकता की प्रेरणा बनाए रखने के लिए 1956 से **श्रम-वीर** नामक राष्ट्रीय पुरस्कार की भी व्यवस्था की है।

7 **उत्पादकता आदोलन में अन्य सस्थाओ का योगदान** देश के औद्योगिक उत्पादकता आदोलन म राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के अतिरिक्त निम्न सस्थाओ के योगदान भी उल्लेखनीय है—(i) भारतीय साख्यिकीय सस्थान, कलकत्ता मे विदेशी विशेषज्ञो को आमत्रित कर साख्यिकीय गुण-नियत्रण के प्रशिक्षण का प्रबध किया है। (ii) अहमदाबाद टेक्सटाइल्स इण्डस्ट्रीज रिसर्च एसोसियेशन ने वस्त्र उद्योग म गुण नियत्रण कला का विस्तार किया है। (iii) राष्ट्रीय विकास परिषदो के अतर्गत प्लाट प्रोजेक्ट कमेटी एव योजना की औद्योगिक प्रबध अनुसधान इकाई तथा अन्य अनुसधान सस्थाओ द्वारा उत्पादकता वृद्धि से सबधित तकनीक मे छानबीन के प्रयत्न किए जाते है। (iv) अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने भारत को विशेषज्ञों की सेवाए उपलब्ध कर इस आदोलन को प्रोत्साहित किया है। (v) अमेरिका के तकनीकी सहयोग मिशन ने भी विशेषज्ञो की सेवाओ तथा पुस्तको के रूप मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को सहयोग दिया है।

8. **उत्पादकता सेमिनार, 1972 :** नयी दिल्ली मे **राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद्**

द्वारा मार्च, 1972 मे उत्पादकता पर त्रिपक्षीय सेमिनार का आयोजन किया गया जिसमे उत्पादकता वृद्धि के प्रयासो मे तेजी लाने तथा उत्पादकता वृद्धि मे श्रम और प्रबध के योगदान पर विचार-विमर्श किया गया।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (राउप)
(National Productivity Council)

1 **स्थापना व प्रबध** अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा भेजे गए शिष्ट मडल की सिफारिश तथा 1957 मे आयोजित उत्पादकता सेमिनार मे लिए गए सर्वसम्मत निर्णय के आधार पर भारत सरकार ने जनवरी, 1958 मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना का निश्चय किया जिसे फरवरी, 1958 मे एक रूपाकार दिया गया। परिषद् एक स्वायत्तशासी सस्था है जिसमे सदस्यो की सख्या 75 से अधिक नही हो सकती। इसमे उद्योगपतियो, श्रमिको तथा सरकार तीनो के सदस्य समान सख्या मे दिए जाते हैं ताकि सही तरीके से प्रतिनिधित्व बना रह सके। परिषद का प्रबध एक प्रशासनीय समिति द्वारा किया जाता है जिसमे अधिक-से अधिक 25 सदस्य हो सकते हैं। इन सदस्यो का निर्वाचन परिषद द्वारा किया जाता है। परिषद की इस समय 10 प्रशासनीय सस्थाए हैं जिनके जिम्मे अलग अलग कार्य लगाए गए हैं। प्रशासन समिति की बैठक तीन महीने मे एक बार होना अनिवार्य है।

परिषद् के कार्य

इस परिषद के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं (1) स्थानीय उत्पादकता परिषदो के माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन, सगठन तथा प्रबध करना। (2) स्थानीय उत्पादकता परिषदो की कार्यवाही का निदेशन करना और इनका विकास करना। (3) उत्पादकता के सबध मे स्थानीय, क्षेत्रीय एव राष्ट्रीय सम्मेलनो और गोष्ठियो का आयोजन करना। (4) उत्पादकता से सबधित साहित्य एव पत्र पत्रिकाए प्रकाशित करना। (5) उत्पादकता से सबधित साहित्य के क्षेत्रीय भाषाओ मे प्रकाशन की व्यवस्था करना। (6) तकनीकी सहायता कार्यक्रम के अतर्गत प्रबधकीय एव तकनीकी प्रशिक्षण के लिए व्यक्तियो को विदेश भेजना। (7) उत्पादकता बढाने के लिए प्रयास करना। (8) औद्योगिक इकाइयो मे इकाई उत्पादकता केंद्र स्थापित करने मे सहायता करना और सपूर्ण देश के लिए औद्योगिक उत्पादकता परिषदें स्थापित करना। (9) विदेशो मे उत्पादकता मडल भेजना। (10) अध्ययन मडलो के प्रतिवेदनों को प्रकाशित करना। (11) उत्पादकता सर्वेक्षणो का सचालन करना। (12) एशियन उत्पादकता सगठन की कार्यवाही मे सहायता करना।

परिषद् की प्रगति

परिषद् की पहली बैठक मार्च, 1958 मे हुई जिसमे अष्ट सूत्री योजना तैयार करके उसे परिषद् के स्थायी कार्यों की सज्ञा दी गई। अप्रैल, 1958 मे परिषद् ने

उत्पादकता सर्वेक्षण समिति का गठन किया। इस समिति का मुख्य कार्य देश मे तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त कर्मचारियो की आवश्यकता का अनुमान लगाना और उनकी उपलब्धता के सबध मे जानकारी प्राप्त करना है। अक्तूबर, 1960 के प्रथम सप्ताह मे द्विदिवसीय सेमिनार का आयोजन किया गया जिसमे 15 सूत्री योजना पर विचार करते हुए सरकार, श्रमिको तथा सेवायोजको, तीनो पक्षो के उत्पादकता वृद्धि सबधी उत्तरदायित्व निश्चित किए गए। मई, 1962 में पुन सात सूत्री उत्पादकता सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन को सात दलो मे बाटा गया ताकि सभी विषयो पर पूर्ण दक्षता के साथ विचार विमर्श किया जा सके। सम्मेलन मे प्रत्येक उद्योग मे एक **उत्पादकता परिषद् स्थापित किए जाने का निश्चय किया गया।** सबसे पहले छपाई उद्योग मे यह परिषद् स्थापित की गई। बाद मे अनेक अन्य उद्योगो मे भी उत्पादकता परिषदो की स्थापना की गई।

इसकी कार्य प्रगति का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1 **प्रशिक्षण कार्यक्रम** परिषद् द्वारा विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन और विभिन्न क्षेत्रीय तथा स्थानीय उत्पादकता परिषदो को विशेषज्ञो की सेवा उपलब्ध कराई गई है। परिषद् के समय-समय पर कार्य अध्ययन, कार्य विश्लेषण और कार्य मूल्याकन तथा लागत नियत्रण से सबधित विभिन्न अध्ययन किए गए हैं और उनके निष्कर्ष प्रकाशित किए गए हैं।

परिषद् ने 1970 मे सुपरवाइजर विकास योजना कार्यक्रम भी शुरू किया जिसके अतर्गत 'National Certificate Examination' का आयोजन किया जाता है। यद्यपि यह स्वय एक अध्ययन योजना है लेकिन रजिस्टर्ड परीक्षार्थियों के लिए कोचिग की व्यवस्था भी की जाती है।

2 **लघुस्तरीय क्षेत्र के लिए उत्पादकता सेवाएं** परिषद् विशिष्ट उत्पादकता केंद्रो के माध्यम से लघुस्तरीय क्षेत्र के उद्योगो को उत्पादकता प्रशिक्षण एव तकनीकी सेवाओ की सुविधा उपलब्ध करती है। परिषद् ने तमिलनाडु मे राज्य सरकार की सहायता से एक उत्पादकता केंद्र केवल लघु उद्योगो के लिए ही स्थापित किया था। बाद मे इसी प्रकार की इकाइया पजाब, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और आध्र प्रदेश मे स्थापित की गई हैं। इन केंद्रो द्वारा बहुत ही कम शुल्क पर सेवा प्रदान की जाती है।

3 **उत्पादकता सर्वेक्षण .** परिषद् द्वारा 1964 मे उत्पादकता सर्वेक्षण एव क्रियान्वयन सेवा शुरू की गई। इस सेवा का उद्देश्य उद्योगो मे सुधरी हुई पद्धतियो, प्रक्रियाओ एव तकनीकी का प्रयोग करना तथा अपव्ययों को समाप्त करके उनकी क्रियात्मक तथा प्रबधकीय कार्य-कुशलता मे वृद्धि करना है।

4 **गोष्ठियों, परिचर्चाओं तथा सम्मेलनो का आयोजन** परिषद् ने उत्पादकता वृद्धि के सबध मे समय-समय पर गोष्ठियो, परिचर्चाओ तथा सम्मेलनो का आयोजन किया है।

5. **प्रकाशन कार्य .** यह परिषद् उत्पादकता के विभिन्न पहलुओ पर बहुत-सी त्रिकाए भी प्रकाशित करती है। परिषद् नियमित रूप से अग्रेजी मे *Productivity*

News (मासिक) तथा Productivity (त्रैमासिक) और हिंदी मे उत्पादकता पत्रिकाए प्रकाशित करता है। इसके अतिरिक्त परिषद् के प्रकाशनो मे Training Manuals, Supervision Guides तथा A P O Study Mission Reports आदि उल्लेखनीय हैं।

6 **ईंधन क्षमता एवं तकनीकी सेवाए :** परिषद् ने कुछ विशिष्ट क्षेत्रो, जैसे ईंधन क्षमता (Fuel Efficiency), सयत्र अभियंत्रण (Plant Engineering) तथा उत्पादन अभियत्रण मे तकनीकी सेवाए प्रदान की हैं।

7 **विदेशो मे भेजे गए अध्ययन दल** परिषद् ने समय-समय पर उत्पादकता के सबध मे अध्ययन करने के लिए अध्ययन दलो को भी विदेशो मे भेजा है।

8 **अतर्राष्ट्रीय सेवाएं** परिषद् ने अब तक 10 अतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन किया है तथा विदेशो मे प्रशिक्षण के लिए काफी मात्रा म छात्र-वृत्तिया प्रदान की हैं।

9 **विकास कार्य :** परिषद् द्वारा स्थानीय उत्पादकता परिषदो के माध्यम से 31 मार्च, 1977 तक 301 अतर्देशीय उत्पादकता अध्ययन दलो का गठन किया गया जिनके सदस्यो की सख्या 2,862 थी।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के अधिक योगदान के लिए सुझाव

मार्च, 1972 मे नई दिल्ली मे उत्पादकता पर आयोजित एक कार्यक्रम मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के योगदान को अधिक उपयोगी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए—

1 राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की सेवाओ का विस्तार करने के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए।

2 प्रबधकीय निष्पादन को मूल्याकन करने के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को नई विधियो का विकास करना चाहिए।

3 राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को चाहिए कि वह उत्पादकता की योजना तथा पचवर्षीय योजनाओ मे सबध स्थापित करने हेतु सरकार तथा योजना आयोग की सिफारिश के लिए उचित कदम उठाए।

4 लघुस्तरीय उद्योगो मे उत्पादकता म सुधार करने के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को एक विशिष्ट परामर्श विंग (Special Consultancy Wing) की स्थापना करनी चाहिए।

5 राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे अनुसधान का कार्य सपन्न करना चाहिए, जैसे—वेतन वृद्धि के सबध मे उत्पादकता वृद्धि का अध्ययन करना, उत्पादकता के क्षेत्र मे अध्ययन करना आदि।

6 देश मे मूल्याकन यत्र तथा सामग्री का उपयोग होन के कारण उसके अनुरक्षण की ओर ध्यान देना चाहिए। इस ओर भी राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को ध्यान देना चाहिए।

7 कृषि उत्पादकता के क्षेत्र पर आधारित उद्योगो की उत्पादकता मे सुधार करने के लिए भी राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को प्रयत्न करने चाहिए।

8 कर्मचारियो तथा श्रम सघो के पदाधिकारियो के उत्पादकता-स्तर को ऊचा उठाने के लिए श्रम सघो को विशिष्ट उपायो के सबध मे परामर्श देना।

9 आगे आने वाले वर्षों मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के महत्त्वपूर्ण योगदान को ध्यान मे रखते हुए इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि केंद्रीय सरकार राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को दिए जाने वाले वार्षिक अनुदान मे पर्याप्त वृद्धि करे।

10 विभिन्न उद्योगो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को एक 'प्रशिक्षण कार्यक्रम' का विकास करना चाहिए।

11 उत्पादकता तकनीको के उपयोग के लिए उपयुक्त वातावरण की स्थापना करना। इसके लिए योग्य पचो की सभाओ का विकास करना, ताकि प्रबध एव श्रम सघ के मध्य विवाद के उत्पन्न होने पर उनकी सेवाओं का उपयोग किया जा सके।

भारत मे उत्पादकता आन्दोलन का मूल्याकन
(An Evaluation of Productivity Movement in India)

भारत मे उत्पादकता आदोलन की प्रगति के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि यह आदोलन धीरे-धीरे जोर पकडता जा रहा है और उत्पादकता एव श्रमिक दोनो वर्ग अब यह महसूस करने लगे हैं कि उत्पादकता मे वृद्धि किए बिना उनका तथा राष्ट्र का हित सभव नही है। परतु फिर भी भारतीय उद्योग अधिक उत्पादन लागत, निम्न गुण-स्तर व अप्रयुक्त क्षमता आदि की समस्याओ से ग्रस्त हैं। अत आवश्यकता इस बात की है कि सभी समस्याओ का हल खोजा जाय, गतिरोधो को दूर किया जाय। देश के प्रत्येक कारखाने को उत्पादकता आदोलन की परिधि मे लाया जाए। इस सबध मे निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1 **प्रबधकीय कुशलता** . उत्पादन के सभी साधनों का क्षमतापूर्ण प्रयोग प्रबधकीय कुशलता द्वारा ही सभव होता है। यदि हम यह मान लें कि कच्चे पदार्थों तथा पूजी के प्रयोग से उत्पादन पर पडने वाला प्रभाव यथास्थिर रहता है तो श्रम ही उत्पादकता निर्धारित करने का प्रमुख कारक है। अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के एक प्रलेख मे यह स्पष्ट किया गया है "जबकि सरकार, सेवायोजक वर्ग तथा प्रबधक वर्ग और श्रमिक वर्ग सभी उत्पादकता बढाने के लिए उत्तरदायी हैं और उसमे योगदान दे सकते हैं। परतु प्रबध एक प्रमुख कारक है। कोई भी देश अन्य प्रकार की तकनीकी सहायता, जिसमे प्रशिक्षण भी शामिल है का पूरा लाभ नहीं उठा सकता जब तक कि उसके पास श्रम-शक्ति के ज्ञान का उपयोग करने के लिए प्रबधकीय योग्यता न हो अत अर्द्धविकसित देशो मे व्यापक अतिरिक्त पूजी को आकर्षक बनाने के लिए पर्याप्त परिमाण मे प्रबधकीय योग्यता का विकास आर्थिक विकास योजनाओ की सफलता के लिए निर्धारक है।" इसी प्रकार, उर्विक एव ब्रोच ने प्रबधक वर्ग के उत्पादकता वृद्धि मे योगदान के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है : "कोई सिद्धात, वाद या राजनीतिक दर्शन सीमित मानवीय

तथा भौतिक साधनो के उपयोग से कम प्रयत्न द्वारा अधिक उत्पादकता सभव नही बना सकता। यह केवल दोषरहित प्रबध द्वारा ही सभव हो सकता है।" अत प्रबधको के चुनाव व प्रशिक्षण के सबध मे विशेष सतर्कता रखनी चाहिए।

श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि निम्नस्तरीय प्रबध अर्थात् निरीक्षण-स्तरीय प्रबध को सुदृढ किया जाए। यदि प्रबध की यह कडी कमजोर होगी तो श्रम की उत्पादकता बढाने के तकनीकी सुधारो को कार्यान्वित करने में बाधा उपस्थित होगी।

2. **मधुर औद्योगिक सबध** मधुर औद्योगिक सबध उत्पादकता बढाने की एक महत्त्वपूर्ण पूर्व शर्त है। श्रमिक-वर्ग उत्पादकता आदोलन मे सक्रिय रूप से भाग लें, इसके लिए आवश्यक है कि (i) श्रम-कल्याण-कार्यों मे वृद्धि की जाए। (ii) श्रमिकों को प्रबध मे उचित स्थान दिया जाए। (iii) उन्हे आर्थिक उत्प्रेरणा प्रदान की जाए। (iv) कार्य करने की दशाओ मे सुधार किया जाए। (v) उत्पादकता वृद्धि के लाभ उनमे समान रूप से वितरित किए जाए। (vi) इस प्रकार के नैतिक वातावरण तैयार किए जाए जिनमे श्रमिको को अनुभव हो कि उत्पादकता वृद्धि उनके हित मे है।

3 **वित्त की उपलब्धता** औद्योगिक अनुसधान एव शोध कार्य करने, विवेकीकरण और आधुनिकीकरण की योजनाओ को क्रियान्वित करने तथा उद्योगो के श्रमिकों को प्रशिक्षण देने के लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है। अत उत्पादकता वृद्धि के कार्यक्रमो को पर्याप्त मात्रा मे और आसान शर्तों पर वित्त उपलब्ध किया जाना चाहिए।

4 **लाभ का समान वितरण** उत्पादकता वृद्धि के परिणामस्वरूप हुए लाभ मे से श्रमिक उद्योगपति और उपभोक्ता सभी को लाभ प्रदान किया जाना चाहिए अर्थात् उद्योगपतियो के लाभ के अतिरिक्त श्रमिको को अधिक मजदूरी मिले और उपभोक्ताओं को सस्ती कीमत पर वस्तुओ की प्राप्ति हो जाए।

5 **तकनीकी विधियों का उपयोग** उत्पादकता नियत्रण, लागत नियत्रण तथा गुण नियत्रण आदि तकनीकी विधियो के उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए।

6 **सामाजिक वातावरण की अनुकूलता** किसी भी उत्पादकता-वृद्धि आदोलन की सफलता के लिए आवश्यक है कि प्रबधकों, श्रमिको उपभोक्ताओ तथा आपूर्तिकर्ताओ, सभी की मानसिक दशाओ मे अनुकूल परिवतन होना चाहिए ताकि सपूर्ण सामाजिक वातावरण अनुकूल हो सके।

7 **स्थापित क्षमता का पूण उपयोग** देश मे इस समय अनक उद्योगो मे उनकी औद्योगिक क्षमता का एक महत्वपूर्ण भाग बेकार पडा है अत उत्पादकता बढाने की दृष्टि से यह आवश्यक होगा कि उनकी स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग अति शीघ्र किया जाए।

8 **सरकारी सहयोग** यद्यपि देश मे उत्पादकता वृद्धि के आदोलन को सक्रिय बनाने के लिए सरकार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है परतु वह अभी भी उत्पादकता वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण बनाने मे असमर्थ रही है। सरकार प्रबधको, तकनीकी

विशेषज्ञो तथा निरीक्षको को उत्पादकता की विधियो को बडे-बडे उद्योगो मे क्रियान्वित करने के लिए प्रशिक्षण दे सकती है और उद्योगो का सार्वजनिक क्षेत्र उत्पादकता का ऊंचा स्तर प्रदर्शित करके निजी क्षेत्र के सामने आदर्श उपस्थित कर सकता है। सरकार उत्पादकता बढाने की क्रियाओ की सूचनाओ को शीघ्रातिशीघ्र उद्योगों तक पहुचाने मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

9 **अन्य सुझाव** (i) वैज्ञानिक प्रबध की तकनीक को लागू करने के अतिरिक्त प्लाट ले आउट और पदार्थों के प्रयोग मे यथा-सभव सुधार किया जाना चाहिए। (ii) विभिन्न उद्योगों में उत्पादकता बोर्डों और प्रत्येक औद्योगिक उपक्रम मे एक उत्पादकता विभाग की स्थापना की जानी चाहिए। (iii) श्रमिको की सार्वजनिक मान्यता अथवा परितोषण व्यवस्था द्वारा भी उत्पादकता वृद्धि के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

सक्षेप मे, इस आदोलन को सफल बनाने के लिए एक ओर श्रमिको को अपना दृष्टिकोण बदलना होगा ताकि वे यह महसूस कर सकें कि उद्योग की उत्पादकता वृद्धि में उनकी समृद्धि निहित है और, दूसरी ओर, सरकार की सक्रियता, जागरूकता और प्रोत्साहन मूलक नीति की आवश्यकता है। प्रबधक वर्ग को भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी ताकि उत्पादकता आंदोलन सफल हो सके। इस सबध मे 1953 म अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा प्रसारित पैम्फलेट के निम्न विचार महत्त्वपूर्ण हैं—"उच्च उत्पादकता सरकार, प्रबध एव श्रमिको मे कठोर परिश्रम से ही प्राप्त हो सकती है। सरकार का उत्तरदायित्व है कि वह सतुलित आर्थिक विकास का प्रोग्राम बनाकर वैदेशिक व्यापार, पूजी निर्माण, एकाधिकार प्रनीतियो, मौद्रिक एव तट-कर नीतियो, सुनद तथा अनुकूल कार्यकारी दशाओं का निर्माण करके वैज्ञानिक अन्वेषणो को प्रोत्साहन देकर इस सबध मे अनुकूल वातावरण बनाए।"

परीक्षा-प्रश्न

1 भारत मे औद्योगिक विकास के सदर्भ मे 'उत्पादकता आदोलन' के औचित्य का परीक्षण कीजिए। इस आदोलन मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की भूमिका का वर्णन कीजिए।
2 "प्रत्येक दशा मे प्रयत्नो का विवेकीकरण ही उत्पादकता का वास्तविक आधार है।" इस कथन का भारतीय उद्योगो की उत्पादकता के सदर्भ मे स्पष्टीकरण कीजिए।
3 उत्पादकता तथा उत्पादन में अतर कीजिए। भारतवर्ष म औद्योगिक विकास के सदर्भ मे उत्पादकता आदोलन के औचित्य का परीक्षण कीजिए। इस आदोलन म राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की भूमिका का वर्णन कीजिए।
4 "उत्पादकता के ऊपर ही किसी उपक्रम का जीवन तथा उसकी समृद्धि निर्भर करती है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए और यह बताइए कि उत्पादकता बढाने के लिए कौन-से पग उठाए जाए ?
5 राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के गठन, कार्यकारी सगठन, उद्देश्यो तथा कार्यों की विवेचना कीजिए। इसकी क्या-क्या सफलताए हैं ?

अध्याय 10

श्रम और सहकारिता
(Labour and Co-operation)

सहकारिता की परिभाषा : साधारणत 'सहकारिता' शब्द का अर्थ होता है 'मिल-जुलकर काम करना'। अर्थशास्त्र मे सहकारिता का अर्थ व्यक्तियो के उस समूह से है जिसका उद्देश्य ईमानदारी से सामान्य आर्थिक हितो को प्राप्त करना है। श्री कल्वर्ट (Calvert) के शब्दो में : 'सहकारिता एक ऐसा सगठन है जिसमे व्यक्ति स्वेच्छा से और समान स्तर पर अपने आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए सगठित होते हैं।" अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अनुसार, "एक सहकारी समिति आर्थिक दृष्टि से निर्बल व्यक्तियो का एक सगठन है जिसके अतर्गत समान अधिकार व समान उत्तरदायित्व के आधार पर सदस्य लोग स्वेच्छा से कार्य करते हैं।" प्रो० सैलिगमैन के शब्दो मे "सहकारिता का अर्थ उत्पादन और वितरण मे प्रतिस्पर्धा का परित्याग तथा सभी प्रकार के मध्यस्था की आवश्यकता को समाप्त करना है।"

सहकारिता के सिद्धात अथवा तत्त्व

किसी भी सगठन के सहकारी सगठन होने के लिए निम्न तत्त्वों का होना आवश्यक है—

(i) स्वैच्छिक सघ : सहकारी सस्था की सदस्यता पूर्णरूपेण ऐच्छिक होती है अर्थात प्रत्येक सदस्य को सस्था की सदस्यता को स्वीकार करने और छोडने की पूर्ण स्वतत्रता होती है।

(ii) लोकतत्रीय : सहकारी समिति का प्रशासन लोकतत्रीय ढग से चलता है अर्थात प्रत्येक सदस्य को एक मत प्रदान करने का अधिकार होता है चाहे उसने कितने ही अश क्यो न खरीदे हो। 'एक व्यक्ति एक मत' वाला सिद्धात ही लागू होता है।

(iii) पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म-सहायता चूकि सदस्यो के पास आर्थिक साधनो का अभाव होता है, अत वे सभी मिलकर और अपने साधनो को एकत्रित कर अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, अर्थात् 'एक सबके लिए और सब एक के लिए' मुख्य सिद्धात है।

(iv) सामान्य हित सहकारी सघ सभी सदस्यों के कल्याण में वृद्धि का लक्ष्य लेकर बनाये जाते हैं। उनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा का अभाव रहता है।

(v) **नैतिक गुणो का विकास** : **श्री तालमकी** के शब्दो मे "सहकारिता सदस्यो मे स्वाभिभक्ति, मित्रता और सहकारिता की भावना का विकास करती है।"

(vi) सहकारिता का उद्देश्य मध्यस्थो का लोप करना और स्पर्द्धा की इतिश्री करना है।

श्रमिको के लिए सहकारिता के लाभ

श्रमिको के सामाजिक व आर्थिक कल्याण के लिए सहकारिता बहुत महत्त्व रखती है। इस तथ्य से इकार नही किया जा सकता कि किसी बाहरी सहायता की अपेक्षा स्वय के प्रयत्नो व पारस्परिक सहायता द्वारा अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। सहकारिता देश मे श्रमिको की स्थिति सुधारने मे बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। सहकारिता से श्रमिक बहुत सीमा तक ऋणग्रस्तता से बच सकते हैं और गदी बस्तियो मे रहने से छुटकारा पा सकते हैं। आर्थिक अभिरुचियो की सतुष्टि के साथ-साथ सहकारिता अपने सदस्यो के जीवन मे स्वार्थहीनता, ईमानदारी व समानता जैसे उच्च आदर्शो का विकास भी करती है। सहकारिता से श्रमिको में मितव्ययता और पारस्परिक सहयोग की भावनायें बढती है और वे राष्ट्र के अच्छे नागरिक बन सकते हैं। उन्हे अनुशासन से रहने व कार्य करने की आदत पडती है। इस प्रकार, सहकारिता कार्य करने का एक ढग है जो व्यक्तियों को समानता के आधार पर मिल-जुलकर कार्य करना सिखाती है।

सहकारिता का विचार सर्वप्रथम इग्लैण्ड मे **राबर्ट ओवन** के मस्तिष्क मे आया क्योंकि उस समय कारखानो मे श्रमिको का बहुत अधिक शोषण हो रहा था। ओवन ने सर्वप्रथम अपने ही कारखाने मे सहकारिता का प्रयोग किया और व्यवसाय के प्रबध मे श्रमिको को अधिक-से-अधिक भाग दिया। वे यह चाहते थे कि श्रमिक कारखाने के प्रबध का उत्तरदायित्व सहकारिता के आधार पर स्वय वहन करें। इस प्रकार, कारखानो मे श्रम सहकारिता का प्रादुर्भाव हुआ जिसमे श्रमिक ही व्यवसाय के प्रबधक होते थे और उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन इन सहकारी समितियो द्वारा किया जाता था।

सहकारिता द्वारा श्रमिक सहायता के रूप

भारतवर्ष मे सहकारिता आदोलन के अतर्गत श्रमिको के लिए जो कार्य किये गये हैं उनका अध्ययन हम पाच शीर्षकों के अतर्गत करते हैं—

1 **श्रमिक सहकारी समितिया** इन सहकारी समितियो के अतर्गत श्रमिको और प्रबधको मे एक प्रकार का समझौता हो जाता है जिसकी शर्तो के अनुसार श्रमिक अपना कार्य करते है और उन्हे प्राप्त होने वाले लाभो मे प्रबधक द्वारा उपयुक्त हिस्सा प्रदान किया जाता है। इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषता यह है कि काम करते समय श्रमिक बिना मालिक के प्रबध मे एक प्रकार की स्वतन्त्रता का अनुभव करते हैं।

भारतवर्ष मे श्रमिक सहकारी समितियों के अग्रलिखित चार स्वरूप देखने को मिलते हैं—

(अ) **श्रम अनुबंध समितियां** : इनकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य बेरोजगार

श्रमिको को कार्य दिलवाकर उनकी अभिरुचियो की पूर्ति करना है। इस दिशा मे प्रयास महाराष्ट्र, पजाब, राजस्थान, आध्र प्रदेश व तमिलनाडु मे किये गये हैं। उदाहरणार्थ, आध्र प्रदेश मे सार्वजनिक निर्माण विभाग, जिला बोर्डों, सिचाई और सडको के निर्माण का कार्य ऐसी ही अनुबध समितियो को प्रदान किया जाता है।

श्रम अनुबध समितिया श्रमिको को ठेकेदारो एव ऐसी अन्य किसी भी एजेंसी के शोषण से बचाती है और इस प्रकार उन्हे ऊची मजदूरी प्राप्त करवाने मे सहायक होती है। यह भी महसूस किया गया है कि ये समितिया ठेकेदारो की अपेक्षा कम लागत पर कार्य निष्पादित कर सकती है।

(ब) **सहकारी कार्यशाला** महाराष्ट्र, तमिलनाडु व केरल आदि मे सहकारी आधार पर कार्यशालाए चलाई जा रही हैं। इनके द्वारा सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त कर दैनिक जीवन मे प्रयोग मे लायी जाने वाली वस्तुओ का उत्पादन करके सदस्यो को लाभान्वित करने का प्रयास किया जाता है।

(स) **मोटर यातायात समितियां** इस प्रकार की समितिया अपने सदस्यो द्वारा दिये गये अशदानो की सहायता से मोटर आदि वाहनो का प्रबध करती हैं और इनसे जो आय प्राप्त होती है उसे सदस्यो के मध्य वितरित कर दिया जाता है। ये समितिया मुख्य रूप से राजस्थान, पजाब और पश्चिमी बगाल मे पाई जाती हैं।

(द) **वन मे कार्य करने वाले श्रमिको की समितिया**. इन समितियो के निर्माण आदिवासियो तथा अन्य पिछडी हुई जनजातियो की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितिया मे सुधार करने के लिए किया गया है। इस प्रकार की समितिया मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात व आध्र प्रदेश मे कार्य कर रही हैं।

2 **औद्योगिक सहकारी समितियां** इन्हे दो वर्गों मे रखा जा सकता है—

(अ) **कारीगर समितिया** इनमे छोटे शिल्पी मिलकर निम्नलिखित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सगठन बनाते हैं—(i) उपयुक्त कीमत पर कच्चा माल अथवा औजार उपकरण प्राप्त करने के लिए (ii) शीघ्र एव सस्ती ऋण सुविधाए प्राप्त करने के लिए, (iii) विभिन्न उत्पादक प्रक्रियाओ को तकनीकी एव सामान्य पथ प्रदर्शन प्रदान करने के लिए।

(ब) **उत्पादको की समितिया** इनमे उत्पादक आरभ से लेकर अत तक उत्पादन के कार्यों को स्वय चलाने और बाहरी सहायता के बहिष्कार के लिए सम्मिलित प्रयास करते है ऐसी समितियो मे श्रमिक स्वय निर्माता होते हैं वे स्वय ही पूजीपति, श्रमिक सयोजक और उद्योगपति होते हैं। भारत मे औद्योगिक समितिया मोटे तौर पर दो वर्गों मे विभाजित की जा सकती हैं--(क) हाथकरघा बुनकर समितिया, और (ख) अन्य औद्योगिक समितिया, जैसे—लाख के कामगरो, कुम्हारो, पीतल एव चमडा उद्योग के कर्मचारियो की समितिया।

हाल के एक आकलन के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र मे लगभग 56,000 सहकारी समितिया सगठित हुई, जिनकी सदस्य सख्या लगभग 40 लाख और कार्यगत पूजी 268 करोड रुपये से अधिक है।

3 **सहकारी ऋण समितिया .** भारतवर्ष मे श्रमिको मे पाई जाने वाली ऋण-ग्रस्तता की गभीर समस्या को दृष्टि मे रखते हुए सहकारी ऋण समितियो का श्रमिको द्वारा निर्माण किया गया है। भारत के विभिन्न क्षेत्रो व उद्योगो मे जैसे—जूट मिल उद्योग वस्त्र मिल उद्योग व रेलवे आदि म य समितिया सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं जिसमे श्रमिको को सस्ती दर पर ऋण दिया जाता है।

4 **सहकारी आवास समितिया** आवास की अपर्याप्त व बुरी व्यवस्था हमारे श्रमिको के निम्न स्तर का एक मुख्य कारण है। आवास की गभीर समस्या के समाधान के लिए सहकारी आवास समितियो का भी निर्माण किया गया है। सहकारिता के आधार पर श्रमिको की आवास-स्थान प्रदान करने के लिए सफल प्रयोग का भी उदाहरण **मदुरा मिल्स लिमिटेड द्वारा** प्रस्तुत किया गया है जिसने मदुरा के निकट हरवेपटटी म एक भवन निर्माण सहकारी समिति स्थापित की है।

5 **विविध प्रकार की सहकारी समितिया** श्रम व अन्य क्षेत्रो मे भी सहकारिता का उपयोग कि ा जा रहा है जैसे—सहकारी जलपान गह व सहकारी उपभोक्ता भडार आदि स्थापित किये जा रहे है।

विदेशो मे श्रमिक सहकारी समितियो के कार्यो के अध्ययन से निकाले गये परिणाम

कुछ महत्त्वपूर्ण विदेशो मे सहकारी समितियो के कार्यो के अध्ययन करने से निम्नलिखित उपयोगी शिक्षाए मिलती हैं—

1 **कम सख्या मे सदस्यता** इस प्रकार की समितियो मे सदस्यो की सख्या कम होनी चाहिए ताकि सदस्य एक दूसरे की योग्यता का अच्छी तरह से अनुमान लगा सकें।

2 **सह श्रमिक चुनने की स्वतत्रता** सहकारी समूहो को यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपने सह श्रमिक चुन सकें। इस प्रकार की स्वतत्रता स समूह मे समान योग्यता वाले व्यक्ति ही प्रवेश पा सकते जिससे कार्य की गति मे वद्धि हो जाती है और मजदूरी बढ जाती है।

3 **निर्माण कार्यो के लिए उपयुक्त** उन कार्यो म सहकारी श्रमिक समितिया अधिक उपयुक्त होती हैं जिनके निष्पादन के लिए अकुशल श्रमिक पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध रहते हैं। इस प्रकार की समितिया रेलो सडको पुलो नहरो इत्यादि के निर्माण कार्य के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित हुई है।

4 **पूर्ण जानकारी** श्रमिक सहकारिता के साथ अनुबध करते समय सेवा योजको को चाहिए कि व ठेके के कार्य की सब बातें विस्तारपूर्वक समझा दें और कार्य के प्रत्येक अश का मूल्य अलग अलग निर्धारित कर दें।

5 **अतराल मे भुगतान** सेवायोजको को चाहिए कि थोडे थोडे समय के उपरात (जैसे सप्ताह या अर्द्ध मासिक) नियमित रूप स मजदूरी का भुगतान करें जिससे श्रमिक अपना जीवन निवाह नियमित रूप से कर सकें।

6 **आवश्यक औजारो का प्रबंध** . सेवायोजको को चाहिए कि वे कार्य के लिए आवश्यक उपकरण और औजार व यत्र आदि अपने पास से दें।

7 **सुसगठित फेडरेशन** · श्रम सहकारिता का एक सुसगठित फेडरेशन बनाना आवश्यक है कि सहकारी समितियो के अधिकारो की रक्षा हो सके और उन्हें आत्मघाती प्रतिस्पर्द्धा से दूर रख सकें।

भारत मे श्रम-सहकारिता के विकास के लिए सुझाव

भारतवर्ष मे श्रमिक वर्ग मे सहकारिता आदोलन को अधिक लोकप्रिय तथा व्यापक बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है—

(i) श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से श्रमिको म सहकारिता के महत्व के प्रति जागृति उत्पन्न की जाय और उन्हे सहकारिता के ढगो स अवगत कराया जाय।

(ii) सरकार के सार्वजनिक निर्माण विभाग को ठेके देने के मामले मे श्रम-सहकारिताओ को ही प्राथमिकता देनी चाहिए।

(iii) गावो मे सहकारी समितिया स्थापित की जानी चाहिए और जब कृषि कार्य न हो तब गाव मे कार्य करने के ठेके दिये जाने चाहिए।

(iv) जब तक श्रम-सहकारिता अच्छी तरह स्थापित न हो जाय तब तक उनको होने वाली हानि सरकार को पूरी करनी चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह सहकारिता आदोलन को प्रोत्साहित करन के लिए अपना यथासभव योगदान प्रदान करे क्योकि सहकारिता द्वारा प्राप्त होने वाले लाभो का प्रत्यक्ष प्रभाव श्रमिको की कार्य-कुशलता पर पडता है।.

(v) जहा तक हो सके कार्य के लिए आवश्यक सामान स्वय समिति उपलब्ध करे। इससे लाभ व रोजगार के अतिरिक्त साधन मिल जायेंगे।

(vi) क्षेत्रीय प्रमोशनल एर्जेसिया स्थापित की जानी चाहिए जो अपने-अपने क्षेत्र मे श्रमिक सहकारिता के सगठन को बढावा दें।

परीक्षा-प्रश्न

1 श्रम सहकारिता से श्रमिको को क्या लाभ है ? भारतवर्ष मे सहकारिता आदोलन के अतर्गत श्रमिको के लिए जो कार्य किये गये हैं उन्हे सक्षेप मे बताइए।
2 विदेशो म श्रम-सहकारिता से प्राप्त कुछ प्रमुख निष्कर्ष बताइए। भारत मे श्रम-सहकारिता को लोकप्रिय बनाने के लिए अपने सुझाव दीजिए।

अध्याय 11

श्रम-नीति
(Labour Policy)

श्रम-नीति से तात्पर्य श्रमिकों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण से है। इसके अन्तर्गत औद्योगिक सबंध, मजदूरी, श्रम संघ, सामाजिक सुरक्षा व पूर्ण रोजगार आदि से सबंधित नीति का समावेश किया जा सकता है।

भारत सरकार की पचवर्षीय योजनाओं में श्रम-नीति

1951 से सरकार ने पचवर्षीय योजनाओं को प्रारंभ किया और श्रम के सबंध में अपनी नीतियाँ व्यक्त की। जैसाकि तीसरी पचवर्षीय योजना में उल्लेख है: "भारत में श्रम-नीति का विकास उद्योगों और श्रमिक वर्ग से सबद्ध परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुरूप ही हुआ है और इसे योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं से सामजस्य रखना पड़ता है। सरकार को सेवायोजकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के साथ परामर्श करने के फलस्वरूप कुछ सिद्धांतों और व्यवहारों के विकास में सहमति प्राप्त हो गई है और इस सहमति के आधार पर सरकार ने श्रम विधान तथा कुछ अन्य उपायों का निर्माण किया है। इस प्रकार राष्ट्रीय श्रम नीति का विकास हुआ है। नीतियों के निर्माण और उनके कार्यान्वयन के लिए सरकार, सेवायोजकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की सयुक्त समितियाँ बनी हैं और इस त्रिदलीय तत्र के शिखर पर श्रम सम्मेलन है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे श्रम-नीति

योजनाओं के निर्माण काल से ही सरकार ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में श्रमिकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। योजना आयोग ने प्रथम पचवर्षीय योजना में श्रम के दो प्रमुख आधार बताये: प्रथम, श्रमिकों की सब प्रकार से उन्नति हो और उन्हें न्याय मिले। द्वितीय, वे देश के आर्थिक विकास में पूरा पूरा योगदान दें। इस योजना में अपनाई गई श्रम-नीति के कुछ महत्त्वपूर्ण अग इस प्रकार हैं—(अ) श्रमिकों की कार्य दशाओं में सुधार करना, (ब) सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं को लागू करना, (स) औद्योगिक सघर्षों का आपसी बातचीत के द्वारा समाधान करना, (द) श्रम अधिनियमों का प्रभावपूर्ण प्रशासन व कार्यान्वयन, (य) श्रम कल्याण केन्द्रों की स्थापना करना, (र) श्रम सबंधी समस्याओं का अध्ययन करने के लिए केन्द्रीय श्रम सस्थानों की

स्थापना करना।

उपर्युक्त कार्यक्रमो को सेवायोजको एव श्रमिको के सहयोग से कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया ताकि उनके माध्यम से औद्योगिक उपक्रमो की उत्पादकता को बढाने, सबधो को सौहाद्रपूर्ण बनाने तथा प्रजातात्रिक वातावरण की स्थापना करने में सहायता प्राप्त हो सके।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे श्रम-नीति

इस योजना के अतर्गत कुछ आवश्यक एव वाछित सशोधन करते हुए प्रथम पचवर्षीय योजना की श्रम-नीति का अनुकरण किया गया। इस योजना के दौरान श्रम-नीति के दो महत्त्वपूर्ण पहलू विकसित हुए। एक था, श्रमिको का प्रबध में भाग, जिसके कारण श्रमिक यह अनुभव करने लगते हैं कि उत्पादन इकाई म उनका निजी सबध है और इसलिए उसकी उत्पादिता बढाना उनका कर्तव्य हो जाता है। इस उद्देश्य मे 23 उद्योगों में सयुक्त प्रबन्ध परिषदें (Joint Management Councils) बनाई गईं। इनका मुख्य उद्देश्य सवायोजका एव श्रमिको में आपसी सपर्क बढाना है ताकि अच्छे औद्योगिक सबध कायम हो सकें। दूसरा पहलू श्रमिको की शिक्षा के प्रोग्राम का विस्तृत रूप म स्वागत करना है। दूसरी योजना मे श्रमिको की शिक्षा का कायक्रम भली भाति चलाया गया। इस कायक्रम मे कुछ श्रमिको को ही श्रम अध्यापक बनने तथा कुछ को प्रशासक बनन का प्रशिक्षण दिया गया।

इस योजना मे श्रमिका को उचित मजदूरी देने का सुझाव रखा गया। इस योजना मे यह भी सिफारिश की गई कि बड़े-बडे क्षेत्रो क लिए मजदूरी सबधी विवादो को हल करने के लिए मजदूरी बोड कायम करने चाहिए।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे श्रम-नीति

इस योजना की श्रम नीति का उद्देश्य द्वितीय योजना मे व्यक्त की गई नीति को सुदृढ स्थिर एव विस्तृत बनाना था। इस योजना मे भी श्रमिको एव सेवायोजको के सहयोग के महत्त्व पर जोर दिया गया जिसम कि औद्योगिक विवादो का शातिपूर्ण समाधान हो सके। औद्योगिक विवादो को निपटाने के लिए ऐच्छिक अधिनिर्णयन के सिद्धात को अधिक-से-अधिक लागू करने की सिफारिश की गई। इस योजना मे मजदूरी बोर्ड स्थापित करने की सिफारिश को स्वीकार कर लिया गया और इस लागू किया गया। श्रमिको को औद्योगिक प्रबध म भागीदार बनाने के लिए सयुक्त प्रबध परिषदो की स्थापना की गई और वतमान कार्य-समितियो को दृढ बनाने के लिए कदम उठाये गये। सामाजिक सुरक्षा सबधी अधिनियम को और अधिक व्यापक बनाया गया। आवास के लिए और अधिक प्रयास करने का भी निश्चय किया गया।

वार्षिक योजनाओं मे श्रम-नीति 1966-67, 1967-68, 1968 69 मे वार्षिक योजनाए चलाई गईं। इन विभिन्न योजनाओ का उद्देश्य प्रथम, द्वितीय एव तृतीय पचवर्षीय योजनाओ के अतगत निर्धारित की गई श्रम-नीति को अधिक प्रभावशाली बनाना

था। इस अवधि की सबसे बडी विशेषता यह है कि 1966 में **श्री गजेन्द्र गडकर** की अध्यक्षता मे एक राष्ट्रीय श्रम आयोग की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट 1969 में प्रस्तुत की। शिल्पकार प्रशिक्षण एव सेवायोजन (Craftsman Training and Employment Service) को 1968-69 में केन्द्र द्वारा राज्यो को हस्तातरित कर दिया गया तथा समन्वय का उत्तरदायित्व सेवायोजन एव प्रशिक्षण के सामान्य निदेशालय (Directorate General of Employment and Training) को सौंप दिया गया।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे श्रम-नीति

इस योजना के अतर्गत उल्लिखित श्रम-नीति पचवर्षीय योजनाओ तथा वार्षिक योजनाओं में निर्धारित नीति को निरतरता एव प्रभावशीलता प्रदान करती है। इस योजना में मुख्यतः (अ) श्रम कानूनो के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन हेतु श्रम प्रशासन को सुदृढ बनाने, (ब) श्रम सबधो एव कानूनो में अनुसधान, श्रम अधिकारियो के प्रशिक्षण कार्यक्रमो के विस्तार, (स) प्रबधो के औद्योगिक सबधो में प्रशिक्षण (द) विश्वविद्यालयो के प्राध्यापको को श्रम विषयो से सबधित करने, (य) कार्य-अध्ययन के मूल्याकन निरीक्षण तथा श्रम साख्यिकी मे सुधार पर अधिक जोर दिया गया। औद्योगिक सबधो के क्षेत्र मे श्रम प्रबध सहयोग के माध्यम से उत्पादकता को बढाने सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन प्रदान करने तथा स्वस्थ श्रमिक सघ आदोलन के माध्यम से उत्पादकता बढाने को प्राथमिकता प्रदान की गई।

चतुर्थ योजना मे मजदूरी प्रेरणाओ (Incentives) पर ज्यादा विस्तार से विचार किया गया और योजना आयोग द्वारा नियुक्त श्रम नीति पैनल द्वारा उत्पादकता एव प्रेरणाओ के लिए पृथक रूप से अध्ययन दल स्थापित किया गया जिसने बहुत सी महत्त्वपूर्ण सिफारिशें दी है जिन्हे उद्योग के दोनो पक्षो तथा विषयो से सबधित वर्तमान दृष्टिकोण द्वारा माना गया समझा जा सकता है।

पाचवी पचवर्षीय योजना मे श्रम-नीति

इस योजना का मुख्य ध्येय उत्पादन वृद्धि एव रोजगार वृद्धि है। इस योजना मे श्रम नीति का आधार औद्योगिक शान्ति बनाये रखना एव उत्पादकता मे वृद्धि करना है। श्रम नीति को भी अब उत्पादकता से जोड दिया गया है। पाचवी योजना मे श्रम नीति सम्बधी मुख्य विशेषताए है—(i) वर्तमान रोजगार दफ्तरो को मजबूत बनाया जाएगा ताकि ये रोजगार चाहने वालो की बदली हुई सख्या की कुशलतापूर्वक सेवा कर सकें। (ii) श्रमिक कार्यालय ग्रामीण श्रमिको अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जन जातियो के श्रमिको के काम की दशाओ तथा श्रमिको के क्षेत्र से सम्बद्ध अन्य विषयो के बारे मे सूचनाए आदि एकत्रित करेंगे। (iii) उपभोग वस्तुओ की मूल्य वृद्धि, वेतन बोनस एव अन्य महत्त्वपूर्ण मामलो का नया और व्यापक औद्योगिक सम्बध सबधी कानून बनाते समय ध्यान मे रखा जाएगा। (iv) वेतन पर रोजगार एव स्वय रोजगार सुविधाओ के विकास दोनो पर बल दिया जाएगा। (v) कर्मचारी राज्य बीमा योजना को

विस्तृत किया जाएगा। (vi) भारतीय श्रमिक सस्था का पुनर्गठन और उसका विस्तार करके राष्ट्रीय श्रमिक सस्था बनायी जाएगी जो श्रमिकों से सम्बद्ध मामलों में अनुसंधान के बारे में समन्वय स्थापित करने वाली सस्था होगी।

छठी पंचवर्षीय योजना में श्रम-नीति

छठी पचवर्षीय योजना म श्रम नीति का अनुमोदन किया गया है। उसम उच्चतम उत्पादन को सुनिश्चित बनाने के लिए प्रत्येक स्तर पर प्रबधकों एव श्रमिकों के मध्य सहयोग पर बल दिया गया है। राज्यों के श्रम मत्रियों की स्थायी समिति द्वारा, मामूली सशोधनों के साथ, स्वीकृत इस नीति के प्रमुख अग निम्नलिखित हैं—(i) रोजगार की स्थिति एव कार्य निष्पादन की परिस्थितियां (ii) कार्य सुरक्षा (iii) श्रमिक स्वास्थ्य एव सामाजिक सुरक्षा योजनाए (iv) वेतनों का निगमन व नियत्रण, (v) प्रबधकों एव श्रमिकों के सगठनों को पूर्ण स्वाधीनता, (vi) श्रम नीति मे मजदूर सघो के आन्तरिक विवादों को निपटाने के लिए मशीनरी की व्यवस्था की गई है जिससे अक्सर अशान्ति उत्पन्न होती है। बन्धक श्रम एव बाल श्रम के उन्मूलन हेतु योजनायें भी समाविष्ट की गई हैं।

छठी पचवर्षीय योजना म श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से केंद्र एक सामाजिक सुरक्षा नियोजन विभाग की स्थापना करेगा। इस योजना म असगठित क्षेत्र के मजदूरों के काय करने की स्थितियों को नियमित करने के प्रयास किये जाएगे।

(iv) सरकार को प्रत्येक तीन वर्षों मे एक बार न्यूनतम मजदूरी पर पुनर्विचार करना चाहिए, प्रतिकूल कीमत-स्थिति के परिणामस्वरूप यदि तीन वर्षों के दौरान मजदूरी मे परिवर्तन करना पडे, तो इस प्रकार का परिवर्तन स्थानीय प्राधिकार को करना चाहिए।

(v) औद्योगिक सघर्षों के समाधान हेतु सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(vi) वास्तविक मजदूरी मे कोई भी निरतर वृद्धि, जो मजदूरी नीति का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, उत्पादकता मे वृद्धि के बिना प्राप्त करना असभव है। मजदूरी नीति का उद्देश्य रहन-सहन की लागत को बढने से रोकना चाहिए।

(vii) मजदूरी नीति का निर्माण करते समय निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखना चाहिए—वह कीमत-स्तर जिसे कायम रखा जा सकता है, वह रोजगार-स्तर जिसे प्राप्त करना हो सामाजिक न्याय की आवश्यकताए, आर्थिक व्यवस्था के भावी विकास के लिए आवश्यक पूजी-निर्माण योजनाओ के दौरान आय-जनन (Income Generation) और वितरण का ढाचा आदि।

(viii) आयोग ने मजदूरी निश्चित करने के माध्यम के रूप मे मजदूरी बोर्ड के महत्त्व पर बल दिया और उनके प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन के लिए अनेक सुझाव दिये। कृषि श्रम के सबध मे आयोग ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1949 को लागू करने का सुझाव दिया।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का प्रतिवेदन एक मूल्यवान प्रलेख है जिसके द्वारा श्रमिको को हानि पहुचाये बिना औद्योगिक शाति स्थापित की जा सकती है। अतः इसके कार्यान्वयन से देश के आर्थिक विकास को निश्चित रूप से बढावा मिलेगा। इतना होते हुए भी श्रम आयोग के प्रतिवेदन मे सबसे बडी कमी यह है कि आयोग ने सभी अधिनियमो को मिलाकर एकीकृत अधिनियम बनाने की कोई सिफारिश नही की है। इसके अतिरिक्त, इसने श्रम सघो को राजनीतिक सबध तोडने व राजनीतिज्ञो द्वारा श्रम सघो को अपने उद्देश्य के लिए प्रयोग किये जाने पर कोई विचार प्रकट नही किये।

भारत में आधुनिक श्रम-नीति
(Present Labour Policy in India)

पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत भारत की श्रम नीति की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार है—(1) औद्योगिक शान्ति बनाये रखने को प्राथमिकता देना (2) आपसी सामूहिक सौदेबाजी तथा स्वेच्छिक पच फैसलो को प्रोत्साहन दिया जाय, (3) न्याय न मिलने पर श्रमिको द्वारा शान्तिपूर्ण प्रत्यक्ष कार्यवाही करने के अधिकार को स्वीकार किया गया है (4) राज्य को समाज के हित का सरक्षक तथा परिवर्तन एव कल्याण के प्रति उत्तरदायी माना गया है, (5) निर्बल पक्ष के हित मे राज्य द्वारा हस्तक्षेप करना, सभी सबधित पक्षो के साथ उचित व्यवहार करना, (6) उत्पादन तथा उत्पादकता बढाने मे सहयोग प्राप्त करना, (7) श्रमिको को उचित मजदूरी के प्रति आश्वस्त करना

तथा सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना, (8) समाज की आर्थिक आवश्यकताओ को सर्वोचित सभव ढग से पूरा करने के लिए नियोक्ता तथा श्रमिको मे रचनात्मक सहयोग स्थापित करना, (9) श्रमिको के उद्योग की स्थिति मे वृद्धि करना, (10) राजनियमो को उचित रूप मे लागू करना, (11) विपक्षीय परामर्श को प्रोत्साहित करना।

सक्षेप मे, भारत की श्रम-नीति की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार हैं— (अ) वर्तमान सन्नियमों का एकीकरण तथा क्रियान्वयन, (ब) श्रम कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा उपायो का एकीकरण तथा प्रसार, (द) द्विदलीय तथा त्रिदलीय परामर्श एव साझेदारी सयन्त्र द्वारा श्रम व प्रबध मे पारस्परिक सहकारिता तथा सहयोग की वृद्धि, (द) देश के सामाजिक आर्थिक विकास मे श्रम की महत्त्वपूर्ण भूमिका को मान्यता देकर उसके लिए प्रतिष्ठा तथा समानता सुनिश्चित करना।

श्रम-नीति का मूल्याकन

(i) आर्थिक विकास की सफलता के लिए एक आधारभूत शर्त यह है कि देश का श्रमिक सतुष्ट और सुखी हो। बिना सतुष्ट एव सुखी श्रमिक के आर्थिक विकास की गति को त्वरित नही किया जा सकता। यही कारण है कि हमारी पचवर्षीय योजनाओ मे समुचित श्रम-नीति के निर्धारण की ओर विशेष ध्यान दिया है। जैसाकि हम ऊपर अध्ययन कर चुके हैं कि भारत सरकार की श्रम-नीति और श्रम सबधी अधिनियमो का मुख्य उद्देश्य देश मे औद्योगिक शाति सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा और यदि वह असफल हो जाय तो समझौता कराने की व्यवस्था द्वारा, और यदि वह भी असफल हो जाय तो मध्यस्थ निर्णयन द्वारा बनाये रखना है। परतु प्रश्न यह उठता है कि भारत सरकार की श्रम-नीति इतनी सुदर और सुव्यवस्थित होने के बावजूद भी श्रमिको मे इतना असतोष क्यो है? हड़तालें और तालाबदी के कारण कार्य-दिवसो मे बहुत बडी हानि क्यो होती है, औद्योगिक सबधो मे सदैव तनाव क्यो बना रहता है? इन सब प्रश्नो का उत्तर केवल यही है कि श्रम नीतियो की घोषणाओ और अनुपालन मे काफी अतर रहा है। सरकार की श्रम सम्बन्धी नीतिया केवल कागजो तक ही सीमित रही हैं और उन्हे पूरी तरह कार्यान्वित नही किया गया। उदाहरणार्थ मजदूरी जैसे नाजुक प्रश्न को हल करने के लिए कोई गभीर प्रयत्न नही किया गया है। आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी के प्रश्न को सरकार सिद्धान्त स्वीकार करने पर भी टाल मटोल करती रही है।

(ii) श्रम कल्याण के नाम पर कारखाना अधिनियम मे श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति का तो प्रावधान है परतु उसके आगे कार्य रूप मे कल्याणकारी होना सभव हो सके, इसके लिए कोई भी व्यवस्था नही है। श्रम सघो की मान्यता तथा सामूहिक सौदेबाजी के लिए प्रतिनिधि श्रम सघ को ही एकमात्र प्रतिनिधि सगठन मानने का प्रश्न अधर मे लटका हुआ है। अनुशासन सहिता केवल एक शुभचिंतक पवित्र किंतु आत्मा रहित थोथी अभिव्यक्ति मात्र बनकर रह गई है, जिसका अनुसरण प्रबधक और श्रमिक दोनो ही नही कर रहे हैं। इसी प्रकार, औद्योगिक शाति प्रस्ताव भी केवल इतिहास की बात बनकर रह गया है। कार्य-समितिया और सयुक्त प्रबध परिषद् अपने उद्देश्यो की

पूर्ति में सर्वथा असफल रही हैं।

(iii) हमारी श्रम-नीति की एक महत्वपूर्ण कमजोरी यह है कि श्रम सघों को सुदृढ बनाने मे कोई ठोस नीति नही अपनाई गई है। हमने श्रम सघवाद और सामूहिक सौदेबाजी के आधुनिकतम रूप अपनाये हैं किंतु हमारा औद्योगिक और सामाजिक विकास उतना समुन्नत नही हो पाया है। परिणामत आश्रित एव दुर्बल श्रम-सघो के बाहुल्य तथा शासन द्वारा नियत्रित श्रम सबधो ने वास्तविक नीतियो का श्रीगणेश अत्यत कठिन कर दिया है।

(iv) हमारी श्रम-नीति का एक उपेक्षित अग मजदूरी की समस्या है। एक ही व्यवसाय में काम करने वाले विभिन्न श्रमिको की अलग-अलग कारखानो तथा क्षेत्रो में भारी मजदूरी दर में असमानता का होना एक ऐसी समस्या है जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। मजदूरी नीति में एक और असतोषजनक बात न्यूनतम और उच्चतम मजदूरी दर में भारी असमानता है। कहीं-कहीं तो यह असमानता पच्चीस गुने से भी अधिक है। ऐसी परिस्थिति को अधिक समय तक सहन नही किया जा सकता।

यद्यपि भारत सरकार श्रम-नीति की उपर्युक्त आलोचना के प्रति सचेत है और श्रम-सबधो के विकास के लिए सहकारी उपायो का आश्रय ले रही है परतु फिर भी श्रम-नीति को सुदृढ और सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं—

1 मजदूरी नीति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे सभी श्रेणियो के कर्मचारियो को वैज्ञानिक आधार पर वेतन मिले और असमानता न्यूनतम हो।

2 कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के क्षेत्र को विस्तृत करने के प्रयास किए जाने चाहिए। ऐसी पद्धति कर्मचारियो की सहमति के साथ अच्छे औद्योगिक सबधो के वातावरण में विकसित की जानी चाहिए और उन उद्योगो तथा कार्यों में लागू की जानी चाहिए जिनके लिए वे उपयुक्त हैं।

3 कुल मजदूरी के तीन तत्वो का समावेश होना चाहिए। प्रथम—न्यूनतम मजदूरी, द्वितीय—जीवन-निर्वाह मूल्य से सबधित तथ्य और तृतीय—उत्पादकता में वृद्धि से सबधित तथ्यो का सबध मजदूरी में वृद्धि से सबधित तथ्यो के साथ जोडना चाहिए जिससे कि जब मजदूरी बढे तो साथ-साथ उत्पादन भी बढे और कीमतो में वृद्धि न हो।

4 मूल्य स्थिरता का प्रश्न मजदूरी नीति का मूल है। उच्च मजदूरी के लिए माग आज प्रत्यक्षत मूल्य-वृद्धि और निर्वाह मूल्य में वृद्धि से उत्पन्न होती है।

5 महगाई भत्ते का जीवन निर्वाह मूल्य के साथ सबद्ध करना उपयुक्त है, किंतु सभी स्तरो पर निर्वाह-मूल्य मे वृद्धि को प्रभावहीन करना सभव नही है। इस सबध मे, मूल्य आकडो के सग्रह एव मूल्य सूचकाक के साथ उनके प्रकाशन की वर्तमान व्यवस्थाओ म सुधार के लिए भी कदम उठाये जाने चाहिए।

6 प्रत्येक उद्योग मे मजदूरी परिषद गठित की जानी चाहिए और इन मजदूरी परिषदो की कार्य-पद्धति एव उनके द्वारा अनुसरित माप दडो की समीक्षा की जानी चाहिए।

7 उत्पादन इकाई के स्तर पर एक त्वरित कदम के रूप मे सेवायोजक और श्रमिको द्वारा अपनी विशिष्ट आवश्यकताओ एव परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए सयुक्त रूप मे सामान्य प्रोत्साहक योजनाए विकसित की जानी चाहिए।

8 अनुचित और अत्यधिक मजदूरी, बोनस, महगाई तथा अन्य प्रकार के भत्तो मे अधिक वृद्धि से बचना चाहिए।

9 श्रम अधिनियमो के समुचित क्रियान्वयन की व्यवस्था होनी चाहिए।

10 सामाजिक न्याय वस्तुत श्रमिको एव उद्योगपतियों को समान स्तर पर रखकर नही किया जा सकता। इस हेतु आवश्यक यह है कि श्रम नीति का झुकाव श्रमिको के पक्ष मे हो।

नि सदेह विगत वर्षों मे श्रमिको की भर्ती मे सुधार करने के लिए सेवायोजकों ने बहुत कुछ किया है परतु अभी बहुत कुछ करना शेष है। यह सच ही कहा गया है कि "भारत मे एक मौन क्राति हो रही है और एक नया क्रम उत्पन्न हो रहा है—एक ऐसा क्रम जिसमे कर्मचारियो का शोषण भूतकाल की वस्तु बनकर रह जायेगा।'

वस्तुत भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थितियों मे यह आवश्यक है कि सरकार, सेवायोजक और श्रमिक तीनो मे पूर्ण सहयोग हो और "केवल तभी स्वर्ण युग आयेगा जब हमारे देश की श्रम-शक्ति न केवल उपेक्षा, आवश्यकता, चिंता, क्षीण स्वास्थ्य और परेशानी से मुक्त हो जायेगी, बल्कि उच्चतम दक्षता और मातृभूमि के प्रति उत्तरदायित्व एव कर्त्तव्य की पूर्ण भावना भी विकसित कर लेगी एव विश्व मे किसी से पीछे नही रहेगी।"[1]

यद्यपि यह सत्य है कि मानवीय दृष्टिकोण से श्रमिको के अधिकारो एव कल्याण के लिए पूर्व प्रयास किया जाना चाहिये परतु जिसकी भारत की वर्तमान परिस्थितियो मे सबसे अधिक आवश्यकता है वह है एक और क्राति "कर्त्तव्य एव उत्तरदायित्व के प्राकृत भाव, चरित्र के विकास एव नैतिक मूल्यो के बोध के प्रति श्रमिक के मस्तिष्क की पूर्ण जागृति"। आज हमे श्रमिको को यह महसूस कराना है कि केवल अधिकार ही नही जिसका कि वह हकदार है बल्कि उसके सेवायोजको, राज्य एव देश के प्रति महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य भी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम श्रमिको मे कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व एव अनुशासन की भावना जागृत करें, तभी देश मे आर्थिक विकास का महायज्ञ सफल होगा।

परीक्षा-प्रश्न

1. योजनावधि मे भारत मे सचालित श्रम-नीति के मुख्य तत्त्वो का वर्णन कीजिए।
2. भारत सरकार की वर्तमान श्रम नीति का आलोचनात्मक मूल्याकन कीजिए।
3. राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशो का आलोचनात्मक मूल्याकन कीजिए।

1 सिंह माहेश्वरी व सिहल 'श्रम अर्थशास्त्र' पृ० 645।

अध्याय 12

कृषि श्रमिक
(Agricultural Labour)

कृषि श्रमिको की समस्या भारतीय कृषि की एक महत्वपूर्ण समस्या है। अतः कृषि सुधार की किसी भी योजना मे इनको पर्याप्त महत्व देना आवश्यक है। कृषि सुधार समिति के अनुसार : "कृषि सुधार की किसी भी योजना मे कृषि श्रमिको की समस्या को सम्मिलित न करना देश की कृषि व्यवस्था मे भयकर घाव को बिना मरहम-पट्टी के छोड देने के समान है।"

कृषि श्रमिको से आशय

1 **प्रथम कृषि श्रम जाच समिति**[1] के अनुसार : "कृषि श्रमिको का अभिप्राय उन व्यक्तियो से है जो कृषि-कार्य मे किराये के मजदूर के रूप म कार्य करते हो तथा वर्ष मे जितने दिन उन्होने वास्तव मे कार्य किया है उसस आधे स अधिक दिनो मे उन्होंने कृषि मे ही कार्य किया है। कृषि श्रमिक परिवार का तात्पर्य उस परिवार से है जिसकी आधे से अधिक आय कृषि मजदूरी से प्राप्त होती है।"

2 **द्वितीय कृषि श्रम जाच समिति** के अनुसार : "कृषि श्रमिक से आशय उस व्यक्ति से है जो न केवल फसलो क उत्पादन के काम पर रखा गया है, बल्कि अन्य कृषि सम्बन्धी धधो (जैसे बागवानी, पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, मुर्गी पालन आदि) मे किराये के मजदूर के रूप मे कार्य करता है। कृषि श्रमिक परिवार स आशय उस परिवार से है जिसकी अधिकाश आय कृषि मजदूरी से प्राप्त होती है।"

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति निम्नलिखित कृषि कार्यों मे से किसी एक या अधिक कार्यों को किराये के श्रमिक अथवा विनिमय के आधार पर सम्पन्न करता है और उसे नकद रूप म, जिन्स के रूप मे अथवा दोनो रूपो मे मजदूरी प्राप्त होती है तो उसे कृषि श्रम कहते है—

(i) कृषि जिसमे भूमि की जुताई और खेती सम्मिलित है,

(ii) डेरी उद्योग,

(iii) किसी बागवानी की वस्तु का उत्पादन, खेती उगाना तथा फसल तैयार करना,

1 Agricultural Wales in India (Vol 1, 1952)

(iv) कृषि कार्य से सबधित किसी क्रिया को करना तथा कृषि पदार्थ को सग्रहीत करने या विक्रय के लिए तैयार करना अथवा विक्रय के लिए बाजार ले जाना, एवं

(v) पशुपालन, मधुमक्खी पालन अथवा मुर्गी पालन आदि।

कृषि श्रमिक औद्योगिक श्रमिको से कई दृष्टियो से भिन्न हैं जैसाकि कृषि श्रमिको की विशेषताओ के अध्ययन से स्पष्ट हो जाएगा।

कृषि श्रमिको की विशेषताए

1. **कृषि श्रमिक असगठित हैं** औद्योगिक श्रमिको की भाति कृषि श्रमिक सगठित नहीं होते हैं। इसका मुख्य कारण कृषि कार्य की प्रकृति है। कृषि श्रमिको को एक-दूसरे पर आश्रित रहकर कार्य नही करना पडता। कृषको मे परस्पर आश्रितता के अभाव में उनमे उपयोगी सगठन स्थापित नही हो पाता।

2 **कृषि श्रमिक भ्रमणशील होते हैं** : कृषि श्रमिको की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे एक ही स्थान या खेत पर ही वर्ष भर कार्य नही करते। इसका कारण कृषि क्रियाओ की मौसमी प्रकृति है। भारतवर्ष मे कृषि कार्य 6 से 7 महीने तक ही रहता है। वर्ष की शेष अवधि मे जीविकोपार्जन के लिए कृषि श्रमिको को अन्य स्थानो पर जाना पडता है।

3 **कृषि श्रमिक अकुशल होता है** : कृषि श्रमिक मौलिक रूप से अकुशल होता है। वह खेती के कार्य मे भी कुशल नही होता है, जो कि उसका प्रमुख व्यवसाय है।

4 **कम मजदूरी** चूकि कृषि श्रमिक अकुशल होते हैं इसलिए उनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है। उत्पादक इस स्थिति का लाभ उठाकर श्रमिको को कम मजदूरी देने मे सफल हो जाते है।

5 ***सेवायोजक और कृषि श्रमिक में अन्तर नाम मात्र का होता है*** कृषि श्रमिक का सेवायोजक साधन-सम्पन्न व्यक्ति नही होता। कुछ स्थितियो मे तो एक छोटा किसान दूसरे छोटे किसान को रोजगार देता है। ऐसी अवस्था मे सेवायोजक और श्रमिक के बीच प्रत्यक्ष निकटवर्ती सम्बन्ध होता है।

6 **कृषि कार्य के लिए कानून का अभाव** कृषि कार्य के लिए कोई नियमावली और निश्चित समयावधि नही होती। उत्पादक कृषि श्रमिक को उपयुक्त कार्य की दशाओं का आश्वासन भी नही दे सकता। कारण यह है कि कृषि कार्य प्रकृति पर निर्भर करता है। कई बार तो कडी धूप वर्षा व सर्दी मे भी कृषि श्रमिक को कार्य करना पडता है। यद्यपि कृषि श्रम पर न्यूनतम मजदूरी अधिनियम लागू करने का प्रयास किया गया है परन्तु उत्पादक इन अधिनियमो की उपेक्षा करने मे आसानी से सफल हो जाते हैं।

स्पष्टत कृषि श्रमिक असगठित और अकुशल होता है, उसकी पूर्ति लोचदार होने के कारण सौदाबाजी करने की शक्ति बहुत कमजोर होती है। फलतः उसकी मजदूरी भी कम होती है।

भारत मे कृषि श्रम का विकास

19वी शताब्दी के पूवार्द्ध मे कृषि मजदूरो की सख्या बहुत कम थी, परन्तु गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जनसख्या की वृद्धि के साथ-साथ इनकी सख्या म भी काफी वृद्धि हुई है। 1881 व 1921 के बीच खेतिहर मजदूरो की सख्या 75 लाख से बढकर 2 16 करोड हो गई। 1951 मे कृषि श्रमिको की सख्या 28 मिलियन थी जो 1961 मे 31 5 मिलियन, **1971 मे 47·3 मिलियन और 1981 मे 5 54 करोड़ हो गई।**

कृषि श्रम का देश की कुल कार्यशील जनसख्या मे अनुपात बढ रहा है। 1901 मे यह अनुपात 16 9% था, जो कि 1921 मे 17 4%, 1951 मे 19 7%, 1961 मे 16 71% तथा 1971 मे 25 96% हो गया। उपर्युक्त आकडो से भारत म कृषि श्रमिको की बढती हुई सख्या का आभास होता है।

1961 व 1971 दोनो जनगणना रिपोर्टों के अनुसार 17 बड बडे राज्यो मे कृषि श्रमिको और कृषको के भाग की प्रतिशतता इस प्रकार थी—

1 अप्रैल, 1961 और 1 अप्रैल, 1971 को भारत मे कृषि श्रमिको व कृषको का अनुपात

क्र० स० राज्य	वर्ष	
	1961	1971
1 आन्ध्र प्रदेश	0 76	1 18
2 आसाम	0 07	0 18
3 बिहार	0 41	0 90
4 गुजरात	0 30	0 52
5 हरियाणा	0 13	0 33
6 हिमाचल प्रदेश	0 02	0 06
7 जम्मू-काश्मीर	0 03	0 05
8 कर्नाटक	0 28	0 67
9 केरल	0 90	1 72
10 मध्य प्रदेश	0 29	0 50
11 महाराष्ट्र	0 51	0 83
12 उडीसा	0 24	0 58
13 पजाब	0 24	0 47
14 राजस्थान	0 07	0 14
15 तमिलनाडु	0 47	0 97
16 उत्तर प्रदेश	0 16	0 35
17 पश्चिमी बगाल	0 41	0 83
अखिल भारतीय	0 33	0 61

उपर्युक्त सारणी के अंको से स्पष्ट है कि कृषि श्रमिको और कृषको के अनुपात मे 1961 और 1971 के बीच के वर्षों मे वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि राज्यो मे समान रूप से नही हुई है। अनुपात मे सबसे अधिक वृद्धि हिमाचल प्रदेश मे हुई है। कृषि श्रमिको और कृषको के अनुपात म जिन राज्यो मे काफी वृद्धि हुई है, वे राज्य अवरोही क्रम में आसाम, कर्नाटक उडीसा और बिहार हैं।

योजना आयोग के सर्वेक्षण के अनुसार कृषि श्रमिको की सख्या 1977-78 मे बढकर 530 लाख हो गयी है। इस प्रकार भारतवर्ष मे कृषि श्रमिको की सख्या मे वृद्धि हो रही है। इसका अर्थ यह है कि ऐसे करोडो किसान, विशेषकर सीमान्त और छोटे किसान अपने खेतो से बेदखल कर दिए गए है जिनके पास भूमिहीन श्रमिको की श्रेणी मे आने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नही था।

मोटे तौर पर यह अनुमान लगाया गया है कि भारतवर्ष मे कुल कार्यशील जनसख्या का 1/4 से अधिक भाग कृषि मजदूर है। ग्रामीण क्षेत्रो मे यह अनुपात 30 प्रतिशत से भी अधिक है।

भारतीय कृषि श्रमिको की सख्या मे वृद्धि के कारण

विगत वर्षो मे भारत मे कृषि श्रमिको की सख्या मे निरन्तर वृद्धि हुई है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1 **कुटीर उद्योगो का पतन** कुटीर उद्योग धन्धो के पतन के कारण बहुत-से कारीगर बेरोजगार हो गये और उन उद्योगो से बेकार हुए श्रमिक कृषि कार्य करने लगे। *डॉ० बुकेनन का कथन है कि उनके स्वय के रोजगार नष्ट हो चुके थे। आधुनिक उद्योगो* का उस समय (19वी शताब्दी मे) विकास नही हुआ था, जबकि उनके पास इतने साधन नही थे कि वे खेत लेकर उसे जोतने की व्यवस्था कर पाते। इन्ही कारणो से उन्हे कृषि श्रमिक बनने के अतिरिक्त और कोई चारा नही था।

2 **कृषि पर जनसंख्या का दबाव:** भारत मे बढती हुई जनसख्या के कारण कृषि पर जनसख्या का दबाव बढता जा रहा है, परन्तु दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था होने के कारण भूमि का केन्द्रीयकरण कुछ ही हाथो मे होता रहा और कृषि श्रमिको की सख्या मे वृद्धि होती गयी।

3 **खेतों का छोटा आकार:** भारतीय कृषि की एक विशेषता यह है कि यहा अधिकाश खेत छोटे आकार के होते हैं। खेतो के छोटे होने के कारण कृषक को पर्याप्त आय नही हो पाती फलत उसे अपने खेत के अतिरिक्त दूसरे खेतो पर मजदूरी पर कार्य करना होता है।

4 **ऋणग्रस्तता** भारतीय कृषको की एक महत्त्वपूर्ण समस्या ऋणग्रस्तता रही है। ये अधिकाश ऋण साहूकारो से लेते हैं जिनकी ब्याज की दर इतनी अधिक होती है कि कृषकों को अपनी जमीन मूलधन और ब्याज के भुगतान मे बेचनी पडती है। इस परिस्थितियो के कारण भी कृषि श्रमिको की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है।

5 **बेरोजगारी की मजबूरी मे कृषि कार्य.** भारत मे बेरोजगारी की समस्या

ने विस्फोटक रूप ले लिया है, फलत. व्यक्तियो को सरलता मे रोजगार नही मिल पाता। ऐसी परिस्थिति मे बेरोजगार व्यक्ति मजबूरी मे कृषि कार्य करने को तैयार हो जाता है और फलतः कृषि श्रमिको की सख्या मे वृद्धि होती रही है।

6 **सरकारी फार्मों पर खेती :** भारत मे योजना अवधि मे सरकारी फार्मों (खेतो) की सख्या मे वृद्धि हुई है। इन फार्मों से भी काफी सख्या मे लोगो को रोजगार मिलता है।

7. दूषित भूमि व्यवस्था : डॉ० देसाई ने लिखा है कि अग्रेजो द्वारा लागू की गई भूमि व्यवस्था भी किसी सीमा तक भूमिहीन किसानो की सख्या मे वृद्धि करने के लिए उत्तरदायी थी। इसके कुछ ऐसे व्यक्ति भी जैसे—जमीदार, जागीरदार व रिसालदार आदि होते थे जो किसानो पर मनमाना अत्याचार करते थे जिसके कारण बहुत-से किसान गाव छोडकर दूसरी जगह चले जाते थे और वहा मजदूरी करना प्रारम्भ कर देते थे।

8. **कृषि मे अनिश्चितता की स्थिति** भारत की कृषि हमेशा प्राकृतिक दशाओ पर आश्रित रहती है। मानसून की अनिश्चितता के कारण फसल नष्ट हो जाती है जिससे उसकी हानि होती है। जोत का आकार छोटा होने से दशा और गभीर हो जाती है। एक तरफ किसान ऋणी हो जाता है और, दूसरी ओर, उसे अपनी भूमि पर साल भर काम नही मिलता जिससे किसान की आर्थिक स्थिति सुधर सके। अत. किसान मजदूरी करके अपनी जीविका चलाने को बाध्य हो जाता है।

कृषि-श्रम की आर्थिक दशाए

कृषि श्रम की आर्थिक दशाओ का ज्ञान विभिन्न तथ्यो की जानकारी से हो सकता है, इसमे से कुछ प्रमुख तथ्य निम्नलिखित हैं—

1. **परिवार का आकार** कृषि श्रमिको के परिवार के आकार को मापने के लिए कोई सुव्यवस्थित प्रयत्न नही किए गए। डॉ० एच० लक्ष्मीनारायण ने उत्तर प्रदेश पजाब और हरियाणा के तीन गावो मे कृषि श्रमिको की बदलती हुई दशाओ का अध्ययन किया। उनके अनुसार उत्तर प्रदेश मे कृषि श्रमिको के परिवार का औसत आकार 1958-59 मे 6 था, जो कि 1972-73 मे घटकर 4 45 रह गया। पजाब मे यह औसत आकार 1956-57 मे 5 34 था, जो कि 1971-72 मे बढकर 8 65 हो गया। हरियाणा मे यह आकार 1959-60 मे 5 32 था, जो कि 1971-72 मे 6 48 हो गया। उत्तर प्रदेश मे परिवार के औसत आकार मे कमी का मुख्य कारण इस क्षेत्र मे शिशु मृत्यु दर का ऊचा स्तर था। ऊची शिशु मृत्यु दर कृषि श्रमिको की निर्धनता और पिछडेपन का परिचायक है।

2. **शिक्षा** कृषि श्रमिक परिवारो के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण सूचना स्कूली शिक्षा की प्रगति से प्राप्त होती है। हरियाणा मे कृषि करने वाले परिवारो मे 4 स्कूल जाने की उम्र वाली लडकियो मे से एक लडकी ही स्कूल जाती है जबकि मजदूरी करने वाले श्रम परिवार मे प्रति 25 स्कूल जाने की उम्र वाली लडकियो मे से केवल एक ही

स्कूल जाती है। इसी प्रकार, पंजाब मे कृषक परिवारो के 78% बच्चे स्कूल जाते हैं जबकि श्रम परिवारो मे केवल 40% बच्चे ही स्कूल जाते है।

यद्यपि कृषि श्रमिक परिवारो मे स्कूल जाने वाले बच्चो की सख्या मे निरतर वृद्धि हो रही है किन्तु इसका कुल साक्षरता की दर पर कोई धनात्मक प्रभाव नही पड रहा है।

3 **ऋणग्रस्तता** पहली जाच समिति के अनुसार 1950-51 मे लगभग 44 5% कृषि परिवार ऋणग्रस्त थे। प्रति परिवार ऋण की औसत मात्रा बढकर 105 रुपये थी। दूसरी जाच समिति के अनुसार 1956-57 मे लगभग 64% कृषि परिवार ऋणग्रस्त थे तथा प्रति परिवार ऋण की औसत मात्रा बढकर 138 रुपये हो गई। 1964 65 मे ऋणग्रस्तता के इस प्रतिशत मे कमी हुई और यह 61% रह गया। लेकिन औसत ऋण की मात्रा 138 से बढकर 244 रुपये हो गई। 1971-72 मे रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने अखिल भारतीय ऋण एव निवेश सर्वे का आयोजन किया, जिसके अनुसार 35 33% कृषि परिवार ऋणग्रस्त थे तथा प्रति परिवार औसत ऋण की मात्रा 161 96 रुपये थी।

उपर्युक्त सर्वेक्षण मे यह भी बताया गया है कि अब भी बहुत-से कृषि परिवार देशी महाजनो के चगुल मे फसे हुए हैं। यद्यपि 1960 के बाद से सस्थागत साख एजेन्सियो के द्वारा पर्याप्त मात्रा मे कृषि साख की व्यवस्था की गई है।

4 **रोजगार एव बेरोजगारी** भारतीय कृषि मौसम पर निर्भर करती है। अत फसल की कटाई के दिनो मे ही श्रमिको की आवश्यकता होती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि कृषि श्रमिक वर्ष मे 4-5 महीनो तक बेकार रहते हैं। प्रथम कृषि आयोग (1950-51) के अनुसार पुरुष श्रमिको को वर्ष मे केवल 200 दिन मजदूरी पर काम मिलता था। द्वितीय कृषि आयोग (1956-57) की जाच के अनुसार पुरुष श्रमिकों को वर्ष मे केवल 197 दिन मजदूरी पर कार्य मिलता था। ग्रामीण जाच समिति (1963-64) के अनुसार एक पुरुष कृषि श्रमिक को एक वर्ष मे 240 दिन तथा स्त्री श्रमिक को 159 दिन रोजगार प्राप्त होता है। योजना आयोग के अनुसार प्राय. 16% व्यक्तियो को पूरे वर्ष भर कोई कार्य नही मिलता।

उपर्युक्त आकडो से स्पष्ट है कि मजदूर को एक वर्ष मे लगभग 4 महीने बेरोजगार रहना पडता है। इस अवधि मे उसे ग्रामीण जीवन की सभी बुराइयो का सामना करना पडता है।

5 **कार्य करने का समय एव दशाए** कृषि श्रम जाच समिति के अनुसार : "कार्य के घण्टो मे कोई नियमितता नही थी और यह श्रमिको और सेवायोजको के मध्य सहयोग, विश्वास तथा स्थानीय रीति रिवाजो पर निर्भर करती थी। फसल की कटाई और सफाई के समय अनियमित कृषि श्रमिको को प्रतिदिन 10-11 घण्टे कार्य करना पडता था। स्पष्ट है कि कृषि श्रमिक की कार्य करने की दशाए प्रकृति पर निर्भर करती हैं। चूकि कृषि श्रमिक खुले हुए वातावरण मे कार्य करते हैं इसलिए उन्हे गर्मी और वर्षा दोनो मे ही काम करना पडता है।'

6 मजदूरी एव आय प्रथम जाच समिति न बताया है कि 1950-51 मे पुरुष कृषि श्रमिक की औसत मजदूरी 1 09 रुपये प्रतिदिन थी, दूसरी जाच समिति के अनुसार यह 1956-57 मे घटकर 0 90 रुपये प्रतिदिन रह गयी, तथा ग्रामीण जाच समिति के अनुसार यह 1964-65 मे 1 43 रुपये आकी गई। स्त्री कृषि श्रमिको के लिये 1950 51 मे यह 0 68 रुपये, 1956 57 मे 0 59 रुपये और 1964 65 मे यह 0 95 रुपये थी। यद्यपि समयावधि 1950 51 से 1964 65 के दौरान पुरुष और स्त्री दोनों ही प्रकार के कृषि श्रमिकों की मौद्रिक मजदूरी मे वृद्धि हुई है लेकिन कीमतो में वृद्धि होने के कारण 1964-65 मे वास्तविक मजदूरी 1950 51 की तुलना म कम हो गई।

जहा तक कृषि श्रमिको की आय का प्रश्न है पहली कृषि श्रम जाच समिति के अनुसार, सभी स्रोतो से कृषि श्रम की वार्षिक आय 1950-51 मे 447 रुपये थी। दूसरी जाच समिति के अनुसार 1956 57 मे यह घटकर 437 रुपये रह गई है। ग्रामीण श्रम जाच समिति के अनुसार कृषि श्रम की वार्षिक आय 1964-65 मे 660 रुपये थी। इससे श्रमिकों की मौद्रिक आय मे वृद्धि का आभास होता है। लेकिन, यदि मौद्रिक आय मे इस वृद्धि की कीमत वृद्धि के साथ तुलना करें तो विदित होता है कि कृषि श्रम की वास्तविक आय मे कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि नही हुई है।

7 उपभोग व जीवन-स्तर एक तो कृषि श्रमिको की मजदूरी बहुत कम होती है। दूसरे, वर्ष मे ये काफी दिन बेकार रहते हैं। फलस्वरूप इनकी आय इतनी कम हो जाती है कि इनके न्यूनतम उपभोग का खर्च भी पूरा नही हो पाता और विवश होकर उन्हे उपभोग के लिए भी उधार लेना पडता है। द्वितीय कृषि श्रम जाच समिति का अनुमान था कि 1956-57 मे प्रति परिवार उपभोग पर वार्षिक व्यय 617 रुपये था तथा प्रति परिवार औसत वार्षिक आय 437 रुपये थी। इस प्रकार प्रति परिवार औसत घाटा 180 रुपये का था।

कृषि श्रमिको के उपभोग व्यय मे सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु भोजन है। कृषि श्रम जाच समिति के अनुसार 'कृषि परिवार अपने उपभोग व्यय का 85 3% भोजन, 6 3% कपडो व जूतो तथा 6 ?% सेवाओ व अन्य कार्यों पर खर्च करते है। इस उपभोग व्यय के स्वरूप से कृषि श्रमिको की पिछडी हुई दशा एव बेरोजगारी की जानकारी मिलती है।

कृषि श्रमिको की समस्याए तथा कठिनाइया
(Problems and Difficulties of Agricultural Labourers)

योजना आयोग ने लिखा है कृषि श्रमिको की समस्याए हमारे लिये एक चुनौती है और इन समस्याओ का समुचित निदान करने की जिम्मेदारी सम्पूर्ण समाज पर है। अत कृषि श्रमिको की समस्याओ की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। केन्द्रीय कृषि मन्त्रालय द्वारा कृषि श्रमिको की समस्याओ के समाधान पर किये गये एक अध्ययन के अनुसार महत्त्वपूर्ण है समस्याओ के समाधान विस्तृत रूप से प्रभावी और सुविचारित ढग से किया जाना चाहिए। ऐसा न करने का परिणाम ऐसी स्थिति

का उत्पन्न होना होगा कि ग्रामीण क्षेत्र का असन्तुष्ट वर्ग मजबूर होकर सगठित होगा और एक दिन विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर देगा।"[1] भारतीय श्रमिकों की मुख्य समस्याए निम्नलिखित है—

1 **मौसमी व छिपी बेरोजगारी** कृषि श्रमिकों को वर्ष पर्यंत कार्य नही मिलता। द्वितीय कृषि जाच समिति के अनुमान के अनुसार कृषि श्रमिक को वर्ष भर मे केवल 197 दिन ही काम मिलता है और शेष समय वह बेकार रहता है। अन्यत्र रोजगार मिलने की सम्भावनाए कम होने से कृषि श्रमिकों का भार आवश्यक रूप से अधिक हो जाता है और कुछ श्रमिक यद्यपि कार्यरत दिखाई देते हैं तथापि कृषि उत्पादन मे उनका अशदान नही के बराबर है जिसके फलस्वरूप छिपी बेरोजगारी की समस्या पायी जाती है। भारतीय कृषि श्रमिकों म मौसमी बेरोजगारी, अर्द्धबेरोजगारी और छिपी हुई बेरोजगारी तीनों ही समस्यायें जटिल रूप मे पायी जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार के अनुमान का प्रयास नेशनल सैम्पल सर्वे (N S S) ने अपने 19वें सत्र मे जुलाई 1964 से जून 1975 के मध्य किया। इसका प्रतिवेदन 1970 मे प्रकाशित हुआ। उसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रो मे श्रम शक्ति कुल जनसख्या की 40 15 प्रतिशत थी जिसमे से 38 4 प्रतिशत लाभप्रद रोजगार मे थे जबकि बेरोजगार रोजगार के लिये उपलब्ध व्यक्ति 1 75 प्रतिशत थे। सप्ताह मे 4 दिन या उससे कम तथा एक दिन तक काम करने वाले व्यक्तियो का प्रतिशत कुल जनसख्या का 10 24 प्रतिशत था।

2 **भूमिहीनता** भारत मे अधिकाश कृषि श्रमिक भूमिहीन हैं और जिनके पास भूमि है वह प्राय इतनी कम मात्रा मे है कि न तो उन्हे उस पर वर्ष भर कार्य मिल सकता है और न वह आर्थिक इकाई के रूप म जोती जा सकती है।

3 **अस्थायी श्रमिको का आधिक्य** भारत म अधिकाश कृषि श्रमिको को अस्थायी रूप मे ही खेतो पर काय मिलता है और भारत म अस्थायी कृषि श्रमिको का ही आधिक्य है 1970 71 मे लगभग 70 प्रतिशत कृषि श्रमिक अस्थायी थे। अस्थायी होने म उनकी दशा दयनीय है।

4 **काय के अनियमित घटे** कृषि श्रमिको के काय के घटे भिन्न भिन्न स्थान, ऋतु और फसलो के लिए एक स नही है। वैसे तो कृषि मजदूरो को वर्ष भर काम नही मिलता किन्तु जब वह खेतो पर काम करता है तो उसके प्रतिदिन काम का समय काफी लम्बा होता है औद्योगिक श्रमिको की तरह इनके काम के घटे निश्चित नही किय गये है।

5 **सगठन का अभाव** कृषि श्रमिक निपढ और अजागरूक है। वे बिखरे हुए गावों म बसे हुए रूप म रहते है। वे राज्य की सघो के रूप म सगठित नही कर पाये है। सगठन के अभाव के कारण वे भूमिपति से अपने अधिकारो की प्रभावशाली ढग स माग नही कर पाते।

1 The Causes and Nature of Current Agrarian Tensions, (Ministry of Home Affairs, Govt of India, 1969, p 37).

6 **ऋणग्रस्तता** कृषि श्रमिक बुरी तरह ऋणग्रस्त हैं। भारतीय कृषि श्रमिक की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय का अनुमान 140 रुपये लगाया गया है। 1972 73 के अनुमान के अनुसार भारत के समस्त कृषि परिवारो को राष्ट्रीय आय का केवल 8 3 प्रतिशत ही प्राप्त हुआ। इतनी कम आय होने के कारण कृषको के लिये अपना जीवन निर्वाह करना कठिन हो जाता है, फलत उसे ऋण लेना पडता है। एक बार ऋणी होने के बाद कृषि श्रमिक को जीवन भर उससे छुटकारा नही मिलता। कृषि श्रम जाच समिति के अनुसार हमारे देश मे कृषि श्रमिको के लगभग 45 प्रतिशत परिवार ऋणग्रस्त है और प्रति परिवार औसत ऋण का अनुमान 105 रुपया है।

1971 72 मे लगभग 60 प्रतिशत कृषि मजदूर परिवारो पर ऋण का काफी भार रहा। ऐसे प्रत्येक परिवार पर औसतन 138 रुपये ऋण रहा।

7 **निम्न सामाजिक स्थिति** अधिकाश कृषि श्रमिक युगो से उपेक्षित एव दलित जातियो के सदस्य है जिनका सदियो से शोषण किया गया है। इसके कारण इनका सामाजिक स्तर नीचा रहता है।

8 **आवास समस्या :** भूमिहीन कृषि श्रमिको के सामने आवास की समस्या भी है। उन्हे या तो भूमिपतियो की या ग्राम सस्थाओ के स्वामित्व की भूमि पर उनकी स्वीकृति लेकर मकान या झोपडिया बनाकर रहना पडता है। ये झोपडिया अत्यन्त छोटी होती हैं। कृषि श्रमिको की आवास-व्यवस्था की दयनीय अवस्था के सम्बन्ध मे **डॉ० राधा कमल मुकर्जी** ने लिखा है "इन झोपडियो मे श्रमिक केवल पैर फैलाकर सो सकता है। एक ही झोपडी मे अनेक व्यक्तियो के सोने से मर्यादा भी समाप्त हो जाती है।" शुद्ध वायु तथा रोशनी के लिय खिडकियों का पता नही होता। इस व्यवस्था का श्रमिको और उनके बच्चो के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है।

9 **बेगारी की समस्या** • अभी कुछ समय पहले तक भारत के लगभग सभी भागो मे कृषि श्रमिको से बेगारी (Forced Labour) मे काय लने की प्रणाली प्रचलित थी। इसकी भीषणता गुलामी से कुछ कम अवश्य थी किन्तु इस प्रथा मे कृषि श्रमिकों को ऋणग्रस्तता के कारण मालिक के खेत या घर पर स्थायी रूप से काम करना पडता था जिसके लिए उन्हे नाममात्र की मजदूरी मिलती थी। अब कानून बनाकर इस प्रथा का अन्त कर दिया गया है।

10 **मजदूरी की निम्न दर** कृषि श्रमिकों की मजदूरी की दर अत्यन्त ही कम है। इसके कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार है —

(अ) कृषि श्रमिको का अशिक्षित व असगठित होना (ब) भारतीय कृषि का मौसमी स्वरूप (स) श्रमिको का आधिक्य (द) सघन खेती और व्यापार व उद्योग की कमी। मजदूरी का स्तर नीचा रहने से श्रमिको की काय क्षमता कम रहती है और उनकी सन्तति के विकास पर कुप्रभाव पडता है।

11 **गैर कृषि व्यवसायो की कमी** ग्रामो मे गैर कृषि व्यवसायो की कमी भी कृषि श्रमिको की कम मजदूरी और हीन आर्थिक दशा के लिए उत्तरदायी है। ग्रामो मे जनसख्या की निरन्तर वृद्धि के कारण भूमिहीन श्रमिको की सख्या भी बढती जा रही

है। परन्तु दूसरी ओर, गैर-कृषि व्यवसायो की कमी तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे न आने-जाने के कारण कृषि पर जनसख्या का दबाव भी बढता जा रहा है। यदि बाढ, अकाल इत्यादि के कारण फसल नष्ट हो जाय तो कृषि श्रमिको का जीवन-निर्वाह करना भी कठिन हो जाता है।

12 कृषि-श्रमिकों में स्त्री और बच्चों का आधिक्य : भारतीय कृषि मे वैसे ही श्रमिको की सख्या अनावश्यक रूप से अधिक है तथा स्त्री और बच्चो के खेतो पर कार्य करने मे कृषि श्रमिको की पूर्ति और प्रतियोगिता अधिक बनती है जिसका बुरा प्रभाव उनकी मजदूरी और बच्चो के शिक्षा-स्तर पर पडता है।

13 मशीनीकरण से बेरोजगारी समस्या . नियोजन काल मे कृषि मे नवीन यन्त्रो और वैज्ञानिक उत्पादन पद्धति का उपयोग किया जा रहा है। इससे अशिक्षित कृषि श्रमिको के समक्ष बेरोजगारी की समस्या और भी अधिक गम्भीर हो गयी है।

कृषि श्रमिकों की समस्याओ के समाधान के सुझाव
(Suggestions to Solve the Problems of Agricultural Labour)

कृषि श्रमिको की समस्याओ को हल करने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1 जनसख्या नियत्रण : भारतवर्ष मे कृषि या अन्य क्षेत्रो मे रोजगार बढाने के लिए बहुत-से प्रयत्न किये गये हैं तथापि बेरोजगारो की सख्या कृषि व गैर-कृषि क्षेत्रो मे बढती जा रही है। इसलिये आवश्यक है कि बढती हुई जनसख्या को नियन्त्रित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रो मे परिवार नियोजन कार्यक्रम को तेजी से कार्यान्वित किया जाय।

2 कृषि क्षेत्र मे रोजगार बढाया जाय : कृषि क्षेत्र मे ही रोजगार बढाने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम किये जा सकते हैं—(अ) कृषि क्षेत्र मे सिंचाई की सुविधा बढाकर उन्नत बीज खाद आदि आवश्यक वस्तुए किसानो को उपलब्ध कराकर सघन खेती को प्रोत्साहन देना चाहिये। (ब) अधिक-से-अधिक क्षेत्र मे प्रतिवर्ष एक से अधिक फसलें बोने के लिये सघन फसल कार्यक्रम कार्यान्वित किया जाना चाहिए। (स) ग्रामो मे कृषि उद्योग, जैसे मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, सुअर पालन, गो पालन आदि का व्यवसाय किया जाना चाहिये। (द) लोक निर्माण कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिये। सरकार गावों मे अपनी परियोजनायें इस तरीके से कार्यान्वित करे कि बेकार समय (Off Season) मे खाली श्रमिको को रोजगार मिल सके। सडकें बनाना, तालाबो तथा नहरो की खुदाई और उन्हे गहरा करना, वनारोपण आदि ऐसी ही परियोजनाए हैं।

3 गैर कृषि क्षेत्र मे रोजगार बढाना : इसके लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं—(अ) देश में बडे-बडे उद्योग स्थापित किये जाने चाहिए जिससे गैर कृषि क्षेत्र मे रोजगार बढेगा और कृषि-श्रमिक भी उनकी ओर आकर्षित होगे। (ब) बहुउद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। इनसे प्रत्यक्ष रूप से रोजगार में वृद्धि होगी और साथ ही परोक्ष रूप से ग्रामीण विद्युतीकरण और सिंचाई की सुविधाए बढाने से भी सघन कृषि और ग्रामीण उद्योग प्रोत्साहित होगे जिनसे रोजगार

अवसरो का विस्तार होगा। (स) कताई, बुनाई, मिट्टी का काम, बांस और लकडी का काम आदि कुटीर उद्योग, यन्त्रों के पुर्जे बनाने व छोटे-छोटे यन्त्रों का निर्माण करने हेतु लघु उद्योगों तथा धान, तिलहन, कपास, फल, दालें आदि पर प्रक्रिया करने के कृषि उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिये।

4 **शिक्षा का प्रसार** · कृषि श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों के समाधान की दृष्टि से उनमें व्यापक रूप से शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिये जिससे वे भूमिपतियों के शोषण से बच सकें, अपनी मजदूरी की सही गणना कर सकें और कृषि में हो रही हरित् क्रान्ति के अनुरूप अपने को कार्य करने के योग्य बना सकें।

5 **कृषि कार्य मे कार्य के घटो का नियमन :** इटली, जर्मनी आदि कई विकसित देशों में कृषि कार्य के घटे नियमित किये गये हैं। अतः भारतवर्ष में भी कृषि श्रमिकों के कार्य के घटो का नियमन किया जाना चाहिये और निर्धारित समय से अधिक कार्य करने पर अतिरिक्त मजदूरी की व्यवस्था होनी चाहिये।

6 **काम की परिस्थितियों मे सुधार :** काम की प्रतिकूल परिस्थिति के बुरे प्रभाव से बचने के लिये जाडे, गर्मी व वर्षा के मौसम में आवश्यकतानुसार सरक्षक वस्त्र तथा अन्य सुविधायें श्रमिकों को उपलब्ध होनी चाहिए। उनसे बेगार नही ली जानी चाहिए, अवकाश की व्यवस्था होनी चाहिये तथा दुर्घटना इत्यादि पर सहायता का प्रावधान होना चाहिये।

7 **न्यूनतम मजदूरी का प्रभावशाली क्रियान्वयन** यद्यपि सरकार द्वारा कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध मे भी न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था की गई है परन्तु केवल न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बना देना पर्याप्त नही है, बल्कि उसे प्रभावपूर्ण ढग से लागू करने के उपाय भी किये जाने चाहियें।

8 **भूमिहीन कृषि श्रमिकों के लिए भूमि की व्यवस्था** *कृषि श्रमिकों की दशा* सुधारने के लिए भूमिहीन कृषि श्रमिकों को भूमि देना आवश्यक है। वर्तमान समय मे भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारण तथा भूदान आन्दोलन द्वारा यह व्यवस्था की गई है, परन्तु जैसा चरण सिंह ने लिखा है 'अधिकतम सीमा निर्धारण के बाद जो अतिरिक्त भूमि प्राप्त हुई वह भूमिहीनो मे वितरित करने या प्रबन्ध योजना काल मे किया गया था किन्तु इससे भूमिहीनों की समस्या को हल करने की सम्भावनाए सीमित हैं।"[1] कारण यह है कि अधिकाश भूमिहीन निम्न श्रेणी की होने से तथा बैल, औजार और वित्त के अभाव मे भूमिहीन श्रमिक भूदान मे प्राप्त भूमि से अधिक लाभ न उठा सकेंगे।

9 **स्त्री श्रमिकों की रक्षा .** औद्योगिक श्रमिकों की भांति कृषि श्रमिकों को सम्पूर्ण सुविधाए मिलनी चाहियें विशेष रूप से प्रसव अवकाश आदि का प्रबंध कम-से-कम सहकारी व अन्य निजी तथा बड़ खेतो पर उपलब्ध होने चाहियें।

10 **श्रम सहकारिताओं का निर्माण** कृषि श्रमिकों को श्रम सहकारिताओं का निर्माण करना चाहिये और सरकार को सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य कार्यों मे इन श्रम

1 Charan Singh India's Poverty and Solution, p 178

सहकारिताओं को प्राथमिकता देनी चाहिये।

11 **ग्रामीण रोजगार केन्द्रों की स्थापना** ग्रामीण रोजगार केन्द्रो की स्थापना की जानी चाहिये, ताकि कृषि श्रमिको की गतिशीलता बढे और रोजगार के सबध मे उन्हें जानकारी उपलब्ध हो सके।

12 **कृषि श्रम कल्याण केंद्रों की स्थापना :** खण्ड अथवा ब्लाक-स्तर पर कृषि श्रम कल्याण केन्द्रो की स्थापना की जानी चाहिये जहा पर श्रमिको को मनोरजन तथा अन्य सुविधाए उपलब्ध हो।

13 **कृषि श्रम संगठनों की स्थापना** औद्योगिक श्रमिकों की भाति कृषि श्रम सगठनों की स्थापना की जानी चाहिये जिससे कृषि श्रमिक अपने अधिकारो को सुरक्षित रख सकें।

कृषि श्रमिको की उन्नति के लिए उठाए गए कदम

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद केन्द्र तथा राज्य सरकारो ने कृषि श्रमिको की दशा सुधारने के लिए निम्न कार्य किये है—

1 **कृषि-दास प्रथा** भारतीय सविधान ने कृषि दास प्रथा को अपराध घोषित कर दिया है, जिससे कि कृषि श्रमिको की दशा सुधरे तथा पूर्णकालीन रोजगार मिल सके।

2 **न्यूनतम मजदूरी अधिनियम एव कृषि श्रमिक** 1948 मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पारित किया गया, जिसके अधीन तमिलनाडु और महाराष्ट्र को छोडकर शेष सभी राज्यो और सघीय क्षेत्रो मे कृषि मजदूरो की न्यूननम मजदूरी निर्धारित की गई है। केन्द्रीय सरकार द्वारा कृषि शोधन सस्थाओ तथा सैनिक फार्मों पर काम करने वाले श्रमिको की भी न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी गई है। अधिनियम मे जीवन-निर्वाह व्यय मे हुई वृद्धि को ध्यान म रखते हुए 5 वर्ष की अवधि मे न्यूनतम मजदूरी की समीक्षा करने की भी व्यवस्था है।

3 **श्रमिक सहकारिता का सगठन** श्रम या सेवा सहकारी समितियो की स्थापना के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इन समितियो के सदस्य स्वय श्रमिक ही होते हैं और सडको का निर्माण, नहरो और तालाबो की खुदाई, वन-रोपण आदि सहकारी परियोजनाओ क ठेक लेते हैं।

4 **भूदान आदोलन** भूदान, ग्रामदान व प्रखण्डदान आदि आन्दोलनो से भी कृषि श्रमिको की दशा को सुधारने मे बडी सहायता मिल रही है। इन आन्दोलनो मे प्राप्त हुई भूमि के हस्तान्तरण व प्रबन्ध के लिए राज्यो ने आवश्यक कानून बना दिये हैं।

5 **कृषि मजदूर विकास संस्था :** अखिल भारतीय कृषि ऋण पुनरावलोकन समिति ने सिफारिश मे ग्रामीण क्षेत्रो मे छोटे किसानो की विकास सस्था द्वारा उनकी मदद करने को कहा था। भारत सरकार ने उसे स्वीकृत ही नही किया बल्कि उससे एक कदम आगे भूमिरहित तथा बहुत छोटे किसानो के लिए भी विकास सस्था खोलने

का निश्चय किया और इस निश्चय के आधार पर ऐसी सस्था को सगठित कर दिया गया जो भूमिरहित तथा छोटे-छोटे काश्तकारो के लिए सहायता प्रदान करेगी। सस्था का मुख्य ध्येय उन्हे रोजगार तथा साधन प्रदान करना है। आगामी 4 वर्षों म देश मे इस प्रकार की 40 परियोजनाए स्थापित करने का प्रस्ताव है।

6 ग्रामीण वर्क्स कार्यक्रम कृषि श्रमिको को बेरोजगारी के दिनो म उनके लिए रोजगार की व्यवस्था करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने ग्रामीण वर्क्स कार्यक्रम की योजना तैयार की है। इस कार्यक्रम मे लघु और मध्यम स्तरीय सिचाई साधनो का विकास भूमि सरक्षण, इत्यादि सम्मिलित है। यह अनुमान है कि प्रति एक करोड रुपये का व्यय सम्बन्धित कार्यविधि म 25 हजार से 30 हजार व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध करेगा।

7 ग्राम आवास निर्माण योजना अक्तूबर, 1957 म यह योजना प्रारम्भ की गई जिसके अन्तर्गत भूमिहीन कृषि श्रमिको को नि शुल्क या नाम मात्र कीमत पर मकान प्रदान करने के लिए राज्य सरकारो को अनुदान दिया जाता है।

8 रोजगार गारण्टी योजना महाराष्ट्र सरकार ने रोजगार गारण्टी योजना शुरु की है। इस योजना के अनुसार सरकार को प्रार्थी को उसके निवास-स्थान के 5 किलोमीटर के बीच रोजगार उपलब्ध कराना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार को विभिन्न सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम सम्बन्धी योजनाए (जैसे सिचाई, सडक, निर्माण आदि) तैयार रखनी होगी। इसमे मजदूरी की दर ऐसी नही होगी जिससे कृषि क्रियाओ म सामान्य रोजगार प्राप्त श्रमिक आकर्षित हो सके। यह सभी व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराने का अभिनन्दनीय कदम है। यह आशा की जाती है कि अन्य सभी राज्य भी ऐसी ही योजनाए चालू करेंगे।

9 बीस सूत्री कार्यक्रम प्रधान मत्री ने बीस सूत्री कार्यक्रम म भी भूमिहीन श्रमिको एव ग्राम समाज के अन्य निर्बल वर्गों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए कई उपाय किय गये हैं। इनम निम्नलिखित उल्लेखनीय है

(क) कृषि भूमि की अधिकतम सीमा (Ceiling) के कानूनो का लागू करना तथा अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनो मे तेजी स वितरण करने की कार्यवाही करना और अभिलेख को पूर्ण करना।

(ख) भूमिहीनो व समाज के निर्बल वर्गों को मकानो की जगहे (Land Sites) तेजी से वितरित करना।

(ग) बधुआ श्रम (Bonded Labour) को गैर कानूनी घोषित करना।

(घ) ग्रामीण ऋणग्रस्तता को समाप्त करना। देहातो म भूमिहीन मजदूरो दस्तकारो और छोटे किसानो से ऋण वसूली पर रोक लगाने के लिए कानून बनाकर प्रतिबन्ध लगाना।

(ङ) समग्र ग्रामीण विकास एव राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को सुदृढ एव अधिक विस्तृत करने की योजना।

(च) कृषि मजदूरो को न्यूनतम मजदूरी सबधी कानूनो की समीक्षा और उनका

असरदार तरीके से क्रियान्वयन ।

(छ) बंधुआ मजदूरो के पुनर्वास की व्यवस्था ।

(ज) ग्रामीण क्षेत्रो के भूमिहीनो को आवासीय भूमि देने और मकान बनाने मे सहायता सम्बन्धी कार्यक्रम का विस्तार।

(झ) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जातियो के विकास से सम्बद्ध कार्यों मे तेजी ।

10. **विशेष क्षेत्र कार्यक्रम** . आरम्भ मे ग्राम पुनर्निर्माण के लिए सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रमो को आरम्भ किया था, जिसमे कृषि श्रमिको की आर्थिक दशा मे सुधार की भी व्यवस्था की गई थी। लेकिन इसके बाद यह निश्चय किया गया कि ये कार्यक्रम कुछ विशेष जिलो तथा क्षेत्रो मे ही लागू किये जाने चाहिए। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखकर कई विशेष क्षेत्र कार्यक्रम आरम्भ किये गये। इन कार्यक्रमो मे छोटे किसान, विकास एजेंसी, सीमांत कृषक एव कृषि श्रमिक विकास एजेंसी, कार्यक्रम आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

*11. **सीमान्त कृषक और श्रमिक योजना :** सीमान्त कृषको तथा कृषि श्रमिको की सहायता के लिए सरकार द्वारा देश के 41 चुने हुए जिलो मे पायलट प्रोजेक्ट्स शुरू किये जायेंगे और प्रत्येक जिले मे 20 हजार सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिको को वित्तीय सहायता दी जायेगी।*

*12. **कुटीर व लघु उद्योगों का विकास :** कृषि पर जनसख्या के दबाव को कम करने के लिए सरकार ने हमेशा लघु और कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन दिया है। ग्रामीण क्षेत्रो मे ग्रामीण औद्योगिक बस्तियां भी स्थापित की गई हैं।*

*13 **कृषि श्रमिकों की स्थायी समिति :** केन्द्रीय सरकार ने विद्यमान कृषि श्रमिको सम्बन्धी कानूनो एव व्यवस्थाओ की समीक्षा एव विस्तृत अधिनियमो की रूप-रेखा बनाने के लिए एक स्थायी समिति की नियुक्ति की है।*

*14. **बंधुआ मजदूर प्रथा का अन्त :-** 1976 मे बधुआ मजदूर उन्मूलन अधिनियम पारित कर बधुआ मजदूरी प्रणाली गैर-कानूनी घोषित कर दी गई है—जिसके फलस्वरूप अब कोई भी व्यक्ति ऋणो के चुकान के लिए मजदूर के रूप मे कार्य करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता है।*

*15 **क्षेत्रीय ग्रामीण बंक की स्थापना** . ग्रामीण क्षेत्रो मे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किए गए है जो ग्रामीण क्षेत्रो मे वित्तीय सुविधाएं प्रदान करते हैं।*

16 **ऋण मुक्ति कानून :** ऐसे भूमिहीन श्रमिको व शिल्पकारो को, जिनकी आय 2,400 रुपये वार्षिक या इससे कम है, पुराने ऋणो से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से भिन्न-भिन्न राज्यो ने अध्यादेशो के माध्यम से कानून बनाये हैं जिनके अनुसार अब इस प्रकार के ऋणो की वसूलयाबी नही हो सकती है और यदि कोई डिग्री भी हो गई है तो भी उसकी वसूलयाबी नहीं हो सकती है।

पंचवर्षीय योजनाओ में कृषि श्रमिक

प्रथम योजना मे कृषि श्रमिक की स्थिति मे सुधार लाने के उद्देश्य मे कई कार्य किये गये, जैसे—कम मजदूरी वाले क्षेत्र मे न्यूनतम मजदूरिया निश्चित करना, निवास स्थान के सम्बन्ध मे श्रमिको को दखली अधिकार देना, श्रमिक सहकारिताओ का सगठन करना तथा भूमिहीन श्रमिको हेतु पुनर्वास योजना बढाना, जिस पर लगभग 1 करोड रुपये व्यय किये गये। परन्तु इस योजनावधि मे कृषि श्रमिक की स्थिति मे कोई विशेष प्रगति नही हुई।

प्रथम योजना काल मे भूमिहीन मजदूरो के पुनर्वास के लिए 2 करोड रुपये व्यय का एक कार्यक्रम तैयार किया गया था जिसे आगे कम करके केवल 1 5 करोड रुपये का ही रखा गया। किन्तु योजना काल मे इस मद मे एक करोड रुपये से भी कम रकम खर्च की गयी। प्रथम योजना मे तमिलनाडु व आन्ध्र प्रदेश मे भूमिहीन श्रमिको को बसाने के कार्यक्रम लागू किये गये। भोपाल मे केन्द्रीय सरकार ने 10,000 एकड के फार्म पर भूमिहीन श्रमिको को बसाया।

द्वितीय योजना मे श्रम सहयोग समितियो की स्थापना, कुटीर व लघु उद्योगो को प्रोत्साहन द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करना, भूमि के पुनर्वितरण व शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ के विस्तार पर विशेष जोर दिया गया। योजना काल मे 1 लाख एकड भूमि पर 10,000 भूमिहीन मजदूर परिवारो को बसाने के लिए लगभग 5 करोड रुपये व्यय किये गये। इसके अतिरिक्त, इसी योजनावधि मे पिछडे वर्गों के उद्धार के लिए लगभग 90 करोड रुपये व्यय किए गए।

इस योजनावधि मे पजाब, आन्ध्र प्रदेश, बम्बई व बिहार मे श्रम-सहकारी समितिया स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की गई। बिहार मे 10 हजार परिवारो को भूदान से प्राप्त भूमि पर बसाया गया। आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर व पजाब मे खेतिहर मजदूरो को मकान की जगह दिलाने मे सफलता मिली।

तृतीय योजना मे कृषि श्रमिको की स्थिति सुधारने पर पर्याप्त जोर दिया गया और इसलिए विशाल विनियोग की व्यवस्था की गई। विभिन्न विकास-कार्यक्रमो, जैसे कुटीर एव लघु उद्योगो का विकास, गावो का विद्युतीकरण, ग्रामीण आवास, पीने के पानी की व्यवस्था, सिचाई, कृषि-उत्पादन मे वृद्धि, शिक्षा आदि से कृषि श्रमिको की स्थिति मे कुछ सुधार अवश्य हुआ है। योजना काल मे कृषि श्रमिको को बसाने के लिए 12 करोड रुपये व्यय करने थे और 50 लाख एकड भूमि पर 7 लाख कृषि श्रमिक परिवारो को बसाने की व्यवस्था थी। पिछडी हुई जातियो के कल्याणार्थ 19 41 करोड़ रुपये व्यय किये गये।

तृतीय योजना मे जो लक्ष्य निर्धारित किय गए वे प्राप्त नही किये जा सके हैं। अनुमान है कि योजना काल के 15 वर्षों मे भूमिहीन मजदूरो को एक करोड एकड भूमि वितरित की जा चुकी है।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे कृषि श्रमिको के लिए **विशेष कार्यक्रम तैयार किया**

गया जिसके अन्तर्गत (i) भूमि सुधार कार्यक्रम को प्रभावी ढग से लागू करने पर जोर दिया गया, एव (ii) कृषि श्रमिकों को अन्य रोजगारो मे लगाने पर ध्यान दिया गया।

पाचवीं पचवर्षीय योजना मे इस समस्या का स्थायी हल निकालने के लिए 18 सदस्यीय कृषि-श्रम तदर्थ समिति बनायी गयी। साथ ही इस योजना मे आवास व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया।

छठी योजना तथा कृषि श्रमिक : *छठी योजना मे पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिये* जो कार्यक्रम बनाए गए है उनमे कृषि श्रम को सम्मिलित किया गया है। योजना मे यह उल्लेख किया गया है कि देश की लगभग 20% जनसख्या ग्रामीण क्षेत्रो मे रहने वाली अनुसूचित जातियो और जन-जातियो की है। ये जनसख्या के निर्धनतम वर्ग का निर्माण करती हैं। इनके पास साधनो का अभाव है और प्रमुख रूप से ये कृषि पर निर्भर रहती हैं। इस योजना मे इस वर्ग के आर्थिक विकास के लिए पुनर्वितरण के कार्यों को प्राथमिकता प्रदान की गई है। इस योजना मे सामान्य विकास कार्यक्रमो के साथ ही कमजोर वर्ग के विकास को जोड़ा गया है।

इस योजना मे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम हेतु भी पर्याप्त मात्रा मे परिव्यय का प्रावधान है। क्षेत्रीय विकास हेतु ब्लाको और कार्यक्रमो का चयन इस प्रकार किया जायेगा ताकि कमजोर वर्ग के लोगो को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इसके साथ ही भूमि सुधार कार्यक्रमो को प्रभावशाली ढग से लागू करने पर भी निर्बल वर्ग को लाभ प्राप्त हो सकेगा।

न्यूनतम आवश्यकताओ के सशोधित कार्यक्रम (R M N P) मे प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा के विकास के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है। जिन क्षेत्रो मे पिछड़ी हुई जनसख्या का प्रभाव अधिक है और शिक्षा की सुविधाए उपलब्ध नही हैं, वहा प्राथमिक शिक्षा के विकास को प्राथमिकता दी जाएगी। इस कार्यक्रम मे भूमिहीन श्रम आवास योजना के लिए 500 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है इससे भी निर्बल वर्ग के लोगो को पर्याप्त सुविधा उपलब्ध हो सकेगी। इसके अतिरिक्त, गन्दी बस्तियो के वातावरण मे सुधार एव अनुपूरक पोषण आदि के प्रावधान से भी निर्बल वर्ग के लोगो को लाभ प्राप्त होगा।

स्पष्टत छठी योजना मे निर्बलो के आर्थिक एव सामाजिक विकास के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है। केवल सामान्य विकास कार्यक्रमो व कल्याणकारी कार्यक्रमो से ही नही, अपितु रोजगार उन्मुख कार्यक्रमो के विकास से भी निर्बल वर्ग के लोगो को लाभ प्राप्त हो सकेगा। इसी तरह, सहायक व्यवसायो व ग्रामीण उद्योगो के विकास से भी उन्हें पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सकेगा।

परीक्षा-प्रश्न

1 भारत मे कृषि श्रमिको की समस्याओ का उल्लेख कीजिए और इन समस्याओ को सुलझाने के उपाय बताइए।
2 भारत मे कृषि श्रमिको की निम्न आर्थिक दशा के कारण बताइए तथा

इसकी दशा सुधारने के सुझाव दीजिए।

3. भारतीय कृषि में कृषि श्रमिकों की समस्या का परीक्षण कीजिए। यह समस्या कैसे हल हो सकती है ?
4. देश में कृषि श्रम समस्या की संक्षेप में विवेचना कीजिए। क्या वह कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था में आवश्यक ढांचे में परिवर्तन के बिना हल की जा सकती है ?

अध्याय 1

मजदूरी के भुगतान की रीतियां
एवं
मजदूरी के सिद्धांत

(Methods of Wage Payment and Theories of Wage)

सामान्यत मजदूरी का भुगतान दो प्रकार से किया जाता है— 1 समय के अनुसार एव 2 कार्य के अनुसार। मजदूरी भुगतान की ये दोनो ही पद्धतिया अत्यत प्राचीन समय से चली आ रही हैं और आज भी काफी लोकप्रिय हैं। वतमान समय मे जितनी प्रेरणात्मक व प्रगतिशील पद्धतिया अपनाई गई हैं वे सब इन्ही दो पद्धतियो के सशोधित रूप है

मजदूरी देने की पद्धतिया

समयानुसार मजदूरी पद्धति — कार्यानुसार मजदूरी पद्धति
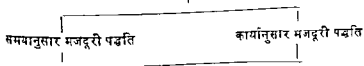
प्रगतिशील (प्रेरणात्मक) मजदूरी

1 टेलर पद्धति
2 मेरिक पद्धति
3 हैल्से पद्धति
4 रोवन पद्धति
5 गेंट प्रब्याजि योजना
6 इमर्सन दक्षता योजना

समय के अनुसार मजदूरी या दैनिक मजदूरी
(Time Wage or Daily Wages)

इस पद्धति के अनुसार श्रमिक को काम करने के समय के हिसाब मे पारिश्रमिक दिया जाता है। पारिश्रमिक की दर प्रति घटा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह अथवा

प्रति वर्ष निश्चित होती है। प्राचीनकाल मे अधिकतर श्रमिको को मजदूरी दिन के हिसाब से दी जाती थी अतः इसे दैनिक मजदूरी के नाम से भी सबोधित करते हैं। भारतवर्ष मे यह पद्धति लगभग सभी उद्योगो मे प्रचलित है।

सामान्यतः इस पद्धति का प्रयोग निम्न परिस्थितियो मे किया जाता है : (अ) जहां उत्पादन की मात्रा का सही-सही अनुमान न लगाया जा सके अथवा जहा निर्मित पदार्थ इकाइयो मे विभक्त न हो सके। (ब) जहा वस्तु की अच्छी किस्म एव कलात्मक उत्पादन की आवश्यकता होती है। (स) जहा विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। (द) जहां उत्पादन-कार्य विभिन्न विधियों मे होता है। (य) जहा विभिन्न कार्यों मे समय का अतर होता है।

समयानुसार मजदूरी पद्धति से लाभ

1. **सरलता** . यह पद्धति अत्यत सरल है जिससे श्रमिक अपनी मजदूरी का हिसाब आसानी से लगा लेता है तथा पूजीपति भी श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी मालूम कर लेता है।

2. **अच्छा उत्पादन :** इस पद्धति मे श्रमिको को अपना कार्य शीघ्र ही समाप्त करने की चिंता नही होती, अत श्रमिक अपनी योग्यता के अनुसार अच्छी वस्तुओ का उत्पादन करते हैं।

3 **मजदूरी में स्थिरता :** इस पद्धति मे मजदूरी की मात्रा मे स्थिरता बनी रहती है अर्थात् श्रमिक को नियमित वेतन पाने का विश्वास होता है। श्रमिक स्थिर आय का निश्चय हो जाने के कारण अपने व्यय को अपनी आय के साथ समायोजित कर सकता है एव निश्चित जीवन-स्तर कायम रख सकता है।

4 **उत्पत्ति के साधनों का उचित उपयोग** जब काम सावधानी एव निश्चितता से किया जाता है तो विभिन्न साधनो का निरर्थक क्षय नही होता है।

5 **अच्छा स्वास्थ्य :** इस प्रणाली के अतर्गत श्रमिक को निश्चित समय तक काम करना पडता है न कि निश्चित उत्पादन देना पडता है, जिससे उसके स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नही पडता और कुशलता मे भी कमी नही आती।

6 **प्रशासन अपव्यय मे कमी** इस प्रणाली के अतर्गत प्रशासन की विशेष आवश्यकता नही रहती, जिसमे थोडे से कर्मचारियो की सहायता से भी काम चल जाता है और श्रमिक भी प्राय स्वतत्रतापूर्वक कार्य करते हैं।

7. **दीर्घकालीन दृष्टि से हितकारी :** इस पद्धति के अतर्गत श्रमिको को जो मजदूरी दी जाती है वह इस प्रकार से दी जाती है कि भविष्य मे श्रमिक की सेवायें अधिक मूल्यवान हो सकें।

8. **अन्य लाभ** समयानुसार मजदूरी पद्धति मे अन्य बहुत से लाभ होते हैं जैसे—श्रमिकों मे पारस्परिक एकता का निर्माण होना, काम का सावधानीपूर्वक किया जाना व श्रम-संघों का समर्थन प्राप्त होना।

समयानुसार मजदूरी पद्धति के दोष

1. **कार्यकुशलता की उपेक्षा :** इस पद्धति मे कुशल व अकुशल सभी श्रमिको को एक ही दर से पारिश्रमिक मिलता है जिससे कुशल एव परिश्रमी श्रमिको को कोई भी प्रोत्साहन नही मिलता और वे सुस्त तथा कमजोर होने लगते है।

2. **योग्यता-माप का अभाव :** इस पद्धति मे उद्योगपति यह निश्चित नही कर पाता कि श्रमिको की उत्पादन-शक्ति क्या है, क्योकि इसमे श्रमिको की उत्पादन-शक्ति का कोई हिसाब नही रखा जाता।

3. **काम मे बचना .** इस पद्धति में श्रमिक काम मे बचना चाहते है। श्रमिको के मस्तिष्क मे निश्चित अवधि की भावना होने के कारण वे मन लगाकर तथा ईमानदारी से काम नही करते। वे उतना ही काम करते हैं जो नौकरी बनाये रखने के लिए आवश्यक है। इससे उत्पादन की मात्रा मे भी कमी आती है।

4. **निरीक्षण व्यय .** उद्योगपतियो को श्रमिको के समय का दुरुपयोग रोकने के लिए निरीक्षण व्यय अधिक करने पडते हैं। इससे उत्पादन की परोक्ष लागत मे वृद्धि हो जाती है।

5. **श्रम-पूंजी संघर्ष .** इस पद्धति मे श्रमिको के चरित्र और कार्य को बिना सोचे लोगो को वर्गो मे समूहबद्ध कर देने के परिणामस्वरूप श्रम एव पूजी मे झगडे पैदा हो जाते हैं।

6. **विरोधी कार्यों की ओर झुकाव** कार्य को दृष्टि मे न रखने के कारण ही इस प्रणाली में श्रमिक अपनी पूर्ण क्षमता से काम नही करता। परिणामत उसकी दबी हुई योग्यता उत्पादन के बजाय विरोधी कार्यो के रूप मे प्रकट होने लगती है। फ्रैंकलिन ने लिखा है, "दैनिक मजदूरी पद्धति मे बहुत से मनुष्य ऐसे कार्य करते रहते है जिनमे न दिलचस्पी है और न योग्यता, जबकि दूसरे विरोधी कामो मे वे बहुत आगे बढ जाते है।"

उपयुक्तता : समय के अनुसार मजदूरी देने की पद्धति निम्नलिखित परिस्थितियो मे अधिक श्रेयस्कर रहती है :

(अ) जहा निर्मित वस्तु की किस्म पर अधिक ध्यान रखना पडता हे, जैसे उच्चकोटि की सिलाई।

(ब) जहा व्यापार की दृष्टि से केवल यही पद्धति लागू की जा सकती है जैसे छुट-पुट श्रमिको को मजदूरी देने के लिए।

(स) जहा उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता है और कठोर निरीक्षण सभव है।

(द) उन निरतर अबाध उत्पादन वाले उद्योगो मे जहा उत्पादन की गति को किसी एक स्थान पर कम अथवा ज्यादा करने मे समस्त उत्पादन प्रवाह मे गतिरोध उत्पन्न हो जाता है, जैसे रासायनिक उद्योग।

(य) जहा श्रमिक अभी कार्य सीख रहा है।

समयानुसार मजदूरी पद्धति में सुधार के उपाय

समयानुसार मजदूरी पद्धति में सुधार करने के लिए सुझाव दिया जाता है कि सेवायोजकों को विभिन्न कार्यों को करने के लिए आवश्यक कार्यकुशलता एवं अनुभव के अनुसार सामान्य मजदूरी के आधार पर अपने श्रमिकों को श्रेणी बंधन पद्धति (Granding System) के अनुसार मजदूरी देनी चाहिए। श्री सी० एल० गुडरिच ने इस प्रणाली का वर्णन इस प्रकार किया है, "बर्मिघम में श्रमिकों की राष्ट्रीय यूनियन कार्यकारिणी प्रत्येक श्रमिक को उसकी योग्यता के अनुसार श्रेणीबद्ध (Grading) करती है और उस अनेक विभिन्न वर्गों में, जिसमें से प्रत्येक की न्यूनतम मजदूरी सामूहिक सौदेबाजी द्वारा तय होती रहती है। यदि कोई सेवायोजक किसी श्रमिक की योग्यता पर आपत्ति उठाए तो म्युनिसिपल पीतल कार्य विद्यालय के प्रबंधक उस कार्य की विभिन्न प्रक्रियाओं के विषय में उसकी प्रायोगिक परीक्षा लेते हैं।" इस प्रणाली को सर्वप्रथम बर्मिघम के पीतल के व्यापारियों ने सफलतापूर्वक लागू किया।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति

(Piece Wage System or Rate System)

इस पद्धति के अनुसार एक श्रमिक जितना काम करता है उसी के अनुसार मजदूरी पाता है—चाहे वह काम को जितने भी समय में पूरा करे इस प्रकार जो मनुष्य अधिक कार्य कर लेता है उसको अधिक मजदूरी और जो कम काम करता है उसे कम मजदूरी मिलती है। अतः मजदूरी का संबंध काम की मात्रा से होता है न कि समय से। काम की दर पहले से ही निश्चित कर दी जाती है ताकि सभी श्रमिकों को मजदूरी के संबंध में पूर्व ज्ञान रहे। उदाहरण के लिए यदि एक मेज बनाने के लिए 20 रुपये दिये जाते हैं तो उस श्रमिक को जो दो मेज बनाता है, 40 रुपये मिलेंगे चाहे वह दो मेज एक दिन में बनाये या दस दिन में। कार्यानुसार मजदूरी की गणना करने के लिए मजदूरों द्वारा निर्मित इकाइयों को उनकी मजदूरी की दर से गुणा कर दिया जाता है। अन्य शब्दों में मजदूरी=संख्या × दर, यहां संख्या से अभिप्राय बनाई गई इकाइयों की संख्या से है और दर का अभिप्राय प्रति इकाई मजदूरी की दर से है।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के लाभ

1 योग्यता के अनुसार मजदूरी इस पद्धति में मजदूरी श्रमिक की योग्यता के अनुसार दी जाती है। श्रमिक जितना अधिक काम करता है उतनी ही अधिक उसे मजदूरी मिलती है। इस प्रकार मजदूरी का वितरण न्यायपूर्ण होता है।

2 उत्पादन मात्रा में वृद्धि इस पद्धति के अंतर्गत श्रमिक अधिक आय की आशा में अधिक से अधिक उत्पादन करने की चेष्टा करता है। परिणामतः उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है।

3 उत्पादन लागत में कमी : सेवायोजकों की दृष्टि में यह प्रणाली लाभदायक

है, क्योंकि उत्पादन की मात्रा बढने के साथ-साथ उत्पादन लागत भी प्रति इकाई कम हो जाती है।

4 **नियंत्रण व्यय में कमी :** जब श्रमिक स्वयं ही अधिकाधिक कार्य करने का प्रयत्न करता है तो निरीक्षण की आवश्यकता नहीं रहती जिससे निरीक्षण व्यय की बचत होती है।

5 **श्रमिकों के लिए स्वतंत्र वातावरण** इसमें श्रमिक स्वतंत्रता के वातावरण में कार्य करते हैं जिसमें कार्य के प्रति रुचि व उत्साह का वातावरण बनता है। योग्यता के अनुसार मजदूरी मिलने से श्रमिक अधिकाधिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित होता है।

6 **समय का सदुपयोग** यहां श्रमिक जानता है कि वह जितना कार्य करेगा उसे उतना ही पारिश्रमिक मिलेगा। अतः वह अपने समय का बिल्कुल दुरुपयोग नहीं करता।

7 **यंत्रों की सुरक्षा** अधिक कार्य करने की चाह में श्रमिकों को इस बात का भी ध्यान रहता है कि यंत्रों को सावधानी से उपयोग किया जाय, क्योंकि मशीन के टूटने से कार्य रुक सकता है और उनकी मजदूरी में भी कमी आ सकती है।

8 **उत्पादन विधि में सुधार** न केवल उत्पादन और मजदूरी ही बढ़ती है बल्कि उत्पादन की विधि में भी सुधार हो जाता है क्योंकि श्रमिक दोष रहित कच्चा माल और बिल्कुल ठीक दशा में यंत्र, उपकरण आदि चाहता है।

9 **योग्यता का माप सुलभ** · इस पद्धति में श्रमिकों द्वारा किये गये काम की मात्रा से उसकी तुलनात्मक योग्यता का बड़ी सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है।

10 **उपभोक्ताओं को लाभ** उपभोक्ताओं को भी लाभ होता है क्योंकि उत्पादन व्यय में कमी होने के कारण उपभोक्ताओं को अच्छी वस्तु सस्ते दामों पर प्राप्त हो जाती है।

11 **श्रम पूंजी के संबंधों में सुधार** · इस पद्धति में श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक तथा सेवायोजकों को पर्याप्त उत्पादन प्राप्त हो जाने के कारण दोनों के बीच सद्भावना व प्रेम जागृत होता है।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के दोष

1 **स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव** श्रमिक अधिक मजदूरी कमाने के लालच में अपने स्वास्थ्य की परवाह न करके अधिक परिश्रम करता है। इससे उसका स्वास्थ्य शीघ्रता से गिरने लगता है।

2 **वस्तु के गुण में कमी** श्रमिकों को उत्पादन बढ़ाने की सनक रहती है क्योंकि इसी के ऊपर उनकी मजदूरी की मात्रा निर्भर करती है जिससे वह वस्तु के गुणों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते और वस्तु की किस्म दिनोंदिन गिरती चली जाती है।

3 **मशीनों का दुरुपयोग** अधिक कमाने के उद्देश्य से श्रमिक अपने कार्य को बहुत तेजी से करता है जिससे मशीनों व औजारों का प्रयोग लापरवाही से होता है और मशीन या औजार जल्दी से घिसते और टूटते हैं।

4 **पारिश्रमिक कटौती** इस पद्धति के अतर्गत सेवायोजक आसानी से बढ़े हुए काम के लाभ मे से श्रमिको का पारिश्रमिक कम कर लेते हैं जो सर्वथा अनुचित है।

5 **श्रमिकों के बीच असहयोग** कुशल तथा अकुशल श्रमिको को समान पारिश्रमिक न मिलने के कारण उनमे परस्पर वैमनस्य, ईर्ष्या व द्वेष बढ़ता है।

6 **आय की अनिश्चितता :** इस पद्धति के कारण श्रमिको की आय मे अनिश्चितता बनी रहती है जिसका प्राय उनके जीवन-स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

7 **श्रम-सगठन को हानि .** अधिक मजदूरी कमाने की लालसा मे श्रमिक सदैव काम मे जुटे रहते हैं। उन्हे आपस मे मिलने का अवसर नही मिलता। अत श्रम-सगठन ऐसी पद्धति का विरोध करता है क्योंकि उनकी एकता इससे भग होती है।

8 **अधिक निरीक्षण की आवश्यकता :** इसमे निरीक्षको को काम का अधिक सावधानी से निरीक्षण करना पड़ता है क्योकि इस पद्धति मे मात्रा की अपेक्षा श्रेष्ठता की उपेक्षा हो जाती है।

9 **असहनीय हस्तक्षेप** इस पद्धति के अतर्गत श्रमिक प्रबधक अथवा निरीक्षक के हस्तक्षेप को पसद नही करते।

10 **मालिक एव श्रमिकों के बीच सघर्ष** - श्रमिको को अधिक कार्य करके अधिक मात्रा मे मजदूरी पाते देखकर सेवायोजक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से श्रमिक की मजदूरी मे कमी करने का प्रयत्न करने लगता हैं जिसमे सेवायोजक व श्रमिक के बीच सघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

11 **कौशलपूर्ण कार्यों के लिए अनुपयोगी** - यह प्रणाली उत्तरदायित्वपूर्ण तथा कौशलपूर्ण कार्यों के लिए उपयुक्त नही है।

12 **उत्पादनशीलता मे कमी :** श्रमिक कम समय मे अधिक मजदूरी पा लेते हैं जिससे अवकाश के लिए छुट्टिया आदि अधिक लेते हैं जिससे कारखाने की उत्पादनशीलता मे कमी आ जाती है।

13 **मनोवैज्ञानिक भेद** मजदूरियो मे श्रेणिया बना देने मे उनमे मनोवैज्ञानिक अंतर आ जाता है और वे स्वार्थों के कारण अपने सहयोगियो की मागो की उपेक्षा करते हैं।

उपयुक्तता कार्यानुसार या प्रति इकाई मजदूरी देने की यह पद्धति निम्नलिखित परिस्थितियो मे अधिक उपयुक्त होती है।

(अ) जहा प्रति इकाई उत्पादन को सरलता से आका जा सकता हो और मूल्याकित किया जा सके।

(ब) जहा कार्य प्रमापित हो और बार-बार उसी प्रकार किया जाता हो।

(स) जहा उत्पादन बढाने की आवश्यकता हो।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति मे सुधार के उपाय

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति म सुधार के लिए कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं

1 कार्य की प्रकृति इस प्रकार की होनी चाहिए जिसको प्रमापीकृत किस्म को

मापनीय इकाइयो मे विभाजित किया जा सके।

2. इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि अधिक उत्पादन करने के लालच में श्रमिक मशीन आदि का अपव्यय न कर सकें।

3 कार्यानुसार भुगतान की दर कार्य की मात्रा के आधार पर निश्चित की जानी चाहिए।

4 कार्य का सगठन इस प्रकार से होना चाहिए कि श्रमिक को प्रत्येक स्तर पर काम बराबर मिलता रहे और कार्य-वितरण प्रणाली मे किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होना चाहिए।

5 निरीक्षण का उचित प्रबंध होना चाहिए ताकि वस्तु की किस्म के बिगड़ने पर अकुश रखा जाए।

6 इस प्रणाली को अपनाते समय श्रमिकों व सेवायोजकों दोनों के हितों का ध्यान रखना चाहिए।

प्रगतिशील (प्रेरणात्मक) मजदूरी या प्रीमियम बोनस प्रणाली
(Progressive Wage System or Premium Bonus System)

प्रगतिशील मजदूरी पद्धतिया समय व कार्यानुसार मजदूरी पद्धतियों के सम्मिश्रण से बनी हैं। इसमे न्यूनतम पारिश्रमिक के साथ साथ कुछ अधिलाभाश या प्रीमियम भी दिया जाता है। इससे श्रमिको को और अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। प्रेरणात्मक पद्धतियो के बहुत से रूप हैं जिनमे प्रमुख निम्नलिखित हैं

1 टेलर भिन्नक कार्यानुसार मजदूरी पद्धति
(Taylor Differential Piece Rate System)

उन्नीसवीं शताब्दी के अत मे श्री एफ० डब्ल्यू० टेलर ने इस पद्धति का सूत्रपात किया। वैज्ञानिक प्रबंध के जन्मदाता श्री टेलर को साधारण कार्यानुसार पद्धति से सतोष नहीं था क्योकि उनके मतानुसार यह पद्धति श्रमिकों को पर्याप्त प्रेरणा देने मे असफल रहती है। अत उन्होंने भिन्नक कार्यानुसार मजदूरी पद्धति का प्रतिपादन किया। इसी के अनुसार श्रमिकों को प्रमापित कार्य करने पर ऊची दर से और प्रमापित कार्य के निश्चित समय मे पूरा न करने पर नीची दर से मजदूरी दी जाती है। इस पद्धति का प्रयोग सर्वप्रथम श्री टेलर ने 1884 मे मिडवेल स्टील कपनी, फिलाडेल्फिया में किया था। इस विधि से काफी मितव्ययिता होती है। इस पद्धति की मुख्य विशेषताए निम्न प्रकार हैं

(अ) इसमें मजदूरी की ऊची व नीची दरें होती हैं जो कार्यानुसार निश्चित होती हैं।

(ब) इन दोनों दरो मे काफी अतर होता है।

(स) निश्चित प्रमाप से अधिक कार्य करने पर ऊची दर पर तथा निश्चित कार्य स कम काम करने पर नीची दर से मजदूरी दी जाती है।

(द) कुशल श्रमिको को ऊची दर से पारिश्रमिक देकर प्रेरणा तथा अकुशल श्रमिको को नीची दर से मजदूरी देकर दडित किया जाता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण : यदि प्रमाप उत्पादन 8 इकाई प्रतिदिन तय किया गया है तो इतनी या इससे अधिक उत्पादन के लिए प्रति इकाई दर एक रुपया हो सकती है परतु प्रमाप से कम उत्पादन के लिए यह दर 75 पैसे प्रति इकाई हो सकती है। ऐसी स्थिति मे 8 इकाई उत्पादन करने वाले श्रमिक को 8 रु० मिलेंगे, 9 इकाई उत्पादन करने वाले को 9 रु० इत्यादि, परतु 7 इकाइया उत्पन्न करने वाले श्रमिक को 75 पैसे प्रति इकाई की दर से 5 रु० 25 पैसे ही मिलेंगे।

इस पद्धति मे प्रमाप कार्य से एक इकाई भी कम उत्पादन होने पर एक श्रमिक के पारिश्रमिक मे बडा अतर आ जाता है। इस योजना की सफलता प्रमाप को उचित ढग से निश्चित करने पर निर्भर करती है। यदि प्रमाप असामान्य होता है तो श्रमिको मे विरोधी भावना की जागृति हो जाती है। वर्तमान युग मे टेलर की पद्धति केवल अध्ययन का विषय रह गई है, व्यवहार मे इसका प्रयोग नही होता क्योकि आधुनिक प्रवृत्ति आय मे समानता की ओर है न असमानता की ओर।

2 मेरिक मजदूरी पद्धति
(Maric Wage System)

टेलर पद्धति मे यह कमी है कि जिस बिंदु पर प्रमाप-कार्य निर्धारित होना है उस पर दर का परिवर्तन अत्यत आकस्मिक रूप मे होता है। इसका फल यह होता है कि जो श्रमिक प्रमाप सीमा से थोडा भी पीछे रह जाता है उसे उस श्रमिक की अपेक्षा बहुत कम मजदूरी मिलती है जो उस सीमा पर पहुच जाता है। इस दोष को दूर करने के लिए श्री मैरिक ने अपनी योजना मे तीन दरें रखी—पहली प्रमाप कार्य के 83% तक दूसरी प्रमाप बिंदु पर और तीसरी प्रमाप कार्य के ऊपर। अत यह योजना श्रमिको को तीन सामान्य वर्गों मे बाट देती है—(अ) नये श्रमिक, (ब) औसत श्रमिक और (स) उच्चकोटि के श्रमिक और इस प्रकार उनके पारिश्रमिक की दर उनकी कार्यक्षमता के आधार पर निश्चित की जाती है।

3 हैल्से मजदूरी पद्धति
(Hailsey Premium Plan)

इस पद्धति का सुझाव श्री एफ० ए० हैल्से ने दिया था। इसे सर्वप्रथम अमेरिका मे अपनाया गया। इस योजना के अतर्गत उत्पादन का प्रमाप एव समाप्त करने का अधिकतम समय पहले से ही निर्धारित कर दिया जाता है। इस योजना के अनुसार प्रत्येक श्रमिक को एक निश्चित मजदूरी अवश्य दी जाती है चाहे वह श्रमिक निश्चित समय मे प्रमाप कार्य को करे या न करे। परतु जो श्रमिक उस प्रमाप कार्य को निश्चित समय से पहले पूरा कर लेता है उसे समयानुसार मजदूरी तो मिलेगी ही और साथ मे बचाये हुए समय का कुछ प्रतिशत प्रब्याजि के रूप मे जो मजदूरी का 33 1/2% से

50% तक हो सकता है, दिया जाता है। सक्षेप मे, इस पद्धति की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार हैं—(अ) प्रमापित कार्य व प्रमापित समय पहले से ही निश्चित कर दिया जाता है। (ब) प्रत्येक श्रमिक के लिए एक न्यूनतम मजदूरी निश्चित रहती है। (स) प्रमापित समय से पूर्व कार्य समाप्त करने पर श्रमिक को बचाये हुए समय का कुछ प्रतिशत प्रव्याजि के रूप मे दिया जाता है। (द) प्रत्येक कार्य पर प्रव्याजि अलग-अलग निकाली जाती है।

उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी काय को पूरा करने के लिए 10 घटे निश्चित किये गये हैं और मजदूरी एक रुपया प्रति घटे की दर से निश्चित की गई है। मान लीजिए, एक श्रमिक उस कार्य को 8 घटे मे पूरा कर लेता है। ऐसी स्थिति म उसका पारितोषण हैल्से पद्धति के अनुसार इस प्रकार निकाला जाएगा—

निश्चित मजदूरी (8 × 1 रु०) = 8 रुपया

बचाये हुए समय की मजदूरी (बचाया हुआ समय × निश्चित दर)

= 2 × 1 रु० = 2 रु०

प्रव्याजि (मान लो 50%) = 2 रु० का 1/2 = 1 रु०

कुल मजदूरी = 8 + 1 = 9 रु०

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त पद्धति सेवायोजक व श्रमिक दोनो के लिए ही लाभदायक है क्योकि अगर श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी समय के अनुसार दी जाती तो सेवायोजक को 10 घट की मजदूरी 10 रु० देनी पडती जब कि अब केवल 9 रु० ही देनी पडी है। इस प्रकार से सेवायोजक को 1 रुपया का लाभ हुआ। इसके विपरीत श्रमिक को 8 घंटे की 8 रु० मजदूरी मिलनी चाहिए थी परतु उसे एक रुपया अधिक मजदूरी के रूप में प्राप्त हो रहा है। स्पष्टत यह प्रणाली सेवायोजक व श्रमिक दोनो को ही लाभप्रद सिद्ध होती है।

हैल्से प्रणाली के गुण 1 इस प्रणाली की व्यावहारिकता अत्यधिक सरल है।

2 प्रमाप काय स अधिक काय करन पर अधिक पारिश्रमिक मिलता है जिसस श्रमिको को काम करने की अधिक प्ररणा मिलती है।

3 बचाये हुए समय का अधिलाभाश या प्रव्याजि निश्चित पारिश्रमिक क बराबर नही मिलता इससे मालिका को भी लाभ हाता है।

4 मनोवैज्ञानिक दृष्टि स भी यह महत्वपूण है क्याकि श्रमिको को जा कुछ लाभ होता है उसमे वह सतुष्ट हो जाता है।

हैल्से प्रणाली क दोष 1 एक कुशल श्रमिक को शीघ्र काम का समाप्त करने पर बचे हुए समय की जो मजदूरी मिलती है वह बहुत ही कम होती है। इस प्रकार कुशल श्रमिक को परिश्रम तो कठोर करना पडता है परतु पारिश्रमिक बहुत कम प्राप्त होता है।

2 निश्चित न्यूनतम पारिश्रमिक श्रमिक को अधिक काम करने क लिए कोई प्रोत्साहन नही देता है।

3 अधिक उत्पादन से हुए लाभ का एक महत्वपूण भाग सेवायोजक ले लेत

हैं। इसलिए बचाये हुए समय के पारिश्रमिक के बारे में श्रमिकों द्वारा आपत्ति उठाई जाती है।

4 इसमें कार्य की दर उस प्रमाप के आधार पर निश्चित की जाती है जो स्वयं अवैज्ञानिक रीति से निर्धारित किया गया है।

5 प्रशासन की दृष्टि से भी यह प्रणाली दोषपूर्ण है क्योंकि इस योजना मे एक निश्चित प्रमाप तक पहुच जाने के पश्चात् अधिक उत्पादन करने या न करने का निश्चय करना केवल श्रमिक पर छोड दिया जाता है।

श्री इमर्सन ने इस प्रणाली के सबध मे लिखा है "यदि सेवायोजक की ओर से कोई सुधार नहीं किया गया है और केवल श्रमिक के अधिक परिश्रम एव विवेक के कारण उत्पादन मे वृद्धि हुई हो, तो कोई कारण नही है कि श्रमिक को सपूर्ण उत्पादन-वृद्धि न मिले।"

4 रोवन मजदूरी पद्धति
(Rowan Wage System)

इस प्रणाली को ग्लास्गो निवासी जेम्स रोवन ने सुझाया। हैल्से योजना मे एक दोष यह है कि अति कुशल श्रमिक सामान्य पारिश्रमिक का कई गुना बोनस कमा सकता है इसलिए उत्पादक हैल्से योजना का विरोध करते हैं।

रोवन पद्धति के अनुसार श्रमिक को उस समय के लिए जिसमे उसने काम किया है, साधारण दरो पर मजदूरी मिलती है। इसके पश्चात् यदि वह निश्चित समय के अदर अपना कार्य पूरा कर लेता है तो उसे बचाये हुए समय के आधार पर अधिलाभाश दिया जाता है। अधिलाभाश निकालने की रीति इस पद्धति मे यह है—

$$\frac{\text{बचाया हुआ समय}}{\text{निर्धारित समय}} \times \text{लिया हुआ समय} \times \text{निश्चित दर}$$

उदाहरण : मान लीजिए, किसी कार्य को समाप्त करने के लिए 10 घटे निश्चित किये जाते हैं परतु एक श्रमिक उसे 8 घटे मे ही समाप्त कर देता है। इस प्रकार वह श्रमिक 2 घटे बचा लेता है। इसके अतिरिक्त यह भी मान लीजिए कि श्रमिक की निर्धारित मजदूरी की दर एक रुपया प्रति घटा है तो श्रमिक को प्राप्त होने वाली मजदूरी इस प्रकार होगी—

$$\text{अधिलाभाश} = \frac{2}{10} \times 8 \times 1 = 1\ 60 \text{ पैसे}$$

श्रमिक ने जो 8 घटे तक काम किया उसकी मजदूरी उसे मिलेगी $= 8 \times 1$ $= 8$ रु० और शीघ्र कार्य समाप्त करने के कारण 1 रु० 60 पैसे अधिलाभाश प्राप्त होगा। इस प्रकार श्रमिक को 9 रु० 60 पैसे प्राप्त होगे।

गुण : इस पद्धति के कई लाभ है—जैसे (अ) इसमे श्रमिक को जल्दबाजी करने का प्रलोभन नही रहता क्योकि अपने काम को जितनी अधिक शीघ्रता से समाप्त करते हैं उन्हे उसी अनुपात मे उतना अधिक बोनस नही मिलता है। (ब) इसमे श्रमिक

न ही अपने आपको बहुत थकाते हैं और न ही मशीनों आदि का अनुचित उपयोग करते हैं। (स) इसमें निर्मित वस्तु की किस्म का भी अधिक ध्यान रखा जाता है।

दोष : (अ) इस पद्धति का मुख्य दोष यह है कि इसमें श्रमिक जितना अधिक समय बचाता है उसका प्रति घंटा बोनस भी उतना ही कम हो जाता है। यहां तक कि यदि श्रमिक आधे से अधिक समय बचाने लगे तो उसका कुल बोनस पहले की अपेक्षा कम हो जाता है। (ब) इस पद्धति में बोनस की गणना अधिक कठिन है और उसे समझना अधिक जटिल है।

पारिश्रमिक की इस पद्धति में श्रमिकों को अधिक प्रेरणा नहीं मिलती क्योंकि जैसे-जैसे समय की बचत बढ़ती जाती है, श्रमिक को बढ़ते हुए पारिश्रमिक का केवल एक निश्चित भाग मिलता है। सर विलियम ऐशले के मतानुसार, 'लिए हुए समय के उस अनुपात में, जो बचाये हुए समय का हो, न्यूनता की कोई तर्क-संगत व्याख्या नहीं होती।"

हैल्से और रोवन मजदूरी पद्धतियों की तुलना

1 आरंभ में हैल्से मजदूरी भुगतान पद्धति में अधिलाभांश की दर कम रहती है परन्तु रोवन मजदूरी भुगतान पद्धति में यह दर अधिक रहती है।

2. जब हैल्से मजदूरी भुगतान पद्धति में श्रमिक आधे से अधिक समय बचाने लगते हैं तो अधिलाभांश की दर एकदम बढ़ जाती है। किंतु रोवन मजदूरी भुगतान पद्धति में यह दर एक समान रहती है।

3 यदि श्रमिक के समय की बचत कुल समय के 1/2 के बराबर होगी तो दोनों पद्धतियों में बराबर-बराबर लाभांश मिलेगा परन्तु समय की बचत कुल समय के 1/3 से अधिक होने पर हैल्से पद्धति में अधिक अधिलाभांश मिलेगा।

5 गेंट प्रव्याजि योजना
(Gantt Premium Plan)

इस योजना में हैल्से पद्धति के समान प्रत्येक श्रमिक को दैनिक पारिश्रमिक अवश्य मिलता है, चाहे उसने प्रमापित कार्य किया हो या नहीं। साथ ही टेलर योजना के समान यह प्रमाप तक पहुंचने में समर्थ और असमर्थ मजदूरों में निश्चित भेद करती है। यह योजना टेलर योजना से इस बात में भिन्न है कि यह श्रमिक को दैनिक पारिश्रमिक का विश्वास दिलाती है। श्री गेंट के शब्दों में, 'यदि कोई व्यक्ति आदेशों के अनुसार चले और अपने लिए दिन-भर के लिए एक निश्चित कार्य-भार को, जो प्रथम कोटि की कार्य-पूर्ति को सूचित करता है, पूरा कर लेता है तो उसे दैनिक दर के अतिरिक्त, जो प्रत्येक स्थिति में मिलती है, एक निश्चित बोनस भी दिया जाता है। किंतु यदि दिन के अंत में काम पूरा न कर सके तो उसे बोनस नहीं मिलता, बस केवल दिन भर की मजदूरी मिलती है। यह बोनस 20% से 25% तक होता है। संक्षेप में इस योजना में यदि श्रमिक निश्चित समय में प्रमाप कार्य के बराबर कार्य करता है तो दैनिक पारिश्रमिक

के अलावा उस बोनस भी मिलता है और यदि कोई श्रमिक कम काम करता है तो उसे केवल दैनिक मजदूरी ही दी जाती है।

उदाहरण मान लीजिए, किसी कारखाने मे मजदूरी दर 1 रु० प्रति घटा है और बोनस प्रमाप समय का 25% है। यदि कोई मजदूर 10 घटे के काम को 8 घटे मे पूरा कर लेता है तो उसे 8 घटे की दैनिक दर और 8 घटे का 25% (अर्थात् 2 रु०) के हिसाब से कुल मजदूरी 10 00 (8+2=10) मिलेगी।

गुण (अ) यह प्रणाली सरल है क्योकि इसका समझना व गणना करना आसान है।

(ब) श्रमिक इस पद्धति से अधिक सतुष्ट रहते हैं क्योकि अच्छे काम के लिए उन्हे पर्याप्त बोनस मिल जाता है।

(स) इसमे श्रमिको को सुरक्षा भी उपलब्ध हो जाती है क्योकि कम-स-कम समयानुसार मजदूरी अवश्य मिलती है और यह प्रेरणादायक भी हैं, क्योकि अधिक काम करने पर प्रति इकाई की दर से मजदूरी मिलती है।

(द) उन सस्थाओ मे, जिनकी स्थायी लागत और मशीनो की लागत बहुत अधिक होती है, यह योजना अधिक उत्पादन प्राप्त करने मे अत्यत लाभदायक सिद्ध होती है।

(य) इस पद्धति मे कार्य और काम की दशाओ का नियोजन एव नियत्रण अधिक व्यवस्थित हो जाता है अत पर्यवेक्षको को भी प्रेरणात्मक बोनस देकर अधिक कुशलता-पूवक काम करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

(र) गेट द्वारा सुझायी गई इस योजना मे श्रमिको के प्रशिक्षण पर बहुत जोर दिया जाता है जिससे उनका विकास होता है।

दोष इस पद्धति मे कुछ दोष भी है जैसे—

(अ) श्रम सघो का कहना है कि यह योजना भी मजदूरो म फूट डालती है क्योकि यह श्रमिको को दो वर्गों मे विभक्त कर देती है। एक तो व श्रमिक जो बोनस अर्जित करते हैं और दूसरे वे जो इससे वचित रह जाते हैं।

(ब) कभी कभी श्रम सघो के दबाव के कारण प्रबधका को समयानुसार मजदूरी की दरें भी ऊची रखनी पडती हैं। ऐसी स्थिति म यह योजना बहुत खर्चीली हो जाती है।

(स) इस योजना मे प्रमाप बिंदु पर मजदूरी एकदम बढ जाती है।

6 इमर्सन दक्षता योजना
(Emerson Efficiency Plan)

टेलर के समकालीन श्री हेरिंग्टन इमसन ने एक मजदूरी भुगतान योजना निकाली जो इमर्सन दक्षता-योजना के नाम म प्रसिद्ध है। इमसन ने अपनी योजना मे उन दोषो को दूर करने की चेष्टा की है जो टेलर व गेंट पद्धतियो म विद्यमान थे। इस योजना मे गेंट योजना की भाति यद्यपि प्रत्येक श्रमिक को दैनिक मजदूरी मिलने की

गारंटी रहती है परंतु बोनस कार्यक्षमता के अनुसार दिया जाता है। जो श्रमिक प्रमाप कार्य का 66.66% काम पूरा करते हैं उनको केवल दैनिक मजदूरी ही मिलती है। बोनस उन श्रमिकों को दिया जाता है जिनकी कार्यक्षमता 66.66% से अधिक होती है। यह बोनस उस समय तक बढ़ता जाएगा जब तक कि वह 100% न हो जाए।

इस पद्धति को अधिक स्पष्ट करने के लिए माना कि एक कार्य 120 घंटे पर प्रमाणित किया गया है। यदि श्रमिक इस कार्य को 120 घंटे में सम्पादित करता है तो उसकी कुशलता 100% मानी जाएगी। यदि वह 240 घंटे लेता है तो उसकी कुशलता 50% होगी। यदि वह उन कार्यों को करने के लिए केवल 100 घंटे ही लेता है तो उसकी कार्यकुशलता 120% होगी। अब इस योजना के अंतर्गत यदि किसी श्रमिक की कार्य कुशलता 66.66% है तो उसे केवल न्यूनतम दैनिक मजदूरी ही मिलेगी, बोनस नहीं मिलेगा। जैसे-जैसे कुशलता में वृद्धि होती जाती है, श्रमिक को दिये जाने वाले बोनस में भी वृद्धि होती जाती है। 100% क्षमता प्राप्त कर लेने पर श्रमिक को 20% बोनस मिलता है। 100% से ऊपर क्षमता पर श्रमिक को प्रयुक्त समय की तथा बचाए हुए समय की मजदूरियां मिलती है। उदाहरणार्थ—120% क्षमता प्राप्त कर लेने पर श्रमिक को बोनस 40%, तथा 140% क्षमता प्राप्त कर लेने पर दैनिक मजदूरी का 60% बोनस मिलेगा।

बोनस सारिणी की सहायता से विभिन्न कार्यक्षमता के प्रतिशतों के लिए बोनस का प्रतिशत निश्चित किया जाता है। यह प्रतिशत श्रमिकों को पहले से ही बता दिये जाते हैं ताकि वे अधिकतम कार्य करें।

लाभ : (अ) यह समझने में सरल है।

(ब) इसमें श्रमिकों की कुशलता को मापने की व्यवस्था काफी तर्कपूर्ण है।

(स) इसमें नये-नये श्रमिकों को भी थोड़ा बोनस मिल सकता है।

(द) यह योजना एक ही कर्मचारी की मजदूरी निकालने तथा मजदूरों की एक टोली की मजदूरी निकालने जैसे दोनों कार्यों के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।

दोष : इस प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि निर्धारित कुशलता को प्राप्त कर लेने के पश्चात् बोनस की मात्रा बहुत धीरे धीरे बढ़ती है, फलतः श्रमिक इस मान को प्राप्त करने के पश्चात् अधिक परिश्रम नहीं करते।

मजदूरी के सिद्धांत
(Theories of Wage)

भारत में मजदूरी की समस्याओं का अध्ययन करने से पूर्व मजदूरी के सिद्धांतों का उल्लेख करना हमारे लिए हितकर होगा। अर्थशास्त्रियों ने समय-समय पर मजदूरी निर्धारण के विभिन्न सिद्धांतों का वर्णन किया है जिनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्न लिखित हैं

1 जीवन-निर्वाह अथवा मजदूरी का लौह सिद्धात

इस सिद्धात का प्रतिपादन अठारहवी शताब्दी मे प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियो ने किया था। जर्मनी के अर्थशास्त्रियों तथा उनके समर्थको ने इस सिद्धात को **मजदूरी का लौह सिद्धात (Iron Law of Wage)** कहा है।

इस सिद्धात के अनुसार मजदूरो की मजदूरी उनके जीवन-निर्वाह स्तर मे सीमित होती है। यह स्पष्ट नही है कि 'जीवन-निर्वाह स्तर' का वास्तविक अर्थ क्या है। इसका अर्थ वह मजदूरी हो सकती है जिससे वह अपने परिवार को जीवित रख सकता है। इस सिद्धात के अनुसार दीर्घकाल मे श्रमिको की मजदूरी न तो जीवन-निर्वाह स्तर से नीचे और न ही उसके उपर हो सकती है। क्योकि जीवन निर्वाह स्तर से कम मजदूरी होने पर श्रमिक अपना और अपने परिवार का पालन नही कर सकेगा जिससे श्रमिको की मृत्यु-दर अधिक होगी और श्रमिको की पूर्ति कम हो जायेगी और अनत उसकी मजदूरी घटने लगेगी। यह क्रम उस समय तक चलेगा जब तक कि मजदूरी बढते-बढते पुन जीवन-निर्वाह स्तर के बराबर नही आ जाती। इसके विपरीत यदि मजदूरी जीवन-निर्वाह स्तर से अधिक हो तो वे आर्थिक समानता का अनुभव करेंगे, परिवार मे वृद्धि होगी व श्रम की पूर्ति बढेगी और अतत मजदूरी घटने लगेगी। यह क्रम उस समय तक चलता रहेगा जब तक कि मजदूरी गिरकर जीवन निर्वाह स्तर के बराबर नही हो जाती।

यह सिद्धात दो मान्यताओ पर आधारित है

(i) कृषि के क्षेत्र मे सदा क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम क्रियाशील होता है, जिससे खाद्य-सामग्री के उत्पादन मे वृद्धि नही हो सकती।

(ii) जनसख्या की प्रकृति सदा बढने की रहती है।

आलोचनाए : इस सिद्धात की प्रमुख आलोचनाए निम्नलिखित है

(i) इस सिद्धात से यह स्पष्ट नही होता कि जीवन-निर्वाह क्या है।

(ii) यह गलत है कि जब श्रमिक की मजदूरी बढती है तो उसके साथ ही साथ श्रमिको की पूर्ति मे भी वृद्धि हो जाती है, क्योकि अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जीवन-स्तर मे वृद्धि हो जाने पर जन्म-दर कम हो जाती है।

(iii) इस सिद्धात के अनुसार एक विशेष स्थान पर श्रमिको के जीवन-निर्वाह स्तर समान होने के कारण सभी श्रमिको की मजदूरी समान होनी चाहिए। परतु व्यावहारिक जीवन मे एक ही व्यवसाय मे विभिन्न प्रकार के श्रमिको की मजदूरी भिन्न होती है।

(iv) यह सिद्धात एकपक्षीय है क्योकि सिद्धात केवल श्रम की पूर्ति पर जोर देता है और उसको माग की ओर कुछ ध्यान नही देता। वास्तव मे यदि श्रम की माग अधिक है तो मजदूरी भी जीवन-स्तर से अधिक हो जायेगी।

(v) इस सिद्धांत मे नैतिकता का समावेश नहीं होता, क्योकि (अ) प्रत्येक श्रमिक को चाहे वह कुशल हो अथवा अकुशल, जीवन-निर्वाह स्तर के आधार पर समान

मजदूरी दी जाती है और (ब) मनुष्य होने के नाते श्रमिक को केवल उतनी ही मजदूरी देना जिससे वह केवल जीवित रह सके, किसी भी आधार पर न्यायोचित नहीं कहा जा सकता।

2 जीवन-स्तर मजदूरी सिद्धात

यह सिद्धात जीवन-निर्वाह का एक सशोधित तथा सुधरा हुआ ही रूप है। इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी श्रमिको को निपुणता और कार्यकुशलता से सबधित है इसलिए इस तरह की मजदूरी हमेशा जीवन निर्वाह से अधिक होगी। इसके अतर्गत मजदूरी का निर्धारण केवल अनिवार्य आवश्यकताओ के आधार पर नही होता वरन् इसके अतर्गत मजदूरो के लिए शिक्षा, मनोरजन आदि भी सम्मिलित है जिसके उपभोग का श्रमिक आदी हो गया है। इस प्रकार जीवन-स्तर सिद्धात के अनुसार मजदूरी उस धनराशि के तुल्य होनी चाहिए जो किसी श्रमिक के उस जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए पर्याप्त हो जिसका वह वर्ग आदी हो गया हो। यदि मजदूरी की दर इस राशि से कम है तो श्रमिको की पूर्ति कम होगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी की दर उससे अधिक है तो पूर्ति बढेगी। अतः मजदूरी दर मे जीवन-स्तर के अनुरूप रहने की प्रवृत्ति होगी।

आलोचनाए :(i) यह सिद्धात अपूर्ण है क्योकि इससे केवल पूर्ति पक्ष का विश्लेषण किया गया है और मजदूरी पर पडने वाले माग के प्रभाव को भुला दिया गया है।

(ii) इस सिद्धात का आधार ही गलत है। जीवन-स्तर एक परिवर्तनशील तत्त्व है, इसलिए इसको मजदूरी निर्धारण का सिद्धात नही बनाया जा सकता।

(iii) यह निश्चित करना कठिन है कि मजदूरी जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होगी या स्वय मजदूरी जीवन स्तर को निर्धारित करती है। साधारणत मजदूरी मे वृद्धि हुए बिना श्रमिको के रहन-सहन मे वृद्धि होना सभव नही है।

3 मजदूरी कोष सिद्धात

इस सिद्धात को जन्म देने का श्रेय एडम स्मिथ को है। उनके पश्चात रिकार्डो और माल्थस ने समर्थन किया परतु इसकी पूर्णरूपेण व्याख्या जे० एस० मिल ने की है। इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी दो बातो पर निर्भर रहती है—

(अ) **मजदूर कोष** मिल के अनुसार श्रमिक की सेवाए प्राप्त करने के लिए पहले से ही एक निश्चित कोष निश्चय कर दिया जाता है। प्रत्येक व्यवसायी उत्पत्ति के विभिन्न साधनो को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक साधन के लिए व्यवस्था करता है। इस कोष से अधिक मजदूरी श्रमिको को उपलब्ध नही हो सकती। अत यह कोष जितना ही अधिक होगा श्रमिको की मजदूरी भी उतनी अधिक होगी।

(ब) **मजदूरों की सख्या** मजदूरी कोष तो निश्चित रहता है और श्रमिको को इसी कोष से मजदूरी दी जाती है। इसलिए श्रमिको की सख्या जितनी ही कम होगी उतनी ही मजदूरी अधिक होगी। इसके विपरीत यदि श्रमिको की सख्या अधिक है तो

प्रत्येक को इस कोष से कम मजदूरी प्राप्त हो सकेगी।

मिल के शब्दों मे, "मजदूरी की माग एव पूर्ति अथवा जैसे कि कहा जाता है पूजी व जनसख्या के बीच अनुपात पर निर्भर होती है।" मजदूरी कोष को श्रमिको की सख्या से भाग देने पर मजदूरी की दर निश्चित हो जाती है।

$$\text{मजदूरी की दर} = \frac{\text{मजदूरी कोष}}{\text{श्रमिको का पूर्ति}}$$

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण मान लीजिए, किसी अवधि विशेष म कुल उत्पत्ति मूल्य 20,000 करोड रुपये है और उनका विभाजन अग्रलिखित के अनुसार किया जाता है।

सारणी—1

लगान	6,000 करोड रुपये
मजदूरी निधि	10,000 करोड रुपये
ब्याज और व्यय	4 000 करोड रुपये
	20 000 करोड रुपये

उपरोक्त उदाहरण स स्पष्ट है कि उत्पादन ने श्रमिको के लिए मजदूरी कोष क रूप मे 10 000 करोड रु० अलग रखा है। यदि काम पर लगे हुए श्रमिको की सख्या 100 करोड है तो प्रत्येक मजदूरी को 100 रु० मजदूरी मिलेगी क्योकि—

$$\frac{1\,(000 \text{ करोड रु०}}{100 \text{ करोड रु०}} = 100 \text{ करोड रु०}।$$

यदि मजदूरो की सख्या बढकर 125 करोड हो जाती है तो प्रत्येक श्रमिक को 80 रु० मजदूरी मिलेगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी की सख्या घट कर 50 करोड हो जाती है तो प्रत्येक को 200 रु० मजदूरी मिलेगी। इस प्रकार मजदूरी की दर मजदूरी कोष और मजदूरों की सख्या पर निर्भर रहती है।

आलोचनाए (1) मजदूरी कोष का विचार गलत है क्योकि आय का ऐसा कोई भाग पहले से ही निश्चित नही होता जो श्रमिको को देन के लिए हो।

(ii) मजदूरी कोष एक निश्चित रकम नही हो सकती क्योकि वह श्रमिको की अधिक या कम मांग के अनुसार घट बढ सकती है।

(iii) इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी कोष निश्चत होने के कारण यदि किसी व्यवसाय मे श्रमिक की मजदूरी बढ जाती है तो अन्य उद्योगो में श्रमिको की मजदूरी म भी कमी हो जायगी। परतु यह विचार वास्तविक नही है क्योकि जब किसी एक व्यवसाय मे श्रमिको की मजदूरी बढती है तो साथ साथ अन्य व्यवसाय मे भी मजदूरी बढने लगती है।

(iv) यह सिद्धात यह बताने म असमर्थ है कि विभिन्न प्रकार के उद्योगों मे

वस्था विभिन्न स्थानों पर मजदूरी की दरें भिन्न-भिन्न क्यों होती हैं।

(v) यह सिद्धांत वास्तविक अनुभव के विरुद्ध है क्योंकि सामान्यतः नये उद्योगों में जिनमें पूंजी की कमी होती है, व मजदूरी ऊंची रहती है परन्तु पुराने उद्योगों मे, जहां पूंजी अधिक प्रचुर होती है, मजदूरी नीची रहती है।

(vi) यह सिद्धांत यह नहीं बताता कि मजदूरी कोष का निर्धारण कैसे होता है।

(vii) अनुभव बताता है कि अधिकांश दशाओं में ऊंची मजदूरी का कारण अधिक मजदूरी कोष अथवा श्रमिकों की कम संख्या नहीं होती बल्कि श्रमिकों की अधिक कार्यकुशलता होती है।

(viii) यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या नहीं करता कि सेवायोजकों की प्रतियोगिता और श्रम संघों की कार्यवाही के कारण मजदूरियां क्यों बढ़ जाती हैं।

(ix) यह सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह श्रम की मांग (मजदूरी कोष) यथास्थिर मानकर मजदूरी को केवल श्रम की पूर्ति पर आश्रित बना देता है।

4 अवशिष्ट अधिकारी सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन अमरीकन अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया है। इस सिद्धांत के अनुसार कुल उत्पादन में से लगान, ब्याज और लाभ के भुगतान के बाद जो कुछ शेष रहता है वह श्रमिकों को मिलता है। प्रो० वाकर के शब्दों में "कुल उत्पादन में से लगान, ब्याज व लाभ निकाल देने के पश्चात जो बचता है वह श्रमिकों को मजदूरी के रूप में मिलता है।" इसी प्रकार जेवन्स ने कहा है "श्रमिक जो कुछ पैदा करता है उसमें से लगान, कर तथा पूंजी का ब्याज निकालने के पश्चात बचने वाली रकम उस मजदूरी के रूप में ही दी जाती है। संक्षेप में—

मजदूरी — संपूर्ण उत्पादन — (लगान + ब्याज + लाभ)

इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें मजदूरी को श्रमिकों की कुशलता एवं उत्पादकता से संबंधित किया जाता है अर्थात श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ने पर श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि होगी क्योंकि लगान, ब्याज और लाभ निश्चित होने के कारण अवशेष में वृद्धि तभी होगी जबकि कुल उत्पत्ति में वृद्धि हो और कुल उत्पादन में वृद्धि श्रमिकों के अधिक परिश्रम करने पर ही संभव है।

आलोचनाएं (i) यह कहना ठीक नहीं है कि मजदूरी को निर्धारित करने के लिए कोई सिद्धांत नहीं है क्योंकि यदि सीमांत उत्पत्ति द्वारा लगान, ब्याज व लाभ निर्धारण किया जा सकता है तब श्रमिकों की मजदूरी का निर्धारण उसी आधार पर क्यों नहीं किया जा सकता।

(ii) मजदूरी के निर्धारण में श्रम की पूर्ति का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, जिसे इस सिद्धांत में नहीं रखा है।

(iii) यह कहना गलत है कि मजदूरी अवशेष-अंश कोष से दी जाती है क्योंकि अवशेष-अंश के अधिकारी श्रमिक नहीं साहसी होते हैं।

(iv) यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या करने में समर्थ है कि मजदूरी-संघ

मजदूरों को संगठित करके किस प्रकार उसकी मजदूरी में वृद्धि करने में सफल हो जाते हैं।

5. मजदूरी सीमांत बट्टा उपज सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन प्रो० टाजिग ने किया है। प्रो० टाजिग का कहना है कि मजदूरी का भुगतान करना उसी दिन आवश्यक हो जाता है जिस दिन मे उत्पादन का कार्य प्रारंभ हो जाता है परंतु उत्पादन मे समय लगता है। इस प्रकार मजदूरों को मजदूरी उत्पादन की बिक्री से पहले ही प्राप्त हो जाती है। उत्पादक ने जिस श्रमिक की मजदूरी आज चुकाई है उसकी उपज की कीमत उसे कई महीनो बाद प्राप्त होती है। अत उत्पादक इसी बीच श्रमिको को मजदूरी अग्रिम के रूप मे प्रदान करता है। यह अग्रिम राशि उत्पादक अपने पास से या उधार के रूप मे दूसरे से प्राप्त करता है और इस राशि पर उसे ब्याज की हानि होती है। क्योंकि यह उत्पादक मजदूरो को मजदूरी उत्पादन कार्य के समय न देता तो उत्पादक को उस पूर्ण राशि की मात्रा पर ब्याज प्राप्त होता, जिसको उसने श्रमिकों को मजदूरी के रूप मे दे रखा है। इसी कारण उत्पादक उसकी मजदूरी मे से उतने समय का ब्याज काट लेता है जिसका फल यह होता है कि अतत मजदूरी श्रम की सीमांत उत्पादकता के बराबर नही हो पाती। बट्टा मजदूरी श्रम की सीमांत उत्पादकता मे से उस कटौती को, जो ब्याज दर पर निर्भर करती है, निकाल देने पर जो शेष बचता है उसी के बराबर होती है। इसी को प्रो० टॉजिग ने कहा है, "मजदूरी के सामान्य सिद्धांत को सरल एव स्पष्ट शब्दों मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि मजदूरी श्रम की बट्टा की हुई सीमांत उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है।"

मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धांत
(*Modern Theory of Wage Determination*)

मजदूरी श्रम की सेवाओ का मूल्य है। अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियो का मत है कि श्रम का मूल्य भी अन्य वस्तुओ की तरह श्रम की मांग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होता है, क्योंकि जिस प्रकार मे किसी वस्तु की माग व पूर्ति होती है उसी प्रकार से बाजार मे श्रम की भी माग व पूर्ति होती है। मजदूरी का निर्धारण मूल्य के सामान्य सिद्धात (General Theory of Value) का ही एक विशिष्ट रूप है। फिर भी मजदूरी के अलग सिद्धात की आवश्यकता इस बात से है कि श्रम की कुछ अपनी विशिष्ट विशेषताए होती हैं। संक्षेप मे, मजदूरी निर्धारण के आधुनिक सिद्धात के अनुसार एक उद्योग मे मजदूरी उस बिंदु पर निर्धारित होती है जहा पर श्रमिकों की कुल मांग-रेखा तथा उनकी कुल पूर्ति-रेखा एक-दूसरे को काटती है। इस सिद्धात का अध्ययन हम दो परिस्थितियो मे करेंगे —

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत
2. अपूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत।

(iii) श्रम की माग सबधी सारिणी, मजदूरी की विभिन्न दरो पर श्रम की माग की जाने वाली मात्रा के सबध को बतलाती है। अल्पकाल में किसी फर्म की श्रम की माग, माग के नियम के अनुसार होती है अर्थात् मजदूरी की दर जितनी ही कम होती है, उत्पादन के लिए उतनी ही अधिक सख्या मे श्रमिकों की नियुक्ति करना लाभप्रद होता है।
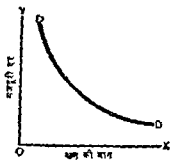
श्रमिको की माग तालिका या माग रेखा मजदूरी की विभिन्न दरो पर मागी जाने वाली श्रमिको की मात्रा को बताती हैं। उद्योग का श्रम का माग वक्र बायी से दायी ओर नीचे झुकता चला जाता है जैसा कि चित्र 1 मे दिखाया गया है। यह इस बात को व्यक्त करता है कि यदि मजदूरी की दर अधिक है तो श्रमिको की माग कम होगी तथा मजदूरी दर कम होने पर श्रमिको की माग अधिक होगी।

चित्र 1

(ब) श्रम की पूर्ति श्रम की पूर्ति श्रमिको द्वारा की जाती है अर्थात् श्रमिक श्रम बिक्रेता है श्रम की पूर्ति से आशय है (i) एक विशेष प्रकार के श्रमिको की सख्या जो मजदूरी की भिन्न-भिन्न दरो पर काम करने के लिए तैयार है और (ii) कार्य करने के घटे जो कि प्रत्येक श्रमिक मजदूरी की विभिन्न दरों पर देने को तत्पर है। अत श्रम की पूर्ति से आशय एक विशेष प्रकार के श्रम के उन घटो एव दिनो से है जिन्हे विभिन्न मजदूरी दरो पर नियोजनार्थ प्रस्तुत किया जाता है। सामान्यतया ऊची मजदूरी पर अधिक श्रमिक तथा कम मजदूरी पर कम श्रमिक कार्य करने को तत्पर होते है।

जिस प्रकार कोई भी उत्पादक अपनी वस्तुओ के लिए कम स-कम सीमात उत्पादन लागत के बराबर मूल्य लेता है ठीक उसी प्रकार मजदूरो की न्यूनतम मजदूरी भी उसके सीमात त्याग अर्थात् जीवन-स्तर स तय होती है।

किसी उद्योग विशेष मे श्रम को पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्व आर्थिक व गैर-आर्थिक होते हैं।

(i) गैर-आर्थिक तत्व यद्यपि एक श्रमिक अपनी मौद्रिक आय बढाने का इच्छुक होता है लेकिन वर्तमान रोजगार से मोह आलस्य तथा घरेलू वातावरण आदि उसे ऊची मजदूरी दर पर जाने से रोक सकते हैं। इसके अतिरिक्त रीति रिवाज, सास्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितिया व श्रमिक का स्वभाव भी श्रम-पूर्ति को प्रभावित करते हैं। श्रम की पूर्ति जनसख्या के आकार, आयु, वितरण, कार्य के घंटे व श्रमिको की कार्य कुशलता पर निर्भर होती है।

(ii) आर्थिक तत्व, सामान्यत ऊची मजदूरी दर पर श्रम की पूर्ति अधिक होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई उद्योग अधिक श्रमिको को प्रयुक्त करना चाहता है तो मजदूरी दर बढानी पडेगी। तभी अन्य उद्योगों के श्रमिक इस उद्योग में

आकर्षित होंगे। दूसरे शब्दो मे एक उद्योग मे श्रम की पूर्ति 'व्यवसाय स्थानांतरण' पर निर्भर करती है। व्यावसायिक स्थानातरण या गतिशीलता निम्न बातो पर निर्भर करती है—

1 व्यवसाय मे नौकरी की सुरक्षा, पेंशन की व्यवस्था, बोनस आदि लाभों का तुलनात्मक महत्त्व।

2 श्रमिक की वैकल्पिक उद्योगो मे उपलब्ध मजदूरी।

3 अन्य उद्योगो तक जाने का परिवहन व्यय।

श्रम की पूर्ति को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारण कार्य और आराम के बीच अनुपात है। मजदूरी का परिवर्तन श्रम की पूर्ति पर दो प्रकार से प्रभाव डाल सकता है—(1) **प्रतिस्थापन प्रभाव**—जब मजदूरी बढ जाती है तो श्रमिक स्वभावतः अधिक कमाना चाहेगा ताकि वह उच्चतर मजदूरी का लाभ कमा सके वह अवकाश को श्रम से प्रतिस्थापित करता है। मजदूरी की वृद्धि के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव सदैव धनात्मक होता है अर्थात् मजदूरी मे वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक कार्य करेगा। (ii) **आय-प्रभाव**—दूसरी ओर मजदूरी बढ जाती है तो श्रमिक की आय बढने से उसकी आर्थिक स्थिति श्रेष्ठतर हो जाती है और वह अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे अवकाश पसद करता है। इस प्रकार आय मे वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक आराम चाहते हैं। यह मजदूरी मे वृद्धि के कारण आय-प्रभाव हुआ। आय-प्रभाव ऋणात्मक होता है अर्थात् मजदूरी मे वृद्धि के कारण श्रमिक आराम चाहते हैं।

इस प्रकार जबकि ऊंची मजदूरी का प्रतिस्थापन प्रभाव अधिक मात्रा में काम करने के पक्ष मे है तब ऊंची मजदूरी का आय-प्रभाव अवकाश (आराम) की अधिक मात्रा के पक्ष मे है, ये दोनो विरोधी प्रवृत्तिया एक-दूसरे को निष्प्रभावित करने का प्रयत्न करती हैं जिसके परिणामस्वरूप एक निश्चित सीमा के पश्चात् उच्चतर मजदूरी दरों पर श्रमिक कम घटे काम करना पसद करते हैं। मजदूरी के बढने पर जब एक श्रमिक अपेक्षाकृत कम घटे काम करता है तो उसके इस तरह के आचरण को चित्र 2 के द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र को देखने से पता चलता है कि जैसे जैसे मजदूरी शून्य से बढती जाती है काम करने के घटे भी बढते जाते हैं। 6 रु० मजदूरी पर वह प्रतिदिन 10 घटे काम करता है जो अधिकतम सीमा होती है। उसके पश्चात् यदि मजदूरी की दर मे वृद्धि होती है तो काम के घंटो
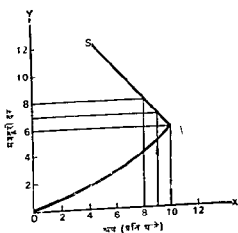
चित्र 2

की संख्या कम होने लगती है। जैसे जब मजदूरी 8 रु० हो जाती है तो इस प्रकार मजदूरी की दर बढ़ जाने पर मजदूर अधिक घंटे काम करने के लिए तैयार नहीं हैं वरन् वह अपनी इस बढ़ी हुई आय से अधिक आराम खरीदना चाहता है। चित्र 2 में OS श्रमिकों की पूर्ति वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि अधिक मजदूरी बढ़ने से किस प्रकार काम करने के घंटों पर इसका प्रभाव पड़ता है।

श्रम की मांग और पूर्ति के मध्य साम्य तथा मजदूरी निर्धारण
(पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी निर्धारण)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में मजदूरी मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। श्रमिकों की मांग श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता पर और श्रमिकों की पूर्ति श्रमिक के जीवन-स्तर पर निर्धारित होती है। संक्षेप में मजदूरी की अधिकतम सीमा श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता द्वारा तय होती है और न्यूनतम सीमा श्रमिकों के जीवन स्तर द्वारा तय होती है। इन दो अधिकतम और न्यूनतम सीमाओं के मध्य मजदूरी, श्रमिकों और सेवायोजकों की मोल भाव करने की सापेक्षिक शक्तियों पर निर्भर होती है। श्रम की मांग तथा पूर्ति में जिस मजदूरी की दर पर सतुलन स्थापित हो जाता है, वहां पर मजदूरी निश्चित हो जाती है। इस विचार को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है
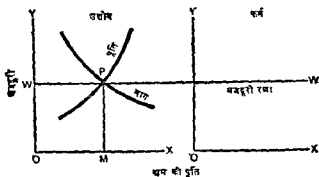
चित्र 3

उपरोक्त चित्र में मजदूरी PM निर्धारित होगी क्योंकि इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों की मांग तथा पूर्ति दोनों OM के बराबर हैं अर्थात् सतुलन मजदूरी दर PM है। यदि मजदूरी दर इस समय दर से ऊपर है तो कुछ श्रमिक रोजगार प्राप्त करने में असमर्थ रहेंगे अर्थात् श्रमिकों की पूर्ति उनकी मांग से अधिक रहेगी। श्रमिकों की यह अतिरिक्त पूर्ति मजदूरी की दर को घटायेगी और मजदूरी घट कर PM हो जायेगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी की दर साम्य या सतुलन पर PM से कम है तो श्रमिकों की पूर्ति उनकी मांग से कम होगी। चूंकि श्रमिकों की मांग अधिक होगी व पूर्ति कम होगी,

इसलिए श्रमिको की कमी मजदूरी दर को बढायेगी और मजदूरी दर बढ कर PM हो जायेगी स्पष्टत मजदूरी की वह दर निर्धारित होगी जहा पर कि श्रमिको की माग तथा उनकी पूर्ति बराबर हो जायेगी

एक व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत मजदूरी का निर्धारण अथवा मजदूरी एव सीमात उत्पादकता के बीच सबध

किसी समस्त उद्योग के लिए मजदूरी का निर्धारण चित्र (अ) की आकृति के अनुसार होगा। परतु एक बार सपूर्ण उद्योग के लिए मजदूरी का निर्धारण जब हो जाता है तो प्रत्येक फर्म (या सेवायोजक) इसे दिया हुआ स्वीकार कर लेती है। व्यक्तिगत फर्म उस दी हुई मजदूरी को ठीक उसी प्रकार स्वीकार करती है जिस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत व्यक्तिगत फर्म वस्तु के उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य को स्वीकार कर लेती है। यही कारण है कि व्यक्तिगत फर्म की श्रम-पूर्ति रेखा अथवा मजदूरी रेखा (Wage Line) एक 'पडी हुई रेखा' होती है, जैसा कि चित्र 3 (ब) मे दिखाया गया है। चित्र 3 (अ) मे PM उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी है। इसे फर्म की स्थानातरित कर दिया जाता है। फर्म को इसे स्वीकार ही करना होता है, क्योकि श्रम बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता है, उद्योग मे फर्मों की सख्या बहुत होती है तथा प्रत्येक फर्म श्रमिको की कुल पूर्ति को एक बहुत थोडी मात्रा मे प्रयोग करती है, इसलिए फर्म बाजार मे प्रचलित मजदूरी दर को प्रभावित करने की स्थिति मे नही होती। अतः हम कह सकते हैं कि एक फर्म के लिए श्रमिको की पूर्ति रेखा (या मजदूरी रेखा) पूर्णतया लोचदार होती है अर्थात् एक दी हुई मजदूरी पर फर्म जितने श्रमिक चाहे प्राप्त कर सकती है।

उपरोक्त विवरण से एक बात और भी स्पष्ट होती है कि चूकि प्रतियोगिता के अतर्गत मजदूरी की दर एक ही रहती है इसलिए एक फर्म को एक अतिरिक्त श्रमिक को कार्य पर लगाने के लिए जो मजदूरी अर्थात् 'सीमात मजदूरी' (Marginal Wage i e MW) देनी पडेगी वह 'औसत मजदूरी' (Average Wage i e AW) के बराबर ही होगी। इसलिए चित्र मे MW मजदूरी रेखा श्रमिको की औसत और सीमात मजदूरी को भी प्रदर्शित करती है। सक्षेप मे, पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म के लिए मजदूरी रेखा एक पडी हुई रेखा होती है तथा उसे औसत मजदूरी (AW) और सीमात मजदूरी (MW) द्वारा व्यक्त करते हैं।

यह मानते हुए कि फर्म लाभ को अधिकतम या हानि को न्यूनतम बनाने का प्रयास करती है, वह दी हुई मजदूरी पर श्रमिक की वह सख्या प्रयुक्त करेगी जहा पर श्रमिको की सीमान्त आगम उत्पाद[1] (Marginal Revenue Product i e MRP) बराबर हो श्रमिको की सीमान्त मजदूरी (Marginal Wage i e MW) के। अतः जब तक श्रम की MW उसके MRP के बराबर नही हो जाती, फर्म उत्तरोत्तर श्रमिको

1 अन्य साधनों को पूर्ववत रखते हुए, श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से, जो कुल आय में वृद्धि होती है श्रम को सीमांत आगम उत्पाद (MRP) कहते हैं।

को लगाती चली जायेगी। इस प्रकार फर्म की सतुलन की स्थिति तब तक होगी जब तक MRP=MW।

यदि सीमात आगम उत्पाद सीमात मजदूरी से अधिक है (MRP>MW) तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक अतिरिक्त श्रम के प्रयोग करने से कुछ आगम मे वृद्धि श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी से अधिक है। अतः फर्म को लाभ होगा और वह श्रमिको की अतिरिक्त इकाइयो का उपयोग उस समय तक करेगी जबकि WRP—MW होगा। इसके विपरीत, यदि सीमात आगम उत्पाद कम है तो सीमात मजदूरी से (MRP<MW) तो फर्म को श्रमिको के प्रयोग करने की दृष्टि से हानि होगी अत श्रम की सीमात आगम उत्पाद (MRP) और श्रम की सीमात। मजदूरी (MW) की समानता फर्म की सतुलन की स्थापना की अनिवार्य शर्त हैं।

चूकि पूर्ण प्रतियोगिता मे मजदूरी दर एक ही रहती है इसलिए औसत मजदूरी (AW) और सीमात मजदूरी (MW) एक ही होती है और ये दोनो मजदूरिया श्रम के औसत आगम उत्पाद (Average Revenue Productivity, i e ARP) और सीमात आगम उत्पाद (MRP), जो दोनो मे समान होते हैं, के बराबर होती है। इस प्रकार दीर्घकाल मे साम्य मजदूरी की स्थिति मे मजदूरी (Wage)=औसत मजदूरी (AW)=सीमात मजदूरी (MW)=औसत आगम उत्पाद (ARP)=सीमात आगम उत्पाद (MRP)। सक्षेप मे, श्रमिको के प्रयोग करने की दृष्टि से दीर्घकाल मे एक फर्म के साम्य के लिए दोहरी शर्त पूरी होनी चाहिए। (1) MRP=MW, ARP=AW।

चित्र 4

चित्र 4 मे बिंदु W पर दोनो शर्तें पूरी हो जाती हैं अत दीर्घकाल में मजदूरी दर WM प्रयुक्त श्रमिको की सख्या OM और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

अल्पकाल मे, श्रमिको के प्रयोग की दृष्टि से एक फर्म के लिए लाभ, सामान्य लाभ या हानि तीनों स्थितिया सभव हैं। श्रमिक के प्रयोग करने की दृष्टि से फर्म के लाभ तथा हानि की स्थिति को ज्ञात करने के लिए हम औसत आगम उत्पाद (ARP) तथा औसत मजदूरी (AW) रेखा पर ध्यान देते हैं।
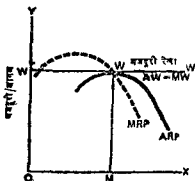
(अ) यदि औसत मजदूरी अथवा मजदूरी श्रम के औसत आगम उत्पाद से अधिक है तो फर्म को हानि होगी, अर्थात् ARP<AW=हानि।

(ब) यदि मजदूरी औसत आगम उत्पाद के बराबर है तो फर्म को न तो लाभ होगा, न हानि होगी अर्थात् ARP=AW=सामान्य लाभ।

के अतिरिक्त लाभ को समाप्त कर देंगे। अतः दीर्घकाल मे मजदूरी दर औसत आय उत्पाद से न तो अधिक होगी और न कम। इस प्रकार जैसा कि वस्तु के सबंध मे पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत दीर्घकाल मे साम्य की स्थिति औसत लागत=सीमात लागत= औसत आगम=सीमात आगम (AC=MC=AR=MR) द्वारा दी जाती है, उसी प्रकार साम्य मजदूरी की स्थिति मे औसत मजदूरी=सीमात मजदूरी=श्रम की औसत आगम उत्पाद=श्रम की सीमात आगम उत्पाद।

2 अपूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत मजदूरी

वास्तविक जीवन मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियां प्राप्त नही होती। आजकल श्रमिक और सेवायोजक दोनों ही सगठित हैं। श्रम बाजार मे दो प्रकार की अपूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक दशाए हो सकती हैं -

(अ) वह श्रम-बाजार जिसमे सेवायोजक मजदूरी निर्धारण करने मे अधिक शक्तिशाली हैं। (ब) वह श्रम-बाजार जिसमे श्रमिक और सेवायोजक दोनों ही अपनी दर पर नियत्रण रखते हैं।

प्रथम प्रकार का श्रम-बाजार प्राय निम्न परिस्थितियो मे पाया जाता है

(i) जब सेवायोजक की सख्या अपेक्षाकृत बहुत कम हो, अथवा एक ही सेवायोजक हो।

(ii) श्रमिक एक उद्योग से दूसरे उद्योग के लिए अधिक गतिशील न हो।

(iii) श्रमिको की सौदेबाजी करने की स्थिति बहुत ही दुर्बल हो।

(iv) काम के लिए श्रमिकों मे तो प्रभावशाली प्रतियोगिता हो लेकिन सेवायोजको मे इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा न हो।

इस प्रकार के अपूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक श्रम-बाजार मे वास्तविक मजदूरी निम्न सीमाओ के अतर्गत किसी भी स्थान पर निश्चित हो सकती है

1 यदि बाजार मे एक ही सेवायोजक है और श्रमिको की गतिशीलता प्राय नही के बराबर है तो मजदूरी बहुत नीची होगी और यह इतनी नीची होगी कि श्रमिक केवल भूखा मरने के स्थान पर रोजगार मे लगे रहना ही पसद करेगा।

2 यदि सेवायोजको मे प्रतियोगिता है और श्रम की गतिशीलता अधिक है तो मजदूरी प्रतियोगिता स्तर पर पहुच जायेगी।

दूसरे प्रकार की अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओ मे मजदूरी श्रमिक-सघ तथा सेवायोजको के बीच सौदेबाजी का परिणाम है। सेवायोजक साधारणतया नीची से नीची मजदूरी देने का प्रयास करेगा और श्रमिक सघ ऊची से ऊची मजदूरी प्राप्त करना चाहेगा। मजदूरी की वास्तविक दर इस बात पर निर्भर करेगी कि इन दोनों की तुलनात्मक सौदा करने की शक्ति किस प्रकार है। यदि सेवायोजक अधिक शक्तिशाली है और उसे हड़ताल के कारण आय मे स्थायी हानि होने का भय नही है तो मजदूरी नीची होगी। इसके विपरीत, यदि श्रमिक सघ अधिक शक्तिशाली है और हड़ताल सफलतापूर्वक चलाई जा सकती है तो मजदूरी ऊची होगी। वास्तविक मजदूरी का निर्धारण इन

(स) यदि मजदूरी श्रम की औसत आय उत्पाद से कम है तो फर्म को लाभ होगा अर्थात् ARP>AW=लाभ।

इन तीनो वैकल्पिक अवस्थाओ को चित्र 5 (अ, ब, स) मे चित्रित किया गया है।

चित्र मे जब श्रमिको की सख्या OM है तो औसत आगम उत्पाद PM है जबकि मजदूरी दर *WM* है। इस कारण *PM—WM=PW* श्रम की प्रति इकाई पर मालिक को लाभ प्राप्त हो रहा है। चित्र (ब) मे मजदूरी की दर तथा औसत आगम उत्पाद दोनो बराबर हैं, र्थात् *WM* हैं। इसलिए श्रम के उपयोग से मालिक को न तो लाभ होगा, न हानि ही। चित्र (स) मे जब श्रमिको की मजदूरी दर OM है तब मजदूरी की दर *WM* है परतु औसत आगम उत्पाद *SM* है, इस कारण प्रति श्रमिक हानि की दर WM—SM=WS है।
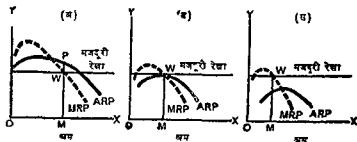
चित्र 5

अल्पकाल मे ये तीनो ही सभावनाए विद्यमान रह सकती हैं, परतु दीर्घकाल मे फर्म एव उद्योग सतुलन अवस्था मे होते हैं, फर्म को न लाभ होगा और न हानि। दीर्घकाल मे यदि किसी फर्म मे औसत मजदूरी औसत आगम उत्पाद से अधिक रहती है तो फर्म उत्पादन को स्थगित कर देगी, फलत श्रम की माग कम हो जायेगी और मजदूरी भी कम हो जायेगी। *फर्मों की सख्या मे कमी होने से वस्तु के उत्पादन मे कमी हो* जायेगी और परिणामस्वरूप वस्तु की कीमत बढ जायेगी तथा श्रम की औसत आगम उत्पाद भी बढ जायेगी। इस प्रकार एक ओर मजदूरी नीचे की ओर खिसक जाती है और दूसरी ओर श्रम का औसत आगम उत्पाद ऊपर की ओर खिसक जाता है। दीर्घकाल मे अत मे दोनो बराबर हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि श्रम की मजदूरी श्रम को औसत आगम उत्पाद से कम है तो श्रम को लाभ होगा और वह अधिक लाभ उद्योग मे नई फर्म को आकर्षित करेगा जिसके निम्नलिखित दो प्रभाव होगे :

(अ) उद्योग मे श्रम की कुल माग बढ जाने के कारण मजदूरी भी बढ जायेगी।

(ब) वस्तु का कुल उत्पादन बढ जाने के कारण वस्तु का मूल्य गिर जायेगा, फलत श्रम की औसत आगम उत्पाद कम हो जायेगी। ये दोनो प्रभाव दीर्घकाल मे फर्म

दो सीमाओं के बीच होगा ।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण : चूकि श्रम-बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता है इसलिए औसत मजदूरी रेखा तथा सीमात मजदूरी रेखा ऊपर को बढती हुई रेखा होगी न कि पूर्ण प्रतियोगिता की भाति पडी रेखा होगी) । सीमात मजदूरी रेखा औसत मजदूरी रेखा से ऊपर होगी। ऊपर की चढती हुई सीमान मजदूरी रेखा का अर्थ है कि यदि उत्पादक अतिरिक्त श्रम को कार्य पर लगाना चाहता है तो अधिक मजदूरी देनी पडेगी। अपूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत मजदूरी निर्धारण को चित्र 6 द्वारा समझाया जा सकता है।

चित्र मे ARP औसत आगम उत्पाद वक्र है और MRP सीमात आगम उत्पाद वक्र है। एकाधिकारी नेता उस सीमा तक रोजगार प्रदान करेगा, जहा श्रम की सीमात इकाई के लगाने से आय मे होने वाली वृद्धि (सीमात आगम उत्पाद) कुल मजदूरी मे होने वाली (सीमात मजदूरी) वृद्धि के बराबर हो जाती है अर्थात् फर्म मे सतुलन वहा होगा जहा सीमात मजदूरी (MW) और सीमात आगम उत्पाद (MRP) आपस मे बराबर हो। चित्र मे E बिंदु पर ये बराबर हैं, क्योकि इस बिंदु पर ये वक्र MW और MRP एक-दूसरे को काटते हैं। सीमात आगम उत्पाद और सीमात मजदूरी उस समय बराबर होती है जब OW मजदूरी पर OM श्रमिक नियुक्त किये जाते हैं। इस बिंदु पर फर्म का लाभ अधिकतम होगा। जब फर्म अपना लाभ अधिकतम करती है तो वह असामान्य लाभ (Abnormal Profit) भी अर्जित करती है, क्योकि औसत आगम उत्पाद (ARP) औसत मजदूरी (AW) से अधिक है। औसत आगम उत्पाद चित्र मे QM है, जबकि औसत मजदूरी PM है, इस प्रकार प्रति QP अतिरेक है। अतः कुल OM कार्य पर लगे श्रमिको से कुल अतिरेक OM×QP अर्थात आयत WPQR है। यह आयत असामान्य लाभ को प्रदर्शित करता है जो कि फर्म को प्राप्त होता है।
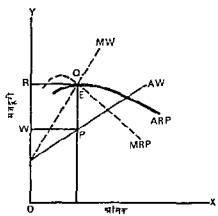
चित्र 6

E सतुलन बिंदु पर हम देखते हैं कि औसत मजदूरी PM (या OM) है और सीमात आगम उत्पाद (MRP) से, जो EM है, कम है। इसका अर्थ यह है कि मजदूर मालिक के लिए उत्पादन अधिक करते हैं, परतु मालिक मजदूरी कम देता है अर्थात वह श्रमिकों का शोषण करता है। सीमात आय उत्पादन की अपेक्षा मजदूरी की दर के न्यूनतम होने की स्थिति को श्रीमती जॉन रॉबिनसन ने श्रमिको का शोषण कहा है। चित्र से स्पष्ट है कि श्रमिको का शोषण EM—PM=EP।

परीक्षा-प्रश्न

1 मजदूरी देने की विभिन्न प्रणालियो का सक्षेप मे वर्णन कीजिए। प्रत्येक के गुण-दोष की विवेचना कीजिए।
2 विस्तार सहित कोई तीन प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतिया स्पष्ट कीजिए और इस सबध मे उचित उदाहरण दीजिए।
3 मजदूरी देने की विभिन्न पद्धतिया कौन-कौन-सी है ? प्रत्येक के गुण व दोष बताइये। आप उनमे सबसे सर्वश्रेष्ठ किसे और क्यो समझते हैं ?
4 समय पर आधारित मजदूरी के गुणो व दोषो की विवेचना कीजिए। कार्य पर आधारित मजदूरी से उसकी किस प्रकार तुलना की जा सकती है ?
5 श्रमिक को पारिश्रमिक देने की समय-मजदूरी एव कार्य-मजदूरी पद्धतियो मे विभेद कीजिए। हैल्से व रोवन पद्धतियो के गुण एव दोष की चर्चा कीजिए।
6 मजदूरी भुगतान की भिन्न-भिन्न पद्धतियो के नाम लिखिए। मजदूरी भुगतान की ऐसी पद्धति की सिफारिश कीजिए जो भारतीय उद्योगो के श्रमिको की उत्पादकता को प्रोत्साहन दे सके।
7 मजदूरी देने की प्रेरणात्मक प्रणालिया क्या हैं ? इनमे से कुछ के नाम बताइए और उनमे से किन्ही दो के विशिष्ट लक्षण बताइए।
8 मजदूरी भुगतान की किन्ही तीन महत्त्वपूर्ण रीतियो का वर्णन कीजिए। बताइए कि मजदूरो को कुशलतापूर्वक काम करने के लिए प्रोत्साहित करने और साथ मे उनकी कार्य शक्ति की रक्षा करने के लिए कौन-सी रीति सबमे अधिक उपयुक्त है ?
9 एक अच्छी मजदूरी पद्धति की क्या विशेषताए हैं ? हैल्से एव रोवन प्रव्याजि पद्धति का सक्षेप मे वर्णन कीजिए तथा दोनो की तुलना कीजिए।
10 हैल्से तथा रोवन मजदूरी पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए तथा प्रत्येक का सक्षेप में वर्णन कीजिए।
11 इमर्सन की कुशलता योजना पर टेलर की विभेदात्मक उत्पादन के अनुसार मजदूरी देने की प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
12 निम्न पर सक्षिप्त टिप्णी लिखिए—
 (i) टेलर भिन्नक कार्यानुसार मजदूरी पद्धति,
 (ii) मेरिक मजदूरी प्रणाली,
 (iii) गेंट बोनस पद्धति, तथा
 (iv) इमर्सन दक्षता योजना।

अध्याय 2

न्यूनतम मजदूरी, न्यायपूर्ण मजदूरी तथा जीवन मजदूरी

(Minimun Wage, Fair Wage and Living Wage)

यह एक विवाद का प्रश्न है कि श्रमिको की मजदूरी क्या होनी चाहिए। इसका समाधान करने के लिए प्रायः तीन प्रकार के प्रस्ताव दिये जाते है—(अ) श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी दी जाय, (ब) श्रमिको को न्यायपूर्ण या उचित मजदूरी दी जाय तथा (स) श्रमिको को जीवन या पर्याप्त मजदूरी दी जाय। अब प्रश्न यह है कि न्यूनतम मजदूरी, न्यायपूर्ण मजदूरी व जीवन मजदूरी से तात्पर्य क्या है ?

1 न्यूनतम मजदूरी
(Minimum Wage)

न्यूनतम मजदूरी वाक्यांश मे **न्यूनतम** शब्द अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसका शाब्दिक अर्थ है—**कम से कम**। मुद्रा की जो कम से कम राशि मजदूर को मिलनी ही चाहिए वह न्यूनतम मजदूरी होती है। यह राशि सरकार द्वारा निश्चित हो सकती है अथवा अन्य संस्थाओ, जैसे—मजदूर सघ व सेवायोजक सघ आदि द्वारा भी। सामूहिक सौदे के परिणामस्वरूप भी इनकी मात्रा निश्चित हो सकती है। भारत सरकार द्वारा नियुक्त **न्यायपूर्ण मजदूरी समिति** ने न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा इस प्रकार दी है "न्यूनतम मजदूरी न केवल जीवन-निर्वाह के लिए बल्कि कार्यकुशलता को बनाये रखने के लिए भी पर्याप्त होनी चाहिए। इस उद्देश्य से इसमे कुछ शिक्षा, स्वास्थ्य सबधी आवश्यकताए और अन्य सुविधाओ का व्यय सम्मिलित होना चाहिए।"[1]

उपरोक्त परिभाषा स्पष्टतः भारत की निर्धनता को ध्यान मे रखकर बनाई गई है, परतु प्रत्येक देश मे यह न्यूनतम सीमा लागू नही हो सकती। रौनट्री ने न्यूनतम मजदूरी को इस प्रकार परिभाषित किया है "न्यूनतम मजदूरी के द्वारा केवल जीवित रहने का व्यय मात्र नही मिलता, बल्कि इससे उन सुख-सुविधाओ को उपलब्ध कराती है जिनसे अच्छी आदतो का निर्माण होता है, आत्म सम्मान के भाव का विकास होता है

[1] Report of the Fair Wage Committee, pp. 8-9.

और समाज के किसी कार्य को करने वाले व्यक्तियो का सम्मान बढ़ता है।"[1]

न्यूनतम मजदूरी का महत्त्व या उद्देश्य

किसी देश मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की अत्यत आवश्यकता होती है। इससे केवल श्रमिक वर्ग ही नही बल्कि सपूर्ण समाज लाभावित होता है। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है—

1 *न्यूनतम मजदूरी व सामाजिक न्याय : श्रमिक एक सामाजिक प्राणी है।* सामाजिक प्राणी के रूप मे श्रमिको की न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति होना आवश्यक है। इसके लिए यह उचित है कि श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी जाय।

2 **श्रम-शोषण पर प्रतिबध** मजदूरो की सौदा करने की शक्ति कम होती है। अतः इस बात की अधिक सभावना रहती है कि उसका शोषण हो अर्थात जो उसे मिलना चाहिए वह न मिले। न्यूनतम मजदूरी से श्रम के शोषण पर कुछ प्रतिबध लगेगा।

3 **श्रमिको के स्वास्थ्य की रक्षा** न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दने से श्रमिक व आश्रितो को कुछ सीमा तक भोजन, वस्त्र, आवास व शिक्षा आदि मिल सकेगा। इस प्रकार उसके स्वास्थ्य की रक्षा होगी। उत्तम स्वास्थ्य श्रमिको की कार्य कुशलता मे वृद्धि करेगा।

4 *औद्योगिक शाति की स्थापना : औद्योगिक अशाति का सबसे बड़ा कारण* कम मजदूरी का मिलना होता है। मार्क्स का दावा है कि मालिक वर्ग श्रमिको को उचित मजदूरी न देने के फलस्वरूप श्रमिको के लिए जिन दयनीय परिस्थितियो को उत्पन्न करते हैं, उनसे विवश होकर श्रमिक अपने को एक वर्ग के रूप मे सगठित करने को बाध्य होता है और उसमे क्रातिकारी विचारो का जन्म होता है, क्योकि जो अत्याचार श्रमिको के ऊपर होता है उसे सहन करने की भी एक सीमा होती है। अत यह आवश्यक है कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी जाय ताकि क्रातिकारी विचार न पनपें और देश मे औद्योगिक शाति बनी रहे।

5 **उत्पादन मे वृद्धि** न्यूनतम मजदूरी श्रमिको के दृष्टिकोण से ही नही, बल्कि सेवायोजको के लिए भी हितकर है। न्यूनतम मजदूरी से श्रमिको के स्वास्थ्य की रक्षा होती है और उनकी कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप उत्पादन भी बढ जाता है। उत्पादन बढने से अतत मालिको को ही लाभ होता है।

मालिकों को इस रूप मे भी लाभ होगा कि एक उद्योग विशेष मे समान न्यूनतम मजदूरी निश्चित हो जाने स उस उद्योग की सभी फर्मों मे उत्पादन लागत समान हो जायेगी।

एक उद्योग विशेष मे समान न्यूनतम मजदूरी होने स एक उपक्रम से काम छोड़-

1 Rowantree : A Study of Town Life, quoted by U. P. Labour Enquiry Committee.

कर अधिक मजदूरी के लालच से दूसरे उपक्रम मे चले जाने की प्रवृत्ति भी श्रमिको मे कम हो जायेगी।

6 **अन्य उद्देश्य** . उपरोक्त उद्देश्यो के अतिरिक्त न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के कुछ अन्य उद्देश्य भी हो सकते हैं। जैसे—

(अ) सेवायोजको के बीच प्रतिस्पर्धा को हटाना।

(ब) श्रमिको के मध्य पारस्परिक प्रतिस्पर्धा की भावना को समाप्त करना।

(स) कुशल उत्पादको का उन्मूलन करना।

(द) श्रम-सगठन को सुदृढ बनाना।

न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने मे कठिनाइया
(Difficulties in Fixing Minimum Wage)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय व श्रमिको के कल्याण की दृष्टि व औद्योगिक शांति को बनाये रखने के लिये न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण आवश्यक है। परतु श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी सबधी विचार बहुत ही जटिल हैं क्योकि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना बहुत कठिन है।[1] कारण यह है कि स्थान स्थान उद्योग-उद्योग, समय-समय और यहा तक कि श्रमिक श्रमिक व स्त्री पुरुष के सबध मे दशाए असमान हैं। सक्षेप मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने मे निम्नलिखित कठिनाइया सामने आती हैं, जिन पर ध्यान देना आवश्यक है

1 **मजदूरो का जीवन-स्तर** यदि न्यूनतम मजदूरी से हमारा तात्पर्य उस मजदूरी से है जो न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पर्याप्त हो सके तो हमे यह देखना होगा कि मजदूरो का जीवन-स्तर क्या है। उत्तर प्रदेश श्रम जाच समिति (1946) ने चार प्रकार के जीवन-स्तरो— **निर्धनता स्तर'** (Poverty level), **'न्यूनतम निर्वाह स्तर'** (Minimum Subsistence level), **निर्वाह से अधिक स्तर'** (Subsistence plus level) और **'आराम स्तर'** (Comfort level) पर विचार किया था। **निर्धनता स्तर** से अभिप्राय उस स्तर से है जो भौतिक कुशलता स्थापित रखने के लिए न्यूनतम आवश्यकताओ तक पूरी करने मे असमर्थ है। **न्यूनतम निर्वाह स्तर** का तात्पर्य यह है कि कुल आय केवल भौतिकी कुशलता को स्थापित रखने के लिए ही पर्याप्त है। **निर्वाह से अधिक स्तर** से आशय यह है कि आय न केवल भौतिक अस्तित्व के लिए पर्याप्त है बल्कि इसमे कुछ प्राथमिक, सामाजिक आवश्यकताओ की भी पूर्ति हो सकती है। **आराम स्तर** का अर्थ है कि आय आराम से जीवन यापन करने के लिए पर्याप्त है। इसके अतर्गत एक मर्यादित साज-सामान वाला घर, मनोरजन के लिए पर्याप्त धन की उपलब्धता, बच्चो के लिए उच्च शिक्षा, पौष्टिक भोजन और औषधिया सम्मिलित हो सकती हैं। समिति ने यह न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के हेतु निर्वाह से अधिक के स्तर का आधार मानने के लिए सुझाव दिया है। समिति ने जिस स्तर का सुझाव दिया है वह न्यायोचित प्रतीत होता

1. S. B. L. Nigam : State Regulation of Wages, 1955.

है। यदि भारत में न्यूनतम मजदूरी के आधार के रूप में यदि निर्वाह से अधिक स्तर को अपनाया जाय तो यह भारतीय श्रमिकों की आवश्यकताएं संतुष्ट कर सकेगा और उनके औसत स्वास्थ्य एवं कुशलता को सुरक्षित रखेगा।

2 **जीवन निर्वाह लागत :** किसी देश या स्थान में जीवन निर्वाह लागत क्या है, यह बहुत कुछ कीमत-स्तर पर निर्भर होता है। चूंकि प्रत्येक स्थान पर कीमत स्तर अलग-अलग होता है। अतः सबके लिए मजदूरी की एक दर ठीक नहीं हो सकती। कानपुर में मजदूरी की दर निश्चित रूप से गांव की दर से अधिक रखनी होगी। सब स्थानों की कीमत-स्तर व उनमें होने वाले परिवर्तनों का पता लगाना एक दुष्कर कार्य है। यही नहीं, कीमतों में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं जिनके कारण भी 'जीवन निर्वाह लागत' निश्चित करना कठिन हो जाता है। इस आशय के लिए समय-समय पर जीवन लागत निर्देशांक तैयार कराने चाहिए और इसमें होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप ही न्यूनतम मजदूरी में समायोजन किया जाना चाहिए।

3 **परिवार का आकार** न्यूनतम मजदूरी निश्चित करते समय परिवार के आकार को भी ध्यान में रखना पड़ता है। परंतु परिवार का आदर्श आकार क्या हो, इस संबंध में विचारकों में काफी मतभेद हैं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि श्रमिक के परिवार में उसकी पत्नी और तीन आवश्यक बच्चों को एक परिवार का प्रतिनिधित्व करने वाला माना जा सकता है। श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि मजदूरी इतनी पर्याप्त हो कि न केवल श्रमिक को बल्कि उसके परिवार को भी सभ्य जीवन का एक उचित स्तर प्राप्त हो सके।

4 **न्यूनतम मजदूरी दर** श्रमिकों के जीवन स्तर और परिवार का औसत आकार मालूम हो जाने पर भी श्रमिक के लिए एक न्यूनतम मजदूरी दर निश्चित करना कोई सरल कार्य नहीं है। **अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय ने इस संबंध में दो विधियां सुझायी हैं—प्रथम विधि** शरीर रचना-शास्त्रियों स्वास्थ्य शास्त्रियों व आवास विशेषज्ञों आदि के द्वारा मानक (Norms) तैयार करना है और **द्वितीय विधि** आय के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न जनसंख्या वर्गों के लिए स्टैण्डर्ड बजट बनाना है। यदि दोनों ही विधियां को संयुक्त रूप से कार्य में लाया जाय तो न्यूनतम मजदूरी दर के निर्धारण में बहुत सुविधा हो सकती है।

परंतु यह उल्लेखनीय है कि न्यूनतम मजदूरी किसी भी स्थिति में श्रमिक की उत्पादकता से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि न्यूनतम मजदूरी श्रम की उत्पादकता से अधिक है तो, प्रशिक्षण व उत्पादन की नवीन विधियों को अपनाकर यह प्रयास किया जाना चाहिए कि श्रमिकों की उत्पादकता बढ़े।

5 **उद्योग की क्षमता** न्यूनतम मजदूरी को निश्चित करने से पहले यह बात ध्यान में रखना भी आवश्यक है कि एक उद्योग विशेष की मजदूरी भुगतान करने की क्षमता कितनी है। यदि न्यूनतम मजदूरी किसी उद्योग के लिए भारस्वरूप है तो वह उद्योग भी समाप्त हो जायगा।

6 **निर्मित वस्तुओं की कीमत** न्यूनतम मजदूरी निश्चित करते समय इस बात

की-जानकारी भी आवश्यक है कि न्यूनतम मजदूरी का निर्मित वस्तु की कीमत पर क्या असर पड़ता है। यदि इसमे कीमत मे वृद्धि हो जाती है तो सभव है कि वस्तु का बाजार ही समाप्त हो जाए अथवा उपभोक्ता की कठिनाइया बढ जाये यह दोनों ही बातें देश के लिए हानिप्रद है।

7. **न्यूनतम मजदूरी को लागू करने की व्यवस्था** केवल न्यूनतम मजदूरी सबधी नियम बनाना ही पर्याप्त नही होता बल्कि उसे उचित रूप से कार्यान्वित किया जाना चाहिए। उचित यह होगा कि केंद्रीय सरकार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले और निर्धारित मजदूरी विभिन्न उद्योगों में लागू करने का काम राज्य सरकार का हो।

भारतवर्ष मे औद्योगिक श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के सबध मे आने वाली कठिनाइयों के सन्दर्भ मे कानपुर श्रम-जाच समिति ने कहा था 'नि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने में हमे जीवनयापन की लागत पर विचार करना पड़ता है, हमे स्तर का निश्चय करना पड़ता है, परन्तु यह कोई सरल कार्य नही है। समस्या के शरीर-रचना सबधी सामाजिक एव वातावरण सबधी सभी बातों पर सतर्कतापूर्वक विचार करना पड़ता है, आकडे सग्रह करने पड़ते है आवश्यक मदो का चुनाव करना पड़ता है और इन्हे गुणात्मक एव परिमाणात्मक दोनों ही दृष्टियों से सही सही मूल्याकन करना पड़ता है। यह एक जटिल कार्य है जिसके लिए धैर्य निश्चितता और जिन वर्गों के लिए जीवनयापन लागत की गणना की जा रही है उनके विषय मे समुचित जानकारी की आवश्यकता है। स्वय पारिवारिक इकाई को परिभाषित एव निर्धारित करना पड़ता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था मे यह उद्देश्य पूरा होना सरल नही है। लोगो की परपराओ और सामाजिक प्रथाओ का सम्मान करना आवश्यक है।' न्यूनतम मजदूरी परामर्श समिति की सिफारिशों और विभिन्न औद्योगिक ट्रिब्यूनलो के निर्णयो को ध्यान में रखते हुए सरकार ने कुछ सामान्य सिद्धात बनाए हैं जिन्हे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरियाँ निर्धारित करते समय ध्यान मे रखना आवश्यक है।

आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी
(The Need-based Minimum Wage)

जुलाई 1957 मे भारतीय श्रम अधिवेशन के नयी दिल्ली में हुए 15वें अधिवेशन मे एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ जिसमे कहा गया कि न्यूनतम मजदूरी आवश्यकता पर आधारित होनी चाहिए और इसे औद्योगिक श्रमिकों की न्यूनतम मानवीय आवश्यकताए पूरी करने मे समर्थ होना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी समितियो मजदूरी बोर्ड अभिनिर्णायको आदि सभी मजदूरी निर्धारक प्राधिकारियो ने मार्गदर्शन के लिए निम्नलिखित मानक (Norms) स्वीकृत किये गये हैं—

(अ) न्यूनतम मजदूरी की गणना करने मे प्रमापित श्रमिक परिवार के अतर्गत प्रत्येक कमाने वाले तीन उपभोग इकाइया सम्मिलित की जानी चाहिए। (ब) न्यूनतम खाद्य आवश्यकताओ की गणना डॉ० एक्रोयड द्वारा औसत भारतीय वयस्क के

लिए सुझाये गये कैलोरीज संबधी शुद्ध अंतर्ग्रहन के आधार पर की जानी चाहिए। (स) आवास के सदंर्भ मे सरकारी औद्योगिक आवास-योजना के अधीन जिस न्यूनतम क्षेत्रफल का आयोजन किया गया है उसके किराये के बराबर धनराशि को न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने मे विचार मे लेना चाहिए। (द) वस्तु सबधी आवश्यकताओ का अनुमान प्रति व्यक्ति, प्रति वर्ष 18 गज के उपभोग के आधार पर लगाना चाहिए। (य) ईंधन, प्रकाश एव अन्य विविध व्यय कुल न्यूनतम मजदूरी के 20% के बराबर होने चाहिए। प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि जहा न्यूनतम मजदूरी उपर्युक्त मानको से कम निर्धारित की गई हो, वहा सबद्ध प्राधिकारियो के लिए अनिवार्य होगा कि वे इस कमी के औचित्य को स्पष्ट करें। इस प्रकार न्यूनतम मजदूरी सबधी धारणा को एक ठोस रूप देने का प्रयास इस प्रस्ताव द्वारा किया गया। प्रस्ताव मे जो मानक निश्चित किये गये हैं उनका ध्यान मजदूरी बोर्ड अपनी सिफारिशें देते समय रखता है।

न्यूनतम मजदूरी की प्रणालिया

न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण की दो निम्नलिखित प्रणालिया है—

(अ) **परोक्ष प्रणालियां :** न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की आवश्यकता को अनुभव करते हुए सरकार परोक्ष रूप मे अनेक कार्य कर सकती है। सर्वप्रथम सरकार को अपने शासकीय विभागो मे कार्यरत श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी दर निश्चित करनी चाहिए। ऐसा करने से निजी उद्योगों व व्यवसायो मे श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित कर दी जाती है। परोक्ष ढग से न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का एक तरीका यह भी है कि जब सरकार किसी कार्य को ठेके पर पूरा कराती है तो उसे ठेकेदार के साथ हुए अनुबध मे यह शर्त लिखवा लेनी चाहिए कि वे श्रमिको को वही मजदूरी देंगे जिसका उल्लेख अनुबध मे किया गया है। इस शर्त को **'उचित मजदूरी' उपवाक्य** कहा जाता है जिसके अतर्गत वाछित मजदूरी की दरें, कार्य के घटे व कार्य की दिशाओ का उल्लेख रहता है।

(ब) **प्रत्यक्ष प्रणालिया :** न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के लिए सरकार निम्न-लिखित प्रत्यक्ष विधिया अपना सकती है—

(i) **स्थायी न्यूनतम मजदूरी विधि** इस विधि के अतर्गत राज्य जिन उद्योगो के जिस प्रकार के श्रमिको के लिए मजदूरी की एक न्यूनतम सीमा निर्धारित करना चाहता है, निर्धारित करके उसे कार्यान्वित करने के लिए उद्योग विशेष के सेवायोजको को आदेश दे सकता है। यदि राज्य यह चाहता है कि देश के सभी उद्योगो, समस्त क्षेत्रो व सभी प्रकार के श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी जाए तो उसे चाहिए कि सभी उद्योगों के सभी प्रकार के श्रमिको के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें निश्चित कर लें और इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाकर उसे सभी स्थानो के सभी उद्योगो मे लागू कर दें। परतु इस विधि को कार्यान्वित करने मे बहुत-सी कठिनाइया हैं इसलिए उसे कही भी अपनाया नही जाता।

(ii) **मजदूरी मडलियां नियुक्त करना :** न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के

किस्‌दो प्रकार की मडलियां हो सकती हैं—**प्रथम** तो वे जो स्वयं मजदूरी की दर निश्चित नहीं करतीं बल्कि केंद्रीय अधिकारी को मजदूरी की दर निर्धारित करने में परामर्श देती हैं। इन मडलियों मे श्रम व पूंजी दोनो के प्रतिनिधि रहते हैं। **दूसरी** वे मडलियां जिनका प्रमुख कार्य मजदूरी का निर्धारण करना होता है और ये काम के घटों, छुट्टिया आदि का भी नियमन करते हैं।

(iii) **समझौता व्यवस्था व पच-निर्माण** न्यूनतम मजदूरी की दर के निर्धारण में समझौता व्यवस्था तथा निर्णय का भी सहारा लिया जा सकता है। इनका प्रमुख उद्देश्य श्रम व पूंजी के बीच हुए सघर्षों को समाप्त करना व उचित मजदूरी का निर्धारण करना होता है।

2 निर्वाह या पर्याप्त मजदूरी
(The Living Wage)

निर्वाह मजदूरी से हमारा आशय कम से कम इतनी मजदूरी से है जो कि किसी श्रमिक की अनिवार्यताओं व आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त हो। निर्वाह मजदूरी की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्न हैं—

(i) **दक्षिण आस्ट्रेलिया की औद्योगिक सहिता सन् 1920 :** निर्वाह मजदूरी से आशय यह है कि श्रमिक को कम से कम इतना पारिश्रमिक तो अवश्य मिलना चाहिए कि जिस क्षेत्र मे वह नियुक्त हो वहा की सामान्य दशाओं के अनुसार वह अपनी उचित व मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने मे समर्थ हो सके।"

(ii) **कॉमन-वेल्थ मध्यस्थ न्यायालय :** *निर्वाह मजदूरी से अभिप्राय यह है* कि श्रमिकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक समाज के सभ्य नागरिक के रूप मे सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए।'

(iii) **उचित मजदूरी समिति** 'निर्वाह मजदूरी वह राशि है जो न केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है बल्कि स्वास्थ्य और प्रतिष्ठा की भी व्यवस्था करती है अर्थात् उसके द्वारा सामान्य सुख-सुविधाओ, बच्चो की शिक्षा बीमारी मे इलाज, सामाजिक आवश्यकता और वृद्धावस्था इत्यादि प्रधान आपत्तियों मे सुरक्षा का भी प्रबंध होता है।"

समिति ने यह भी कहा कि इस प्रकार की मजदूरी का निर्धारण राष्ट्रीय आय एव उद्योग *की क्षमता को ध्यान मे* रखकर *ही किया जा सकता है। समिति ने यह मत* व्यक्त किया है कि यद्यपि निर्वाह मजदूरी को अतिम लक्ष्य बनाना चाहिए- 'यह सामान्यतया स्वीकृत किया जाता है कि हमारी राष्ट्रीय आय के वर्तमान स्तर की दृष्टि मे अधिक उन्नत देशो मे प्रचलित मानको पर निर्वाह मजदूरी का भुगतान नही किया जा सकता।

यह उल्लेखनीय है कि मजदूरी का लक्ष्य किसी एक समय पर एक आदर्श या लक्ष्य मात्र रह सकता है क्योंकि बदलती हुई दशाए और रहन सहन उच्चतर सामान्य स्तरो को उपलब्धि निर्वाह मजदूरी के लक्ष्य को एक अधिक ऊंचे स्तर पर अब आगे

बढा सकती है और इस प्रकार निर्वाह मजदूरी एक अभिष्ट या अन्तिम लक्ष्य है जिसको प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

स्पष्ट है कि जीवन मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से कही अधिक होगी परन्तु हम यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उद्योगपति के लिए उसका देना सभव भी है या नही। न्यायपूर्ण मजदूरी वही कहला सकती है जो न केवल मजदूरी बल्कि उद्योगपति के लिए भी लाभदायक एव व्यावहारिक हो।

3 न्यायपूर्ण व उचित मजदूरी
(Fair Wages)

न्यायपूर्ण मजदूरी की परिभाषा देना एक कठिन कार्य है क्योकि प्रत्येक देश की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितिया भिन्न होती हैं अत यह सभव है कि एक देश के लिए जो मजदूरी उचित हो वही किसी अन्य देश के लिए अनुचित हो। वस्तुत उचित मजदूरी का निर्धारण विभिन्न क्षेत्रो, विभिन्न उद्योगो की विशिष्ट परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर ही किया जा सकता है। उचित मजदूरी की परिभाषा के सबधो मे निम्नलिखित मत उल्लेखनीय है—

1 **मार्शल** 'किसी उद्योग मे मजदूरी का औचित्य (Fairness) उद्योग के मजदूरी के स्तर को देखकर मालूम किया जा सकता है। यदि श्रम की माग को स्थिर मान लिया जाए तो उचित मजदूरी उसे कहेंगे जो दूसरे धधो मे लगे उस श्रम के मूल्य के बराबर होती है जिसम समान कठिनाई परेशानी होती है और जिसके करने के लिए समान प्राकृतिक दक्षता और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।'[1]

2 **पीगू के अनुसार** . "एक ही प्रकार के श्रमिको को एक ही प्रकार के व्यवसाय मे तथा आस-पास के क्षेत्रो मे मजदूरी की जो चालू दर दी जाती है उसी चालू दर (Current Rate) के बराबर ही मजदूरी की दर के होन पर उसे उचित कहा जाएगा। यह परिभाषा सकुचित दृष्टिकोण से दी गई है। इसके विपरीत सपूर्ण देश मे *और अधिकाश व्यापारो मे समान कार्यों के लिए जब समान ही मजदूरी की दर प्रचलित* होती है तो पीगू विस्तृत दृष्टिकोण से उस दर को उचित मानते हैं।"[2]

3 **एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइसेज** उचित मजदूरी स तात्पर्य *उस पारितोषण का है जो कि श्रमिको को समान कुशलता कठिनाई अथवा अरुचि कार्य* के प्रति फलस्वरूप दिया जाता हो। स्पष्टत यह मजदूरी इस बात पर आधारित है कि मजदूरी निर्धारित करने वाली सस्था के सम्मुख कोई आदर्श या प्रमाणित स्तर है जिसके अनुसार मजदूरी निश्चित की जाती है।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उचित मजदूरी के सबध मे कोई भी एक सर्वमान्य

1. Quoted by Pigou · The Economics of Welfare, p 550
2. Pigou : The Economics of Welfare, p 550
3. Encyclopaedia of Social Sciences, p 523.

व पूर्ण परिभाषा नहीं है। उक्त परिभाषा के आधार पर हम एक व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह कह सकते हैं कि उचित मजदूरी वह मजदूरी है, जिससे श्रमिक के जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और सामाजिक स्तर के अनुसार श्रमिक अपना रहन सहन का स्तर बनाए रखकर जीवन को सुखी बना सके।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त उचित मजदूरी समिति ने **एक न्यूनतम और एक निर्वाह मजदूरी के मध्य अन्तर किया है** और बताया कि न्यूनतम मजदूरी निर्वाह मजदूरी से कम होती है। उचित मजदूरी के सबध मे समिति ने सिफारिश की कि वह न्यूनतम मजदूरी से ऊपर तथा निर्वाह मजदूरी से नीचे होनी चाहिए। इसने यह निश्चित किया कि जब न्यूनतम मजदूरी स्पष्टतया उचित मजदूरी की न्यूनतम सीमा है, इसकी उच्चतम सीमा सामान्य रूप से उद्योग की भुगतान-क्षमता के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए। इन दोनो सीमाओं के बीच वास्तविक मजदूरी निम्न बातों को ध्यान मे रखकर निश्चित की जानी चाहिए—(अ) श्रम की उत्पादकता (ब) उसी उद्योग अथवा पड़ोस के उद्योग मे प्रचलित मजदूरी की दर, (स) राष्ट्रीय आय का स्तर (द) राष्ट्रीय आय का वितरण, (य) देश की अर्थव्यवस्था मे उद्योगों का स्थान।

जिन श्रमिको के लिए उचित मजदूरी निश्चित करनी है उनके परिवार के आकार के सबध मे समिति ने पारिवारिक बजट अनुमानो के परिणामो का अनुसरण करते हुए परिवार को तीन उपभोग इकाइयो के सदृश माना है। समिति ने यह भी परामर्श दिया है कि केवल उन्ही उद्योगों के लिए जिनके सबध मे सरकारें उचित मजदूरी निर्धारित करना आवश्यक समझती हैं और केवल सुपरवाइजरी स्तर तक के कर्मचारियो तक के लिए उद्योग एव क्षेत्र के आधार पर उचित मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए।

उचित मजदूरी का निर्धारण
(Determination of Fair Wages)

यद्यपि सैद्धातिक दृष्टि से उचित मजदूरी की परिभाषा सरल व स्पष्ट है किंतु व्यवहार मे उचित मजदूरी के निर्धारण मे निम्नलिखित प्रमुख कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है—

1 **उद्योग की भुगतान-क्षमता के निर्धारण मे कठिनाई** उचित मजदूरी समिति ने अपने प्रतिवेदन म यह उल्लेख किया है कि उचित मजदूरी की अधिकतम सीमा उद्योग की भुगतान-क्षमता पर आधारित होनी चाहिए। सैद्धातिक दृष्टि से यह बात ठीक भी प्रतीत होती है कि किसी उद्योग की उत्पादकता ही वह स्रोत है जिसमे से मजदूरियो का भुगतान किया जाता है और उद्योग की वहन-क्षमता से अधिक मजदूरी नही दी जा सकती। परतु प्रश्न यह उठता है की उद्योग की भुगतान-क्षमता को कैसे मापा जाए। कुछ व्यक्तियो का विचार है कि एक क्षेत्र विशेष के उद्योग विशेष की भुगतान क्षमता ही इसके निर्धारण की आधारभूत कसौटी होनी चहिए और उस क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली समस्त औद्योगिक इकाइयो मे भी इसी आधार पर सामान्य पारि-

तोषण की व्यवस्था होनी चाहिए। इस विचारधारा के सबध मे उचित मजदूरी समिति के निम्नलिखित शब्द स्मरणीय हैं: "हमारा विचार तो यह है कि उद्योग की भुगतान-क्षमता का निर्धारण करने के लिए किसी विशिष्ट इकाई अथवा देश के समस्त उद्योगो की क्षमता का आधार मानना त्रुटिपूर्ण होगा। न्यायोचित आधार तो यह होगा कि निर्धारित क्षेत्र के किसी विशिष्ट उद्योग की क्षमता को आधार माना जाय और जहा तक सभव हो सके, उस क्षेत्र की समस्त सबधित औद्योगिक इकाइयो के लिए समान मजदूरी निश्चित करनी चाहिए। स्पष्टत मजदूरी निर्धारण करने वाले बोर्ड के लिए प्रत्येक औद्योगिक इकाई की भुगतान-क्षमता का माप करना सभव न होगा···।"

सामान्तया यह कहा जाता है कि शुभ लाभ किसी उद्योग के भुगतान-क्षमता का सर्वोत्तम सूचक है। परतु इस कसौटी मे भी अनेक कठिनाइयो का आना स्वाभाविक है। मूल्य-ह्रास-कोष (Depreciation Fund) तथा अन्य विविध प्रकार के कोषों की मात्रा को बढाकर वास्तविक लाभ की मात्रा को कम किया जा सकता है। उद्योग से सबधित अन्य विविध प्रकार के व्ययो के सबध मे भी सामान्य कठिनाई उपस्थित हो सकती है। परिणामत जब लेखो मे व्यवसाय के सही शुद्ध लाभ का अनुमान नहीं लग सकता तो उसके आधार पर निर्धारित भुगतान-क्षमता भी सही नही होगी। इसलिए उचित मजदूरी समिति ने यह सुझाव दिया है कि उचित मजदूरी को प्रचलित मजदूरी की दरो से सबधित करना अधिक हितकर होगा।

उद्योग की भुगतान-क्षमता को मापने के प्रमुख आधार निम्नलिखित हो सकते हैं—

(अ) **उद्योग की लाभ-हानि** · इस सिद्धात के अनुसार लाभ की एक निश्चित मात्रा को आधार मान लिया जाता है जिसके अनुसार मजदूरी की एक नियत दर निर्धारित कर दी जाती है। यदि लाभ की दर उस नियत दर से बढती है तो इसका तात्पर्य यह होगा कि उद्योग की भुगतान-क्षमता मे वृद्धि हुई है और उसी अनुपात मे श्रमिको की मजदूरी मे भी वृद्धि की जा सकती है। इसके विपरीत यदि नियत लाभ की तुलना मे वास्तविक लाभ की दर गिरती है तो यह उद्योग की भुगतान-क्षमता मे कमी का प्रतीक होगा और इसी अनुपात मे मजदूरी की दर को घटा देना चाहिए।

(ब) **उत्पादन मात्रा** उद्योग के उत्पादन की एक मात्रा निश्चित करके फिर उसमे वृद्धि या कमी से भी क्रमश उद्योग की भुगतान-क्षमता मे वृद्धि या कमी का अनुमान लगाया जा सकता है। व्यवहार मे यह सिद्धात अधिक लोकप्रिय नही है क्योकि श्रमिको द्वारा अधिक परिश्रम करने पर भी उत्पादन की मात्रा मे अन्य कारणो से कमी आ सकती है।

(स) **उद्योग का क्रय मूल्य:** लाभ की भाति वस्तुओ के क्रय मूल्य का भी एक केंद्र-बिंदु नियत किया जा सकता है और उसमे वृद्धि या कमी के अनुपात मे उचित मजदूरी की दर मे भी वृद्धि या कमी की जा सकती है। व्यवहार मे यह सिद्धात उपभोक्ता के हितो के विरुद्ध सिद्ध हुआ है।

(द) **बेरोजगारी**. इस सिद्धात के अनुसार बेरोजगारी का एक स्तर मान लिया

जाता है और पारिश्रमिक की दर भी निर्धारित कर ली जाती है। फिर बेरोजगारी के स्तर मे कमी या वृद्धि क्रमश उद्योग की देय-क्षमता मे वृद्धि या कमी का प्रतीक समझी जा सकती है। परतु यह सिद्धात भी न्यायपूर्ण नहीं है क्योकि बेरोजगारी के लिए बहुत से कारण उत्तरदायी हो सकते है और यह कहना सदैव सत्य नही होगा कि बेरोजगारी मे वृद्धि का एक मात्र कारण उद्योग की भुगतान क्षमता मे कमी ही है।

2 **औद्योगिक उत्पादकता का निर्धारण :** यद्यपि उचित मजदूरी का श्रम की उत्पादकता से भी गहरा सबध है, परतु कुल औद्योगिक उत्पादकता केवल श्रम की उत्पादकता (कार्य-क्षमता) पर ही निर्भर नही करती बल्कि औद्योगिक उत्पादकता पर प्रबन्ध-क्षमता, वित्तीय तकनीकी कुशलता आदि का भी प्रभाव पडता है। इन अन्य बातो का श्रमिको से कोई सबध नही होता परतु फिर भी उत्पादकता पर उनका प्रभाव पडता है। यह भी सभव है कि गिरी हुई उत्पादकता का कारण स्वय न्यून मजदूरी ही हो। अत उत्पादकता की मात्रा का निर्धारण करते समय इसको प्रभावित करने वाले समस्त घटको को ध्यान मे रखना चाहिए।

3 **उचित मजदूरी को लागू करने मे कठिनाई** उचित मजदूरी का निर्धारण करने के बाद उसको क्रियान्वित करने मे बहुत सी कठिनाइयो का सामना करना पडता है जिनका समाधान सरल नहीं है। उचित मजदूरी को क्रियान्वित करने के लिए उचित मजदूरी समिति ने मजदूर बोर्डों की स्थापना का समर्थन किया है। इसने यह सिफारिश की है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक प्रादेशिक बोर्ड होना चाहिए जिसमे स्वतत्र सदस्य और समान सख्या मे सेवायोजको और श्रमिको के प्रतिनिधि हो। इस बोर्ड के अतिरिक्त मजदूरी नियमन के लिए चुने गए प्रत्येक उद्योग के लिए एक क्षेत्रीय बोर्ड भी होना चाहिए। अत मे 'सेण्ट्रल अपीलेट बोर्ड होना चाहिए जिसके पास मजदूरी बोर्डों के विरुद्ध अपील की जा सके।

निष्कर्ष . भारत मे उचित मजदूरी के निर्धारण की आवश्यकता अत्यत ही प्रबल है परतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि कोई भी मजदूरी श्रमिक वर्ग के लिए तब तक उचित न होगी, जब तक कि वह निर्वाह मजदूरी न हो। यह श्रमिको का मौलिक आधार है जिसे स्वीकृति मिलनी ही चाहिए।

यह उल्लेखनीय है कि न्यूनतम, उचित एव निर्वाह मजदूरियो की धारणाओ को एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक् नही मानना चाहिए। डॉ० वी० बी० सिह के शब्दों मे, "जबकि देश मे विकास की उच्चतर अवस्थाओं मे मजदूरी स्तर निर्वाह मजदूरी के समान होने की प्रवृत्ति रख सकता है विकास के बीच के स्तर पर निश्चित की गई न्यूनतम मजदूरिया उचित मजदूरी स्तर के अनुरूप हो सकती हैं। किसी देश मे वास्तव मे प्रचलित होने वाला मजदूरी का स्तर पर्याप्त सीमा तक आर्थिक विकास के स्तर पर निर्भर करेगा। फिर भी मजदूरी नियमन एव मजदूरी निश्चित करने वाली मशीनरी द्वारा किया गया कार्य पर्याप्त सीमा तक एक ऐसी मजदूरी का ढाचा विकसित करने मे, जो उचित है और साथ ही देश मे आर्थिक क्रिया के स्तर के अनुरूप हो, समर्थ हो सकता है।"

उचित मजदूरी के सबध में योजना आयोग का सुझाव : योजना आयोग ने उचित मजदूरी के सबध मे निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये है —

1 **दरों का निर्धारण वैज्ञानिक आधार पर हो** मजदूरी का निर्धारण काल्पनिक न होकर वैज्ञानिक आधार पर किया जाना चाहिए।

2 **मजदूरी की दरो का प्रमापीकरण** योजना आयोग के सुझाव के अनुसार मजदूरी की दरो का प्रमापीकरण जहा तक हो सके एक विस्तृत क्षत्र मे होना चाहिए।

3 **स्थायी मजदूरी नियत्रण की स्थापना** आयोग न स्थायी मजदूरी नियत्रण की स्थापना पर विशेष रूप न बल दिया। इसकी स्थापना सरकार उद्योगपति तथा श्रमिको तीनो मिलकर करें।

4 **मजदूरी जीवन निर्वाह, मजदूरी से कम नहीं होनी चाहिए** योजना आयोग ने सुझाव दिया कि श्रमिको को जो मजदूरी दी जाती है वह किसी भी हालत मे जीवन निर्वाह मजदूरी स कम नही होनी चाहिये।

5 **उद्योगपति द्वारा सहयोग** योजना आयोग ने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक उद्योग मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का लागू किया जाय तथा इसमे उद्योगपतियो को पूरा पूरा सहयोग देना चाहिय।

6 **प्राविडेण्टफण्ड योजना** उद्योग मे प्राविडेण्डफण्ड योजना भी लागू की जानी चाहिये जिसस श्रमिक इसका लाभ उठा सकें।

7 **लाभ-अशभागित योजना लागू करना** आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि जहा तक हो सके, विभिन्न उद्योगो मे लाभ अशभागिता योजना को लागू किया जाना चाहिये।

वैज्ञानिक न्यूनतम मजदूरी न्यूनतम मजदूरी अधिनियम
(Statutory Minimum Wage Minimum Wage Act, 1948)

न्यूनतम मजदूरी निर्धारण करने मे हाल ही म कुछ ठोस प्रयास किए गए। सन 1928 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी अपना प्रस्ताव पास किया। इसको मान्यता दने के लिए शाही श्रम आयोग ने भारत मे श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के प्रश्न पर विचार किया। परन्तु सन् 1946 तक इस सम्बन्ध मे कोई विशेष प्रयत्न नही हुए। 11 अप्रैल 1946 को भारत सरकार के श्रम सदस्य डा०बी० आर० अम्बेडकर ने ससद मे न्यूनतम मजदूरी विधेयक पेश किया। यह विधेयक न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के नाम स मार्च 1948 मे पास हुआ।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
(Minimum Wage Act, 1948)

विभिन्न उद्योगो मे श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने से सबधित अधिनियम को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम कहते हैं जो मार्च सन 1948 मे पास किया गया। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित हैं—

1 **अधिनियम के उद्देश्य** (Objects of the Act) इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(i) **औद्योगिक शान्ति** देश में औद्योगिक संघर्ष होते रहने से औद्योगिक विकास की गति मन्द हो जाती है। अत इस अधिनियम का एक मुख्य उद्देश्य देश में औद्योगिक शान्ति बनाये रखना है।

(ii) **श्रमिकों के जीवन स्तर में वृद्धि** इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों की मजदूरी निश्चित कर दी जाती है जिसके फलस्वरूप श्रमिकों का जीवन स्तर ऊंचा उठ जाता है।

(iii) **श्रमिकों के शोषण का अन्त** इस अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी की निम्नतम सीमा निश्चित कर दी जाती है। अत नियोक्ता उससे कम मजदूरी श्रमिक को नहीं दे सकता। फलस्वरूप श्रमिकों के शोषण का अन्त हो जाता है।

(iv) **राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि** इस अधिनियम का एक उद्देश्य राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करना भी है अर्थात् श्रमिकों को जब निश्चित वेतन प्राप्त होने का आश्वासन रहता है तो पूर्ण कार्यक्षमता से कार्य करने लगते हैं फलस्वरूप प्रति श्रमिक उत्पादन बढ़ जाने से राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है।

2 **अधिनियम का क्षेत्र** (Scope of the Act) यह अधिनियम देश के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण उद्योगों तथा व्यवसायों में लागू किया गया है तथा अन्य में लागू किया जायेगा। यह अधिनियम कौन-कौन से उद्योगों में लागू होगा इसकी सूची इसमें दी गयी है। यह अधिनियम निम्नलिखित उद्योगों में लागू किया जाएगा

(1) कृषि उद्योग (Agriculture), (2) लाख बनाने का काम (Lac Manufactories), (3) तेल की मिलें (4) अभ्रक का उद्योग, (Mica Works), (5) पत्थर तोड़ना, (Breaking), (6) तम्बाकू बनाना (7) ऊनी कालीन बनाना या शाल बुनने के कारखाने, (8) सरकारी मोटर परिवहन (Public Motor Transport), (9) सड़क निर्माण कायम रखना अथवा सुधार, (10) टनरी अथवा चमड़ा बनाने का काम (Tranneries or Leather Manufactories), (11) आटा चावल या दाल मिल, (12) रबर चाय कॉफी सिनकोना आदि के बाग, (13) स्थानीय संस्थाओं के अधीन कोई कार्य आदि।

3 **मजदूरी की न्यूनतम दरों का निर्धारण** न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न व्यवसायों एवं श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के लिए उपयुक्त सरकार निम्न लिखित दरें निर्धारित कर सकती है —(i) समयानुसार भुगतान के लिए मजदूरी की एक न्यूनतम दर जिसे इस अधिनियम में न्यूनतम समय दर कहा जायेगा। (ii) कार्यानुसार मजदूरी के लिए मजदूरी की एक न्यूनतम दर जिसे कार्यानुसार न्यूनतम दर कहा जायेगा (iii) पुरस्कार की वह न्यूनतम दर जो कि उन कर्मचारियों पर लागू होगी जो कार्यानुसार मजदूरी भुगतान के आधार पर नियुक्त किये गये हैं। इस दर का उद्देश्य उन्हें समयानुसार कार्य के आधार पर एक न्यूनतम दर दिलाना है जिसे गारंटीड दर कहेंगे। (iv) अधिक समय कार्य करने के संबंध में एक न्यूनतम दर जिसे अधिक समय

दर कहा जायेगा। उपयुक्त सरकार द्वारा मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित एव सशोधित करते समय निम्न के लिए अलग-अलग दरें निश्चित की जा सकती हैं—(क) विभिन्न अनुसूचित रोजगारो के लिए, (ख) एक ही अनुसूचित रोजगार की विभिन्न क्रियाओ के लिए, (ग) प्रौढ-युवा-बालक और काम सीखने वालो के लिए तथा (घ) विभिन्न स्थानो के लिए।

निम्न किसी भी मजदूरी अवधि के आधार पर मजदूरी की न्यूनतम दरो का निर्धारण किया जा सकता है —(अ) घटो के आधार पर, (ब) प्रतिदिन के आधार पर, (स) महीने के आधार पर, अथवा (द) किसी अन्य बडा अवधि के आधार पर जो इस अधिनियम मे प्रादिष्ट की जाय।

4 **मजदूरियो कीन्यूनतम दर** अनुसचित रोजगारो के सबध मेउपयुक्त सरकार द्वारा निश्चित या सशोधित की गई मजदूरी सबधी न्यूनतम दरो म निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है —(1) जीवन यापन भत्ते सहित अथवा रहित मजदूरी की आधार दर तथा आवश्यक वस्तुओ की रियायती बिक्री की रियायतो का नकद मूल्य। (ii) मजदूरी की आधार दर तथा विशेष भत्ता जिसकी दर का समायोजन ऐसे मध्यातरो व ऐसी रीति से किया जायेगा जो उपर्युक्त सरकार निर्देश करे। (iii) एक कुल दर जिसमे मजदूरी की आधार-दर, जीवन-स्तर सबधी भत्ता और रियायती सुविधाओ का नकद मूल्य सम्मिलित हो। जीवन-स्तर सबधी भत्ता और सेवा-सुविधाओ का मूल्य एक समुचित अधिकारी द्वारा उपयुक्त सरकार के निर्देशानुसार निर्धारित किया जायेगा।

4 **न्यूनतम मजदूरी की निर्धारण विधि** किसी अनुसूचित रोजगार के लिए इस अधिनियम के अतर्गत अगली बार मजदूरी की न्यूनतम दरें निश्चित करने के लिए निम्न कार्य-विधि अपनायी जायेगी—(क) ऐसे निर्धारण के सबध मे जाच-पडताल करने के लिए जितनी समितियो उप-समितियो की आवश्यकता प्रतीत हो उतनी ही समितिया, उपसमितिया नियुक्त की जायेंगी। (ख) समितियो के परामर्श का स बधित व्यक्तियो के विचारो पर सोच-विचार करने के बाद उपयुक्त सरकार, सरकारी बजट मे सूचना निकालकर प्रत्येक अनुसूचित रोजगार के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें निश्चित कर सकती है। यदि सूचना मे कोई तिथि इन आदेशो के लागू होने के लिए नही दी हुई है तो सूचना के प्रकाशन की तिथि से तीन माह की समाप्ति पर वे आदेश लागू हो जाएगे। (ग) सरकार द्वारा न्यूनतम दरो के सशोधन की दशा मे सरकार को परामर्शदात्री बोर्ड से भी सलाह लेनी पडेगी।

5 **न्यूनतम मजदूरी का भुगतान** (1) इस अधिनियम के अतर्गत न्यूनतम मजदूरी सामान्यतया नकद मे ही चुकायी जायेगी। (ii)जिन व्यवसायो मे उपरोक्त नियम लागू वहा श्रमिको को निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की दर स कम मजदूरी नही दी जा सकती। (iii) यदि कोई श्रमिक निर्धारित श्रमिक के अतिरिक्त समय पर कार्य करता है तो सेवा-योजक को उस श्रमिक को उस अतिरिक्त समय के लिए उस अधिनियम के द्वारा निर्धारित अतिरिक्त कार्य की मजदूरी दर अथवा सरकार द्वारा किसी नियम के अतर्गत इस

अतिरिक्त कार्य के लिए निर्धारित दर के अनुसार मजदूरी देनी पड़ेगी।

अब अधिकाश अनुसूचित उद्योगो के श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरिया निर्धारित कर दी गई है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बनाने के विरुद्ध इस दशा मे शायद ही कोई आपत्ति उठायी जा सकती है। यद्यपि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का मुख्य उद्देश्य अत्यन्त निम्न मजदूरियो के भुगतान के द्वारा श्रमिको का शोषण रोकना था इसके अन्तर्गत उन रोजगारो का भी समावेश किया गया है जिनमे या तो श्रमिक असगठित हैं अथवा जहा उनका सगठन दुर्बल है। समय के साथ साथ राज्य सरकारो द्वारा मूल अनुसूची मे स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार बहुत से नये रोजगार बढाये गये है। अधिनियम के क्षेत्र मे इस प्रकार की वृद्धि से उसके क्रियान्वयन सबधी कठिनाइया उत्पन्न हुई हैं।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे इस बात पर जोर देते हुए कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का प्रभावशाली ढग पर क्रियान्वयन किया जाना चाहिए यह सुझाव दिया गया कि उन क्षेत्रों व रोजगारो को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जहा मजदूरिया अत्यत कम हैं। द्वितीय योजना मे इस सदर्भ मे कोई परिवर्तन नही हुआ। तृतीय व चतुर्थ योजना मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के क्रियान्वयन पर असतोष प्रकट किया गया और कहा गया कि बहुत सी दशाओ मे मजदूरी दरो का निश्चित किया जाना और सशोधन प्रभावपूर्ण नही है।

आलोचना • न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का उद्देश्य यद्यपि उत्तम था परतु श्रमिक वर्ग को इससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सका। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(1) **सकुचित क्षेत्र** इस अधिनियम का क्षेत्र बहुत सकुचित है क्योकि इसमे अनेक महत्त्वपूर्ण सगठित व असगठित उद्योगों का समावेश नही किया गया है।

(ii) **असगत छूट** ' इस अधिनियम के अनुसार यदि किसी उद्योग मे एक हजार से कम श्रमिक काम करते हो तो उसमे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना आवश्यक नही है। इस छूट के कारण वे समस्त आवश्यक उद्योग छूट जाते हैं जिनकी दशा अत्यन्त सोचनीय है और जहा इस अधिनियम को कार्यान्वित करने की बहुत आवश्यकता है।

(iii) **एकीकरण का अभाव** एक ही राज्य के विभिन्न भागो और विभिन्न राज्यो म मजदूरी की दरें अलग अलग होने के कारण उनमे एकीकरण का अभाव है।

(iv) **अधिकारों का दुरुपयोग** सरकार अपने अधिकारो का दुरुपयोग करती है क्योकि देखने मे आता है कि किसी राज्य मे एक ही उद्योग मे एक विशेष प्रकार के श्रमिको के ऊपर नियम लागू किया गया है परन्तु दूसरे राज्य मे उसी उद्योग के उसी वर्ग के श्रमिको के ऊपर वह नियम लागू नही किया गया है। इससे श्रमिको के बीच असतोष उत्पन्न होता है।

5 **मुख्य व्यवसायों पर लागू न होना** उन उद्योगो म जिनमे श्रमिको की दशा

अत्यन्त ग्राचनीय है इस अधिनियम का लागू करना अत्यन्त आवश्यक है। परतु अधिनियम क अन्तगत य उद्योग इसलिय सम्मिलित नही किय जाते क्योकि उनमे 10 स कम श्रमिक कायरत हैं।

6 **प्रकाशन मे दोष** • सरकार को सबधित उद्योग के विषय मे जानकारी न होने के कारण जब सरकार राजकीय प्रशासन द्वारा न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करती है तो उसम अनेक दोष उत्पन्न हो जाते है।

7 **भृत्ति भुगतान की दोषपूर्ण पद्धति** कही कही मजदूरी का भुगतान नकद रूप के साथ-साथ अन्य रूपो म भी किया जाता है जो गलत है। इस प्रकार की पद्धति से श्रमिको का अत्यधिक शोषण होता है।

समितियों के निर्माण मे दोष नियम के अनुसार सरकार ही समिति के समस्त सदस्यो का नामाकित कर सकती है। यह दूषित प्रथा है क्योकि वस्तुत सेवायोजको व श्रमिको को अपने प्रतिनिधियो के नाम देने का अधिकार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त समिति म शिक्षक अथशास्त्री व समाज सुधारको आदि को भी सम्मिलित करना चाहिए।

9 **परामशदात्री समितियो के दोष** इन समितिया को कोई महत्वपूर्ण भूमिका देखन म नही आयी है। कवल जब निर्धारित मजदूरी की दरो म सशोधन करना होता है तो इनकी सलाह ली जाती है।

10 **अन्य दोष** (अ) इस अधिनियम के अनुसार न तो राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण की व्यवस्था है और न मजदूरी के निमाण के लिए किसी स्थायी योजना की ही योजना है। (ब) व्यावहारिक रूप म यह देखा गया है कि बिना उचित जाच पडताल करके न्यूनतम मजदूरी लागू कर दी गई है। कही कही पर तो यह इतनी अधिक निश्चित की गइ है कि उद्योग उस खर्चे का वर्दाश्त करने मे असमर्थ है। (स) इस अधिनियम म एक त्रुटि यह है कि न्यूनतम मजदूरी का अथ कभी कभी अधिकतम मजदूरी स लगाया जाता है।

कृषि मजदूरो के लिए न्यूनतम मजदूरी इसकी सीमाए
(A Minimun Wage for Agricultural Workers Its Limitations)

अधिनियम की द्वितीय अनुसूची कृषि-श्रमिको के सबध म है किंतु कृषि-श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण की समस्या कारखाना श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी के निधारण की समस्या स भी जटिल है क्योकि (अ) देश के विभिन्न भागो म प्रचलित कृषि मजदूरियो के विषय म अभी भी सांख्यिकीय सूचना बहुत कम उपलब्ध है (ब) कृषि काय म सामान्य काय दिवस क घटे निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। (स) कृषि श्रमिको का रोजगार अस्थायी होता है और प्राय वही श्रमिक कृषि-कार्यों के विभिन्न स्तरो पर विभिन्न कार्य करता है। (द) कृषि श्रमिको को मजदूरियां प्राय जिन्स अथवा वस्तुओ के रूप मे अथवा नकदी और जिंस दोनो मे चुकायी जाती हैं। इस प्रकार की मजदूरी का नकद मूल्य मालूम करना बहुत कठिन होता है। (य) उक्त कठिनाइयों के अतिरिक्त

की न्यूनतम दरो के निर्धारण एव उनके सशोधन के बारे मे उपयुक्त व्यवस्था की जाय।

2. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 की कार्य प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन किये जाएं जिससे न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण तथा उसके क्रियान्वयन मे होने वाले आवश्यक विलम्ब को रोका जाय।

3 न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का दायित्व श्रम विभागों पर है लेकिन उनके लिए यह आवश्यक कर दिया गया है कि वे सबधित विभागो के परामर्श एव सहयोग से ही न्यूनतम मजदूरिया निर्धारित करें।

4 जिन राज्यों मे कृषि श्रमिक की मजदूरी अपेक्षाकृत कम है वे राज्य अपनी दरों मे 15 अगस्त, 1975 तक आवश्यक परिवर्तन कर लें।

5 जिन राज्यो मे परिवर्तनशील महगाई भत्ता (Variable Dearness Allowance) की व्यवस्था न्यूनतम मजदूरी की दरो मे अतर्निहित नही है, उन राज्यों को न्यूनतम मजदूरी की दरो का पुन निर्धारण 2 वर्ष की अवधि के अंदर आवश्यक कर देना चाहिए।

6 समान कार्य की मजदूरी पुरुषो और महिलाओ दोनों के लिए एक समान होनी चाहिए।

कृषि श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी
(Minimum Wages for Agricultural Workers)

उपर्युक्त निर्णयो के अनुरूप आवश्यक कार्यवाही प्रयोग मे आयी है। जहा तक कृषि श्रमिक के न्यूनतम मजदूरी का प्रश्न है, उक्त सम्मेलन मे लिए निर्णयो के अनुसार बिहार, गुजरात, हरियाणा, आध्रप्रदेश, हिमाचल प्रदेश कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, मेघालय, पजाब, उडीसा, तमिलनाडु, त्रिपुरा, दिल्ली और गोआ दमन व दियू ने या तो कृषि श्रम की न्यूनतम मजदूरी पुन निधारित कर दी है अथवा उसमे सशोधन हेतु आवश्यक कार्यवाही पूरी कर ली हैं। पश्चिमी बगाल मे न्यूनम मजदूरी जीवन-निर्वाह मूल्य निर्देशाक (Cost of Living Index) स सबद्ध है, और उसमे प्रतिवर्ष आवश्यक सशोधन कर दिया जाता है। उत्तर प्रदेश सरकार ने 29 मई 1975 को न्यूनतम दरो मे सशोधन कर दिया है। केंद्र शासित इलाको मे भारत सरकार ने 3 50 रु० से 5,15 रु० प्रतिदिन की मजदूरी के स्थान 4 45 रु० से 6 50 रु० प्रतिदिन की न्यूनतम मजदूरी अकुशल श्रमिक के लिए प्रत्येक क्षेत्र मे निर्धारित कर दी है।

पुरुषो और स्त्री श्रमिकों के लिए समान पारिश्रमिक
(Equal Remuneration for Men and Women Workers)

अतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष म हुई विशेष माग का ध्यान म रखते हुए पुरुषों और स्त्रियों के लिए समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक की व्यवस्था लागू करने के उद्देश्य से 26 सितबर 1975 को राष्ट्रपति द्वारा समान पारिश्रमिक अध्यादेश, 1975 (The Equal Remuneration Ordinance, 19) जारी किया गया। इस

महत्त्वपूर्ण अध्यादेश के लागू होने से, 'लिंग-भेद से आधार पर मजदूरी भुगतान का वर्षों पुराना विभेदात्मक तरीका समाप्त हो गया।

इस आध्यादेश मे महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढाने हेतु सलाहकार समिति गठित करने का भी प्रावधान है। यह आध्यादेश बागान मे 15 अक्टूबर, 1975 से स्थानीय सरकारो (नगरपालिका आदि) में 1 जनवरी, 1976 से केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों मे 12 जनवरी, 1976 से तथा अस्पतालों मे 27 जनवरी, 1976 से लागू किया गया।

अध्यादेश का स्थान अब संसद द्वारा पारित समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1975 (The Equal Remuneration Ordinance,1975) ने ले लिया है।

भारत में राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी की उपयुक्तता
(The Feasibility of National Minimum Wage in India)

इस संबंध मे काफी मतभेद है कि भिन्न-भिन्न सेवायोजको, क्षेत्रो, उद्योगों आदि के लिए भिन्न-भिन्न न्यूनतम मजदूरिया निश्चित की जानी चाहिए अथवा एक समान न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाय। यह कहा जाता है कि यदि लक्ष्य मजदूरी की निचली सीमा प्रदान करना और प्रत्येक श्रमिक के लिए एक न्यूनतम जीवन-स्तर निर्धारित करना हो तो यह आवश्यक है कि एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाय। इससे (अ) अनावश्यक रूप से व्यापक मजदूरी में अतर दूर होगे, (ब) अधिक कुशल उपक्रमो पर अतिरिक्त बोझ नहीं पडेगा, (स) मजदूरियों के नियमन के लिए अधिक सरल और अपेक्षाकृत छोटी मशीनरी की आवश्यकता होगी। परतु एक समान राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निश्चित किये जाने के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि यदि जीवन निर्वाह लागत श्रमिकों की उत्पादकता एव उद्योग की भुगतान-क्षमता म बहुत अधिक विषमताए हैं तो राष्ट्रीय आधार पर निश्चित की जाने वाली न्यूनतम मजदूरी कुछ श्रमिकों के लिए बहुत ऊची होगी और कुछ अन्य श्रमिको के लिए बहुत नीची होगी। इन्ही कारणो म विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों मे श्रमिकों के लिए भिन्न-भिन्न न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाती है और जहा राष्ट्रीय आधार पर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाती है वहा भी विभिन्न क्षेत्रो मे जीवन-निर्वाह लागत में विभिन्नताओं के लिए यह छूट (allowance) रखी जाती है और कुशल मजदूरों के सबध में विभेदात्मक नीति अपनायी जाती है।

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के संबध में राज्य सरकारों और शासकीय विभागो का यह सामान्य मत है कि यद्यपि राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी की अत्यत आकर्षक धारणा हो सकती है किन्तु इसे व्यावहारिक रूप देने में अनेक कठिनाइया हैं। उनके विचार म एक क्षेत्रीय न्यूनतम दर के निर्धारण से न्यूनतम मजदूरी की धारणा को कयान्वित करना चाहिए।

इसके विपरीत श्रमिक सगठनों का कहना है कि मजदूरी के सबध में एक राष्ट्रीय न्यूनतम दर निश्चित की जानी चाहिए जिसके नीचे किसी सेवायोजक को

श्रमिक नियुक्त करने का निषेध होना चाहिए। इस राष्ट्रीय न्यूनतम दर के साथ विभिन्न क्षेत्रों में रहन-सहन के स्तरों में विशेष रूप में क्षेत्रीय न्यूनतम दर भी निर्धारित की जानी चाहिए। परन्तु सेवायोजकों का कहना है कि शोषित उद्योगों के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम दर निश्चित की जा सकती है परन्तु अन्य उद्योगों की स्थिति में एक न्यूनतम दर निर्धारित करना आवश्यक है।

यद्यपि एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है, परन्तु एक समान राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी देश की विशालता एवं उद्योगों तथा क्षेत्रों में विकास के स्तरों में व्यापक भिन्नताओं के कारण निश्चित नहीं की जा सकेगी। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में जो कठिनाइयाँ निहित हैं उनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। किन्तु "यह सम्भव है कि प्रत्येक राज्य में विभिन्न समरूप क्षेत्रों में क्षेत्रीय न्यूनतम दर निश्चित की जाय को वास्तव में अधिनियम के अन्तर्गत एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र के भीतर भी निश्चित की गई न्यूनतम मजदूरी की दरों में व्यापक भिन्नता की दृष्टि से आवश्यक हो सकती है। समय बीतने पर स्वयं इस क्षेत्र को पूरे राज्य के लिए विस्तृत किया जा सकता है। किन्तु न्यूनतम मजदूरी नियत करने के लिए किसी राज्य के क्षेत्र में अधिक विस्तृत क्षेत्र न केवल अव्यावहारिक हो सकता है बल्कि यह श्रमिकों के सर्वोत्तम हित में भी नहीं होगा। कुछ उद्योगों के सदर्भ में जो दो या तीन समीपवर्ती राज्यों में विस्तृत होते हैं, एक सामान्य वैधानिक न्यूनतम मजदूरी का नियत किया जाना न केवल उपर्युक्त बल्कि वांछनीय हो सकता है, क्योंकि उसके न होने पर अधिक पूँजी विनियोजन की आवश्यकता न रखने वाले उद्योग एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने की प्रवृत्ति रख सकते हैं, जैसा कि बीड़ी उद्योग में हुआ है।"[1]

परीक्षा-प्रश्न

1. 'न्यूनतम मजदूरी' की परिभाषा दीजिए। न्यूनतम मजदूरी के लक्षण क्या हैं? क्या भारतीय कृषि-श्रमिकों पर यह लागू किया जा सकता है? विवेचना कीजिए।
2. 'भारत में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम से विभिन्न क्षेत्रों के बीच मजदूरी में अन्तर समाप्त नहीं हो जायेगा, किन्तु प्रत्येक क्षेत्र के अन्तर्गत, और मुख्यतः कठिन परिश्रम के व्यवसायों में, मजदूरियों के बीच अन्तर अवश्य कम हो जायेगा।' उपरोक्त कथन की पूर्ण विवेचना कीजिए।
3. भारतीय उद्योगों में राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी के महत्त्व का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. 'न्यूनतम मजदूरी' के अर्थ, उद्देश्य व क्षेत्र की विवेचना कीजिए तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों को संक्षेप में बतलाइये।

1 T.N. Bhagoliwala : "Economics of Labour & Social Security."

5. "न्यायपूर्ण मजदूरी" के सिद्धात को समझाइये। इस सिद्धात के कार्यान्वियन में भारत में क्या कठिनाइया आ रही हैं ?
6. क्या मजदूरी का वर्तमान कलेवर सतोषजनक है ? सब पक्षो के सहयोग से एक राष्ट्रीय मजदूरी का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है ?

अध्याय 3

लाभ अशभागिता एवं सहभागिता
(*Profit Sharing and Co-partnership*)

कई प्रेरणा योजनाओ के होते हुए भी सेवायोजको और श्रमिको के मध्य काफी मतभेद है जिसके परिणाम हडतालें तथा तालाबंदिया हैं, जिसका राष्ट्र की आर्थिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पडता है। सेवायोजको व श्रमिको के आपसी सघर्ष को मिटाने अथवा कम करने के लिए सतत् प्रयत्न किये गये हैं जिसमे से लाभ अशभागिता व श्रम सहभागिता का भी पर्याप्त सफलता के साथ प्रयोग किया जा सकता है। आशा है कि इन योजनाओ से सेवायोजको या श्रमिको के मध्य मधुर सबध स्थापित हो सकेंगे व औद्योगिक क्षेत्रो मे उन्नति होगी।

लाभ अंशभागिता की परिभाषाए

लाभ अशभागिता मजदूरी भुगतान की कोई प्रणाली नही है। वर्तमान व्यवस्था मे यह समझा जाने लगा है कि श्रमिक अपने कठिन परिश्रम से उद्योग के सचालन मे भाग लेने के कारण लाभ का कुछ भाग उसे भी प्राप्त होना चाहिए। अत श्रमिको को उद्योग के लाभो का एक भाग देने की पद्धति को ही लाभ अशभागिता कहते है। लाभ अशभागिता की कुछ प्रमुख परिभाषाए इस प्रकार है—

1 **हेनरी आर० सीगर** . "यह एक समझौता है जिसके अनुसार श्रमिक को लाभ का एक हिस्सा मिलता है जो कि लाभ होने से पूर्व ही निश्चित कर दिया जाता है।"

2 **श्री रावर्ट** : "लाभ-विभाजन एक स्वतत्र समझौता है कि लिखित या मौखिक हो सकता है और जिसके अनुसार नियुक्त श्रमिको को उनकी साधारण मजदूरी के अतिरिक्त लाभ का अश प्राप्त करने का अधिकार होता है किंतु हानि के लिए उनका कोई उत्तरदायित्व नही होता।"

3. **अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, पेरिस 1899** · "वह समझौता (औपचारिक तथा अनौपचारिक) जो स्वेच्छा से किया गया हो और जिसके अनुसार कर्मचारियो को लाभ होने से पूर्व निश्चित लाभ का हिस्सा मिलता हो।"

4. **सन् 1939 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे सीनेट की एक समिति ने लाभ अंशभागिता को परिभाषित किया है** : "श्रमिको को लाभ पहुचाने वाली वे सब योज-

नाए जिन पर सेवायोजक कुछ व्यय करता है।"

5 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन : "लाभ अंशभागिता औद्योगिक पारिश्रमिक भुगतान करने की वह पद्धति है जिसमें सेवायोजक अपने कर्मचारियों को उनकी नियमित मजदूरी के अतिरिक्त शुद्ध लाभ का एक हिस्सा देने का वचन देता है।" इस परिभाषा में यह स्पष्ट होता है कि लाभ अंशभागिता में श्रमिकों को दिये गये बोनस तथा प्रचुरी का लाभ का हिस्सा नहीं माना जायेगा अर्थात लाभ का हिस्सा इनके अतिरिक्त होगा।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि लाभ अंशभागिता वास्तव में मजदूरी देने की पद्धति नहीं है। इसमे आशय एक ऐसी विशेषता से है जिसके अन्तर्गत सेवायोजक अपने श्रमिकों को मजदूरी के अतिरिक्त अपने होने वाले लाभ में से एक पूर्वनिश्चित अंश देने के लिए तैयार रहते है जिससे श्रमिक को प्रेरणा मिलती है।

विशेषताएं : लाभ अंशभागिता की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(1) **शुद्ध लाभ का आधार** श्रमिकों को वितरित किया जाने वाला भाग उपक्रम के शुद्ध लाभ पर आधारित होता है।

(2) **पूर्वनिश्चित प्रतिशत** श्रमिकों को लाभ का कितना प्रतिशत दिया जाय यह पहले से निश्चित कर दिया जाता है।

(3) **अनिश्चितता** इस प्रकार श्रमिकों को दिया जाने वाला लाभ अनिश्चित रहता है। लाभ अधिक या कम हो सकता है और कभी वास्तविक हानि भी हो सकती है।

(4) **मजदूरी के अतिरिक्त** लाभ के रूप में प्राप्त होने वाला भाग मजदूरी को नियमित मजदूरी के अतिरिक्त होता है।

(5) **सभी कर्मचारियों को लाभ** लाभ अंशभागिता की व्यवस्था का लाभ कुछ विशिष्ट कर्मचारियों तक सीमित नहीं होता बल्कि उसका लाभ उपक्रम के प्रत्येक कर्मचारी को मिलता है।

(6) **व्यक्तिगत कुशलता का ध्यान न देना** लाभ अंशभागिता का हिसाब लगाते समय श्रमिकों की व्यक्तिगत कुशलता का ध्यान नहीं दिया जाता।

(7) **लाभ अंश भुगतान का ढंग** श्रमिकों को लाभ का भाग नकदी के रूप में दिया जा सकता है अथवा उनके लाभों के भाग को प्राविडेंटफण्ड या पेंशन में जमा कर दिया जा सकता है। कभी-कभी लाभ का भाग अंशों एवं स्कन्धों के रूप में भी वितरित किया जा सकता है।

(8) **लाभ का समय** श्रमिकों को लाभ का एक भाग निर्धारित अवधि के समाप्त होने पर दिया जाता है। प्राय लाभ का भाग वार्षिक लेखा वर्ष की समाप्ति पर ही दिया जाता है।

(9) **समस्त श्रमिकों को योजना की जानकारी** इस लाभ का ज्ञान समस्त लाभ पाने वाले श्रमिकों को होता है। लाभ-अंशभागिता में यह विशेषता होनी चाहिये कि प्रत्येक श्रमिक वैयक्तिक लाभ-अंश निर्धारण करने की मोटी रूप रेखा पहले से ही ज्ञात कर सके।

(10) **निश्चित समझौता :** लाभ का भाग श्रमिको तथा नियोक्ताओ मे हुए किसी निश्चित समझौते के अनुसार ही दिया जाता है।

ऐतिहासिक सिंहावलोकन

इस योजना का विचार सर्वप्रथम एक फ्रासीसी चित्रकार **श्री एम० लेकलेयर** के दिमाग मे आया। इन्होंने बताया कि इस प्रकार की लाभ अशभागिता योजना समय, सामग्री तथा यन्त्रो को बचाने मे सहायक होती है। प्रथम महायुद्ध तक यह योजना लगभग सभी देशो मे अपना ली गई थी। सर्वप्रथम फ्रास मे सन् 1820 मे व अमरीका मे सन् 1870 मे यह योजना लागू की गई। भारत मे लाभ अशभागिता की प्रथा उत्पादित वस्तु मे हिस्सा बाटने की प्रथा के रूप मे अनिश्चित काल से विद्यमान है। औद्योगिक क्षेत्र मे इसका श्रीगणेश सन् 1940 के बाद ही हुआ।

लाभ अशभागिता के विभिन्न रूप व तरीके

लाभ अशभागिता के विभिन्न प्रारूप हो सकते हैं—

1 **औद्योगिक आधार** उद्योग के समस्त श्रमिको को समान रूप मे पारिश्रमिक देने के लिए उस उद्योग विशेष की विभिन्न इकाइयो का लाभ एक स्थान पर एकत्रित किया जाता है। इस पद्धति से समस्त उद्योग के श्रमिको के लाभ अश मे समानता रहती है। यदि किसी औद्योगिक इकाई मे किसी वर्ष हानि हो, तो भी श्रमिको पर बुरा प्रभाव नही पडता क्योकि इसकी क्षतिपूर्ति अन्य लाभ वाली औद्योगिक इकाइयो से कर दी जाती है।

2 **स्थानीय आधार** · एक ही स्थान पर स्थापित समस्त उद्योग अपने लाभो को एकत्रित करके श्रमिको का लाभाश निकालते है जिसमे उस स्थान के सभी श्रमिको को समान रूप मे बाटा जा सके।

3 **इकाई आधार** इस पद्धति मे विभिन्न इकाइयो का लाभ अलग-अलग निकालकर प्रत्यक इकाई के श्रमिको मे बाटा जाता है।

4 **विभागीय आधार** · इसमे श्रमिको का लाभ अश निश्चित करने के लिए केवल एक विभाग विशेष के लाभ पर ही विचार किया जाता है।

5 **व्यक्तिगत आधार :** इसके अनुसार किसी श्रमिक विशेष को उसके कार्य के आधार पर ही एक निश्चित लाभांश दिया जाता है। इसमे श्रमिक के परिश्रम और पारिश्रमिक मे एकदम सीधा सबध रहता है।

लाभ-अश भुगतान के ढग : उद्योग मे जो लाभ होता है उसको श्रमिको मे निम्नलिखित ढगो मे से किसी भी ढग के द्वारा वितरित किया जा सकता है—

(1) **नकद रूप मे वितरण :** इसके अतर्गत श्रमिक के भाग मे लाभ की जितनी राशि आती है उसे नकद रुपयो मे उन्हें दे दिया जाता है। कभी-कभी श्रमिको के नाम **खाते खोल कर** उसमे यह राशि जमा कर दी जाती है तथा श्रमिको को उसमे से रुपया **निकालने के लिए अधिकार दे दिया जाता है।**

(2) **प्राविडेंटफंड अथवा पेंशन के रूप मे वितरण :** इसके अनुसार श्रमिको को लाभ की राशि नकद अथवा अशो के रूप मे वितरित न कर उन्हे प्राविडेंटफड अथवा पेंशन आदि में जमा कर दिया जाता है। इससे श्रमिको को वृद्धावस्था के समय यह राशि लौटा दी जाती है।

(3) **अशो अथवा स्कन्ध के रूप मे वितरण** श्रमिको को लाभ का भाग नकद रुपयो मे न देकर उतने ही मूल्य के कम्पनी के अशो अथवा स्कन्ध के रूप मे वितरित कर दिया जाता है। इससे श्रमिक उस कपनी का एक प्रकार से सहभागी बन जाता है तथा उनका उद्योग मे स्थायी हित हो जाता है।

अंशभागिता योजना के लाभ

1 **उत्पादन मे वृद्धि** लाभ मे हिस्सा पाने के कारण श्रमिक अधिक परिश्रम करता है क्योकि लाभ उसके परिश्रम के अनुसार ही अधिक या कम होगा। फलत उत्पादन मे वृद्धि होती है।

2 **वस्तु के गुण मे उन्नति** . श्रमिक कपनी का विक्रय बढाने के लिए इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि वह अन्य कारखानो की तुलना मे अच्छे गुण की वस्तु तैयार करे।

3 **उत्पादन लागत मे कमी** · लाभ मे हिस्सा पाने के कारण श्रमिक इस बात का प्रयत्न करता है कि कम से कम खर्च हो ताकि लाभ की मात्रा बढे। श्रमिक सामग्री, ईंधन एवं मशीन का अधिकतम सदुपयोग करते हैं ताकि व्यय कम से कम हो।

4 **श्रमिक व सेवायोजक के सबधों में सुधार** यदि श्रमिक ईमानदारी और मेहनत से कार्य करते हैं तो श्रमिक व सेवायोजक के सबध अच्छे बने रहते हैं। लाभ अश भागिता योजना मे श्रमिक व सेवायोजक एक लक्ष्य होकर परस्पर मिलकर काम करने की प्रवृत्ति व सहयोग की भावना से प्रेरित होते है।

5 **निरीक्षण आवश्यक नहीं :** इस प्रणाली मे निरीक्षको की आवश्यकता नहीं होती क्योकि श्रमिक स्वय ही उत्साह से अधिक और अच्छा कार्य करते हैं।

6 **श्रमिको की आय व जीवन-स्तर में वृद्धि** · लाभ अशभागिता योजना से श्रमिको की आय मे वृद्धि होती है। आय बढ जाने से उनका रहन सहन का स्तर ऊचा उठ जाता है और इससे श्रमिको की कार्य-क्षमता मे वृद्धि होती है।

7 **श्रमिको के रोजगार मे स्थिरता** इस प्रणाली के कारण उद्योग मे श्रमिको का स्थायी हित हो जाता है। वे व्यवसाय को छोडकर जाने की इच्छा नही करते क्योकि यदि वे वर्ष के मध्य मे नौकरी छोड दें तो लाभांश पाने के भी अधिकारी नही रहते। सेवायोजको को भी यह विश्वास हो जाता है कि श्रमिक स्थिर रूप से उनके रोजगार में रहेगा। अत श्रमिको की छटनी में कमी आती है।

8 **समाज को लाभ** लाभ अशभागिता पद्धति से औद्योगिक शाति रहती है क्योकि श्रमिको व सेवायोजको में झगडे कम होते हैं। इससे मजदूरी और उत्पादन में

वृद्धि होती है। अधिक मात्रा में उत्पादन के कारण उत्पादन की लागत भी कम हो जाती इसमे समाज को भी लाभ होता है क्योंकि समाज को वस्तुए कम कीमत पर प्राप्त हो जाती हैं।

9 **राष्ट्र के लाभ** *औद्योगिक शाति होने से, राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होने से व श्रमिको के जीवन-स्तर मे सुधार होने से राष्ट्र को भी लाभ होता है।*

10 **सामाजिक न्याय :** लाभ अशभागिता श्रमिको के पारिश्रमिक को सस्था की वित्तीय क्षमता से जोडकर तथा उन्हे उसका सह-स्वामी बनाकर सामाजिक न्याय दिलाता है। इससे समाज के दोनो वर्गों—श्रमिको और पूजीपतियो—मे आय का समान वितरण सम्भव हो जाता है।

लाभ अशभागिता की हानिया एव कठिनाइया

1 **प्रयत्न व पुरस्कार मे प्रत्यक्ष सबध का अभाव** इस प ति मे परिश्रम करने के तुरत बाद ही पुरस्कार नही मिल जाता। लाभ वर्ष मे केवल एक ही बार घोषित किया जाता है और वह भी वार्षिक-हिसाब-किताब के परिणाम पर निर्भर होता है। लाभ की अनिश्चितता और पुरस्कार कम रहने से श्रमिक का उत्साह कम हो जाता है।

इसके अतिरिक्त पुरस्कार श्रमिक की व्यक्तिगत दक्षता के अनुसार न दिया *जाकर सब श्रमिको को सामूहिक रूप से दिया जाता है। इसम कार्य करने की अधिक* प्रेरणा नही मिलती।

2 **पुरस्कार की अनिश्चितता** उद्योग के लाभ मे वृद्धि व कमी होती रहती है और कभी लाभ के स्थान पर हानि भी होती है। अत लाभ की यह अनिश्चितता श्रमिक के उत्साह को मद कर देती है और भविष्य मे वे अधिक क्रियाशील नही रहते।

3 **एकपक्षीय योजना :** इस योजना का एक दोष यह भी है कि यह एकपक्षीय है। इसके अनुसार श्रमिक को कारखाने या उद्योग विशेष मे होने वाले लाभ म स हिस्सा बाटने का तो अधिकार होता है किंतु हानि की दशा मे केवल सेवायोजको को उत्तरदायी होना पडता है।

4 **लाभ निश्चित करने के अवैज्ञानिक आधार :** लाभ-विभाजन निश्चित करने का कोई वैज्ञानिक आधार नही होता। यह अधिकतर सेवायोजको की इच्छा पर होता है।

*5. **गतिशीलता मे बाधा :** यह पद्धति श्रमिको की गतिशीलता म बाधा डालती* है और श्रमिक एक ही उद्योग मे बध जाता है।

6 **जटिल पद्धति** श्रमिक इस पद्धति को सरलता से नही समझ पाते, अत उनके मस्तिष्क मे एक सशय बना रहता है।

7. **श्रमिक को धोखा :** लाभ का हिसाब लगाते समय प्रबधको द्वारा कपट का प्रयोग करके श्रमिको को धोखा दिया जा सकता है।

8 **श्रमिको मे असतोष :** श्रमिक इस प्रकार के लाभ को प्राप्त करना अपना

एक अधिकार समझते हैं। किसी भी वर्ष पर्याप्त लाभ न होने पर और फलत साभांश प्राप्त न होने पर वे लोग असतोष प्रकट करने लगते हैं और कभी कभी असतोष की भावनी हडताल का रूप धारण कर लेती है।

9 **श्रमिकों के आत्म-सम्मान को चोट .** सेवायोजको के दृष्टिकोण से लाभ अशभागिता की योजना श्रमिको के लिये दानस्वरूप होती है जिसको वे श्रमिको पर दया समझकर देते हैं। सेवायोजक इस योजना को व्यावसायिक दृष्टि से नही देखते हैं।

10 **श्रमिक सघो द्वारा विरोध** श्रम सघ भी इस योजना का विरोध करते हैं क्योकि उन्हे मालिको से अधिक मजदूरी एव अन्य सुविधाए मागने के अवसर प्राप्त नही होते। इस योजना के अतर्गत श्रमिक सामान्यत सेवायोजक के प्रति अधिक स्वामिभक्त रहता है। इसके अतिरिक्त श्रमिको के विभिन्न समूहो मे लाभ अश, विभिन्न होने से एक समूह का साथ नही देता और जिन उद्योगों मे यह योजना लागू नही होती उन उद्योगो के श्रमिको के साथ लाभभागिता उद्योग के श्रमिक सहयोग नही देते। इससे श्रम सघो को हानि होती है। प्रो० टासिग के शब्दो मे "इससे श्रमिक अपने निकट के साथियो में ही विशेष रूप से हित रखने लगता है और उस उद्योग या स्थान के श्रमिको में हित नही रखता।"

11 **प्रबधक की अकुशलता से श्रमिकों मे निराशा** इस योजना के अतर्गत अधिक परिश्रम से कार्य करने के परिणामस्वरूप भी यह सभव है कि कुछ कारणो से अधिक लाभ न हो, जैसे अवैज्ञानिक ढग से क्रय विक्रय करना व प्रबन्ध की कुव्यवस्था आदि।

12 **प्रबध मे भाग नहीं** इस प्रणाली के अतर्गत श्रमिको को प्रबध मे भाग लेने की अनुमति नही दी जाती, परतु वे लाभ का अश पाने के पूर्ण रूप मे अधिकारी होते हैं।

13 **पूजीपतियों का विरोध** पूजीपति भी इस योजना का विरोध करते हैं क्योंकि उनका कहना है कि सस्था द्वारा अर्जित लाभ उनके द्वारा उठाए गये जोखिम का पारितोषण है। अत वह केवल उन्ही को ही मिलना चाहिए। वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि यदि श्रमिक लाभ मे हिस्सा बांटना चाहते हैं तो उन्हें हानि मे भी हिस्सा बाटना चाहिए।

निष्कर्ष : यद्यपि इस बात से इकार नही किया जा सकता कि लाभ अशभागिता योजना से श्रमिको मे सतुष्टि बढेगी, कार्यक्षमता मे सुधार होगा व राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होगी परतु इन योजनाओ को कार्यान्वित करने मे अनेक बाधाए हैं। प्रो० टासिग के मतानुसार, यह आशा बिल्कुल नही की जा सकती कि लाभ अशभागिता विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लेगी। इनके व्यापक रूप से अपनाये जाने की आशाए भी बहुत कम हैं।" श्री घनश्यामदास बिडला के विचार इस सबध म सराहनीय हैं 'इसमे सदेह नही कि लाभ अशभागिता योजना अव्यावहारिक है। विश्व मे कही भी इस प्रकार की योजना सफल नहीं हुई है, परतु मेरे विचार से श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी अवश्य देनी चाहिए एव उनके हृदय मे कार्य के प्रति प्रेरणा की भावना जाग्रत करने के लिए अधिक उत्पादन

करने पर बोनस देना चाहिए। इसमे अतिरिक्त श्रमिको की काम की स्थितियो मे भी उचित परिवर्तन करना चाहिए।" निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि जब तक सेवायोजको और श्रमिकों के बीच पारस्परिक विश्वास का वातावरण पैदा नही होता, ऐसी योजनाए कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकती।

भारत मे अशभागिता की योजना
(Development of Pro fit-sharing scheme in India)

स्वतत्रता के पूर्व भारत में लाभ अशभागिता योजना लोकप्रिय नही थी। इसका उपयोग केवल एक या दो सस्थाओं में ही किया जाता था। इसका मुख्य कारण इसके *प्रति सेवायोजको की अरुचि थी। भारत में दिसम्बर, 1947 मे एक त्रिदलीय उद्योग* सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन मे औद्योगिक सबधो में सुधार करने के लिए निश्चय किया गया। 25 मई सन् 1948 में भारत सरकार ने लाभ अशभागिता पर विचार करने के लिए विशेषज्ञो की एक समिति नियुक्त की, जिसने 1 दिसम्बर सन् 1948 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं—

1. **योजना का क्षेत्र** इस समिति ने यह सुझाव दिया था कि लाभ अशभागिता की इस योजना को प्रारम्भ में परीक्षण के लिए निम्न 6 उद्योगों मे ही लागू किया जाना चाहिए—(अ) सूती वस्त्र उद्योग, (ब) जूट उद्योग, (स) इस्पात उद्योग, (द) सीमेंट उद्योग, (य) टायर निर्माण उद्योग, और (र) सिगरेट निर्माण उद्योग।

2 **योजना का उद्देश्य** समिति ने यह सिफारिश की कि लाभ अशभागिता पर विचार विमश निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए—(अ) उत्पादन मे प्रेरणा (ब) औद्योगिक शाति की स्थापना, और (स) औद्योगिक प्रबध मे श्रमिको का भाग। प्रथम बात पर समिति का यह सुझाव था कि यदि पिछली अवधि में कुल अनुपात में श्रम के उत्पादन का भाग व्यक्तिगत रूप से वितरित कर दिया जाय तो उत्पादन अधिक करने में इससे व्यक्तिगत रूप से प्रोत्साहन मिलेगा। समिति ने जिस उद्देश्य से लाभ अशभागिता की योजना की सिफारिश की वह यह था कि इससे औद्योगिक शाति की प्रेरणा मिलेगी। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर समिति ने यह सुझाव दिया था कि किसी ऐसे वर्ष मे जब श्रमिक या श्रमिक के वर्ग किसी अवैध हडताल मे भाग लेते हैं। तो लाभ का सह विभाजन पूर्णतया अथवा अशिक रूप से रोक लेना चाहिए।

3 **श्रमिकों के लाभ-अश का निर्धारण** समिति ने यह सिफारिश की कि श्रमिको को सस्था के उस लाभ में से जिसमें से पूजी पर एक उचित प्रतिफल निकाल दिया गया है, 50% का हिस्सा दिया जाय। पूजी पर उचित प्रतिफल वह प्रतिफल है जो उस पूजी को व्यवसाय में कायम रखने के लिए आवश्यक है। जहा तक यह प्रश्न है कि प्रत्येक श्रमिक को कितना लाभाश दिया जाय। यह उसके द्वारा गत वर्ष के 12 महीनों में प्राप्त मजदूरी के अनुपात में होना चाहिए, परतु इस मजदूरी मे महगाई भत्ता अथवा अन्य कोई बोनस जो उसके द्वारा प्राप्त किया गया हो, सम्मिलित नहीं होना

चाहिए। अब प्रश्न उठता है यह लाभ किस रूप मे वितरित किया जाय ? इस सबध मे समिति ने यह कहा कि यदि किसी श्रमिक का भाग उसकी मूल मजदूरी से 25% बढ जाता है तो नकद भुगतान उसकी मूल मजदूरी के 25% तक सीमित होना चाहिए और शेष राशि उसके प्रोविडेण्टफण्ड अथवा किसी अन्य हिसाब मे रखी जानी चाहिए।

4 योजना का आधार : समिति की यह सिफारिश थी कि सामान्यतया लाभ अंशभागिता का आधार उद्योग इकाई ही होनी चाहिए, लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों मे इसका आधार एक उद्योग या क्षेत्र भी हो सकता है। समिति के मतानुसार आरम्भ में उद्योग व क्षेत्र के आधार पर बबई, अहमदाबाद और शोलापुर के सूती वस्त्र उद्योग में लागू करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

आलोचनात्मक मूल्यांकन : लाभ अंशभागिता समिति की रिपोर्ट पर श्रमिकों और सेवायोजकों दोनो के ही द्वारा विभिन्न कारणो और विभिन्न आधारो पर अनेक आपत्तियां उठाई गई। केंद्रीय सलाहकार परिषद जिसने इस समिति की रिपोर्ट पर विचार किया, किसी भी निष्कर्ष पर नही पहुच सकी। अगस्त व सितम्बर सन् 1951 और जून सन् 1951 मे यह मामला बार-बार सयुक्त सलाहकार मडल की सभाओं में विचार के लिए प्रस्तुत किया गया। सयुक्त सलाहकार मडल के तत्कालीन प्रधान श्री गुलजारीलाल नदा का मत था कि लाभ अंशभागिता जैसी समस्याओ की जटिलता को ध्यान मे रखते हुए यह अधिक उपयुक्त होगा कि अमरीका इग्लैंड, जर्मनी, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ और भारत के विशेषज्ञो की सहायता से सिद्धान्तो, आदर्शों और स्तरो की स्थापना की जाय। प्रथम व द्वितीय पचवर्षीय योजना मे योजना आयोग ने इस बात का उल्लेख किया था कि लाभ अंशभागिता तथा बोनस के प्रश्नो के लिए बडी सावधानी और गहन अध्ययन की आवश्यकता है। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ और पचम पचवर्षीय योजनाओ म भी लाभ अंशभागिता योजना को लागू करने के पूर्व परिस्थितियो के गहन अध्ययन पर बल दिया गया है।

निष्कर्ष - नि:सदेह लाभ अंशभागिता योजना औद्योगिक लोकतंत्र की दिशा म प्रथम कदम है। भारत अत्यत औद्योगिक अशान्तिग्रस्त क्षेत्र है और उद्योग म शांति लाने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह तभी सभव है जबकि श्रमिक को पूंजीपतियो के साथ बराबर का साझी बनाया जाय। परतु इन योजना को कार्यान्वित करने मे कई कठिनाइयां हैं जिन पर पहले विचार किया जा चुका है। इन तथा अन्य कारणो से अमरिका और इग्लैंड मे भी लाभ अंशभागिता योजना का इतिहास उतार चढाव से पूर्ण है। भारत में सर्वप्रथम 1937 मे टाटा आयरन एण्ड स्टील कपनी ने इस योजना को अपनाया था। कपनी के शुद्ध लाभ का 22% भाग बोनस के रूप मे श्रमिको को वितरित किया था परतु फिर भी मजदूरो की उत्पादकता घट गई। इसम भी कई कारण हो सकते हैं परतु बाध्य होकर इस निर्णय पर पहुचना पडता है कि लाभ अंशभागिता योजना उत्पादकता बढाने के अपने निश्चित लक्ष्य को पूरा करने म असफल रही है। परतु अब देश की वर्तमान परिस्थितियो मे काफी अतर आ गया है और हमे वर्तमान सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के अतर्गत लाभ अंशभागिता योजना का उचित परीक्षण करना चाहिए।

अब वह समय आ गया है, जबकि पूंजीपतियो को स्वेच्छा से श्रमिको को उद्योग मे अपना साझेदार स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि वे इच्छा से ऐसा नही करते तो सामाजिक शक्तिया उन्हें सपूर्ण औद्योगिक लाभो को छोडने के लिए बाध्य कर देंगी।

सहभागिता[1]

(Co-partnership)

सहभागिता से तात्पर्य किसी औद्योगिक सस्था मे श्रमिको के हिस्सेदार बन जाने से है। लाभ अशभागिता के अतर्गत तो श्रमिक केवल उद्योग के अतिरिक्त लाभ मे से एक अश पाने के ही अधिकारी होते हैं, परतु सहभागिता के अतर्गत श्रमिको को उद्योग के लाभ मे भाग लेने के अतिरिक्त पूजी व प्रबध मे भी भाग लेने का अधिकार मिल जाता है। सेवायोजको की ही भाति श्रमिक भी औद्योगिक पूजी का एक अश देते है और प्रबध व्यवस्था मे भाग लेने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

परीक्षा-प्रश्न

1. अच्छे औद्योगिक सबध बनाए रखने के लिए 'लाभ अशभागिता' और श्रम साझेदारी के महत्त्व को आकिए। अथवा

लाभ अशभागिता से आप क्या समझते हैं ? उद्योग मे इसे लागू करने के क्या उद्देश्य हैं ? आप कहा तक सहमत हैं कि यद्यपि लाभ अशभागिता विभिन्न रूप रख चुकी है तब भी पूर्णतया परिणाम निराश ही कर रहे हैं। अथवा

लाभ अशभागिता के औद्योगिक लाभ को श्रम की ओर धकेलने के एक साधन के रूप मे इसके गुणो की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए और भारत म 'लाभ अशभागिता' पर नियुक्त की गई समिति की सिफारिशो का मूल्याकन कीजिए।

1 विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए 'औद्योगिक प्रजातत्र' नामक अध्याय।

अध्याय 4

औद्योगिक प्रबन्ध मे श्रमिको का भाग या भागीदारी

(Workers Participation in Management)

प्रबध मे भागीदारी का अर्थ आधुनिक युग मे औद्योगिक प्रबध म श्रमिको की भागीदारी की धारणा उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। राष्ट्रीय उत्पादन म श्रमिको का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी औद्योगिक अर्थव्यवस्था की समृद्धि श्रमिको के शोषण मे नही बल्कि उनके साथ सहयोग मे निहित है। इस भावना के सदर्भ म ही औद्योगिक प्रबध मे श्रमिको की भागीदारी की भावना पनपती और विकसित हुई है।

औद्योगिक प्रबध म श्रमिको क भाग की व्यवहार मे कई अर्थो म प्रयोग म लाया जाता है और उसके कई रूप मिलते है। उद्योगपतियो श्रमिको और सरकार ने अपने-अपने हितो को ध्यान मे रखकर इसका पृथक पृथक अर्थ लगाया है। उद्योगपति इसको सयुक्त परामर्श कहते है तो श्रमिक इसका अर्थ सह-निर्णय म लगाते हैं। सरकार इस योजना को औद्योगिक प्रजातत्र तथा समाजवादी समाज की स्थापना को पूर्वागमन समझती है। लेकिन इसका अर्थ कुछ भी लगाया जाय इस विचारधारा के पीछे आधारभूत भावना यह होती है कि उद्योग के सबध मे सपूर्ण उत्तरदायित्व केवल प्रबधको का ही नहीं बल्कि श्रमिको का भी है। सक्षेप मे औद्योगिक प्रबध मे श्रमिकों के भाग का **वास्तविक अर्थ उद्योग से सबधित विषयो मे श्रमिको को प्रबधको के समान हिस्सेदारी है जिसका तात्पर्य यह हुआ कि उद्योग मे श्रमिक केवल अपने श्रम को ही नहीं बेचता बल्कि उद्योग के प्रबध मे भी अपना योगदान करता है।**

कुछ प्रमुख परिभाषाए जो इस विचारधारा के मूल अर्थ को प्रस्तुत करती है व इस प्रकार है।

1 **वी० जी० मेहमाज** उद्योग के सदर्भ म कर्मचारी सहभागिता म अ नाय किसी औद्योगिक सगठन के कर्मचारियो द्वारा अपने उपयुक्त प्रतिनिधि के जरिये प्रबध के विभिन्न स्तरो पर सपूर्ण प्रबध क्षेत्र के क्रियाकलापो म निर्णय करने के अधिकार म हिस्सा लेना है।'

2 **एन० पी० घूसिया** 'प्रबध म कर्मचारी भागिता से आशय प्रबध एव कर्मचारियो द्वारा बराबर के साझीदारो की भाति प्रबध सचालन म है।

3 **डॉ० वी० आर० सेठ** 'प्रबध म वास्तविक कर्मचारी भागिता श्रम एव पूजी के बीच सहयोग स्थापित करने की एक विधि है। यह सस्था म क्या हो रहा है के दृष्टिकोण से कर्मचारियो एव प्रबध के बीच सयुक्त परामर्श मात्र नही है। यद्यपि

सयुक्त परामर्श स्वय मे कोई बुरी बात नही है। किन्तु इसे प्रबध मे वास्तविक भागिता नही माना जा सकता।"

4 **एसन फ्लेण्डर्स** "प्रबध द्वारा श्रमिको के साथ विचार-विमर्श करने का अधिकार आधारभूत रूप से नैतिक अधिक इसका आर्थिक परिणाम कुछ भी हो परतु यह अपने लाभो के आधार पर टिका हुआ है। मानव होने के नाते श्रमिक का भी अपना सम्मान है और वे स्वाभिमान के अधिकारी हैं।

5 **जी० एस० वालपोल** "श्रमिको को प्रबध मे भाग देने का विचार श्रमिको द्वारा शिकायत करने या सुझाव देने या परामर्श देने या श्रमिकों को रियायत देने तक ही सीमित नही है बल्कि उपक्रम के कार्यकर्ता होने के नाते ऐसा करने के अधिकार को मान्यता प्रदान करना है जिससे श्रमिक उस उपक्रम मे जिसने उनका धन तो नही परतु जीवन दाव पर लगा है, स्वय को सयुक्त साझेदार महसूस कर सकें।"

विभिन्न शब्दो मे प्रबध म श्रमिको की भागीदारी की विचारधारा का विकास विभिन्न अवस्थाओ मे हुआ है। फलत. इस विचारधारा को अनेक नामो से सम्बोधित किया जाता है उदाहरण के लिए यह विचारधारा अमेरिका मे **सघ प्रबध सहयोग** (Union Management Co operation), इग्लेंड एव स्वीडन मे **सयुक्त विचार विमर्श** (Joint Consuotation), फास मे **श्रम प्रबध सहयोग** (Labour Management Cooperation), पश्चिमी जर्मनी म सह-निर्धारण (Co determination) या स्वत प्रबध (Auto-management), युगोस्लाविया म कर्मचारी प्रबध (Workers Management) और भारत मे प्रबध मे श्रमिको की सहभागिता (Workers' Participation in Management) के नाम से जानी जाती है।

औद्योगिक प्रबध मे श्रमिको की भागीदारी की विशेषताए

1 **लाभाश भागिता** इस योजना के अतर्गत श्रमिक निश्चित वेतन के अतिरिक्त सस्था के शुद्ध लाभ का भी एक निश्चित अश पाते हैं। वस्तुत लाभाश भागिता को प्रबध मे श्रमिको की भागीदारी योजना का एक अश मात्र है।

2 **पूजी भागिता** श्रमिको के व्यक्तिगत लाभ का कुछ अथवा सम्पूर्ण अश सस्था की पूजी मे सम्मिलित कर लिया जाता है। फलत श्रमिक ही सस्था की पूजी के स्वामी हो जाते है।

3 **प्रबध मे भागिता:** सस्था की पूजी के एक भाग के स्वामी होने के नाते श्रमिको को सस्था के प्रबध एव व्यवस्था मे अधिकार मिल जाता है।

4 **त्रिमुखी स्थिति** इस योजना के अन्तर्गत श्रमिको को तीन तरफ से लाभ मिलता है। प्रथम तो श्रमिको के रूप मे उनको मजदूरी मिलती है, द्वितीय अशधारी के रूप मे उनको लाभाश मिलता है और तृतीय सह-प्रबधक के रूप मे सस्था के प्रबधन एवं नियत्रण मे भी भाग मिलता है।

औद्योगिक प्रजातत्र (Industrial Democracy) प्रबध मे भागीदारी को औद्योगिक प्रजातत्र की स्थिति भी कह सकते हैं क्योकि इसके अन्तर्गत समस्त औद्योगिक

ढाचा—उत्पादन प्रबंध वितरण इत्यादि प्रजातान्त्रिक आधार पर खडा किया जाता है। सारांश रूप मे लोकतंत्र के सिद्धातों को उद्योगों के अतगत श्रमिक एव नियोजकों क पारस्परिक सम्बधो के क्षत्र मे लागू करने की व्यवस्था को ही औद्योगिक प्रजातंत्र कहा जा सकता है।

औद्योगिक प्रजातत्र के आवश्यक अग (Ingredients)

पिफनर (Pfiffner J M) न औद्योगिक प्रजातंत्र के निम्न पाँच अगो की विवेचना की है

1 **द्विमुखी सचार** (Two way communication) दण्ड मे छुटकारा प्राप्त करने के विषय मे प्रत्येक कमचारी को प्रत्येक स्तर पर अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाना चाहिए। अवसर उपलब्ध करने की यह व्यवस्था व्यक्तियों द्वारा स्वय क प्रति अन्याय के विषय मे विचार या किसी काय के विषय मे रचनात्मक आलोचनाओं म सम्बधित हो सकती हैं प्रबधक गणो द्वारा शिकायत कायरीति सामूहिक सौदेबाजी सुझाव व्यवस्था की स्थापना सभाओ आदि क माध्यम स द्विमुखी सचार को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

2 **निस्तार क व्यक्तियों द्वारा नीति को प्रभावित करना** सहयोग सघष का स्थान तब तक ग्रहण नही कर सकता जब तक कि निम्न स्तर क व्यक्तियों म [illegible] भावना न पाई जाती हो [illegible] स्वीकृत [illegible] [illegible] एव उन पर [illegible]।

नीति निर्धारण पर निम्न स्तर के व्यक्तियों क प्रभाव को अधिकतर [illegible] म नियमवद्ध कर दिया जाता है। इसका एक [illegible] उदाहरण सामूहिक सौदे [illegible] है।

3 **उत्तरदायित्व पूर्ण प्रबध** आधुनिक व्यापारिक कायपालिका अधिकारी निर्देशक मण्डल उपभोक्ताओं सामुदायिक सताओ या अन्तिम रूप [illegible] कायरत कमचारियों के प्रति उत्तरदायी होता है [illegible] उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पडता है। उक्त प्रबधक इन बहुसख्यक उत्तरदायित्वों को तभी पूरा कर सकता है। बहुसख्यक उत्तरदायित्वों को निभाने मे उक्त प्रबध तभी सफलता प्राप्त कर सकते हैं जबकि वह निम्न स्तर पर काय करन वाले व्यक्तियों क विचार मान्यताओं संस्कृति आदि को सम्मत हो। यह द्विमुखी सचार की स्थापना पर बल देना तथा औद्योगिक समस्याओं के बारों म निम्न स्तर के व्यक्तियों द्वारा अधिक मात्रा म भाग लेने की व्याख्या करता है।

4 **अधिकारो का औद्योगिक विधयक** (Industrial Bill of Right) औद्योगिक प्रजातत्र का चतुर्थ अग निम्न स्तर के कमचारियों क विरुद्ध स्वेच्छाचारिक ढग स व्यवहार करने की सम्भावनाओं को न्यूनतम करन उन्हे [illegible] मनुष्य क रूप स्वीकार करने एव उन्हे अधिकार एव सुविधाओं को उपलब्ध करने स सम्बधित है।

5 **कानून का नियम** इसके अनुसार प्रबध की प्रजातत्र नियमो की माग करता है जिसके आधार पर अधीक्षक काम करते हुए प्रत्येक व्यक्ति के साथ समरूपता

के साथ व्यवहार कर सकता है। इसे "औद्योगिक धर्मशास्त्र (Industrial Jurisprudence) की सज्ञा प्रदान की जा सकती है। शिकायत कार्यरीति, सौदेबाजी से सबधित सविधाओ व विधानो, नियमो एव नियमावलियो, श्रम सबधी कानूनो (Labour Law) आदि को इसमे सम्मिलित किया जा सकता है। वस्तुत इसम सभी प्रकार के नियमो एव नियमावलियो को सम्मिलित किया जाता है जो प्रबधक की सस्थाओ मे कानून के शासन व्यवस्था करती है।

औद्योगिक प्रजातन्त्र के सिद्धांत
(Principles of Industrial Democracy)

औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना तभी हो सकती है जबकि श्रमिको एव प्रबधको म सहयोग की भावना पायी जाती हो। इस सहयोग सम्बधित सिद्धात निम्न है —

1 **श्रमिक सगठन तथा सगठनो की स्वीकृति** श्रमिको एव प्रबधको म सहयोग की मात्रा के विकास हेतु यह आवश्यक है, कि श्रमिक सगठनो को पूर्ण मान्यता प्रदान की जाय। श्रमिक सघो के मान्यता प्रदान किए जाने पर श्रमिको को प्रबधक से सम्पर्क स्थापित करने का एक माध्यम प्राप्त हो जाता है। एक प्रजातात्रिक व्यवस्था मे जिस प्रकार व्यक्ति राजनैतिक दलो द्वारा सरकार को प्रभावित कर सकते हैं उसी प्रकार श्रमिक औद्योगिक क्षेत्र म अपने सघो द्वारा अपनी कठिनाइयो का निराकरण करने विचारो एव प्रतिनिधो को सेवा योजक तक पहुचाने एव सुझावो को मनवाने आदि मे सफल हो सकते हैं।

2 **सेवायोजकों मे श्रमिक सघो के प्रति अच्छा दृष्टिकोण** औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि सेवायोजको म एव श्रमिको म परस्पर विश्वास के वातावरण की स्थापना हो। ऐसा तभी सभव है जबकि सेवायोजक श्रमिक सघो के प्रति अच्छा दृटिकोण रखते हो। औद्योगिक प्रजातन्त्र के लिए सेवायोजको म सघो के प्रति केवल अच्छा दृष्टिकोण ही आवश्यक नही है बल्कि उनके द्वारा समय-समय पर विभिन्न स्तरो पर प्रतिनिधि श्रमिक सघो के सहयोग एव परामर्श का लिया जाना भी आवश्यक है।

3 **लिखित सामूहिक स्वीकृति पत्र** • लिखित सामूहिक स्वीकृति पत्रो के तैयार करने के सहयोग की स्थापना को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। इनम सभी विषयो का उल्लेख होना चाहिए। यह पत्र सयत्र के प्रत्येक वर्ग के लिए एक निर्देशक का कार्य करते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यत उपयोगी होते हैं।

4 ***प्रभाव पूर्ण योजनाओ का विकास*** *श्रमिको और प्रबधकों के मध्य सहयोग* मे वृद्धि के लिए आवश्यक है कि इस प्रकार की योजनाओ का विकास किया जाय जो दक्षता एव कार्यकुशलता को प्रोत्साहन प्रदान कर सके। इन योजनाओ द्वारा रोजगार को स्थिरता एव सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

5 **औपचारिक कार्यरीतियो की स्थापना** यह योजनाए सहयोग मे वृद्धि एव **सयुक्त कार्यक्रमो को बनाए रखने के लिए औपचारिक कार्यरीतियो की स्थापना करतीहै।**

6 उपलब्धियों का मूल्यांकन - औद्योगिक प्रजातन्त्र सबधी योजनाए ऐसे साधनो का विकास करती हैं जिनमे उपलब्धियो का मूल्याकन किया जा सकता है। इसका फल यह होता है कि सहयोग द्वारा प्राप्त किए गए आर्थिक लाभो को विभाजित किया जा सकता है।

औद्योगिक प्रजातन्त्र की विचारधारा का विकास : औद्योगिक प्रजातन्त्र की विचारधारा का सर्वप्रथम प्रयोग इग्लैंड म किया गया। इग्लैंड मे सयुक्त औद्योगिक अपरिषदो एव कार्य समितिया की स्थापना ने औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना को शुभारम्भ किया। सयुक्त परिषदा की स्थापना ह्विटले कमीशन की सिफारिशो एव औद्योगिक न्यायालय अधिनियम, 1919 (Industrial Courts Acts 1919) के फलस्वरूप हुई। कार्य समितिया के गठन की भी सिफारिश ह्विटले कमीशन ने की थी। इग्लैंड मे इन समितियो के माध्यम म श्रमिक कारखाने के प्रबध म हिस्सा ले सकते हैं। इन समितियो मे निर्णय सदा योजको एव श्रमिको के प्रतिनिधियो द्वारा सयुक्त रूप से दिया जाता है।

तथ्यको कदापि अवहेलना नहीं कर सकते क्योकि मानवीय स्वभाव मे निम्नलिखित बातें आवश्यक और कि मानव को मानव के प्रति सहानुभूति और महत्त्वपूर्ण होना ही पड़ेगा।

(अ) मनुष्य का अपने प्रति होने वाले आदर का चिन्तन—अपनेपन व महत्त्व का विचार।

(ब) दूसरे से सहयोग प्राप्त करने की इच्छा।

(स) जीवन अस्तित्व की अर्थात् जीवित रहने की धारणा।

(द) सुरक्षा सामाजिक चेतना की इच्छा।

ये उपयुक्त बातें है जिनको देखते हुए श्रमिक को भी मानवीय आधारो पर समाज मे उचित स्थान दिया जाना चाहिए। अत स्पष्ट है कि सामाजिक प्राणी होने के नाते ही नही बल्कि उद्योग का एक सक्रिय साधन होने के नाते भी श्रमिक आत्म सम्मान और प्रतिष्ठा का अधिकारी है और यह प्रतिष्ठा उसे उद्योग मे प्रबधक समान हिस्सेदार बनाकर ही दी जा सकती है। जी० एस० वालपोल ने उचित ही कहा है " समस्त मानवीय इच्छाओ मे सबसे अधिक तीव्र इच्छा मानव के रूप मे सम्मान पाने की है। यह बात केवल शिकायत करने अथवा सुझाव देने के अधिकार तक ही सीमित नही है, बल्कि वह ऐसा करने के उत्तरदायित्व को मान्यता देना चाहता है क्योकि एक कर्मचारी होने के नाते वह उस उद्योग का सयुक्त भागीदार है जिसमे उसका रुपया तो नही किन्तु जीवन लगा होता है।"[1] फ्लेन्डर्स महोदय (Flanders) उद्योगो के प्रबध मे श्रमिको की राय और सहयोग को प्राप्त करना एक नैतिक प्रश्न है जिसका महत्त्व आर्थिक दृष्टिकोण से पूर्णतया अलग है। श्रमिक मानव होने के कारण मानवीय और सामाजिक व्यवहार के अन्तर्गत अपनी एक प्रतिष्ठा रखता है और यह अवश्य इच्छा रखेगा कि समाज उसको उचित सम्मान प्रदान करे। इतनी ही नही वह आत्म-सम्मान का अधिकारी है।"[2]

श्रमिको को उद्योगो मे प्रबंध देने के लाभ या महत्त्व

उद्योगो के प्रबध मे श्रमिको को भाग देने की योजना अनेक प्रकार से लाभदायक सिद्ध होती है। योजना के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

1. पारस्परिक सद्भावना की स्थापना . इस योजना के परिणामस्वरूप अच्छे औद्योगिक सम्बधो की स्थापना होती है। श्रमिक और नियोक्ता दोनो काफी समीप आ जाते हैं और उनमे पारस्परिक सहयोग की भावना बढ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादकता व कार्यदक्षता मे वृद्धि होकर उत्पादन मे वृद्धि होती है।

1. It is not a mater of a man being accorded the privilege although an employee, of stating acomplaint of offering a suggestion, but of having a recognized responsibility for doing so because he is an employee and thertore a joint artner in the enterprise in which he is investing not money but his life G -S Walpole, Management and Man.
2. Allen Flanders : The Trade Unions,

2 **औद्योगिक शाति** इस योजना के अतगत श्रम और पूजी दोना एक-दूसर के काफी निकट आ जाते हैं और वे ऐसा अनुभव करने लगते हैं कि उद्योग रूपी चक्की के वे अनिवार्य पाट हैं। जिससे औद्योगिक सघर्ष समाप्त होकर औद्योगिक शाति स्थापित होती है। मानसिक शाति की इस भावना से केवल एक सस्था को विशेष लाभ नही पहुचता बल्कि समस्त राष्ट्र लाभान्वित होता है।

3 **उत्पादकता और उत्पादन मे वृद्धि** इस योजना के कारण श्रमिक अधिक परिश्रम से काम करता है क्योकि उसके हृदय मे उत्साह एव लगन की भावना आ जाती है। प्रबध मे भाग मिल जाने पर श्रमिको म विश्वास उत्पन्न होता है जिसस उसकी कार्यक्षमता बढती है। फलत उत्पादन लागत मे कमी और उत्पादन म वृद्धि होती है।

4 **औद्योगिक जनतत्र की स्थापना** यह योजना औद्योगिक जनतत्र की स्थापना म भी काफी सीमा तक सहायक होती है। क्योंकि सस्था की प्रबध व्यवस्था म केवल सता-योजको का एकाधिकार नही होता बल्कि श्रमिक भी अश पूजी के स्वामी होने के नाते प्रबध व्यवस्था म भाग ले सकते हैं।

5 **विवेकीकरण एव वैज्ञानिक प्रबध की योजना मे सहायक** सामान्यतया विवेकीकरण व वैज्ञानिक प्रबध की योजना का श्रमिक वग विरोध करते हैं परतु जब उनसे परामर्श करके योजनायें प्रारभ की जायेंगी तो अवश्य ही सफल होगी।

6 अन्य लाभ इस योजना म कुछ अन्य लाभ इस प्रकार हैं—

(अ) औद्योगिक जगत म श्रमिक वग का महत्त्व बढ जाता है।

(ब) प्रबध की क्षमता म वृद्धि होती है।

(स) श्रमिको की आय बढ जाती है और उनमे आत्मसम्मान का जागरण होता है।

होना चाहिए तथा मजदूर और टेक्नीशियनो को जहा भी सम्भव हो सके, प्रबध से सहयोग करना चाहिए।" द्वितीय पचवर्षीय योजना मे भी श्रम की प्रबध मे सहभागिता पर जोर दिया गया। परिणामस्वरूप पन्द्रहवीं भारतीय श्रम कान्फ्रेंस मे सयुक्त प्रबंध परिषदों के उद्देश्य कार्य व स्वरूप निर्धारित कर दिये गए। 1958 एव 1960 मे हुए त्रिदलीय सम्मेलनो वे इस योजना मे आवश्यक सशोधन भी किये हैं।

कार्य (Functions)

प्रारम्भ मे सयुक्त प्रबध परिषदो को मुख्यतया दो कार्य सौंपे गये (i) कल्याणकारी सुविधाओ का प्रशासन, और (ii) सुरक्षा उपायो का पर्यवेक्षण। लेकिन बाद मे इन्हे सूचनाएं प्राप्त करने और उपक्रम के उन सभी महत्त्वपूर्ण विषयो पर सयुक्त परामर्श करने का अधिकार दिया गया जो श्रम और प्रबध के पारस्परिक हित म है।

सयुक्त प्रबध परिषदो के कार्यों को विस्तृत रूप मे निम्न प्रकार स स्पष्ट किया जा सकता है—

(अ) परामर्श सम्बन्धी कार्य—(i) स्थायी आदेशो के प्रशासन तथा सशोधन सबधी कार्य (ii) कार्य पूर्णत बन्द करना या कार्य के घण्टो मे कमी करना (iii) विवेकीकरण (iv) सेवा कटौती (v) छटनी सम्बन्धी कार्य।

(ब) सुझाव सम्बन्धी कार्य—निम्नलिखित विषयो के सम्बन्ध मे परिषदें सूचना प्राप्त करने और सुझाव देने का कार्य करती है —

(i) व्यावसायिक इकाई की सामान्य आर्थिक स्थिति। (ii) बाजार उत्पादन, व विक्रय कार्यक्रम की स्थिति (iii) सगठन एव सामान्य कार्य निष्पादन। (iv) उत्पादन एव कार्य की विधिया। (v) वार्षिक चिटठा लाभ हानि खाता आदि। (vi) इकाई के विस्तार व पुनर्निर्माण की दीर्घकालीन योजनाए। (vii) दोनो पक्षा द्वारा स्वीकृत अन्य मामले। (viii) औद्योगिक इकाई की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाली परिस्थितिया

(स) प्रशासनिक उत्तरदायित्व के कार्य—(i) कल्याणकारी कार्यों का प्रशासन (ii) सुरक्षात्मक उपायो का पर्यवेक्षण (iii) व्यवसायिक प्रशिक्षण कार्य (iv) अन्य कोई विषय जिसे परिषद द्वारा निश्चित किया जाय। (v) श्रमिको के महत्त्वपूर्ण सुझावो के लिए पुरस्कार। (vi) कार्य व घंटे आराम तथा अवकाश सम्बधी तालिकाए बनाना एव लागू करना।

प्रगति—भारत मे सर्वप्रथम 1957 मे सिम्पसन ग्रुप आफ कम्पनीज मद्रास म सयुक्त प्रबध परिषद की स्थापना की गई। बाद मे 1958 म हिन्दुस्तान मशीन टूल्स बगलौर मे एव 1959 म टिस्को (Tisco) म सयुक्त प्रबध परिषद बनाई गई इसके बाद इन परिषदो की सख्या निरन्तर बढती चली गई।

31 दिसम्बर 1980 तक 588 सस्थानो म कार्य समितिया कार्य कर रही थी।

सयुक्त प्रबध परिषदो का वर्तमान स्वरूप अधिक प्रशसनीय नहीं रहा है। रणनीति स्तर पर श्रम सघ इन परिषदो के कार्यों के लिए अपने ... मानते हैं

4 उद्योगो को सहकारिता के आधार पर सगठित किया जाय जिससे श्रमिक केवल श्रम मे ही नही बल्कि पूजी मे भी अपना योगदान दे सकें।

5 श्रमिको को विचार व्यक्त करने तथा अपने सगठन बनाने की स्वतत्रता दी जानी चाहिए।

6 सेवायोजको एव श्रमिको के मध्य विचार विमर्श की सुदृढ़ व्यवस्था निर्मित की जानी चाहिए।

7 प्रबध के सभी स्तरो मे श्रम को भाग दिया जाना चाहिए।

8 श्रमिको मे आपसी विश्वास और सद्‌भावना का अच्छा वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए।

3 अक्टूबर से 5 अक्टूबर 1975 तक जयपुर मे आयोजित प्रबध में श्रमिको की सहायता पर राष्ट्रीय परिसवाद ने तीन स्तरो पर सहभागिता की स्थापना की सिफारिश की है। श्रमिको को कारखाने के स्तर से लेकर उच्च राष्ट्रीय प्रबध व्यवस्था मे साझेदार बनाना होगा, इसके लिए परिसवाद ने निम्नलिखित तीन समितियों की स्थापना की सिफारिश की है।

(अ) **वर्कशाप स्त्री समिति** यह समिति उत्पादन की समस्याओ एव उत्पादन लक्ष्य को पूरा करने पर कार्य करेगी। इसमे नीचे से नीचे स्तर के श्रमिकों को प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

(ब) **विभागीय समिति** यह समिति उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु आवश्यक विभागीय सहयोग एव समन्वय स्थापित करने का कार्य करेगी। साथ ही यह वर्कशाप स्त्री समिति स समन्वय स्थापित करके लक्ष्यो को पूरा करने हेतु आवश्यक साधन जुटाने का कार्य करेगी।

(स) सयन्त्र स्तरीय समितियों में श्रमिको को समुचित अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए। प्रारम्भिक तौर पर योजना को कोयला, इस्पात, भारी इजीनियरिंग एव उर्वरक के कारखानो मे लागू किया जाना चाहिए। इससे उत्पादकता मे वृद्धि के साथ-साथ देश का तीव्र गति से विकास हो सकेगा तथा वे अपनी कठिनाइया एक दूसरे के सामने प्रस्तुत कर सकेंगे।

भारत में औद्योगिक प्रबध में श्रमिकों का भाग
(*Workers' Participation in Management in India*)

भारत मे इस प्रकार की व्यवस्था का प्रारम्भ महात्मा गाधी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत (Doctrine of Trusteeship) स समझना चाहिए। एक बार अहमदाबाद सूती वस्त्र उद्योग मे चल रहे सघर्षों के सदर्भ मे महात्मा गाधी ने कहा था कि यदि प्रबध म श्रमिको को भाग दिया जाय तो यह सम्पूर्ण समाज के हित की बात होगी। भारत मे औद्योगिक प्रबध मे श्रमिको को भाग देने का प्रयास सर्वप्रथम सन्–1938 में दिल्ली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स क० लि० के प्रबध मे किया गया। परन्तु इस दिशा में अन्य सस्थाओ ने स्वतत्रता से पूर्व कोई प्रयास नहीं किये। सरकारी प्रयासों में सर्व-

प्रथम सन् 1947 में औद्योगिक संघर्ष अधिनियम पास किया गया जिसके अन्तर्गत मालिक मजदूर समितियों अथवा कार्य समितियों ने दोनों वर्गों में सामंजस्य लाने का तो प्रयत्न किया परंतु औद्योगिक प्रबंध में श्रमिकों के भाग लेने की समस्या अछूती ही बनी रही। इसके पश्चात सन 1948 और 1956 की औद्योगिक नीतियों में भी इस ओर संकेत किया। 1956 की औद्योगिक नीति में कहा गया 'एक समाजवादी प्रजातन्त्र में श्रम विकास के सामान्य कार्य में साझेदार है और उसे उत्साहपूर्वक उसमें हाथ बंटाना चाहिए। प्रबंध एवं श्रम के उत्तरदायित्वों को मान्यता देकर औद्योगिक सम्बंध विषयक अधिनियम पास किये जा चुके हैं और एक व्यापक दृष्टिकोण विकसित हो चुका है। सामूहिक विचार विनिमय होना चाहिए और जहां सम्भव हो श्रमिकों व तकनीकी विशेषज्ञों को धीरे धीरे प्रबंध में भाग देना चाहिए।

श्रमिकों के प्रबंध में भाग लेने की आवश्यकता पर जोर देते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह कहा गया था, 'एक समाजवादी समाज की रचना लाभकारी सिद्धांतों पर नहीं की जा सकती। उसके लिए समाज सेवा के सिद्धांतों को अपनाना पड़ेगा। यह आवश्यक है कि श्रमिक समझें कि वह प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण में अपना योग दे रहा है। प्रजातांत्रिक समाज को संगठित करने के पहले औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना अत्यावश्यक है। द्वितीय योजना के सफल संचालन के लिए कर्मचारियों का प्रबंध से अधिकाधिक सहयोग अनिवार्य है। इससे उत्पादन में वृद्धि होगी, श्रमिक के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा साथ ही साथ मजदूरों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलेगा जिससे औद्योगिक शांति होगी। योजना में यह स्वीकार किया गया कि योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए श्रम व प्रबंध के साथ अधिकाधिक प्रयोग आवश्यक है।

आगे चलकर योजना आयोग ने इसकी विस्तृत योजना तैयार की और कहा कि औद्योगिक प्रजातन्त्र समय की पुकार है। उन्होंने सहभागिता के निम्न लाभ बता कर विभिन्न उद्योगों व उद्योगपतियों को आकर्षित करने की चेष्टा की—

(अ) उत्पादकता में वृद्धि होने की सम्भावना।
(ब) श्रमिकों और सेवायोजकों में शांति बनी रहेगी।
(स) श्रमिकों का ज्ञान विकसित होगा जब वे प्रबंध में भाग लेने लगेंगे।
(द) श्रमिकों की आत्म-सम्मान प्राप्त करने की नैतिक मांग की पूर्ति होगी।
(य) समस्त राष्ट्र को लाभ होगा।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु देश में ऐसी प्रबंध परिषदें बनाई जाय। जिनमें प्रबंधकों, तकनीक विशेषज्ञों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि हों।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में भी कहा गया था। "आर्थिक व्यवस्था के शांतिपूर्ण और प्रजातांत्रिक ढंग से विकसित होने के लिए यह आवश्यक है कि उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों का भाग एक आधारभूत सिद्धांत के रूप में स्वीकृत कर लिया जाय।"

भारत में उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों को भाग दिये जाने के सम्बंध में किये गये

योजना मे कोई अधिनियम नही बनाया जाना चाहिए तथा अनुभव के तौर पर सार्व-जनिक तथा निजी क्षेत्र की 50 औद्योगिक सस्थाओ मे यह योजना लागू की जानी चाहिये। जिन उद्योगो की इकाइयो को चुना जाय निम्न आधारो को उसकी कसौटी माना जाय—(अ) उस इकाई मे कम से कम 500 श्रमिक कार्य करते हो। (ब) उस इकाई मे एक सुसगठित व मजबूत श्रमिक सघ हो। (स) उस इकाई मे अच्छे औद्यो-गिक सम्बध बने रहने का प्रमाण हो। (द) नियोक्ता और श्रमसघ क्रमश किसी केन्द्रीय नियोक्ता सघ और सघ का सदस्य हो।

3 त्रिदलीय गोष्ठी सन् 1958 जनवरी-फरवरी सन 1958 मे एक त्रिदलीय (सरकार उद्योगपति और श्रमिक) गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी के मुख्य निष्कर्षों मे निम्नलिखित निष्कर्ष विशेष रूप से उल्लेखनिय हैं—

1 सयुक्त परिषदो म मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधियो की सख्या बराबर-बराबर होनी चाहिये तथा यह सख्या 12 से अधिक भी नही होनी चाहिये। छोट छोटे सस्थानो मे सदस्यो की सख्या 6 स कम नही होनी चाहिय,

2 जो भी निर्णय किये जायें वह सर्वसम्मति से हो,

3 श्रमिक सघो मे यथासम्भव श्रमिको के प्रतिनिधि स्वय श्रमिक ही होने चाहिय। जहा श्रमिक सघ यह अनुभव करें कि उनके सगठन में बाहरी व्यक्तियो को भी सम्मिलित किया जाय वहा ऐसे सदस्यो की सख्या 25% से अधिक नही होनी चाहिए।

4 सयुक्त परिषदो की इकाई के आधार पर स्थापित किया जाना चाहिये। जहा एक ही सस्थान मे अनेक विभाग हू वहा सयुक्त परिषदो म प्रतिनिधित्व का प्रश्न सघ और सस्थान पर ही छोड दिया जाना चाहिए, एक ही क्षेत्र और एक ही प्रबध के अन्तर्गत यदि विभिन्न सस्थान हो तो प्रबध मे श्रमिको की भागीदारी प्रथम तो इकाई के आधार पर और बाद मे केन्द्रीय परिषद् की स्थापना करके की जानी चाहिये। इस गोष्ठी म यह सूचित किया गया कि परिषद कल्याण सम्बधी कार्यक्रमों का प्रशासन करेंगी, सुरक्षा सबधी उपायो तथा छुट्टियो की अनुसूची का निरीक्षण करेंगी इसके अतिरिक्त य परि-षदें उपक्रम की आर्थिक स्थिति, उत्पादन एव विक्रय के कार्यक्रम और वार्षिक चिट्ठा तथा उसका स्पष्टीकरण और अन्य इसी प्रकार की बातें जो आपस में तय की जा सकती है, के सम्बध मे विचार विमर्श कर सकती हैं, अपने सुझाव दे सकती है।

4 द्वितीय विचार गोष्ठी 1960 नई दिल्ली मे 8 और 9 मार्च सन् 1960 को श्रमिको का प्रबध मे भाग लेने के प्रश्न पर एक दूसरी विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन मे देश मे इस आयोजन की प्रगति का मूल्याकन किया गया और कहा गया कि भारत मे इस योजना को आशातीत सफलता नही मिली है। सन 1956 म निर्धारित 50 औद्योगिक सस्थाओं के स्थान पर केवल 24 औद्योगिक सस्थानो मे ही सयुक्त प्रबध परिषदो की स्थापना हो पाई थी।

इस गोष्ठी मे यह विचार व्यक्त किया गया कि केन्द्रीय व प्रान्तीय स्तरो पर ऐसा उपयुक्त सगठन बनाया जाय जो यह देखे कि सयुक्त प्रबध परिषदें प्रभावशाली ढग से कार्य करें। केन्द्र मे एक त्रिदलीय समिति ही बनाई जाय जो योजना की प्रगति

की समीक्षा समय-समय पर करें और इसके क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों का विश्लेषण करें।

भारत सरकार ने गोष्ठी सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए उचित कदम उठाए हैं। उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों को भाग देने को प्रोत्साहित करने के लिए श्रम व रोजगार मंत्रालय में एक विशेष विभाग स्थापित कर दिया है। इसके अतिरिक्त 22 फरवरी 1961 में अन्तर्राज्य श्रम मंत्री सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें यह नीति स्वीकार की गई कि सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों में जहां भी अनुकूल वातावरण हो इस व्यवस्था को लागू किया जाए। मार्च सन् 1965 में केन्द्रीय श्रम शिक्षा मंडल द्वारा बंबई में 3 क्षेत्रीय गोष्ठियां आयोजित की गई। इसका उद्देश्य संयुक्त प्रबंध परिषदों की स्थापना तथा नियोक्ताओं और श्रमिकों को इस विचारधारा का महत्त्व समझाना था।

मई 1971 में श्रम संघों के प्रतिनिधियों के समक्ष भाषण में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था "जब आप औद्योगिक सम्बन्धों के सुधारने पर विचार करें तो आपको सार्वजनिक उपक्रमों में प्रबन्ध तथा श्रम के मध्य स्वस्थ्य तथा लाभकारी सहयोग पर भी विचार करना चाहिए।" इस सहयोग के अन्तर्गत श्रमिकों को उपक्रम के विभिन्न स्तर पर उत्पन्न समस्याओं के सुलझाने में शामिल किया जाना चाहिए।

26 जून 1975 को आन्तरिक आपातस्थिति की घोषणा के बाद औद्योगिक संबंधों के क्षेत्र में व्यापक सुधार हुए। इस क्षेत्र में जो लाभ प्राप्त हुए उनमें स्थायित्व लाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा आवश्यक प्रयास किए गए। इन प्रयासों में एक प्रयास औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग देना भी है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1 जुलाई 1975 को प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गांधी द्वारा घोषित 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार ने 30 अक्टूबर 1975 को एक नई श्रमिक भागीदारी व्यवस्था का सूत्रपात किया है और इस उद्योगों में कर्मचारी भागीदारी को सज्ञा दी है। इस व्यवस्था के अधीन शॉप परिषदों तथा संयुक्त परिषदों की स्थापना का प्रावधान किया गया है। Shop Council Joint Council

इस योजना की मुख्य विशेषता इस प्रकार हैं

(1) सीमा-क्षेत्र (Coverage) प्रारंभ में यह योजना विनिर्माण और खनन उद्योगों (Manufacturing and mining) में लागू की जाएगी चाहे वे सार्वजनिक क्षेत्र में हो या निजी या सरकारी क्षेत्र में। इनमें विभागीय रूप से चलाए जाने वाली इकाई (units) भी सम्मिलित हैं, चाहे ऐसी इकाई में संयुक्त सलाहकार परिषद् तंत्र का ढांचा कार्य कर रहा हो या न कर रहा हो।

इस समय यह योजना इन उद्योगों की उन इकाइयों पर लागू होगी जिनकी नामावलियों (rolls) पर 500 या उससे अधिक श्रमिक हैं। इस योजना में शॉप/विभागीय स्तर पर शॉप परिषदों की तथा उपक्रम स्तर पर संयुक्त परिषदों की व्यवस्था होगी।

2 शॉप परिषदें (Shop Councils)—शॉप परिषदों के द्वारा भाग लेने योग्य प्रबंध संबंधी योजना की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(i) 500 या उससे अधिक श्रमिक नियुक्त करने वाली प्रत्येक औद्योगिक संस्था

में सेवायोजक द्वारा प्रत्येक विभाग या शॉप हेतु एक परिषद निर्मित की जाएगी।

(ii) हर परिषद में श्रमिकों और सेवायोजकों के बराबर बराबर प्रतिनिधि रहेंगे।

(iii) नियोजक जैसी भी स्थिति हो उसके अनुसार, मान्यता प्राप्त संघ या विभिन्न पंजीकृत श्रम संघों के साथ या श्रमिकों के साथ सलाह करके ऐसी विधि से जो स्थानीय दशाओं के लिए सर्वाधिक अनुकूल हो यह निर्णय करेगा कि उपक्रम या प्रतिष्ठान के हर परिषद के साथ कितनी शॉप परिषदें और कितने विभाग सबद्ध किए जाएं।

(iv) शॉप परिषद के समस्त निर्णय आम मत के आधार पर दिए जाएंगे लेकिन हर पक्ष तय न किए जा सकने वाले मामलों को विचार के लिए संयुक्त परिषद को सौंप सकता है।

(v) शॉप परिषद का प्रत्येक निर्णय एक माह के भीतर सबंधित पक्षों द्वारा लागू किया जाना चाहिए।

(vi) वे निर्णय जिनका प्रभाव दूसरी संस्था पर पड़ता है, विचार या अनुमोदन के लिए संयुक्त परिषद को सौंपे जाते हैं।

(vii) कोई भी शॉप परिषद एक बार बनने के बाद 2 वर्ष तक कार्य करेगी। इसकी बैठक माह में एक बार होना आवश्यक है।

(viii) शॉप परिषद का अध्यक्ष प्रबंधक द्वारा मनोनीत किया जाएगा और उपाध्यक्ष परिषद के श्रमिक सदस्यों द्वारा अपने में से स्वयं चुना जाएगा।

3 शॉप परिषदों के कार्य (Functions of shop Councils) शॉप परिषदों को शॉप या विभाग के उत्पादन उनकी उत्पादिता और व्यापक कार्यकुशलता को बढ़ाने के हित में निम्नलिखित मामलों पर ध्यान देना चाहिए—

1 अपव्यय को दूर करने तथा मशीनी क्षमता एवं जनशक्ति के अधिकतम उपयोग को सम्मिलित करते हुए उत्पादिता और कार्यकुशलता में सुधार करना।

2 मासिक वार्षिक उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रबंध की सहायता करना।

3 सुरक्षा सबंधी उपाय अपनाना।

4 शॉप/विभागों में सामान्य अनुशासन बनाए रखने में मदद देना।

5 निम्न उत्पादिता के क्षेत्रों की विशेष रूप से पहचान करने और इससे सबंधित कारणों को दूर करने के लिए शॉप स्तर पर आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही करना।

6 शॉप/विभागों में अनुपस्थिति का अध्ययन करना और इसको कम करने के सुझाव देना।

7 शॉपों, विभाग को सुचारु रूप से चलाने हेतु अपनाए जाने वाली कल्याण और स्वास्थ्य सबंधी कार्यवाहियां करना।

8 कार्य करने की भौतिक दशाएं, जैसे प्रकाश, संवातन (Ventilation) शोर, धूल आदि और थकान को दूर करना।

6 प्रबंध और श्रमिकों के मध्य विशेषकर उत्पादन आंकड़ों, उत्पादन अनुसूचियों और लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रगति से संबंधित मामलों में समुचित दुतरफा संबंध (two way communication) सुनिश्चित करना।

4 **संयुक्त परिषद (Joint council)** वे सभी औद्योगिक इकाइयां जहां 500 या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं वहां एक इकाई के लिए संयुक्त परिषद योजना की कुछ बातें इस प्रकार हैं—

1 परिषद दो वर्ष तक कार्य करेगी।

2 वे व्यक्ति ही संयुक्त परिषद के सदस्य होंगे जो वास्तव में इकाई में काम करते हैं।

3 संयुक्त परिषद अपने सदस्यों में से एक सचिव का निर्वाचन करेगी। सचिव को कुशलतापूर्ण कार्य करने के लिए आवश्यक सुविधाएं उपक्रम/संस्थान के भवन (premises) में दी जाएगी।

4 संयुक्त परिषद के चेयरमैन इकाई के मुख्य प्रबंधक होंगे एक उपचेयरमैन होंगे जो परिषद के श्रमिक सदस्यों द्वारा मनोनीत किए जाएंगे।

5 संयुक्त परिषद की बैठक कम-से-कम तीन माह में एक बार अवश्य होगी।

6 संयुक्त परिषद का प्रत्येक निर्णय सर्वसम्मति के आधार पर होगा अर्थात वोट प्रक्रिया के आधार पर नहीं। यह निर्णय नियोजकों एवं श्रमिकों के लिए बंधनकारी होगा और जब तक निर्णय में ही कुछ और न कहा गया हो एक माह में लागू करना होगा।

7 परिषद का गठन हो जाने पर वह दो वर्ष की अवधि के लिए कार्य करेगी, परन्तु यदि एक सदस्य को आकस्मिक रिक्तता को भरने के लिए परिषद की मध्यावधि में मनोनीत किया जाता है तो यह सदस्य परिषद की शेष अवधि के लिए बना रहेगा।

5 **संयुक्त परिषद के कार्य** (Functions of Joint Council)—संयुक्त परिषद को निम्न मामलों से संबंधित कार्यों को करना चाहिए—

(i) किसी शॉप परिषद के कार्य जो कि किसी और शॉप या समस्त इकाई पर प्रभाव डालते हैं।

(ii) एक संपूर्ण इकाई हेतु कार्यकुशलता, अधिकतम उत्पादन और मशीन एवं श्रमिक के लिए उत्पादित मानकों का निर्धारण करना।

(iii) कार्य योजना और उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त करने के बारे में समस्त प्लान्ट या इकाई से संबंधित मामले।

(iv) शॉप परिषद में उत्पन्न ऐसे मामले जो अनिर्णीत पड़े हैं।

(v) श्रमिकों से प्राप्त बहुमूल्य और सृजनात्मक सुझावों के लिए पुरस्कार देना।

(vi) कार्य के घंटे तथा अवकाशों की अनुसूचियां बनाना।

(vii) श्रमिकों की कुशलता का विकास और प्रशिक्षण हेतु पर्याप्त सुविधाएं।

(viii) इकाई या संयंत्र हेतु कल्याण, सामान्य स्वास्थ्य और सुरक्षा संबंधी उपाय।

(ix) कच्चे माल और तैयार निर्मित वस्तुओ की किस्म का और अनुकूलतम प्रयोग ।

6 गठन (Composition) विभिन्न उद्योगो मे एक इकाई मे दूसरी इकाई मे विद्यमान दशा म पर्याप्त विभिन्नता है । भारत सरकार में एक ही मत्रालय के अधीन विभागीय उपक्रमो और सरकारी क्षेत्रो के उद्यमो को भी स्थानीय दशाओ और उनकी निजी आवश्यकताओ पर निर्भर करते हुए विभिन्न विधियो को अपनाना पडता है । इस विभिन्नता को ध्यान म रखते हुए, शॉप परिषदो और सयुक्त परिषदो के गठन के लिए विशेषकर श्रमिको के प्रतिनिधित्व से सबधित एक-सा ढाचा निर्धारित नही किया जा रहा है । *प्रबधको को, श्रमिको के साथ सलाह करके प्रतिनिधित्व का अत्यत उपयुक्त ढाचा* विकसित करना चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि श्रमिको प्रतिनिधित्व का परिणाम श्रमिको की प्रभावी अर्थपूर्ण और विस्तृत आधार पर साझेदारी निकले ।

ऐच्छिक प्रकृति की इस योजना को सरकारी प्रस्ताव के रूप मे रखने क 2 प्रमुख कारण बताए गए—(i) औद्योगिक सघर्ष अधिनियम के अतर्गत बनाई जान वाली कार्यसमितियो का अधिक सफल न होना और (ii) अच्छे औद्योगिक सबधो को बनाए रखने के लिए 1958 मे शुरू की गई सयुक्त प्रबध परिषदो के ऐच्छिक योजना द्वारा सतोषजनक परिणाम प्राप्त न किया जा सकना ।

प्रबन्ध मे श्रमिको की भागीदारी की यह नवीन योजना एक उत्तम योजना है । *इस योजना मे निजी और सार्वजनिक दोनो प्रकार के उद्योगो ने पर्याप्त रुचि दिखाई है ।*

42वा सविधान सशोधन अधिनियम और प्रबध में कर्मचारी सहभागिता—भारत सरकार ने जनवरी 1977 में 42वा सविधान सशोधन अधिनियम पारित किया । इस अधिनियम के अनुसार सरकार ने उपभोक्ताओ को अधिक सेवाए प्रदान करने के लिए प्रबन्ध मे कर्मचारियो की योजना सार्वजनिक क्षेत्र के सभी व्यावसायिक एव सेवा सगठनो मे जिसमे 100 या इससे अधिक कर्मचारी काय करते हैं लागू की है ।

भारत सरकार ने सितम्बर 1977 मे केन्द्रीय श्रम मत्री की अध्यक्षता मे प्रबध *एव अशपूजी मे श्रमिको का* भाग लेने के सम्बन्ध मे *अध्ययन* हेतु एक *त्रिपक्षीय समिति का गठन किया । समिति ने अक्टूबर 1978 मे* ड्राफ्ट रिपोर्ट *तैयार की ।* रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं—

(1) श्रम प्रबध सहभागिता की योजना को लागू करते समय निजी, सार्वजनिक या सहकारी क्षेत्र मे किसी प्रकार का अन्तर नहीं किया जाना चाहिए ।

(2) अधिकाश सदस्यो ने सहभागिता की तीन टायर व्यवस्था का समर्थन किया है । ये स्तर है कम्पनी स्तर, प्लाण्ट स्तर और शाप फ्लोर स्तर । निजी क्षेत्र के नियोक्ताओ के प्रतिनिधियो ने दो टायर व्यवस्था की समर्थन किया है ये है शाप स्तर एव प्लान्ट स्तर ।

(3) अश भागिता के सम्बन्ध मे समिति ने विचार प्रकट किया है कि यह वैकल्पिक ही रहनी चाहिए ।

(4) प्रबध मे सहभागिता की योजना को लागू करने एव इसकी क्रियाशीलता

इन समितियो के निणय क्षेत्र से बाहर रखी जाती है। इसका कारण यह है कि इन मामला को प्राय सामूहिक सौदेबाजी के अधीन तय किया जाता है। सयुक्त प्रबध परिषद का मुख्य उद्दश्य श्रमिको और प्रबधको को एक सूत्र म बाधना ह। इससे श्रमिको का मनो बल बढता ह उत्पादन म वृद्धि होती है, औद्योगिक सम्बध सुदृढ और मधुर बनते हैं तथा दोना पक्षा क मध्य विचारा और सूचनाओ का अधिक खुला एव मैत्रीपूण आदान प्रदान होता है।

यह सुझाव दिया था कि सार्वजनिक उपक्रमो के सचालन मडलो मे श्रमिक प्रतिनिधियो की नियुक्ति की जाय। सरकार द्वारा इस सुझाव को मान लिया गया है। सन् 1971 मे प्रथम बार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमो मे मजदूर सचालक की प्रथा का प्रारभ किया गया। *सार्वजनिक क्षेत्र के दो उपक्रमो—हिंदुस्तान आर्गेनिक कैमिकल्स तथा हिंदुस्तान* एन्टी बायोटिक लि० मे यह योजना प्रयोगात्मक आधार पर प्रारभ की गई थी। अब यह योजना कुछेक राष्ट्रीयकृत बैंको मे भी प्रारभ कर दी गई है। इस योजना मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सचालक मडल मे मजदूरो का प्रतिनिधि मान्यता प्राप्त श्रम सघ द्वारा नामित होना चाहिए तथा वह उपक्रम म कार्य कर रहे मजदूरो मे से ही कोई होना चाहिए।

भारतवर्ष मे अभी यह कार्य एक प्रयोग के रूप म किया जा रहा है। यदि यह सफल रहा तो निश्चित रूप से इसका विस्तार किया जाएगा।

4 शॉप परिषदें तथा सयुक्त परिषदें (Shop councils and joint councils) अक्टूबर 1975 मे श्रम मत्रालय ने उद्योगो मे कार्यशाला स्तर पर शॉप परिषदें तथा प्लान्ट स्तर पर सयुक्त परिषदें गठित किये जाने की घोषणा की है। इन परिषदो की विस्तृत व्याख्या हम पूर्व मे कर चुके है अत उनकी पुनरावृत्ति नही करेंगे।

श्रम मत्रालय की रिपोर्ट 1977 78 के अनुसार यह योजना अब तक केंद्रीय सरकार की *545* उपक्रमो राज्य सरकारों के *167* उपक्रमो, सहकारी क्षेत्र के *993* उपक्रमो तथा निजी क्षेत्र के 1132 उपक्रमो मे लागू हो चुकी है। वास्तव मे यह योजना आपातकाल की देन है और इसकी सफलता के बारे म कुछ भी निष्कर्ष निकालना कठिन है।

जनवरी 1977 मे एक अन्य योजना सार्वजनिक क्षेत्र मे बड पैमान पर जनता मे कारोबार करने वाले उन व्यापारिक तथा सेवा सगठनो के प्रबध मे जिनमे कम से कम 100 व्यक्ति काय करते हैं कमचारियो की साझेदारी की घोषणा की गई है।

1. श्रम संगठन के दोष : स्थायी श्रम शक्ति होने के कारण भारत मे सुदृढ श्रम सगठनो का विकास नही हो सका है। श्रमिकों की अलग-अलग श्रम सगठनें हैं और सभी श्रमिक इनके सदस्य नहीं है। जो श्रमिक सदस्य हैं, वे भी नियमित रूप से सघ का चदा नही देते। ऐसी स्थिति मे श्रमिको से यह आशा कैसे की जा सकती है कि प्रबंध के कार्यों मे पूरी रुचि लेंगे तथा अपनी आर्थिक स्थिति को दृढ करने का प्रयत्न करेंगे अथवा उद्योगो के उत्पादन की वृद्धि मे रुचि लेंगे।

2 आवश्यक सहयोग और उत्साह का अभाव : यद्यपि सेवायोजकों और श्रमिक सघो ने इस योजना का स्वागत किया हैं और अपना पूर्ण सहयोग देने का वायदा किया है लेकिन व्यवहार मे इन श्रमिक सघो ने यह सहयोग और उत्साह नही दिखाया है जो इस तरह की योजनाओ की सफलता के लिए चाहिए।

3 मिल मालिको का विरोध नियोक्ता वर्ग इस प्रकार की योजना का विरोध करते हैं। उनका मत है कि उद्योगो का प्रबंध करने का अधिकार केवल उन्ही को है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार गाडी दो ड्राइवर के होने से नही चल सकती उसी प्रकार दो प्रबंधकों मे सुप्रबंध मे कठिनाइयां उपस्थित होंगी।

इसी प्रकार सेवायोजक श्रम को प्रबंध मे भाग देना और सयुक्त परिषदो का निर्माण करना अपने अधिकार को कम करना समझते है।

यह भी कहा जाता है कि श्रमिको के प्रतिनिधियों के पास न तो पर्याप्त ज्ञान होता है और न तकनीकी अनुभव। अत वे सही दिशा मे मार्गदर्शन नही कर सकते।

4 सयुक्त प्रबंध परिषदों की सदृश्य संस्थाओं का अस्तित्व : उद्योगो मे सयुक्त प्रबंध परिषदो के सगठन तथा सफल सचालन मे एक ही बाधा उनकी समस्तरीय सयुक्त समितियो जैसे Work Committee, Welfare Committee & The Emergency Production Committee इत्यादि का विद्यमान होना है। ये समितियां भ्रम उत्पन्न करती हैं और इन सयुक्त प्रबंध परिषदो की स्थापना आवश्यकता को संदिग्ध एव अनावश्यक सिद्ध कर देती हैं।

5 स्थापित सयुक्त प्रबंध परिषदो की आंशिक सफलता : जिन उद्योगो मे शुरू मे सयुक्त प्रबंध परिषदो की स्थापना हुई उन्हें भी वांछित सफलता नही मिल सकी। प्रारंभिक परिषदों की असफलता के कारण नई परिषदों की स्थापना को प्रोत्साहन नहीं मिल सका है।

6 सार्वजनिक क्षेत्र की उदासीनता : सार्वजनिक क्षेत्र से यह आशा की गई थी कि वह संयुक्त प्रबंध परिषदो की स्थापना मे पहल करके निजी क्षेत्र के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करेगा लेकिन व्यवहार मे पाया जाता है कि उसने पहल एव नतृत्व का कार्य नही किया है।

7 श्रमिको का सकुचित दृष्टिकोण श्रमिकों के अशिक्षित होने के कारण वे श्रम प्रबंध सहभागिता की योजना को ठीक तरह से नहीं समझ सके हैं। उनका दृष्टिकोण अत्यन्त सकीर्ण है। सयुक्त प्रबंध परिषद के सदस्य बनने के बावजूद उनका योगदान नगण्य है।

8 **श्रम सगठनो मे राजनैतिक हस्तक्षेप** औद्योगिक प्रजातत्र की स्थापना मे श्रम सगठन मे व्याप्त राजनैतिक हस्तक्षप भी बाधक रहा है। अनेक श्रम सघो के नेता राजनीतिज्ञ है जो औद्योगिक सघर्षो को सुलझान क स्थान पर राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध मे अधिक रुचि लेते है फलत औद्योगिक प्रजातत्र की स्थापना पूर्ण रूप स नही हो पाती।

9 **अन्य बाधाए** (i) प्रबधको की उपेक्षापूर्ण नीति (ii) लोकतत्र की प्रारभिक अवस्था का अभाव (iii) श्रमिको की निधनता।

भारत मे श्रमिक भागीदारी योजनाओ की सफलता के लिए सुझाव
(Suggestions for the Success of Labour Participation Schemes in India)

भारत मे प्रबध मे *श्रमभागिता योजना* को सफल बनान के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है।

1 **औद्योगिक वातावरण मे परिवर्तन** प्रबध मे श्रमभागिता की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि श्रम और प्रबध दोनो का एकमात्र उद्देश्य उद्योग की प्रगति करना होना चाहिए। इसके लिए एक ऐसे वातावरण की रचना करनी होगी जिसम पेशेवर प्रबध की प्रधानता हो जो वैज्ञानिक प्रबध म विश्वास रखता हो और श्रम सघ ऐसे हो जो अपने को पूर्णत औद्योगिक श्रमिको के हितो की रक्षा हेतु अर्पित कर दे। सरकार भी यह अनुभव करे कि उसका उत्तरदायित्व केवल नीति की घोषणा तक ही सीमित नही है बल्कि उसको यह देखने का उत्तरदायित्व भी लेना होगा कि नीति म सम्मिलित योजनाओ को प्रभावशाली ढग से क्रियान्वित किया जाय।

2 **श्रम प्रतिनिधियो का चुनाव** श्रम सघो को विभिन्न समितियो म अपने प्रतिनिधि भेजने स पूर्व उनकी शैक्षणिक योग्यता आदि का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

3 **श्रम सघो का सुदृढ बनाना** औद्योगिक प्रजातत्र की स्थापना म सुदृढ श्रम सघ विशेष महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है श्री वी० वी० गिरी ने भी श्रम प्रबध सहभागिता की योजना को सफल बनान के लिए देश म सुदृढ श्रम सघो क निर्माण का सुझाव दिया है। सुदृढ श्रम सघो के बनन म प्रतिनिधि श्रम सघ का अभाव समाप्त हो जायगा श्रम सघो की पारस्परिक शत्रुता समाप्त हो जायगी और श्रम प्रतिनिधियो के चुनाव का कार्य आसान हो जायेगा।

4 **श्रमिक शिक्षा** श्रमिको को शिक्षित किया जाना चाहिए जिसम वे प्रबध सबधी उत्तरदायित्व को स्वीकार करने मे समर्थ हो सकें।

5 **एक प्रतिष्ठान मे एक ही एकीकृत श्रमिक भागीदार योजना** एक कारखाने प्रतिष्ठान या मिल मे श्रमिक भागीदारी के एक ही एकीकृत समिति होनी चाहिए जो सयुक्त परिषद कार्य समिति या श्रमिक सचालको का कार्य करें। यदि कही कार्यस्तर या शॉप स्तर आदि पर समितिया बनाने की आवश्यकता हो तो वे सब एकीकृत समिति के अतर्गत होने चाहिए।

6 **सरकारी हस्तक्षेप मे कमी** सयुक्त प्रबध परिषदो की क्रियाओ म सरकारी

परीक्षा-प्रश्न

1. औद्योगिक प्रबध मे श्रमिको द्वारा भाग लेने की योजना से आप क्या समझते हैं ? भारत मे इस दिशा मे क्या प्रयत्न किए गए हैं और वह किस सीमा तक सफल हुए हैं ?
2. भारतीय उद्योगो के सबध मे श्रमिको द्वारा भाग लेने की योजनाओ का आलोचनात्मक मूल्याकन कीजिए ?
3. "औद्योगिक प्रबध मे श्रमिको को भाग लेने का अधिकार यदि समय मे पूर्व ही प्रदान कर दिया गया, तो या तो वह प्रबध द्वारा खरीद लिए जायेंगे और शात कर दिए जायेंगे, अथवा यदि वह कठोर विचार वाले है तो नेक इरादे रखते हुए भी वह प्रबध के प्रति बाधक सिद्ध होंगे।" विवेचना कीजिए।
4. प्रबध मे श्रमिकों के भाग लेने के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ? इनकी पूर्व शर्तो का वर्णन कीजिए।

अध्याय 5

विवेकीकरण

(Rationalisation)

विवेकीकरण से आशय—विवेकीकरण शब्द 'विवेक' शब्द से बना है और 'विवेक' का अर्थ है किसी कार्य को विवेक से या सोच-समझकर करना। अतः वे समस्त क्रियाएं जो सोच-समझकर और बुद्धिमत्तापूर्ण की जाती हैं, विवेकीकरण के अंतर्गत आती हैं। औद्योगिक संगठन के क्षेत्र में विवेकीकरण से आशय उद्योग में तर्क या विवेक को अपनाना है। प्रत्येक उद्योग का यही विवेकपूर्ण लक्ष्य रहता है कि उनकी औद्योगिक क्षमता अधिकतम हो और प्रति इकाई उत्पादन लागत न्यूनतम हो। अतः उद्योगपति उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने और उत्पादन लागत को कम करने के लिए जो भी कार्य करता है वह विवेकीकरण में अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। **संक्षेप में विवेकीकरण उद्योगों की कार्यक्षमता बढ़ाने और उत्पाद व्यय कम करने की एक विधि है।**

विवेकीकरण की परिभाषाएं

विवेकीकरण के व्यापक आशय को शब्दों की परिभाषा में बांधना एक कठिन कार्य है। प्रो० एच० जी० वेल्स लिखते हैं कि "औद्योगिक एवं आर्थिक समस्याओं से संबंधित नवीन निर्मित शायद ही ऐसा कोई शब्द हो जिसके बारे में इतने संदेहास्पद विचार हों और जिसके इतने भिन्न-भिन्न तथा विपरीत निर्वचन किए गए हों।"[1] वास्तव में वेल्स का यह कथन विवेकीकरण की व्यापकता का ही द्योतक है क्योंकि विवेकीकरण इतना व्यापक अर्थ रखने वाला शब्द है कि आधुनिकीकरण, प्रमापीकरण, विनियोजीकरण इत्यादि सभी को इसमें शामिल कर लिया जाता है और यही कारण है कि विवेकीकरण की बहुत-सी परिभाषाएं मिलती हैं। विवेकीकरण की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

1 राष्ट्रीय मितव्ययिता तथा कार्यक्षमता परिषद जर्मनी (National Board of Economy and Efficiency, Germany) : 'विवेकीकरण संपूर्ण उद्योग को उन्नत करने के लिए व्यवस्थित योजनाओं एवं तकनीकी साधनों का उपयोग है जिसमें कम लागत पर अधिक उत्पादन हो एवं उत्पादन के गुणों में सुधार हो। इसका उद्देश्य

1 H G Wells The Work, Wealth and Happiness of Mankind, p 279

सस्ती कीमत पर अधिक मात्रा में अच्छे गुणों की वस्तुओं का उत्पादन करके जनसाधारण की संपन्नता मे वृद्धि करना है।"

2. **प्रो० सारजेंट फ्लोरेंस के शब्दों में** · "किसी उद्योग के अंतर्गत सभी इकाइयों के सामूहिक प्रयत्न से वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण रीति से बर्बादी एवं अक्षमता दूर करने के प्रयत्नों को विवेकीकरण कहते हैं।"

इस परिभाषा के विश्लेषण करने पर विवेकीकरण (अ) मुख्य रूप से उद्योग मे होने वाली बर्बादी और अक्षमता को दूर करना है। (ब) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक तकनीकी व तर्कपूर्ण विचार को प्रयोग मे लाया जाता है। (स) इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामूहिक प्रयत्न (प्राय. सयोजन के रूप मे) किए जाते हैं।

3. **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन 1937 की विशेषज्ञ समिति ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है : (अ) साधारण अर्थ मे** : "विवेकीकरण किसी ऐसे सुधार को कहते हैं जिसके द्वारा पुरानी परपरागत प्रणालियो के स्थान पर नियमित एव विवेकपूर्ण विधियों का उपयोग किया जाता है।"

(ब) अत्यंत संकुचित अर्थ मे : "विवेकीकरण से तात्पर्य किसी सस्था, शासन अथवा किसी सरकारी अथवा गैर-सरकारी सेवा मे किए जाने वाले ऐसे सुधारों से है जिनके द्वारा पुरानी परपरागत विधियो के स्थान पर नियमित और विवेकपूर्ण नीति का उपयोग किया जाता है।"

(स) विस्तृत अर्थ मे : "विवेकीकरण ऐसे सुधार को कहते है जिसमे औद्योगिक सस्थाओ के किसी समूह को इकाई मान लिया जाता है तथा व्यवस्थित, विवेकपूर्ण तथा सगठित प्रयास द्वारा अनियत्रित प्रतियोगिता से होने वाली बर्बादी तथा हानियो को रोका जाता है।"

(द) अति विस्तृत अर्थ में : "विवेकीकरण से तात्पर्य ऐसे सुधार से है जिसमे विशाल आर्थिक तथा सामाजिक समूहो, क्रियाओ मे नियमित तथा विवेकपूर्ण विधियो का प्रयोग किया जाता है।"

इस प्रकार विवेकीकरण सकुचित अर्थ मे एक कारखाने पर, विस्तृत अर्थ मे एक विशेष उद्योग पर तथा अति विस्तृत रूप मे समस्त समाज पर लागू होता है।

4 **कर्नल एल० उविक** "विवेकीकरण एक दृष्टिकोण एवं विधि दोनों ही है। दृष्टिकोण के अर्थ मे वैज्ञानिक पद्धतियो का प्रयोग करके संसार के आर्थिक जीवन का अधिक विवेकपूर्ण नियत्रण संभव एवं वांछनीय है। विधि के अर्थ मे इसका अर्थ उत्पादन, वितरण तथा उपभोग के सगठन की समस्त समस्याओं मे वैज्ञानिक पद्धतियो को अपनाने से है।"[1]

5. **डॉ० टी० आर० शर्मा** ने विवेकीकरण की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "विवेकीकरण के दो अर्थ हैं—व्यापक अर्थ मे विवेकीकरण एक उद्योग की समस्त संस्थाओं मे सामूहिक रूप से सुधार करता है, जिससे सामूहिक प्रयत्नो से बर्बादी और

1. C. L. Urwick : The Meaning of Rationalisation.

हानि कम कर दी जाए। संकुचित अर्थ में विवेकीकरण औद्योगिक इकाई में गैर-आर्थिक व अकुशल पद्धतियों के स्थान पर विधिवत् व वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर सुधार करना है।"[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से पता चलता है कि ये परिभाषाएं विवेकीकरण के विभिन्न तत्त्वों को अलग-अलग महत्त्व देती हैं। परंतु सार रूप में ये सभी परिभाषाएं इस तथ्य पर जोर देती हैं कि अर्थव्यवस्था के औद्योगिक क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धतियों एवं विधियों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। मूल रूप से इसका उद्देश्य उद्योग में सभी प्रकार के अपव्ययों और कुशलताओं को दूर करना और ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना है जिनमें उत्पादकता को अधिकतम बनाया जा सके। श्री वी० वी० गिरि ने उपयुक्त ही लिखा है, 'विवेकीकरण का सार पद्धतियों में ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन लाना है जो पुरानी घिसी-पिटी परम्पराओं को और अव्यवस्थित चालू तरीकों को लुप्त कर दे और उनके स्थान पर वैज्ञानिक स्वभाव के सिद्धांतों और प्रणालियों को स्थापित कर दे।"[2]

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हम विवेकीकरण की धारणा को सरल शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

विवेकीकरण सामूहिक प्रयत्नों पर आधारित एक ऐसी विधि है, जिसमें परम्परागत एवं नैमित्तिक प्रणाली की जगह व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अन्वेषण एवं अध्ययन पर आधारित प्रणालियों एवं तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिससे दोहरी क्रियाओं का निवारण हो, समय, धन एवं उत्पादन साधनों का अनावश्यक अपव्यय न्यूनतम हो तथा इसका प्रयोग उद्योग और राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ हित में हो।

विवेकीकरण की विशेषताएं

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर विवेकीकरण की विशेषताएं निम्नलिखित हो सकती हैं —

1. **विवेकीकरण एक व्यापक विधि :** विवेकीकरण एक व्यापक विधि है जिसका उपयोग सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र में किया जा सकता है।
2. **वैज्ञानिक प्रवृत्ति के सिद्धांत एवं विधि :** इसमें असामयिक रिवाजों तथा बेढंगी कार्य-विधियों का अन्त करके वैज्ञानिक प्रवृत्ति के सिद्धांत एवं विधियों को अपनाया जाता है।
3. **आर्थिक स्पर्द्धा का अन्त :** विवेकीकरण प्रतियोगिता को समाप्त कर उद्योगपतियों में सामूहिक रूप में सोचने की क्षमता प्रदान करता है।
4. **उद्योग की सम्पूर्ण इकाइयों का सुधार सम्भव :** इसमें व्यक्तिगत इकाई के स्थान पर उद्योग की सम्पूर्ण इकाइयों के सुधार का प्रयत्न किया जाता है।

1 T R Sharma Indian, Industrial p 101.
2 V V Giri Labour Problems in Indian Industry, p. 203

5. **उत्पादन तथा माग मे संतुलन :** विवेकीकरण की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि इस पद्धति के द्वारा उत्पादन तथा माग मे सतुलन रहता है।
6 **सभी वर्गों को लाभ :** विवेकीकरण सम्पूर्ण समाज-श्रमिको उद्योगपतियो व उपभोक्ताओ को लाभान्वित करने का प्रयत्न करता है।
7 **नवीन विचारधारा को प्रोत्साहन :** यह उद्योगो के उद्देश्य, ढांचे तथा नियन्त्रण के सबध मे एव नवीन विचारधारा को प्रोत्साहन देना है।
8 **वस्तुओं की उत्पादन लागत कम :** उद्योगो मे विवेकीकरण अपनाने से वस्तुओ की उत्पादन लागत कम आती है।
9 **श्रमिको की कार्य-क्षमता मे वृद्धि :** विवेकीकरण उद्योगो मे होने वाले प्रत्येक प्रकार के अपव्यय को रोकता है जिससे श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है।
10. **उद्योगो मे अपव्यय व अकुशलता का अंत** यह मुख्य रूप से उद्योगो मे अपव्यय एव अकुशलता का अन्त करता है तथा अधिक-से-अधिक उत्पादन करने की दशाओ का निर्माण करता है।
11 **जन साधारण के जीवन स्तर मे सुधार :** विवेकीकरण से उपभोक्ताओ को सस्ती व अच्छी किस्म की वस्तुए उपलब्ध होती हैं, जिसमे जन-साधारण के जीवन-स्तर मे सुधार होता है।
12 **उत्पादन कार्यशीलता व प्रबध मे मितव्ययिता :** विवेकीकरण से उत्पादन कार्यशीलता व प्रबध मे मितव्ययिता आती है।

विवेकीकरण के उद्देश्य

प्रधानत विवेकीकरण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1 **अपव्यय को रोकना** विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य दोषपूर्ण सगठन, प्रतियोगियो मे अनावश्यक प्रतियोगिता, दोषपूर्ण उत्पादन विधियो एव उत्पादन के विभिन्न साधनो मे समन्वय न होने के कारण श्रम, पूंजी व साहस इत्यादि के अपव्यय को रोकना है, जिससे उत्पादन उचित लागतो पर किया जा सके।

2 **उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम उपयोग :** विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य प्रत्यक साधन का सर्वोत्तम उपयोग करना होना है। प्रत्येक देश तथा उद्योग म साधन सीमित होते हैं। उनको कम या अधिक करना सभव नही है। विवेकीकरण की योजनाओ मे उपलब्ध साधनो का ऐसे ढग मे प्रयोग किया जाता है कि अधिकतम उत्पादन हो सके।

3 **देश के उद्योग-धधो मे स्थिरता लाना :** उद्योगो मे निरतर हानि होने स देश की आर्थिक दशा अस्थिर हो जाती है। विवेकीकरण द्वारा उद्योगो की गिरती हुई स्थिति को सभालने की कोशिश की जाती है। विवेकीकरण अपनाने के कारण ही सन् 1929 की विश्वव्यापी मदी के दुष्प्रभाव जर्मनी के उद्योगो पर नही पडे

4 **जनसाधारण का जीवन-स्तर ऊचा करना** विवेकीकरण मूल्यो का स्तर

कम करके समाज को सस्ती कीमत पर वस्तुए दिलाने पर सहायता करता है। इससे समाज के व्यक्तियों का रहन-सहन का स्तर, क्षमता व समृद्धि मे वृद्धि होती है।

4 **सामाजिक उद्देश्य** · विवेकीकरण उत्पादन और वितरण के क्षेत्र मे अनावश्यक मध्यस्थो को समाप्त करता है और उपभोक्ताओ और उत्पादक के बीच प्रत्यक्ष सपर्क की स्थापना करता है। इस प्रकार समाज पर आर्थिक भार कम करना भी विवेकीकरण का एक मुख्य उद्देश्य है।

विवेकीकरण के तत्त्व अथवा पहलू

विवेकीकरण के अतर्गत उत्पादन के विभिन्न पहलुओ म सबधित विवेकपूर्ण प्रयासो को सम्मिलित किया जाता है। अत विवेकीकरण का सही अर्थ जानना तभी सभव हो सकता है जबकि उसके विभिन्न पहलूओ या तत्त्वो का अध्ययन किया जाए। विवेकीकरण के तत्त्वो को निम्नलिखित चार वर्गों म विभाजित किया जा सकता है—

1 तकनीकी तत्त्व, 2 सगठन तत्त्व, 3 वित्तीय तत्त्व 4 सामाजिक तत्त्व।

तकनीकी तत्त्व
(*Technical Aspects*)

विवेकीकरण का प्रधान पहलू तकनीकी है, क्योकि विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य विभिन्न अपव्ययो को समाप्त करके उत्पादन की किस्म और मात्रा में सुधार करना है। इसीलिए उसम तकनीकी सुधार करने होते हैं। इन सुधारो या तत्त्वो को 'औद्योगिक इजीनियरिंग' से सबधित तत्त्व कहा जा सकता है। इस तत्त्व मे निम्नलिखित उप-तत्त्वों को शामिल किया जाता है—

1 **प्रमापीकरण** (Standardisation) प्रमापीकरण का अर्थ अनेक किस्मो के स्थान पर कुछ चुनी हुई अच्छी किस्मो का ही उत्पादन करना होता है। **प्रो० किबाल** के अनुसार 'उत्पादन की किसी एक शाखा मे मोडे आकारो, किस्मो एव विशेषताओ मे सीमित करने को प्रमापीकरण कहते हैं। प्रमापीकरण उत्पादन की किस्म, औजार व उत्पादन-विधि का हो सकता है। इसमे किस्मों की भिन्नता मे होने वाली हानिया दूर हो जाती हैं व ग्राहक को चुनाव करने मे विशेष कठिनाई नहीं होती। वस्तुए ट्रेड मार्क के आधार पर बेची जाती हैं। इसके व्यापार की ख्याति बढती है और माल के बेचने मे अधिक प्रयत्न नहीं करने पडते। डॉ० मेयर्स के अनुसार 'इसके अपनाने मे न केवल उत्पादन की क्षमता बढती है बल्कि उत्पादन-शक्ति मे भी वृद्धि होती है।

2 **विधियों की सरलता** (*Simplification*) उत्पादन विधियो एव कार्यों की जटिलता को समाप्त करके उन्हे सरल बना देना विधियो की सरलता के अतर्गत आता है। इससे उत्पादन मात्रा बढ जाती है। लागत कम हो जाती है तथा विक्रय मे वृद्धि के साथ-साथ लाभ भी बढ जाता है।

3 **यत्रीकरण** (Mechanisation) मानवीय श्रम के स्थान पर अधिकाधिक

यत्रो का उपयोग यत्रीकरण कहलाता है। यत्रीकरण विवेकीकरण की आधारशिला है क्योकि विवेकीकरण से तकनीकी पहलू से सबधित अनेक घटक जैसे प्रमापीकरण विशिष्टीकरण, आधुनिकीकरण इत्यादि यत्रीकरण पर आधारित होते है। यत्रीकरण मे श्रमिको की कार्यक्षमता बढती है और उत्पादन शीघ्र एक रूप और श्रेष्ठ किस्म का होता है।

4 **गहनीकरण** (Intensification) : गहनीकरण का तात्पर्य श्रमिको की उत्पादकता और मशीनो की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करना है। सक्षेप मे विद्यमान यत्रो व सगठन का सर्वोत्तम उपयोग गहनता कहलाता है। इसके अतर्गत अधिक पारियो का सचालन तथा श्रमिको के लिए प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति की नीति को अपनाया जाता है। इस तत्व का मुख्य उद्देश्य श्रमिको मे कार्य करने मे ढिलाई व अकुशलता की प्रवृत्ति को दूर करना होता है।

5 **विशिष्टिकरण** (Specialisation) किम्बाल के मतानुसार, "प्रयास के सीमित क्षेत्र मे केंद्रीयकरण को ही विशिष्टीकरण कहते हैं। "विशिष्टीकरण के द्वारा औद्योगिक इकाइयो मे इस प्रकार का समझौता हो जाता है कि हर इकाई हर किस्म का माल तैयार न करके केवल कुछ किस्मो का उत्पादन करे। इसका निर्णय कारखाने को प्राप्त विशेष सुविधाओ के आधार पर किया जाता है। उत्पादन कार्य मे ही नही, बाजारो तथा श्रमिको व प्रबधको के कार्यों मे भी विशिष्टीकरण अपनाया जाता है। विशिष्टीकरण से ये लाभ है—(अ) श्रमिको की कार्यक्षमता में वृद्धि (ब) अधिक उत्पादन, (स) वस्तुओ की किस्म में सुधार, (द) अनावश्यक व्यय का रुक जाना आदि।

6 **वर्गीकरण** (Functionalisation) . वर्गीकरण मे आशय अधिकाधिक श्रम-विभाजन मे है। इसके अतर्गत उच्च स्तर के प्रबधक से लेकर श्रमिक तक कार्य उनकी योग्यता और दायित्व के अनुसार सौपा जाता है।

7 **आधुनिकीकरण** (Modernisation) पुरानी तथा दोषपूर्ण मशीन व उत्पादन विधियो के स्थान पर नवीन तथा आधुनिकतम मशीनो का प्रयोग करना आधुनिकीकरण कहलाता है। आधुनिकीकरण की उपयोगिता के सबध मे विभिन्न विचार हैं—एक तो पुरानी मशीनो के स्थान पर नई मशीनो को लगाने के लिए अधिक मात्रा मे पूजी की आवश्यकता पडती है। दूसरे नई मशीनो के लगाने से श्रमिको की बेरोजगारी बढने लगती है। उत्पादन बाहुल्य की समस्या भी सामने आ जाती है। जर्मनी व रूस मे जहा श्रम दुर्लभ है। आधुनिकीकरण अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। परतु भारत मे इससे बेरोजगारी की समस्या बढने की सभावना हो सकती है।

8 **स्व-सचालन** (Automation) स्व सचालन शब्द का प्रयोग 1936 म किया गया। सर्वप्रथम इसका प्रयोग प्रगतिशील उत्पादन प्रक्रियाओ तक ही सीमित था परतु यह शब्द और भी व्यापक हो गया है। अब व्यापक रूप से स्व-सचालन की व्याख्या मशीनो का सचालन है। इस प्रकार मशीनीकरण और स्व-सचालन मे अतर यह है कि मशीनीकरण मे निर्णयशक्ति मानव पर ही आधारित होती है, परतु

स्वसचालन मे इस निर्णयशक्ति का भी यन्त्रीकरण हो जाता है। वास्तव मे स्व-सचालन मशीनीकरण का ही विकसित एव आधुनिकतम रूप है।

9 **औद्योगिक अनुसधान एव व्यापारिक भविष्यवाणी** (Industrial Research and Business Forecasting) : नए-नए अविष्कारो द्वारा उत्पादन अधिक होता है। श्रमिको पर व्यय कम होता है। इसलिए औद्योगिक अनुसधानशालाए खोली जाती हैं। जहा नई-नई प्रविधियो व यत्रो की खोज की जाती है।

नई-नई खोज के साथ-साथ व्यापारिक भविष्यवाणी भी विवेकीकरण का एक अग है, जिसके आधार पर व्यापार व उद्योग की भावी योजनाओ का निर्धारण किया जा सकता है।

सगठनात्मक तत्त्व
(Organisational Aspects)

1 **वैज्ञानिक पुनसगठन** (Scientific Reorganisation) : उद्योग की कार्य-क्षमता बढाने के लिए इसका वैज्ञानिक आधार पर पुनर्सगठन आवश्यक हो जाता है। वैज्ञानिक पुनर्सगठन के अतर्गत असामयिक एव अप्रचलित प्रबध पद्धति के स्थान पर उद्योग का वैज्ञानिक आधार पर आतरिक पुनर्सगठन किया जाता है।

2 **सयोजन** (Combination) सयोजन के द्वारा छोटे छोटे उद्योगो को मिलाकर अनावश्यक उत्पादन एव प्रतिस्पर्धा को कम करके व मानव-पूर्ति मे सतुलन लाकर बडे पैमाने के लाभो को प्राप्त किया जा सकता है। उद्योग का सगठन मनमाना न होकर एक निश्चित तथा निर्धारित रीति से किया जाता है। यह सगठन सघ, ट्रस्ट, काम्य पूल, चैंबर आफ कामर्स इत्यादि रूप मे हो सकते हैं।

वित्तीय तत्त्व
(Financial Aspects)

विवेकीकरण की योजना को क्रियान्वित करने के लिए काफी वित्त की आवश्यकता पड़ती है। उद्योग मे विवेकीकरण अपनाने के लिए वित्तीय पुनर्गठन की आवश्यकता होती है। वित्तीय 'पुनर्गठन म तात्पर्य अनावश्यक व्ययो को समाप्त करना, प्रशासकीय व अतिरिक्त व्ययो म कमी करना व पूजी की उचित व्यवस्था करना होता है। उद्योग का उचित पूजीकरण होना चाहिए न तो अति पूजीकरण हो और न अल्प-पूजीकरण। विवेकीकरण में वित्तीय प्रबध के विभिन्न स्रोतो का मूल्याकन किया जाता है और ऐसे साधनो म वित्तीय व्यवस्था की जाती है, जिसम उपक्रम पर कम भार पडे। इसके लिए आतरिक वित्त-व्यवस्था पर अधिक जोर दिया जाता है।

सामाजिक तथा मानवीय पहलू
(Social and Human Aspects)

'विवेकीकरण केवल यात्रिक विज्ञान ही नही अपितु मानवीय कला भी है।'

अत विवेकीकरण के सामाजिक व मानवीय पहलू की उपेक्षा नही की जा सकती। इसमें श्रमिकों की भौतिक मानसिक व आध्यात्मिक प्रगति का प्रयत्न किया जाता है व श्रमिक असतोष एव सघर्ष के कारणो को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। श्रमिकों को उचित सम्मान औद्योगिक प्रबध मे श्रमिकों का भाग, श्रमिकों को उचित नियुक्ति कार्यकारी दशाओ मे सुधार व उनकी पदोन्नति की व्यवस्था आदि इसके अतर्गत आते हैं। अन्य शब्दों म विवेकीकरण के इस पहलू के अतर्गत औद्योगीकरण इस प्रकार किया जाता है, जिससे सास्कृतिक नैतिक तथा चारित्रिक विकास पर कुप्रभाव न पडे व औद्योगिक नगरो मे अस्वच्छता एव अधिक भीड भाड न हो डा० सी० एस० मेयर्स ने ठीक ही लिखा है— विवेकीकरण की यह माग है कि व्यापार सबधी विचार केवल स्वार्थमय तकनीकी व व्यापारिक पहलुओ मे ही न किए जाए बल्कि आर्थिक, सामाजिक तथा मानवीय पहलुओ पर भी व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाए। इन पहलुओ के बिना व्यापारिक मामलो का छलपूर्ण विवेकीकरण ही होगा।

विवेकीकरण से लाभ

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विवेकीकरण के लाभो को चार भागो म विभक्त कर सकते हैं—

1 उत्पादको को लाभ उत्पादको की दृष्टि से विवेकीकरण की नीति का पालन करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं —

(अ) लाभ मे वृद्धि विवेकीकरण से उत्पादको के लाभ मे वृद्धि होती है। इसके अतर्गत वैज्ञानिक कार्यपद्धति के उपयोग से श्रमिक की कार्य क्षमता मे वृद्धि होती है, जिससे उत्पादन अधिक होता है। साथ ही इसमे उत्पादन के विभिन्न अगो की उचित नीति व व्यवस्था की जाती है जिससे उत्पादन व्यय कम हो जाता है और लाभ म वृद्धि होती है।

ब) प्रतिस्पर्धा का अत विवेकीकरण से उद्योगपतियो म परस्पर सपर्क एव सहयोग होने म प्रतिस्पर्धा का अत हो जाता है। सहयोग से औद्योगिक लाभो म वृद्धि होती है तथा औद्योगिक स्थायित्व स्थापित होकर उत्पादन की माग के अनुसार नियत्रित माग एव पूर्ति म सतुलन स्थापित किया जाता है जिससे उत्पादनाधिक्य से होने वाली हानिया का निवारण होता है। वैज्ञानिक लाभ शोध कौशल तथा सुधरी उत्पादन-विधियो का केंद्रीकरण करके सामूहिक उपयोग होता है, जिससे सपूर्ण उद्योग को नवजीवन प्राप्त होता है।

(स) प्रमापीकरण का लाभ *प्रमापीकरण से निश्चित प्रमाप का ही माल* बनता है। इससे विभिन्न लाभ मिलने की आशा होती है —(1) प्रमापीकरण से बड़े पैमाने पर उत्पत्ति हो सकती है तथा केवल थोडी सी प्रमापित किस्मे तैयार करने से उत्पादन व्यय भी कम हो जाते है। (2) प्रमापित वस्तुओ के बनाने से एक स्थान पर अन्य उत्पादक द्वारा निर्मित वस्तु का प्रयोग हो सकता है। (3) वस्तुओ को दिखाने की आवश्यकता नही रहती, क्योंकि श्रेष्ठ किस्म के कारण उपभोक्तागण बिना छाटे माल को लेते

है। (4) अनेक प्रकार या डिजाइन की वस्तुएं बनाने में समय व धन नष्ट नहीं होता है। (5) प्रमापित वस्तुएं अच्छी किस्म की होने के कारण ग्राहकों का विश्वास प्राप्त कर लेती है। डॉ० किम्बाल के शब्दों में, प्रमापित वस्तु विशेष वस्तु से हमेशा अधिक सन्तोषप्रद होती है। इसलिए जब तक बहुत बड़ा कारण न हो तब तक ग्राहक प्रमापित वस्तुएं नहीं हटाता। (6) प्रमापीकरण से प्रोत्साहन मिलता है।

(द) सुगमन इसके द्वारा उत्पादन की विधियों में सुधार होता है व कच्चे माल तथा मानवीय प्रयत्न के विनाश को रोका जाता है। उत्पादन एवं कार्यकुशलता में वृद्धि होती है व अपव्यय भी कम हो जाता है।

(य) न्यूनतम पूंजी का उपयोग विवेकीकरण के कारण उद्योगपति कम कर्मचारियों से ही काम चला सकता है। विशिष्टीकरण होने से कच्चे माल का क्रय वितरण व्यय परिवहन व्यय इत्यादि भी कम हो जाते हैं। अतः पहले की अपेक्षा उसे व्यापार में कम पूंजी लगानी पड़ती है।

(र) श्रमिक एवं पूंजीपति में एकता विवेकीकरण के परिणामस्वरूप पूंजीपति और श्रमिक एक दूसरे के प्रति निकट आ जाते है। इसमें सहयोग की भावना में वृद्धि होती है जिससे राष्ट्र भी लाभान्वित होता है।

(ल) यन्त्रीकरण के लाभ विवेकीकरण के अंतर्गत उद्योग में अधिकाधिक यन्त्रीकरण किया जाता है। मशीनों से शीघ्र व अधिक मात्रा में उत्पादन होता है तथा उत्पादित वस्तु में एकरूपता पाई जाती है। यन्त्रीकरण से श्रम विभाजन को भी प्रोत्साहन मिलता है।

(व) औद्योगिक अनुसंधान की सुविधाएं उत्पादन एवं वितरण-पद्धति का केन्द्रीकरण होने से अनुसंधान के लिए पर्याप्त स्थान रहता है। कारण यह है कि सभी उद्योगों में सामूहिक प्रयत्न एवं साधन अनुसंधान के लिए उपलब्ध रहते हैं जिससे संपूर्ण उद्योग लाभ उठा सकता है। औद्योगिक अनुसंधान एवं प्रयोगों से नए नए यन्त्रों व उत्पादन विधियों का आविष्कार होता रहता है व उद्योग निरंतर प्रगति करते रहते हैं।

2 श्रमिकों को लाभ विवेकीकरण से श्रमिकों को होने वाले लाभ इस प्रकार हैं—

(अ) रोजगार में स्थिरता विवेकीकरण के कारण उद्योगों को प्राप्त होने वाले लाभों में स्थिरता आ जाने से श्रमिकों के रोजगार में भी स्थिरता आ जाती है। दीर्घकाल में रोजगार के अवसर भी बढ़ जाते हैं।

(ब) कार्य क्षमता में वृद्धि *उत्तम औजार, उत्तम प्रबंध व उत्तम शिक्षा के* कारण मजदूरों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है। अच्छा वातावरण व अच्छी सामग्री मजदूरों को अधिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

(स) वेतन में वृद्धि उत्तम प्रबंध द्वारा मजदूरों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है जिससे उत्पादन लागत कम हो जाती है कारखानों को अधिक लाभ होता है तथा वे **मजदूरों की असली मजदूरी बढ़ा देते हैं।**

(द) गतिशीलता में वृद्धि · विवेकीकरण मे यत्रो का सर्वत्र एव सभी क्रियाओ के लिए समान रूप से उपयोग होने के कारण श्रमिकों की गतिशीलता बढ जाती है।

(य) पारस्परिक सहयोग विवेकीकरण मे श्रमिक एव पूजीपति एक दूसरे के निकट आकर एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करते हैं। दोनो पक्षो मे पारस्परिक सहयोग बने रहने मे दोनो को ही लाभ होता है।

3 उपभोक्ताओं को लाभ विवेकीकरण उपभोक्ताओ को निम्नलिखित लाभ पहुचाता है—

(i) **सस्ते मूल्यों पर उच्चकोटि की वस्तुए** उपभोक्ताओं को विवेकीकरण के परिणामस्वरूप सस्ती दर पर उच्चकोटि की वस्तुए मिलने लगती हैं, इससे उनकी शक्ति बढ जाती है।

(ii) **चुनाव के झमेलो से मुक्ति** माल के प्रमापित किस्म का होने से उपभोक्ताओं को एक ही प्रकार की अनेक वस्तुए नही देखनी पडती और उसे इच्छित वस्तु शीघ्रता से मिल जाती है, जिससे इसके समय की बचत होती है।

(iii) **रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि** . सस्ते मूल्यो पर उत्तम किस्म की वस्तुए मिलने के कारण लोगो के रहन सहन का स्तर ऊचा हो जाता है। उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ जाती है और वह अधिक वस्तुओं का उपभोग कर सकता है।

(iv) **राष्ट्र अथवा समाज को लाभ** विवेकीकरण राष्ट्र अथवा समाज के लिए निम्न प्रकार से लाभ पहुचाता है—

(अ) राष्ट्रीय आय मे वृद्धि : विवेकीकरण के उपयोग से देश की औद्योगिक व आर्थिक प्रगति होती है। फलस्वरूप उत्पादन बढता है। उत्पादन बढने से राष्ट्रीय आय बढती है व आर्थिक सकट से छुटकारा मिल जाता है।

(ब) विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा विवेकीकरण के उपयोग से उद्योगो की क्षमता बढ जाती है तथा वे विदेशी प्रतियोगिता का सामना कर सकते हैं।

(स) राष्ट्रीय बचत विवेकीकरण मे उत्पादन-क्रियाओ में माल, श्रम, पूजी आदि के प्रयोग मे जो अपव्यय होता है, वह समाप्त हो जाता है जिससे राष्ट्रीय बचत होती है।

(द) व्यापारिक चक्रो से बचा रहना विवेकीकरण की योजना के अतर्गत माग एव पूर्ति मे समन्वय स्थापित किए जाने से देश व्यापारिक चक्रो के दुष्प्रभाव से बचा रहता है।

(य) विवेकीकरण के उपयोग से दीर्घकालीन आर्थिक योजनाओ का निर्माण किया जा सकता है।

विवेकीकरण के दोष एव कठिनाइया

विवेकीकरण म उपरोक्त लाभो के होते हुए भी बहुत सी कठिनाइया व दोष है। यह कहा जाता है कि "विवेकीकरण के मार्ग मे भी उतने ही गड्ढे है, जितनी सफलता की आशाए।" "प्रो० थले का कथन है—"विवेकीकरण की कठिनाइया उनको

सुलझाने वालों की योग्यता के अनुपात में अधिक है।"

विवेकीकरण के प्रयोगात्मक स्वरूप को देखते हुए उसमें अनेक दोष पाए जाते हैं जिसके कारण ही श्रमिकों, श्रम संघों एवं उद्योगपतियों की ओर से इसका कड़ा विरोध किया जाता है। उनके दृष्टिकोण व्यक्तिगत हितों पर ही आधारित हैं।

1 **श्रमिक द्वारा विरोध** सामान्य रूप से श्रमिकों एवं श्रम संघों के दृष्टिकोण में विवेकीकरण के निम्न दोष हैं जिसके आधार पर इसका विरोध करते हैं।

1 **बेरोजगारी में वृद्धि** विवेकीकरण में मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग होने का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि बहुत-से श्रमिकों को काम से अलग कर दिया जाता है। फलत उनमें बेरोजगारी, भुखमरी एवं गरीबी बढ़ती है।

2 **पूंजी का श्रम पर आधिपत्य** विवेकीकरण में नई नई स्वचालित मशीनों के प्रयोग में श्रमिकों का महत्त्व कम हो जाता है। **प्रो० हाब्सन के अनुसार,** विवेकीकरण से समाज के सबसे बड़े दोष आय के असमान वितरण को प्रोत्साहन मिलता है। अनेक उद्योगों में उत्पादकता वृद्धि उपायों से न केवल श्रमिकों की ही बचत होती है परन्तु श्रमिकों द्वारा उत्पादन में योग भी कम होता है। इसमें पूंजी को अधिक व श्रम को कम भाग मिलता है। पूंजी श्रम की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

3 **श्रमिकों का शोषण** प्राय विवेकीकरण की योजना उत्पादकों द्वारा श्रम के शोषण का साधन समझी जाती है। श्रमिकों का कहना है कि विवेकीकरण से जो उत्पादन में वृद्धि होती है उसकी तुलनात्मक मजदूरी में वृद्धि नहीं होती। इसी प्रकार अधिकांश लाभ श्रमिकों को मिलने के बजाय पूंजीपतियों की जेब में जाता है।

4 **श्रमिकों के कार्यो का बोझ बढ़ना** विवेकीकरण की योजना कार्यान्वित करने से श्रमिकों के कार्यभार में वृद्धि हो जाती है। विशेषत यदि कारखाने का वातावरण स्वास्थ्यप्रद न हो व मशीन यन्त्र ठीक न हों। अनिश्चित उत्तरदायित्व एवं काम के बोझ के कारण मजदूरों का स्वास्थ्य बिगड़ने का डर रहता है।

5 **गतिशीलता में कमी** विवेकीकरण के कारण श्रमिकों की गतिशीलता में कमी आती है क्योंकि इसके अन्तर्गत विशिष्टीकरण के फलस्वरूप मनुष्य एक ही प्रकार के कार्य करने के योग्य रहता है और यदि उसकी नौकरी छूट जाती है तो वह अन्य कार्य करने में सर्वथा असमर्थ होता है।

6 **नीरस एवं यन्त्रवत जीवन** श्रमिकों को यन्त्रों पर यन्त्रों की गति एवं निश्चित प्रक्रिया के अनुसार कार्य करना होता है जिससे श्रमिक का जीवन यन्त्रवत एवं नीरस हो जाता है।

7 **संगठन के दोष श्रमिकों के ऊपर** कुछ श्रमिकों का कहना है कि उद्योगपति संगठन संबंधी दोषों को श्रमिकों पर मढ़ देते हैं और उनका कार्यभार बढ़ाकर अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

*(2) **उद्योगपति वर्ग द्वारा विरोध*** *उद्योगपति वर्ग द्वारा भी विवेकीकरण का* विरोध किया जाता है क्योंकि उनकी भी अनेक कठिनाइयां हैं—

(1) **अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता** उद्योगपतियों का कहना है कि विवेकी

करण की योजना लागू करने मे पर्याप्त पूजी का विनियोग करना पडता है। परतु उस विनिनोजित पूजी पर उचित प्रतिफल मिलन की गारटी नही होती है।

(ii) **कुशल प्रबधकों का अभाव** विवेकीकरण के कारण औद्योगिक इकाइयो का आकार काफी बढ जाता है, जिसके प्रबध के लिए उच्च श्रेणी की प्रबध क्षमता आवश्यक होती है परतु उच्च प्रबधको का मिलना कठिन होता है, जो विवेकीकृत उद्योगो का कुशलतापूर्वक प्रबध कर सकें।

(iii) **राष्ट्रीयकरण का अभाव** सरकार उद्योगो का किसी भी समय राष्ट्रीयकरण कर सकती है। ऐसी दशा म पूजीपति भारी विनियोग करके पूजी की जोखिम नही उठाना चाहते।

(iv) **पुरानी मशीनों की बर्बादी** नवीनीकरण के कारण तुरत बहुत बडी मात्रा मे पूजी की आवश्यकता पडती है। नई मशीनो को उत्पादन कार्य म लगाने स पुरानी मशीनो की बर्बादी होने लगती है।

3 **श्रम दोष** विवेकीकरण के अन्य दोष निम्नलिखित हैं—

(i) विवेकीकृत उद्योगो मे कुछ सीमा तक एकाधिकार आ जाता है, जिससे उपभोक्ताओ के शोषण का भय रहता है।

(ii) विवेकीकरण सयोजन प्रवृत्ति प्रोत्साहित करता है, परतु कभी-कभी य सयोग इतने विस्तृत आकार के हो सकते हैं, जिसस बडे व्यापार की बुराइया इसमे आ जाती है।

(iii) कुटीर उद्योगो का विवेकीकृत उद्योगो स प्रतिस्पर्धा करना सभव नही होता। अत उनकी अवनति प्रारभ हो जाती है।

(iv) प्रमापीकरण क कारण मौलिकता तथा व्यक्तित्व का अत हो जाता है।

विवेकीकरण की योजना कैसे सफल हो?

विवेकीकरण के उपर्युक्त दोनो स ऐसी धारणा नही बना लेनी चाहिए कि यह कोई बुरी नीति है। युक्ति की नीति तो सदैव हित म ही होती है। इस सबध मे इतना अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए यदि विवेकीकरण दोषरहित सभव हो जाए तभी बिना आमू के विवेकीकरण किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1 **सर्वदलीय सहयोग** विवेकीकरण की जो भी योजना क्रियान्वित की जाए, वह सरकार, उद्योगपति और श्रमिको तीनो पक्षो की सहमति, सहयोग और समन्वय से क्रियान्वित की जाए।

2 **विवेकीकरण की योजना धीरे धीरे लागू की जाए** विवेकीकरण की योजना एकदम लागू न की जाकर शनै शनै लागू की जाए, जिससे श्रमिको की छटनी न की जाय अथवा उनमें बेरोजगारी न फैले। योजना इस प्रकार होनी चाहिए।

(i) हर वर्ष जो श्रमिक मृत्यु वृद्धावस्था व अन्य कारणो स कार्य छोड देते हैं, उनके स्थान पर नए श्रमिक न रख कर उनका कार्य दूसरो को दे दिया जाए।

(ii) श्रमिको की छटनी यदि आवश्यक हो तो इस सबध मे सूची बनाकर, जो अधिक पुराने हो, उन्हे पहले हटाया जाए तथा छटनी हेतु पहले मे ही प्राथमिकता क्रम निश्चित रहना चाहिए और इसकी सूचना श्रमिको को भी होनी चाहिए।

(iii) छटनी किए गए श्रमिको के लिए कार्य के अवसर की व्यवस्था की जाय, साथ ही यह भी ध्यान मे रखा जाए कि उनकी मजदूरी पर प्रतिकूल प्रभाव न पडे।

(iv) हटाए गए श्रमिकों के स्थान पर रखे जाने वाले श्रमिको मे उनको सर्वप्रथम अवसर दिया जाना चाहिए, जो ऐसी छटनी के कारण बेरोजगार हो गए हैं। इस सबध मे रोजगार कार्यालय की सेवाओ का भी प्रयोग करना चाहिए।

3. **विकास निधि का निर्माण** नई मशीनो के लिए पूजी की समस्या को हल करने हेतु प्रत्येक निधि का सृजन किया जाना चाहिए।

4 **श्रमिकों का प्रबध मे सहयोग** विवेकीकरण की योजना मे श्रमिको की सद्भावना तथा सहयोग प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उनको उद्योगो के प्रबध मे हिस्सा दिया जाए।

5 **अनुसधान समिति** प्रत्येक उद्यम मे एक अनुसधान समिति बनाई जाए, जो उसे उद्योग से सबधित उद्योग का अनुसधान करे। समिति द्वारा प्रत्येक किस्म के प्रमाप निकाले जाए काम को करने की आदर्श विधिया खोजी जाए आदि।

6 **बेकारी दूर करने का प्रयत्न** विवेकीकरण मे यदि बेकारी होती है तो उद्योगपतियो को पहले मे ही सावधान रहना चाहिए तथा ऐसे उपाय करने चाहिए, जिससे बेरोजगार श्रमिको को काम मिल सके।

7. **लाभ का समान वितरण** विवेकीकरण से मिलने वाले लाभ को सभी पक्षो मे समान रूप से बाटा जाना चाहिए। जहा एक ओर उद्योगपतियो के लाभ मे वृद्धि हो, वहा दूसरी ओर श्रमिको की मजदूरी मे वृद्धि तथा उपभोक्ताओ को सस्ती व अच्छे किस्म की वस्तुए मिलनी चाहिए।

8 **समस्त दिशाओ मे विवेकीकरण**. विवेकीकरण के समस्त अग एक साथ लागू किए जाने चाहिए जैसे मशीनो का नवीनीकरण वैज्ञानिक प्रबध सयोग, विशिष्टीकरण आदि। उसी दिशा मे उत्पादन के साधनो का समुचित विकास सभव होता है।

9 **प्रशिक्षण की सुविधा** श्रमिकों को कुशल बनाने के लिए तक्नीकी शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। प्रशिक्षण की सुविधा की व्यवस्था भी सामूहिक रूप मे की जा सकती है।

श्रमिको का विरोध कम करने की दृष्टि से उपयुक्त सुझावो के अतिरिक्त प्रथम योजना मे योजना आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए थे—(1) कार्यभार, विशेषज्ञो द्वारा की गई तकनीकी जाच के आधार पर निश्चित किया जाए और विशेषज्ञो का चुनाव प्रबधको दोनो के द्वारा किया जाए। (2) स्वेच्छा से अवकाश ग्रहण करने वाले श्रमिको को ग्रेच्युटी दी जानी चाहिए। (3) यदि छटनी आवश्यक हो तो नई नियुक्ति मे मे की जानी चाहिए। (4) जब कभी विवेकीकरण की योजना क्रियान्वित करने का या विचार बनाया जाए, नई भर्तिया नही करनी चाहिए। (5) नौकरी से हटाए जाने

वाले श्रमिकों को अन्य कार्यों में प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधाएं दी जानी चाहिए। (6) छटनी किए गए श्रमिकों को सार्वजनिक उपक्रमों के रोजगार में प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

भारतीय उद्योगों में विवेकीकरण
(Rationalisation in Indian Industries)

हमारे देश में विवेकीकरण व आधुनिकीकरण की विशेष आवश्यकता है। इसके प्रधान कारण निम्नलिखित हैं—

1 अतिरिक्त रोजगार प्राप्त करने के लिए भारत जहा भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक भार है और जहा जनसंख्या तीव्र गति से बढ रही है, वहा यह आवश्यक हो जाता है कि उद्योग एव सेवाओं के विकास की इस समस्या का हल किया जाए लेकिन पुरानी एव प्रचलित मशीनों और तकनीकों द्वारा रोजगार म वृद्धि नहीं की जा सकती, क्योंकि वर्तमान तीव्र प्रतियोगिता के युग म अनार्थिक एव अक्षम्य कार्यों को कोई स्थान नहीं है। अत बेकारी की समस्या को हल करने के लिए एव अत्यधिक रोजगार के निर्माण के लिए भारतीय उद्योगों मे तेजी से विवेकीकरण की योजना लागू करना आवश्यक है। यद्यपि विवेकीकरण से अल्पकाल मे बेरोजगारी म वृद्धि होती है लेकिन दीर्घकाल म रोजगार के अवसर बढते हैं। एक अनुमान के अनुसार विवेकीकृत औद्योगीकरण म भारतवर्ष म प्रतिवर्ष लगभग 35 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है।

2 निर्धनता एव निम्न उत्पादकता स्तर को दूर करने के लिए पुरानी उत्पादन तकनीकों एव अप्रचलित मशीनों के प्रयोग के कारण भारतीय उद्योगों म उत्पादकता का स्तर काफी नीचा है। उत्पादकता का स्तर नीचा होने के कारण वस्तुओं की लागत अधिक होती है और श्रमिकों को कम मजदूरी मिलती है। कम मजदूरी के कारण जनता की क्रय शक्ति और माग कम रहती है और कम माग के कारण कम बिक्री फलत कम उत्पादन होगा। अत देश म निर्धनता का यह विषम कुचक्र बन गया है जिसे भग करना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि उद्योगों म आधुनिकतम यन्त्रों तथा विधियों का प्रयोग किया जिससे उत्पादन व उत्पादकता म वृद्धि हो।

3 पारस्परिक सहयोग से औद्योगिक कुशलता मे वृद्धि के लिए भारतीय उद्योगपतियों म मिलजुलकर औद्योगिक सुधार एव प्रगति की भावना नहीं पाई जाती है। उनके सम्बन्ध म कहा जाता है कि व मिलजुलकर तैरने के बजाय अकेले रहकर डूबना अधिक पसद करते हैं। अत पारस्परिक सहयोग द्वारा औद्योगिक कुशलता वृद्धि के लिए विवेकीकरण की आवश्यकता है।

4 अनार्थिक औद्योगिक इकाइयों को समाप्त करने के लिए भारत म प्राय प्रत्येक उद्योग मे अनेक इकाइयां अनार्थिक हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा गठित सूती वस्त्र उद्योग अध्ययन दल ने बताया था कि अनेक सूती मिलें अनार्थिक हैं। उन्हें या तो अन्य इकाइयों के साथ मिला दिया जाय या समाप्त कर दिया जाए। इसी प्रकार कोयला

उद्योग कागज उद्योग व जूट उद्योग मे अनार्थिक आकार की इकाइया पाई जाती है। अनार्थिक इकाइयो के कारण साधनो का अपव्यय होता है और लागत अधिक रहती है। अत इस दृष्टि से भी विवेकीकरण अत्यत आवश्यक है।

5 **अप्रचलित तथा घिसी पिटी मशीनो को बदलने के लिए** अनेक पुराने भारतीय उद्योगो मे लगी हुई मशीनें पुरानी अप्रचलित व घिसीपिटी हैं। इसस मरम्मत व भरण पोषण पर अधिक व्यय करना पडता है और श्रमिको पर कायभार अधिक रहता है तथा प्रति श्रमिक उत्पादकता कम रहती है। हमारे सूती वस्त्र उद्योग की अधिकाश मशीनें 50 वष पुरानी है और चीनी उद्योग की मशीनें 40 वष पुरानी हैं। जूट उद्योग की मशीनो की तो और भी बुरी हालत है। अत अप्रचलित एव घिसीपिटी मशीनो के बदलने के लिए आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

6 **विदेशीय विनिमय प्राप्त करने के लिए** पचवर्षीय योजनाओ की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि पर्याप्त मात्रा मे विदेशी मुद्रा का अजन किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि एक बार परपरागत वस्तुओ जैसे जूट, चाय सूती वस्त्र आदि का निर्यात बढाया जाए और दूसरी ओर नई वस्तुओ जैसे हल्की इजीनियरिंग की वस्तुए साइकिल बिजली क पखे, कपडा सीने की मशीनें आदि के लिए नय बाजार खोजे जाय। इस उद्देश्य को विवेकीकरण द्वारा लागत घटाकर और किस्म सुधार कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

7 **सहकारिता क आधार पर काय क्षमता मे वृद्धि** हमारे देश मे चाहे वह लघु उद्योग हो या प्रमुख उद्योग इन सभी उद्योगो म सगठन एव सहकारिता का अभाव पाया जाता है। सीमेण्ट उद्योग ही एक एसा उद्योग है जिसम सहकारिता के आधार पर काय किया जाता है। विवेकीकरण की योजना कार्यान्वित होने पर सहयोग की भावना स्वाभाविक रूप स जाग्रत होने लगेगी जिसका प्रभाव उद्योगो की काय-क्षमता पर भी पडेगा।।

8 **विभिन्न समितियो तथा आयोगो द्वारा सिफारिशें** विभिन्न समितिया तथा आयोगो ने भारतीय उद्योगो म विवेकीकरण की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया है। जिन समितियो व आयोगो ने विवेकीकरण की योजना लागू करने की सिफारिश की है वे इस प्रकार हैं—(i) योजना आयोग (ii) औद्योगिक विकास समिति 1951 (iii) जूट सर्वेक्षण उद्योग 1953 (iv) अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन दल 1954 (v) भारतीय लोक सभा प्रस्ताव 1954 (vi) कानपुर सूती वस्त्र मिल विवेकीकरण समिति 1956 (vii) नियात सम्वद्धन समिति 1957 (viii) भारतीय श्रम सम्मेलन (ix) जूट उद्योग के लिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त तदथ आधुनिकीकरण समिति 1958 (x) चीनी उद्योग की विकास परिषद 1962 (xi) सूती वस्त्र मिल उद्योग का कायकारी दल।

9 **राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के लिए** औद्योगिक दृष्टि [illegible] राष्ट्र है अत अन्य प्रगतिशील देशो की अपेक्षा हमारे देश म प्रति [illegible] आय व राष्ट्रीय आय बहुत कम है। यदि उद्योगो म—विवेकीकरण की योजना का कार्यान्वित कर दिया

जाय तो उत्पादन मे वृद्धि की जा सकती है जिससे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय मे भी होगी। आय मे वृद्धि होने से नि सदेह उनके जीवन स्तर मे भी सुधार हो सकेगा।

10 **विदेशी प्रतियोगिता का सामना करते हेतु** हमारे प्रतिस्पर्धियो ने अपने यहा के उद्योगो मे विवेकीकरण योजना लागू कर दी है। इसके परिणामस्वरूप हमे विदेशी बाजार मे कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पड रहा है, विशेषतः सूती वस्त्र और जूट उद्योग मे। जूट के क्षेत्र मे फिलीपाइस और दक्षिणी अफ्रीका तथा सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र मे चीन, जापान और ब्रिटेन स हमे कटु प्रतिस्पर्धा करनी पडती है। अतः प्रतिस्पर्धक देशो का सफलापूर्वक सामना करन के लिए हमे भी हमारे उद्योगो मे विवेकीकरण का सहारा लेना पडेगा। इस सबध मे कहा जाता है, 'विवेकीकरण ही निर्यात बाजार मे भारतीय उद्योगो की प्रतिस्पर्धा करने की शक्ति मे वृद्धि के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली उपाय है।"

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर ही समय-समय पर स्थापित विभिन्न समितियो और आयोगो ने देश मे उद्योगो के विवेकीकरण पर जोर दिया है। अतर्राष्ट्रीय आयोजन दल के अनुसार, "विवेकीकरण को रोकना व आधुनिकीकरण मे बाधा डालना केवल अतार्किक ही नहीं, बल्कि भारतीय उद्योगो को वर्बस अस्थिरता और अवनति के गर्त मे ढकेलना है।" निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकते है कि भारत के सभी बडे उद्योगो मे विवेकीकरण की योजना लागू कर देनी चाहिए, क्योकि शीघ्र तथा मितव्ययी औद्योगिक विकास के लिए यह अत्यत आवश्यक है।

भारत में विवेकीकरण आदोलन का इतिहास
(History of Rationalisation Movement in Indian Industries)

विवेकीकरण का प्रारभ · *भारत मे विवेकीकरण का प्रारभ सर्वप्रथम सूती वस्त्र* उद्योग मे किया गया, जिसमे क्षमता पद्धतियो के रूप मे 1926 मे ई० डी० ससून एड कपनी लि० मिल ने मनचेस्टर मिल मे विवेकीकरण की योजना क्रियान्वित की। सन् 1927 मे टैरिफ बोर्ड ने बबई की मिलो की क्षमता बढाने और प्रति व्यक्ति अधिक उत्पादन करने की आवश्यकता पर बल देते हुए सुधार की योजनाओं पर जोर दिया।

सीमेंट उद्योग मे तीव्र प्रतिस्पर्धा और मूल्य-कटौती का सामना करने के उपाय के रूप मे विवेकीकरण प्रारभ किया गया और सन् 1927 मे भारतीय सीमट उत्पादक सघ की स्थापना की गई। 1930 मे सीमेंट मार्केटिंग कपनी और सन् 1936 मे एसोसिएटेड सीमट कपनी की स्थापना हुई।

बबई की सूती मिलो मे क्षमता पद्धतियो को अपनाने के पश्चात सन् 1935 मे अहमदाबाद और सन् 1937 मे कानपुर की सूती वस्त्र मिलो मे विवेकीकरण के उपायो को लागू करने के प्रयत्न किए गए, परतु श्रमिकों के विरोध के कारण योजनाए स्थगित करनी पड़ी और सफल न हो सकी। कानपुर की सूती मिलो मे श्रम के विरोध का अध्ययन करने के लिए सन् 1937 मे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता मे कानपुर श्रम जाच समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने विवेकीकरण का समर्थन किया और सुझाव

दिया कि उद्योगपतियो की नीति श्रमिको का शोषण करने की न होकर माल व मशीन का शोषण करने की होनी चाहिए।

द्वितीय विश्वयुद्ध व युद्धोत्तर काल में विवेकीकरण : सन् 1939 मे द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ। इस युद्धकाल मे उद्योग उत्पादन-कार्य मे इतने व्यस्त रहे कि उन्हें विवेकीकरण की ओर कोई ध्यान देने का अवसर ही नही मिला। युद्ध के पश्चात् मदी की अवस्था आने, माग कम हो जाने, निर्यात घट जाने तथा मशीनो इत्यादि के घिसी पिटी हो जाने पर उद्योगपतियो ने आधुनिकीकरण की दशा मे प्रयास किए।

योजना काल में विवेकीकरण : स्वतन्त्रता के पश्चात् मे योजनाअवधि मे देश में औद्योगिक विकास की गति तीव्र करने के लिए, उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिए एवं रोजगार के अवसरो का विस्तार करने के लिए विवेकीकरण की विस्तृत योजनाए क्रियान्वित की जा रही हैं और इस दिशा मे सरकार आवश्यक सहयोग प्रदान कर रही है।

आधुनिकीकरण—विवेकीकरण का नया रूप
(Modernisation of Cotton Textile Indusry)

विवेकीकरण को वर्तमान औद्योगिक जगत मे एक नए नाम से पुकारा जाने लगा है। यह नाम आधुनिकीकरण है। आधुनिकीकरण से तात्पर्य नई मशीन व उपकरण लगाने या मशीनो मे सुधार करने से है। परन्तु व्यापक दृष्टिकोण से इसका अर्थ नवीन मशीनो के लगाने के अतिरिक्त उन्नत प्रबंधकीय एवं तकनीकी विधियो मे प्रशिक्षित कर्मचारियो की नियुक्ति तथा काम करने की सुधरी विधिया भी शामिल हैं। स्मरण रहे कि आधुनिकीकरण एक गतिशील तथा निरंतर प्रगति करने वाली विधि है, क्योंकि मशीनो में निरन्तर सुधार होते रहते हैं। अत व्यावहारिक रूप से आधुनिकीकरण का कोई निश्चित मापदंड स्थापित नही किया जा सकता।

सूती वस्त्र उद्योग का आधुनिकीकरण
(Modernisation of Cotton Textile Industry)

सूती वस्त्र उद्योग भारत का सबसे प्रमुख व बड़ा उद्योग है, लेकिन खेद का विषय है कि अनार्थिक आकार की मिलो श्रमिक लागत, विदेशी प्रतियोगिता एवं पुरानी तकनीक के कारण इस उद्योग को बहुत-सी समस्याओ का सामना करना पड रहा है। *इस सदर्भ मे सूती वस्त्र उद्योग के आधुनिकीकरण पर जोशी समिति का यह* विचार बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, "यदि समय रहते ही हमारी मिलें आधुनिक यंत्रो से सज्जित नही की जातीं तो आगे चलकर वही सकट व बेकारी की स्थिति पैदा हो *जाएगी* जिससे बचने के लिए श्रमिक इतने चिंतित हैं। यह सर्वविदित है कि भारत में बहुत-सी मिलें पुरानी और जाकड मशीनों से काम चला रही हैं" यदि अन्य बातो को इन स्थिति में पहुचने से बचाना है तो उनका आधुनिकीकरण एक अपरिहार्य आवश्यकता है।"

संक्षेप में निम्न कारणों से भारतीय सूती वस्त्र उद्योग का आधुनिकीकरण आवश्यक है—

1 **प्राचीन मशीनें** भारतीय सूती वस्त्र उद्योग मे इस समय जो मशीनें हैं वे काफी पुरानी हैं। 30 से लेकर 40 प्रतिशत मशीनें 40 वर्ष पुरानी हैं तथा लगभग 65 प्रतिशत मशीनें 20 वर्ष से अधिक पुरानी हैं फलत उत्पादन की किस्मे नीचे स्तर की और उत्पादन लागत अधिक रहती है व श्रमिको पर कार्यभार अधिक रहता है। अत उत्पादन म मितव्ययिता एव क्षमता लाने के लिए यह आवश्यक है कि उद्योग म आधुनिकतम मशीनो को लगाया जाए।

2. **अनार्थिक आकार की मिलें** भारत मे अनार्थिक आकार की मिलो की सख्या भी काफी अधिक है। सन 1969 मे 81 मिलें अनार्थिक परिस्थितियो के कारण बद थी, जिसके परिणामस्वरूप एक ओर प्रतिस्पर्धक शक्ति म बाधा मे पडती है। अत ऐसी मिलो को आर्थिक आकार का बनाने व उनकी क्षमता का स्तर उठाने की अनिवार्यता है। भारतीय सूती वस्त्र मिल सघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री कृष्णराज थैकरसे के शब्दो म हमे यह जानना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के विस्तार व उसके क्षमतापूर्ण व आर्थिक परिचालन के लिए आकार की मितव्ययिताओ को नजरअदाज नही किया जा सकता है। अत जहा कही भी सभव हो अनार्थिक आकार की इकाइयो को शक्तिशाली इकाइयो मे मिला देना चाहिए।

3 **स्वचालित करघों का कम प्रयोग** भारत मे स्वचालित करघा का प्रयोग अन्य देशो की तुलना मे बहुत कम है जैसाकि निम्नलिखित तालिका के अको से स्पष्ट है।

सारिणी—1

देश	कुल करघों में प्रतिशत	देश	कुल करघो में प्रतिशत
सयुक्त राज्य	100	सयुक्त अरब गणराज्य	59
हागकाग	100	चीन	40
रूस	72	इग्लैंड	40
पाकिस्तान	69	भारत	15 6

4 **श्रमिकोका उत्पादकता स्तर कम है** भारतीय सूती वस्त्र उद्योग म श्रमिकों की उत्पादकता का स्तर नीचा है। एक अनुमान के अनुसार जापानी श्रमिक औसतन 14 से 15 करघा की देखभाल करता है जबकि भारतीय श्रमिक औसतन 2 करघा का ही चला पाता है। यह स्थिति खेदजनक है। इसमे सुधार उसी समय सभव है जब उद्योग म आधुनिकरण और पुनर्गठन के कार्यक्रम कार्यान्वित किया जाए।

5 **निर्यात मे वृद्धि** सूती वस्त्र उद्योग भारत का एक परपरागत विदेशी मुद्रा अर्जन करने वाला है। परतु निर्यात बाजार मे बढती हुई प्रतियोगिता के कारण भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को कठिन स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। भारत को सूती वस्त्र के विदेशी बाजारो मे जापान, हागकाग चीन व इगलैंड स प्रतियोगिता करनी पडती है। निर्यात बढ़ाना की सभावना तभी की जा सकती है जबकि कपडे का लागत मूल्य कम किया जाए और उत्पादन की किस्म मे सुधार किया जाए जो बिना आधुनिकीकरण के सभव नहो है।

6 **देश मे उपभोग बढाने के लिए** भारत मे प्रति व्यक्ति कपडे का उपयोग अन्य देशो की तुलना मे बहुत कम है। इसका मूल कारण एक ओर तो कीमतो न अधिक होना तथा दूसरी ओर नागरिको की क्रय-शक्ति का सीमित होना है। अत. अधिक उपयोग के लिए कपडे की कीमत कम जाए और इसके लिए आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

7 **कृत्रिम धागा वस्त्र उत्पादन** आज कृत्रिम धागो से बने कपडे जैसे नाइलोन, टेरीकाट व टेरीलीन इत्यादि की माग प्राय प्रत्येक राष्ट्र मे बढ रही है। इसके उत्पादन की दृष्टि स भी नवीन मशीनो और तकनीकों की आवश्यकता है।

सूती वस्त्र उद्योग के आधुनिकीकरण मे प्रगति

प्रथम योजना की समाप्ति तक सूती वस्त्र उद्योग मे आधुनिकीकरण की प्रगति बहुत ही कम हुई। एक अनुमान के अनुसार 1946 से 1953 तक स्वचालित करघा की सख्या 7430 से बढकर 11099 हो गई। इस प्रकार औसतन 458 करघे प्रति वर्ष लगे। जनवरी 1960 मे स्वचालित करघो 118 की सख्या 16977 हो गई। सन् 1961-66 की अवधि मे 30 हजार स्वचालित करघे लगाए गए जो कुल करघो के लगभग 14 प्रतिशत थे। सन 1970 मे स्वचालित करघो का भाग लगभग 20 प्रतिशत हो गया।

हर्ष की बात है कि भारत सरकार ने सूती वस्त्र उद्योग के आधुनीकीकरण मे पर्याप्त सहायता की है। सरकार ने इस सदर्भ मे जो प्रमुख कदम उठाए है वे निम्नलिखित हैं—

1 **वित्तीय सहायता** सरकार ने सूती वस्त्र उद्योग को प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता के अतिरिक्त राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम और (अब औद्योगिक विकास बैंक) द्वारा सन 1957 म उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए कम ब्याज पर ऋण देना प्रारभ किया है।

2 **राष्ट्रीय सूती वस्त्र निगम की स्थापना** सन् 1968 मे राष्ट्रीय सूती वस्त्र निगम की स्थापना की है जो कमजोर मिलो का प्रबध अपने हाथ मे लेता है। यह योजना प्रारभ म 16 मिलो म प्रारभ की गई। कुछ राज्यो मे प्रादेशिक स्तर पर भी सूती वस्त्र निगमो की स्थापना की गई है।

करो मे रियायतें सरकार न सूती वस्त्र मिलो को करो मे भी रियायतें प्रदान की है। सन् 1969 70 क बजट म सूती वस्त्र उद्योगो के उत्पादनो पर उत्पादन कर म छूट दी गई।

4 **अनुसधान कार्यक्रम** सूती वस्त्र उद्योग मे कार्य कर रही तीन अनुसधान सस्थाओ—अहमदाबाद वस्त्र उद्योग सघ, दक्षिण भारतीय शोध सघ व बबई शोध सघ को सरकार द्वारा एक करोड़ से भी अधिक अनुदान दिया गया है।

5 **सूती वस्त्र उद्योग नवीनीकरण योजना 1971** अगस्त सन् 1971 म सूती वस्त्र उद्योग के नवीनीकरण के लिए एक छ सूत्रीय योजना केंद्रीय सरकार द्वारा तैयार की गई है जिसका विवरण इस प्रकार है—(अ) ऐसी मिलें इस योजना के अन्तर्गत वित्तीय सहायता की पात्र होगी जिन्होंने पिछले दो वित्तीय वर्षो मे प्रत्येक वर्ष म अपने कुल उत्पादन का कम से कम 10 प्रतिशत भाग निर्यात किया हो। (ब) इन मिलो के ऋणो के आवेदन-पत्रो पर विचार औद्योगिक वित्त निगम द्वारा किया जाएगा (स) ऋणो पर मार्जिन राशि को घटाकर 25 प्रतिशत कर दिया जाएगा। (द) ऐसी मिलो को ब्याज दर मे भी रियायत दी जाएगी जिनका लाभ तीन वर्षों में बिक्री के 15 प्रतिशत से कम रहा है। (य) ब्याज दर मे रियायत की पूर्ति केंद्रीय सरकार द्वारा की जाएगी। (र) औद्योगिक वित्त निगम द्वारा सूती वस्त्र मिलों को दिए गए ऋणो के असोध्य हो जाने पर 80 प्रतिशत राशि की पूर्ति केंद्रीय सरकार द्वारा की जाएगी।

जूट उद्योग का आधुनिकीकरण

जूट उद्योग भारत के महत्त्वपूर्ण उद्योगो मे से है परतु सूती वस्त्र उद्योग की भांति यह उद्योग भी पुरानी और अप्रचलित मशीनों की समस्याओं से ग्रस्त है। अत इस उद्योग का आधुनिकीकरण करना भी नितात आवश्यक है। सक्षेप मे भारतवर्ष मे जूट उद्योग के आधुनिकीकरण की आवश्यकता निम्न कारणों से है—

1 **पुरानी व घिसी मशीन** · भारत मे जूट मिलों की अधिकाश मशीनें काफी पुरानी व घिसी हुई हैं। अत आवश्यकता इस बात की है कि पुरानी मशीनो को उन्नत किया जाए व कुछ नई मशीनें भी लगाई जाए जिससे लागत व्यय कम हो सके और विश्वव्यापी प्रतियोगिता मे हमारा उद्योग टिक सके।

2 **विदेशी प्रतियोगिता .** भारतीय जूट मिल· उद्योग की एक बडी समस्या विदेशी माल से प्रतिस्पर्धा की है। दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, जापान, फिलीपाइस आदि अनेक देशो ने जूट के सामान का उत्पादन करने के लिए आधुनिक मशीनें लगा कर अनेक मिलो की स्थापना की है। भारत की अपेक्षाकृत ये देश विदेशी बाजारो मे जूट का सामान सस्ता बेचने लगे हैं। अत· ऐसी प्रतिस्पर्धा की परिस्थिति मे इस उद्योग के आधुनिकीकरण की शीघ्र आवश्यकता है।

3 **विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए :** जूट उद्योग भारत को पर्याप्त विदेशी विनिमय प्रदान करता है। इस उद्योग द्वारा कुल विदेशी विनिमय का लगभग 29 प्रतिशत अर्जित किया जाता है। अत ऐसे समय जबकि हम विदेशी विनिमय की अत्यधिक आवश्यकता है, इस उद्योग का आधुनिकीकरण करके निर्यात बढ़ाना चाहिए।

4 **स्थानापन्न वस्तुए :** विदेशी बाजारों में जूट के स्थान पर कागज तथा अन्य स्थानापन्न पदार्थों का पैकिंग के लिए प्रयोग होने लगा है। इसका एक कारण यह भी

है कि भारतीय जूट की कीमत ऊची है। भारतीय जूट उद्योग विवेकीकरण द्वारा अपनी प्रतियोगी शक्ति मे सुधार कर सकता है।

भारतीय जूट उद्योग के आधुनिकीकरण पर जोर देते हुए सन् 1953 में जूट जाच आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे कहा था—"भारत के पास जो बाजार का वर्तमान आकार है वह तभी उसके पास रह सकता है जबकि आधुनिकीकरण के लिए तेजी से प्रयास किया जाए और भारतीय उद्योग लागत घटाकर व कार्यक्षमता मे वृद्धि करके प्रतिस्पर्धा करने वाले को यह दिखा सकें कि वह भी इस क्षेत्र में भरसक प्रयास करने के लिए दृढ रूप से कटिबद्ध है।"

उद्योगो मे विवेकीकरण की प्रगति,

जूट उद्योग मे विवेकीकरण की दिशा मे पहला कदम सन् 1936 मे उठाया गया। तब केंद्रीय जूट समिति बनाई गई जिसने उद्योग की सुदृढता के लिए आर्थिक, कृषि एवं अनुसंधान कार्यों मे योगदान दिया।

विवेकीकरण की दिशा मे एक उल्लेखनीय प्रयास अखिल भारतीय जूट मिल सघ का रहा है, जिसने उद्योग के उत्पादन पर नियत्रण व जूट उद्योग मे सुदृढता लाने की दिशा मे सफल प्रयत्न किए हैं।

सन् 1947 मे दिशा का विभाजन होने से जूट उद्योग पर बहुत बुरा प्रभाव पडा। अतः योजनावधि के प्रारभ से ही सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर इस उद्योग के आधुनिकीकरण के अनेक प्रयास किए गए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना : प्रथम योजना काल मे जूट तैयार करने तथा कातने की मशीनो के आधुनिकीकरण करने मे पर्याप्त प्रगति की गई। इस योजना में 28 मिलो के करघों का आधुनिकीकरण किया गया और इस पर 8 5 करोड रुपये व्यय हुए। इसके अतिरिक्त अनुमानतः 15 करोड रुपये मूल्य की आधुनिकतम मशीनें भी लगाई गई। इस योजना के अत तक जूट कातने के अधिकाश उपकरणों का आधुनिकीकरण किया जा चुका था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना : द्वितीय योजना मे जूट उद्योग के आधुनिकीकरण कार्यक्रम की गति को तीव्र किया गया। सरकार ने राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम को जूट उद्योग की मशीनो का आधुनिकीकरण करने के लिए ऋण व अग्रिम देने के लिए कहा। मार्च सन् 1961 तक निगम ने इस नीति के अतर्गत जूट उद्योग को लगभग 6 करोड रुपये का ऋण स्वीकृत किया है। द्वितीय योजना मे जूट उद्योग के आधुनिकीकरण कार्यक्रमों पर लगभग 35 करोड रुपये व्यय हुए।

तृतीय पंचवर्षीय योजना तृतीय योजना मे जूट उद्योग की बुनाई व फिनीशिंग विभागो के आधुनिकीकरण की योजनाए तैयार की गई और देश के अदर ही मशीनो का निर्माण प्रारभ किया गया। सन् 1963 के मध्य तक जूट उद्योग की कताई क्षमता का शतप्रतिशत आधुनिकीकरण हो चुका है। इस योजना मे इस उद्योग के आधुनिकीकरण पर लगभग 65 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

सन् 1969-70 के बजट मे सरकार ने जूट उद्योग को प्राथमिकता प्राप्त उद्योगो की सूची मे शामिल कर लिया है जिसके आधार पर इस उद्योग को 35 प्रतिशत की दर से विकास छूट मिलेगी। जूट उद्योग के आधुनिकीकरण की दिशा मे यह एक अच्छा कदम उठाया गया है।

चीनी उद्योग का विवेकीकरण
(Rationalisation of Sugar Industry)

चीनी उद्योग भी भारत का एक प्राचीन उद्योग है। इस उद्योग के अधिकाश यत्र पुराने व घिसेपिटे हैं। इनको बडे पैमाने पर बदल कर उद्योग मे आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

आधुनिकीकरण की योजना चीनी उद्योग म आधुनिकीकरण के सबध मे सन् 1962 म भारतीय चीनी मिल सघ न एक नोट तैयार किया था जिसके अनुसार देश म सन 1951 से पहले स्थापित मिलो की सख्या 136 थी जिनमे 67 मिलें ऐसी थी जिनका विस्तार नही हुआ था। 20 मिलें ऐसी थी जिनका विस्तार पूर्व क्षमता के 30 प्रतिशत तक हुआ था और 49 मिलें ऐसी थी जिनका विस्तार 38 प्रतिशत तक हुआ था। इस नोट के अनुसार इन मिलो मे से प्रथम दो प्रकार की मिलो का आधुनिकीकरण करने के लिए 70 लाख रु० प्रति इकाई और तृतीय प्रकार की मिलो का आधुनिकीकरण करने के लिए 35 लाख रुपए प्रति इकाई अनुमानित किया गया। इस आधार पर सपूर्ण आधुनिकीकरण का व्यय 78 05 करोड रुपये अनुमानित किया गया।

भारत सरकार ने **गुडूराव** की अध्यक्षता मे एक **चीनी मिल पुनर्वास और आधुनिकीकरण समिति** नियुक्त की जिसने अपनी रिपोट (जो सन 196. मे दी गई थी) मे यह बताया कि चीनी उद्योग को सुदृढ आधार पर लाने के लिए 260 करोड रुपये की आवश्यकता होगी। समिति ने आधुनिकीकरण के लिए एक विशेष निधि के निर्माण का सुझाव दिया।

आधुनिकीकरण की प्रगति चीनी उद्योग मे उत्पादकता बढान क लिए गुण-नियत्रण योजना कार्यान्वित की जा चकी है। शक्कर के गुणो के प्रमाप भी निश्चित किय जा चुक हैं। तृतीय पचवर्षीय योजना म गन्ना विकास योजना को अधिक गहनता से लागू किया गया। चीनी उद्योग मे मशीनो के आधुनिकीकरण के काय मे भारतीय औद्योगिक विकास निगम न पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान की है लेकिन इसकी प्रगति काफी धीमी गति स हुई है।

लोहा, इस्पात, कोयला एव सीमेंट उद्योगो मे विवेकीकरण

लोहा एव इस्पात उद्योग म विवेकीकरण की दृष्टि से सन् 1936 म इडियन आयरन एँड स्टील कपनी का पुनगठन किया गया और स्टील कारपोरेशन की स्थापना की गई। सन् 1952 म बगाल स्टील कारपोरेशन को इडियन आयरन एँड कपनी मे मिलाया गया। इसम भी विवेकीकरण की क्रियाओ को प्रोत्साहन मिला। लोह खनन

क्षेत्र मे जापान की सहायता से बेलाडीला (म० प्र०) मे आधुनिकतम यत्रो से सुसज्जित लौह खनन कार्य प्रारभ किया गया। 14 जुलाई 1972 को केंद्रीय सरकार ने देश के दूसरे विशाल लौह एव इस्पात कारखाने IISCO का प्रबध अपने हाथ म ले लिया है जिसका मुख्य उद्देश्य कारखाने की मशीनो मे उचित सुधार करना व श्रम समस्याओ का समाधान करना है।

कोयला उद्योग को प्राय वर्तमान मे बीमार तथा भविष्य के प्रति अनिश्चित कहा जाता है। इसके उत्पादन म कोई वृद्धि नही हुई है। भारत सरकार इस उद्योग की विभिन्न समस्याओ के समाधान के लिए शुरू मे ही काफी प्रयासशील रही है। सन 1950, 54 55 तथा 1957 म राष्ट्रीय स्तर पर कोयला उद्योग की समस्याओ के समाधान और अनुसधान हेतु धनबाद मे केंद्रीय ईंधन अनुसधानशाला की स्थापना की गई। द्वितीय योजना काल म राष्ट्रीय कोयला विकास निगम की स्थापना की गई। तृतीय योजना मे इस उद्योग के आधुनिकीकरण तथा विवेकीकरण के लिए विश्व बैंक न 17 करोड रुपये का ऋण दिया।

सीमेंट उद्योग अपेक्षाकृत नया उद्योग है और इस उद्योग मे मुख्य समस्या अनार्थिक आकार की इकाइयो की है। इस उद्योग मे विवेकीकरण की दृष्टि से मुख्य प्रयास सयोजन के रूप मे किया गया है। सन् 1936 म 11 सीमेंट कपनियो के सम्मिश्रण मे एसोसिएटड ग्रुप की सीमेंट कपनियो ने इससे समझौता कर लिया। सरकार की ओर से इस दृष्टि से उल्लेखनीय प्रयास भारतीय सीमेंट के रूप मे किया गया है। केंद्रीय भवन शोध सस्थान रुडकी मे उत्पादन लागत कम करने के सबध म प्रयोग किए जा रहे हैं। उद्योग मे उत्पादन वृद्धि की दृष्टि से अमरीका के विकास ऋण निधि और प्राविधिक सहयोग मिशन की सहायता ली जा रही है।

भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की धीमी प्रगति के कारण

इसम सदेह नही कि देश के विभिन्न महत्त्वपूर्ण उद्योगो मे विवेकीकरण और आधुनिकीकरण की दिशा मे उल्लेखनीय कदम उठाए गए हैं। लेकिन इसकी प्रगति अत्यत ही धीमी गति से हुई है। इसका कारण देश मे विवेकीकरण के माग मे अनेक बाधाए हैं जिनमे से मुख्य निम्नलिखित हैं—

1 **पूजी का अभाव** भारत मे पूजी निर्माण की गति बहुत कम है जिसके द्वारा नवीन विनियोगो की आवश्यकताओ को भी पूर्ण कर पाना सभव नही है। ऐसी स्थिति म विवेकीकरण की योजनाओ के निमित्त पर्याप्त मात्रा मे पूजी जुटा पाना दुष्कर कार्य है।

2 **तकनीकी ज्ञान एव अनुभव की कमी** विवेकीकरण के कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने के लिए उच्च स्तर के तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता पडती है। भारत म इस तरह की श्रम-शक्ति की कमी है जिसके कारण विदेशो स विशेषज्ञो को बुलाना पडता है और काफी खर्चा करना पडता है।

3 **उद्योगो मे परस्पर सहयोग की भावना का अभाव** भारतीय उद्योगपतियो

परस्पर सहयोग की भावना का अभाव है। व्यक्तिगत स्वार्थों को अधिक प्रधानता देने के कारण जो समझौते किये गये, वे अल्पकालीन ही रहे तथा वे असफल रहे।

4 **औद्योगिक संघर्ष** श्रमिकों एवं नियोक्ताओं में परस्पर असहयोग एवं वैमनस्यता की भावना के कारण विवेकीकरण को अपनाने में अनेक कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। श्रमिक वर्ग नियोक्ताओं को अपना सहयोगी व पोषक नहीं बल्कि शोषक समझते हैं। उद्योगपति श्रमिकों का महत्त्व नहीं समझते। श्रमिकों के प्रति उद्योगपतियों का संकीर्ण विचार विवेकीकरण से प्राप्त होने वाले लाभ को स्वयं रख लेना तथा श्रमिकों के दूषित संगठन आदि कारणों से विवेकीकरण की योजना भारत में सफल नहीं हो सकी।

5 **बेकारी की आशंका** भारत में वैसे ही बेकारी की समस्या बड़ी जटिल है। यदि विवेकीकरण की योजनाओं को कार्यान्वित किया गया तो बेकारी फैलने की आशंका बनी रहती है। इस प्रकार बेकारी के भय के कारण विवेकीकरण का विरोध किया जाता है।

6 **मशीन निर्माण-क्षमता की कमी** विवेकीकरण के प्रमुख अंगों के रूप में यन्त्रीकरण आधुनिकीकरण और स्वचालन इत्यादि की योजनायें क्रियान्वित की जाती हैं जिनके लिए मशीनों की आवश्यता होती है। यद्यपि देश में मशीनों का निर्माणकार्य तेजी से बढ़ रहा है तथा सूती वस्त्र करघों शक्कर बनाने की मशीनों, सीमेंट बनाने की मशीनों आदि के निर्माण में लगभग आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा चुकी है फिर भी देश में आधुनिक तकनीक से सुसज्जित मशीन-निर्माण की क्षमता की कमी रही है।

7 **श्रमिकों द्वारा विरोध** भारत में जब भी विवेकीकरण की योजनाएं क्रियान्वित की गई हैं श्रमिकों द्वारा उसका विरोध किया गया है। विशेष रूप से स्वार्थी श्रमिक नेताओं ने श्रमिक वर्ग को शोषण छटनी व बेरोजगारी का भय दिखाकर विवेकीकरण का विरोध किया है।

8 **उद्योगपतियों की रूढ़वादिता** भारतीय उद्योगपतियों में सामान्यत साहस का गुण नहीं पाया जाता। उनकी उद्योग सबंधी नीतियां रूढ़िवादी हैं। वे सच्चे अर्थ में व्यापारिक अधिक और उद्योगपति कम हैं। पूंजी के विनियोग में उनका संकोच बना रहता है औद्योगिक अनुसंधानों के प्रति उदासीनता की नीति अपनाई है।

विवेकीकरण के संबंध में भारत सरकार की नीति
(Policy of Indian Government Towards Rationalisation)

विवेकीकरण की दिशा में सरकार द्वारा जो प्रयत्न किए गए हैं वे निम्नलिखित हैं—

1 **औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1951** भारत सरकार ने सन 1951 में औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम पास किया जिसका मुख्य उद्देश्य उद्योगों का स्वस्थ नियमन एवं निर्देशन करना है। अधिनियम के अंतर्गत अनुसूचित उद्योगों में विवेकीकरण लागू करने के लिए, विभिन्न पहलुओं पर विचार करने

के लिए विकास परिषदो की स्थापना की गई है।

2 **वित्तीय सहायता** - विवेकीकरण कार्यक्रम के अतर्गत मशीनीकरण, आधुनिकीकरण व पुनर्गठन के लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता पडती है। सरकार प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता के अतिरिक्त विशिष्ट वित्तीय सस्थाओ जैसे औद्योगिक विकास बैंक से भी वित्त उपलब्ध कराती है। सरकार द्वारा उद्योगो के प्रतिस्थापन एव पुनर्निर्माण के सबध मे प्रथम योजना म 230 करोड, द्वितीय योजना मे 150 करोड, तृतीय योजना मे 188 करोड व चतुर्थ योजना मे लगभग 525 करोड रुपये विनियोग किए गए।

3 **श्रम एव पूजी मे पारस्परिक सहयोग** विवेकीकरण की योजना की सफलता के लिए श्रम और पूजी दोनो का सहयोग वाछनीय है। यह सहयोग प्राप्त करने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए जैसे—(अ) आमू रहित विवेकीकरण की नीति की घोषणा, (ब) औद्योगिक प्रबध मे श्रमिको की भागीदारी की योजना को प्रोत्साहित किया जा रहा है। (स) विवेकीकरण से उत्पन्न लाभो मे श्रमिको को न्यायोचित भाग दिलाने का आश्वासन दिया है।

4 **आदर्श ठहराव का निर्माण** - सन् 1957 मे हुए अखिल भारतीय श्रम सम्मेलन मे एक आदर्श ठहराव पास किया गया जिसमे किसी भी औद्योगिक सस्था मे विवेकीकरण योजना लागू करने से पहले श्रम प्रबध के प्रतिनिधियो के सयुक्त विचार विमर्श आदि की अनिवार्य व्यवस्था कर दी गई है। इसमे एक दस-सूत्रीय पथ प्रदर्शक नियमो की सूची भी प्रकाशित की गई है। इन नियमो मे श्रमिको की छटनी की रोकथाम विवेकीकरण से उत्पन्न लाभो के न्यायोचित वितरण एव अन्य महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाए सम्मिलित हैं।

5 **करों मे छूट** विवेकीकरण को प्रोत्साहन करने के लिए सरकार ने करो मे विभिन्न प्रकार की छूटें दी हैं जिनमे विकास छूट अतिरिक्त ह्रास भत्ता इत्यादि सम्मिलित हैं।

6 **औद्योगिक शोध एव अनुसधान** विवेकीकरण कार्यक्रमो म सहायता की दृष्टि स सरकार न शोध कायक्रमो को प्रोत्साहित किया है वे विभिन्न अनुसधान केंद्रो की स्थापना की है। सन 1940 म बोर्ड ऑफ साइटिफिक ऐंड इडस्ट्रियल रिसर्च की स्थापना की तथा सन 1942 म वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसधान परिषद की स्थापना की। सन 1948 मे वैज्ञानिक अनुसधान विभाग खोला गया जो सन 1954 म नवनिर्मित प्राकृतिक एव वैज्ञानिक शोध मत्रालय का अग बन गया। शोध के अधिकतम व्यावहारिक प्रयोग के लिए सन 1[illegible] 3 म केंद्रीय सरकार न राष्ट्रीय शोध विकास निगम की स्थापना की है। सन 1960 म एक आ[illegible] प्रोत्साहन मडल स्थापित किया गया। आविष्कारो के विकास के लिए वित्तीय एव तकनीकी सहायता देना है।

7 **उत्पादकता आदोलन** विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य उत्पादकता म वृद्धि करना है। अत सरकार न इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया है। इस सबध म सन 1958 मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की स्थापना की गई स्थानीय तथा क्षेत्रीय उत्पादकता

परिषदो की स्थापना की गई और सन 1966 वर्ष को उत्पादकता वर्ष के रूप मे मनाया गया।

8 **भारतीय मानक सस्थान** उद्योगो मे प्रमापीकरण लाने के लिए सन 1957 म भारत सरकार द्वारा भारतीय मानक सस्थान की स्थापना की गई। इस सस्थान क प्रमुख काय हैं—(अ) वस्तुओं कच्चे माल व विधियो के प्रमाप तैयार करना। (ब) प्रमाप का प्रचार करना। (स) गुण नियत्रण व प्रक्रियाओ का सरलीकरण करना। (द) विभिन्न सस्थाओ को प्रमाप देना तथा उनका पजीयन करना आदि। जन सन 1972 तक इस सस्थान द्वारा 6864 भारतीय प्रमाप निर्धारित किए जा चुके थे।

परीक्षा प्रश्न

1 विवकीकरण एक उद्योग म लगी हुई सभी इकाइयो द्वारा किसी प्रकार की सयुक्त कायवाही करके वैज्ञानिक तथा तकयुक्त ढग म ही पवव्यय तथा अक्षमता को दूर करने का एक अभियान है। इस कथन की विवेचना कीजिए और विवेकीकरण के मुख्य सिद्धाता और उद्देश्या की विवेचना कीजिए।
2 विवेकीकरण एक अमिश्रित वरदान नही है। इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3 विवेकीकरण का सबसे अधिक विरोध श्रमिको के ओर से हुआ है। इस कथन की व्याख्या कीजिए और यह बतलाइए की विवेकीकरण की किसी योजना को अपनान म श्रमिको का सहयोग प्राप्त करने के लिए क्या उपाय किया जाए?
4 निर्यात बाजारो से भारतीय उद्योग की स्पधा शक्ति मे वद्धि करने के लिए विवेकीकरण ही सबसे अधिक प्रभावशाली उपाय है। इस कथन का परीक्षण कीजिए।
5 भारतीय उद्योगा मे विवेकीकरण पर एक सक्षिप्त टिप्पणी कीजिए। भारत सरकार की विवकीकरण के सबध मे क्या नीति है?
6 *शीघ्र तथा मितव्ययी औद्योगिक उन्नति के लिए विवेकीकरण आवश्यक है* और इसलिए भारत मे समस्त बड पैमाने के उद्योगो मे इसको लागू करना चाहिए। इस कथन की विवचना एव आलोचना कीजिए।
7 विवेकीकरण क्या है भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की तात्कालिक आवश्यकता को समझाइए। श्रम द्वारा विवेक करण का विरोध क्यो होता है?
8 विवेकीकरण से आप क्या समझते हैं? भारतीय उद्योगो म यह कहा तक अपनाया गया है?

अध्याय 6

विशिष्टीकरण

(Specialisation)

विशिष्टीकरण का अर्थ वर्तमान युग विशिष्टीकरण का युग है। छोटे से छोटे काम के लिए भी विशेषज्ञ की आवश्यकता पडती है। किसी काम मे निपुणता प्राप्त करना ही विशिष्टीकरण कहलाता है। विशिष्टीकरण की कुछ परिभाषाए इस प्रकार हैं—

1 **सामाजिक विज्ञानों का शब्दकोष** विशिष्टीकरण से उन सभी सामाजिक वैज्ञानिक आर्थिक व तकनीकी परिस्थितियो का बोध होता है जो सामान्यतया श्रम विभाजन की परिधि मे आती हैं।[1]

2 **किम्बाल** विशिष्टीकरण प्रयास के सीमित क्षेत्र मे प्रयत्न के केंद्रीयकरण को कहते हैं। इस परिभाषा का अर्थ यह है कि विशिष्टीकरण के द्वारा व्यक्ति सभी दिशाओ मे प्रयत्न न करके सीमित क्षेत्र मे विशेष योग्यता प्राप्त कर लेता है इस प्रकार उसके समस्त साधन व शक्तिया एक विशेष दिशा की ओर केंद्रित हो जाती हैं और उसकी कार्यक्षमता अधिकतम हो जाती है। **श्री जरोसलाव जूमा** ने इसीलिए विशिष्टीकरण को पारिभाषित करते हुए लिखा है विशिष्टीकरण मानसिक काय या शारीरिक प्रयत्नो की विशेष समस्याओ अथवा कार्यों पर केन्द्रित करने को कहा जाता है।

वस्तुत विशिष्टीकरण आधुनिक औद्योगिक प्रणाली की विशेषता है अत हम कह सकते हैं कि किसी काम म योग्यता और निपुणता प्राप्त करना ही विशिष्टीकरण है।

विशिष्टीकरण के स्वरूप

विशिष्टीकरण के प्रमुख स्वरूप निम्नलिखित हैं—

1 **श्रम का विशिष्टीकरण** श्रम विभाजन के आधार पर यह विशिष्टीकरण किया जाता है जिसम श्रमिक की मानसिक व शारीरिक योग्यताओ को ध्यान म रखा जाता है। जो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से हृष्ट पुष्ट होते हैं उन्ह शारीरिक काय दिया जाता है और मानसिक दृष्टि म योग्य व्यक्ति को मानसिक श्रम का काय सौंपा जाता है।

1 Encyclopaedia of Social Sciences Vol XIII XIV p 279

2 **पेशो का विशिष्टीकरण :** सभ्यता के विकास के साथ-साथ व्यक्तियो ने विशेष पेशे चुनने आरभ किए। इस प्रकार पेशेवर आधार पर श्रम-विभाजन किया जाने लगा। वर्तमान समय मे यह विशिष्टीकण और भी बढ गया है। अब सिर्फ डाक्टर ही नहीं मिलते बलिक नाक, कान, गले, दात, आख व गुप्त रोग आदि सभी के विशेषज्ञ मिलते हैं। इसी प्रकार दर्जो की दुकान में भी अलग-अलग मर्दाने, जनाने अथवा बच्चो के कपडो के विशेषज्ञ मिलेंगे।

3 **औद्योगिक विशिष्टीकरण :** प्राचीन समय मे एक ही कारखाने मे विभिन्न वस्तुओ का उत्पादन किया जाता था परतु वर्तमान समय मे वस्तु के केवल एक ही भाग का निर्माण एक कारखाने मे होता है तथा उस वस्तु से सबधित अन्य भागो को दूसरे कारखाने से क्रय करके प्राप्त कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ—साइकिल बनाने के प्राय सभी कारखाने टायर-ट्यूब आदि दूसरो से ही खरीदते है।

4 **भौगोलिक विशिष्टीकरण :** प्रत्येक देश की जलवायु व प्राकृतिक साधन विशिष्टीकरण पर पर्याप्त प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए बबई व अहमदाबाद मे सूती वस्त्र उद्योग कलकत्ता मे जूट उद्योग, बरेली मे फर्नीचर उद्योग व फिरोजाबाद मे चूडी उद्योग स्थापित होने का प्रमुख कारण अनुकूल जलवायु व प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता ही है।

5 **तकनीकी विशिष्टीकरण** वर्तमान समय मे उत्पादन क्रियाओ को अनेक उपक्रियाओ मे विभाजित करके प्रत्येक उपक्रिया पर अलग-अलग तकनीकी विशेषज्ञ काम करते है। इसमे इसे तकनीकी विशिष्टीकरण कहते है। उदाहरण के लिए भारत मे जूता उद्योग मे जूता बनाने की क्रियाको लगभग 200 उपक्रियाओमे विभक्त कर दिया गया है।

6 **अन्य क्षेत्रो मे विशिष्टीकरण** उद्योगो के अन्य क्षेत्रो मे भी अब विशिष्टीकरण जोरो पर है। उदाहरण के लिए बैंको को ही लिया जा सकता है। पहले बैंको ने केवल साख की कला मे ही विशिष्टीकरण प्राप्त की थी, परतु अब उसमे भी विशिष्टीकरण हो गया है। जैसे—सरकारी बैंक, औद्योगिक बैंक, भूमि बधक बैंक व व्यापारिक बैंक आदि।

विशिष्टीकरण के लाभ

विशिष्टीकरण के सबध मे एडम स्मिथ ने कहा है "श्रम की कार्य क्षमता उसकी कुशलता एव निर्णय शक्ति मे वृद्धि का सबमे अधिक श्रेय विशिष्टीकरण को ही है। विशिष्टीकरण के लाभ का तीन दृष्टिकोणो से अध्ययन किया जा सकता है।

(अ) उत्पादन की दृष्टि से लाभ

इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित लाभो का वर्णन किया जा सकता है—

1 **उत्पादन मे वृद्धि** विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन मे वृद्धि हो जाती है क्योकि (1) इसमे प्रत्येक व्यक्ति वह विशिष्ट कार्य करता है जिसके लिए वह विशेष रूप से योग्य होता है। (ii) निरतर एक ही काय को करते रहने के कारण व्यक्ति उसे करने

विशेष निपुणता प्राप्त कर लेता है। एडम स्मिथ के अनुसार यदि एक आदमी अकेले ही आलपिन बनाता है तो वह दिन भर में 20 आलपिनो से अधिक नही बना सकता है। लेकिन यदि वह 10 श्रमिको के साथ विशिष्टीकरण के अनुसार कार्य करे तो यही उत्पत्ति 4800 आलपिनो तक बढ सकती है।

2 **उत्पादन व्यय मे कमी** · चूकि विशिष्टीकरण के द्वारा एक व्यक्ति द्वारा कम समय मे ही अधिक वस्तुए उत्पादित की जाती है इसलिए प्रति वस्तु के उत्पादन व्यय मे कमी आ जाती है।

उत्पादन की श्रेष्ठता विशिष्टीकरण के अतर्गत विशेषज्ञो द्वारा वस्तुए उत्पादित होने के कारण वे अधिक अच्छी एव श्रेष्ठ होती हैं।

4 **मशीनो का अधिकाधिक प्रयोग** चूकि विशिष्टीकरण मे सपूर्ण उत्पादन-क्रिया को अनेक उपक्रियाओ मे विभाजित कर दिया जाता है इसलिए प्रत्येक क्रिया अत्यधिक सरल हो जाती है और मशीन के द्वारा की जाने लगती है। इस प्रकार विशिष्टीकरण से मशीनो का प्रयोग अधिक सभव हो जाता है।

5. **अपव्यय मे कमी** चूकि विशिष्टीकरण के अतर्गत प्रत्येक कार्य विशेषज्ञो द्वारा सपन्न किया जाता है इसलिए उत्पादन के क्रम मे साधनो का अपव्यय कम से कम होता है।

6 **समय की बचत** विशिष्टीकरण पर आधारित प्रणाली मे समय की बचत तीन प्रकार से होती है --

(i) अधिक निपुणता के कारण श्रमिक थोडे समय मे ही अधिक कार्य कर लेते हैं।

(ii) सभी श्रमिको का कार्य तथा कार्यस्थान निश्चित होता है अत उन्हे अधिक भाग-दौड नही करनी पडती।

(iii) श्रमिको को मशीनो की सहायता से कार्य करना पडता है।

इन सबका लाभ यह होता है कि उत्पादन मे लगने वाले समय की बचत हो जाती है।

(ब) समाज की दृष्टि से

विशिष्टीकरण से सपूर्ण समाज निम्न प्रकार से लाभन्वित होता है—

1 **आविष्कारों की सख्या में वृद्धि** · विशिष्टीकरण मे एक ही प्रकार के कार्य को रोज-रोज करते रहने से श्रमिक उसमे विशिष्ट योग्यता प्राप्त कर लेता है और उसको और भी सरल एव सुलभ विधियो द्वारा सपन्न करने के बारे म सोचता रहता है। इससे नए-नए आविष्कार और कार्य-विधियो का जन्म होता है।

2 **प्रसाधनों का उचित प्रयोग** विशिष्टीकरण के कारण समाज के प्रसाधनो और शक्तियो का सर्वोत्तम उपयोग सभव होता है।

3 **रोजगार के अवसरो का विस्तार** · विशिष्टीकरण के कारण उद्योग धधो का विकास होता है जिससे अधिक लोगो को रोजगार मिलने लगता है और बेरोजगारी की समस्या दूर होती है।

4 कुशल सगठनकर्ताओं मे वृद्धि : चूकि जटिल विशिष्टीकरण के अतर्गत उत्पादन की प्रत्येक उपविधियों मे समन्वय स्थापित करने के लिए योग्य एव कुशल सगठनकर्ताओ की आवश्यकता पडती है। इसलिए देश में उनकी सख्या मे वृद्धि होती है।

5 सहयोग की भावना में वृद्धि : चूकि विशिष्टीकरण उत्पादन प्रणाली के अतर्गत कोई भी व्यक्ति या परिवार आत्मनिर्भर नहीं हो पाता, इसलिए समाज मे सह योग की भावना बढती है

6 सस्ती वस्तुए विशिष्टीकरण से ही समाज को अच्छी, श्रेष्ठ एव सस्ती वस्तुओ की प्राप्ति होती है।

(स) श्रमिकों को दृष्टि से लाभ

1 **श्रम की कार्यक्षमता मे वृद्धि** : विशिष्टीकरण प्रणाली के अतर्गत प्रत्येक श्रमिक केवल एक ही कार्य या उपकार्य को करता रहता है जिसके कारण वह इस विशेष विधि या उपविधि मे बहुत ही कुशल हो जाता है।

2 **श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि** . विशिष्टीकरण के अतर्गत चूकि उत्पादन कार्य को अनेक सूक्ष्म उपविधियो मे बाट दिया जाता है तथा प्रत्येक उपविधि इतनी सरल और सुगम हो जाती है कि आवश्यकता पडने पर कोई भी श्रमिक उसे आसानी से सीख सकता है, इसलिए यदि श्रमिक एक उद्योग को छोड कर दूसरे उद्योग मे प्रविष्ट होता है तो उसे दूसरे कार्य को सीखने मे अधिक समय नहीं लगता। फलत श्रमिको की व्याव सायिक गतिशीलता अधिक होती है।

व्यावसायिक गतिशीलता से श्रमिको को दो प्रकार से लाभ होता है —

(i) एक उद्योग मे बेकारी बढने पर वह दूसरे उद्योग म लग सकता है।

(ii) श्रमिको को अच्छी मजदूरी प्राप्त हो जाती है।

3 **प्रशिक्षण में कम समय व धन के व्यय में बचत** चूकि विशिष्टीकरण के अतगत पूर्ण क्रिया के सीखने के बजाय एक छोटे से भाग को ही सीखना पडता है इसलिए श्रमिको का प्रशिक्षण मे कम समय और कम व्यय लगता है।

4 **पारिश्रमिक में वृद्धि** · चूकि विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन मे वृद्धि होती है जिससे श्रमिको को अधिक पारिश्रमिक मिलता है।

5 **रोजगार में वृद्धि** · विशिष्टीकरण के परिणामस्वरूप कई प्रकार के कार्यों का सूत्रपात होता है तथा कई टुकडों मे बट जाते हैं, इसीलिए स्त्री पुरुष, बुड्ढ, जवान, बच्चे सबको उनकी शक्ति एव क्षमता के अनुसार कार्य मिल जाता है।

6 **सहयोग की भावना का विकास** विशिष्टीकरण ने वृहद उत्पादन को जन्म दिया है जिसमे सैकडो या हजारो मजदूर एक साथ मिलकर एक स्थान पर काम करते हैं अत उनमे पारस्परिक एकता तथा सहयोग की भावना उदय होती है।

7 **श्रमिकों का सांस्कृतिक विकास** जब किसी कारखाने म हजारो मजदूर देश के विभिन्न हिस्सो मे आकर परस्पर सहयोग करते हैं तो इसस श्रमिक एक दूसरे के

रीति-रिवाज तथा सांस्कृतिक जीवन से न केवल परिचित होते हैं वरन् आपस में संस्कृति का उनमें आदान प्रदान होता है एवं इसी में नई-नई बातें सीखने का अवसर प्राप्त होता है।

8 **श्रमिकों में संगठन और उनकी सौदा करने की शक्ति में वृद्धि** विशिष्टीकरण के कारण चूंकि उत्पादन का पैमाना बड़ा हो जाता है इसीलिए भारी संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं। परस्पर साथ रहने से उनमें वर्ग चेतना आती है और वे मिलकर श्रमिक संघ बनाते हैं। इससे मालिकों के साथ सौदा करने की शक्ति बढ़ती है और उनके कार्य करने की अवस्थाओं में सुधार होता है।

प्रो० पैंसन ने विशिष्टीकरण के अनेक लाभों को संक्षेप में इस प्रकार वर्णित किया है— विशिष्टीकरण का परिणाम श्रम की अपेक्षाकृत अधिक उत्पादकता, पूंजी के विनियोग के लिए अधिक अवसर, व्यवसाय की अपेक्षाकृत अधिक विविधता, संगठनकर्ता की कुशलता की अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन आदि इन रूपों में प्रकट होता है। सारांश में विशिष्टीकरण का परिणाम उत्पादनात्मक प्रयत्न की कुशलता में वृद्धि होना है।"

विशिष्टीकरण की हानियां

विशिष्टीकरण की हानियों का भी हम तीन दृष्टिकोणों से अध्ययन कर सकते हैं—

(क) श्रमिकों के दृष्टिकोण से

विशिष्टीकरण से श्रमिकों को निम्नलिखित हानियां हैं—

1 **नीरसता** जब एक श्रमिक प्रतिदिन केवल एक ही काम को निरंतर करता रहता है तो वह कार्य उसके लिए नीरस हो जाता है और वह शीघ्र ही उस काम से ऊब जाता है।

2 **कार्यक्षमता की क्षति** विशिष्टीकरण में श्रमिक किसी कार्य का अल्पांश ही करना सीखता है और कालांतर में श्रमिक इसे यंत्रवत करने लगता है और फिर उसे अपनी कार्यविधि के विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे उसकी कार्यक्षमता का ह्रास होने लगता है **एडम स्मिथ** के शब्दों में ऐसे मनुष्य को जिसका संपूर्ण जीवन किसी सरल कार्य को करते ही बीत जाता है उसे कभी अपनी समझदारी पर जोर डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रायः वह इतना मूर्ख और अज्ञानी हो जाता है जितना कि मानव के लिए संभव है।

3 **उत्तरदायित्व का अभाव** विशिष्टीकरण के अन्तर्गत मजदूरों में उत्तरदायित्व का ह्रास हो जाता है क्योंकि अंतिम उत्पादन सब श्रमिकों की चेष्टाओं का परिणाम होता है। यदि अंतिम उत्पादन किसी कारण घटिया किस्म का है तो उसके लिए किसी एक श्रमिक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

4 **श्रमिक की गतिशीलता में कमी** विशिष्टीकरण के कारण श्रमिक की गतिशीलता बढ़ने के बजाय घटती है क्योंकि श्रमिक एक छोटी सी क्रिया को ही जानता

हैं। इसीलिए जब तक उसी क्रिया की मांग न हो तो श्रमिक को कार्य नहीं मिलता।

5 **स्त्री तथा बाल श्रमिकों का शोषण** विशिष्टीकरण मे अनेक कार्य स्त्री और बच्चो के करने लायक भी होते हैं परन्तु सेवायोजक बहुधा उनका पूर्ण पुरस्कार न देकर उनका शोषण करते है।

(ख) उत्पादक के दृष्टिकोण से

उत्पादक को भी विशिष्टीकरण से निम्नलिखित हानिया है—

1 चूकि विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन का पैमाना जटिल हो जाता है इसलिए उसके प्रबध एव प्रशासन का कार्य अत्यत जटिल हो जाता है।

2 विशिष्टीकरण के कारण चूकि श्रमिक सघो को प्रोत्साहन मिलता है इसलिए उत्पादको को हमेशा भय बना रहता है कि कही श्रमिक उचित-अनुचित मागो के लिए हडताल आदि न करें।

(ग) समाज के दृष्टिकोण से

विशिष्टीकरण मे समाज को निम्नलिखित हानिया हैं—

1 विशिष्टीकरण ने ही फैक्टरी को जन्म दिया है जिससे—

(i) गदगी मकान का अभाव, गुडागर्दी तथा अन्य सामाजिक कुरीतिया व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं।

(ii) व्यक्तियो मे गाव से भागकर शहर मे आने की प्रवृत्ति बढती है।

(iii) मजदूरो की गदी बस्तिया बसती हैं।

(iv) औद्योगिक नगरो के बसने से महगाई मे वृद्धि होती है।

(v) स्त्रियो और बच्चा का शोषण होता है।

(vi) अति उत्पादन का भय बना रहता है।

(vii) औद्योगिक सघर्ष को प्रोत्साहन मिलता है जो सामाजिक जीवन को न केवल कलुषित करता है वरन् इससे राष्ट्रीय उत्पत्ति का भी हानि होती है।

2 विशिष्टीकरण के कारण समाज के सदस्यो की आत्मनिर्भरता घट जाती है तथा वे एक दूसरे पर अवलम्बित हो जाते है। यदि सूती वस्त्र उद्योग म सूत तैयार करने वाले श्रमिक हडताल कर दें तो इससे न केवल कपडा बनाने वाली मिल बद हो जाएगी बल्कि कपास बेचने वाले थोक व्यापारियो का व्यवसाय भी ठप्प हो जाएगा।

विशिष्टीकरण की सीमाए

विशिष्टीकरण की निम्नलिखित सीमाए हैं जिसके कारण विशिष्टीकरण का अधिक विस्तार सभव नहीं हो पाता।

1 **बाजार का विस्तार** जैसा कि एडम स्मिथ ने कहा है कि 'विशिष्टीकरण बाजार के विस्तार द्वारा सीमित होता है।" यदि किसी वस्तु की माग बहुत विस्तृत

होती है तो सबंधित उद्योग का उत्पादन पैमाना वृहद् होगा और विशिष्टीकरण भी व्यापक रूप से सभव हो सकता है वरना नही।

प्रो० टाजिग के शब्दो मे जूता बनाने का कार्य काटने वाले, सीने वाले, कील ठोकने वाले तथा अन्य व्यक्तियो के मध्य बाटना तब तक सभव नही है जब तक कि सबके सम्मिलित श्रम से उत्पन्न जूते की बिक्री के लिए पर्याप्त बाजार उपलब्ध न हों।

2. **व्यवसाय अथवा उद्योग की प्रगति** ऐसी कलात्मक वस्तुओ के उद्योग जिनकी उत्पत्ति के लिए श्रमिको मे विशेष निपुणता की आवश्यकता पडती है और जिनका उत्पादन बडे पैमाने पर सभव नही है उनका विशिष्टीकरण के लिए अधिक क्षेत्र नही होता।

3 **वस्तु को माग की स्थिरता :** विशिष्टीकरण को व्यापक रूप से अपनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि वस्तु की माग बाजार मे निरतर रहनी चाहिए अन्यथा उत्पादन के पैमाने का अधिक विस्तार नही हो सकता। यदि उत्पादन मौसमी है तो मजदूरो को बेकारी के दिनो मे दूसरे कामो पर जाना पडेगा और ऐसी स्थिति मे विशिष्टीकरण अधिक मात्रा मे नहीं हो सकता।

4 **श्रम की उपलब्धता तथा परस्पर सहकारिता :** विशिष्टीकरण केवल उस सीमा तक सभव हो पाता है जिस सीमा तक श्रमिको की पूर्ति सभव होती है। इसी प्रकार श्रमिको मे सहकारिता की भावना की सीमा भी विशिष्टीकरण की सीमाओ को निर्धारित करती है। सहकारिता के अभाव मे एक वर्ग द्वारा उत्पन्न वस्तु का उपयोग दूसरे वर्ग द्वारा नही किया जा सकता है जिससे विशिष्टीकरण मे कठिनाई होती है।

5 **सगठनकर्ता की कुशलता :** चूकि प्रत्येक सगठनकर्ता के उत्पादन कार्य की देख-रेख की क्षमता सीमित होती है इसलिए विशिष्टीकरण भी सगठनकर्ता की देख-रेख की क्षमता से सीमित रहता है।

9 **व्यापार सबधी सुविधाए :** विशिष्टीकरण प्रणाली का विस्तार देश मे उपलब्ध व्यापार सबधी सुविधाओ पर ही निर्भर रहता है। जिस देश मे परिवहन और सवादवाहन के साधन—बैंक, बीमा कपनिया, आदि जितनी अधिक मात्रा मे उपलब्ध होगी उतना ही बाजार विस्तृत होगा और बाजार विस्तृत होने पर विशिष्टीकरण प्रणाली का उपयोग भी उतना ही जटिल होगा।

विशिष्टीकरण के लाभप्रद उपयोग के लिए सुझाव

विशिष्टीकरण मे जटिल कार्य को उत्तम ढग से करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को छोटे से छोटे कार्य पर अपना सपूर्ण ध्यान लगाना पडता है व कार्य को कुशलतापूर्वक करना होता है। अत विशिष्टीकरण का लाभप्रद उपयोग उसी समय सभव हो सकेगा जबकि निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखा जाए—

1 **निश्चित कार्य-क्षेत्र :** कारखाने मे काम करने वाले प्रत्येक श्रमिक का कार्य क्षेत्र व उत्तरदायित्व निश्चित कर देना चाहिए।

2 **वैज्ञानिक विभाजन** . प्रत्येक कार्य एवं उपकार्य का विभाजन वैज्ञानिक आधार पर किया जाना चाहिए जिससे प्रत्येक क्रिया पूर्ण एवं निश्चित हो।

3 **रुचि के आधार पर कार्य** प्रत्येक कार्य करने वाले व्यक्ति को उसकी रुचि एवं योग्यता को ध्यान मे रखकर दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त श्रमिको को एक से अधिक कार्य करने की सुविधा दी जानी चाहिए—कुछ दिन एक काय कुछ दिन दूसरा कार्य, कुछ दिन तीसरा कार्य आदि। इससे लगातार रोज-रोज एक ही काम करने स पैदा होने वाली नीरसता कम हो जाती है।

समन्वय विशिष्टीकरण के अतर्गत कार्यों को अनेक उपकार्यों मे विभाजित किया जाता है परतु उनम आपस मे समन्वय होना आवश्यक है।

5 **उत्पादन लागत** विशिष्टीकरण के प्रभावों का अध्ययन उत्पादन लागत क रूप में विशेष तौर पर किया जाना चाहिए।

6 **बड़ा आकार** विशिष्टीकरण उसी उत्पादन इकाई म अपनाया जाना चाहिए जिसका आधार बड़ा हो, जिसमे बड़े पैमाने पर उत्पादन सभव हो सके।

7 **तकनीकी शिक्षण व प्रशिक्षण** तकनीकी शिक्षण व प्रशिक्षण की सुविधाए उपलब्ध होनी चाहिए ताकि श्रमिक एक नहीं कई काम सीख सके और मौका मिलने पर एक कार्य से दूसरे काय पर जा सके।

8 **मशीनों की जिम्मेदारी** विशिष्टीकृत अल्पांशिक कार्य करने वाले श्रमिका को उनके काम की मशीनो की जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।

परीक्षा प्रश्न

1 विशिष्टीकरण किसे कहते है ? इसके विभिन्न रूप क्या हैं ? विशिष्टीकरण के गुण दोषों की विवेचना कीजिए व इसकी सीमाए बताइए।

2. आज का युग विशिष्टीकरण का युग है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? यदि हा, तो विशिष्टीकरण के गुण-दोषो का वर्णन कीजिए।

3 विशिष्टीकरण से क्या आशय हैं ? विशिष्टीकरण के गुण व दोषो का वणन कीजिए। विशिष्टीकरण को किस प्रकार अधिक लाभप्रद बनाया जा सकता है ?

अध्याय 7

सेविवर्गीय प्रबंध
(Personnel Management)

सेवीवर्गीय प्रबंध का अर्थ प्रबंध का वह भाग, जो कर्मचारियों व अन्य श्रमिकों की प्रबंध व्यवस्था में संबंधित हो, उसे सेविवर्गीय प्रबंध कहा जाता है। सेविवर्गीय प्रबंध वास्तव में एक ऐसी प्रबंध प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य संस्थान के कार्य में लगे हुए कर्मचारियों का सर्वांगीण विकास इस ढंग से करना होता है कि वे कार्य संपादन को रोचक अनुभव करते हुए इसमें अपना अधिकतम योगदान दे सकें। संक्षेप में श्रमिकों से अधिकतम कुशलता से कार्य लेना ही सेविवर्गीय प्रबंध कहलाता है जिससे उत्पादकता में वृद्धि की जा सके।

अमेरिका के हर्वार्ड विश्वविद्यालय द्वारा वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के होथोर्न संयत्र में 1926 में किए गए परीक्षण ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति की उत्पादक शक्ति उसके द्वारा कार्य व वातावरण से प्राप्त आत्मसंतुष्टि की वृद्धि के साथ बढ़ती है। यदि श्रमिक वर्तमान कार्य से संतुष्टि एवं भविष्य के प्रति आशाप्रद हो तो उसके मनोबल को उच्च स्तर पर रखा जा सकता है। अतः श्रमिकों से अधिक कार्य-क्षमता के आधार पर कार्य लेने में सेविवर्गीय प्रबंध व उससे संबंधित नीतियों का विशेष महत्त्व माना जाता है।

सेविवर्गीय प्रबंध की परिभाषाएं

सेविवर्गीय प्रबंध के संबंध में निम्नलिखित परिभाषाएं महत्त्वपूर्ण हैं—

1 **पॉल जी० हेस्टिंग्स** "सेविवर्गीय प्रबंध, प्रबंध का वह पहलू है जिसका उद्देश्य एक संगठन के श्रम साधनों के प्रभाव का उपयोग करना है।"[1]

2 **थॉमस जी० स्पेट्स** सेविवर्गीय प्रबंध कर्मचारियों के कार्य का संगठन करने एवं उनसे व्यवहार करने के ढंगों की एक संहिता है जिससे वे अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को अधिकतम मुखरित कर सकें और इस प्रकार उस संगठन को, जिसके कि वे

1 Personnel Management is that aspect of management having as its goal the effective utilization of the labour resources of an organisation "

अग है, निर्णायक प्रतिस्पर्धात्मक लाभ और अनुकूलतम परिणाम दे सकें।"[1]

3 अमरीकन सेविवर्गीय शासन सस्था "सेविवर्गीय प्रबध योग्य कर्मचारियों को इस ढग से प्राप्त करने, विकसित करने, व बनाए रखने की कला है, जिससे सगठन के उद्देश्यो एव कार्यों को अधिकतम क्षमता व मितव्ययिता से पूर्ण किया जा सके।"[2]

4 एडविन बी० फिलप्पो "सेविवर्गीय कार्य का सबध एक सगठन मे लगे कर्मचारियों को उस सगठन के प्रमुख लक्ष्यो या उद्देश्यो को प्राप्त करने के उद्देश्य से उपलब्ध करने, विकास, प्रतिफल, एकीकरण व बनाए रखने मे होता है। अत. सेविवर्गीय प्रबध उन क्रियात्मक कार्यों के नियोजन, सगठन, निर्देशन एव नियत्रण करने को कहा जाता है।"[3]

5 मॉरिस डब्ल्यू० कामेग "सेविवर्गीय प्रबंध का सबध एक सगठन के लिए तथा सभव सर्वश्रेष्ठ कर्मचारियो को प्राप्त करना व उन्हें प्राप्त करने के पश्चात् उनकी देख-भाल करना, जिससे वे उसमे बने रहे और अपने कामो मे सर्वश्रेष्ठ योगदान दे सकें, मे है।"[4]

6 ई० एफ० एल ब्रच: "सेविवर्गीय प्रबध का उद्देश्य मानवीय सबधो को स्थापित करना है, जिससे सस्थान के समस्त कर्मचारी प्रभावशील ढग से कार्य-सचालन

1. "Personnel administration is a code of the ways of organizing and treating individuals at work so that they will get the greatest possible realization of their intrinsic abilities, thus attaining maximum efficiency for themselves and their group, and thereby giving to the enterprise of which they are a part, its determining competitive advantage and its optimum results."
2 "Personnel administration is the art of acquiring, developing and maintaining a competent work force in such a manner as to *accomplish with maximum efficiency and economy* the functions and objectives of the organization"
3 "The personnel function is concerned with the procurement, development, compensation, integration and maintenance of the personnel of an organization for the purpose of contributing *towards the accomplishment of that organization's major goals* or objectives. Therefore, personnel management is the planning, organizing, directing and controlling, of the performanee of those operative functions"
4 'Personnel management is concerned with obtaining the best possible staff for an organization and, *having got the them*, looking after them so that they will want to stay and give of their best to their jobs,"—The Theory and Practice of Personnel Management, 1968, p. I

मे अधिकाधिक योगदान दे सकें।"[1]

7. **भारतीय सेविवर्गीय प्रबंध संस्थान** "प्रबंधकीय कार्य का वह भाग जो संगठन मे मानवीय संबंधो से संबंधित है, सेविवर्गीय प्रबंध कहलाता है। इसका उद्देश्य मधारण है, जिससे संगठन मे प्रभावी कार्य के माध्यम से उत्पादन को अधिकतम सहयोग प्राप्त हो सके।"[2]

8 **सेविवर्गीय प्रशासन समिति** (1958) द्वारा प्रकाशित सेविवर्गीय प्रशासन की आचारसंहिता (Code of Ethics for Personnel Administration) मे सेविवर्गीय प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"यह सक्षम कार्य-समूह (Competent working group) की भर्ती करने, विकसित करने तथा कार्यरत रखने की वह कला है जिससे अधिकतम निपुणता तथा बचत के साथ संगठन के उद्देश्यो की पूर्ति करने के लिए कार्य करना संभव हो सके।"

सेविवर्गीय प्रबंध की विशेषताएं

उपर्युक्त परिभाषाओ के अध्ययन एवं विश्लेषण से सेविवर्गीय प्रबंध की निम्नलिखित विशेषताओ का पता चलता है :

1 **सेविवर्गीय प्रबंध सामान्य प्रबंध विज्ञान का एक अंग है**, अत प्रबंध के सामान्य सिद्धात इस विशिष्ट प्रबंध पर भी लागू होते हैं।

2 उपक्रम एवं कर्मचारियो के हितो का एकीकरण करने मे सेविवर्गीय प्रबंध एक महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

3 मानवीय संबंधो को मधुर बनाए रखने के लिए इस प्रकार के विशिष्ट प्रबंध मे **मानवीय संबंध संबंधी** सिद्धातो का पालन होता है।

4 उपक्रम के हित को ध्यान मे रखते हुए कर्मचारियो से अधिकतम योगदान प्राप्त किया जाता है।

5 इसमे कर्मचारियो की भर्ती, प्रशिक्षण एवं अन्य प्रकार की सुविधाएं प्रदान करना सम्मिलित रहता है।

6 कार्य पर लगे व्यक्तियो को संगठित रूप मे कार्य करने के लिए निश्चित सिद्धातो का पालन किया जाता है।

7 सेविवर्गीय प्रबंध के सिद्धातो की सहायता से कर्मचारियो की क्षमता का पूर्ण विकास करने का प्रयास किया जाता है।

संक्षेप मे सेविवर्गीय प्रबंध सामान्य प्रबंध विज्ञान का ही एक अंग है जिसका उद्देश्य कर्मचारियों की क्षमता को प्राप्त करना विकसित करना और बनाए रखना है जिसकी सहायता से औद्योगिक संगठन के उद्देश्यो और कार्यो को सबसे अधिक क्षमता और मितव्ययिता से नियंत्रित और निर्देशित किया जा सके।

1. Brech · The Principles and Practice of Management
2 Indian Institute of Personnel Management, Calcutta, Personnel Management in India, 1974,

सेविवर्गीय प्रबंध के उद्देश्य

एल० पी० अलफोर्ड तथा एच० रसेल बीटी ने सेविवर्गीय प्रबंध के दो व्यापक उद्देश्य बतलाए हैं—

1 श्रेष्ठ कर्मचारी मनोबल बनाकर उपक्रम द्वारा समाज को उपलब्ध सेवाओं मे सुधार करना, और

2 उपक्रम से सबधित व्यक्तियो, जैसे कर्मचारी, अंशधारी, लेनदार, ग्राहक व सामान्य जनता के मस्तिष्क मे यह विचार भर देना कि उपक्रम उनकी सर्वश्रेष्ठ सेवाए कर रहा है।

मोटे तौर पर सेविवर्गीय प्रबंध के उद्देश्यो को हम निम्नलिखित दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं—

(2) सामान्य उद्देश्य, (2) विशिष्ट उद्देश्य।

(1) सामान्य उद्देश्य सेविवर्गीय प्रबध के सामान्य उद्देश्य इस प्रकार है—

(अ) मानवीय साधनो का प्रभावपूर्ण प्रयोग करना।

(ब) सगठन के सभी सदस्यो मे वाछित कार्यशील सबधो का विकास करना।

(स) प्रत्येक कर्मचारी को सेवाओ का अधिकाधिक उपयोग करना।

2 विशिष्ट उद्देश्य विशिष्ट उद्देश्य का तात्पर्य सेविवर्गीय विभाग की विभिन्न गतिविधियो को निर्दिष्ट करना है। कुछ महत्त्वपूर्ण विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(अ) उपक्रम के सचालन के लिए आवश्यक व्यक्तियो का निश्चित सख्या मे और उपयुक्त तरीके म चुनाव करना।

(ब) नए कर्मचारियो को उचित प्रशिक्षण और दिशा निर्देशन देना।

(स) एक ऐसे सुदृढ प्रशासन का निर्माण करना जिसकी सहायता से कर्मचारियो को उचित *पारिश्रमिक मिल सके।*

(द) कर्मचारियो को इस प्रकार की प्रेरणा देना जिससे वे अधिक लगन और कुशलता से कार्य कर सकें।

(य) उपक्रम के विभिन्न पदाधिकारियो को कर्मचारियो से सबधित समस्याओ, जैसे—*पदोन्नति स्थानातरण पदच्युत करना आदि* के बारे मे परामर्श देना, श्रमिको की मुआवजा देने व लाभ की योजनाओ को अपनाने के लिए सहायता देना।

(र) सेवायुक्त उपकार की व्यवस्था करना। इसमे चिकित्सा सुविधाए प्राविडेंट फड ग्रेच्युटी सवैतनिक अवकाश और अन्य ऐसी ही सुविधाए हो जो कि उपयुक्त *और योग्य व्यक्तियो को सगठन मे रखने के लिए सहायक होगी।*

(ल) प्रतिनिधि श्रम सघो स विश्वास और सम्मान पर आधारित सबधो की स्थापना करना।

(व) सेविवर्गीय प्रबध को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए अनुसधान आदि को प्रोत्साहित करना।

सेविवर्गीय प्रबंध के कार्य
(Functions of Personnel Management)

सेविवर्गीय प्रबंध के कार्यों को मोटे तौर पर चार भागों मे विभाजित किया जा सकता है—

1. परामर्श संबंधी कार्य,
2. प्रबंध संबंधी कार्य,
3. प्रशासन संबंधी कार्य, और
4. कर्मचारी कल्याण संबंधी कार्य ।

1 **परामर्श संबंधी कार्य** इसमे सेविवर्गीय नीति का निर्धारण व्यवसाय को अनेक कार्यों में परामर्श देना व कर्मचारी तथा उच्च प्रबंध के मध्य एक कड़ी के रूप मे कार्य करना आदि सम्मिलित किए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य संस्था मे ऐसा वातावरण तैयार करना है, जिसमे प्रबंधकों और कर्मचारियो के बीच अच्छे संबंध बनाए जा सकें।

2 **प्रबंध संबंधी कार्य** प्रबंध संबंधी कार्यों को निम्नलिखित भागो मे बांटा जा सकता है—

(i) **श्रमिकों की भर्ती और रोजगार :** इसे औद्योगिक श्रमिकों को रोजगार-व्यवस्था भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है—(अ) श्रमपूर्ति के साधनों का विकास करना, (ब) आवश्यक जांच पड़ताल, परीक्षा, साक्षात्कार आदि द्वारा श्रमिको को रोजगार पर लगाना, (स) नवीन श्रमिको को संस्था की नीतियो से अवगत कराना, (द) मजदूरी की प्रचलित दरों के संबंध मे सूचनाएं एकत्रित करना, भूतपूर्व, वर्तमान और भावी कर्मचारियो के संबंध मे आवश्यक जानकारी रखना।

(ii) **प्रशिक्षण** - सेविवर्गीय प्रशिक्षण मे कई बातें आती हैं, जैसे—(अ) नए कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने के संबंध मे नियम बनाना प्रशिक्षण की व्यवस्था और देखभाल करना, (ब) सुरक्षा एवं उपक्रम की नीतियो के संबंध मे प्रशिक्षण देना (स) कर्मचारियो के सुझाव पर उचित कार्यवाही करना।

(iii) **पदोन्नति, स्थानांतरण और सेवा निवृत्ति** इसमे निम्नलिखित कार्यों का सम्मिलित करते हैं—(अ) पदोन्नति, स्थानांतरण और सेवा-निवृत्ति मे संबंधित नियमो के निर्माण में उचित परामर्श देना और उन्हे प्रभावशाली ढंग मे कार्यरूप में परिणत करना। (ब) स्थानांतरण के संबंध में नीतियो का निर्धारण करना। (स) नौकरी से पृथक् किए जाने के कारणो को दूर करना। (द) नौकरी मे अलग करने के संबंध मे उपक्रम की नीति बनाना व इस संबंध मे आवश्यक जानकारी से निरीक्षको व कर्मचारियों को अवगत कराना।

(iv) **सेवा संबंधी क्रियाएं :** इस वर्ग के अंतर्गत अग्रलिखित कारणो को सम्मिलित करते हैं—(अ) मनोरंजन की सुविधाओं का निरीक्षण करना (ब) कल्याण-कार्य

की व्यवस्था करना। (स) सामाजिक सुरक्षा का प्रबंध करना। (द) सयत्र की पत्रिका प्रकाशित करना। (य) कर्मचारियों के व्यक्तिगत मामलों में परामर्श देना। (य) कर्मचारियों के नैतिक साहस को सुदृढ़ बनाना।

(v) **मजदूरी एव प्रेरणाए** इसके अतर्गत निम्न कार्यों को सम्मिलित किया जाता है—(अ) मजदूरी सबधी योजनाओं के सबध मे परामर्श देना। (ब) पेंशन, लाभ-वभाजन, बीमा ऋण योजना आदि के विषय मे विस्तृत जानकारी देना। (स) जाच सबधी निर्देश लिखना व उसका मूल्याकन करना।

(vi) सामूहिक सौदेबाजी एव कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व इनमे निम्न को सम्मिलित करते है—(अ) श्रम सघ के प्रतिनिधियों के साथ सहयोग करना। (ब) कर्मचारियों को क्लब आदि मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना। (स) कर्मचारियों की शिकायतों को दूर करने म सक्रिय भाग लेना आदि।

(vii) **कर्मचारियों के पारिश्रमिक की योजना बनाना** इसमे कार्य-मूल्याकन, पारिश्रमिक नीति व मजदूरी नीति के सबध मे निर्णय लिए जाते हैं।

(viii) सगठन और कर्मचारी के हित का एकीकरण करना इसमे उन क्रियाओ को सम्मिलित किया जाता है, जो श्रमिकों के मनोबल को ऊचा उठाने, उनमे अनुशासन लाने, उनकी शिकायतें दूर करने और उन्हे प्रबंध मे सम्मिलित करके प्रेरित करने आदि से सबधित होता है।

3 **प्रशासन सबधी कार्य** ये वे कार्य है, जो कर्मचारी विभाग को अपना प्रशासन चलाने के लिए करने पड़ते हैं, जैसे विभिन्न प्रकार की सूचनाओं व समको को एकत्र करना, उत्पादन कार्यकुशलता, अनुपस्थित व श्रम परिवर्तन व दुर्घटनाओ आदि के विषय मे आवश्यक सूचनाए एकत्रित करना, श्रम सबधी अधिनियमों की व्यवस्थाओं का पालन करना आदि।

4 कर्मचारी कल्याण सबधी कार्य. इसके अतर्गत उन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जो कर्मचारियों के कल्याण से सबधित होते है। इस प्रकार के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है—

(अ) **चिकित्सा सुविधाए**—श्रमिको को स्वास्थ्य एव चिकित्सा सबधी सेवाए दिलाना जैसे (i) बीमारी निवारण हेतु चिकित्सा सुविधाए देना, (ii) श्रमिको को *स्वास्थ्यवर्धक रहन-सहन तथा बीमारियों को दूर करने के उपाय बताना,* (iii) समय-समय पर शारीरिक परीक्षण की व्यवस्था करना तथा (iv) श्रमिको के स्वास्थ्य के प्रति रेखीय प्रबधकों को राय देना।

(ब) **मनोरजन तथा अन्य कल्याणकारी कार्य**—कारखाना की सेवाओ को आकर्षक बनाने के लिए मनोरजनात्मक तथा कल्याणकारी कार्य किए जाते है जैसे (i) *कार्यक्रम का प्रभाव देखना तथा इस क्षेत्र मे* कर्मचारी की आवश्यकताओ का मूल्याकन करना (ii) उपयुक्त नीतियां, कार्यक्रम तथा सुविधाए विकसित करना तथा (iii) कार्यक्रम एव सुविधाए प्रदान करना तथा उनका सुचारु रूप से सचालन करना

(स) **सुरक्षा सबधी कार्य** कार्यविधि मे श्रमिको की शारीरिक सुरक्षा का

भी ध्यान रखना तथा उससे सबधित आवश्यक कार्यवाही करना, (i) सुरक्षित विधियो स कार्य करने के लिए प्रथम रेखीय पर्यवेक्षणों को प्रशिक्षण देना (ii) सुरक्षा की विधिया नीतिया तथा प्रक्रिया विकसित करना (iii) दुघटनाओं के सबध म जाच करना (iv) सुरक्षा कार्यक्रमो की नियमित देखभाल करना, (v) स्वेच्छा कायक्रम के प्रभाव का मूल्याकन करना।

5 **कर्मचारी आलेख या रिकार्ड सबधी कार्य** इसके अतगत निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं (अ) कर्मचारियो के सेवाकाल पदोन्नतिया वेतनमान प्रशसापत्र इत्यादि सबधी सपूर्ण आलेख तैयार करना और उनको सुरक्षा करना (ब) कमचारी का मूल्याकन करने की दृष्टि से सकलित समको का विश्लेषण करना और उन्हे अधिक उपयोगी बनाना, (स) प्रबधको को निर्णय लेते समय आवश्यक और वाछित आकड प्रस्तुत करना।

6 **सेविवर्गीय शोध सबधी कार्य** - इसके अतगत निम्नलिखित काय सम्मिलित किए जाते है (i) कार्यरुचि का सर्वेक्षण करना (ii) अनुपस्थित हडताल दुघटनाए व उत्पादकता सबधी आवश्यक समक एकत्र करना (iii) अध्ययन के निष्कर्षो म रेखीय प्रबधको को अवगत कराना (iv) अच्छे सेविवर्गीय कायक्रम नीतिया और प्रक्रियाए विकसित करना।

नीचे चार्ट द्वारा सेविवर्गीय प्रबधको के कार्यो को सक्षेप म दर्शाया गया है—

सेविवर्गीय प्रबध के कार्य

1	2	3	4	5	6
परामर्श सबधी काय	प्रबध सबधी कार्य	प्रशासन सबधी काय	कर्मचारी कल्याण सबधी काय	कर्मचारी आलेख या रिकाड सबधी काय	सेविवर्गीय शोध सबधी काय
(i) सेविवर्गीय नीति का निर्धारण	(i) श्रमिकों की भर्ती और रोजगार	(i) सूचनाओ और समको को एकत्र करना	(i) चिकित्सा सुविधाए	(i) आकडो को एकत्र करना	(i) कार्यरुचि का सर्वेक्षण करना
(ii) व्यवसाय का परामर्श	(ii) प्रशिक्षण	(ii) श्रम सबधी अधिनियमो	(ii) मनोरजन तथा	(ii) आकडो का विश्लेषण	(ii) समक एकत्र करना

		की व्यव-स्थाओं का पालन करना	अन्य कल्याण-कारी कार्य		करना
(iii) कर्मचारी और उच्च प्रबंध के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करना	(iii) पदो-न्नति स्थाना-तरण और सेवा-निवृत्ति	(iii) उत्पादन कार्यकुशलता, अनु-पस्थित व श्रम परिवर्तन व दुर्घटनाओं की आवश्यक सूचनाए एकत्रित करना	(iii) सुरक्षा संबधी कार्य	(iii) निर्णय के लिए सूचना का विकास करना	(iii) अधिक उपयुक्त कार्यक्रम तथा नीति का विकास
	(iv) मेवा मवधी काय				(iv) निष्कर्षों से रेखीय प्रबंधकों को अवगत कराना
	(v) मजदूरी ग्व प्रेरणाए				
	(iv) सामूहिक सौदेबाजी एवं कर्मचारियों का प्रति निधित्व				
	(vii) कर्म चारियों व परि श्रमिक की				

योजना
बनाना
(viii)
संगठन
और कर्म-
चारी के
हित का
एकीकरण
करना।

सेविवर्गीय प्रबंध के विभाग

सेविवर्गीय प्रबंध के अनेक विभाग होते हैं जो कि निम्नलिखित प्रकार के हैं—

1 **रोजगार विभाग** रोजगार विभाग उद्योगों के लिए आवश्यक मात्रा मे कर्मचारियो को उपलब्ध कराता है। इसके अतर्गत निम्नलिखित काय आते हैं—श्रम शक्ति का नियोजन कार्य विवरण को तैयार करना श्रमपूर्ति के समस्त सभावित स्रोतो से सबध स्थापित करना, पदोन्नति व स्थानातरण सबंधी नियम बनाना व संस्थान छोडने वाले कर्मचारियो का साक्षात करना।

2. **प्रशिक्षण एवं शिक्षा का विभाग** समस्त कर्मचारियो को प्रशिक्षण देना, निरीक्षकों व प्रबधकों का विकास करना कर्मचारी का शिक्षण संस्थाओं तकनीकी विद्यालया आदि के द्वारा शिक्षा-वृद्धि के लिय प्रोत्साहित करना आदि काय इस विभाग को सपन्न करने होते हैं।

3 **कल्याणकारी विभाग** कमचारियो के कल्याण मनोरजन व सुख सुविधाओ की व्यवस्थाओ की व्यवस्था करना इस विभाग के कायक्षेत्र म आते हैं।

4 **सुरक्षा विभाग** यह विभाग कारखान के सुरक्षा सबधी कार्यों का [illegible] व अधिनियम का पालन करता है।

5 **चिकित्सा विभाग** प्रत्येक कमचारी को आवश्यक चिकित्सा सुविधाए उपलब्ध कराना इस विभाग का प्रमुख काय है। शारीरिक उपयुक्तता के मानदड निर्धारित करना व समय समय पर कमचारियो की जाच करना इसी विभाग के अ गत आता है।

6 **औद्योगिक सबध विभाग** यह विभाग कमचारियो व उच्च प्रबध के मध्य मधुर सबध स्थापित करने का काय करता है।

7 **मजदूरी व वेतन विभाग** मजदूरी की विभिन्न दरो का नियतण [illegible] काय का मूल्याकन व सुझाव योजना को कार्यान्वित करना [illegible] अतगत आते हैं।

8 **अनुसधान एव समक विभाग** यह विभाग श्रमिको के [illegible] प्रकार व गति का अध्ययन करके आवश्यक प्रमाप आदि स्थापित करना है व आकडो का सकलन कर

विश्लेषण करता है।

9 स्त्री श्रमिक विभाग यदि संस्था में पर्याप्त संख्या में स्त्रियों को नियुक्त किया जाता है तो उनके हितों की देखभाल के लिए पृथक् से विभाग स्थापित किया जा सकता है।

सेविवर्गीय प्रबंध के सिद्धान्त
(Principles of Personnel Management)

सेविवर्गीय प्रबंध के सिद्धांतों के संबंध में विभिन्न व्यक्तियों ने अपने अपने मत व्यक्त किए हैं। इन विचारकों के सिद्धांतों को निम्नवर्णित प्रकार रखा जा सकता है—

1 सी० एच० नार्थकाट

इन्होंने सेविवर्गीय के संबंध में निम्नलिखित चार आधारभूत सिद्धांत बतलाए हैं—

1 न्याय का सिद्धांत औद्योगिक संबंधों को न्यायोचित आधार प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि (अ) श्रमिकों को उचित प्रतिफल दिया जाए। (ब) मजदूरी भुगतान का उचित आधार हो। (स) अधिक वेतन प्राप्त होने के अवसर उपलब्ध किए जाएं। (द) पूंजी एवं श्रमिक दोनों में ही अतिरिक्त लाभ का विभाजन किया जाए। (य) कार्य के संबंध में श्रमिकों को महत्त्व दिया जाए, व (र) बेरोजगारी को दूर करने के प्रयास किए जाएं तथा गलत काम करने वालों के विरुद्ध दण्ड की समुचित व्यवस्था हो।

2 व्यक्तित्व श्रमिकों के काम करने अथवा सेवा करने से प्राप्त संतुष्टि से उसके व्यक्तित्व का विकास होता जा रहा है जो कि सेविवर्गीय के लिए आवश्यक माना जाता है।

3 सहयोग व्यवसाय में विकास के लिए कर्मचारियों व प्रबंधकों के मध्य अच्छा सहयोग होना चाहिए। सामान्य उद्देश्य ज्ञात हो जाने पर सहयोग बढ़ता है। आपसी परामर्श भी सहयोग का प्रतीक है।

4 लोकतन्त्रीय आधार कर्मचारियों व प्रबंधकों में साझेदारी की भावना का विकास होना चाहिए। प्रबंध-व्यवस्था में कर्मचारियों को प्रमुख स्थान देकर सेविवर्गीय प्रबंध में लोकतन्त्रीय आधार अपनाया जाना चाहिए।

2 जार्ज डी० हेल्से

इन्होंने अपनी पुस्तक 'Hand Book of Personnel Management' में सेविवर्गीय प्रबंध के निम्नलिखित सिद्धांतों का उल्लेख किया है—

1 कर्मचारी के चुनाव में सतर्कता व कौशल का उपयोग किया जाना चाहिए।

2 कार्य में कर्मचारियों को लगाना चाहिए।

3 कर्मचारियों को चिंता व सुरक्षा की भावना से मुक्त रखा जाना चाहिए।

4 प्रत्येक कर्मचारी मे अपने काम व कपनी की योजना के प्रति एक गौरव की भावना होनी चाहिए।

5 कार्य की दशाए पर्याप्त होनी चाहिए।

6 सगठन सरचना ऐसी होनी चाहिए, जिससे किसी भी व्यक्ति के मस्तिष्क मे अपने कर्तव्यो अथवा दायित्वो के प्रति कोई भ्रम न हो।

7 कर्मचारियो के प्रयासो को अनुभव करते हुए उसे वास्तविकता मे अपनाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

8 कर्मचारियो का नियोजन करने मे हाथ होना चाहिए।

9 प्रत्येक नीति एव व्यवहार उचित होना चाहिए।

3 श्रम प्रबध सस्था ब्रिटेन .

इस सस्था ने अपनी एक रिपोर्ट मे सेविवर्गीय प्रबध के निम्नलिखित सिद्धात बनाए हैं—

1 समस्त कर्मचारियो की सेविवर्गीय पदाधिकारियो तक व्यक्तिगत व गोपनीय रूप मे पहुच सुलभ होनी चाहिए।

2 सेविवर्गीय नीति एव सिद्धातो का पालन बिना किसी भेद भाव से किया जाना चाहिए।

3 रोजगार मे यथासभव सर्वाधिक स्थिरता प्रदान करने के प्रयास किए जाने चाहिए।

4 श्रम सघ की सदस्यता के लिए पूर्ण स्वतत्रता दी जानी चाहिए व सदस्य तथा गैर सदस्य के बीच कोई भेद-भाव नही बरता जाना चाहिए।

5 कार्य की दशाओ का उच्च स्तर रखा जाना चाहिए।

6 कर्मचारियो व प्रबध मे नियमित परामर्श के लिए प्रभावी विधिया स्थापित की जानी चाहिए।

7 उचित मजदूरी से सबधित मान्य प्रमावो का पालन किया जाना चाहिए।

8 सामाजिक, शैक्षणिक व मनोरजन सुविधाओ के विकास के पूर्ण अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

9 सचालक मडल द्वारा सेविवर्गीय नीति को स्पष्ट ढग से रखा जाना चाहिए।

10 कर्मचारियो को अनुशासन बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

सेविवर्गीय नीति
(Personnel Policy)

व्यापारिक उपक्रम की प्रगति के लिए सेविवर्गीय नीति का बनाना आवश्यक है। सेविवर्गीय प्रबध का कार्य सुचारु रूप से सपन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके द्वारा लक्ष्यो का स्पष्टीकरण किया जाए तथा वह नीति निर्धारित की जाए, जिसके द्वारा

लक्ष्यों को प्राप्त किया जाएगा। **मारिस डब्ल्यू० कमिग** ने नीति को इस प्रकार परिभाषित किया है—"एक संगठन की नीति उसके उद्देश्यो का, यह बताते हुए कि उन्हें प्राप्त करना है, एक स्पष्ट विवरण है।"

सेविवर्गीय नीति प्रायः ऐसे घटकों पर निर्भर करती है, जिन पर व्यापारिक सगठन का कोई नियत्रण नही होता जैसे—समाज की प्रकृति, राजनैतिक दबाव, स्थानीय सभ्यता व शासकीय कार्य आदि। सेविवर्गीय नीति के निरन्तर पालन के लिए उचित रहता है कि उसे एक नियमावली के रूप मे बना लिया जाए।

श्रेष्ठ सेविवर्गीय नीति के लक्षण

एक श्रेष्ठ सेविवर्गीय नीति के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं—

1 **स्पष्ट नीति** · नीति सदिग्ध व अस्पष्ट न होकर स्पष्ट व सूक्ष्म होनी चाहिए।

2. **न्याय :** नीति सभी कर्मचारियो के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार वाली होनी चाहिए। किसी व्यक्ति विशेष के प्रति न तो शत्रुता होनी चाहिए और न पक्षपात।

3 **अपनत्व की भावना :** ऐसी नीति का पालन किया जाना चाहिए, जिससे सस्था के कर्मचारी अपनत्व की भावना का अनुभव करके अधिकाधिक कार्य कर सकें।

4 **सुरक्षा की भावना :** सेविवर्गीय नीति मे उद्योग की सुरक्षा की भावना भी होनी चाहिए।

5. **पूंजी एवं श्रम के मध्य मधुर संबंध :** नीति ऐसी होनी चाहिए, जो कि पूजी व श्रम के मध्य मधुर सबध स्थापित कर सकें।

6 **कार्यों को मान्यता :** उद्योग के प्रत्येक कर्मचारी द्वारा किए गए कार्य को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।

7. **लोचदार :** नीति लोचदार भी होनी चाहिए, जिससे समय-समय पर उसमे आवश्यक परिवर्तन किए जाने चाहिए।

विगत वर्षों मे आर्थिक एव सामाजिक दशाओ मे परिवर्तन के कारण सेवायोजको द्वारा पर्याप्त प्रगतिशील सेविवर्गीय नीति का अनुकरण किया जा रहा है और आशा है कि भविष्य मे भी सेविवर्गीय नीति अपनाने की आवश्यकता के रूप मे समायोजित करके कर्मचारियों मे सर्वश्रेष्ठ योगदान प्राप्त करने मे सफल रहेगी।

सेविवर्गीय नीति के बढाव के लिए **हार्बेल टरनर** ने पाच सिद्धातो का विवेचन किया है। वे निम्नलिखित हैं— (अ) प्रबध-दर्शन नीति द्वारा स्पष्ट दिखलाई पडे। (ब) प्रबध के सभी सदस्य नीति की मार्मिकता को समझ सकें। (स) सकट के समय स्वस्थ खडे होने की शक्ति। (द) सभी पक्षो के प्रति निष्पक्ष भावना। (य) नीति स्वशासित (Self Perpetuation) आधार पर हो।[1]

1. J. H. Turner · Essentials in the development of personnel policy *from Addresses and Industrial Relations, 1957,* Social Bulletin No. 25, pp. 1-6.

परीक्षा-प्रश्न

1. सेविवर्गीय प्रबंध की परिभाषा दीजिए। इसके उद्देश्य व विभिन्न विभागों की विवेचना कीजिए।
2. "सेविवर्गीय व्यवस्था का आधारभूत प्रबंध कार्य है, जो प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर व हर प्रकार के प्रबंध में आवश्यक होता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. व्यावसायिक संगठन में सेविवर्गीय प्रबंध के महत्त्व का परीक्षण कीजिए और उसके कार्यों को बतलाइए।

अध्याय 8

स्वचलन
(Automation)

स्वचलन का अर्थ · स्वचलन शब्द प्राय दो अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार स्वचलन से आशय कारखाने और उत्पादन को अधिकाधिक यत्रीकृत करने मे है। इस दृष्टि से स्वचलन कोई नयी धारणा नही है। परतु कुछ अन्य लोगो का मत है कि स्वचलन से आशय उत्पादन-प्रक्रिया के सचालन और नियत्रण दोनो, को स्वचालित करने मे है। इस अर्थ मे उत्पादन मशीनें स्वय अपना कच्चा माल उठाती हैं उसे पक्के माल मे बदलकर दूसरी मशीनो तक पहुचाती हैं, पक्के माल की किस्म पर नियत्रण करती हैं और किसी प्रकार की कमी होने पर स्वय ही उस दूर करती हैं। स्वचलन सिद्धात का उपयोग न केवल उत्पादन के क्षेत्र मे किया जाता है बल्कि प्रत्यक्ष निर्णय क्षेत्र मे भी किया जाता है। सक्षेप मे स्वचलन का अभिप्राय कार्य के अपने-आप होने से है और इसके अतर्गत उद्देश्य की पूर्ति करने वाले समस्त साधन एव विधियां सम्मिलित हैं।

विभिन्न विद्वानों ने स्वचलन की जो परिभाषा दी है, उनमें से कुछ प्रमुख नीचे दी जा रही है—

1 **एडविन बी० फिलिप्पो** "सरलतम रूप मे, स्वचलन का व्यापार मशीनी कार्यविधियां म होता है, जिन्हें स्वचालित आत्मनियम के बिंदु तक यत्रीकृत कर दिया जाता है।"[1]

2 **इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना** "स्वचलन औद्योगिक निर्माण तथा वैज्ञानिक अन्वेषण की वह उन्नत तकनीक है, जिसका आविर्भाव यत्र और बडे उत्पादन की अवधारणाओं से हुआ है।"[2]

3 **स्टेहेन गुडमैन** "स्वचलन स्वचालित क्रियाओं की प्रायोगिकी है, जिसमें सचालन पद्धतियो, प्रक्रियाओं और उत्पादित वस्तुओ की रूपरेखा का समन्वय विचारों और प्रयासों के यत्रीकरण का उपयोग करने के लिए किया जाता है।"[3]

1 In its simplest term (automation) is applied to machine work processes that are mechanized to the point of automatic self-regulation
2. Encyclopaedia Americana, Vol 2, p 64
3. Goodman quoted in competition master a monthly Journal, September, 1968. p. 115.

4 जॉन डिबॉल्ड "स्वचलन एक नवीन शब्द है, जिसका अर्थ स्वचालित परिचालन तथा वस्तुए बनाने का कार्य स्वचालित बनाना है।"[1]

5 रॉल्फ जे० कार्डिनर "स्वचलन अत्यधिक यन्त्रीकृत व्यक्तिगत क्रियाओं को एक साथ जोडने के अर्थ मे, अविच्छिन्न स्वचालित उत्पादन है। स्वचलन कार्य को अलग-अलग भागो मे विघियन की अपेक्षा अविच्छिन्न क्रिया मानते हुए कार्य करने की एक विधि है।"

स्वचलन प्रक्रिया की अवस्थाए
(Stages in the Process of Automation)

उत्पादन के क्षेत्र मे स्वचलन की स्थापना मे निम्नलिखित अवस्थाए आती हैं—

(अ) **स्वचालित मशीनों का चयन** स्वचलन स्थापित करने के लिए निर्माता को सबसे पहले ऐसी मशीनो का चयन करना पडता है, जो स्वचलित हो और उत्पादन की ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना पडता है, जिसमे एक मशीन द्वारा तैयार माल बिना किसी अन्य कार्यवाही के अन्य दूसरी अवस्थाओ की मशीनो मे पहुच सके। स्वचालित मशीनें अपने कच्चे माल को स्वय उठाती हैं, तैयार करती हैं और आगे भेजती हैं। स्वचालित मशीनें, स्थानातरण सुविधाए और उत्पादन प्रक्रिया सब एक-दूसरे के साथ इस प्रकार बधे होते हैं कि सारा उत्पादन कच्चे माल से लेकर निर्मित माल तैयार करने तक अपने आप पूरा होता है। तैयार हो रहे माल को एक उत्पादन विभाग से दूसरे से उत्पादन विभागो मे भेजने के लिए एक सतुलित और स्वचालित व्यवस्था की जाती है।

(ब) **उत्पादन-किस्म का नियन्त्रण** उत्पादन की किस्म का नियन्त्रण करने के लिए और माल की जाच के लिए स्वचालित व्यवस्था करना स्वचलन स्थापित करने की प्रक्रिया की दूसरी अवस्था है। यह अवस्था दो प्रकार की हो सकती है—प्रथम, गलत काम होने पर मशीन को स्वय बद कर देना और द्वितीय—इसी गलती की जाच कर उसे ठीक करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया के उपयुक्त अवस्था मे आवश्यक मशीनें अथवा अन्य सुधार करना, जिससे गलती की पुनरावृत्ति न हो। यदि गलती इस मशीन सुधार से भी दूर नही हो पाती है तो यह अवस्था मशीन को ही बद कर देती है।

(स) **कम्प्यूटर का उपयोग** उत्पादन नियोजन व नियन्त्रण के लिए तथा सग्रह किए गए माल की मात्रा पर नियन्त्रण के लिए कम्प्यूटरो का उपयोग करना पडता है। कम्प्यूटर इन कार्यों के अतिरिक्त निर्णय सबधी अनेक अन्य कार्य भी कर सकते हैं।

स्वचलन की विशेषताएं

स्वचलन व्यवस्था की मुख्य विशेषताए निम्नलिखित हैं—

1 **मशीनीकरण** स्वचलन का आधार मशीनीकरण है। स्वचलित कारखाने

Automation is a new word denoting both automatic operations and process of making things automatic.

मे तीन प्रकार की मशीनें होती हैं—माल बनाने वाली उत्पादन मशीनें, निर्मित वस्तुओं को जगह-जगह पर जुटाने अथवा एकत्र करनेवाली मशीनें और इन मालो को उठाने-धरने वाली मशीनें। ये तीनो प्रकार की मशीनें किसी एक केंद्रीय स्थान से नियंत्रित और सचालित होती हैं। स्वचालित प्रक्रिया मे उपयोग की जाने वाली प्राय विशेष उपयोग की की मशीनें होती है और ये तकनीकी निपुणता की उच्चतम प्रतीक होती है।

2 **मशीनों, पदार्थों और विधियन का समन्वित व्यवहार** स्वचलन सफलता के लिए यह आवश्यक है कि कारखानो मे लगी मशीनें और उनके द्वारा की जाने वाली *मशीनी कार्यवाही, उत्पादन की प्रक्रिया तथा उनकी भिन्न भिन्न अवस्थाए व उत्पादन की योजना सभी एक-दूसरे के साथ एकीकृत व्यवस्था के रूप मे जुडी हो, बिल्कुल वैसे ही मनुष्य के शरीर के भीतर की तमाम क्रियाए अपनी विशेष रचना के कारण समन्वित* रूप से सपन्न होती रहती हैं। उदाहरण के लिए स्वचलन व्यवस्था मे माल एक मशीन से निकलकर दूसरी मशीन तक स्वय पहुच जाता है। मशीनें इस क्रम से लगी होती हैं कि एक मशीन से निकला सारा माल दूसरी मशीनों द्वारा स्वय ले लिया जाता है और *किसी भी मशीन के पास माल का जमाव नही होता।*

3 **स्वचालित नियंत्रण की व्यवस्था** स्वचलन व्यवस्था मे स्वय मशीनो द्वारा ही उत्पादन की सारी प्रक्रिया की जाती है। इसलिए उत्पादन प्रक्रिया में आने वाली रुकावटो, गिरावटो और असतुलन आदि को रोकने उसकी जाच करने और उसे दूर करने की व्यवस्था भी स्वचालित होती है। इसके लिए उत्पादन-प्रक्रिया मे ऐसी सवेदी व्यवस्था होती है कि वह किसी भी प्रकार की त्रुटि व खराबी को तुरत नोट कर लेता है और उसे नियंत्रणात्मक व्यवस्था को बतला देता है। नियंत्रणात्मक व्यवस्था *यह सूचना मिलने पर इसके कारणो को समझकर तुरत उचित सुधार कर देती है और इस प्रकार उत्पन्न खराबी दूर हो जाती है।*

4 **अभिकलित व कप्यूटर शिल्प-विज्ञान** (Computer Technology) स्वचलन मे कप्यूटर का प्रयोग किया जाता है। इसके अतर्गत तरह-तरह की जटिल से *जटिल सूचनाओ या जानकारियो का अभिलेखन, सग्रह करना और आवश्यकतानुसार* उपयोगी बनाना शामिल है।

यत्रीकरण या मशीनीकरण और स्वचलन
(*Mechanization and Automation*)

स्वचलन को कभी-कभी यत्रीकरण के अर्थों मे भी उपयोग किया जाता है। इस अर्थ के अनुसार, जिस सस्था मे मशीनीकरण जितना ज्यादा होता है, उसमे स्वचलन की मात्रा उतनी ही अधिक होती है। लेकिन आजकल स्वचलन को मशीनीकरण से भिन्न मानते है। स्वचलन यत्रीकरण के क्रमिक विकास में ही एक और पदक्षेप है। स्वचलन यत्रीकरण से बहुत कुछ अधिक है। यत्रीकरण मे निर्णयशक्ति मानव पर ही आधारित होती है, परतु स्वचलन मे इस निर्णयशक्ति का भी यत्रीकरण हो जाता है। अन्य शब्दो मे यत्रीकरण मे मशीनें मानवीय श्रम को प्रतिस्थापित करती हैं जबकि स्वचलन मे *ज्ञान*

और मस्तिष्क और शारीरिक क्रियाओ का प्रतिस्थापन निहित होता है, जिसका अर्थ मशीनो को नियंत्रित करने वाली मशीनो का विकास करना है।

मशीन को स्वत ही अपनी क्रियाओ को नियंत्रित करने की क्षमता ही वह विशेषता है, जो स्वचालित उपकरणो को विशिष्ट बनाती है। जैसा कि माउजर एव स्वार्टज ने कहा—'यत्रीकरण तो मूलतः आदमी के हाथ के काम की जगह मशीनी काम का प्रयोग करना है, लेकिन फिर भी मशीन को व्यक्ति ही सचालित और नियंत्रित करता है जबकि वास्तविक स्वचलन तो वह है जिसमे मशीनो पर से व्यक्तियो के शारीरिक नियत्रण को समाप्त ही कर दिया जाता है।"[1] इसी प्रकार कीथ और गूबेलिनी ने कहा—'स्वचलन यत्रीकरण के अगिम स्तर से भी कही अधिक है, यद्यपि इसमे यत्रीकरण का विचार निहित है, यह उन मशीनो से कही अधिक है, जो न्यूनतम मानवीय श्रम से परिचालित होती हैं।"[2] सक्षेप मे स्वचलन मानसिक या शारीरिक अथवा दोनों प्रकार की जनशक्ति को स्वनियमित मशीनो द्वारा प्रतिस्थापित करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वचलन का अर्थ मनुष्य के हाथो के हस्तक्षेप अथवा नियत्रण के बिना ही मशीनो के द्वारा किसी चीज का उत्पादन होना होता है। स्वचलन का प्रयोग करने वाली निर्माणियो मे मशीनो मे कच्चे माल स्वत ही चले जाते हैं तथा वस्तुओ का मशीनो के द्वारा सतत् प्रवाह समन्वित रहता है। स्वचलन अथवा स्वचालित उपक्रम मे नियत्रण ऐसी युक्तियो के द्वारा होता है जो अपना कार्यक्रम स्वय ही तैयार करती हैं अर्थात् बिना किसी व्यक्ति की सहायता के अपना एक के बाद दूसरा काम करती जाती है और साथ-साथ मे जरूरत पड़ने पर बीच की हर गडबडी भी ठीक करती चलती हैं। चूंकि चलने के बीच मे उठने वाली कठिनाइयो को मशीन ही हल करती है और मनुष्य के हस्तक्षेप के बिना ही वह तात्कालिक समस्या का सबसे अच्छा हल खोज लेती है, इसलिए स्वचलन अपने-आप में एक पूर्ण क्रिया है।

वास्तव मे स्वचालित मशीनें बडी चमत्कारिक हैं। उदाहरण के लिए स्वय चालित टेलीफोन पर बात करने के लिए उपभोक्ता को डायल पर नबर लगाना पडता है। यदि लाइन खाली न हुई तो उसे कुछ समय के बाद पुनः नबर लगाना पडता है, लेकिन स्वचलन के अतर्गत उपभोक्ता को दुबारा नबर लगाने की आवश्यकता नही रहती, क्योकि मानवीय मस्तिष्क की भांति यह यत्र भी नबर स्मरण रख सकता है और जैसे ही लाइन खाली होगी, वैसे ही घटी बज उठेगी और दुबारा नबर लगाए बिना ही वार्ता की जा सकती है। इस प्रकार स्वचलन यत्रीकरण की चरम अवस्था है और इसकी कल्पना अरस्तू से लेकर एच० ओ० बेस्स तक के विचारको ने की है। अरस्तू ने लिखा है—'केवल एक ही अवस्था की कल्पना हम कर सकते हैं जबकि प्रबधको को सहायको की आवश्यकता न पड़े और मालिको को दासो की जरूरत न रहे। वह अवस्था ऐसी होगी, जिसमे यत्र निर्देश पाते ही कार्य करने लगेंगे अथवा स्वेच्छा से ही कार्य करने

1 Mauser & Schwartz Introduction to American Business, p 230.
2 Keith & Gubellini : Introduction to Busintess Enterprise, p. 506.

लगेंगे।"[1]

स्वचलन एवं विवेकीकरण
(Automation and Rationalization)

स्वचलन और विवेकीकरण मे अतर है, क्योंकि—(अ) विवेकीकरण एक व्यापक अवधारणा है जिसमे कई सस्थाए सयुक्त रूप से सम्मिलित हो सकती है। इसके विपरीत स्वचलन प्राय एक सस्था मे ही सीमित रहता है। (ब) स्वचलन एक विशिष्ट अवधारणा है जिसका आधार सस्था की प्रत्येक क्रिया को स्वचालित बनाना है। परतु विवेकीकरण मे यह होना आवश्यक नही है। विवेकीकरण का उद्देश्य तो किसी निश्चित कार्य को अधिकतम कुशलता और न्यूनतम लागत पर सपादित करना है। यदि यह उद्देश्य श्रमिको के अच्छे सगठन, प्रशिक्षण आदि से ही प्राप्त हो जाए तो उनके स्थान पर मशीनें लगाना आवश्यक नही है। (स) विवेकीकरण प्रत्येक सस्था का वाछनीय उद्देश्य है, लेकिन स्वचलन निश्चित रूप से वाछनीय उद्देश्य होना आवश्यक नही है।

स्वचलन और कम्प्यूटर (Automation and Computer)

कम्प्यूटर का विकास स्वचलन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण और क्रातिकारी उपलब्धि है। इसे इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क (Electronic brain) भी कहते हैं। कम्प्यूटर बहुत ही उपयोगी हैं। इनके द्वारा कठिन से कठिन समस्याओ को तत्काल ही सुलझाया जा सकता है। उत्पादन नियोजन व नियत्रण से लेकर मजदूरी भुगतान के लिए बिल बनाना, बेचे गए माल के लिए बीजक तैयार करना और रिकार्ड बनाना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं, जो कम्प्यूटर सरलता से कर लेते हैं। बीमा कपनियां अपने पॉलिसीधारियो के पूरे रिकार्ड इन कम्प्यूटरो को दे देती हैं और ये कम्प्यूटर न केवल ठीक समय पर प्रीमियम नोटिस जारी कर देते हैं बल्कि उस पॉलिसी के सबध मे पूरी जानकारी तुरत उपलब्ध कर देते हैं। ये कम्प्यूटर कठिन से कठिन गणना पलक झपकने से पहले कर देते हैं। उदाहरण के लिए इटरनेशनल बिजनेस मशीन कार्पोरेशन द्वारा बनाया गया IBM-709411 कम्प्यूटर एक सैकण्ड 3,57 000 जमा या घटा कर सकता है। कुछ अन्य कम्प्यूटर एक आधे घटे मे इतनी गणना कर सकते है जिनमे एक व्यक्ति को प्रतिदिन आठ घटे काम करने पर लगभग आठ वर्ष लगेंगे। आधुनिक व्यवसाय मे जहा कोई भी निर्णय लेने के लिए अनेक तथ्यो को समझना पड़ता है। उनके आपसी सबधो का विश्लेषण करना पड़ता है और तब कही सही निर्णय लिया जाता है। इन सारे कार्यों को कम्प्यूटर पर छोड़ा जा सकता है और अनुकूलतम निर्णय लिए जा सकते हैं। इसी प्रकार भविष्य के बारे मे पूर्वानुमान करने और नियोजन करने मे भी कम्प्यूटरो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

1 Aristotle Politics

स्वचलन के प्रयोग में कठिनाइया

स्वचलन के प्रयोग मे निम्नलिखित कठिनाइया उपस्थित होती हैं—

1 **पूंजी संबंधी कठिनाई :** स्वचलित मशीनें बहुत महगी होती हैं और स्वचालित नियत्रण के उपकरणो की सख्या और विविधता भी अत्यधिक होती है। अत: इनसे सुसज्जित मशीनें लगाने मे इतनी अधिक पूजी आवश्यकता पड़ती है कि उद्योगो मे स्वचलन अपनाने मे कठिनाई उपस्थित होती है। अनेक औद्योगिक इकाइया जो स्वचलन का प्रभावी उपयोग कर सकती हैं, पूजी के अभाव मे इसका प्रयोग नही कर पाती।

2 **श्रमिको का विरोध** अनेक कारणो से श्रमिक स्वचलन की योजना का विरोध करते हैं व उनको कार्यान्वित करने मे रोडे अटकाते हैं। स्वचलन मे जिस प्रकार पुरानी मशीनो को कूडे मे फेंक देना होगा, उसी तरह पुराने कर्मचारियो को भी हटाना होगा, और समाज की एक बहुत बडी जनसख्या को बेरोजगारी का सामना करना पडेगा और इसलिए विश्व मे लगभग सभी जगह मजदूर या श्रमिक वर्ग उत्पादन तथा कार्य की स्वचलन प्रणाली का विरोध कर रहा है।

3 **समय अतराल :** स्वचालित निविया बडी तथा जटिल होती हैं। स्वचालित व्यवस्था का नियोजन करने उसकी स्थापना करने व विस्तार करने मे काफी समय लगता है। इसलिए सर्वप्रथम पूर्वानुमान का कार्य अति सूक्ष्मता से करना अपेक्षित होता है। पूर्वानुमान मे थोडी-सी त्रुटि की लागत काफी अधिक हो सकती है। अत यदि औद्योगिक इकाई भविष्य के लिए ठीक से नियोजन नही कर सकती तो स्वचलन व्यवस्था लगाना आसान नहीं होता है।

4 **जोखिमपूर्ण** स्वचालित व्यवस्था बहुत जोखिमपूर्ण होती है, क्योंकि उत्पादन मे पूर्व काफी समय लगने के अतिरिक्त, बचतो के रूप मे लागत वसूल करने के लिए भी काफी समय लगता है। यह अवधि 5-10 की भी हो सकती है। यह अवधि जितनी ही बडी होगी, उतना ही उतना ही अधिक भय व्यवस्था के प्राचीन हो जाने का रहेगा। यदि उद्योग ऐसी अवधि से गुजर रहा है कि तकनीकी परिवर्तन तीव्र गति से हो रहे हैं तो जोखिम का तत्व और बढ जाता है।

स्वचलन के प्रभाव

स्वचलन के प्रभाव को मुख्यतः दो शीर्षको के अतर्गत अध्ययन करेंगे। प्रथम, औद्योगिक उत्पादन पर प्रभाव और द्वितीय—श्रमिको पर प्रभाव

औद्योगिक उत्पादन पर प्रभाव

1. **उत्पादन मे वृद्धि** स्वचालित मशीनो के प्रयोग के कारण उत्पादन अधिक और सस्ता भी होगा। इसके दो प्रमुख कारण हैं—(अ) स्वचालित व्यवस्था मे उत्पादन की दर और मात्रा बहुत अधिक हो जाती है और इसके साथ-साथ यह वृद्धि काम करने वाले कर्मचारियो की सख्या अथवा कार्यकुशलता पर निर्भर नही रहती। (ब)

नरि उत्पादन का यह क्रम एक निरतर प्रक्रम होता है और कर्मचारियो की सख्या नही क म होती है इसलिए उत्पादन अधिक और सस्ता होता है। उदाहरण के लिए ... क बिजली बल्ब निर्माता का 90 हजार बल्ब बनाने म 75 हजार मजदूर ... थे वहा अब केवल 230 मजदूर ही उतना काम सकते है। इसका रहस्य स्वचलन म ही छिपा है।

2 उत्पादित वस्तु मे विविधता चूकि स्वचलन शिल्प विज्ञान के अतगत केंद्रीय नियत्रण क क्ष मे मूल सूचनाओ और उनमे सबधित नियत्रण पैनलो मे ही परिवतन करके मशीनो को ... बिना ही उ ही स भिन्न भि न कार्य लिए जा सकते है इसलिए बाजार की प्रवृत्ति और उपभोक्ताओ की रुचि के अनुसार अल्प समय म ही किसी एक वस्तु को छोडकर दूसरी वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है। अत स्वचलन से उत्पादित वस्तु म विविधता पाई जा सकती है

3 अनुसधान को प्रोत्साहन स्वचलन स्वय ही वैज्ञानिक अनुसधान की देन है। अत स्वचलन का एक लाभ यह भी है कि ... वैज्ञानिक खोज और अनुसधान को प्रोत्साहन मिलता है।

4 औद्योगिक खतरो स मुक्ति स्वचलन म चूकि बिना किसी व्यक्ति के हस्तक्षप क नियत्रण से ही उत्पादन होता रहता है और उत्पादन काय मे होने वाली गडबडी स्वय मशीन ही ठीक करती चलती ह इसलिए सुरक्षात्मक दृष्टिकोण स भी स्वचलन व्यवस्था उपयुक्त होती है।

5 कमचारियो की कम सख्या स्वचलन व्यवस्था म उद्योगो को एक लाभ यह है क उत्पादन काय का करने क लिए कमचारियो की बहुत कम सख्या की आवश्यकता पडेगी और जो कमचारी रहेगे वे मुख्यत व्यवस्थापक सचालक इजीनियर और टेक्नीशियन्स आदि ही होगे। इसका परिणाम यह होगा कि रोज रोज की मजदूर समस्याओ वतन व पदोन्नति आदि की कठिनाइयो से मालिको को मुक्ति मिल जाएगी।

6 एकाधिकार मे वद्धि चूकि स्वचालित मशीनें बहुत महगी होती है इसलिए स्वचलन का उपयोग करने के लिए बहुत अधिक पूजी की आवश्यकता पडती है। इसके अतिरिक्त स्वचलन स अभी तक की तमाम पुरानी मशीनें व्यर्थ हो जाती हैं। सभी व्यक्तियो के पास इतनी अधिक पूजी नही होती कि वे पुरानी मशीनो के स्थान स्वचालित मशीनो का उपयोग कर सकें। इसका परिणाम यह होता है कि बडे-बडे एकाधिकारी औद्योगिक सस्थानो के बनने का जो क्रम पहले से ही चल रहा है वह और अधिक तेज हो जाता है तथा छोटे मोटे उद्योग समाप्त हो जाते है क्योकि उनके पास स्वचालित मशीनो की स्थापना के लिए पर्याप्त पूजी नही होती है।

7 असतुलित औद्योगिक विकास चूकि सभी उद्योगो मे स्वचलन को अपनाना कठिन होता है इसलिए इसका फल वह होता है कि जहा स्वचालित मशीनो का प्रयोग किया जाता है वहा तो प्रगति होती ह किंतु जहा स्वचालित मशीनो का उपयोग नही किया जाता वहा प्रगति रुक जाती है। इस प्रकार औद्योगिक विकास असतुलित रूप म होता

केवल पुराने श्रमिको के स्थान पर नए श्रमिको को लगाना पडता है बल्कि पहले की अपेक्षा बहुत कम श्रमिक लगाने पडते है। रोजगार की इस सामान्य कटौती को सामान्य बेरोजगारी कहा जाता है।

सामान्य बेरोजगारी को भी हम दो शीर्षको मे बाट सकते हैं—(क) तात्कालिक बेरोजगारी, जो कुछ श्रमिको के रूप म सामने आती है और (ख) दीर्घकालीन बेरोजगारी जो सस्था मे रोजगार के नए अवसरो मे कमी आने के कारण उत्पन्न होती है। सामान्यतया स्वचलन को लागू करते समय सस्था के प्रबधक वर्तमान श्रमिको की छटनी कम ही करते हैं। प्राय प्रबधक ऐसी नीति बनाते हैं, जिसके फलस्वरूप नई व खाली जगहो को भरने के लिए नए श्रमिको का चुनाव नही किया जाता बल्कि पुराने श्रमिकों को जिनके पास स्वचलन लागू होने के कारण कम काम रह गया था, उन्हे ही रख लिया जाता है।

यद्यपि इसम शक नही है कि कालातर मे जब यह स्वचलन व्यवस्थापूर्ण तथा व्यापक रूप से प्रचलित हो जाएगी तो इसमे भी काफी लोगो को रोजगार देने की क्षमता हो जाएगी, परतु फिर भी तत्काल मे समाज को एक भयकर बेरोजगारी का सकट झेलना ही पडेगा। इस बेरोजगारी के भयकर सकट की आशका को देखकर ही एक समाजशास्त्री ने तो यहा तक कह दिया कि "जबकि पहली औद्योगिक क्राति ने ग्रामो से लाखो मजदूरो को नगरो मे लाकर काम पर लगाया, यह दूसरी क्राति[1] तो उन्हे निकालकर फिर से बेरोजगारी के मुह मे ढकेलने जा रही है।"

स्वचलन के कारण उत्पन्न बेरोजगारी का स्वरूप कैसा भी क्यो न हो, इसके समाधान के लिए अत्यत सतर्कता की आवश्यकता है। तकनीकी बेरोजगारी को बहुत सीमा तक पुराने श्रमिको को उत्पादन की नई विधियों मे प्रशिक्षित करके अथवा स्वचलन द्वारा पैदा किए गए नये-नये कामो का प्रशिक्षण देकर पूरा किया जा सकता है। परतु इसकी भी अपनी कई सीमाए है जैसे—(अ) यह प्रशिक्षण अनिपुण व अर्द्ध निपुण श्रमिको को नही दिया जा सकता, (ब) यद्यपि युवा और प्रगतिशील श्रमिक नए कार्यों को रुचि के साथ सीख लेंगे, परतु प्रौढ और परपरागत विचारो वाले श्रमिक न तो इसमे रुचि लेंगे और न ही नए कार्य सीखने का प्रयास करेंगे। (स) इस प्रशिक्षण की लागत भी बहुत होगी जिसे सेवायोजक करने मे हिचकेंगे।

सामान्य बेरोजगारी की समस्या का समाधान और भी कठिन है। इसका एक समाधान यह हो सकता है कि इन श्रमिको को अन्य स्थानो पर अन्य प्रकार के कार्य दे दिए जाए। उदाहरण के लिए यदि उत्पादन-प्रक्रिया मे स्वचलन पद्धति का उपयोग किया जाता है और इससे कारखाने के उत्पादन मे वृद्धि होती हैं तो इस अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए अधिक विक्रय-कर्ताओ की आवश्यकता पडेगी। अत प्रबधक अपने कुछ श्रमिको को विक्रय के काम मे प्रशिक्षित करके उन्हे नया रोजगार दे

[1] चूकि स्वचलन ने मशीनी उत्पादन अर्थात् औद्योगीकरण की सपूर्ण प्रक्रिया मे एक मौलिक क्राति उत्पन्न कर दी है इसलिए द्वितीय औद्योगिक क्राति भी कहा जाता है।

सकता है। विक्रय प्रसार और विज्ञापन ऐसे क्षेत्र है, जिनमे व्यक्तिगत सेवाओ का महत्त्वपूर्ण स्थान है और उन्हे आसानी से स्वचालित नही बनाया जा सकता है। परतु यह ध्यान देने योग्य है कि अधिक उत्पादन मे बनाए गए ये रोजगार उन रोजगारो की तुलना मे जो समाप्त कर दिए गए हैं कही कम होगे। अत यह फल इस समस्या को केवल आशिक रूप से सुलझा सकेगा।[1]

कुछ व्यक्तियो का मत है कि स्वय स्वचलन भी अपने आप कई प्रकार के रोजगारो को जन्म देता है, जैसे—(अ) स्वय स्वचालित मशीनो के निर्माण के लिए बहुत श्रमिको की आवश्यकता पडेगी, (ब) स्वचालित मशीनें अत्यत क्लिष्ट और पेचीदी मशीनें होती हैं, जिन्हे लगाने, चलाने और देखभाल करने के लिए कुशल श्रमिको की बडी-बडी टोलिया रखना आवश्यक होगा, (स) स्वचालित मशीनो को निरतर चालू रखने के लिए इनके हिस्से-पुर्जों की आवश्यकता होगी, जो एक पृथक् उद्योग द्वारा उपलब्ध कराए जाएगे। यह उद्योग भी अनेक व्यक्तियों का नए-नए रोजगार उपलब्ध कराएगा। (द) स्वचलन अधिक उत्पादन को सभव बनाकर व्यापार को बढाता है और यह बढा हुआ व्यापार रोजगार के लिए नये दरवाजे खोल देता है, जैसे माल को लाने ले जाने के लिए परिवहन की आवश्यकता पडती है और इसकी जोखिम को उठाने के लिए बीमा-कर्त्ताओं की सेवा प्राप्त की जाती है। परतु फिर भी यह रोजगार सारे बेरोजगारो को काम नही दे सकते तथा यह आवश्यक नही है कि निकाले गए सभी श्रमिक इन कार्यों के लिए योग्य हो। इसके अतिरिक्त नए रोजगार के निर्माण मे काफी समय लगता है। फलत अपने रोजगार से निकाले गए श्रमिक भूखे नही रह सकते हैं।

2 **श्रमिकों की कार्यक्षमता मे वृद्धि** स्वचलन म श्रमिको की कार्य-कुशलता म वृद्धि होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक कार्य अत्यत ही सरल हो जाते हैं। वास्तव मे श्रमिको को अपना परिश्रम अधिक रुचिपूर्ण प्रतीत होने लगता है। भारी और नीरस कार्य कम हो जाते है। स्वचालित फैक्ट्रियो मे काम की सामान्य परिस्थितिया बहुत अच्छी रहती हैं। वहा गदगी का नामो-निशान न होगा और स्वचलन श्रमिको की नीरसता और बोरियत को भी कम कर देता है। क्योकि ऐसे कार्य मशीनो द्वारा करा दिए जाते हे और साथ ही साथ श्रमिको के आराम के लिए भी काफी अधिक समय मिलने लगता है। इन सब का फल यह होता है कि श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है।

3 **रहन-सहन के स्तर व सामाजिक प्रतिष्ठा मे वृद्धि :** स्वचलन मे रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि होगी और उनके सामाजिक पद एव प्रतिष्ठा मे वृद्धि होगी। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि स्वचलन म उच्च स्तरीय, उच्च शिक्षित और योग्य कर्मचारियो, जैसे व्यवस्थापक, इजीनियर व टेक्नीशियस आदि की आवश्यकता पडेगी जिन्हे स्वाभाविक रूप मे आज के सामान्य कर्मचारियो की अपेक्षा कही अधिक वेतन मिलेगा। अधिक वेतन मिलने का मुख्य कारण स्वचालित मशीनो द्वारा अधिक उत्पादन

1. Naval H. Tata in Commerce, July 20 1968.

व अधिक लाभ पूजीपतियो को प्राप्त होता है। जब श्रमिकों को अधिक वेतन, कम काम व सृजनशीलता के काम आदि उपलब्ध होगे तो इन सबका सयुक्त प्रभाव यह होगा कि **श्रमिकों के सामाजिक पद एव प्रतिष्ठा मे कमी होगी।** साथ ही चूकि फैक्ट्री के अदर विभिन्न व्यक्तियो के कार्यों मे कोई विशेष अतर नही होगा और न उनके रहन-सहन के ढगो मे कोई विशेष ऊच-नीच का अभाव होगा। इसीलिए उनके कार्य सबधी मबधो मे भी पर्याप्त समरूपता रहेगी।

4 **वशानुगत कुशलता मे कमी** यह कहा जाता है कि स्वचलन के कारण कारीगरो की वशानुगत कुशलता मे कमी आती है, क्योकि पूर्णरूपेण मशीनी उपक्रम मे *मनुष्य को कारीगरी दिखाने का अवसर ही नही मिलता। श्रमिक तो बैठा बैठा मशीनो* के परिचालन को ही देखता रहता है। लेकिन यह शका कि मनुष्य की कारीगरी को स्वचलन मे पूर्णत. लाप हो जाएगा भ्रमात्मक है, क्योकि कालातर मे जब यह स्वचलन व्यवस्था पूर्ण हो जाएगी तो कौशल का स्तर उठेगा और यह प्रगति इजीनियरो, विशेषज्ञो आदि के कार्यो मे होगी।

निष्कर्ष · स्वचलन ने बिना श्रमिको के कारखाने, बिना मनुष्यो के मशीनें तथा बिना लिपिको के कार्यालयो की कल्पना साकार अवश्य की है, परतु इसके सामाजिक परिणाम क्या होंगे, इसे **जो ग्लेजर** (Joe Glazer) ने अपने स्वचलन का गीत' (Song of Automation) मे भली-भाति व्यक्त किया है। ग्लेजर के अग्रेजी गान का हिंदी अनुवाद नीचे दिया जा रहा है—

स्वचलन का गीत
(Song of Automation)

' एक सोमवार की सुबह
मै फैक्टरी देखने गया।
जब मै वहा पहुचा,
वह निर्जन थी— बिल्कुल सुनसान।
न तो मुझे 'जो' मिला न 'जैक' न ही 'जॉन' न 'जिम',
मुझे कोई भी न दिखा—
कोई भी नही
हा बटन, घटिया व
(लाल पीली नीली, हरी) बत्तिया
जरूर पूरी फैक्ट्री मे थी।

क्या क्या था ?—यह जानने के लिए
मैं फोरमैन के ऑफिस मे
घूम-घूम कर चलता रहा।
उसके चेहरे पर सीधे देखकर

मैंने पूछा—"क्या हो रहा है ?"
उत्तर जानते हैं क्या मिला ?
उसकी आखें लाल हरी, नीली होती गईं,
तब मुझे सहसा भान हुआ कि
फोरमैन की कुर्सी पर रॉबॉट बैठा था।

उस फैक्टरी मे चारो तरफ चलता रहा—
ऊपर-नीचे, आर-पार
लोट-पोट कर मैंने वहा की
सभी बटना, घडियो और बत्तियों को देखा।
रहस्य-जैसा लगा मुझे यह सब कुछ।
मैंने पुकारा—"फ्रैंक, हैंक, आइक, माइक
रॉय, राय, डॉन, डैन, बिल, फिल, फ्रेड, पीट!
जवाब मे एक मशीन-जैसी तेज आवाज आई—
"ये सब तुम्हारे लोग पुराने हो चुके"।

मैं सहम गया
और चिंतित हो उठा,
जब फैक्टरी से निकला, मैं अस्वस्थ था।
मैंने
कपनी के प्रेसिडेंट से मिलना चाहा,
उसके ऑफिस म पहुचने पर देखा—
वह भोहें चढ़ाए, मुह बनाए
दरवाजे के बाहर दौडा चला आ रहा था,
क्योंकि प्रेसिडेट के स्थान पर मशीननुमा अधिकारी डटा था।

मैं घर चला आया,
जब पत्नी को,
हमेशा चाहने वाली पत्नी को
फैक्टरी के बारे मे कह सुनाया,
प्रेम करती, चूमती वह रो उठी।
ये सब बटन औ' बत्तिया
तो मै नही समझता,
लेकिन इतना जरूर जानता हू—
प्यार आज भी पुराने तरीके मे ही किया जाता है।"

स्वचलन के सबध मे भारत सरकार की नीति

स्वचलन के सबध मे भारत सरकार की नीति भारतीय श्रम सम्मेलन 1957 के स्वीकृत त्रिपक्षीय समझौते पर आधारित है। इस समझौते की कुछ प्रमुख व्यवस्थाए निम्नलिखित हैं—

1 स्वचलन लागू करने मे न तो कोई पुराना श्रमिक निकाला जाना चाहिए और न ही किसी का पारिश्रमिक कम किया जाना चाहिए। हा विस्थापित श्रमिकों को उसी सस्था मे नए काम या उसी प्रबंध के अधीन अन्य काम दिए जा सकते हैं।

2 विवेकीकरण और स्वचलन से प्राप्त लाभ समान सेवायोजक और श्रमिको सभी मे न्यायोचित ढग से वितरित किया जाना चाहिए।

3 नई योजना के फलस्वरूप श्रमिको के काय भार की निष्पक्ष जाच की जानी चाहिए और श्रमिको के कार्य की दशाओ मे सुधार किया जाना चाहिए।

भारतीय श्रम सम्मेलन सन 1968 ने स्वचलन की समस्या का पुन अध्ययन किया था। जुलाई 1968 मे स्थायी श्रम समिति ने भी इस प्रश्न पर विचार किया और यह सिफारिश की कि सरकार इस प्रश्न पर नीति सबधी मार्ग दर्शक प्राप्त करने के लिए एक त्रिपक्षीय समिति बनाए।

राष्ट्रीय श्रम योजना, 1966

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी स्वचलन के प्रश्न पर काफी विस्तारपूर्वक विचार किया है। 1969 मे प्रस्तुत इसके प्रतिवेदन मे कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं—

'स्वचलन की किसी भी योजना को निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी चाहिएँ— (अ) इसमे उन सारे श्रमिको को जो स्वचलन के परिणामस्वरूप बेरोजगार हो जाएगे, काय देने की व्यवस्था होनी चाहिए (ब) स्वचलन म प्राप्त होने वाले लाभ को न्यायोचित ढग स वितरित करके श्रमिको की आय के स्तर म सुधार करना चाहिए (द) इससे लागत कम होनी चाहिए और समाज को लाभ होना चाहिए।[1]

कम्प्यूटर के प्रश्न पर आयोग का विचार है कि विशिष्ट क्षेत्रो मे कम्प्यूटरो का प्रयोग किया जा सकता है। इस सबध म सरकारी नीति का उद्देश्य यह होना चाहिए कि एक तरफ तो अर्थव्यवस्था धीरे धीरे उच्च औद्योगिक स्तर की ओर बढा सके और दूसरी ओर रोजगार मे भी उल्लेखनीय सुधार दिखाई दे।

स्वचलन समिति 1972 की सिफारिश

भारत सरकार के श्रम मत्रालय प्रो० बी० एम० दबेकर की अध्यक्षता मे एक स्वचलन समिति गठित की जिसकी रिपोर्ट मई 1972 म प्रकाशित हुई।

इस समिति ने जो सिफारिशें की हैं उनसे आभास होता है कि स्वचलन के सबध

1 Report of the National Commission on Labour, 1969, p 264

मे एक उचित और व्यावहारिक नीति की जा सकती है। इस समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं—

1 स्वचलन सबधी योजनाओ को आरभ करने के पूर्व श्रमिको और मालिको से पूर्व सहमति लेना आवश्यक है। यदि श्रमिकों और मालिको मे इसको लेकर कोई मतभेद है तो इसे इस उद्देश्य के लिए गठित राष्ट्रीय द्विपक्षीय दल के पास निर्णय के लिए भेज देना चाहिए।

2 यदि कम्प्यूटर का प्रयोग केवल बार-बार दोहराने वाले कार्यों के लिए किया जाता है तो उस स्थिति मे प्रबधको को पहले एक औचित्य प्रतिवेदन तैयार करना चाहिए और उसे मूल्याकन के लिए विशेषज्ञो की समिति के पास भेजना चाहिए।

3 इस समिति ने शिक्षा विज्ञान अनुसधान साख्यिकी सुरक्षा और व्यावसायिक तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानो म कम्प्यूटरो के न्यायसगत प्रयोग को स्वीकार किया है।

4 स्वचलन का प्रभाव रोजगार पर दो स्तरो पर पडता है—(अ) सबधित प्रतिष्ठान विभाग में रोजगार पर प्रभाव, और (ब) सपूर्ण अर्थव्यवस्था के प्रसग मे रोजगार पर प्रभाव। जहा तक (ब) श्रेणी मे वर्णित प्रभाव का सबध है यह सामान्य टेक्नोलॉजी की नीति के अतर्गत आना चाहिए। इस नीति के निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि व्यापक स्तर पर स्वचलन के क्या प्रभाव पडेंगे, इसके विषय मे आवश्यक तथ्य और आकडे उपलब्ध हो। अभी इस प्रकार के आकडो का बहुत अभाव है। इस कमी को जल्दी ही पूरा किया जाना चाहिए।

5 कम्प्यूटर प्रयोग के हर अलग अलग मामले पर उसके अपने गुण दोष को देखते हुए तमाम सबद्ध पहलुओ को, विशेषकर रोजगार पर उसका क्या प्रभाव पडेगा और इसे ध्यान मे रखते हुए विशेषज्ञो द्वारा उस पर विचार होना चाहिए।

यद्यपि दहेकर समिति ने कम्प्यूटरो के प्रयोग के सबध मे एक ठोस नीति अपनाई है। उसमें देश के सामाजिक-आर्थिक विकास की वर्तमान अवस्था को देखते हुए उसके उपयुक्त नियत्रण व प्रतिकूल प्रभावो के विरुद्ध सरक्षण पर बल दिया है, पर समिति ने स्वचलन के परिणामस्वरूप बेकार हो जाने वाले श्रमिको के नए प्रशिक्षण के प्रबध के सबध मे कोई सुझाव नही दिया।

सयुक्त राष्ट्रीय सर्वेक्षण

सयुक्त राष्ट्र सघ के औद्योगिक विकास सगठन ने विकासशील देशो में कम्प्यूटरों के प्रयोग की समस्या का अध्ययन करने हेतु भारत में एक सर्वेक्षण कराया, जिसकी रिपोर्ट 1973 के आरभ मे पेश की गई। विषय को सीमित रखने के उद्देश्य से केवल निर्माणी उद्योगो का सर्वेक्षण किया गया।

इस सर्वेक्षण ने आधुनिक जटिल कामों में कम्प्यूटरों के प्रयोग का समर्थन किया है। लेकिन फिर भी इसके पक्ष में नहीं है कि केवल श्रम बचाऊ उद्देश्य से अर्थात् श्रमिकों की सख्या कम करने के लिए उसका उपयोग किया जाए।

सर्वेक्षणकर्ताओ ने कम्प्यूटरो के प्रयोग के प्रति कर्मचारियो के दृष्टिकोण का पता लगाने का प्रयत्न किया है। इनकी रिपोर्ट के अनुसार स्वचलन का देश के सभी श्रमिको ने सार्वजनिक रूप से विरोध किया है। लेकिन श्रमिक इसके विरुद्ध नही हैं। किसी बडे कारखाने या सस्थान मे कही-कही यहा-वहा इकाई रूप मे इसका उपयोग हो, क्योकि इससे आमतौर पर कर्मचारियो को विशेष हानि नही होती है, लेकिन जहा तक ऐसे सस्थानो का सबध है, जिनमे निर्माण कार्य नही होता और अधिकतर कर्मचारी सफेदपोश बाबू हैं, जैसे बैंक, बीमा कपनी या प्रबध प्रशासन, कार्यालय आदि, वहा के कर्मचारी सघ कम्प्यूटर के प्रयोग का बडा विरोध करते हैं।

कर्मचारियो तथा मजदूर सघो के दृष्टिकोण और औद्योगिक सस्थानो की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने के उपरात सर्वेक्षणकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि सामान्यत व्यक्तियो का यह विचार गलत है कि कम्प्यूटरो के प्रयोग से कर्मचारियो की छटनी होगी और औद्योगिक क्षेत्र मे बेरोजगारी बढ़ेगी। कर्मचारियो व श्रमिको के उस व्यापक वर्ग को कोई हानि नही होगी, जिसका सबध विनिर्माणी उद्योगो से है। यह खतरा तो कही तब जाकर पैदा हो सकता है, जब देश के भिन्न कारखानो का मौलिक रूप ही बदलकर पूर्ण स्वचालित हो जाएगा जिसकी अभी निकट भविष्य मे कोई संभावना नही है।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते हैं कि स्वचलन से अस्थायी कठिनाइया अवश्य हो सकती हैं। स्वचलन अपनाने से नि सदेह अल्पकालीन बेकारी होती है और विस्थापित श्रमिको को सबसे अधिक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। स्वचलन से सपूर्ण समाज को लाभ होता है। अतः समाज का कर्त्तव्य है कि विस्थापित श्रमिको की कठिनाइयो को दूर करने का प्रयत्न करे। विस्थापित श्रमिको को नवीन कार्यों के योग्य बनाने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। अतिरिक्त श्रम को अन्य विकास कार्यो मे लगाया जा सकता है, कार्य के घटे कम किए जा सकते है, जिससे कि अधिक व्यक्तियो को काम मिल सके। बेकारी की बीमा योजना को भी कार्यान्वित किया जा सकता है। हा, यह आवश्यक है कि स्वचलन के कार्यक्रम को योजनाबद्ध तरीके स लागू किया जाए और स्वचलन सबधी योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए पूजी, श्रम, उपभोक्ता व सरकार का सहयोग आवश्यक है। अत· स्वचलन की योजना लागू करने से पूर्व सभी हितो की स्वीकृति की जानी चाहिए। स्वचलन से होने वाले लाभो मे श्रमिको को हिस्सा दिया जाना चाहिए और स्वचलन की आवश्यकताओ के अनुरूप श्रमिको को तैयार करने के लिए उनके उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय जिसका उत्तरदायित्व मालिकों पर डाला जाय।

भारत मे स्वचलन की प्रगति

जहा तक भारत मे स्वचलन का सबध है, वह अभी काफी शैशवावस्था मे है। भारत जैसे देश मे स्वचलन की कोई तत्काल समस्या नही है। अभी भारतीय उद्योग यंत्रीकरण के प्रारभिक चरण मे है। स्वचलन के लिए भारत मे आवश्यक पूजी भी नहीं

है और उसके यंत्रो का निर्माण भी भारत मे नही होता और उन यत्रो का सचालन सीखने मे भी हमे समय लगेगा। भारत मे स्वचलन की धीमी रफ्तार की बहुत कुछ जिम्मेदारी यदि एक ओर इस सबध मे सरकार की अनिश्चित नीति पर है तो दूसरी ओर उद्योगपतियो और कर्मचारियो की उदासीनता और विरोध पर भी है। भारत में स्वचलन अभी मुख्यत कंप्यूटरों तक ही सीमित है जो स्वचालित मशीनो का सबसे मामूली और बुनियादी रूप है।

भारत मे कम्प्यूटर का सर्वप्रथम उपयोग कलकत्ता मे स्थित भारतीय साख्यकीय सस्थान मे वैज्ञानिक और अनुसधान सबधी कार्यों के लिए 1950-60 के बीच के वर्षों मे मे किया गया था। व्यवसायिक उद्देश्य से एक अमरीकी तेल कपनी ने सबसे पहले 1961 मे अपने कार्यालय म इसे लगाया। इसके बाद से इसका प्रयोग निरतर बढता ही जा रहा है। भारतीय रेल के सात क्षेत्रों में कम्प्यूटर लगा दिए गए हैं। रेलवे बोर्ड के कार्यालय मे भी कम्प्यूटर लगाया जा रहा है। रिजर्व बैंक ऑफ इडिया व स्टेट बैंक ऑफ इडिया मे एक एव कम्प्यूटर है। देश मे जहा-जहा कम्प्यूटरो का प्रयोग हो रहा है, अगर उनके देश की क्षेत्रीय विभाजन की दृष्टि स गणना की जाए तो उनकी सख्या इस प्रकार होती है—पश्चिम 62, दक्षिण 32, उत्तरी 40 और पूर्वी 36। नगरवार वितरण इस प्रकार है—बबई 46, दिल्ली 23, कलकत्ता 18, बगलौर 15, मद्रास 10, अहमदाबाद 6, हैदराबाद 6 पूना 6, जमशेदपुर 5, कानपुर 5 और अन्य नगर 30। उद्योगानुसार इसका वितरण इस प्रकार है—इजीनियरिंग 30, रासायनिक तथा औषधि उत्पादन 17, विद्युत तथा इलेक्ट्रानिक 16, कपडा 14।

मई 1967 मे स्थायी श्रम समिति मे स्वचलन पर व्यापक रूप स विचार-विमर्श हुआ। यद्यपि कोई खास फैसला नही लिया जा सका यह राय जाहिर की गयी कि उत्पादन कार्य' के लिए स्वचलन भारतीय श्रम सम्मेलन के 15 वें अधिवेशन मे लिए गए आदर्श समझौते' द्वारा नियत्रित होते रहना चाहिए। दफ्तर मे कार्य के लिए स्वचलन के सम्बध मे राय अलग-अलग थी। जुलाई 1968 मे स्थायी श्रम समिति के खास अधिवेशन म इस बात पर फिर विचार किया गया। श्रमिको के प्रतिनिधियो ने कहा कि देश मे बहुत बेकारी तथा टेक्नोलॉजी और पूजी की कमी के कारण सामान्य नीति स्वचलन के खिलाफ होनी चाहिए। 1969 मे भारत सरकार द्वारा श्री आर० वेंकटारमन की अध्यक्षता मे स्वचलन पर एक समिति नियुक्त की गयी जिसका उद्देश्य उन सस्थाओ मे, जहा स्वचलन लागू किया जा चुका है, उसके असर को मालूम करना था। समिति को उन क्षेत्रो को भी तय करना था जहा कम्प्यूटरो को शामिल करते हुए स्वचलन को अपनाया जा सके और साथ ही स्वचलन के पड सकने वाले खराब सामाजिक प्रभावो को दूर या कम करने के लिए सावधानियो की सिफारिश करनी थी। समिति ने अपनी रिपोर्ट सरकार को 1972 मे प्रस्तुत की।

पीछे दिए विवेचन से स्पष्ट है कि स्वचलन की प्रगति भारतवर्ष म अत्यत मद गति से हुई है। भारतवर्ष मे स्वचलन की प्रगति धीमी गति से होने के कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित हैं—

(अ) स्वचलन की योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे पूजी की आवश्यकता पडती है, परतु भारत मे पूजी का सर्वथा अभाव है और इसीलिए 'पूजी न्यून अर्थव्यवस्था' कहा जाता है।

(ब) स्वचलन प्रणाली को जिस ऊचे दर्जे के कौशल आवश्यकता पडती है भारतवर्ष मे ऐसे व्यक्तियो का सदा अभाव रहा। स्वचलन मे व्यक्तियो की आवश्यकता इतनी भिन्न प्रकृति की होती है कि वर्तमान सुविधाओ का बिल्कुल ही परित्याग करना पडेगा।

(स) श्रमिको के विरोध के कारण भी स्वचलन की प्रगति भारतवर्ष मे नही हो पाई है। कहा जाता है कि स्वचलन से भारत मे व्याप्त बेरोजगारी की समस्या और गभीर हो जाएगी।

(द) भारतीय उद्योगपति अत्यत रुढ़िवादी और परपरावादी हैं। वे उद्योग विशेष मे स्वचलन अपनाने को इसलिए तैयार नहीं होते, क्योकि उन्हे विद्यमान प्रबध व्यवस्था मे परिवर्तन करना पडेगा जिसके वे अभ्यस्त है। मालिको के विरोध का एक कारण यह भी है कि वे स्वचलन से प्राप्त लाभ मे श्रमिको को उचित हिस्सा नही देना चाहते। स्वचलन के अंतर्गत कुछ आर्थिक इकाइयो के मालिक इसक लिए तैयार नही होते और वे उन्हे जिस हालत में वे हैं उसी हालत मे घसीटना चाहते हैं। उद्योगपति द्वारा स्वचलन का विरोध उनमे साहस के अभाव को दर्शाता है।

(य) भारत मे स्वचलन की धीमी गति का एक कारण यह भी है कि इसके लिए जिस विशिष्ट प्रकार की स्वचालित मशीनो की आवश्यकता पडती है, उसके लिए हमें विदेशो पर निभर रहना पडता है। परतु विदेशी विनिमय की कठिनाई (अर्थात् विदेशी मुद्रा) की कमी के कारण पर्याप्त सख्या मे मशीनो को प्राप्त करना कठिन होता है।

(र) भारत सरकार भी उद्योगो मे तेजी से स्वचलन लागू करने की विरोधी है। सरकार की इस नीति के कई आधार हैं, जैसे—भारत मे बेरोजगारी की समस्या, औद्योगिक विकास मे असतुलन का भय, स्वचलन के कारण आर्थिक शक्ति के केंद्रीय-करण का भय, विदेशी मुद्रा पर नियत्रण रखने की आवश्यकता, स्वचलन के सामाजिक और राजनैतिक परिणामो का भय आदि।

उपरोक्त तथ्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत मे स्वचलन के मार्ग मे बहुत-सी कठिनाइया हैं, परतु प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतवर्ष मे स्वचलन को प्रोत्साहन देना चाहिए कि नही?

भारत जैसे विशाल जनसख्या वाले देश मे स्वचलन के कार्यक्रम पर अत्यत सावधानी पूर्वक विचार करना चाहिए। स्वचलन का विरोध प्रमुख रूप से बेरोजगारी बढ जाने के भय स किया जाता है। श्रम की अधिकता के कारण भारत मे बेरोजगारी और अल्प-बेरोजगारी की समस्या अत्यत उग्र होती जा रही है। बेरोजगारी को दूर करने के लिए हमें शीघ्र ही सबके लिए रोजगार की सभावना से युद्ध स्तर पर सक्रिय उपाय करने होंगे। स्वचलन के कार्यक्रम को अपनाने से श्रमिकों के स्थान पर मशीनों का उपयोग,

अकुशल औद्योगिक इकाइयों की समाप्ति, श्रम के उपयोग में मितव्ययिता लाने आदि के प्रयत्न किए जाते हैं। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है। इसलिए यह कहा जाता है कि भारत में स्वचलन के अपनाने से बेकारी की स्थिति और भी भयावह हो जाने की आशका है

परतु बेकारी के कारण स्वचलन को त्यागा नहीं जा सकता। भारत को तकनीक के विकास में पीछे भी नहीं रहना चाहिए। यद्यपि यह सत्य है कि वर्तमान में स्वचलन के कारण काफी लबे समय तक समाज को एक भयकर बेकारी का सकट झेलना ही पड़ेगा। परतु कालातर में जब यह स्वचलन-व्यवस्था पूर्ण हो जाएगी तथा व्यापक रूप से प्रचलित हो जाएगी तो इनमें भी काफी लोगों को समा लेने की क्षमता हो जाएगी। भारतवर्ष में स्वचलन की योजना को लागू करने की विशेष आवश्यकता है, क्योंकि—(अ) देश में निर्धनता व निम्न उत्पादकता के स्तर को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि उद्योगों में आधुनिकतम यत्रों व विधियों का प्रयोग किया जाए। उत्पादकता-स्तर बढ़ने पर ही मजदूरों को अधिक मजदूरी दी जा सकेगी व उनके रहन-सहन के स्तर में सुधार होगा। (ब) स्वचलन की सहायता से कम समय और परिश्रम में अधिक सस्ती और अच्छे किस्म की वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकेगा। (स) विदेशी विनिमय का अर्जन व निर्यात प्रोत्साहन के लिए आवश्यक है कि हम आधुनिकतम मशीनों और विधियों का उपयोग करें।

यह तो निश्चित ही है यदि हम औद्योगिक विकास की दौड़ में पीछे नहीं रहना चाहते तो हमें स्वचलन को प्रोत्साहन देना होगा। हा, स्वचलन की योजना एकदम लागू न करके शनैः शनैः लागू की जानी चाहिए। ऐसा करने से उपस्थित कठिनाइयों का समुचित हल निकालना सभव हो जाएगा। इसके लिए पूजी व कुशल प्रबधकों का पहले प्रबध कर लेना चाहिए क्योंकि पूजी व कुशल प्रबधकों के अभाव में स्वचलन की योजना सफल नहीं हो सकती है। टेक्नोलॉजी के परिवर्तन से विस्थापित श्रमिकों को पुनः काम में लगाया जाना औद्योगिक शांति की पहली शर्त है। पश्चिमी जर्मनी में इस कार्य के लिए पुनः शिक्षण केंद्र स्थापित किए गए हैं। इसी प्रकार के केंद्र हमारे यहा भी खुलने चाहिए। जहा कम्प्यूटर के प्रवेश से बेकार हुए कर्मचारियों को पुन शिक्षा की पूरी सुविधा हो, ताकि उन्हीं लोगों को पुन नए कामों में लगाया जा सके।

जिन स्थानों और अवस्थाओं में स्वचलन का विशेषकर कम्प्यूटरों का प्रवेश कराया जा सकता है, उनके चुनाव का मानदड निश्चित किया जाना चाहिए। इस प्रकार समस्या कम्प्यूटरों के अपनाने या त्याग की नहीं है, बल्कि इनके प्रवेश के नियत्रण की है। इस दिशा में राष्ट्रीय श्रमिक आयोग ने पहले ही सकेत किया था—'हम इस बात की सिफारिश करते हैं कि चुने हुए सीमित आधार पर कम्प्यूटरीकरण को स्वीकार किया जाय। इस नीति का उद्देश्य यह होना चाहिए कि जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था क्रमशः उच्चतर टेक्नोलॉजी की ओर बढ़े, वैसे-वैसे कुछ रोजगार में भी वृद्धि हो।" इस प्रकार भारतवर्ष में स्वचलन को एक चयनात्मक आधार पर एक के बाद दूसरे चरण में अपनाया चाहिए। साथ ही यह निश्चय करना चाहिए कि रोजगार के अवसरों में कमी न

हो। इस तरह की योजनाओ को श्रमिको स परामर्श के साथ ही लागू करना चाहिए।

परीक्षा प्रश्न

1 स्वचलन से आपका क्या आशय है ? इसके गुण दोषो की व्याख्या कीजिए तथा रोज़गार पर इसका प्रभाव बताइए।

2. स्वचलन के उद्देश्य बताइए। क्या बिना अश्रु के स्वचलन सभव है ?

3 स्वचलन का अथ स्पष्ट कीजिए। विवेकीकरण के उद्योगो पर तथा मजदूरो पर प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

4 विवेकीकरण और स्वचलन मे अतर कीजिए। विवेकीकरण के उद्योगो पर तथा मजदूरो पर प्रभाव को बतलाइए।

5 भारत मे स्वचलन लागू करने के पक्ष व विपक्ष मे तक वितक दीजिए। इस सबध में भारत सरकार की नीति भी स्पष्ट कीजिए।

अध्याय 9

भारत में श्रमिक संघ या संघवाद
(Trade Unions in India)

श्रम संघ की विशेषताएं . श्रम संघवाद के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए श्रम संघ शब्द की स्पष्ट धारणा आवश्यक है, क्योंकि इसके उपयोग के संबंध में गहरे मतभेद हैं। श्रम संघ की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

1 **सिडनी व वेब** . "एक श्रमिक संघ मजदूरी करने वालो का एक स्थायी संगठन है जिसका उद्देश्य अपने कार्यों की दशाओं में सुधार करना अथवा उनको बिगड़ने से रोकना होता है।"[1]

व्याख्या व आलोचना : इस परिभाषा से स्पष्ट होता है—(अ) श्रम संघ एक एक प्रकार स्थायी संगठन है, (ब) यह संगठन उन व्यक्तियो का है जो मजदूरी पर निर्वाह करता है, (स) इसका प्रमुख उद्देश्य है—जो कुछ प्राप्त हो चुका है उसे बनाए रखना तथा अधिक सुधार के लिए प्रयत्न करना।

इस परिभाषा में 'मजदूरी करने वालो' शब्द बहुत भ्रामक है। ऐसे व्यक्तियों का संघ जो दूसरों के यहां मजदूरी (नौकरी) नहीं करता श्रमिक संघ है अथवा नहीं, यह विवादग्रस्त विषय है। वकीलों व डॉक्टरों आदि का संघ क्या है ? रिक्शा चालकों का संघ श्रमिक संघ कहलाएगा नहीं, वह भी विचारणीय प्रश्न है। कारण यह है कि ये लोग उस अर्थ में मजदूरी नहीं करते जिस अर्थ में कारखाने में लोग कार्य करते हैं।

श्री मिल्ने व वेलो ने इस परिभाषा की आलोचना करते हुए कहा है कि "यह परिभाषा पुरानी अत्यधिक सीमित व गतिहीन है, क्योंकि वर्तमान में एक श्रम संघ का कार्य अपने सदस्यों के कार्य जीवन को देखने, बनाए रखने और सुधार करने से आगे भी निश्चित हो सकता है।'

2 **रिचार्ड लेस्टर** "वह मौलिक रूप में श्रमिकों का एक संघ है जिसका उद्देश्य अपने समुदाय के सदस्यों की रोजगार संबंधी दशाओं को स्थिर रखना और सुधारना होता है।'[2]

इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्थायी शब्द का उपयोग नहीं लिया है। सिडनी व वेब की परिभाषा तथा इसमें यह अंतर प्रधान है।

1 Sindney and Beatrice Webb History of Trade Unionism, p 1

2 R A Lester Economic of Labour, p. 539

3 जी० डी० एच० कोल : "सामान्यतया श्रमिक सघ का अर्थ एक या अधिक व्यवसायो मे श्रमिको के एक ऐसे सघ से लगाया जाता है, जो अपने सदस्यों के उनके दैनिक कार्यों से सबधित आर्थिक हितो की रक्षा एव वृद्धि करने के उद्देश्य से सचालित किया जाता है।"[1]

4 वी० वी० गिरि "श्रमिक सघो से हमारा अभिप्राय ऐसे सगठनो मे है जिनका निर्माण ऐच्छिक रूप से सामूहिक शक्ति के आधार पर श्रमिकों के हितो की रक्षा के लिए किया जाता है।'[2]

5 श्री ए० सी० जोन्स 'एक श्रमिक सघ अनिवार्य रूप से श्रमिको का ही सगठन है, मालिको, सहभागियो अथवा निजी श्रमिको का नही।"[3]

श्रम सघो की विभिन्न परिभाषाओ के अध्ययन से हम निम्नलिखित निष्कषो पर पहुचते हैं

1 यह श्रमिको एव कर्मचारियो का सगठन है।
2 यह एक ऐच्छिक सगठन है।
3 यह व्यक्तिवादी समाज की देन है।
4 यह स्थायी अथवा अस्थायी दोनों ही प्रकृति के होते हैं।
5 यह कर्मचारियो एव नियोजको, कर्मचारियो एव कर्मचारियो तथा सेवानियोजको एव सेवानियोजको के मध्य सम्बधो का नियमन करता है।
6 इसकी स्थापना व्यापार या व्यवसाय की क्रियाओ पर आवश्यक प्रतिबध लगाने हेतु की जाती है।
7 यह अपने सदस्यो के हितो की रक्षा करता है।
8 इसके उद्देश्य एव कार्य परिवर्तनशील है।
9 इनकी क्रियाओ को नियन्त्रित करने हेतु विश्व के विभिन्न देशो मे पृथक तथा अधिनियम पारित किये गये हैं।

आजकल श्रमिक सघ अनेको कार्य करते हैं। उन समस्त कार्यों को किसी परिभाषा परिधि मे बाधना सभव नही है और न आवश्यक है। मुख्य कार्य समूह बनाकर अपने सब प्रकार के हितो की रक्षा करना ही है। श्रम सघ की परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं— श्रम सघ मजदूरी, वेतन और शुल्क उपार्जन करने वाले व्यक्तियो का एक ऐसा ऐच्छिक सगठन है जो मूलत समग्र रूप से अपने सदस्यो और व्यापार अथवा रोजगार के हित के उद्देश्य से सगठित किया जाता है और वह मालिक के साथ-साथ सबघो में प्रतिनिधित्व करता है।

श्रम सघो के उद्देश्य व कार्य

श्रम सघो के उद्देश्य के सबध मे विचारको मे काफी भिन्नता मिलती है। कार्ल

1 G H H Cole An Introduction to Trade Unionism, p 1
2 V V Giri Labour Problems in Indian Industry, p 1
3. A C Jones Trade Unionism Today, p 3.

मार्क्स व एजिल्स जैसे भौतिकवादी विचारक श्रमिक सघो को क्रांति के एजेंट के रूप मे और वर्ग सघर्ष की प्रक्रिया मे इन्हें एक दल के रूप मे स्वीकार करते हैं, जो पूजीवादी अर्थव्यवस्था को समाप्त कर देता है। वेब ने श्रमिक सघो को उद्योग के क्षेत्र मे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो के विस्तार के रूप मे स्वीकार किया है। कोल के विचार मे श्रमिक सघो का अतिम उद्देश्य श्रमिको का उद्योग पर नियत्रण करना है। लास्को के मत म श्रमिक सघो के उद्देश्यो के मौलिक रूप से आर्थिक होने के बावजूद भी सामाजिक उद्देश्यो मे वृद्धि होने के साथ-साथ बहुमुखी होते जा रहे हैं। यदि वे ऐसा करने मे असफल रहे तो तीव्रता से बदलते हुए समाज द्वारा रखी गई मागो के सदर्भ मे जीवित नही रह सकते।

श्रमिक सघो के उद्देश्यो का आभास उनके कार्यों मे होता है। श्रमिक सघ के कार्यों का हम निम्नलिखित शीर्षको के अतर्गत अध्ययन कर सकते हैं—

1 आतरिक अथवा लडाकू कार्य इस प्रकार के कार्यों के अतर्गत श्रमिक सघ श्रमिको के अधिकारो के लिए लडते हैं। इस लडाई का लक्ष्य होता है—(अ) उचित मजदूरी, (ब) कार्य और सेवा की अच्छी शर्तें, (स) मालिको के अच्छे व्यवहार, (द) काम के कम घटे व उद्योग के प्रबध मे हिस्सा। इस लडाई म वे अनेक अस्त्रो का प्रयोग करते हैं जैसे हडताल, बहिस्कार, सामूहिक सौदेबाजी, समझौता वार्ताए आदि।

2 बाह्य कार्य अथवा मित्रवत् कार्य : इसके अतर्गत वे कार्य आते हैं जो श्रमिक परस्पर एक दूसरे के जीवन को सुधारने के उद्देश्य से करते हैं। जे० आई० रोयर का एक सुदर वाक्य है "एक श्रमिक सघ एक नगरपालिका के सदृश है जिसका उद्देश्य नागरिको का जीवन सुधारना है।' अर्थात जिस प्रकार नगरपालिका शिक्षा, स्वास्थ्य मनारजन इत्यादि की सेवाओ की व्यवस्था करती है श्रमिक सघ भी करता है। इन कार्यों को निम्नलिखित कुछ वर्गों मे बाटा जा सकता है—

(अ) शिक्षा सबधी कार्य महिला शिक्षा, प्रौढ शिक्षा, पुस्तकालय व वाचनालय आदि की व्यवस्था करना।

(ब) आर्थिक कार्य : सहकारी समितियो का निर्माण करना जो सस्ते अनाज मकान व ऋण दिलाने से सबधित कार्य करती हैं। अनाथ गरीबो की सहायता का प्रबध करना।

(स) स्वास्थ्य सबधी कार्य दवा, इलाज, सफाई की व्यवस्था करना व शिशु एव मातृ कल्याण करना।

(द) मनोरजन खेलकूद व्यायाम टूर्नामेंट आदि का प्रबध करना व क्लब इत्यादि का सगठन करना।

(य) सांस्कृतिक कार्य लोक नृत्य सगीत कला नाटक इत्यादि।

यद्यपि इन कार्यों की भारत मे उपेक्षा हुई है परतु कुछ प्रमुख श्रमिक सघो ने इस पक्ष पर बहुत ध्यान दिया है। अहमदाबाद के सूती वस्त्र मजदूर सघ ने सभी कल्याणकारी कार्यों मे विशेष प्रगति की है।

3 राजनीतिक कार्य देश के शासन प्रबध मे भाग लेने के उद्देश्य से निर्वाचन आदि में श्रमिक के प्रतिनिधियो को खडा करना राजनीतिक कार्यों की श्रेणी में आता है।

आर्थर गोल्ड वर्ग के अनुसार "सघ सदस्यो का यह कर्त्तव्य है कि वे देश के राजनीतिक अधिकारो के निश्चित राष्ट्रीय कार्यक्रम को आश्रय प्रदान करें तथा अपने सघ को देश के राष्ट्रीय जनसघो के सदस्य वर्गों के साथ चलाने के लिए दृढता से कहें।" सक्षेप मे श्रमिक सघ के राजनीतिक कार्य अग्रलिखित प्रकार के हो सकते हैं—

(अ) विधान सभाओ मे अपने प्रतिनिधि भेजना, नगरपालिकाओ मे अपना प्रभाव उत्पन्न करना।

(ब) चुनाव के द्वारा स्वय अपनी सरकार बनाने का प्रयास करना ताकि सत्ता मे आकर कुछ और अधिक अच्छा कार्य किया जा सके जैसा कि ब्रिटेन मे लेबर पार्टी सत्ता मे है। ऐसा केवल औद्योगिक देशो मे सभव है। भारत मे भविष्य मे ऐसा होना सभव नही है।

(स) श्रमिको के हित के अधिनियमो को बनवाना। भारत मे अनेको अधिनियम श्रमिक आदोलन के फलस्वरूप बने हैं।

श्रम सघ किसी राजनीतिक व्यवस्था मे पनप सकते हैं—चाहे वह पूजीवाद हो अथवा साम्यवाद। पूजीवाद के अतर्गत जहा श्रम सघो का प्रमुख कार्य है मजदूरी, कार्य की शर्तो एव कर्मचारी वर्ग की माग और पूर्ति से सबधित विषयो के लिए सेवायोजको के समक्ष माग रखना, साम्यवादी देश मे श्रमिक सघ उत्पादन मे वृद्धि को प्रोत्साहित करने मे, अनुशासन बनाए रखने मे बल देते हैं और समाजकल्याण एजेंसी के रूप मे कार्य करते है। साम्यवादी देशो मे मजदूरी की मागो के समर्थन मे हडतालो का सहारा श्रमिक सघ नही लेते।

विकासशील देशों मे श्रमिक सघ का कार्य, पूजीवाद और साम्यवाद के अतर्गत दो चरम रूपो के बीच स्थान पाता है।

भारतीय श्रम सघ अधिनियम 1926 के अनुसार सघो को श्रमिक के हितो की रक्षा, रोजगार एव कार्य की दशाओ मे सुधार तथा उनके हितो मे वृद्धि करना चाहिए। यह कार्य उनका मूल उद्देश्य है किंतु इसके अतिरिक्त श्रम सघ के कुछ गौण कार्य भी हैं लेकिन ये गौण कार्य मूल उद्देश्य के नीति विरुद्ध नही होने चाहिए।

भारतीय श्रम सघों के मूल उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(1) अपने सदस्यो के लिए उपर्युक्त मजदूरी, अच्छी कार्य दशाए तथा अच्छे रहन-सहन की सुविधाए उपलब्ध कराना। (2) श्रमिको के जीवन स्तर मे वृद्धि करके उन्हें उद्योग मे सहभागी के रूप मे तथा समाज के अच्छे नागरिक के रूप मे लाना। (3) श्रमिको द्वारा उद्योग पर नियत्रण प्राप्त करना। (4) आकस्मिक दुर्घटनाओ के समय सामूहिक रूप से सगठित प्रबधकीय षड्यत्रो के विरुद्ध बोलने के लिए अन्याय को दबाने के लिए श्रमिको की व्यक्तिगत क्षमता मे वृद्धि करना। (5) श्रमिको तथा उत्तरदायित्व अनुशासन के वहन करने की योग्यता उत्पन्न करना। (6) श्रमिको मे यह आत्मबल जागृत करना कि वे केवल मशीन के पूर्जे मात्र नही हैं। (7) श्रमिको की नैतिक उन्नति के लिए कल्याणकारी कार्य करना।

श्रम सघो के लाभ

श्रम सगठनो के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

1 **पारस्परिक मित्रता व सहयोग** श्रमिक सघो मे श्रमिको मे पारस्परिक मित्रता व सहयोग की भावना का विकास होता है। उनमे अपने अधिकारो के सबध मे जागरूकता बढती है और इससे उनकी सामूहिक सौदा करने की शक्ति बढ जाती है। परिणामत पूजी शक्तिशाली होते हुए भी श्रमिको का शोषण नही कर पाते।

2 **जीवन स्तर मे वृद्धि** श्रम सगठन श्रमिको की आर्थिक, शारीरिक व मानसिक स्थिति को सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। फलत श्रमिको का जीवनस्तर ऊचा होता है और उनकी कार्यक्षमता बढती है।

3 **शिक्षा व अनुशासन** श्रमिक सघ, शिक्षा प्रचार आदि के द्वारा श्रमिको के अनुशासन बनाए रखने मे सहायक सिद्ध होता है जिससे औद्योगिक शाति बनी रहती है।

4 **उचित पारितोषण** श्रम सघ अपने अधिकारो के लिए लड कर श्रमिकों को उचित मजदूरी दिलवाने का प्रयत्न करता है। जब श्रमिकों को उचित परितोषण मिलता है तो वे पूर्ण मन से कार्य करते हैं।

5 **कल्याण कार्य की व्यवस्था** श्रम सघ अनेक ऐसे कार्य करते हैं जिनका सम्बन्ध सामाजिक कल्याण और श्रम कल्याण से होता है, जिनसे श्रमिको का मानसिक दृष्टिकोण विकसित होता है और उनकी कार्यक्षमता व कुशलता बढती है।

6 **औद्योगिक विकास व राष्ट्रीय आय मे वृद्धि** श्रम सघ देश औद्योगिक शक्ति बनाए रखने का प्रयत्न करता है। फलत औद्योगिक उत्पादन मे निरतर वृद्धि होती है और राष्ट्रीय आय बढती है।

7 **आदर्श श्रम अधिनियमो के निर्माण में सहयोग** श्रम सघ लोक सभा मे अपने प्रतिनिधि भेजकर श्रमिको की आवाज सरकार तक पहुचाता है। परिणामस्वरूप सरकार भी अधिनियम बनाकर श्रमिको को सुविधाए देने का प्रयत्न करती है जिसमे उसका जीवन सुधर सके और वे देश के आदर्श नागरिक बन सकें।

श्रमिक सघ एवं आर्थिक विकास
(Trade Unions and Economic Development)

अर्द्ध विकसित देशो के आर्थिक विकास मे श्रम सघ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। आर्थिक विकास एक अनवरत प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय मे निरतर वृद्धि होती है। यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि अर्द्ध विकसित देशो के आर्थिक विकास के महान यज्ञ मे श्रमिक सघ अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

किसी देश के आर्थिक विकास मे कुछ ऐसे तत्त्व पाए जाते हैं जो देश के आर्थिक विकास का आधार प्रस्तुत करते हैं और जब विकास की गति शुरू हो जाती है तो कुछ दूसरे तत्त्वो का भी आगमन हो जाता है जो विकास-गति को और भी अधिक तीव्र कर देते

हैं। *प्रथम श्रेणी के तत्त्व जो विकास गति का शुभारम्भ करते हैं* प्राथमिक तत्त्व कहलाते हैं। ये तत्त्व यह प्रदर्शित करते है कि आर्थिक विकास क्यों होता है ? दूसरे प्रकार के तत्त्व जो प्रारभ हो गए विकास की प्रक्रिया मे सहायता पहुचाते हैं। सहायक तत्त्व कहे जाते हैं। प्राथमिक तत्त्व मुख्यनः एक ही होता है और यह सरलतापूर्वक सहायक तत्त्वो *से पृथक् किया जा सकता है जो अनेक हो सकते हैं।* **प्रो० लुइस**[1] *ने आर्थिक विकास मे* तीन महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्वों का उल्लेख किया हैं—(अ) आर्थिक क्रिया, (ब) बढता हुआ ज्ञान, (स) बढती हुई पूजी। आर्थिक क्रिया का अभिप्राय उन प्रयत्नो से है जो एक दिए हुए प्रसाधन की उत्पत्ति बढाने अथवा एक दी हुई उत्पत्ति की लागत को घटाने के लिए किया जाता है। परतु उत्पादन मे वृद्धि करने अथवा लागत को न्यून करने की सभावना,व्यक्तियों की कार्य करने की तत्परता और योग्यता पर निर्भर करती है। परतु कोई व्यक्ति कार्य मे रुचि उस समय लेता है, जबकि उसे उस कार्य से लाभ होने की आशा रहती है। प्रो० लुइस के शब्दो मे *"मनुष्य तब तक प्रयत्न नही करते जब तक कि* उन्हे अपने प्रयत्न का फल स्वय को मिलने का आश्वासन न हो।"[2] स्पष्टत. आर्थिक विकास के लिए श्रमिको मे आशा और विश्वास का होना अत्यत आवश्यक है। एक सुदृढ श्रमिक सघ, जो सामूहिक सौदेबाजी द्वारा श्रमिको के हितो की सुरक्षा करने और *उसे बढाने के योग्य हो, श्रमिको मे पर्याप्त आशा और विश्वास उत्पन्न कर सकता है कि* उनका किसी प्रकार से शोषण नही होगा और वे अधिक रुचि और लगन के साथ अपने कार्यों का निष्पादन करें और उत्पादन को अधिकाधिक बढाने का प्रयत्न करें।

देश के आर्थिक विकास के साथ-साथ तकनीकी, प्रशासनिक और सामान्य सभी प्रकार के कौशल और ज्ञान की आवश्यकता बढती जाती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे शिक्षा के अभाव के कारण मनुष्य के कौशल मे कमी रह जाती है और वह देश के विकास म पूर्णतम सहयोग नही दे पाता है। यह मानव शक्ति का दुरुपयोग है। एक कल्पनाशील *कुशाग्रबुद्धि, जागरूक और कुशल श्रमिक किसी राष्ट्र के लिए वरदान है। ऐसे श्रमिको* की उत्पादकता अधिक होती है। "आधुनिक उद्योग के लिए जिस तरह के श्रमिको की आवश्यकता होती है उसके उपलब्ध न होने से एशियाई देशो के औद्योगीकरण मे बहुत बाधा पड रही है।"[3] श्रमिक सघ सामान्य शिक्षा के प्रसार मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते है क्योकि श्रमिक सघो द्वारा सचालित शिक्षा कार्यक्रम अपेक्षाकृत अधिक श्रमिको को आकर्षित कर सकता है। यदि एक बार श्रमिको की रुचि शिक्षा के प्रति हो गई तो इस दिशा मे काफी सफलता प्राप्त की जा सकती है। जहा तक तकनीकी और व्यावसायिक *शिक्षा के प्रबध का प्रश्न है श्रमिक सघो को अर्द्ध-विकसित देशो मे ऐसे दायित्व उठाने* मे अपने अल्प वित्तीय ससाधनो के कारण बहुत कठिनाई अनुभव होगी। फिर भी वे यदि

1 The Theory of Economic Growth, p. 23.
2 Lewis The Theory of Economic Growth, p. 23.
3. Economic Background of Social Policy including Problems of Industrialization, Report IV, I L. O. p, 743

सरकार व उद्योग जो ऐसी योजनाए इस दिशा मे चलाते हैं उनके सहयोग के लिए प्रयत्न करें तो सभवत श्रमिक सघ श्रमिको को ऐसे कार्यक्रमो मे नियमित और सक्रिय भाग लेने के लिए उत्साहित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिक सघ उद्योग के अदर उत्पादन योग्यता को बढने के कार्यक्रमो मे प्रत्यक्ष रूप मे भाग ले सकते हैं। उदाहरणार्थ—श्रम सघ श्रमिको को कच्चे माल का अपव्यय कम करने और कार्य के शेष वितरण और सामान्य तकनीकी सुधार के द्वारा कुशलता बढाने के व्यावहारिक उपाय बता सकते हैं। इसी प्रकार श्रमिको के स्वाभाविक नेता के रूप मे श्रमिक सघ सयुक्त उत्पादन समितियों, कार्य-परिषदो आदि को जो उत्पादन-कुशलता के सुधार मे श्रमिको के भाग लेने का साधन हैं, वास्तविक रूप से प्रभावशाली बना सकते हे क्योकि वे विभिन्न सुधारो के सबध म गहनतापूर्वक विचार करने के लिए श्रमिको को प्रोत्साहित कर सकते हैं और उन्हे अपने विचार व्यवस्थित तथा सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करने मे सहायता दे सकते हैं। रूस म 'स्टखानोव आदोलन' (Stakhanow Movement) जिसका इस देश के आर्थिक नियोजन की सफलता मे महत्त्वपूर्ण योगदान था, बहुत सीमा तक श्रमिको की सहभागिता पर ही निर्भर था जो कार्य के श्रेष्ठ वितरण और उनके द्वारा सुझाए गए सामन्य तकनीकी अविष्कारो के प्रयोग के द्वारा उत्पादकता बढाने और लागत घगाने के सबध मे उपलब्ध हुआ था।[1]

पूजी निर्माण के सबध मे भी श्रमिक सघ (अ) अल्प बचत योजनाओ का प्रोत्साहन देकर, (ब) सडक निर्माण तथा इसी प्रकार की प्रयोजनाओ के लिए ऐच्छिक श्रमिक दलो का सगठन करके, तथा (स) अनिवार्य बचत जैसी योजनाओ को श्रमिको द्वारा स्वीकृति दिलवाकर सहायक सिद्ध हो सकते है।

श्रमिक सघ आर्थिक विकास एक अन्य योगदान श्रमिको को औद्योगिक जीवन से समन्वय और स्वीकृत करने की प्रक्रिया मे सहायता देकर कर सकता है। कारण यह है कि उद्योगो म अधिकाश श्रमिक गाव से आते हैं और उन्हे इस सबध मे कोई जानकारी नही होती कि वरिष्ठ कर्मचारियो और साथियो से कैसा व्यवहार करना चाहिए, अनुशासन एव नियमितता का उद्योग मे क्या महत्त्व है, वह अपने को एक अन्य अजनबी जगह म खोया खोया सा पाता है। कारखाने के बाहर का वातावरण भी उसे पराया मालूम होता है। श्रमिको के औद्योगिक जीवन मे समायोजन और अनुशासन का यह अभाव आर्थिक विकास के लिए बहुत ही खतरनाक है क्योंकि आर्थिक विकास के लिए एक अनुशासित और लगभग स्थायी श्रम शक्ति का होना आवश्यक है। अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन निर्देशक ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन की 36 वी बैठक के अवसर पर विचार व्यक्त किया था "श्रमिक सघ एक नवीन औद्योगिक समाज की रचना करने और ग्रामीण समुदाय से हाल मे आए हुए श्रमिको को औद्योगिक जीवन की परिस्थितियो के साथ सामजस्य की स्थिति आने मे एक शक्तिशाली उपक्रम के रूप मे कार्य कर सकता है।" इस तरह का वातावरण उत्पन्न करने के लिए श्रमिक सघ शिक्षा और मनोरंजन के सयुक्त केंद्र खोल सकते है

1. Maurice Dobb : Soviet Economic Development since 1917, p 429.

जो ग्रामीणो को नए जीवन के आदर्शों और आवश्यकताओ से अवगत कराने के साथ-साथ ग्रामीण समाज मे प्राप्त होने वाले मनोरजन के साधनों का स्थानापन्न भी उपलब्ध करेंगे जिसके लिए उन्हे सघ के चदे के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही देना होगा। श्रमिक सघ श्रमिको और अपने घर बनाने मे सहायता करने के लिए सहकारी गृह-समितिया भी स्थापित कर सकते हैं। श्रमिक सघ अन्य कल्याणकारी उपायो द्वारा भी समन्वय की इस प्रक्रिया को सुविधा प्रदान कर सकते है।

अर्द्ध विकसित देशो मे श्रम सघो का सगठन व कार्य-प्रणाली इस प्रकार की नही है कि वे विकास म बहुत अधिक सहायक हो सकें। वस्तुत वे विकास के प्रारभिक चरणो मे बाधा या गतिरोध ही उत्पन्न कर देते है। इन देशो मे श्रम-सघो की वित्तीय स्थिति शोचनीय होती है, श्रम सघो मे सयुक्त प्रयत्न और एकता का अभाव रहता है, उचित नेतृत्व का अभाव रहता है, सदस्यो की सख्या कम व अस्थिर रहती है, श्रमिको में अनुशासनहीनता रहती है। अधिकाश श्रमिको मे अपने नेताओ के प्रति सद्‌भावना नही होती तथा श्रम सघ कल्याण के कार्यों मे अधिक रुचि नही लेते हैं। इन देशो में इन सब बुराइयो की जड, श्रमिको मे अशिक्षा अज्ञानता, रुढिवादिता, निर्धनता, ऋणग्रस्तता, बेरोजगारी और जनसख्या की वृद्धि है।

यदि अर्द्ध विकसित देश औद्योगिक दृष्टि से समृद्धशाली बनना चाहते हैं तो उन्हे श्रमिको के सगठनो को सुदृढ और सुसगठित करना होगा। औद्योगिक विकास के लिए श्रमिकों के प्रति विश्वास और सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाना होगा। श्रमिको की हितो की रक्षा करने और उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए दृढ श्रम सगठन नितात आवश्यक है।

सवश्री वेब का मत है कि श्रम सघवाद के निम्नलिखित तीन सिद्धात हैं—

(1) **अपने स्वार्थ की भावना का सिद्धात** (The doctrine of vested interest) इसके अतर्गत श्रम सघ राज्य का सरक्षण चाहते हैं, नई प्रविधियो का विरोध करते है और भिन्न भिन्न श्रम सघो मे अतर बनाए रखते हैं।

(2) **मांग और पूर्ति का सिद्धात** (The doctrine of supply and demand) इसके अतर्गत श्रम सघ सामूहिक सादेबाजी, मजदूरी, सरचना, हडताल तालाबदी, उत्पादन को जानबूझ कर कम रखने का प्रयत्न करते हैं या फिर उत्पादन बढाने मे सहायक होने आदि की ओर अधिक ध्यान देते हैं।

(3) **सुधारक के सिद्धात** (The doctrine of improvement) इसके अतर्गत श्रम सघ श्रमिको की कार्यकुशलता और मजदूरी बढाने का प्रयत्न करते है तथा कार्य करने की परिस्थितियो मे सुधार की माग करते हैं।

सिडनी व वेब का कथन है कि श्रम सघो को प्रथम सिद्धात को छोड देना चाहिए, द्वितीय को सशोधित रूप मे अपनाना चाहिए और तृतीय कार्यों को बढावा देना चाहिए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरात दो नवीन सिद्धात और प्रचलित हुए हैं (अ) सहभागिता का सिद्धात (The doctrine of Partnership) और (ब) समाजवाद

का सिद्धात (The doctrine of socialism)

(1) सहभागिता सिद्धात की मान्यता है कि श्रमिको को उद्योग का सहभागी समझा जाना चाहिए और प्रबध व्यवस्था आदि मे उनकी सलाह ली जानी चाहिए। सामूहिक सौदेबाजी, समझौता प्रणाली आदि के प्रचलन मे यह सिद्धात अधिक सफल हुआ।

(ii) समाजवाद सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का अधिकार है और बीमारी, अवकाश, वृद्धावस्था का प्रबध, समान कार्य के लिए उचित मजदूरी तथा असमर्थता के लिए उचित व्यवस्था का भी अधिकार है। श्रमिक और प्रबधक का उद्देश्य एक ही होता है अर्थात् समाजवादी समाज की स्थापना करना तथा धन का समान वितरण एव सुविधाओ का समान आवटन करना।

इन सिद्धातो की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन सिद्धातो ने श्रम आदोलन सशक्त करने मे सक्रिय योगदान दिया है तथा इनके आधार पर चार प्रमुख नारे प्रचलित हुए—राजकीय हस्तक्षेप, सामूहिक सौदेबाजी, प्रजातत्र तथा समाजवाद।

सामूहिक सौदेबाजी या सघ तथा मजदूरी
(Collective Bargaining of Trade Unions'and Wages)

श्रमिक सघो का प्राथमिक उद्देश्य श्रमिको को उचित मजदूरी दिलाना है इसलिए मजदूरी का प्रश्न श्रमिक सघो के लिए एक प्रधान विचारणीय विषय है। प्राय यह विश्वास किया जाता है कि श्रमिक सघ श्रमिको की सौदा करने की शक्ति मे वृद्धि करके मजदूरिया बढा सकते है। किंतु प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो जैसे— मैक्कूलक, मिल, बास्तीयात स्लीसिग, केरनीज वाकर आदि अर्थशास्त्रियो ने श्रम सघो की उपयोगिता का स्वीकार नही किया है, क्योकि उनके मतानुसार श्रम सघ श्रमिको की कुशलता और मजदूरी म कमी लाते हैं। श्री वेब के शब्दो मे 'श्रमिक सघवाद उन शोषण करने वाले उद्योगो मे एक ऐसे कुचक्र को जन्म देता है जिससे निरंतर पारिश्रमिक की दर मे धीरे-धीरे कमी होते रहने से कार्य की किस्म मे अनिवार्य गिरावट आती है और उत्पादक पदार्थों के गुण मे अपेक्षतया कमी होने से उन्हें अधिक अच्छी कीमत पर बेचना सभव नही होता, जिसके परिणामस्वरूप मजदूरी की दर कम रखने के लिए मालिको को विवश होना पडता है।[1]' इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने यह तर्क किया कि श्रमिक सघ मजदूरियो के स्तर को बढाने मे कोई सहायता नही कर सकते। उनके मतानुसार श्रमिकों की मजदूरी को केवल लाभ काट कर ही बढाया जा सकता है। लाभ मे कमी करने से औद्योगिक कार्य-विधि मे कमी की जाएगी जिसके फलस्वरूप श्रमिको के लिए माग भी कम हो जाएगी। इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के मतानुसार या तो घटी हुई मजदूरियां स्वीकार होगी अथवा बेरोजगारी का सामना करना होगा। अत इस दृष्टिकोण के अनुसार श्रमिक सघ मजदूरियो म स्थायी वृद्धि नही करा सकते।

1 The Webb's Industrial Democracy, p 416.

आधुनिक अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि श्रमिक सघो द्वारा मजदूरियों मे कटौती का जो विरोध किया जाता है, वह न्यायसगत है, क्योकि मजदूरी मे कमी का साधारणतया रोजगार की वृद्धि पर कोई प्रभाव नही पडता। प्रो० जे० एम० कीन्स ने उचित ही लिखा है, "प्रत्येक श्रमिक सघ मौद्रिक मजदूरियो मे कटौती का, चाहे यह कमी कितनी ही अल्प क्यो न हो, विरोध करेगा। चूकि कोई भी श्रमिक सघ जीवन-निर्वाह लागत के बढ जाने के प्रत्येक अवसर पर विरोध करने की कल्पना नही कर सकता। इसलिए ये कुल रोजगार मे किसी वृद्धि के विरुद्ध कोई रोडा नही अटकाते, जैसाकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने आरोप लगाया है।"[1]

श्रमिक सघ मजदूरिया स्थाई रूप से बढवा सकते है या नही, इस प्रश्न का अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते हैं—

1 उद्योग विशेष की दृष्टि से, और
2 सपूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से।

1. उद्योग विशेष की दृष्टि से

श्रम सघ विशेष उद्योग मे मजदूरी दर म वृद्धि लाने म सफल हो सकते हैं किन्तु उनकी सफलता मुख्यत निम्नलिखित घटको मे प्रभावित होती है—

(अ) **वस्तु की माग लोच का स्वरूप** श्रम की माग श्रम के द्वारा उत्पादित वस्तु की लोच पर निर्भर करती है। यदि उद्योग विशेष द्वारा बनाई गई वस्तु की माग बेलोचदार है तो ऐसी स्थिति मे उत्पादक वस्तु की कीमत मे वृद्धि कर सकता है। इस दशा मे यदि श्रमिक सघ मजदूरी के लिए उत्पादको को बाध्य करते है तो उत्पादक को श्रम सघ की माग को स्वीकार करने म अधिक हिचक नही होगी। क्योकि उत्पादक मजदूरी मे वृद्धि के अनुपात से वस्तु की कीमत मे वृद्धि कर सकता है। इसके विपरीत यदि वस्तु की माग लोचपूर्ण है तो उत्पादक श्रमिक सघ की अधिक मजदूरी की माग स्वीकार नही करेगा, क्योकि ऐसी दशा मे वस्तु की कीमत बढाने से वस्तु की माग पर प्रतिकूल प्रभाव पडने की सभावना होती है।

(ब) **कुल लागत में मजदूरी का अश** यदि किसी उद्योग मे कुल लागत मे मजदूरी का एक बहुत थोडा अश है तो उत्पादक को उन श्रमिको के वर्ग को ऊची मजदूरी देने मे अधिक कठिनाई नही होगी। इसके विपरीत यदि कुल लागत म मजदूरी का अश अधिक है तो उत्पादक मजदूरी की दर बढाने मे हिचकेंगे।

(स) **श्रम का अन्य साधनों द्वारा प्रतिस्थापन** यदि श्रमिको के विशेष वर्ग की माग बेलोचदार हो अर्थात् उस विशेष वर्ग के श्रमिको की अन्य उत्पादन के साधनो द्वारा प्रतिस्थापन की सभावना शून्य हो तो उत्पादक अधिक मजदूरी देने के लिए बाध्य होगा। इसके विपरीत यदि उत्पादन क्रिया मे श्रम की मात्रा का प्रतिस्थापन किया जा सकता है

1 J M Keynes : *General Theory of Employment, Interest and Money* p. 264,

तो श्रमिक संघ द्वारा अधिक मजदूरी की मांग किए जाने पर उत्पादनकर्ता श्रम का किसी अन्य साधन के द्वारा प्रतिस्थापन कर लेगा और अधिक मजदूरी नही देगा।

श्रमिक संघों द्वारा मजदूरी में वृद्धि के तरीके : उपर्युक्त दशाओ के अंतर्गत किसी उद्योग विशेष मे श्रमिक सघो द्वारा मजदूरी मे वृद्धि हेतु निम्नलिखित तीन विधियो को अपनाया जाता है—

1. श्रम की पूर्ति पर प्रतिबंध : श्रम का मूल्य उस स्थान पर निश्चित होता है जहा श्रम की माग और पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते हैं। यदि श्रम की पूर्ति कम हो जाती है और श्रम वक्र पीछे की ओर विवर्तित हो जाता है तो सतुलन श्रम की माग वक्र पर ऊचे बिन्दु पर होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मजदूरी दर पहले से अधिक हो जायेगी। स्पष्टत: श्रमिक सघो द्वारा श्रम की पूर्ति मे प्रतिबध लगाकर, मजदूरी मे वृद्धि की जा सकती है। श्रमिक सघ किसी उद्योग विशेष मे श्रम की पूर्ति अनेक तरीकों द्वारा घटा सकते हैं—जैसे विदेशो से श्रमिको के आने पर प्रतिबध लगाकर, अधिकतम काम के घटे सबधी कानून बनाकर तथा नए सदस्यो की भर्ती पर रोक लगाकर। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघ अनेक जटिल विधियो द्वारा भी श्रम की पूर्ति को रोक सकते है जैसे काम की अधिकतम मात्रा निर्धारित करना। सैम्युलसन 'Feather-bidding Labour Practice' कहते हैं।[1]

2. मानक मजदूरी (Standard Wages) दर में वृद्धि करके : श्रमिक सघो द्वारा स्वयं श्रम की पूर्ति पर प्रतिबध लगाने की विधि का उपयोग बहुत कम किया जाता है। श्रमिक सघो का उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से मानक मजदूरी दर मे वृद्धि करना होता है और यदि श्रमिक सघ इसमे सफल हो जाता है तो सेवायोजको द्वारा श्रम की नियुक्ति मे कमी कर दी जाती है। वास्तव मे श्रमिक सघ हड़ताल करके अथवा सरकार द्वारा दबाव डलवाकर मजदूरी-दर मे वृद्धि करने मे सफल हो सकते हैं परतु जैसा हमने ऊपर कहा कि सेवायोजक ऊची मजदूरी की दर पर श्रमिको की सख्या कम कर देगा जिससे अनेक श्रमिक रोजगार से वचित रह जाएगे।

3 श्रम की मांग में वृद्धि श्रम की माग व्युत्पन्न माग है और उत्पादकता के कारण उत्पन्न होती है। श्रम की सीमात उत्पादकता मे वृद्धि के साथ-साथ स्वभावतः श्रम की माग मे वृद्धि हो जाती है। श्रमिक सघ अनेक प्रकार की कल्याणकारी योजनाओ जैसे शिक्षा, आवास व्यवस्था, चिकित्सा और मनोरजन की सुविधा आदि द्वारा श्रमिको की सीमात उत्पादकता मे वृद्धि कर सकते हैं। इसी प्रकार श्रमिक सघ अपने उद्योग की वस्तुओ के विज्ञापन मे सहायता द्वारा या सरकार द्वारा अपने उद्योग को सरक्षण दिलवाकर अथवा उद्योग के ऊचा एकाधिकारी मूल्य बनाए रखने मे सहायता देकर वस्तु की कीमत ऊची रखने म सफलतापूर्वक प्रयासशील हो सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप श्रम की सीमात आगम उत्पादकता मे वृद्धि प्राप्त करना सभव हो सकता है।

सैम्युलसन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि उपर्युक्त तीनो विधिया एक-दूसरे से

सबधित हैं और श्रमिक सघ तीनो विधियो को एक साथ उपयोग मे लाकर भी मजदूरी वृद्धि का प्रयास कर सकती है।

सपूर्ण अर्थव्यवस्था

सपूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से श्रमिक सघ मजदूरी की दर मे वृद्धि नही करा सकते। यह धारणा मजदूरी के सीमात उत्पादकता सिद्धात पर आधारित है। यदि सामूहिक *सौदेबाजी के परिणामस्वरूप मजदूरी मे सीमात उत्पादकता से अधिक वृद्धि प्राप्त* कर ली जाती है तो इसके निम्नलिखित दो परिणाम होगे—

(अ) उत्पादको के लाभ मे कमी,

(ब) *वस्तुओ की कीमत मे वृद्धि।*

इन दोनो ही परिस्थितियो मे श्रम की माग पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगे। फलत, रोजगार की मात्रा और मजदूरी की दर मे कमी आ जायेगी। इस प्रकार सपूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से मजदूरी *सीमात उत्पादकता के बराबर ही होगी।*

श्रम सघों की मजदूरी-वृद्धि की सीमाए *उपर्युक्त विवेचन मे स्पष्ट है कि* सपूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से सामूहिक सौदेबाजी के प्रयासस्वरूप मजदूरी की दर श्रम की सीमात उत्पादकता के बराबर हो सकती है। इसके विपरीत श्रमिक सघ किसी विशेष वर्ग के श्रमिको को मजदूरी की दर मे वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं परतु अनुकूलतम दशाओ मे भी श्रमिक सघ पूर्ण रूप से प्रभावशाली नही होते। श्रम के विशेष वर्ग की मजदूरी भी असीमित मात्रा मे नही बढाई जा सकती। इसकी शक्ति पर मुख्यत निम्नलिखित सीमाए हैं[1]—

1 विभिन्न श्रमिक सघों के हितों में विरोध *एक देश मे अनेक श्रमिक सघ* पाए जाते हैं और प्रत्यक श्रमिक सघ यही चाहता है कि उसके सदस्यो की मजदूरी बढ जाए और सामान्य मूल्य स्तर स्थिर रहे। ऐसा उसी समय सभव है जबकि एक श्रमिक *सघ के सदस्यो की मजदूरी तो बढ जाए परतु श्रमिक सघो के सदस्यो की मजदूरी यथा*-स्थिर रहे। परतु यथार्थ मे यदि एक श्रमिक सघ मजदूरी वृद्धि मे सफल हो जाता है तो अन्य सघ भी मजदूरी वृद्धि का प्रयास करने लगते हैं। यदि सभी श्रमिक सघ मजदूरी *वृद्धि मे सफल हो जाते हैं तो सामान्य मूल्य स्तर बढ जाएगा और मजदूरी मे वृद्धि का* वास्तविक लाभ किसी को भी प्राप्त नही होगा।

2 **श्रम सघ की शक्ति** श्रमिक सघ उसी दशा मे ही शक्तिशाली हो सकता है जबकि उस उद्योग विशेष के अधिकाश श्रमिक उसके सदस्य बन जाए और सगठित होकर कार्य करें यदि श्रमिक सघ मे कुछ ही सदस्य हैं तो हडताल अथवा अन्य किसी धमकी का सेवायोजक पर कोई विशेष प्रभाव नही पडेगा। *यदि श्रम सघ के सदस्यो मे* एकता के स्थान पर फूट रहती है तो सेवायोजक सदा विभिन्न सदस्यो को आपस म ही सघर्षरत रखने में सफल हो जाएगा।

1. Benham · Economics, pp. 379, 82.

3 श्रमिक संघ की आर्थिक स्थिति : श्रमिक संघ की सौदेबाजी करने की शक्ति संघ की आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करती है। हड़ताल की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हड़ताल करने वाले श्रमिक कितने दिन तक अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण कर सकते हैं। यदि आर्थिक दृष्टि से श्रमिक संघ कमजोर हैं तो भुखमरी की स्थिति आते ही वे सेवायोजक के सामने घुटने टेक देंगे। इस प्रकार आर्थिक रूप से शक्तिशाली संघ उत्पादक एवं साहसकर्त्ता वर्ग से सौदेबाजी में अपनी शर्तें मनवाने में सदैव इन अच्छी दशा में होता है।

श्रमिक संगठनों से हानियाँ

श्रमिक संघ का अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान होने के साथ-साथ श्रमिक संगठन से कुछ हानियाँ भी है—

1 औद्योगिक अशांति की आशंका : कभी-कभी श्रम संघों के नेता अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए श्रमिकों को भुलावा देकर उनको हड़ताल करने के लिए विवश करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि औद्योगिक अशांति फैलती है, उत्पादन स्तर में गिरावट आती है। फलतः राष्ट्रीय आय में भी कमी हो जाती है।

2 श्रमिकों की दलबन्दी : श्रम संघ श्रमिकों के बीच दलबन्दी की भावना को बढ़ावा देते हैं। श्रम संघ की जो कार्यकारिणी होती है उसमें चुनाव के कारण श्रमिकों में गुटबन्दी आदि हो जाती है जिसके कारण श्रम संघ स्वस्थ रूप में कार्य नहीं कर पाते।

3 स्वार्थसिद्धि के साधन : श्रम संघों के नेता केवल राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से इनका नेतृत्व करते हैं परन्तु वास्तव में इनको श्रमिकों से अधिक सहानुभूति नहीं होती।

4 पदलोलुपता की भावना : यह देखा गया है कि श्रम संघों के विभिन्न नेता भी प्रायः पदलोलुपता के लिए संघर्ष होते रहते हैं जिससे श्रमिक वर्ग का अहित होता है और श्रम संघ आंदोलन की जड़ें कमजोर हो जाती हैं।

5 कार्य-क्षमता व जीवन-स्तर में गिरावट : औद्योगिक अशांति, हड़ताल व तालाबंदी की अवस्था में श्रमिक निर्माण कार्य करने में असमर्थ रहते हैं और उन्हें मजदूरी न मिलने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है तथा जीवन-स्तर गिर जाता है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि श्रमिकों की कार्य-क्षमता में कमी आ जाती है।

6 आर्थिक विकास में गतिरोध : श्रम संघ कभी-कभी आर्थिक विकास में रोड़ा अटका देते हैं। तब वे मजदूरी बढ़ाने की अनुचित माँग के लिए दबाव डालते हैं। खासतौर से जब अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति के दबाव का प्रारंभ दिखाई देता है।

निष्कर्ष : यदि हम ऊपर वर्णित श्रम संघों के दोषों पर गंभीरता से मनन करें तो हमें विदित होगा कि ये श्रमिक संगठन की त्रुटियाँ न होते हुए उनके नेताओं के दोष हैं। जो अपने संगठन के उद्देश्यों से विचलित होकर स्वार्थ साधक बन जाते हैं। वस्तुतः श्रम संघ समाज एवं देश के लिए कल्याणकारी संस्था है।

भारत मे श्रमिक संघ आंदोलन का इतिहास

भारत मे श्रम सघ आदोलन का विकास पूजीवाद को प्रोत्साहित करने वाले औद्योगीकरण के फलस्वरूप हुआ है। भारतीय श्रम सघ आदोलन के पिता एन० एम० जोशी ने कहा था कि स्वतत्र प्रतियोगिता और पूजीवादी नियत्रण की वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के अतर्गत सेवायोजको और कर्मचारियों की अभिरुचियो मे स्पष्ट सघर्ष है। श्री जोशी का यह मत कार्ल मार्क्स के इस विचार के सदृश ही है 'श्रमिक मध प्रारभिक स्थिति मे श्रमिको द्वारा पूंजीवादी स्पर्धा को दूर करने अथवा कम स कम एसे अनुबधित तर्कों को जो उन्हें नग्न गुलामो की स्थिति से आगे बढा सकती है, प्राप्त करने के लिए इसे नियत्रण करने हेतु स्वत किए गए प्रयत्नो के फलस्वरूप विकसित हुए हैं।" भारत मे आधुनिक अर्थ मे श्रमिक सघ आदोलन का विकास 20वी शताब्दी के आरभ से होता है। यद्यपि इनके अकुर निःसदेह 19वी शताब्दी के अत म अकुरित हो चुके थे। सुविधा की दृष्टि से भारतीय श्रम आदोलन को निम्न चार कालो मे विभाजित किया जा सकता है—

1 **श्रम सघ आदोलन का प्रादुर्भाव** (1875-1900) अन्य देशो की तरह भारतवर्ष मे भी श्रमिक आदोलन का जन्म एव विकास औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप हुआ। सर्वप्रथम 1875 मे बबई मे सोराबजी शाहपुर ने श्रम की दुर्दशा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया। इसी वर्ष बबई मे कारखाना आयुक्त नियुक्त किया गया। सन् 1881 मे कारखाना अधिनियम बना। सन् 1884 मे द्वितीय बबई कारखाना के आयुक्त नियुक्त हुए। सन् 1884 मे नारायण मेघा जी लोखाडे ने बबई के मजदूरो का एक सम्मेलन बुलाया था और उन्होने ही 1890 मे बॉम्बे मिल हैंड एसोसिएशन नामक मजदूरो का एक सगठन स्थापित किया। इस सघ की स्थापना से भारतीय श्रमिको मे श्रम सघ का इतिहास आरभ होता है। इसी समय श्री लोखाडे ने दीनबधु नामक एक पत्र निकाला जिसके माध्यम से श्रमिको की मागो को उनके अधिकारियो व सरकार तक पहुचाया जाता था। सन् 1881 मे **कारखाना अधिनियम** पास हुआ। सन 1897 मे कारखाना अधिनियम समिति बनी। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अतिम चरण मे भारतवर्ष मे श्रमिक सघो का जन्म हुआ। परतु इस समय के श्रमिक सघ समुचित रूप से सगठित नही थे।

श्रम सघ आदोलन के प्रथम चरण की मुख्य विशेषताए सक्षेप म इस प्रकार थी—(अ) श्रमिको मे यह भावना उत्पन्न नही हो पाती थी कि आदोलन क द्वारा उन्हे अपने जीवन मे क्रातिकारी सुधार लाना है, (ब) यह आदोलन स्वत: ही विकसित हो गया था। इसका विकास विभिन्न भारतीय उद्योगो मे समान रूप से नही हो पाया था (स) श्रमिक सघ समुचित रूप स सगठित नही थे।

2 **श्रम सघों की धीमी प्रगति का युग** सन् 1904 मे स्वदेशी आदोलन क फलस्वरूप श्रमिको म राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों मे श्रमसघो की स्थापना हुई जैसे—सन् 1903 मे प्रिंटर्स यूनियन कलकत्ता सन्

1907 मे बॉम्बे पिटर्स यूनियन, सन् 1909 मे कामगर हितवर्धक सभा और सन् 1910 मे सोशल सर्विस लीग आदि। इन्ही सभी प्रयत्नो का परिणाम था कि 1911 मे पुन कारखाना अधिनियम पारित किया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय कीमतें बहुत बढ गई थी जबकि श्रमिकों की मजदूरी में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई थी। इस महगाई के कारण श्रमिको म बहुत असतोष था। इसी समय हमारे कुछ राजनीतिक नेताओ ने भी श्रमिको के सगठन मे रुचि दिखलाई। उदाहरण के लिए लोकमान्य तिलक, एनीबेसेंट और महात्मा गाधी ने जो आंदोलन चलाए, उनसे भारतीय श्रमिक सघ आदोलन को प्रेरणा मिली। देश में राजनीतिक जागृति और सन् 1917 मे रूसी क्राति ने भी श्रमिको को सगठित होने के लिए उत्साहित किया और श्रम सघो के विकास के लिए उचित वातावरण तैयार किया।

यह उल्लेखनीय है कि अभी तक श्रम सघो ने केवल वैधानिक तरीको पर ध्यान दिया। वस्तुत श्रमिक सघ श्रमिको ने नही बल्कि श्रम नेताओ के सगठन से जो समाज-सुधारक होने के नाते श्रमिको के कल्याण के लिए व श्रमिको की दशा सुधारने के लिए प्रयत्नशील थे।

3 **श्रम सघों की तेज प्रगति का युग** प्रथम महायुद्ध के पश्चात् देश मे श्रम सघ आदोलन का तेजी से विकास हुआ। सन् 1918 में मद्रास श्रम सघ की स्थापना हुई। सूती मिलो मे काम करने वाले प्राय सभी श्रमिक इस सस्था के सदस्य बन गए। सन् 1920 मे आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्थापना हुई ताकि यह श्रमिको के हितो की रक्षा कर सके। 1921 के गाधी जी के असहयोग आदोलन का प्रभाव भी औद्योगिक श्रमिको पर काफी गहरा पडा। उन्हीं के प्रयास के फलस्वरूप अहमदाबाद वस्त्र श्रम सघ की स्थापना हुई। इस सगठन ने श्रमिको के सघर्ष को अहिंसात्मक ढग से निपटाने पर अधिक बल दिया। सन् 1919 और 1923 के बीच अनेक श्रम सघो की स्थापना की गई किंतु उनके सम्मुख अनेक कठिनाइयां थी, जैसे—निश्चित सविधान का अभाव, पैसे की कमी पदाधिकारियो मे काम के उचित विभाजन का न होना आदि के कारण इन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी कुछ थोडे से श्रम सघ व्यवस्थित थे जैसे जमशेदपुर श्रम सघ, बबई सूती वस्त्र सघ, गिरनी कामगर मध्य मडल बबई आदि। इसके सदस्यों की सख्या कई हजारों से अधिक थी। सन् 1922 मे तीन महत्वपूर्ण सगठनो की स्थापना हुई—श्रमिक समिति, आल इडिया रेलवे फेडरेशन तथा आल इडिया पोस्ट एंड टेलीग्राफ मैन फेडरेशन। 1926 मे मजदूर सघ अधिनियम पास हुआ जिसमे पजीकृत मजदूर श्रमिको को कानूनी स्वीकृति प्रदान कर दी गई। भारतीय श्रम सघ के आदोलन के इतिहास में इस अधिनियम का प्रभाव अत्यत महत्वपूर्ण रहा। इसके साथ ही श्रमिको के सघो का पजीयन भी प्रारभ हो गया और श्रम सघो के निर्माण मे तेजी आई। सन् 1926 के बाद श्रम आंदोलनो का नेतृत्व साम्यवादियो के हाथ मे पहुच गया। ये साम्यवादी श्रम संघ आदोलन की आड म अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। सन् 1926 मे श्रम आंदोलन में दो दल हो गए। एक साम्यवादियो का और दूसरा सुधारवादियों का। दोनों दलों में खुला सघर्ष होता रहा और अनेक हडतालें भी हुई। सन् 1928 मे गिरिया में साम्य-

वादियो ने अखिल भारतीय श्रम सघ कांग्रेस पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयास किया। इससे सरकार सतर्क हुई और अनेक साम्यवादियों को गिरफ्तार किया गया तथा उन पर मुकदमा चलाया गया और अनेक साम्यवादी नेताओ को अनेक वर्षों तक कारागार म रहना पडा। श्रमिको की समस्याओ के सुधार की दृष्टि से 1928 मे शाही कमीशन की नियुक्ति की गई। 1929 मे अखिल भारतीय श्रम सघ काग्रेस का दसवां अधिवेशन नागपुर मे हुआ जिसके परिणामस्वरूप आल इडिया ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना हुई। इसने श्रमिको के हितो की रक्षा के लिए अपेक्षाकृत अधिक रचनात्मक नीति अपनाई।

4 **वर्ग चेतना व एकता का युग :** श्रम सघ आदोलन की चौथी अवस्था 1930 से आरभ होती है। जब महात्मा गाधी ने सविनय अवज्ञा आदोलन शुरू किया था तो इस आदोलन को सफल बनाने के लिए नेताओ ने श्रमिको की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। साथ ही मदी के कारण अनेक श्रमिकों को निकाल दिया गया तथा काम पर लगे श्रमिको की मजदूरी मे कटौती की गई। श्रमिको ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और हडताले की, परतु असगठन के कारण उन्हे अधिक सफलता नही मिली। इस अवस्था की प्रमुख बातें इस प्रकार है—(अ) 1931 मे आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रस के कलकत्ता अधिवेशन मे पुन फूट पड गई और देशपाडे तथा खाडे के नेतृत्व म अलग मे इडिया ट्रेड यूनियन की स्थापना की गई जो सन् 1932 मे पुन. अपनी पितृ सस्था म मिला दी गई। (ब) रेलवे मे काम करने वाले श्रमिको ने अपना अलग सगठन बना लिया। (स) 1933 मे नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन नामक नई सस्था का जन्म हुआ। (द) 1938 मे नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन और नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस का विलयन हो गया। (य) 1935 मे देश मे राजनीतिक सुधार लाने के उद्देश्य म एक नया कानून बनाया गया जिसके अनुसार प्रातो को अधिक मात्रा मे राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए। सन् 1965 के कानून के अतर्गत श्रमिको के लिए निर्वाचन क्षेत्र का प्रावधान किया गया और लोकप्रिय सरकार के गठन के पश्चात् श्रम कल्याण सबधी नीतियो का निर्माण किया गया। (र) 1939 मे आल इडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने बबई क्षेत्र म भारतवर्ष द्वारा द्वितीय महायुद्ध के सहयोग प्रदान करने के सबध मे उदासीनता के निर्णय पर उग्र वादियों को एम० एन० राय के नेतृत्व मे इस सगठन से अलग होना पडा। इन लोगो ने इडियन फेडरेशन ऑफ लेबर का निर्माण किया। (ल) 1944 मे भारत सरकार ने यह स्वीकार किया कि आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस और इडियन फेडरेशन ऑफ लेबर के प्रतिनिधि बारी बारी से प्रतिनिधि अतर्राष्ट्रीय सभा मे भाग लें। (व) युद्धकाल मे श्रमिको से अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए सरकार ने प्रतिरक्षा नियम पास कर दिया और सयुक्त सलाह की आवश्यकता को स्वीकार किया तथा कल्याण समितियो की स्थापना की। (श) सन 1944 मे सरकार ने श्रम से सबधित विभिन्न मामलो की जाच करने के लिए श्रम जाच समिति की स्थापना की। (ष) सन् 1946 मे आल इडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस व इडियन फेडरेशन ऑफ लेबर मे प्रतिनिधित्व के मामले को लेकर शक्ति प्रदर्शन हुआ जिसमें आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस की विजय हुई।

सक्षेप मे श्रम सघ आदोलन की चौथी अवस्था की विशेषताए इस प्रकार थी—

(अ) श्रमिको मे एकता और जागरुकता की भावनाओ का अधिक विकास हुआ। (ब) जनता मे श्रम समस्याओ के समाधान के प्रति जागरूकता का विकास हुआ। (स) द्वितीय महायुद्ध के कारण श्रम सघ आदोलन को अधिक सफलता मिली। (द) श्रमिको की दशाओ का अध्ययन करने के लिए पहली बार कल्याण समिति की स्थापना हुई।

5 1947 से वर्तमान समय तक भारतीय श्रम आदोलन के इतिहास मे आधुनिक काल स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद प्रारभ होता है। 15 अगस्त 1947 को काग्रेस ने शासन-सूत्र अपने हाथ मे लिया लेकिन स्वतन्त्रता के बाद देश में बड़ी भारी मात्रा म हडतालें हुई। इसका कारण यह था कि श्रमिक मजदूरी और कार्य की अच्छी दशाए प्राप्त कर सकेगा, पूरी नहीं हो सकी। श्रमिको की समस्याओ पर नियत्रण पाने के उद्देश्य से 1947 मे औद्योगिक वाद विवाद अधिनियम पारित किया गया जिसमें भारत सुरक्षा कानून को हडताल सबधी धाराए सम्मिलित की गई। सन् 1948 में पुनः एक विभाजन हुआ। समाजवादी अलग हो गए और उन्होंने हिन्दू मजदूर सभा के नाम से अपना एक अलग सगठन बनाया। 1949 मे प्रो० के० टी० शाह और श्री एम० के० बोस ने सयुक्त श्रम सघ काग्रेस के नाम से अलग सगठन की स्थापना की। अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी सगठन पर समाजवादियो का अधिकार हो गया और इसका परिणाम यह हुआ कि श्री जयप्रकाश नारायण उसके सभापति हुए। श्री हरिहरनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में रेलवे कर्मचारियो का एक और सगठन बना जिसका नाम भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी सगठन रखा गया।

श्रम और पूजी के सबधो मे एक नया मोड 1967 के चुनाव के बाद आया जब बहुत से राज्यो में काग्रेस सरकार हार गई। फलत कई राज्यो में मिली जुली सरकारें बनाई गई जिनमे साम्यवादी दक्षिण पथी एव वाम पथी दोनों ही सम्मिलित थे और श्रम के सबध मे इनकी नीति अत्यत उग्र थी। पश्चिमी बगाल में सरकार ने श्रमिकों को अत्यत उत्तेजित किया जिसके परिणामस्वरूप अग्निकाड, गोलाबारी इत्यादि हिंसात्मक घटनाओ के परिणामस्वरूप 1967 और 1968 मे पश्चिमी बगाल में अनेक उद्योग बद हो गए और जन-जीवन भी सकट मे पड गया। इसी समय से श्रमिकों ने अपनी माग मनवाने की एक उग्र प्रणाली को काम मे लाना शुरू किया जिसे घेराव कहते हैं। श्री वी० वी० गिरि का मत है कि यह प्रणाली श्रम आदोलन के लिए बडी घातक है। घेराव के अतगत मजदूर एकत्र होकर कारखाने के अधिकारियो को घेर कर कैद कर लेते हैं और इस प्रकार उन्हें बाध्य करते हैं कि उनकी मागें मान ली जाए।

भारत म मजदूर सघ आदोलन की प्रगति की जानकारी अगले पृष्ठ की तालिका मे दी जा रही है—

विवरण	मजदूर सघ		
	1961-62	1976	1979
रजिस्टर पर सघो की सख्या	11,416	22,417	33,023
रिटर्न भेजने वाले सघो की सख्या	6,954	8,919	6,655
रिटर्न भेजने वाले सघो की सदस्यता (हजार मे)	3,960	6,021	4,661

इस तालिका के आकडो से स्पष्ट होता है कि श्रम सघों ने तीव्र उन्नति की है जिसके प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

(अ) श्रमिक अपने रहन-सहन के स्तर को ऊचा करने के लिए अपनी आय को सगठित करने की आवश्यकता अनुभव करने लगे।

(ब) राजनीतिक दल श्रम सघो पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए होड करने लगे।

(स) केंद्रीय और राज्य सरकारो ने सामुदायिक सौदे की सुविधा का प्रयोग बढाने के लिए कई कानून पास किए।

भारतीय श्रम सघवाद की वर्तमान स्थिति

हमारे देश के श्रमिक सघ दो प्रकार के सगठनो से सबधित हैं—(अ) राष्ट्रीय फेडरेशन, (ब) श्रमिक सघो के फेडरेशन। सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अखिल भारतीय स्तर पर निम्न चार सघ है—

1. भारतीय राष्ट्रीय श्रम सघ काग्रेस या इटक (INTUC) : यह सस्था काग्रेसी विचारधारा के अतर्गत है। इसके प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार हैं—(अ) समाज का निर्माण करना जिसमे प्रत्येक सदस्य को अपने विकास के लिए पूर्ण अवसर मिले, (ब) श्रमिकों को पूर्ण रूप से सगठित करने का प्रयास करना, (स) श्रमिकों की कार्य-दशाओं व उनके जीवन-स्तर मे सुधार करना, (द) समाज व उद्योग मे श्रमिकों के स्तर को ऊचा उठाना, (य) श्रमिकों की कार्यक्षमता मे वृद्धि करना, श्रमिकों मे उद्योग व समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना पैदा करना, (र) पारस्परिक वार्ता द्वारा औद्योगिक संघर्षों को सुलझाना।

जून 1972 मे इटक का एक भाग टूटकर अलग हो गया और राष्ट्रीय श्रम सगठन के नाम से स्वतत्र रूप से काम करने लगा।

2. अखिल भारतीय श्रम सघ कांग्रेस (AITUC) : यह साम्यवादियो के हाथ में है। इस सगठन की स्थापना सन् 1920 मे हुई, इसका प्रमुख उद्देश्य देश के समस्त श्रम सघो के कार्यों मे सामजस्य स्थापित करना, भारतीय श्रमिकों के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक हितो की रक्षा करना है।

3 हिंदू मजदूर सभा या हिमस (HMS) : यह समाजवादियो द्वारा 1948 मे स्थापित की हुई सस्था है। इस सस्था का प्राथमिक उद्देश्य समाजवादी राज्य की स्थापना करना है ताकि श्रमिको को अपने मानसिक, शारीरिक व आध्यात्मिक विकास के लिए पूर्ण अवसर प्राप्त हो जाए।

4 सयुक्त श्रम संघ कांग्रेस या यूटक (UTUC) अखिल भारतीय श्रम सघ कांग्रेस के कुछ असतुष्ट नेताओं ने 30 अप्रैल 1948 में एक नवीन सगठन को जन्म दिया जिसका नाम है सयुक्त श्रम सघ कांग्रेस। इसका मूल उद्देश्य राजनीति से अलग रहकर श्रमिको के हितो की रक्षा करना है।

अन्य सघ इन चार सगठनो के अतिरिक्त निम्नलिखित सगठन 1950 के उपरात स्थापित हुए

1 जनसघ द्वारा सन् 1955 मे भारतीय मजदूर सघ की स्थापना की गई।

2. सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी द्वारा सन् 1965 मे हिंद मजदूर पचायत की स्थापना की गई।

3 स्वतंत्र पार्टी तथा द्रविड मुनेत्र कडगम (DMK) द्वारा अपने-अपने सघ स्थापित किये गए।

4 इनके अतिरिक्त निम्नलिखित राष्ट्रीय सगठन और कार्य कर रहे हैं—(i) अखिल भारतीय बेक कर्मचारी सघ, (ii) नेशनल फेडरेशन आफ पोस्ट एड टेलीग्राफ वर्कर्स, (iii) आल इडिया वर्कर्स एसोसिएशन, (iv) नेशनल फेडरेशन आंफ इडियन रेलवेमैन। ये सघ केंद्रीय स्तर पर सबद्ध नही हैं।

5 सन् 1962 मे एक नए सगठन की स्थापना की गई जिसका नाम कान्फेडरेशन ऑफ फ्री यूनियस (CFTU) है। इसके बनाने मे इटरनेशनल कान्फेडरेशन ऑफ क्रिश्चियन ट्रेडयूनियन ने काफी रुचि दर्शायी तथा इसे स्वतत्र पार्टी का समर्थन प्राप्त था।

6 सन् 1970 में एटक से पृथक् एक नया श्रम-सघ गठित किया गया जिसे सेंटर आफ इडियन ट्रेड यूनियस (CITU) कहा जाता है।

भारत का श्रम सघ आदोलन दो अतर्राष्ट्रीय सगठनों से सबद्ध है (i) वर्ल्ड फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियस (WFTU) जो 1946 में स्थापित हुई थी, तथा (ii) इटरनेशनल कान्फेडरेशन आफ फ्री ट्रेड यूनियस (ICFTU) जो सन् 1949 म स्थापित हुई थी। इन राष्ट्रीय सगठनो मे भारत विकासशील देशो तथा विशेषकर एशियाई श्रम का प्रतिनिधित्व करता है।

भारत म श्रमिक सघ के सबध मे निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

1 देश की सपूर्ण श्रम शक्ति का लगभग 24% ही श्रमिक सघ सगठन का सदस्य है।

2. उद्योग के अनुसार श्रम सघो की सदस्यता मे पर्याप्त अतर है। खनन उद्योग में समस्त श्रमिकों का 51%, व यातायात तथा सचार प्रतिष्ठानो में, निर्माण उद्योगो, बिजली तथा गैस प्रतिष्ठानों में सपूर्ण श्रमिकों का 37-39% श्रम सघों का सदस्य है। श्रम सघों की सदस्यता निम्नलिखित उद्योगों में अधिक है—तबाकू निर्माण (75%),

अखिल भारतीय सगठनों की सदस्यता

क्र०स०	सगठन का नाम	सम्बद्ध श्रम सघ					सदस्य (सख्या दस लाख मे)				
		1958 ब	1960 ब	1966	1968	1978	1958 ब	1960 ब	1966	1968	1978
1	INTUC	727	860	1305	1165	3135	0 91	1 05	1 42	1 33	3 07
2	AITUC	807	886	808	1008	2879	0 54	0 51	0 44	0 64	2 64
3	HMS	151	190	258	248	635	0 19	0 29	0 44	0 46	1 14
4	UTUC	182	229	170	216	469	0 08	0 11	0 09	0 13	0 36
	कुल जोड	1867	2165	2541	2637	7118	1 72	1 96	2 39	2 56	7 21

लोहा इस्पात (63%), कोयला (61%), सूती वस्त्र (56%), बैंक (51%), बीमा (33%) बागान (28%)।

3 सभी राज्यो मे श्रमिक सघ आदोलन का विकास एक समान नही हुआ है। बबई मद्रास, विहार, उत्तर प्रदेश, आध्रप्रदेश, पश्चिमी बगाल व केरल राज्यो मे इसका विशेष रूप से विकास हुआ है।

4 मजदूर सघ आदोलन काफी फैल गया है। इसकी जडें शनै शनै मजबूत होती जा रही हैं और यह स्थायी रूप धारण कर रहा है। किंतु अन्य देशो की तुलना में भारतीय श्रमिक सघ बहुत निर्बल है और श्रमिक इसके सदस्य नही बने हैं।

5 बाहरी नेतृत्व का प्रभाव कम हो रहा है। मजदूर स्वय अपना नेतृत्व करने लग हैं।

6 समाज का दृष्टिकोण मजदूर सघो के प्रति क्रमश बदल रहा है। पहले इनके प्रति जन साधारण की अवधारणा खराब थी। उन्हे अशाति उत्पन्न करने वाली सस्थाए ही समझा जाता था। परतु अब इन सघो के प्रति जनता की सहानुभूति उत्पन्न हो रही है।

7 श्रमिको और श्रमिक सघो की रुचि राजनीति मे क्रमश बढ रही है। स्थानीय और केंद्रीय चुनाव तथा अन्य राजनीतिक कार्यों मे मजदूरो का योगदान बढ रहा है। आज के मजदूर मे राजनीतिक चेतना बहुत अधिक है।

भारतीय श्रमिक सघ आदोलन की समस्याए, कठिनाइया व दोष

(भारत मे श्रमिक सघ आदोलन की धीमी प्रगति के कारण)

यद्यपि हमारे देश मे द्वितीय महायुद्ध से अब तक श्रमिक सघ ने काफी उन्नति कर ली है फिर भी इसके विकास के मार्ग मे कुछ बाधाए हैं, कुछ दोष हैं और कुछ त्रुटिया है जिससे श्रमिक सघ ने उतनी प्रगति नही की जितनी अपेक्षित थी। श्री राबर्ट्स के शब्दो मे 'भारत मे श्रमिक सघ आदोलन इतना सुदृढ नही है जितना इसे होना चाहिए।' सच बात तो यह है कि भारतीय श्रमिक सघ आदोलन के तीव्र विकास मे आरभ से ही अनेक बाधाए व कठिनाइया रही हैं जिनका हम दो शीर्षको के अतगत अध्ययन कर सकते हैं—(अ) आतरिक बाधाए, (ब) बाहरी बाधाए।

(अ) आतरिक बाधाए

1 श्रमिकों की अशिक्षा एव अज्ञानता भारतीय श्रमिक अशिक्षित एव अज्ञानी हैं। इसलिए वे अपनी समस्याओ को समझने का प्रयत्न नही करते और भाग्य पर विश्वास करते हुए अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न नही करते। ऐसी स्थिति मे हम श्रम सघो के तीव्र विकास की आशा कैसे कर सकते हैं?

2 श्रमिकों की निर्धनता : भारतीय श्रमिको को बहुत कम वेतन मिलता है। इस कारण हमारे अनेक श्रमिक तो चदा ही नहीं दे पाते। आवश्यक धन राशि के अभाव मे श्रमिक सघ प्रगति नही कर सकते।

3. **श्रमिको की एकता मे कमी** श्रमिको मे जाति, धर्म और भाषा की क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती है जो सगठन के मार्ग मे बाधक है।

4. **श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति** :—भारतीय श्रमिक स्वभाव से ही प्रवासी हैं। चूकि श्रमिक औद्योगिक केंद्रो मे स्थायी रूप से निवास नही करते इसलिए वे श्रम सगठनो मे रुचि • ही लेते।

5. **उचित नेतृत्व का अभाव** : भारत मे श्रमिक सघो के सचालन करने वाले लोग श्रमिक नेता न होकर बाहरी व्यक्ति हैं जिनका निजी स्वार्थ व विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। श्रम समस्याओ मे उनकी रुचि नही होती। वे दलगत राजनीति मे फसे हुए श्रमिको का गलत पथप्रदर्शन करते हैं।

6. **श्रमिकों में लोकतत्र की भावना का अभाव** भारतवर्ष मे श्रम सघो मे लोकतत्र की भावना का अभाव पाया जाता है। प्राय बड़े-बड़े निर्णय श्रमिको की राय बिना ही ले लिये जाते हैं। इसलिए इन सघो मे श्रमिको का पूर्ण सहयोग नही प्राप्त होता।

7. **सघों का छोटा आकार** श्री वी० वी० गिरि के अनुसार "भारत मे श्रमिक सघ आदोलन के अविकसित होने का एक प्रधान कारण अधिकाशत. श्रम सघों के आकार का छोटा होना है।

8. **आंतरिक फूट** भारत मे श्रमिक सघ आदोलन का एक अन्य भारी दोष इनमे आतरिक फूट है। एक उद्योग मे विरोधी आदर्शों मे विश्वास रखने वाले सघ पाये जाते हैं जिनमे आपस मे ही झगडे होते रहते हैं।

9. **रचनात्मक कार्यों का अभाव** भारत मे अधिकाश श्रमिक सघ केवल सघर्षात्मक कार्य करने मे ही व्यस्त रहते हैं। रचनात्मक कल्याण सबधी कार्यों जैसे—शिक्षा, चिकित्सा व मनोरजन आदि की ओर उनका ध्यान अभी नही गया है जिसके अभाव मे श्रमिक सघ श्रमिको को अपनी ओर आकर्षित करने मे असफल रहे।

10. **काम करने की दशाए** • शहरो मे श्रमिको को कारखाने व गृहस्थी के कामो मे इतना व्यस्त रहना पडता है कि सगठन आदि कार्यों मे उन्हें अवकाश नही मिल पाता।

11. **पूर्णकालिक एव वैतनिक अधिकारियों की कमी** : भारतवर्ष मे श्रमिक सघो के सचालन करने वाले श्रमिको की समस्याओ की ओर पूरा ध्यान नही द पाते क्योकि उन्हे न तो इस कार्य के लिए वेतन मिलता है और न ही उनके पास अधिक समय है जोकि इन कार्यों के लिए दे सकें।

(ब) बाहरी बाधाए

1. **मजदूरो से ठेकेदारो का विरोध** भारत मे उद्योगो में भर्ती अधिकतर मध्यस्थो द्वारा होती है। ये मध्यस्थ अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए श्रमिको मे एकता की भावना उत्पन्न नही होने देते और वे सदैव यह प्रयत्न करते हैं कि श्रमिको मे फूट पडी रहे और वे कभी भी सगठित न हो सकें।

2 **मालिकों का विरोध** कारखाने के स्वामी भी श्रम सघो को सहयोग देने के बजाय उनका विरोध करते हैं। वे यह नही समझते कि ये सघ अनुचित हडतालो को रोकने मे कितने सहायक हो सकते हैं।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे श्रमिक सघ आदोलन के दोषो को सक्षेप मे इस प्रकार वर्णित किया गया है—

श्रमिक सघो की अधिकता राजनीतिक मतमुटाव साधनो की कमी एव श्रमिको मे एकता का अभाव आदि भारत मे श्रमिक सघ आदोलन की प्रधान त्रुटिया हैं।

भारत मे श्रम सघ आदोलन को दृढ बनाने के लिए सुझाव
(Suggestions for the Growth of Indian Trade Unionism)

भारतीय श्रमिक सघो को वास्तविक रूप म दृढ और शक्तिशाली बनाना देश क औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक है क्योकि श्रमिको का हित राष्ट्रीय हित से अलग नही है और इन दोनो के हित एक दूसरे के पूरक हैं। अत श्रमिक सघ आदोलन को इस प्रकार से सगठित व विकसित करना है जिससे श्रमिको की यह प्रगति राष्ट्र की प्रगति मे गतिरोधक सिद्ध न हो। राष्ट्र के बिना श्रमिको और श्रमिको के बिना राष्ट्र का अस्तित्व सभव नही है। अत दोनो को ही स्वस्थ और सुखमय रूप मे जीवित रहना होगा और इस काय मे श्रमिक सेवायोजक सरकार और जनता सबको अपना बहुमूल्य योग दान देना होगा।

श्रमिको को शक्तिशाली बनाने के लिए उनको दृढ सगठन को बहुत आवश्यकता है सुदृढ और शक्तिशाली श्रमिक सगठन बनाने के लिए बहुमुखी प्रयत्नो की आवश्यकता है परतु इससे भी पहले यह आवश्यक है कि श्रमिक इस अपना सगठन समझ कर विक सित करने के लिए तन मन धन की बलि दें मालिक इन्हे अपना शत्रु न मानकर एक सहयोगी के रूप मे स्वीकार करें सरकार इन श्रमिक सघो को आर्थिक व नैतिक प्रोत्सा हन दे और जनता का जनमत इन्हे वह बल प्रदान करे जिससे कि समस्त शोषण नीति को अपनाना असभव हो। आधुनिक श्रम सघवाद को सुदृढ बनाने के लिए निम्न लिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1 **उचित नेतृत्व** जहा तक सभव हो श्रम सघो का नेतृत्व मजदूरो से ही आना चाहिए। दुर्भाग्यवश भारतीय श्रम सघो के नेता श्रमिको से न होकर बाहरी व्यक्ति हैं जो श्रम समस्याओ से अनभिज्ञ और अपने ही स्वाथ म प्रेरित होकर काय करते हैं। एक योग्य, परिश्रमी तथा नि स्वार्थी श्रमिक नेता सघ को प्रगति की ओर अग्रसर कर सकता है। अत आवश्यकता इस बात की है कि श्रम सघ आदोलन को राजनीति से दूर रखकर राजनीतिक नेताओ ने उसे मुक्त करके श्रमिको मे से किसी नेता क अधीन कर दें। आन रिक नेतृत्व के विकास के लिए श्रमिक शिक्षा काय क्रम को घनीभूत बनाना होगा और नेताओ को मालिको द्वारा दडित किए जाने स बचना होगा। राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा औद्योगिक सबधो के लिए बठाए गए, अध्ययन दल ने माच 1968 मे प्रस्तुत अपने प्रति वेदन म किसी वधानिक प्रा धार द्वारा बाहरी उन्मूलन के पक्ष म अपना मत नही व्यक्त

किया है। इससे कमचारी नेता के रूप मे आगे आने की दुविधा की चर्चा असहानुभूतिपूण एव विवेकशून्य मालिको द्वारा उत्पीडन के भय के रूप मे की है फिर भी इसने एक तिहाई बाहरी व्यक्तियो का प्रस्ताव किया है जो कि सघ के पदाधिकारी हो सकते है।

2 **शिक्षा का प्रसार** श्रमिक सघो मे शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए ताकि श्रमिको मे व्याप्त रूढिवादिता व सकीणता समाप्त हो जाए और वे श्रमिक सघ आदोलन के महत्व को समझ सक। कवल सामान्य शिक्षा ही नही बल्कि श्रमिक सघो के कार्यों के उचित प्रशिक्षण का प्रबध भी बहुत आवश्यक है। इसस एक ओर उनमे अनुशासन की भावना और दूसरी ओर अधिकारो के प्रति जागरूकता उत्पन्न होगी।

3 **सघो मे एकता** अध्ययन दल 1968 ने भारतीय श्रम आदोलन को प्रभावित करने वाली मुख्य बुराई पारस्परिक प्रतिद्वद्विता की प्रबलता पर दु ख व्यक्त किया है। भारत म विभिन्न श्रम सघो मे आपसी सहयोग की भावना न होकर ईर्ष्या व एक दूसरे को नष्ट करने की भावना विद्यमान है। अत उनमे आपसी सहयोग और एकता की भावना जब तक उत्पन्न नही हो जाएगी तब तक इस आदोलन का विकास सदेहमय है। श्री वी० वी० गिरि का भी यही मत है कि श्रमिक सघ को अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए दढ एव शक्तिशाली होना अनिवाय है अन्यथा पूण समाजवादी प्रजातत्र के आधार पर जो औद्योगिक ढाचा बनाया जा रहा ह वह दढ न हो सकेगा।

4 **वतनिक कमचारियों की नियुक्ति** भारतीय श्रम सघो मे अवतनिक व्यक्ति काम करते हैं फलत वे नियमित रूप से काय नही करते और अपने निवाह के लिए बेईमानी करने से भी नही चकते इस प्रकार की स्थिति श्रमिक सघ आदोलन के विकास मे बाधक सिद्ध होती है। अत प्रत्येक श्रमिक सघ मे सघ के आवश्यक कार्यों को करने के लिए वतनिक कमचारियो का होना बहुत जरूरी है। इन कमचारियो के अतिरिक्त अवतनिक कमचारियो का सहयोग भी लिया जा सकता है।

5 **शत प्रतिशत सदस्यता** एक श्रमिक सघ की सफलता उसके प्रभाव पर निभर हुआ करती है और प्रभाव उनके आकार अर्थात सदस्यो की सख्या पर निभर होता है। सदस्यता के आकार मे कमी के कारण ही भारतीय श्रमिक सघो का प्रभाव कम रहा है और वे सफल नही हो सके हैं अत आवश्यकता इस बात की है कि उद्योग मे काम करने वाले श्रमिक सघ के सदस्य हो तभी एक सब के लिए और सब एक के लिए की भावना पैदा हो सकती है।

6 **एक उद्योग मे एक सघ** एक सुझाव श्री वी० वी० गिरि ने दिया है— 1959 60 मे विवरण भेजने वाले सघो मे से 70% से अधिक ऐसे सघ थे जिनकी सदस्य सख्या 300 से कम थी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि एक ही उद्योग म बहधा कई सघ बन जाते हैं जो एक दूसरे से सघष करते रहते हैं और दूसरा कारण है श्रमिको का सदस्य ही न बनना नियमित चदा न देना। अत वि० वी० गिरी ने यह सुझाव दिया है कि श्रम सघ के भावी दढ निर्माण एव विकास मे एक उद्योग मे एक सघ का सिद्धात अपनाया जाना चाहिए। श्री गिरि का यह सुझाव अच्छा तो अवश्य है लेकिन राजनीतिक दलबंदी के चलते रहते इसका पूण होना कठिन है।

7 **आर्थिक स्थिति को दृढ बनाना** प्रत्येक सस्था का विकास उसकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर हुआ करता है। लेकिन भारतीय श्रम सघो के पास धन की बहुत कमी है। यह समस्या बडी जटिल है। श्रमिक सघो के वित्त का मुख्य स्रोत श्रमिको स मिलने वाला चदा है। सदस्यों को नियमित रूप से चदा देना चाहिए और यह राशि इतनी अवश्य होनी चाहिए कि सघ का साधारण काय सुचारु रूप से चल सके। 1968 क श्रम अध्ययन दल ने यह सिफारिश की कि प्रत्येक श्रमिक को अपनी मजदूरी का कम स कम एक प्रतिशत जो कि कम से कम एक रुपया हो मासिक चदे के रूप म दे देना चाहिए।

8 **लाभ कोषो की स्थापना** प्रत्येक श्रम सघ को लाभ कोषो की स्थापना करनी चाहिए और उनकी धन राशि स श्रमिको को बीमारी दुघटना बेरोजगारी व मृत्यु के समय आर्थिक एव मामाजिक सुविधाए प्रदान की जानी चाहिए। भारत म हमदाबाद सूती वस्त्र श्रम सघ ने लाभ कोषो की स्थापना कर रखी है और यह उनकी आय का लगभग 60 से 70% अश इसी कोष मे जमा करके श्रमिको क कल्याण प व्यय करता है।

9 **हडताल कोषो की स्थापना** भारतीय श्रमिक निधन हैं जिनका हड ाल की अवस्था म आय के साधन बद हो जा के कारण बहुत बडी कठिनाई का सामना करना पडता है जिसमे हडताल को लबी अवधि तक नही चलाया जा सकता। प्राय ऐसा देखा गया है कि लबी अवधि तक हडताल चलने के बाद र्थाभाव के कारण श्रम सघो को ही अत मे झुकना पडता है। अत हडताल कोषो की स्थापना करके हडताल को दीघकाल तक जारी रख कर सघ अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सफलता प्राप्त कर सकता है। इन कोषो का प्रयोग हडताल की अवस्था मे निधन श्रमिको के लिए आराम की व्यवस्था पर किया जाना चाहिए।

10 **उद्योगपतियों के अत्याचारो पर नियत्रण** सघो को और मजदूर नेताओ को मालिको के उत्पीडन का शिकार होना पडता है जिसका नियत्रण आवश्यक है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने एक उपयोगी सुझाव दिया है। उनका कथन है कि भारत म भी एक ऐसा अधिनियम बनना चाहिए जिसके अनसार यदि मिल मालिक सघो के कार्यों म हस्तक्षप करते हैं या मजदूरो कायकर्ताओ को आतकित करते हैं तो उन्हें दडित किया जाना चाहिए। परतु कठिनाई तो यह है कि यह सिद्ध करना कठिन है कि मजदूरो को आतकित किया गया है या उन पर अत्याचार हुआ है।

11 **श्रमिकों मे उत्तरदायित्व की भावना** श्रम सघो को तब तक सफलता नही मिल सकती जब तक कि स्वय श्रमिक इस काय म अपने उत्तरदायित्व का अनुभव नही करेंगे। अत श्रम सघो को चाहिए कि वे श्रमिको मे उनके अधिकारो और कतव्यो के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जागृत करें। इससे श्रमिको के पारस्परिक सबध अच्छे होगे और वे सघ के कायक्रमो मे सक्रिय रूप म भाग लेंगे।

12 **रचनात्मक कार्यों पर बल** आधुनिक समय मे इस बात पर ध्यान देना **अत्यत आवश्यक है कि श्रमिक सघ विध्वसकारी नीति को त्यागकर रचनात्मक कार्यों पर अधिक बल दें। पश्चिमी बगाल में श्रमिको और** नेताओ की विध्वस नीति का

परिणाम न केवल मजदूरो को बल्कि पूरे राष्ट्र को भोगना पडा है। सैकडों उद्योग समाप्त हो गए हैं और हजारो मजदूर बेरोजगार हो गए हैं। अत श्रमिक सघो को जनमत और सेवायोजको की महानुभूति प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि सघ श्रमिको के कल्याणकारी कार्य को प्राथमिकता दें और श्रमिको के हितार्थ ही काम करें।

13 आंदोलन से राजनीति को अलग रखना : भारत मे जो भी श्रम सघ हैं वे किसी न किसी राजनीतिक दल से प्रभावित हैं। इससे अनेक हानियों की आशका रहती हैं। एक तो प्रजातांत्रिक विकास मे बाधा पडती है और दूसरे, श्रमिको के हितो की रक्षा नही हो पाती। अत श्रमिक सघ के नेताओ को चाहिए कि अपने को तथा श्रमिको को हर प्रकार के राजनीतिक प्रभावो से अलग रखें। इन नेताओ का उद्देश्य चुनाव जीतना नही होना चाहिए बल्कि श्रमिकों के आर्थिक, नैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव सास्कृतिक जीवन को प्रगतिशील और सुखमय बनाना होना चाहिए।

14 अन्य सुझाव : (अ) प्रत्येक श्रम सघ मे कम से कम एक तकनीकी विशेषज्ञ होना चाहिए जो सघ से सबधी उद्योग का सभी प्रकार का तकनीकी ज्ञान रखता हो।

(ब) औद्योगिक प्रबध मे श्रम सघ के प्रतिनिधियो को भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए।

(स) जनता को श्रमिको की समस्याओ मे रुचि लेनी चाहिए और श्रमिको को उचित सहयोग और समर्थन दिया जाना चाहिए।

(द) श्रमिको मे सहकारिता की भावना उत्पन्न की जानी चाहिए ताकि वे मिल कर कार्य सकें और एक दूसरे की सहायता कर सकें।

(य) देश मे इस प्रकार का वातावरण बनाया जाना चाहिए जिससे श्रमिक सघो को घृणा की दृष्टि से न देखकर सहानुभूति की दृष्टि से देखें और श्रम सघ के आदोलन के विकास मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न करें।

(र) श्रम पत्रिका का प्रकाशन होना चाहिए जिसके द्वारा श्रम समस्याओ का समस्त श्रमिको और समाज को ज्ञान कराया जा सके।

भारतीय श्रम सघ आदोलन की दृढता का समर्थन करते हुए श्री वी० वी गिरि ने लिखा है : "श्रमिकों के हितो की रक्षा करने व उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए दृढ श्रम सघ आदोलन नितात आवश्यक है। यदि श्रम सघो मे इन उद्देश्यो को पूरा करने की क्षमता और दृढता नहीं है तो भारत मे पूर्ण समाजवादी प्रजातत्र के आधार पर बनाये जाने वाले औद्योगिक ढाचे की नीव दृढ न होगी और राज्य अपने श्रेष्ठतम आदर्शों के होते हुए भी श्रमिक वर्ग को मौलिक अधिकार देने मे असमर्थ रहेगा।

श्रम सघ और पचवर्षीय योजना

प्रथम योजना में द्विपक्षीय सयुक्त विचार-विमर्श प्रणाली प्रारभ करने का विचार किया गया। इसके अतर्गत शिक्षा का विस्तार करना और श्रम सघो का विकास अनिवार्य बताया गया। योजना में कहा गया कि "श्रमिको को सगठित करने, सामूहिक सौदेबाजी और सहयोग का अधिकार सबसे पहले स्वीकार किया जाना चाहिए। इसे

अधिकार को आपसी सहयोग की दृष्टि से स्वीकार किया जाय। श्रम सघ को कार्य करने के लिए सहायता दी जानी चाहिए तथा उसे औद्योगिक तत्र का ही भाग समझा जाना चाहिए।[1] योजना ने इस बात को स्वीकार किया है कि सगठन श्रमशक्ति से ही सामूहिक सौदेबाजी सफल हो सकती है। और श्रम सघ एव नियोक्ता सघ मिलकर योजनाओ को क्रियान्वित करने मे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कहा गया कि "समाजवादी समाज की स्थापना के लिए औद्योगिक प्रजातत्र का होना अनिवार्य है।"[2] 'श्रमिको के हितो की रक्षा करने तथा उत्पादन के लक्ष्यो की पूर्ति करने के लिए श्रम सघ बनाना एव श्रमिको के हितो की रक्षा करना अनिवार्य है।[3] श्रम सघो को सशक्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी आर्थिक परिस्थिति मजबूत हो। यह तभी सभव है जबकि सदस्यो एव अन्य आतरिक साधनो से पर्याप्त धन प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त विवादो का निपटाने के लिए समझौता प्रणाली एव ऐच्छिक पच-निर्णय पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। औद्योगिक विवाद का निर्णय करने के लिए सयुक्त समझौता प्रणाली महत्त्वपूर्ण होनी चाहिए। श्रम सघ निम्न प्रकार के निर्णय लेने के लिए स्वतत्र होने चाहिए—(1) कार्यभार निश्चित करना, (2) बढे हुए कार्यभार के लिए मजदूरी मे वृद्धि का निर्धारण करना (3) नयी मशीन लगाने से बेरोजगार हुए श्रमिको को रोजगार प्रदान करने मे सहायता देना और (4) मशीनो के पुरानी होने तथा घिस जाने पर उनके पुनर्स्थापन की सीमा निर्धारित करना।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे श्रम सघो के क्रियाकलाप और विचारो की स्वतत्रता पर बल दिया गया जिससे बदलती हुई परिस्थिति मे यह सघ अधिक सफल हो सके। श्रमिको द्वारा प्रबध, सहयोग तथा सहभागिता पर भी जोर दिया गया। योजना ने यह निर्णय लिया कि अनुशासनपूर्वक कार्य करने पर श्रम सघ स्वस्थ एव विकसित होगे। निष्कर्ष मे औद्योगिक तथा आर्थिक प्रशासन मे मुख्य भूमिका निभाने के लिए श्रम सघ को प्रोत्साहित किए जाने चाहिए।

चतुर्थ व षष्ठम पचवर्षीय योजना मे कहा गया है कि "श्रम सघ अपने सदस्यो को न केवल उचित वेतन दिलाने तथा कार्य की दशा मे सुधार करने के लिए आवश्यक कार्य करें वरन राष्ट्रीय विकास मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करें।'

पचम पचवर्षीय योजना मे श्रम सघो को अधिक मजबूत बनाने तथा उन्हें सृजनात्मक कार्यों मे लगाने का प्रयत्न किया गया। परिणामस्वरूप श्रम सघ औद्योगिक क्षेत्र मे अपना प्रभाव जमा चुका है। श्रमिक भी अपने अधिकार के प्रति जागरूक हो गए है। अब न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण कृषि श्रमिको के लिए भी कर दिया गया है। प्रबध आदि मे श्रमिक सहभागिता श्रमसघो मे अनुशासन आदि पर जोर दिया गया। यद्यपि

1 The First Five Year Plan, 1951, p 593
2 Ibid, 1958 p 572
3 Ibid, p 572,

पहले की अपेक्षा श्रमसघ अधिक स्थायी हैं किंतु अभी तक नेतृत्व पूर्ण रूप से श्रमिको का नही है।

भारत और इग्लैंड के श्रमिक सघ आंदोलन की तुलना
(Comparison between British and Indian Trade Union Movement)

दोनो देशो के श्रमिक सघो की तुलना से पहले इन राष्ट्रो की पृष्ठभूमि पर ध्यान देना आवश्यक है। इग्लैंड एक विकसित औद्योगिक राष्ट्र है जहा पर सभी लोग रोजगार मे लगे हैं फलत: श्रमिको की पूर्ति माग की तुलना मे अधिक नही है जबकि भारत एक अर्द्धविकसित राष्ट्र है जहा का औद्योगिक विकास अभी पूर्णरूपेण नही हुआ है। जनसख्या वृद्धि की विकट समस्या होने के कारण यहा श्रमिको की पूर्ति माग की तुलना मे बहुत अधिक है। फलत: इग्लैंड के श्रमिको की आय काफी अधिक है। इसमे वहा के लोगों का स्वस्थ्य व रहन-महन का स्तर उच्च है। इसके विपरीत भारतीय श्रमिको को कम पारिश्रमिक मिलने के कारण उनके रहन सहन का स्तर निम्न है। इन्ही मौलिक एव आधारभूत विभिन्नताओं के साथ ही साथ श्रम सगठनो की रचना मे भी कई विभिन्नताए हैं। भारत और इग्लैंड के श्रमिक सघ आदोलन की तुलना अनेक आधारो पर की जा सकती है, जैसे—

1 **कार्य करने की परिस्थितिया** भारत तथा इग्लैंड के श्रमिक सघ के कार्य की परिस्थितिया अलग-अलग हैं। इग्लैंड औद्योगिक राष्ट्र होने तथा श्रमिको की कम पूर्ति होने के कारण वहा श्रमिको को अधिक महत्त्व प्राप्त है। श्रमिको को उच्च मजदूरी प्राप्त होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति श्रेष्ठ है परतु भारत की स्थिति इसके विपरीत है अर्थात् श्रमिको की मजदूरी व जीवन-स्तर दोनो ही नीचे हैं। जिससे भारतीय श्रमिक सगठनात्मक कार्यों मे विशेष रुचि नही लेता।

2 **सगठनात्मक आधार** इग्लैंड मे श्रमिक सघो का विकास दस्तकारी श्रणियो (Crafts Guilds) मे मिला। फलत ये मुख्यत दस्तकारी के आधार पर आयोजित है। फलत. इनका स्वरूप मुख्य रूप स स्थानीय है।

3 **सामाजिक सुरक्षा** भारत मे इग्लैंड की तुलना मे सामाजिक सुरक्षा की सुविधाए काफी पिछडी हुई हैं। इग्लैंड के जीवन का हर क्षत्र सुरक्षित है। श्रमिको को अपने और अपने परिवार की कोई चिंता नही रहती है जिमसे श्रमिक सगठनात्मक कार्यों में विशेष रुचि लेत हैं, परतु भारत मे सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि स श्रमिको का जीवन सुरक्षित नही है। भारत मे अभी एक तरह से सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमो का श्रीगणेश मात्र हुआ है।

4 **शिक्षा :** इग्लैंड के श्रमिक सघ का प्रत्येक सदस्य शिक्षित है जिमसे उनमे अधिकार और कर्त्तव्यो के प्रति बहुत जागरूकता पाई जाती है। उनम अनुशासन की भावना होती है। फलतः वहा के श्रमिक सघो का स्वाभाविक विकास हुआ है। इसके विपरीत भारतीय श्रमिक सघो के अधिकाश सदस्य अशिक्षित हैं। अभी तक इनमे शिक्षा का पूर्ण प्रसार नहीं हो पाया है। फलत यहा के श्रमिक अपने कर्त्तव्यो और अधिकारों के

प्रति जागरूक नही हैं। इन सभी कारणो से भारत का श्रमिक सघ सुदृढ नही है।

5 **स्वभाव** यद्यपि इग्लड की सरकार द्वारा प्रारभ मे कई बाधाए उत्पन्न की गई लेकिन फिर भी श्रमिको के क्रातिकारी स्वभाव के कारण श्रमिक सघ का पर्याप्त विकास हुआ। जबकि भारतीय श्रमिक सघ अपेक्षाकृत अधिक समन्वयवादी है।

6 **नेतत्व** भारत और इग्लैंड के श्रमिक सघो मे नतृत्व की दृष्टि से भी पर्याप्त विभिन्नता है। इग्लड के श्रमिक सघो का नेतृत्व प्राय श्रमिक वग से ही हुआ है परतु भारत मे श्रमिक सघो का नतृत्व बाहरी शक्तियो के द्वारा हुआ। जिनका मुख्य उद्देश्य श्रमिको क शोषण करके अपने राजनीतिक स्वार्थो की पूर्ति करना।

7 **आर्थिक दशा** श्रमिक सघो की आर्थिक स्थिति काफी मजबूत है। उच्च आय प्राप्त होने के कारण श्रमिक सघो को चदे तथा दान दते रहते हैं। परतु भारतीय श्रमिको की आर्थिक दशा काफी दयनीय है। उनकी आय इतनी कम है कि सघ के चदे भारस्वरूप लगने लगते हैं।

8 **महासघ** भारतीय श्रमिक कई महासघो मे बटा हुआ है और प्रत्येक महा सघ की विचारधारा और कायविधि राजनीतिक दल की विचारधारा से सबधित है परतु इग्लड मे श्रमिक महासघ वहा की लेबर पार्टी से सबधित रहते हैं। फलत श्रमिक आदो लन मे स्थिरता और समरूपता का विकास होता है।

9 **औद्योगिक विवादो का निबटारा** इग्लड के महासघो मे सामूहिकता तथा एकता अधिक है फलत वहा के औद्योगिक विवादो को महासघो के द्वारा निबटाया जाता है। जिसमे श्रमिको के हितो की हमेशा रक्षा होती है। श्रमिक सघो के मध्य पारस्परिक प्रतिस्पर्धा नही होती जबकि भारत मे प्राय व्यक्तिगत स्वार्थ के आधार पर निणय लिए जाते है। भारतीय श्रमिक सघ विभिन्न राजनीतिक वर्गों के शिकजे म हैं जिससे सदव इनक मध्य फूट की स्थित बनी रहती है। फलत इन्हे घोर प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करना होता है

10 **श्रमिकों की स्थिरता** भारत और इग्लड के श्रमिक सघ श्रमिको की स्थिरता की दृष्टि से भी पूणत भिन्न हैं। भारतीय श्रमिक प्रवासी प्रवृत्ति के हैं जिससे एक स्थाई औद्योगिक श्रमिक सघ नही गठित हो पाता। जबकि इग्लड म स्थायी श्रमिक वग पाया जाता है। अत वे अपने सगठनात्मक कार्यो को महत्त्व देत हैं जबकि भारतीय श्रमिक अपने सगठनात्मक कार्यो के प्रति काफी उदासीन और उस पर्याप्त महत्त्व नही देते।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर हम यह कह सकते है कि इग्लड की तुलना मे भारतीय श्रमिक सघ आदोलन अपनी प्रारभिक अवस्था म है। हा यह अवश्य कहा जा सकता है कि जैसे जैसे भारत का औद्योगिक विकास हो रहा है साथ ही इसका भी विकास हो रहा है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग और श्रम संघ
(National Commission on Labour and Trade Union)

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने श्रम सघो के विकास के लिए अनेक सिफारिशें दी हैं। श्रम सघ संगठन के सबध मे आयोग ने सिफारिश की कि कला-व्यवसाय सघ के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और इन्हे औद्योगिक सघों मे सम्मिलित कर दिया जाना चाहिए साथ ही सेंटर-कम इडस्ट्री (Centre Cum Industry) और नेशनल इण्डस्ट्रीयल फेडरेशन (National Industrial Federation) की स्थापना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

श्रम सघो के नेतृत्व के सबध मे आयोग ने निम्न सिफारिशें प्रस्तुत की है—

(i) श्रम सघो की कार्यकारिणी (Executive) मे गैर कर्मचारियों को सम्मिलित करने पर कोई प्रतिबध नही होना चाहिए।

(ii) आतरिक नेतृत्व के विकास के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए और इसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा जाना चाहिए।

(iii) भूतपूर्व कर्मचारियो को बाहरी व्यक्तियो के रूप मे नही मानना चाहिए।

(iv) श्रम सघो की कार्यकारिणी मे बाहरी व्यक्तियो को प्रवेश देने के लिए अनुमति सीमा (Permissible Limit)।

(v) आतरिक नेतृत्व को विक्टिमाइजेशन (Victimisation) की सीमा के बाहर रखा जाना चाहिए।

आयोग ने यह भी सिफारिश की कि श्रम सघो के पजीकरण को रद्द कर दिया जाना चाहिए—

(i) पजीकरण के लिए निर्धारित न्यूनतम सख्या (सात) मे कमी हो जाने पर।

(ii) सघ द्वारा अपना वार्षिक प्रत्याय प्रस्तुत न किए जाने पर।

(iii) पजीकरण के रद्द किये जाने की तिथि से 6 माह तक पुन पजीकरण के लिए आवेदन पत्र पर विचार नही करना चाहिए।

(iv) सघ ने दोषपूर्ण प्रत्याय प्रस्तुत किया हो और उन दोषो को निर्धारित समय मे दूर न किए जाने पर।

आयोग की अन्य मुख्य सिफारिश है कि न्यूनतम सदस्यता शुल्क एक रुपया प्रति माह कर देना चाहिए।

परीक्षा-प्रश्न

1. श्रमिक सघ को स्पष्ट रूप से परिभाषित कीजिए और इसके उद्देश्यों एव कार्यों का उल्लेख कीजिए। श्रम सघ के लाभ और हानिया कौन-कौन स हैं ?
2. भारत मे श्रम सघ के विकास के इतिहास का सक्षिप्त विवरण दीजिए। अथवा भारत में श्रमिक सघ आदोलन के सक्षिप्त इतिहास का वर्णन कीजिए। इसकी

वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए।

3 आपके विचार से एक अच्छे और सफल श्रम सघ की विशेषताए कौन-कौन सी है? श्रम सगठन के मार्ग मे आने वाली मुख्य बाधाए और भारत मे इसके विकास का वर्णन कीजिए।

4 इस देश मे श्रमिक सघ आदोलन की प्रगति को रोकने वाले कौन-कौन से प्रमुख तत्त्व हैं? आप इन बाधाओ को किस प्रकार से दूर करना चाहेगे, जो इस समय विद्यमान हैं? अथवा

भारत मे श्रम सघवाद के विकास में कौन-कौन सी बाधाए है? आप आदोलन को किस प्रकार म मजबूत और सफल बनायेंगे?

5 "श्रम सघवाद" की त्रुटियो और सुधार के उपायो की ओर सकेत करते हुए इसके विकास पर प्रकाश डालिए।

6 भारत म श्रम सघ आदोलन के विकास का सक्षिप्त विवरण दीजिए। क्या यह उसी मजबूती से विकसित हुआ है, जिस मजबूती से अन्य औद्योगिक अग्रणी देशो मे विकसित हुआ है? अगर नही तो कारण दीजिए।

7 "परिवर्तनशील विश्व में श्रमिक सघ आदोलन अपने सगठन के युद्ध पूर्व विचार को अविकार मे नही रख सकता, अगर इसको सफल होना है और कुशलतापूर्वक अपने आदर्शात्मक तथा व्यावहारिक कार्यों को पूरा करना है।"

भारत मे श्रम सघ आदोलन के विकास और वर्तमान प्रवृत्ति के प्रकाश मे इस उक्ति की विवेचना कीजिए।

8 श्रम के हितों की रक्षा करने के लिए तथा उत्पादन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दोनो ही दृष्टिकोण से एक सबल श्रमिक सघ आदोलन की आवश्यकता होती है।'

इस कथन को स्पष्ट कीजिए और भारत में श्रम सघ आदोलन की प्रमुख दुर्बलताओं की ओर सकेत कीजिए। अथवा

यह स्पष्ट किया जा सकता है कि भारत मे सेवायोजक ही प्रस्तावना के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी हो चुका है और भारत मे श्रम सघो मे बाहरी नेतृत्व की निर्यमितता।"

उक्त कथन की विवेचना कीजिए और इस देश मे श्रम सघो की कठिनाइयो का वर्णन कीजिए। अथवा

भारत म श्रम सघवाद जैसा कि अधिकाश अन्य देशो मे, औद्योगिक विकास की उत्पत्ति हो चुकी है।"

इस कथन को पूर्णतया स्पष्ट कीजिए और हमारे देश मे आदोलन की प्रमुख दुर्बलताओ की ओर सकेत कीजिए।

9 "यद्यपि भारत को श्रम अर्थव्यवस्था मे इस समय श्रम सघ आदोलन बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व नही है पर इसमे कोई सदेह नही कि काम की दु:खदायी दशाओ जीवन और शोषण के विरोध मे श्रमिको के लिए यही एक प्रभावी

रक्षक है। इसके विकास के लिए क्षेत्र बहुत अधिक है लेकिन इसम कई बार कठिनाइयो की एक भारी सख्या के द्वारा विघ्न पडा है।"

वाक्याश को स्पष्ट कीजिए और आदोलन की कठिनाइया बताइये।

10 श्रमिक सघ किस प्रकार मजदूरी दर को प्रभावित कर सकते है ? क्या वास्तविक जीवन मे श्रम सघ मजदूरी की दर मे वृद्धि प्राप्त कर सकते है ?

अध्याय 10

औद्योगिक संबंध : औद्योगिक संघर्ष

(Industrial Relations Industrial Disputes)

औद्योगिक सम्बन्ध से तात्पर्य सेवायोजको और श्रमिको के परस्पर सबध तथा व्यवहार से है। वर्तमान समय मे औद्योगिक सबध और सेविवर्गीय प्रबंध को एक दूसरे का पर्याय माना जाने लगा है तथा अनेक विद्वान औद्योगिक सम्बध को श्रम सम्बन्ध (Labour Relations) मानवीय सबध (Human Relations) एव सेवानियोजक-कर्मचारी सम्बन्ध (Employer-Employee Relations) आदि के रूप में प्रयोग करते हैं। औद्योगिक सबध की कुछ प्रमुख परिभाषाए इस प्रकार हैं—

1 टीड एव मेट काफ (Tead and Matcalf) औद्योगिक सम्बन्ध, सेवायोजको और कर्मचारियो की उन पारस्परिक भावनाओ और दृष्टिकोणो का परिणाम है जिसे यह लोग न्यूनतम मानवीय प्रयास, मतभेद एव सहयोग की तीव्र भावना सहित सगठन के सभी सदस्यो के कल्याण को ध्यान मे रखते हुए उपक्रमों के कार्य के नियोजन-पर्यवेक्षण निर्देशन तथा समन्वय के लिए अपनाते हैं।"

2 जूसियस (Jucius) के अनुसार "औद्योगिक सबध प्रयोग कर्मचारियो, सेवानियोजको और सरकार के मध्य अनेको समतल सम्बधो के सन्दर्भ में किया जाता है।"

3 रिचार्ड ए० लेस्टर (Richard A Lester) के अनुसार · "औद्योगिक सम्बन्धो मे विवादग्रस्त उद्देश्यो और मूल्यो के मध्य, अभिप्रेरणा और आर्थिक सुरक्षा के मध्य, अनुशासन और औद्योगिक प्रजातत्र के मध्य, अधिकार एवं स्वतत्रता के मध्य, सोदेबाजी एव सहयोग के मध्य कार्यात्मक हल प्राप्त करने के प्रयत्नो को सम्मिलित किया जाता है।

4 जान डनलप (John Dunlop) औद्योगिक समाज निश्चित रूप से औद्योगिक सम्बधो का निर्माण करते हैं जिन्हें कर्मचारियो प्रबधको और सरकार के मध्य अन्त सम्बध की सज्ञा दी जा सकती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओ के अध्ययन से स्पष्ट है कि औद्योगिक क्षेत्र मे औद्योगिक सम्बधो से आशय उन सम्बधो से है जो सेवायोजको, प्रबधको, कर्मचारियो या उनके सघों तथा सरकार के मध्य विद्यमान है।

औद्योगिक सम्बधो को ठीक करने की समस्या औद्योगिक सघर्षों की समस्या के कारण ही उत्पन्न होती है।

औद्योगिक सघर्ष का अर्थ औद्योगिक सघर्ष पूजीवादी अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता है। औद्योगिक सघर्ष से तात्पर्य सेवायोजको और श्रमिको के बीच होने वाले मतभेदो से है जिनके परिणामस्वरूप हडतालें, तालाबदी, काम की धीमी गति, घेराव तथा अन्य इस प्रकार की समस्यायें उठ खडी होती है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दो मे, "पूजीवादी उद्योग के विकास ने, जिसका अर्थ उत्पत्ति के साधनो पर थोडे से साहसियो के वर्ग का नियत्रण होना है विश्व भर मे प्रबध और श्रमिक के बीच सघर्ष की बडी समस्या को हमारे सम्मुख ला दिया है।"[1] औद्योगिक अशाति, औद्योगिक विवाद व श्रम सघर्ष के ही पर्यायवाची हैं।

भारत में औद्योगिक सघर्ष की ऐतिहासिक समीक्षा पाश्चात्य देशो की तुलना मे भारतवर्ष मे औद्योगिक विकास काफी विलब से शुरू हुआ। अतः यह स्वाभाविक है कि औद्योगिक सघर्ष भी इसके बाद से ही प्रारभ हुए। भारतवर्ष मे औद्योगिक सघर्ष के इतिहास को हम निम्नलिखित भागो मे विभाजित करके अध्ययन कर सकते है—

1 **प्रारभिक अवस्था** भारतवर्ष मे औद्योगिक विकास के प्रथम चरण मे औद्योगिक सघर्ष की समस्या नही थी क्योकि उद्योगपति सगठित और शक्तिशाली थे और श्रमिक सगठित नही थे। 19वी शताब्दी मे औद्योगिक सघर्ष का केवल एक उल्लेखनीय उदाहरण मिलता है, जबकि सन् 1877 व सन् 1882 मे क्रमश एप्रेस मिल नागपुर तथा बबई की सूती मिल मे औद्योगिक सघर्ष हुए। परतु प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् ही श्रमिको ने हडताल को एक महत्वपूर्ण अस्त्र के रूप मे अपनाया। 1920 मे 200 हडतालें हुईं जिनमे 15 लाख श्रमिको ने भाग लिया। 1922 मे 396 हडताल हुईं जिनमे 6 लाख श्रमिको ने भाग लिया। केवल सन् 1928 और 1930 के बीच बहुत सी हडतालें और झगड हुए क्योकि सघ आदोलन पर साम्यवादियो का नियत्रण था और वे पूजीवादी अर्थव्यवस्था को हडतालो द्वारा नष्ट करना चाहते थे। 1929 मे शाही श्रम आयोग नियुक्त हुआ जिसकी रिपोर्ट ने केंद्रीय एव राज्य सरकारो को कुछ वैधानिक कार्यवाहियां करने के लिए प्रोत्साहित किया। सन् 1930 से 1936 तक सामान्यत औद्योगिक क्षेत्र मे शाति थी। परतु 1936 व '37 मे हडतालो का ताता लग गया जिसका प्रमुख कारण काग्रेसी मत्रिमडल बनने के कारण श्रमिक वर्ग मे चेतना का विकास होना व मदी काल मे कम की गई मजदूरी की दरो मे वृद्धि की माग थी।

सन् 1922 से लेकर 1938 तक जो औद्योगिक सघर्ष हुए उनका अनुमान सारिणी 1 से लगाया जा सकता है जो पृष्ठ 185 पर दी गयी है।

2 **दूसरी अवस्था** (1939 से 1947) 1939 मे द्वितीय महायुद्ध प्रारभ हो गया, इससे मुद्रा स्फीति हुई और कीमतो में भारी वृद्धि हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिको की मजदूरी और रहन-सहन के बीच काफी अतर हो गया। इसके परिणामस्वरूप श्रमिको मे असतोष व्याप्त हुआ और औद्योगिक सघर्षों की सख्या में काफी वृद्धि हुई। यद्यपि इस समय मे मजदूरो की कठिनाइया काफी बढ गई थी फिर भी युद्ध काल

1 R. K Mukherjee : Indian Working Class p. 372.

सारिणी 1 : औद्योगिक सघर्ष की सन् 1922 से सन् 1938 तक की स्थिति

वर्ष	हडतालो की सख्या (लगभग)	भाग लेने वाले श्रमिकों की सख्या (लगभग) हजारो मे	जन-दिनों की हानि (लगभग) हजारों मे
1922	278	—	—
1924	133	—	—
1928	203	506	3,150
1930	148	196	2,261
1932	118	128	1,922
1933	146	264	2,168
1934	159	220	4,775
1937	379	647	8,982
1938	399	401	9,198

मे सघर्ष कम हुए, इसका प्रधान कारण भारत सुरक्षा नियम के अन्तर्गत किया जाने वाला दमन था। 1945 मे द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गया। श्रमिकों को ऐसी आशा थी कि जैसे ही युद्ध समाप्त होगा उन्हे राहत मिलेगी, परतु ऐसा नही हुआ। अत द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् औद्योगिक सघर्षो मे बहुत वृद्धि हुई। सन् 1946 की जुलाई मे डाक व तार विभाग के कर्मचारियों द्वारा विस्तृत हडताल की गई। आगामी तालिका मे 1939 से 1947 के बीच होने वाले सघर्षों का विवरण दिया गया है—

सारिणी 2 औद्योगिक सघर्ष की सन् 1939 से 1946 तक की स्थिति

वर्ष	सघर्षों की सख्या	भाग लेने वाले श्रमिकों की सख्या (हजारों मे)	जन दिनो की हानि (हजारो मे)
1939	406	409	4,992
1940	322	452	7,577
1941	359	291	3,330
1942	694	772	5,779
1943	716	525	2,342
1944	658	550	3,447
1945	820	747	4,054
1946	1,629	1,971	12,717

3 **तीसरी अवस्था (1947 से आज तक)** . 15 अगस्त, सन् 1947 को हमारा देश स्वतत्र हुआ। स्वतत्रता के बाद हडतालो की सख्या मे कमी आई और यह स्थिति 1954 तक बनी रही। सन् 1955 से स्थिति पुन बिगडने लगी। इसका प्रमुख कारण बढती हुई महगाई, अभिनवीकरण की प्रणाली अपनाने के लिए किए गए प्रयत्न। सन् 1955 म अभिनवीकरण को लेकर कानपुर के वस्त्र उद्योग के श्रमिको ने एक महत्वपूर्ण हडताल की। सन 1956 मे बबई, अहमदाबाद व कलकत्ता के राज्यो के पुनर्गठन से प्रश्न को लेकर आम हडताल हुई। इसी वर्ष नागपुर, पश्चिमी बगाल व खडगपुर की 30 खानें, किरकी मे प्रतिरक्षा कारखानो आदि मे भी हडतालें हुईं। सन् 1957 मे पश्चिमी बगाल तथा बिहार की खानो व पश्चिमी बगाल की बैंकिग कम्पनियो आदि मे हडतालें हुईं। सन 1957 व उसके बाद मूल्यो मे तीव्र वृद्धि के कारण औद्योगिक विवादो की सख्या अत्यधिक हो गई। सन 1966 का वर्ष तो बद का वर्ष रहा क्योकि इस वर्ष सभी क्षेत्रो मे भयकर हडतालें व तालेबदिया हुईं। इसका प्रमुख कारण यह था कि फरवरी सन 1967 मे सामान्य चुनाव था। अत राजनीतिक दलो ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए विभिन्न वर्गों का दुरुपयोग करके हडतालें करवाईं। सन् 1966 मे हडतालो का एक उग्र रूप घेराव सामने आया और साम्यवादियो से प्रेरणा पाकर अनेक घेराव प० बगाल केरल व अन्य राज्यो मे हुए। सन् 1968 69 मे तो उग्रवादी मजदूरो ने केंद्रीय आवास निर्माता फैक्ट्री मे आग लगा दी और उसमे अनेक अधिकारी जीवित जलने म बचे। 1947 से 1980 तक भारतवर्ष मे औद्योगिक सघर्ष का अनुमान तालिका 3 से लगाया जा सकता है—

सारिणी 3 औद्योगिक संघर्षों की सख्या

वर्ष	सघर्षों की सख्या	सलग्न श्रमिक की सख्या (हजारों मे)	जन-दिनो हानि (दस लाख मे)
1948	1 639	1,333	9 21
1951	1 071	691	3 82
1956	1,203	715	6 99
1961	1,357	512	4 92
1966	2,556	1410	13 85
1971	2,752	1620	16 55
1976	1,459	737	12 75
1977	3,117	2193	25 32
1978	2,728	1470	21 51
1980	2,856	1,900	219
1981	1,926	118	226

सन् 1973 का वर्ष तो मुख्यत हडतालो और तालाबदियो का वर्ष रहा है। देश भर मे मूल्य वृद्धि के कारण एक आत्मसतोष तो बढ ही रहा है और साथ ही देश के विभिन्न भागो मे विभिन्न कारणो से अशांति भी बढ रही है। 1974 मे तो स्थिति और भी भयावह हो गई है। अब हडताल, आदोलन व तालाबदी हमारे देश मे आम बात हो गई। पिछले कुछ वर्षों से समाज के कुछ ऐसे वर्ग हडताल कर रहे हैं जिनकी आमदनी अच्छी है और जो सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इडियन एयर लाइस व जीवन बीमा निगम के कर्मचारियो ने जो हडतालें हाल ही मे की हैं, उनका कोई औचित्य नही था। जनवरी 1974 मे डाक्टरो ने जो मरीज को तडपता-कराहता छोडकर अपना वेतन बढाने के सबध मे हडताल की, वह अत्यत ही निंदनीय है।

"जिस तरह से रोम जल रहा था और नीरो बासुरी बजा रहा था" उसी तरह बिगडती जा रही श्रम स्थिति को देख कर भी प्रधानमत्री ने यही कहकर सतोष कर लिया है कि "वर्तमान औद्योगिक अशाति एक अस्थायी समस्या है जो आपात् काल की *ज्यादतियो से उत्पन्न हुई हैं तथा शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी*" परतु दिसबर 77 के प्रथम सप्ताह मे कानपुर मे घटी घटना जिसमे 11 लोगों, जिनमे फैक्टरी के उत्पादन मैनेजर भी शामिल थे, की हिंसात्मक वारदात मे मृत्यु, हरियाणा के अनेक शहरो म चली आ रही महीनो की गडबडिया, सारे देश के बैंक, बीमा कर्मचारियो रेल कर्मचारियो तथा राज्य परिवहन निगमो के कर्मचारियो द्वारा आशिक व पूर्ण हडताल या कार्य ठप्प करने की चेतावनिया क्या इस बात का प्रमाण नही है कि देश मे श्रमिक असतोष बढता जा रहा है।

भारतीय औद्योगिक सघर्षो का विश्लेषण

1 **राज्यों के आधार पर औद्योगिक सघर्षों का विश्लेषण करने** से पता चलता है कि उनकी सख्या पश्चिमी बगाल, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र मे अन्य राज्यो की अपेक्षा पर्याप्त रूप से अधिक रही है। राज्यो के अनुसार कुल कार्य दिवसो की हानि की दृष्टि से उनके महत्त्व का क्रम 1978 मे इस प्रकार था-

पश्चिम बगाल 98 2 लाख, महाराष्ट्र 29 7 लाख, तमिलनाडु 21 8 लाख, गुजरात 11 6 लाख।

2 **उद्योगों के आधार पर** - औद्योगिक विवादो का उद्योग के अनुसार विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि किसी भी वस्तु मे कुल समय हानि निर्माणी उद्योगो मे सबसे अधिक रही है। इस क्षेत्र मे सबसे अधिक हानि सूती वस्त्र मिलें और जूट मिलें रही हैं।

सारिणी 4 : औद्योगिक विवाद के आधार

उद्योग	कार्य दिवसो की हानि (000) 1971	कार्य दिवसो की हानि (000) 1976	कार्य दिवसों की हानि (000) 1977
1 कृषि, वन बागान आदि	1701	95	1,204
2 खनन	1,057	311	1,821
3 निर्माणी उद्योग	11,343	11,922	20,227
4 भवन निर्माण	250	16	317
5 बिजली, गैस, पानी व सफाई सेवाए	722	5	488
6. वाणिज्य	115	33	71
7 यातायात व सवाहन	1,096	66	461
8 सेवाए	207	180	1157
9 अन्य क्रियाए	55	161	108

3 **क्षेत्र के अनुसार औद्योगिक विवाद** औद्योगिक विवादो को क्षेत्र के अनुसार विवरण नीचे सारणी मे दर्शाया गया है—

सारिणी 5 क्षेत्र के अनुसार औद्योगिक विवाद

	1971	1975	1978
(अ) केन्द्रीय क्षेत्र			
(i) विवादो की सख्या	334	300	—
(ii) प्रभावित श्रमिक (000)	257	300	—
(iii) कार्य दिवसो की हानि (000)	1931	1533	2260
(ब) राजकीय क्षेत्र			
(i) विवादो की सख्या	2398	1643	—
(ii) प्रभावित श्रमिक (000)	1358	843	—
(iii) कार्य दिवसो की हानि (000)	14615	20348	19250

औद्योगिक सघर्ष के कारण

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से औद्योगिक सघर्ष के कारणो को हम तीन शीर्षको के अतर्गत रख सकते हैं—

1. आर्थिक कारण
2. प्रबंध एव व्यवस्था सबधी कारण,
3. राजनीतिक कारण ।

1 आर्थिक कारण

औद्योगिक सघर्षों के आर्थिक कारणों के अतर्गत निम्नलिखित कारणों का समावेश किया जा सकता है—

(i) अधिक मजदूरी की माग : श्रमिक सघर्षों का सबसे महत्वपूर्ण कारण अधिक मजदूरी की माग है। पिछले कुछ वर्षो मे मजदूरी मे महगाई के अनुपात मे वृद्धि नही हुई है। फलस्वरूप श्रमिकों की क्रय-शक्ति कम हो गई है और उनका जीवन-स्तर भी गिर रहा है। अत. अधिकाश औद्योगिक विवाद श्रमिकों द्वारा अपनी मजदूरी मे वृद्धि करने के प्रयत्नो का परिणाम है।

(ii) बोनस की माग मजदूरों में अब यह चेतना आ गई है कि उद्योगो के लाभ मे उन्हे अधिक-से-अधिक भाग मिलना चाहिए, क्योंकि यह लाभ मुख्यत उनके श्रम का फल है। इसलिए कई बार बोनस न मिलने अथवा बोनस कम मिलने के कारण भी हडतालें हो जाती है।

(iii) काम करने की दशायें ' भारत म अनेक औद्योगिक सघर्ष, कारखाने के अस्वस्थ वातावरण, बुरी गृह व्यवस्था, दोषपूर्ण यत्र, काम करने के अधिक घटे आदि बातों को लेकर भी होते रहते है।

(iv) भर्ती पद्धति भारत मे श्रमिकों की भर्ती प्राय मध्यस्थो के द्वारा की जाती है। अतः कभी मध्यस्थो की सहानुभूति मे या कभी उनके विरोध मे हडतालें की जाती हैं।

2 प्रबध एवं व्यवस्था सबधी कारण

(i) श्रम एव पूजी का पारस्परिक सबध : जब कभी श्रमिको को अनुशासन-हीनता या अन्य बात के लिए काम से निकाला जाता है तो निकाले गए श्रमिकों की सहानुभूति मे श्रमिक हडताल कर देते हैं। श्रमिकों को पीडित करना, श्रमिक सघो को मान्यता देने मे इन्कार करना, मशीन मे टूट-फूट करना, श्रमिकों की अशिष्टता अथवा अनुशासनहीनता आदि कारण भी औद्योगिक सघर्ष को जन्म देते है।

(ii) श्रमिकों की अशिक्षा श्रमिकों की अशिक्षा व भोलेपन का कुछ स्वार्थी लोग लाभ उठा कर उनमें पूजीपतियो के विरुद्ध वैमनस्य व कटुता के बीज बो देते है जिसके कारण भी हडताल होती है।

(iii) विवेकीकरण ' औद्योगिक उत्पादन बढाने तथा मितव्ययिता के दृष्टि-कोण मे कारखानो में विवेकीकरण की योजनायें कार्यान्वित की गईं, जिनके विरोध मे भी हडतालें हुईं।

(iv) प्रबधकों का दुर्व्यवहार . जब भारतीय प्रबध एव निरीक्षक श्रमिको के

साथ अनुचित एव असम्मानपूर्ण व्यवहार करते हैं तो वे इसके प्रतिरोध के लिए हडताल कर देते हैं।

(v) **सामूहिक सौदेबाजी का अभाव :** भारतीय श्रमिको व सेवायोजकों के बीच प्रायः सपर्क का अभाव रहता है जिसके परिणामस्वरूप छोटी-छोटी बातो पर हडतालें हो जाती हैं। क्योकि ऐसी व्यवस्था का अभी तक अभाव था जिससे सेवायोजको और मजदूरो मे परस्पर शातिपूर्ण बात हो सके।

(vi) **छुट्टियो के लिए तग करना :** जब श्रमिकों को धार्मिक व सामाजिक अवसरो पर छुट्टी नही दी जाती या उन्हे वेतन सहित अवकाश नही दिया जाता तो वे हडताल कर दिया करते हैं।

3 राजनीतिक कारण

भारतवर्ष मे श्रमिक सघो का पथ-प्रदर्शन राजनीतिक नेताओ द्वारा किया जाता है और भारतीय श्रमिक अशिक्षित होने के कारण बहकावे मे आ जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व श्रमिको की हडतालो का मुख्य कारण राजनीतिक विरोध था। परतु आजकल नेता प्राय अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए हडताल कराते हैं।

नीचे तालिका मे औद्योगिक सघर्षों के कारणों के अनुसार महत्त्व दर्शाया गया है—

कारण	1951	1961	1966	1981
मजदूरी एव भत्ता	29 4	30 4	35 8	28 7
बोनस	6 8	6 9	13 2	7 8
छटनी और श्रम समस्याए	29 3	29 3	25 3	21 4
अवकाश तथा काम के घटे	8 2	3 0	2 4	2 2
अन्य	26 3	30 4	23 3	39 9
योग	100 0	100 0	100 0	100 0

उपर्युक्त तालिका मे स्पष्ट है कि मजदूरी एव भत्ता और छटनी देश मे औद्योगिक अशान्ति के प्रमुख कारण रहे हैं। यह सतोष की बात है कि सरकार द्वारा छुट्टियो और कार्य के घटो का नियमन किए जाने के बाद इन कारणो से होने वाले औद्योगिक सघर्ष सन 1961 मे 3 0 से घटकर 1972 मे 1 4% रह गए। औद्योगिक सघर्षों के कारणों मे उल्लेखनीय प्रवृत्ति यह है कि बोनस के कारण होने वाले औद्योगिक सघर्षों की सख्या मे निरतर वृद्धि होती जा रही है।

इडियन इस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमट, कलकत्ता मे दिसम्बर 1970 मे आयोजित एक विचार गोष्ठी मे भारत मे औद्योगिक सबधो की समस्या के निम्न कारण बताए गए।[1]

1. Chatterjee, N. N. : Interpreting the Industrial Relations Situation in India (Indian Labour Journal, January, 1972, p. 23-24.)

सार्वजनिक उपक्रमों के प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा तैयार सूची	निजी क्षेत्रों के प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा तैयार सूची	सरकारी विभागों के प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा तैयार सूची
1 डिपुटेशन पर प्रबधकों की नियुक्ति के कारण निश्चित वायदो (Commitment) का अभाव।	1 श्रम सघों मे आतरिक और पारस्परिक प्रतिस्पर्धा।	1 निजी क्षेत्र के सेवायोजकों का सकीर्ण दृष्टिकोण।
2 राजनीति का प्रमुत्व।	2 श्रम द्वारा समझौतो एव अनुबधो का उल्लघन।	2 श्रमसघो म पारस्परिक एव आन्तरिक प्रतियोगिता।
3 निजी क्षेत्र द्वारा अधिक मजदूरी दिया जाना।	3 अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप।	3 श्रम नीति का हमेशा प्रभावशाली न होना।
4 आदर्श सेवायोजक की धारणा का स्पष्ट न होना।	4 अतिरेक श्रम को निकालना।	4 राजनीतिक दलो द्वारा श्रम का शोषण।
5 सार्वजनिक उपक्रमो म श्रम सबधी निणय लेन म औपचारिकताओ क कारण विलब होना।	5 श्रम की माग मे निरन्तर वृद्धि।	5 राजकीय हस्तक्षेप की सीमा के … न होना।
6 सार्वजनिक क्षेत्र मे बहुमयद्र उपक्रमो का होना और विभिन्न मयत्रो मे पृथक और विरोधी नीतियां होना।	6 श्रम सघो का राजनीतिक उद्देश्यो क लिए उपयोग होना।	6 कार्यकुशलता और उत्पादकता वृद्धि पर जोर दिया जाना।
7 अधिकारो का कम भारापण (Delegation) होना।	7 श्रमिको एव प्रबधको का परस्पर विरोधी दृष्टिकोण।	8 सरकार द्वारा नगनित उद्योगो मे अनुशासनहीनता।
8 सचालक मडलो म श्रम सघ नेताओ क प्रतिनिधित्व का अभाव।	8 उत्पादकता को प्राथमिकता न देना।	
9 ससद या सबधित मत्रालय द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप।		

10 विभिन्न सावजनिक उपक्रमा मे विभिन्न सेवा दशाए।
11 नौकरी की अधिक सुरक्षा।
12 सरकार द्वारा प्रबध का समथन किया जाना।
13 पुरस्कार अथवा दड व्यवस्था का अभाव या अप्रभावशील होना।

औद्यागिक सघर्षो के प्रभाव या परिणाम

औद्योगिक सघर्षो का सीधा परिणाम हडताल या तालाबदी होता है जिससे उत्पादको श्रमिको व राष्ट सभी को हानि होती है जैसा कि निम्न विवरण स स्पष्ट हो जाएगा—

1 **उत्पादको के लिए हानि** औद्योगिक सघर्षों के कारण उत्पादको को अनेक हानिया उठानी पडती हैं—

(i) **उत्पादन घटना** जब किसी उद्योग मे हडताल या तालाबदी हो जाती है तब उत्पादन काय म रुकावट पडती है जिससे उत्पादन की मात्रा कम हो जाती है। राष्ट्रीय लाभाश व प्रति व्यक्ति आय घटती है।

(ii) **अनुशासनहीनता** हडताल-ग्रस्त उद्योगो म अनुशासन व्यवस्था समाप्त हो जाती है। हडतालो द्वारा उत्पन्न अनिश्चितता क वातावरण म अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) **अधिक सहायक व्यय** औद्योगिक सघष के कारण उत्पादक को उत्पादन काय बद रहने क कारण एक तो सभावित लाभ से वचित रहना पडता है और दूसरी ओर सहायक खच जैसे कारखाना भवन का किराया पूजी का ब्याज ऊचे पदो पर काम करने वाले कमचारियो का वेतन आदि भी देना पडता है।

(iv) **श्रम और पूजी के बीच घृणा** हडतालो के कारण सेवायोजक श्रमिको को घृणा की दृष्टि से देखने लगत हैं जिसस श्रम और पूजी की बीच की खाई और भी गहरी हो जाता है। फलत औद्योगिक उत्पादन कुप्रभावित होना है।

2 **श्रमिकों के लिए हानि** औद्योगिक सघष का सबसे बुरा प्रभाव श्रमिको पर पडता है। हडताल हो या तालाबदी श्रमिको को उतने समय बेकार बैठ रहना पडता है। उनकी मजदूरिया वैसे ही कम होती हैं और कुछ दिन वेतन न मिलना तो उनके लिए बहुत ही कष्टदायक होता है। मजदूरी के अभाव मे श्रमिक व उनक आश्रितों को पूरी खुराक न मिलने के कारण स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। उनका पारिवारिक जीवन छिन्न भिन्न हो जाता है। श्रमिकों मे अनैतिकता नैराश्य व असचार की

भावना जागृत हो जाती है।

हडतालो की असफलता से श्रमिको को और भी विषम परिस्थिति का सामना करना पडता है। क्योकि इसके परिणामस्वरूप श्रमिको की अपने सगठन के प्रति आस्था कम हो जाती है और इससे श्रम सघ आदोलन को गहरी चोट पहुचती है। एकता के अभाव मे मिल मालिक भी मनमानी करते हैं।

3 समाज व राष्ट्र के लिए हानि—(अ) सामाजिक अर्थव्यवस्था हडतालो व तालाबदियो के फलस्वरूप सामाजिक वातावरण दूषित हो जाता है और समाज में अनिश्चितता और असुरक्षा छा जाती है।

(ब) जनसाधारण के लिए सकट • रेल, डाक, तार, पानी, बिजली आदि से सबधित सस्थानो में हडताल होने की दशा मे जनसाधारण को बड़ी असुविधा हो जाती है, क्योकि ये जीवन की आवश्यक सेवाए हैं। कभी कभी हडतालो के परिणामस्वरूप वस्तुओं की पूर्ति कम होने से मूल्यो मे वृद्धि हो जाती है और चोरबाजारी जैसी समाज विरोधी प्रवृत्तिया सक्रिय हो जाती हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि औद्योगिक सघर्षो मे श्रमिक, मालिक व राष्ट्र को अपार क्षति होती है, परतु इसके कुछ अच्छे परिणाम भी होते हैं, जैसे—(अ) श्रमिको मे पारस्परिक सहयोग बढ जाता है। (ब) श्रमिको को आवश्यक मजदूरी, बोनस व अन्य सुविधाएं बढ जाती हैं। (स) कार्य करने की दशाओ मे सुधार होता है और काम करने के घटो मे कमी आती है। (द) मिल मालिक जागरूक रहते हैं एव शोषण के पग बहुत सोच समझ कर रखते हैं।

क्या श्रमिको को हडताल का अधिकार मिलना चाहिए ?
(Should the Workers be given the Right to Strike ?)

औद्योगिक हडताल मालिक और श्रमिक के बीच का सघर्ष होता है पर इसका प्रभाव केवल इन दोनो पक्षो पर ही नही बल्कि सपूर्ण राष्ट्र आम जनता पर भी पडता है। हडताल के दुष्परिणामो को देखते हुए यह कहा जाता है कि मजदूरो को हडताल का अधिकार नही होना चाहिए। इसके विपरीत अन्य लोगों का विशेषकर साम्यवादियों का कथन है कि इस पर कोई भी नियत्रण होना अनुचित है। श्री जे० ए० हाब्सन के विचारानुसार 'हडताल या तालाबदी का असीमित अधिकार समाप्त होना चाहिए। यह अन्यायपूर्ण है क्योंकि इसमे शक्ति का उपयोग एक विवादग्रस्त विषय मे होता है। यह अमानवीय है क्योकि इससे मजदूरो के दु ख बढ जाते हैं। इसमे श्रम और पूजी का अपव्यय होता है। यह द्वेषपूर्ण वस्तु है क्योकि इससे घृणा पैदा होती है और यह असामाजिक है क्योकि यह समुदाय की व्यवस्था को अस्त व्यस्त कर देता है।"[1]

परतु यह प्रश्न एक दूसरे प्रश्न के साथ उठना चाहिए कि क्या उद्योगपतियो को मजदूरो के शोषण का अधिकार होना चाहिए ? औद्योगिक सघर्ष का इतिहास यह बताता

1 Hobson, J A—The Conditions of the Industrial Peace, p 30.

है कि हडताल अस्त्र का उपयोग उस समय किया जाता है जबकि सेवायोजक श्रमिकों की समस्याओं व कठिनाई के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाते हैं। हडताल का यह हथियार एक निष्क्रिय शस्त्र होता है क्योंकि यह वह स्थल है जिसमे श्रमिक अपने मालिक को यह अनुभव कराता है कि वे हडताल करने वाले श्रमिको के बिना अपना काम नही चला सकते। अतः हडताल का अधिकार प्राप्त होने के कारण सेवायोजक श्रमिक पर अधिक शोषण करने में हिचकिचाता है क्योकि उसे सदा भय रहता है कि यदि उसने अनुचित कदम उठा दिया तो श्रमिक हडताल कर देंगे। इस भय के कारण से सेवायोजक अतिम कदम नही उठा पाते। मजदूरों के अधिकार को तभी रोकना उचित होगा जब शोषण को समाप्त कर दिया जाय। जब तक समाज की अर्थव्यवस्था दोषपूर्ण है मजदूरो के अधिकार मे हस्तक्षेप करना अन्याय होगा। श्री के० एन० श्रीवास्तव ने बडे ही जोशीले शब्दो मे लिखा है, "यदि जनता की सरकार, जो जनता के लिए हो, और जनता के द्वारा शासित हो इन आधारो पर श्रमिको के हितो की उपेक्षा करती है तो उसे जनता की सरकार कहलाने का कोई अधिकार नही है। भूखे मरने वालो से यह कहना कि तुम अपना मुह बद कर लो और अपने प्रति होने वाले अन्यायो का केवल इसलिए विरोध न करो कि दूसरो को असुविधा होती है, धनी और समृद्धशाली व्यक्तियो के सुख-चैन मे बाधा पडती है, सरासर अन्याय होगा। तीव्र पीडा से दुखी व्यक्ति की कराहट को यह कह कर बद नही किया जा सकता कि उससे अन्य लोगो की नीद मे अडचन होगी। सच तो यह है कि औद्योगिक शांति का रास्ता श्रमिको की कठिनाइयो का कारण मालूम करके उसे दूर करना है, दबाना नही।"[1] इस प्रकार गभीरता से विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि सेवायोजको द्वारा शोषण से बचने के लिए श्रमिको को हडताल करने का अधिकार होना चाहिए। हा, श्रमिको को हडताल करने का अधिकार देते हुए भी सीमाबद्ध व नियत्रित कर दिया जाना चाहिए। हडताल का दुरुपयोग मजदूरो के लिए भी हानिकारक है। अत इसका दुरुपयोग रोकने के लिए कुछ सामान्य नियम बनाए जा सकते हैं।

(अ) हडताल का प्रयोग बार-बार छोटी मोटी बातो के लिए नही होना चाहिए।

(ब) हडताल के पूर्व शातिपूर्ण व मैत्रीपूर्ण ढग से झगडो व कष्टो को सुलझाने का प्रयास होना चाहिए।

(स) हडताल किसी न्यायपूर्ण माग के लिए होनी चाहिए और माग वर्तमान परिस्थितियो की पृष्ठभूमि मे व्यावहारिक होनी चाहिए अर्थात हडताल किसी ऐसी माग के लिए नही होनी चाहिए जिसकी पूर्ति असभव हो और जिसको पूरा करने मे उद्योग ही समाप्त हो जाय। उचित मागो को पूरा करने के लिए सेवायोजको को कुछ समय भी देना चाहिए।

(द) कुछ विशेष परिस्थितियों जैसे—देश के सकट व समय युद्ध, मदी व अकाल आदि में हडताल का उपयोग नही होना चाहिए।

1. K L Srivastava—Industrial Peace and Labour in India, p 111.

(ग्र) हड़ताल के समय हिंसा का सर्वथा त्याग होना चाहिए।

(र) ऐसी हडतालो का भी परित्याग किया जाना चाहिए जो मात्र पेशेवर व राजनीतिक दलों के नेताओ की अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए होती हैं।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि श्रमिको को हडताल करने का अधिकार देते हुए उसे सीमाबद्ध या नियन्त्रित कर दिया जाना चाहिए। पर यह दान एकतरफा है। सेवायोजको को भी यह निरकुश अधिकार नहीं होना चाहिए कि वे जब चाहे मनमाने ढग से कारखाने म तालाबदी कर दें। सेवायोजक इस विश्वास पर अनिश्चित काल के लिए तालाबदी का आदेश दे देते हैं कि दो चार हफ्ते की मजदूरी न मिलने पर निर्धन श्रमिक स्वय ही घुटने टेक देंगे। इसी आधार पर सेवायोजक श्रमिको को दबाने व शोषण करने के प्रयत्न करते हैं। मालिको का एसा दृष्टिकोण निंदनीय है और सरकार की ओर से भी उनके तालाबदी के अधिकार पर नियत्रण होना चाहिए। निष्कर्ष के रूप मे हम कह सकते है कि अनियत्रित हडताल और तालाबदी दोनो ही अनुचित हैं और इस प्रकार का कोई भी अधिकार न तो श्रमिको को और न ही सेवायोजको को दिया जाना चाहिए।

भारतीय परिस्थितियो मे समस्या का हल

भारत मे औद्योगिक विकास 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे आरभ हुआ। शुरू-शुरू मे बबई कलकत्ता मद्रास अहमदाबाद व कानपुर जैसे बडे नगरो मे ही कारखाने खोले गए और मजदूरो ने हडताल को केवल विरोध प्रगट करने का जरिया बनाया। स्वतन्त्रता के उपरात हडतालो को मजदूरो का एक अधिकार भी माना गया और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात स्पष्ट करने की सवैधानिक छूट भी दी गई। उस समय के बाद से हडतालो का रूप काफी विकृत हो गया है हडतालें बडे पैमाने पर होने लगी और उनके समर्थन मे वे लोग भी हडताल करने लगे जिनका हडताल स कोई सीधा सबध नही होता था लेकिन वे मजदूरो की एकता प्रदर्शित करना चाहते थ। परतु आजकल प्रतिदिन अखबारो म किसी न किसी रूप म हडताल घेराव या हिंसक प्रदर्शन आदि का समाचार पढने को मिलता है। मध्य वर्ग के कर्मचारी भी जिन्होंने आज तक हडतालो मे भाग नही लिया था इस अस्त्र का उपयोग करने लगे है। अध्यापक डाक्टर और इजीनियर, य सब मजदूर सगठन के अग बन गए है और अपनी मागें मनवाने के लिए हडताल का सहारा ले रहे हैं। समाज के कुछ ऐसे वर्ग हडताल को हथियार के रूप म उपयोग कर रहे हैं जिनकी आय अच्छी है और जो सुखी जी न व्यतीत कर रहे है। उदाहरणार्थ इडियन एयर लाइस और जीवन बीमा निगम के कर्मचारियो न पिछले दिनो जो आदोलन आरभ किए उनका कोई औचित्य नही था। उनका वेतन सारे देश की औसत वार्षिक आय से कई गुना अधिक है फिर भी हर छोटी सी बात के लिए कर्मचारी हडताल का अस्त्र चलाना चाहता है। ऐसा लग रहा है कि सगठित मजदूर या कर्मचारी वर्ग श्रमिको की सामतशाही स्थापित करते जा रहे है और वे जितना राष्ट्रीय धन पैदा करते हैं उससे कही ज्यादा अपना हिस्सा मागते हैं। इस तरह वे सरकार और समाज के लिए जबरदस्त

खतरा बन गए हैं।"

अब विचारणीय विषय यह है कि भारत की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए श्रमिको को हडताल करने का अधिकार मिलना चाहिए या नही ? हमारे विचार मे हड-तालो से लाभ कम और हानि अधिक है। आज देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। उत्पादन की कमी और कीमतों की न रुकने वाली तेजी ने देश को ऐसे चौराहे पर ला खडा कर दिया है जहा से प्रगति का रास्ता ठीक नजर नही आ रहा है। विशिष्ट परिस्थितियों के कारण भारत मे हडतालो और तालेबदियो पर नियत्रण लगा देना चाहिए। इस सबध मे हमारे कुछ तर्क इस प्रकार हैं

1 आर्थिक दृष्टि से हमारा देश काफी पिछडा हुआ है। इस पिछडेपन को दूर करने के लिए व बढती हुई कीमतो तथा भयावह बेरोजगारी की समस्या को रोकने के लिए उत्पादन को बढाने व औद्योगिक विकास करने की अत्यत आवश्यकता है। हम पच-वर्षीय योजनाओ के माध्यम से देश का आर्थिक विकास करना चाहते हैं। हमारी पच-वर्षीय योजनाओ की सफलता बहुत कुछ औद्योगिक शाति पर ही निर्भर करती है। अत-एव राष्ट्रीय दृष्टिकोण से हडतालें न्यायसगत नही कही जा सकती। हडतालो से कितनी हानि होती है इसे हर मामले मे नापा नही जा सकता। केवल दिसबर 1973 की हडताल से रेलवे को 10 करोड रुपए से अधिक की हानि हुई। परोक्ष रूप से देश को जो हानि हुई वह कई गुना अधिक है। इसी प्रकार अनुमान है कि इडियन एयर लाइस की हडताल और तालाबदी से केवल निगम को 2 करोड रुपए का नुकसान हुआ। इसके अतिरिक्त बाहर से आने वाले पर्यटको की कमी के कारण देश को विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। होटलो मे कम आय होने के अतिरिक्त इस देश का जो कुछ माल पर्यटक खरीदते वह भी नही बिका। यह सब परोक्ष हानिया हैं जो इडियन एयर लाइस मे हुई हडताल के कारण देश को सहनी पडी। भारत मे मजदूरो और दूसरे कर्मचारियों के असतोष के कारण हड-तालो और तालाबदियो से उत्पादन मे हर रोज कमी हो रही है। **आज इस देश मे हड-ताल और तालाबदी केवल अन्याय ही नहीं है बल्कि अपराध भी है।** इस समय भारत की सीमाओं पर प्राय तनाव बना रहता है और युद्ध की आशका जनमानस को भयभीत किए है। साथ ही देश के आतरिक भागो मे भी अशाति का वातावरण है। कही किसी प्रदेश मे कभी कोई आदोलन जोर पकडता है तो कही अन्य स्थान पर हिंसा, लूटपाट की घटनाए होती हैं। हडतालें प्रगति को रोकती हैं। इसलिए उनके प्रति उदार नहीं हुआ जा सकता और लोकतत्र के नाम पर उन्हे सहन भी नही किया जा सकता, चाहे वे हिंसक हो या अहिंसक। **अत आर्थिक योजनाओ की सफलता के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के साथ मैत्रीपूर्ण व सौहार्दपूर्ण सबध को बनाए रखने की आवश्यकता है।** इसमे हडताल व तालाबदियो का कोई स्थान नहीं है। इस सदर्भ मे भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के निम्न शब्द स्मरणीय हैं : "वर्तमान स्थिति मे हम सब लोगो के लिए यह आवश्यक है कि एक अर्से तक देश मे औद्योगिक शाति रहे यानी हडताल और तालेबदिया न हो जिससे हम आपसी सहयोग से उत्पादन बढा सकें और विकास योजनाओ को सही तरीके से लागू कर सकें।"

2. भारत मे श्रमिक सघ आज भी उचित रूप से सगठित नही हैं पर उन पर पेशे-

वर या राजनीतिक नेताओ का अधिकार है जो अपनी राजनीतिक स्वार्थसिद्धि के लिए श्रमिको को बिना कारण भडका कर हडतालें करवाते है। अत सामाजिक-आर्थिक प्रगति के बाधक व समाज के शत्रु इन तथाकथित साम्यवादी नेताओ से श्रमिक को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिको को हडताल का अधिकार तब तक न दिया जाय जब तक कि इस अधिकार को कार्य मे लाने के लिए वे अपने मे से ही योग्य व विवेकशील नेताओ को जन्म नही देते।

निष्कर्ष उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की गभीर स्थिति को देखते हुए हडतालो और तालाबदियों पर नियत्रण लगाना आवश्यक है। अगले पाच वर्षों के लिए सरकार, सेवायोजको और मजदूरो मे ऐसी सधि होनी चाहिए जिससे देश की उत्पादन क्षमता को क्षति न पहुचे और यदि ऐसा समझौता न हो सके तो सरकार को अधिनियम पारित करके हडताल के अधिकार को समाप्त कर देना चाहिए। अब समय और अधिक ढील देन का नही है।

औद्योगिक शांति स्थापित करने की रीतियां
(Establishment of Industrial Peace)

इनका हम निम्नलिखित दो शीर्षको के अतर्गत अध्ययन कर सकते हैं·

1 सघर्ष सुलझाने की रीतिया अर्थात जब सेवायोजक और श्रमिकों मे वास्तव मे सघर्ष हो जाय तो उसे किस प्रकार निपटाया जाय?

2 सघर्ष रोकने की रीतिया इन्हें **प्रतिरोधात्मक रीतिया** भी कहते हैं क्योकि इसके अतर्गत वे रीतिया आती हैं जिनसे सघर्षों का होना ही रोका जा सकता है।

1 सघर्ष सुलझाने की रीतिया

सैद्धातिक रूप से झगडे निपटाने की अनेक रीतिया हो सकती हैं। उनमे से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(अ) परस्पर वार्ता इस विधि के अतर्गत सेवायोजक और श्रमिक स्वय ही अपने झगडे को निपटाने का प्रयत्न करते हैं। साधारण झगडो मे यह विधि अपनाई जाती है और बहुधा सफल भी हो जाती है परतु सघर्ष का कारण यदि बडा हो और सघर्ष काफी समय तक चल चुका हो तब यह रीति अधिक प्रभावपूर्ण और सफल नही हो पाती।

(ब) सात्वना अथवा समझौता व्यवस्था (Conciliation) : प्राय सेवायोजक और श्रमिक अपने पारस्परिक मतभेदो को दूर करने मे असमर्थ रहते हैं। फलत औद्योगिक शांति भग होने की आशका रहती है। अत इस स्थिति से बचने के लिए समझौता व्यवस्था का आश्रय लिया जाता है। इसमे श्रमिक अपने प्रतिनिधि चुन लेता है और सेवायोजक अपने प्रतिनिधि। दोनो पक्षो के प्रतिनिधि तीसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियो के सामने लाए जाते हैं ताकि यह तीसरा पक्ष दोनो की समस्याओ को सुने, उनके तर्क ले व तत्पश्चात् उनमे समझौता करा दे। यह समझौता बल के द्वारा नहीं बल्कि समुचित आपसी बातचीत के द्वारा होता है। इस प्रकार समझौता एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे

श्रमिकों और मालिको के प्रतिनिधियो को एक तीसरे व्यक्ति के सामने इसलिए लाया जाता है कि पारस्परिक बातचीत के द्वारा एक मान्य समझौते पर पहुचा जा सके।

समझौता व्यवस्था अनिवार्य तथा ऐच्छिक दोनो प्रकार की हो सकती है। समझौता उस समय ऐच्छिक होता है जबकि झगडा करने वाले दोनो ही पक्ष किसी तीसरे पक्ष के पास अपनी इच्छा से झगडा तय कराने को जाते हैं। इसमे कानून से किसी प्रकार की विवशता नही होती। इस तीसरे व्यक्ति का निर्णय दोनो पक्ष आवश्यक रूप मे मानने या न मानने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। इसके विपरीत जब राज्य किसी सघर्ष या वाद-विवाद को निपटाने के लिए अनिवार्य रूप से समझौता व्यवस्थापक को सौंप दे अर्थात् जब सघर्ष को अनिवार्य रूप से समझौता व्यवस्था मे ले जाना पडे तो उस व्यवस्था को अनिवार्य समझौता व्यवस्था कहते हैं।

गुण व दोष : औद्योगिक सघर्षों को नियंत्रित करने मे समझौता व्यवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकेअतर्गत श्रमिक व सेवायोजक दोनो ही अपनी-अपनी समस्याए समक्ष रखते हैं तथा आपसी सहयोग द्वारा उनको दूर करते हैं। इस प्रकार मे मतभेदो की खाई नही बनने पाती जिससे न तो श्रमिको को हडताल की शरण लेनी पडती है और न ही सेवायोजको को तालाबदी की। इस प्रकार हम देखते हैं कि समझौता विधि सघर्षों का जड से ही समापन कर देती है। समझौता विधि की इस विशेषता के कारण ही श्रम के शाही आयोग ने भी इस विधि का समर्थन किया है। शाही श्रम आयोग के शब्दो मे "पक्षकारो के सामने एक हल प्रस्तुत करने और फिर जन-भावना उभार कर उसे स्वीकार कराने की अपेक्षा यह कही अधिक अच्छा होगा कि झगडो के पक्षकारो को स्वय उसे हल करने दिया जाय। ऐसे अनेक अवसर आएगे जबकि चतुर और अनुभवी अधिकारी झगडे के पक्षकारो को एक साथ बठाकरया किसी एक पक्ष के सामने दूसरे पक्ष का दृष्टिकोण रखें, जिसे सभवत भुला दिया गया था अथवा समझौते की सभावित रूपरेखा का सकेत कर समझौते करने मे बडी सहायता दे सकते है।"

कुछ लोगो की सम्मति मे अनिवार्य समझौता श्रेष्ठ है जबकि कुछ अन्य लोग ऐच्छिक समझौते को अधिक महत्त्व देते हैं। कुछ लोगो का कहना है कि अनिवार्य समझौता अनुचित है क्योकि यह स्वतत्रता को छीनता है। परतु यह धारणा गलत है, क्योकि अनिवार्य समझौता तो अधिकार के प्रयोग को केवल स्थगित करता है और इस बीच समझौते के आधार की खोज करता है। हडतालो का स्थगन बडा आवश्यक है जिसमे झगडे निपटाने के लिए उपयुक्त वातावरण पैदा हो सके। श्री वी० वी० गिरि ने ऐच्छिक समझौते को अधिक महत्त्व दिया है। सिद्धातत यह ठीक है किंतु व्यवहार मे ऐच्छिक समझौते का सामान्यत उपयोग नहीं किया जाता और प्रारम्भिक स्थितियो ने तो अनिवार्य समझौते की सहायता लेनी पडती है।

भारत म समझौता विधि का महत्त्व और भी अधिक है क्योंकि यहा सघर्षों की सख्या मे काफी वृद्धि होती चली जा रही है। पचवर्षीय योजनाओ की सफलता के मार्ग मे ये सघर्ष बाधक सिद्ध हो रहे हैं। इस समय भारत मे उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि करने की आवश्यकता है, जो समझौता विधि द्वारा काफी सीमा तक पूरी की जा सकती है।

देश मे आवश्यकता अनुभव करते हुए भारत सरकार ने विभिन्न अधिनियमों के द्वारा समझौता व्यवस्था को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। समझौता बोर्ड बना दिए गए हैं और समझौता अधिकारी नियुक्त कर दिए गए हैं। परंतु दुर्भाग्यवश भारत में यह विधि सफल नहीं हो पाई है क्योंकि (अ) भारत का श्रमिक वर्ग केवल अशिक्षित ही नही बल्कि असगठित भी है जिसके कारण समझौता बोर्ड मे श्रमिको के प्रतिनिधि अपनी समस्याओ को तर्कों सहित स्पष्ट नही कर पाते। इसका परिणाम यह होता है कि समझौता बोर्ड का निर्णय हमेशा सेवायोजको के ही पक्ष मे होता है और श्रमिको को इससे कोई लाभ नही हो पाता। (ब) एक भारतीय समझौता अधिकारी एक समझौता अधिकारी की अपेक्षा जज की भांति अधिक कार्य करता है। यह वस्तुस्थिति का व्यावहारिक दृष्टिकोण न लेकर कानूनी दृष्टिकोण अपनाता है। यह भी इस व्यवस्था का दोष है क्योंकि समझौता अधिकारी का कार्य दोनो पक्षो के तर्क सुनकर अपना व्यक्तिगत निर्णय देना नही होना चाहिए बल्कि दोनो पक्षो मे सुलह कराना होना चाहिए।

समझौता व्यवस्था के जो दोष ऊपर बताए गए हैं, वास्तव में यह समझौता व्यवस्था के दोष नहीं बल्कि श्रमिको के अशिक्षित होने व अपील का अधिकार दे देने से आ गए हैं जिनको दूर किया जा सकता है। श्रमिको व सेवायोजको को अधिकार दिया गया है कि अगर समझौता अधिकारी का निर्णय उन्हे स्वीकार न हो तो वे औद्योगिक न्यायलय मे उसकी अपील कर सकते हैं। औद्योगिक न्यायालय के अध्यक्ष वकील होते हैं जो संघर्ष के निर्णय पर कानून के आधार पर विचार करते हैं। इसलिए समझौता अधिकारी को भी कानून के आधार पर विचार करना पडता है।

(स) मध्यस्थता (Mediation) इस विधि मे श्रमिको और सेवायोजकों के मध्य समझौता कराने के लिए किसी मध्यस्थ की नियुक्ति की जाती है। मध्यस्थ कोई भी व्यक्ति हो सकता है, चाहे वह सरकारी अधिकारी है अथवा गैर-सरकारी। मध्यस्थ निष्पक्षता के आधार पर संघर्ष के दोनो पक्षो के तर्क सुनता है। और उसके पश्चात् निर्णय देता है। परन्तु इस व्यवस्था के निर्णय को मानना अथवा न मानना श्रमिकों और सेवायोजको की इच्छा पर निर्भर करता है। जब संघर्ष को निपटाने मे यह विधि भी असफल हो जाती है तो पंच-फैसले की शरण ली जाती है।

मध्यस्थता की नीति की यह विशेषता है कि इसमे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को प्रधानता दी गई है। श्रमिक और सेवायोजक पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं। उन पर किसी प्रकार की बाधा अनिवार्यता अथवा बोझा नही होता।

(द) पंच निर्णय (Arbitration) इस विधि मे तीसरे पक्ष का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इस विधि मे श्रमिको व सेवायोजको दोनो दलो की बात सुनने के बाद तीसरा दल अपना निर्णय देता है जो अदालत के फैसले के समान होता है।

पंच निर्णय ऐच्छिक हो सकता है या अनिवार्य। ऐच्छिक पंचनिर्णय मे दोनो पक्षकार अपन झगडे को किसी पंच के सुपुर्द करने के लिए राजी होते हैं जिसका निर्णय उन्हे स्वीकार होगा। पंच निर्णय तब अनिवार्य कहलाता है जबकि झगडे को सेवायोजकों और श्रमिकों की स्वेच्छा पर अनिश्चित काल के लिए नही चलने दिया जाता बल्कि सर-

कार उसमे हस्तक्षेप करती है और उसकी अनिवार्य रूप से जाच व निर्णय किया जाता है। यह निर्णय दोनो ही पक्षो को अनिवार्यतः स्वीकार करना पडता है।

जो विद्वान **अनिवार्य पच-निर्णय** के पक्ष मे है उनका मत है : (अ) पच निर्णय व्यवस्था को अनिवार्य इसलिए होना चाहिए क्योकि झगडो का निपटारा करने का कार्य यदि मालिको और श्रमिको की इच्छा पर छोड दिया जाएगा तो झगडा न केवल अनावश्यक रूप से दीर्घ समय तक चलता रहता है बल्कि झगडे का रूप और भी जटिल हो जाता है। (ब) ऐच्छिक पच निर्णयो की सरलता से अवहेलना की जा सकती है जिससे कि एक झगडा होने के स्थान पर अन्य झगडो व अन्य रूपो मे प्रकट होता है। (स) अनिवार्य पच-निर्णय से झगडे का निपटारा अधिक वैज्ञानिक ढग से सम्पन्न हो जाता है क्योकि इस व्यवस्था को लागू करने के लिए पहले से ही एक सगठन स्थापित कर लिया जाता है।

परन्तु अनेक विद्वानो ने अनिवार्य पच-निर्णय को बहुत हानिप्रद बताया है। **भारतीय शाही कमीशन** ने इसका विरोध किया था। **सिडनी वेब** ने लिखा है, "अनिवार्य पच-निर्णय यदि सामूहिक सौदेबाजी का दमन करता है तो किसी के लिए लाभप्रद नही है।" अमेरिका का श्रमिक वर्ग निम्नलिखित कारणो से अनिवार्य पच-निर्णय व्यवस्था के विरुद्ध है।

1 यह उद्योग मे स्वशासन का अन्त करती है क्योकि इसमे सरकारी हस्तक्षेप बढ जाता है।

2 यह औद्योगिक झगडो को और भी दीर्घकालीन बना देती है।

3 यह सामूहिक सौदेबाजी का अन्त करके उसे मुकदमेबाजी मे परिवर्तित कर देती है।

4. यह व्यवस्था व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को पूर्णतया छीन लेती है।

5 इसमे श्रम का अपव्यय होता है क्योकि श्रमिको को गवाह के रूप मे अनिवार्य रूप से श्रम न्यायालय मे उपस्थित होना पडता है।

6 इस व्यवस्था में श्रमिको को उतने दिनो तक हानियो को सहन करना पडता है जितने दिन तक पचायत अपना निर्णय न दे दे। इस अर्थ में श्रमिको को मुकदमे की सुनवाई व दोष प्रभावित होने से पहले ही दड का भागीदार होना पडता है।

7. यह श्रमिक वर्ग को सेवायोजको के अनुचित कार्यों के विरोध और अपने काम की दशाओ में सुधार के लिए शातिपूर्ण प्रयत्नो से वचित करती है।

अनिवार्य निर्णय के सबध मे **श्री वी० वी० गिरि** ने लिखा है—"अनिवार्य पच-निर्णय एक पुलिसमैन के समान है जो कि सघर्ष की निगरानी करता रहता है और जरा-*सा सदेह होते ही दोनो दलो को अदालत मे घसीट ले जाता है* और न्याय की एक महगी खुराक दोनो को पिला दी जाती है। चाहे उससे उन्हे असतोष ही हो।"

शाति बनाये रखने के साधन

सघर्ष समाधान के साधन और शाति बनाये रखने के साधन दोनो ही औद्योगिक शांति के लिए आवश्यक हैं। शाति बनाये रखने के साधनो का हम निम्नलिखित शीर्षको

के अतर्गत अध्ययन कर सकते हैं—

1 श्रमिक सघ श्रमिको व सेवायोजको के पारस्परिक सबधो को अधिक घनिष्ट व मैत्रीपूर्ण बनाने मे श्रमिक सघ एक महत्त्वपूर्ण साधन है यह बात अब विस्तृत रूप से स्वीकार की जाने लगी है। इसका कारण यह है कि सगठित श्रमिको से सपर्क रखना और उनके दुख दर्द, सुविधा असुविधा एव इच्छा-अनिच्छा को जानना आसान है। सगठित श्रमिक अधिक अनुशासित और उत्तरदायी होते हैं। उनके परस्पर के झगड और मनमुटाव भी कम हो जाते हैं। श्रमिक सघ एक अन्य रूप मे भी औद्योगिक सघर्षों को रोकता है। श्रमिक सघ एक सगठन है और सगठन म शक्ति होती है। अत जिन उद्योगो मे सुदृढ और सुसगठित श्रमिक सघ विद्यमान हैं उनमें सेवायोजक मनमाने ढग से श्रमिको का शोषण नही कर पाते। इससे झगडो की सभावना भी कम हो जाती है।

2 कार्य समितिया औद्योगिक झगडो के प्रतिरोध के साधन के रूप मे कार्य समितियो के महत्त्व को विश्व के सभी प्रगतिशील देशो ने स्वीकार किया है। इस प्रकार की समितिया अमेरिका ग्रेटब्रिटेन, डेनमार्क, इटली, आस्ट्रेलिया चेकोस्लोवाकिया फिनलैंड, फ्रास नार्वे पोलेंड जर्मनी, हगरी आदि देशो मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। इन कार्य समितियो के अतर्गत श्रमिको और सेवायोजको के समान सख्या मे प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक औद्योगिक सस्था की इस प्रकार की कार्य समिति अलग-अलग होती है और प्रत्येक औद्योगिक सस्था की कार्य समिति मे उस सस्था के श्रमिको व सेवायोजको के समान सख्या मे प्रतिनिधि होते हैं।

उद्देश्य कार्य समितियों के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं •

1 **सेवायोजकों और श्रमिकों के बीच होने वाले सघर्षों को समाप्त करना** कार्य समितियो का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य श्रम और पूजी के बीच उत्पन्न होने वाले सघर्षों को समाप्त करना व औद्योगिक वातावरण को मधुर बनाना है।

2 **श्रम और पूजी के बीच सहयोग** सेवायोजकों और श्रमिको के बीच की खाई को समाप्त करके उन्हे एक-दूसरे के निकट लाना और उनके सबधो को अच्छा करना कार्य समितियो का एक प्रमुख उद्देश्य है। कार्य समितियो द्वारा श्रमिको का उन परिस्थितियो के प्रति जिनमे कि उनका कार्य सम्पादित होता है व्यापक रुचि और उत्तरदायित्व का अनुभव हो।

3 **कारखाने के नियमो का पालन** कार्य समितियो का एक अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य श्रमिको द्वारा कारखाने के उन नियमो का पालन कराना है जिनके सबध म श्रमिक तथा सेवायोजक दोनो मे बीच सामूहिक ठहराव हो गया हो।

कार्य समितियों के कार्य औद्योगिक सघर्षों की रोकथाम म इन समितिया का महत्त्व इनके निम्नलिखित कार्यों से स्पष्ट हो जायगा

(i) श्रमिको मे उनके कार्य के प्रति रुचि और उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करना।

(ii) मजदूरी के सामान्य प्रश्नो को छोडकर अन्य किसी भी मामले पर परामर्श देना।

(iii) श्रमिको और सेवायोजको के बीच हुए समझौते की शर्तों को लागू करना।

(iv) सेवायोजको व श्रमिको के बीच संघर्ष को रोकना व दोनो पक्षो के बीच गलतफहमी न होने देना।

(v) दिन-प्रतिदिन की समस्याओ को सुलझाकर श्रमिको और मालिको मे पारस्परिक सहयोग बनाये रखना।

(vi) श्रमिको की सुख-सुविधा, स्वास्थ्य, मनोरजन, कल्याण और सुरक्षा सबधी प्रश्नों पर विचार करना।

(vii) औद्योगिक उत्पादकता की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना।

(viii) श्रमिको की कार्यक्षमता को घटाने वाली परिस्थितियों की जाच करना।

(ix) श्रमिको के जीवन-स्तर को ऊचा उठाने के लिए आवश्यक प्रयत्न करना।

(x) श्रमिको व मिल-मालिको के बीच मानवीय व्यवहार और पूर्ण अनुशासन बनाये रखने के लिए प्रयास करना।

(xi) श्रम न्यायालयो के निर्णयो, सरकारी आदेशो और विज्ञप्तियो के अर्थ-स्पष्टीकरण के सबध मे प्रबधको स बातचीत करना और उन्हे लागू करना।

(xii) किसी भी कर्मचारी द्वारा कारखाने के दैनिक जीवन और सुख-सुविधा को घनिष्ठ रूप से प्रभावित करने वाले प्रश्नो के सबध मे प्रस्तुत किए गए सुझावों पर विचार करना।

(xiii) तालाबदी व हडताल न होने देना और अगर किसी कारण हो जाती है तो ऐसे प्रयत्न करना जिससे कि वह अधिक दिन तक न चल सके।

(xiv) मिल मे सामाजिक जीवन का विकास करना ताकि श्रमिको मे आपस मे भी सौहार्दपूर्ण सबध पनप सकें।

श्रम के शाही आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे औद्योगिक सघर्षों को रोकने व उनका निपटारा करने के लिए उपरोक्त प्रकार की समितियो पर बल दिया था जिनके परिणाम-स्वरूप हमारे देश मे कुछ कार्य समितियो की स्थापना की गई परतु वे अपने कार्य मे अधिक सफल नही हुई। सेवायोजक उन्हें श्रम सघो का स्थानापन्न समझकर उन पर विश्वास नही करते जबकि श्रम सघो की दृष्टि मे ये समितिया इनकी विरोधी सस्थाए है। अपनी अज्ञानता के कारण श्रमिक भी उन पर विश्वास नही करते। इस प्रकार इन समितियों को किसी भी पक्ष का सहयोग प्राप्त नही है।

भारतीय सेविवर्गीय प्रबध सस्था के आठवें वार्षिक अधिवेशन ने कार्य समितियो को सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं--

(i) कार्य समितिया सुझावात्मक होनी चाहिए। (ii) कार्य समितियो म पर्यवेक्षक के स्तर के अधिकारी भी सम्मिलित किए जा सकते हैं। (iii) कार्य समिति के निर्णयो का अधिकाधिक प्रचार किया जाना चाहिए। इसके लिए पर्यवेक्षक की सहायता

भी ली जा सकती है। (iv) सयुक्त परामर्श के निर्णय क्षेत्र को सामूहिक समझौते के निर्णय क्षेत्र से पृथक् रखना चाहिए। (v) कार्य समितियो पर श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य उसी सस्था के कर्मचारी होने चाहिए। (vi) प्रबधकों को अपने कर्मचारियों मे अपने लिए विश्वास पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

3 स्थायी आदेश (Standing Order) औद्योगिक सघर्षों को रोकने के लिए स्थायी आदेश भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है अनुभव बताता है कि अनेक झगडे इस प्रकार के होते हैं कि या तो कार्य के कोई नियम नही होते अथवा उन नियमो का ज्ञान नही होता। यह नियम व्यक्तिगत भी हो सकते हैं या अधिनियम द्वारा निर्धारित हो सकते हैं। इन आदेशो मे कार्य के घटे, श्रमिको की छुट्टिया, वेतन मिलने की तारीख मजदूरी की दर, प्राविडेंट फण्ड इत्यादि की सब शर्तों का उल्लेख होता है। ब्रिटेन मे इस प्रकार की दशाए एव शर्तें श्रमिक एव सेवायोजको के सघो के सयुक्त समझौते के द्वारा निश्चित की जाती हैं। भारत में इस सबध मे औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश)' अधिनियम 1946 पास हो चुका है जिसके अनुसार 100 या अधिक कर्मचारियो की भर्ती करने वाले कारखानों को निर्दिष्ट अधिकारी के पास इस सबध मे नियम भेजना आवश्यक होता है। 1961 में इस दूसरे उद्योगो म जिसमे 100 रु० से कम कर्मचारी हो लागू करने का अधिकार दिया गया है।

4 सयुक्त औद्योगिक परिषद् . इन परिषदो मे श्रम और पूजी दानो के ही समान प्रतिनिधि होते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य सेवायोजको व श्रमिको के बीच एक ऐसा वातावरण पैदा करना होना है जिसस दोनों ही पक्ष कधे स कधा मिला कर चल सकें। ये परिषदें श्रमिको व सेवायोजको के हितो की रक्षा के लिए पारस्परिक समझौता करती हैं।

इन परिषदो की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक व सेवायोजक दोनो के सगठन सुदृढ हो और दोनो ही देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण हो।

5 मजदूरी परिषद् मजदूरी परिषद का सगठन श्रमिको और सेवायोजको के समान अनुपात में प्रतिनिधियो व कम स कम तीन बाहरी विशेषज्ञ के सामजस्य मे होता है। इनका प्रमुख कार्य न्यूनतम मजदूरी की दर व कार्य करने की दशाओ के निर्धारण करने में योग देना है।

6 सामूहिक सौदेबाजी यह सेवायोजक और श्रमिक दोनो पक्षो म होने वाला समझौता है जो सघर्षों के कारणो को बहुत कुछ कम कर देता है। इसकी विस्तृत विवेचना हमने एक पृथक अध्याय म की है।

भारत मे औद्योगिक झगडो को रोकने तथा निपटाने की विद्यमान व्यवस्था (Machinery for the Settlement of Industrial Disputes)

भारत म औद्योगिक सघर्षों को रोकने और उनको तय करने के लिए पहली व्यवस्था सर्न् 1929 म व्यापारिक सघर्ष अधिनियम द्वारा की गई थी। इस अधिनियम के द्वारा सरकार को यह अधिकार दिया गया कि जहा वह उचित समझे, औद्योगिक

सघर्षों मे हस्तक्षप कर सकती है। इस अधिनियम के अतगत झगड से सबधित किसी पक्षकार की प्राथना पर सरकार झगडा सुलझाने के लिए एक **जाच अदालत और सम झौता बोड** को नियुक्त कर देती थी। किंतु इसके निणय पक्षकारो पर अनिवाय रूप से बाधित न होने के कारण उक्त व्यवस्था से कोई लाभ नही हुआ। सन 1938 मे बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम पास किया गया जिसमे सेवायाजको द्वारा श्रम सघा की अनिवाय मान्यता रोजगार की शर्तों का श्रमिको को ज्ञान कराना औद्योगिक अदालत की स्थापना का प्रावधान था। 1946 मे बबई औद्योगिक विवाद अधिनियम का प्रति स्थापक बबई औद्योगिक सबध अधिनियम पास किया गया। 1947 मे भारत सरकार ने **औद्योगिक सघष अधिनियम** पास किया जिसका सशोधन 1956 मे हुआ। औद्योगिक सघर्षो के निपटाने के सबध म वतमान मे यही प्रमुख अधिनियम है। इस अधिनियम क अतगत औद्योगिक विवादों के निपटाने हेतु निम्नलिखित 8 व्यवस्थाए हैं—

1 **कारखाना समिति** (Works Committees) प्रत्येक कारखाने म अच्छे औद्योगिक सबध स्थापित करने के लिए कारखाना समितिया बनाई गई हैं जिनमे श्रमिको व सेवायोजको के बराबर बराबर प्रतिनिधि रहते हैं। इन समितियो का उद्देश्य श्रमिको एव मालिको के मध्य दैनिक जीवन मे उत्पन्न होने वाले छोटे मोटे झगडों को रोकना और अच्छे पारस्परिक सबध स्थापित करना है।

2 **समझौता अधिकारी** (Conciliation Officers) समझौता अधिकारी श्रमिक व मालिक दोनो पक्षो को इकटठा लाकर आरभ मे ही झगड को निपट ने का प्रयत्न करते हैं। यदि दोनो पक्षो मे समझौता हो जाता है दोनो पक्ष इस पर हस्ताक्षर कर देते हैं और यह समझौता दोनो पक्षो को मानना पडता है। यदि समझौता अधिकारी के प्रयत्न असफल रहते हैं तो वह अपनी रिपोट सरकार को भेज देता है। तत्पश्चात सर कार झगड को समझोता मडल या जाच न्यायालय को सौंप देती है।

3 **समझौता का सुलह मडल** (Board of Conciliation) सरकार औद्यो गिक सघर्षो को निपटाने के लिए एक मडल भी नियुक्त कर सकती है जिसमे एक चेयरमन और दो चार सदस्य होते हैं। इनकी सख्या सरकार निर्धारित करती है। सदस्यो में मालिको तथा श्रमिको के बराबर बराबर प्रतिनिधि होते है। समझौता मडल को दो माह के अदर ही समझौते का अपना प्रयत्न समाप्त करना होता है। इसे भी अपनी सफ लता या असफलता के सबध मे सरकार को रिपोट देनी पडती है।

4 **जाच न्यायालय** (Court of Inquiry) जब कोई औद्योगिक सघष समझौता अधिकारियो या समझौता मडल द्वारा नही निपटाया जा सकता तो इसे जाच न्यायालय मे भेज दिया जाता है इस प्रकार के न्यायालय मे एक या दो स्वतत्र व्यक्ति होते हैं। यह जाच न्यायालय औद्योगिक सघष के बारे मे आवश्यक जाच कर 6 माह के अदर अपनी रिपोट सरकार को प्रषित कर देता है।

5 **श्रम ट्रिब्युनल** (Labour Tribunal) किसी मामले से सबधित औद्यो गिक सघष के निणय क लिए उपयुक्त एक या अधिक श्रम न्यायालय की नियुक्ति सर कार कर सकती है श्रम न्यायालय निम्नलिखित मामलों पर निणय दे सकता है—

(अ) सेवायोजको द्वारा स्थायी आदेशो के अतर्गत जारी किए गए आदेश की शुद्धता एव बद्धता।
(ब) श्रमिको की सेवामुक्ति करने के मामले।
(स) किसी विशेद सुविधा को वापस लेने सबधी मामले।
(द) हडताल या तालाबदी की वैधता के मामले।
(य) अन्य मामले।

6 औद्योगिक ट्रिब्युनल (Industr al Tribunal) औद्योगिक ट्रिब्युनल का गठन प्रादेशिक सरकारो द्वारा औद्योगिक विवादो पर निर्णय देने के लिए किया जाता है। इसे निम्नलिखित मामलो पर निर्णय देने का अधिकार है—

(i) मजदूरी उसके भुगतान की अवधि व नीति सबधी मामले।
(ii) बोनस, लाभभागिता, प्राविडेण्ट फण्ड सबधी मामले।
(iii) क्षतिपूरक व अन्य भत्तो सबधी मामले।
(iv) काम के घटे व विश्राम मध्यातर के मामले।
(v) सवेतन अवकाश व सार्वजनिक छुट्टियो सबधी मामले।
(vi) श्रमिक छटनी व उपक्रम को बद करने के मामले।
(vii) विवेकीकरण सबधी मामले।
(viii) अनुशासन के लिए नियम सबधी मामले।
(ix) अन्य मामले।

7 राष्ट्रीय ट्रिब्युनल (National Tribunal) इसके कार्यक्षेत्र मे राष्ट्रीय महत्त्व के मामले या ऐसे मामले जो एक मे अधिक राज्यो से सबधित हैं, आते हैं। इसके सामने जब कोई विवाद विचारणीय होता है तो उस समय किसी अन्य श्रम न्यायालय या औद्योगिक ट्रिब्युनल को निर्णय देने का अधिकार नही है।

8 पच-निर्णय (Arbitration) किसी भी औद्योगिक सघर्ष को सबधित पक्षो द्वारा लिखित ठहराव द्वारा पच निर्णय हेतु सदभित किया जा सकता है।

औद्योगिक सघर्ष को रोकने सबधी उपाय

उपर्युक्त व्यवस्थाओ का उद्देश्य औद्योगिक सघर्षों को समझाना और उनके सबध म निर्णय देना है लेकिन ऐसे प्रयास भी किये गये हैं जिससे औद्योगिक सघर्षों को जन्म न मिले। इस सबध मे प्रमुख प्रयास निम्नलिखित हैं

1 अनुशासन सहिता सन 1957 मे भारतीय श्रम सम्मेलन मे अनुशासन सहिता सबधी प्रस्ताव पारित किया गया जिसका उद्देश्य सेवायोजको तथा श्रमिको मे यह आशा रखना है कि पारस्परिक समझौतो तथा विचार विमर्श द्वारा अपनी समस्याओ और मतभेदो का समाधान करेगे। अनुशासन सहिता मे निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं—

(i) बिना उचित नोटिस के तालाबदी व हडताल नही की जा सकती।
(ii) विभिन्न दलो को बिना एक दूसरे से परामर्श किये कोई एक-पक्षीय कार्यवाही नही की जा सकती।

(iii) 'धीरे कार्य करो' की नीति नही अपनायी जायेगी और न ही जानबूझकर सयत्र या सम्पत्ति को क्षति पहुचायी जायेगी।

(iv) दोनो पक्षो को कोई ऐसा कार्य नही करना चाहिए जिससे कारखाने की औद्योगिक शाति भग हो।

अनुशासन सहिता मे 180 सेवायोजको तथा 166 ऐसे मजदूर सघो को स्वीकार किया गया है, जो किसी केन्द्रीय नियोजक अथवा श्रम सघ के सदस्य नही हैं। यह सहिता सार्वजनिक क्षेत्र के उन उपक्रमो पर भी लागू होती है जो कपनियो या निगम के रूप मे चलाये जा रहे हैं।

2 **औद्योगिक शाति** : नवम्बर 1962 मे सेवायोजको एव श्रमिको की केंद्रीय समिति की सयुक्त बैठक मे एक औद्योगिक शाति प्रस्ताव पारित किया गया था। इस प्रस्ताव मे देश मे आपत्तिकालिन स्थिति मे उत्पादन कार्य मे विघ्न न डालने तथा उत्पादन मे ढील न डालने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त उत्पादन को अधिकतम करने तथा प्रयासो को हर सम्भव उपाय से प्रोत्साहित करने का सकल्प किया गया।

3 **सयुक्त प्रबध परिषदें** (Joint Management Councils) सन् 1948 की औद्योगिक नीति मे श्रमिको के प्रबध मे भाग लेने के, महत्व पर प्रकाश डाला गया। फलतः अनेक औद्योगिक उपक्रमो मे सयुक्त प्रबध परिषदो की स्थापना की गई। सन् 1974 मे देश मे 131 उपक्रमो मे सयुक्त प्रबध परिषदो की व्यवस्था थी। 31 अक्टूबर 1905 को सरकार के शॉप स्तर और प्लान्ट स्तर पर सयुक्त परिषदें स्थापित करने की योजना घोषित की है।

4 **संयुक्त विचार-विमर्श** (Joint Consultative Boards) : पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा एक दूसरे पक्ष की स्थिति और कठिनाई समझने तथा आपसी द्वेष एव स्नेह को समाप्त करने के लिए सयुक्त विचार-विमर्श की प्रथा प्रारभ की गई। राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार के बोर्ड की स्थापना सन् 1952 मे 'Joint Consultative Board of Industry and Labour' के नाम से की गई।

5 **मजदूरी मण्डल** (Wage Boards) सन् 1947 के भारतीय श्रम सम्मेलन मे देश के प्रमुख उद्योगो मे मजदूरी मण्डलो की स्थापना का निश्चय किया गया। देश मे इस समय लगभग 23 प्रमुख उद्योगो मे मजदूरी मण्डल स्थापित किये जाते है।

6 **ऐच्छिक मध्यस्थता** (Voluntary Arbitration) : जून 1964 के औद्योगिक विवाद (सशोधित) अधिनियम के अतर्गत ऐच्छिक मध्यस्थता के आधार पर किये गये निर्णयो को भी वैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। इस व्यवस्था के लागू होने मे बहुत से औद्योगिक सघर्ष स्वैच्छिक पच निर्णय द्वारा निपटाए गए हैं। सन् 1967 मे सरकार द्वारा एक 'राष्ट्रीय पच निर्णय प्रोत्साहन मण्डल' स्थापित किया गया है।

भारतीय औद्योगिक शाति व्यवस्था का मूल्याकन एव सुझाव

1966 मे राष्ट्रीय श्रम आयोग की स्थापना हुई जिसकी रिपोर्ट 1969 मे प्राप्त हुई। इस आयोग ने विद्यमान औद्योगिक सबध मशीनरी की जाच करके उसे अनेक

कमियो ने पूर्ण पाया। आयोग के अनुसार 1959 और 1966 के बीच केन्द्रीय शांति व्यवस्था ने जिन सघर्षों को सुलझाने का प्रबध किया उसमे 57% से 87% मामलो मे सफलता प्राप्त हुई। अन्य विवाद या तो पच-निर्णय से अथवा आपसी बातो से तय हुए। आयोग ने बताया कि औद्योगिक सबध मशीनरी की प्रमुख कमिया निर्णयो मे देरी, व्यय, मशीनरी की एडहाक प्रवृत्ति व राजकीय स्वेच्छात्मक निर्णय आदि से सबधित हैं। राजनीतिक दबावो व हस्तक्षेप मे आक्षेप भी लगाए गए हैं।[1] अतः राष्ट्रीय श्रम आयोग ने औद्योगिक शांति बनाए रखने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं

(क) **औद्योगिक सबध आयोग का गठन :** आयोग ने राष्ट्रीय एव प्रादेशिक स्तर पर औद्योगिक सबध आयोग नियुक्त करने का सुझाव दिया है जो समझौता और न्याय प्रणाली दोनो के कार्य करेगा। इसके अन्य कार्य श्रमिक सघ को मान्यता देना आदि होगे। इसमे न्यायालयो के जज आदि के स्तर के व्यक्ति होगे।

(ख) **श्रमिक न्यायालय :** श्रमिको के सघर्षो का श्रमिक न्यायालयो द्वारा फैसला हो सके इसके लिए प्रत्येक राज्य मे श्रमिक न्यायालय की स्थापना का सुझाव राष्ट्रीय श्रम आयोग ने दिया है।

(ग) **सामूहिक समझौतों को प्रोत्साहन :** आयोग ने सामूहिक समझौते की प्रणाली के क्रमश विकास पर बल दिया है। राष्ट्रीय श्रम आयोग का विश्वास है कि प्रारभ मे न्याय प्रणाली आदि की आवश्यकता की प्रणाली फिर क्रमश उद्योगपति व मजदूर स्वय अपने विवाद तय करना सीख लेंगे।

(घ) **सयुक्त प्रबध :** श्रमिको को प्रबध मे हिस्सा दिया जाना चाहिए। आयोग का विचार है कि इस कार्य के लिए कार्य समिति के ही अधिकारो और कर्तव्यो का बढाना उचित रहगा।

(ङ) **अनुचित कार्यों पर नियत्रण** आयोग ने श्रमिको के द्वारा की जाने वाली अनुचित कार्यवाही को रोकने के लिए दण्ड की व्यवस्था का सुझाव दिया है। इस प्रकार की अनुचित क्रियाओ की सूची तैयार की जानी चाहिए।

वी० वी० गिरि के सुझाव श्री वी० वी० गिरि ने देश मे औद्योगिक सघर्षों को रोकने व औद्योगिक शांति स्थापित करने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुझाव दिए है।

1 **आतरिक समझौता** औद्योगिक सघर्षों का निपटाने के लिए आतरिक समझौते की नीति अपनानी चाहिए अर्थात् श्रम और पूजी का स्वय अपने सघर्षो का निपटान की पूर्ण स्वतत्रता होनी चाहिए।

2 **सकटकालीन व्यवस्था :** यदि किसी उद्योग मे सकटकालीन व्यवस्था पैदा हो जाए तो ऐसी स्थिति मे सरकार को हस्तक्षेप करके ऐसा आदेश जारी करना चाहिए जो सभी पक्षो को मान्य हो।

3 **संयुक्त परिषदें** औद्योगिक स्तर पर ही औद्योगिक सघर्षों का निपटारा होना चाहिए और इस कार्य मे सयुक्त परिषदें सक्रिय योगदान दे सकती हैं।

1. National Commission on Labour, p. 327.

4 **ऐच्छिक समझौता व्यवस्था** - यदि सयुक्त परिषदें सघर्षों का निपटारा करने म असमर्थ सिद्ध हो तो दोनो पक्ष अपनी सहमति से मामले को समझौता व्यवस्था के अतर्गत किसी समझौता व्यवस्थापक के पास भेज देना चाहिए और उनका निर्णय दोनो पक्षो का मान्य होना चाहिए।

5 **सामूहिक समझौता** यह अधिक श्रेष्ठ होगा कि सवायोजक व श्रमिक आपस मे बातचीत करके एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दें और कार्य करने के दौरान दोनो पक्ष उनका पालन करना अपना कर्तव्य समझें।

6 **प्रतिबधक उपाय** औद्योगिक शाति स्थापित करने के लिए हर स्तर पर यही प्रयत्न होना चाहिए कि झगडा उत्पन्न ही न हो। इस हेतु समझौत की व्यवस्था के तीन मुख्य कार्य होने चाहिए—(अ) ऐच्छिक समझौते के यत्र को सुदृढ बनाया जाए, (ब) ऐच्छिक समझौते को रजिस्टर्ड किया जाए, (स) स्वस्थ औद्योगिक सबधों का विकास किया जाए।

7 **सार्वजनिक हित** सामूहिक रूप से समझौता कराने की सस्था का अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि श्रमिक और सेवायोजक इस सीमा तक सार्वजनिक हित म अपने सयुक्त सबध को बनाए रखने की क्षमता व तत्परता रखते हैं। औद्योगिक प्रजातत्र की माग यह है कि सघष म सबधित पक्षों को औद्योगिक सबधों की अत्यधिक सभ्य धारणा को अपनाना चाहिए जिसकी विशेषता झगडे करने में नहीं बल्कि विचार विमर्श करने म है।

अन्य सुझाव भारत मे आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक क्षेत्र म शान्ति बनी रहे। श्रमिकों को उचित मजदूरी देकर कार्य की दशा म सुधार करके और प्रबध म भागीदार बनाकर उन्हें उद्योगो म महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए। महात्मा गाधी के शब्दो मे 'नौकर और मालिक के सबधो को स्वार्थ की भावना से आबद्ध न होकर एक दूसरे के सुख की भावना पर निर्भर होना चाहिए। लेन-देन की नीति पर स्थिर न होकर पारस्परिक सहानुभूति पर स्थिर रहना चाहिए।" मजदूर और उद्यागपति दोनों ही एक मार्ग के राही हैं, एव रथ के दो चक्र हैं और एक साधना क दो साधक हैं। इनक पारस्परिक सबध अच्छे होने चाहिए ताकि सघष शीघ्रातिशीघ्र समझौत द्वारा निपटाया जा सक। इसी स देश की व श्रमिका तथा उद्योगपतियों की भलाई निहित है। श्रम और पूजी क मध्य शातिपूर्ण सबधा की स्थापना के लिए निष्कर्ष के रूप मे निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकत हैं—

1 श्रम प्रबध सबधा के बारे मे सभी प्रमुख सूचनाए प्रकाशित करन की नीति अपनानी चाहिए।

2 सेवायोजका एव प्रबधका के बीच समय-समय पर सयुक्त सम्मेलनो की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि यदि सेवायोजको के बीच किसी प्रकार की गलतफहमी है ता वह दूर हो जाए।

1 V V Giri Labour Problems in Indian Industry

3 श्रमिको को न्यायोचित मजदूरी देने की दृढ रीति अपनानी चाहिए। झगडो का एक मुख्य कारण मजदूरी और महगाई की विपमता है। मूल्य बढते हैं परतु उनके अनुरूप ही मजदूरी मे उसी अनुपात मे वृद्धि नही होती। यदि खास तौर से महगाई के भत्ते मे मूल्य स्तर के आधार पर वृद्धि हो तो यह समस्या हल हो सकती है।

4 श्रमिक के असतोष को दूर करने के लिए श्रम कल्याण मे कार्य का बडा सहयोग रहता है। श्रम कल्याण की सुविधाए उपलब्ध होने से एक तो मज्दूर के चरित्र का विकास होता है और वह अधिक उत्तरदायी तथा अनुशासित होता है और साथ ही उनके मन म उद्योगपति के लिए कटुता भी कम होती है।

5 अखिल भारतीय स्तर पर विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना बनाई जानी चाहिए।

6 मजदूर एक जीवन प्राणी है। उसका एक व्यक्तित्व होता है, भावनाए और समस्याए होती है, उनको समझकर ही प्रबधको को उनमे व्यवहार करना चाहिए। आज के युग मे औद्योगिक मनोविज्ञान मे महत्वपूर्ण विषय है।

7 श्रमिको का जीवन सुखी हो इसके लिए इन्हे कानूनी सरक्षण मिलना चाहिए।

8 जो श्रमिक अपनी दशा मे सुधार करने को उत्सुक हैं उन्हे तकनीकी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

9 औद्योगिक उत्पादन से सबधित सभी विषयो मे श्रमिको का सहयोग लेना चाहिए।

10 जहा तक व्यावहारिक हो वहा तक श्रमिको को लाभ मे भाग देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

11 श्रमिको को बढता हुआ रोजगार मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए।

12 स्वतत्र सघो के लिए वास्तविक, सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था होनी चाहिए।

13 शिकायतो के गभीर रूप धारण करने से पहले ही उन्हे दूर करने के लिए उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए। शिकायतो पर कार्यवाही करते समय निम्नलिखित सिद्धातो को ध्यान मे रखना चाहिए। (अ) शिकायत सुनने का स्थान शातिपूर्ण एव एकाकी होना चाहिए, (ब) श्रमिक को अपने ढग से अपनी शिकायत करने का अवसर देना चाहिए। (स) शिकायत करने वाले कमचारी को शिकायत सुने जाने की अवधि मे सतुष्ट रखने के लिए प्रयास करना चाहिए। (द) यदि शिकायत सुनने वाला अधिकारी अपना निर्णय तत्काल नही देता तो उसे पीडित श्रमिक को यह बतला देना चाहिए कि वह अगला कदम क्या और कब उठायेगा। इससे वह अनुभव करने लगेगा कि प्रबध उसके मामलो मे न्यायोचित व्यवहार को तत्पर है।

14 समाज की अर्थव्यवस्था मे परिवर्तन किया जाना चाहिए अर्थात समाजवाद की स्थापना की जानी चाहिए। समाजवाद मे उत्पादन लाभ के लिए नही समाज के कल्याण के लिए किए जाते हैं। अत. इनमे व्यक्तिगत लाभ के लिए शोषण का प्रश्न

नही होता । परतु जब तक पूरे समाज मे समाजवादी रचना नही हो जाती श्रमिको का सघर्ष भी समाप्त नहीं होगा । केवल राष्ट्रीयकरण से मजदूरो का असतोष दूर नही हो सकता । सरकारी कारखानो व उपक्रमो से भी हडतालें होती हैं । परतु पूर्ण समाजवाद मे यह समस्या काफी सीमा तक कम हो जाती है इसम सदेह नही है ।

15 13 फरवरी 1978 को नई दिल्ली मे भारतीय नियोक्ता परिषद द्वारा आयोजित पाचवें औद्योगिक सबध सम्मेलन ने उद्योग व्यापार तथा औद्योगिक सबधो मे दिलचस्पी रखने वाले तत्वो को औद्योगिक सबधो मे सबधित कानूनो पर विचार-विमर्श करने का एक उपयोगी अवसर दिया ।

इस सम्मेलन मे भाग लेने वालो ने औद्योगिक विवादो को कम करने के लिए कई सुझाव दिए गए—

(i) अखिल भारतीय नियोक्ता सगठन के अध्यक्ष श्री क० एन० मोदी ने कहा कि श्रम नीति तथा उसको अमल मे लाये जाने वाले कानून ऐसे होने चाहिए जिसस रोजगार के अवसरो तथा उत्पादन की वृद्धि मे सहायता मिले । उन्होने कहा कि मालिक सौदेबाजी को आश्रय और प्रोत्साहन देंगे परतु यह विचार कि अल्पसख्यक यूनियन को सौदेबाजी मे शामिल किया जाना चाहिए उनको पसद नही आता । उनकी सलाह थी कि मालिको को बहुसख्यक यूनियन से सौदेबाजी मे दृढता से काम लेना चाहिए और सबको खुश रखने के प्रलोभन से बचना चाहिए ।

(ii) इम्प्लायर्स फेडरेशन आफ इडिया के अध्यक्ष नवल टाटा ने कहा कि हड़ताल को परिस्थितियो से सर्वथा अलग कर नही देखा जाना चाहिए, लेकिन यह सवाल उन्होने स्वय उठाया उस पर विस्तार से विचार नही किया ।

(iii) सार्वजनिक उपक्रमो की स्टैंडिंग कान्फ्रेंस के अध्यक्ष श्री मोहम्मद फजल ने इस बात पर अफसोस व्यक्त किया कि भारतीय अर्थव्यवस्था भारत के लगभग साथ-ही साथ स्वतत्र हुए दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशो से पिछडी हुई है ।

(iv) केंद्रीय श्रम मत्री का यह कहना सही है कि औद्योगिक सबधो को समाज मे हुए परिवर्तनो के सदर्भ मे देखा जाना चाहिए । उनका विचार है कि औद्योगिक सबधो के बारे मे नीति निर्धारित करते समय कुछ तथ्यो को जरूर ध्यान मे रखना चाहिए । ये तथ्य हैं स्वामित्व का स्वरूप उत्पादन की तकनीकी, सरकार का स्वरूप तथा उसकी विशिष्टताए, जनमत को दिशा देने के माध्यम और मालिक तथा मजदूरो द्वारा उठाए जाने वाले कदमो की सामाजिक स्वीकृति प्राप्त सीमाए । उनका सुझाव है कि मालिक-मजदूरो का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जाना चाहिए जिसम राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक सबधो के बारे मे खुले दिल से और गहराई से बहस मुबाहसा हो और बिना किसी तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप के वे अपनी समस्याओ का सर्वसम्मति से हल निकालने की कोशिश करें ।

औद्योगिक संबंध एवं योजनाएं
(Industrial Relations and Plans)

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक शांति बनाए रखना राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। साथ ही योजना मे आपसी समझौतों, सामूहिक सौदेबाजी, तथा ऐच्छिक पंचनिर्णय पर जोर दिया गया। प्रथम योजना मे सिफारिश की गई कि "राज्य को अपने हाथ वैधानिक शक्ति से सशक्त करने चाहिएं जिससे अन्य उपाय असफल होने पर सरकार द्वारा किए गए निर्णय सर्वमान्य हो सकें।"

योजना मे दो अन्य तथ्यों पर बल दिया गया—(1) श्रमिकों को बिना किसी बंधन के संघ बनाने तथा सम्मिलित होने एवं सामूहिक सौदेबाजी करने, और (2) सेवायोजक और नियोक्ता सबंध सहभागिता के रूप में वृद्धि करने के प्रयत्न करना चाहिए। वैधानिक विधि से विवादों का निपटारा करने पर इच्छानुकूल शांति का वातावरण औद्योगिक क्षेत्र मे नही बन पाता। इसी प्रकार न्यायिक विधि से परिणाम विलंब से प्राप्त होते हैं एवं प्राप्त निर्णय के सही होने की संभावना बहुत कम रहती है। अतः आयोग ने यह निर्णय लिया कि परिवाद निवारण की सबसे अच्छी क्रियाविधि यह है कि सेवायोजक एवं नियोक्ता को बिना किसी तीसरे पक्ष के आपसी सहयोग तथा परिवाद निवारण के लिए एक साथ बैठाया जाए। परिवाद निवारण की दृष्टि से सलाहकार समितियां पहला चरण है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे आयोग ने यह निर्णय लिया कि सभी स्तरों पर यथासंभव विवादों को टाला जाय। क्योंकि निर्णयों को उचित ढग से लागू न करने पर श्रम तथा प्रबंधकों मे मनमुटाव उग्र रूप धारण कर लेता है। समझौता होने तक यथासंभव यह प्रयत्न करना चाहिए कि विवाद उत्पन्न न हो। इस योजना से प्रतिरोधात्मक उपाय पर अधिक जोर दिया गया अर्थात् विवाद पर दिए गए निर्णय का पालन न करने वाले के लिए कठोर आर्थिक दंड का प्रबंध किया गया। आयोग ने श्रम संगठनों एवं कार्य समितियों के कार्यप्रणाली के समुचित अन्तर पर अधिक जोर दिया जिससे किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न हो। अतः आयोग ने संयुक्त विचार प्रणाली की आवश्यकता का अनुभव किया। इसके अतिरिक्त प्रबंधकीय समितियों पर बल दिया गया।

तृतीय योजना मे नैतिक उपायों पर बल दिया गया। वैधानिक मान्यता पर अनुशासन संहिता का नियमन इस तथ्य का परिणाम है। आयोग मे ऐच्छिक पंचनिर्णय पर बल देते हुए इस दिशा मे हुए प्रयासों मे श्रमिक सहयोग को मान्यता प्रदान की गई। इस प्रकार नैतिक प्रयास के लिए श्रमिकों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा संयुक्त प्रबंध समितियों का द्रुत गति से विकास किया जाय।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना मे श्रमिक संघ पर अधिक जोर दिया गया। योजना आयोग ने संयुक्त प्रबंध समितियों की स्थापना पर जोर देते हुए **श्रमिकों के सहसंबंध, उचित मजदूरी और अच्छी कार्य की दशायें आदि की समुचित व्यवस्था को भी महत्त्वपूर्ण अंग समझते हुए पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया।**

पांचवीं पंचवर्षीय योजना : पाचवी योजना मे इस सबध मे नीति सबधी कोई व्यापक परिवर्तन नही हुआ है और औद्योगिक शाति के आर्थिक सामाजिक पक्षो पर जोर दिया गया। इस सबध मे सामूहिक सौदेबाजी पर जोर दिया जाना, प्रबध मे श्रमिको द्वारा भाग लेने की योजना बनाना तथा औद्योगिक सबधो एव सबधित मामलो के लिए एक 'NAB' (National Apex Body) का कायम किया जाना महत्त्वपूर्ण है।

छठी पंचवर्षीय योजना : इस योजना मे पिछली नीतियो को जारी रखने का प्रावधान है।

औद्योगिक सबध नीति की एक महत्त्वपूर्ण बात राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, कुशल प्रबंध एवं श्रमिकों के हितो को ध्यान मे रखते हुए प्रबध के सभी स्तरो पर प्रभावशाली और अर्थपूर्ण सहभागिता की योजना तैयार करना और लागू करना है।

औद्योगिक सबध विधेयक
(Industrial Relation Bill)

औद्योगिक सबधी अधिनियमो को दिनाप्त वनाने की दृष्टि से 30 अगस्त 1978 को लोक सभा मे केंद्रीय श्रम मत्री ने औद्योगिक सबध विधेयक (Industrial Relations Bill) प्रस्तुत किया जिसे अब Select Committee के विचारार्थ भेज दिया गया है।

उद्देश्य (Objects)

इस विधेयक का उद्देश्य (1) वर्तमान तीन कानूनो (i) औद्योगिक विवाद अधिनियम (Industrial Disputes Act, 1947) (ii) औद्योगिक नौकरी (स्टेण्डिग आदेश) अधिनियम [Industrial Employment (Standing Orders) Act, 1946] व (iii) श्रम सघ अधिनियम (Trade Unions Act, 1926) के प्रावधानो का एकीकरण करना (2) देश के औद्योगिक सबधो को नियमित करने के लिए एक विस्तृत कानून बनाना (3) राज्यो के औद्योगिक सबध सबधी कानूनो मे कुछ प्रावधानो एव अनुशासन सहिता का समावेश करना (4) राष्ट्रीय श्रम आयोग की कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशो को लागू करने के लिए आवश्यक सशोधन करना है।

विधेयक की मुख्य बाते (Main Points of the Bill)

(1) **विधेयक का कार्य क्षेत्र** यह विधेयक विक्रय परिवर्तन, मनोरजन सबधी कार्यों में लगे उन सभी लोगो को कर्मचारी मानता है जिन्हें 1,000 प्रति माह से अधिक वेतन नही मिलता है।

(2) **अनिवार्य सेवाए** विधेयक की प्रथम सूची मे 12 उद्योग सम्मिलित किए गए हैं जिनके श्रमिको की सेवाए अनिवार्य सेवाए मानी गई है। इन उद्योगो मे हडताल और तालाबंदी निषेध कर दी गई हैं। इन उद्योगो मे द्विपक्षी वार्ता विफल होने पर औद्योगिक विवादों को अनिवार्य रूप से न्यायाधिकरण का पच के पास फैसले के लिए भेज

दिया जाएगा। इन उद्योगो की सख्या सरकार आवश्यकता पडने पर बढा सकती है।

(3) **श्रम संघों पर प्रतिबंध** : (i) श्रमिक सघो के रजिस्ट्रेशन के लिए उस उद्योग मे काम करने वाले कम से कम 10% या 100 मजदूर दोनो में से जो कम हो, होने चाहिए (ii) सभी वर्तमान श्रम सघो को अपना रजिस्ट्रेशन इस विधेयक के पारित होने पर 6 माह के भीतर नये सिरे से कराना होगा (iii) किसी भी सघ में दो से अधिक गैर श्रमिक पदाधिकारी नही हो सकते हैं। (iv) श्रम सघो से मान्यता प्राप्त एजेण्ट या समितियां ही नियोक्ताओ से समझौता या वार्ता करने के अधिकारी होंगे। यह एजेण्ट कपनी के तमाम कागजात देख सकते हैं लेकिन गुप्त बात मजदूरो से नही कहेंगे। यदि वे कहेंगे तो उन्हें 6 माह की सजा या 2,000 रुपए जुर्माना या दोनो किए जा सकते हैं। (v) श्रम सघो के आपसी विवादों को अनिवार्य रूप मे ट्रिब्यूनल या राष्ट्रीय श्रम आयोग को सौंप दिया जायेगा जिसका फैसला अतिम होगा।

4 **ले-आफ छटनी व बदी पर रोक** · वे प्रतिष्ठान जहा 100 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं उन्हें ले-आफ। छटनी या बदी के लिए सरकार से पूर्व अनुमति लेनी होगी। *ले-आफ मे मुआवजा देय होगा जो पहले महीने मे 50% और बाद के लिए 75%* होगा।

5 **विद्यमान वर्क समिति व बोर्ड आफ कान्सीलिएशन के लिए प्रावधान का समापन** : इनको समाप्त कर सरकार पचो की एक सूची तैयार करेगी जिसे किसी के पास विवादग्रस्त मामलो को निपटाने के लिए भेज सकती है। सामूहिक विवाद यूनियन के एजेण्ट नियोक्ताओ को 15 दिन का नोटिस देकर माग पत्र प्रस्तुत करेगा। नोटिस पर द्विपक्षीय वार्ता 60 दिन तक होगी। यदि मामला तय नही होता तो 60 दिन तक कासी-लिशन चलेगा। यदि फिर भी नही सुलझा तो सरकार विवाद को 60 दिन के अदर न्यायाधिकरण या कोर्ट आफ इक्वायरी के पास भेज देगी। यह अपना फैसला 180 दिन व लेबर कोर्ट 90 दिन के अदर दे देगा।

6 **अवैध हडताल व तालाबदी** . अवैध हडताल शुरू करने या उसमे भाग लेने के लिए कर्मचारी को 3 माह की जेल या 100 रुपया जुर्माना या दोनो सजा दी जा सकती है। इसी प्रकार अवैध तालाबदी के लिए सेवायोजक को 3 माह की सजा या 2,000 रुपया जुर्माने या दोनो ही दी जा सकती हैं। अवैध हडताल या तालेबदी मे भाग लेने को प्रेरित करने वाले व्यक्ति को 6 माह की सजा या 2,000 रुपये का जुर्माना या दोनो सजाए दी जा सकती है। किसी समझौता या अवार्ड के उल्लघन पर एक वर्ष की सजा या 2 000 रुपये जुर्माना या दोनों सजाए दी जा सकती हैं। यदि कोई नेता अवैध हडताल करायेगा तो दो वर्ष के लिए उसे सघ से हटा दिया जायेगा। *अवैध हडताल का* आह्वान करने वाली सघ का रजिस्ट्रेशन रद्द कर दिया जायगा।

7 **अन्य प्रावधान** . विधेयक के साथ अनुसूची चौथी सलग्न है जिसमे अनुचित व्यवहारो (   ) का वर्णन है जिसके अनुसार सेवायोजक न तो कपनी सघ बना सकते हैं और न किसी सघ को सहायता दे सकते है। इसी प्रकार वे न तो सघ के कार्य मे हस्तक्षेप कर सकते हैं और न ही कर्मचारियो को सघ के विविरुद्ध

काय मे भाग लेने मे रोक सकत हैं। श्रमिक न घराव कर सकते हैं और न वक टू रूल (Wo k To Rule) कर सकते हैं। व प्रबधक के आवास पर प्रदशन व धरना भी नही दे सकते हैं।

निष्कष इस विधयक की व्यापक रूप म कटु आलोचना की गई। श्रमिक सघो ने इसे श्रम विरोधी कहा। श्रमिको का कहना है कि (अ) हडताल मजदूरो का एक मात्र हथियार है जिसे वतमान विधयक छीनता है। (ब) आने वाली सेवाओ म हडताल निषध है। (स) अवैध हडताल के लिए कठोर दड की व्यवस्था है। (द) बाह्य नेतत्व न रहने स श्रमिक सघ प्रभावी नेत व न प्रदान कर सकेंगे। (य) हडताल पर जाने की जो प्रक्रिया निर्धारित की गइ है उसम आम हडताल करना असभव हो जायेगा। (र) विवाद के समाधान की प्रक्रिया म काफी समय लगेगा। (ल) सघ का पजीयन भविष्य मे सरल नही रहेगा।

सेवायोजको के सगठको ने भी इस विधयक की बहुत-सी व्यवस्थाओ का विरोध किया। उनका कहना है कि सरकार न उन प्रावधानो को लागू कर दिया है जो आपात काल मे लगाए गए थे। प्रतिष्ठानो म तालाबदी व ले आफ आदि क उनके अधिकारो का हनन किया जा रहा है।

इस बिल का व्यापक विरोध होने के फलस्वरूप सरकार को बिल म सुधार के लिए ठोस सुझावो पर विचार करने के लिए तयार होना पडा।

आवश्यक सेवा अनुरक्षण अध्यादेश 1981

राष्ट्रपति न 26 जुलाइ 1981 को आवश्यक सवा अनुरक्षण अध्यादेश जारी किया है। यह अध्यादेश कद्र सरकार को किसी भी आवश्यक सेवा म हडताल रोकने का अधिकार प्रदान करता है।

अध्यादेश की मुख्य विशेषताए इस प्रकार हैं—

(1) रेलवे डाकघर टलीफोन बदरगाहो हवाई अड्डो विमान पतनो बकिंग पेट्रोलियम के शोधन और उत्पादन पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पादो की सप्लाइ और वितरण सावजनिक सफाई व्यवस्था कद्र सरकार क नियत्रण मे सफाई व्यवस्था और अस्पताल रक्षा प्रतिष्ठानो स सबधित सवाओ आदि को आवश्यक सवाओ क अतगत रखा गया है।

(2) अध्यादेश सरकार को किसी ऐसे विषय जिसके बारे मे ससद को कानून बनाने का अधिकार है स सबधित सेवाओ को भी आवश्यक सेवाए घोषित करने का अधिकार प्रदान करता है।

(3) अध्यादेश म हडताल की व्यवस्था की गई है। यह अध्यादेश के अतगत केंद्र सरकार को किसी भी आवश्यक सवा म हडतालो को रोकने के लिए आदेश जारी करने का अधिकार प्राप्त होगा। एसा आदेश छह माह तक वध रहेगा परतु इस अवधि को और छह माह तक के लिए बढाया जा सकता है।

(4) किसी गर कानूनी हडताल से किसी भी तरह सबध रखने इसमे भाग

लेने वालों को जेल या जुर्माने की सजा दी जा सकती है। इसके अलावा दोषी के विरुद्ध इसके निलंबन सहित अनुशासनात्मक कार्यवाही भी की जा सकती है।

(5) गैर कानूनी हड़ताल के लिए लोगों को उकसाना, भड़काना भी दण्डनीय अपराध होगा और ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकेगी। अध्यादेश के अंतर्गत अपराध संज्ञेय होंगे। अध्यादेश के अंतर्गत इन अपराधों के संक्षिप्त मुकदमे चलाये जा सकने का प्रावधान है।

अध्यादेश से सरकार को किसी भी सेवा को आवश्यक सेवा घोषित करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस अध्यादेश को संसद के आगामी अधिवेशन में विधेयक का रूप दे दिया जायेगा, और वह विधेयक आगामी तीन वर्षों तक कार्यकारी रहेगा। अर्थात् व्यावहारिक रूप में किसी भी सेवा को आवश्यक सेवा घोषित करने तथा इसमें हड़ताल पर आगामी तीन वर्षों तक के लिए प्रतिबंध लगा दिया गया है।

परीक्षा-प्रश्न

1 भारत में औद्योगिक संघर्षों के प्रमुख कारण क्या हैं? औद्योगिक शांति की स्थापना के लिए क्या कदम उठाए जा रहे हैं?

2 औद्योगिक विवादों को तय करने के लिए कानून में क्या उपाय निर्धारित किया गया है, विस्तार में बतलाइए।

3 "यदि भारतीय मजदूर कारखानेदारों से मिलकर उत्पादन में वृद्धि नहीं करेंगे तो इसमें केवल समाज को ही नहीं वरन् उनके हितों को भी हानि पहुंचेगी।" इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

4 विवेचना कीजिए कि हड़तालें श्रमिकों का अंतिम हथियार होना चाहिए।

अथवा

श्रमिकों के हड़ताल करने के अधिकार की विवेचना कीजिए। किन परिस्थितियों में इस अधिकार पर नियंत्रण किया जा सकता है? भारतीय व्यापारिक संघर्षों के इतिहास से उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

5 'हड़ताल अथवा तालाबंदी द्वारा जब किसी उद्योग में पूर्णरूपेण अथवा अंशतः श्रम और सामग्री को क्षति पहुंचती है तो राष्ट्रीय लाभांश को भी नुकसान पहुंचना चाहिए जिसमें आर्थिक कल्याण को भी चोट पहुंचती है।" (पीगू) मुख्य समस्याओं पर प्रकाश डालिए जिनका उन साधनों की प्राप्ति में सामना करना पड़ता है जिसकी सहायता से यह आशा की जाती है कि औद्योगिक शांति कायम रखी जा सकती है।

6 औद्योगिक मतभेदों के कारणों का वर्णन कीजिए। इन मतभेदों के समाधान में समझौता व्यवस्था और मध्यस्थता के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

अथवा

समझौता, पच-फैसला और मध्यस्थता के गुणो व अवगुणो का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।

अथवा

औद्योगिक मतभेदो के कारणो का वर्णन कीजिए। उनके समाधान मे समझौतो और पच-फैसलों के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

अध्याय 11

सामूहिक सौदेबाजी

(Collective Bargaining)

अर्थ और परिभाषा सामूहिक सौदेबाजी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अंग्रेजी श्रमिक आंदोलन के प्रमुख अध्येता और समर्थक सिडनी और ब्रिट्रिश वेब द्वारा 1891 मे किया गया था। आधुनिक अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग 19वी शताब्दी के पश्चात् से ही आरंभ हुआ।

सौदेबाजी शब्द से ही स्पष्ट है कि इसमे दो पक्ष एक-दूसरे के साथ मोलभाव करते है। सौदेबाजी को सामूहिक इसलिए कहते हैं क्योकि श्रमिक वर्ग अपने हितो का सयुक्तीकरण करके एक समूह के रूप मे सौदा करते हैं। सेवायोजक भी चाहे तो सामूहिक या अकेले सौदेबाजी कर सकते हैं। सामूहिक सौदेबाजी इस तथ्य पर आधारित है कि श्रम बाजार मे अकेला श्रमिक अपनी सेवाओ के बदले मे उचित प्रतिफल प्राप्त करने मे प्रभावहीन रहता है। अकेले श्रमिक को श्रम बाजार की स्थिति का न तो ज्ञान होता है और न अवसर खोजने के लिए उपयुक्त साधन ही उपलब्ध रहते हैं। ऐसी स्थिति मे श्रमिक श्रमसघ को अपना एजेण्ट बना देता है तथा उसके द्वारा जिन शर्तों व दशाओ पर समझौता किया जाना है उन्हे स्वीकार कर लेता है। सक्षेप मे, **सामूहिक सौदेबाजी मजदूरों और सेवायोजको के सगठित दलों द्वारा कार्य की सपूर्ण शर्तों के सबध मे सौदा करने की क्रिया का नाम है।** इस प्रकार के समझौतो मे न केवल मजदूरी की दरें ही निर्धारित होती है बल्कि कार्य के घटे, रात को कार्य करने, पालियो मे काम करने, कार्यानुसार मजदूरी, अतिरिक्त कार्य की मजदूरी-दर, अवकाश व काम का बटवारा आदि बातें भी शामिल की जा सकती हैं।

सामूहिक सौदेबाजी की कुछ परिभाषाए निम्नलिखित हैं—

1 **ई० बोल्डिंग** "सामूहिक सौदेबाजी श्रम का मूल्य सगठित क्रेताओ और विक्रेताओ के बीच निश्चित करने की क्रिया का नाम है।"[1]

इस परिभाषा मे बोल्डिग ने सामूहिक सौदेबाजी शब्द का प्रयोग केवल श्रम या सेवायोजकों के बीच सीमित नही रखा, बल्कि किसी भी वस्तु के क्रेता और विक्रेताओ

1. "Collective bargaining is the name given to the process of deciding the price (of labour) between organised groups of buyers and sellrs." —E. Boulding

के सौदे के लिए प्रयुक्त किया है, परतु अब इस शब्द का श्रमशास्त्र मे केवल मजदूरी और सेवायोजको के सौदे के लिए ही उपयोग होता है। दूसरी कमी इस परिभाषा मे यह है कि सामूहिक सौदेबाजी केवल मूल्य के सबध मे नही बल्कि कार्य के घटे, अतिरिक्त काय की मजदूरी व अवकाश के सबध मे भी हो सकती है।

2 **डेलयोडर** "सामूहिक सौदेबाजी शब्द का प्रयोग उस स्थिति के लिए किया जाता है जिसमे रोजगार की आवश्यक शर्तो का निर्धारण एक ओर श्रमिको के एक समूह के *प्रतिनिधियो व दूसरी ओर एक या अधिक सेवायोजक के प्रतिनिधियो* द्वारा सौदेबाजी की विधि से किया जाता है।[1]

3 **सी० डब्ल्यू० स्पाल्डिग** "औपचारिक और अनौपचारिक समायोजन की उन प्रक्रियाओं का नाम सामूहिक सौदेबाजी मालिक या उनके समूह और सगठित श्रमिक अपने अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे के साथ सबध बनाने की अवधि मे *प्रयोग मे लाते हैं।*[2]

4 **हाक्सी** सामूहिक सौदेबाजी कर्मचारियो की एक सगठित सस्था तथा एक मालिक अथवा मालिको का एक **समिति जो प्राय** उचित अधिकार प्राप्त अभिकर्ताओ के माध्यम से काय करती है के बीच सौदेबाजी के द्वारा सेवायोजन की शर्तों को निश्चित करने का एक ढग है।'[3]

सामूहिक सौदेबाजी के तत्त्व सामूहिक सौदेबाजी के उपर्युक्त विवरण से हमे इसके निम्नलिखित तत्त्वो का आभास मिलता है—

(i) **सौदे की शर्तें** इसके अतर्गत मजदूरी की दर, कार्य के घटे, कार्य की पद्धति इत्यादि अनेक बातें आती हैं जो व्यक्तिगत रूप से निश्चित नही होती बल्कि सघ द्वारा सामूहिक रूप से समूह के लिए निर्धारित होती है।

(ii) *अनुबध* सामूहिक सौदेबाजी श्रम के विक्रय हेतु आवश्यक अनुबध करने का एक साधन है।

(iii) **सौदे को निश्चित करने की विधि** सामूहिक सौदेबाजी मे यह निर्धारित कर दिया जाता है कि सौदा दोनो पक्षो मे किस प्रकार से होगा, उसके प्रतिनिधि कौन होगे। प्रतिनिधि इस प्रकार के होने चाहिए जो सामूहिक सौदेबाजी करने के अधिकारी हो।

(iv) *समझौते की व्याख्या* सामूहिक शर्तों की निश्चित व्याख्या कर देनी चाहिए। इसका महत्त्व इसलिए है कि दोनो पक्षो के हित अलग अलग होने के कारण एक ही शर्त की परस्पर विरोधी व्याख्याए हो सकती है।

1 '*Collective bargaining is essentially a process in which employees act as a group in seeking to shape conditions and relationships in their employment* —Dale Yoder, *Personal Principles and Policies*, Second Edition p 97

2 C. W Spaulding An Introduction to Industrial Sociology,

3 आर० एफ० हाक्सी ज० सिस्टर द्वारा सपादित "Reading in Labour Economics and Industrial Relations," p 148.

सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया
(Collective Bargaining Procedure)

सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत औद्योगिक शान्ति में वृद्धि करने के लिए सेवायोजकों द्वारा एकपक्षीय निर्णय नहीं लिया जाता है, श्रमसंघों को मान्यता प्रदान की जाती है और उचित वातावरण तैयार किया जाता है। संक्षेप में, सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया को कई चरणों में बाटा जा सकता है, जैसे—(अ) उचित वातावरण तैयार करना, (ब) समस्या के अनुरूप उपयुक्त समाधान प्रणाली का चयन करना, (स) विवाद निवारण के लिए पक्ष-निर्धारण करना, (द) विचार-विमर्श के उपरान्त किसी उपयुक्त निर्णय पर पहुंचना, और (य) निर्णय को क्रियान्वित करना।

सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया को नीचे चित्र द्वारा दर्शाया गया है—
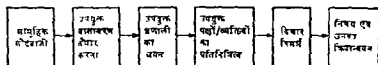
सामूहिक सौदेबाजी की विषय-सूची या क्षेत्र

डैवी के अनुसार, "सामूहिक सौदेबाजी में समझौता, प्रशासन, निर्वचन, लिखित समझौतों के अनुसार कार्य करना और उन्हें लागू करने तथा सामूहिक समन्वय क्रियाएं सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त मजदूरी और वेतन पर निर्धारण, कार्य के घंटे तथा नियोजन की दशाएं आदि समस्याएं भी इसमें आती हैं।

एम्पलायर्स फैडरेशन ऑफ इण्डिया (Employers Federation of India) के एक अध्ययन के अनुसार (जिसमें 111 संस्थाओं के 109 समझौतों का अध्ययन किया गया था तथा जिनमें सूती वस्त्र उद्योग, बंबई एवं मद्रास, जूट वस्त्र तथा इंजीनियरिंग उद्योग कलकत्ता बागान उद्योग, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु तथा मैसूर सम्मिलित हैं।) निम्न सारिणी में हुई। इस अध्ययन के अनुसार जैसा कि सारिणी से स्पष्ट है, प्रायः तीन प्रकार के विषय सामूहिक समझौते में देखने में आते है—(अ) वेतन एवं मजदूरी के प्रति प्रत्यक्ष कार्यवाही, (ब) अवकाश (स) कार्य की दशाओं एवं समय में सुधार।

109 समझौतों में सम्मिलित विषयानुसार समझौतों की संख्या

समझौता विषय	समझौता संख्या
1 मजदूरी	
(अ) मजदूरी	96
(ब) महंगाई भत्ता	59
(स) सेवा-निवृत्ति लाभ	53
(द) बोनस	50

2 अवकाश	
(अ) वार्षिक अवकाश	40
(ब) सवेतन छुट्टियां	36
(स) आकस्मिक अवकाश	26
3 अन्य (कार्य की दशाओ मे सुधार)	
(अ) कार्य वर्गीकरण	26
(ब) अधिक समय वेतन	25
(स) प्रलोभन	23
(द) चारी भत्ता	22
(य) कार्यवाहक भत्ता	22
(र) चिकित्सा लाभ	19
(ल) कैन्टीन	19
(व) परिवाद-निवारण	14
(क) कार्य अध्ययन	13
(ख) पदोन्नति	12
(ग) आवासीय	12
(घ) विवेकीकरण	11
(ङ) दुर्घटना-लाभ	11
(च) स्थायित्व	10
(छ) सामूहिक सौदेबाजी	9
(ज) बीमारी-अवकाश	9

स्रोत मामोरिया एव दशोरा : सेविवर्ग प्रबध एव औद्योगिक सबध

समझौतो की शर्तें दो प्रकार की हो सकती हैं—(i) श्रमिको एव सेवायोजको के मध्य व्यक्तिगत सबध (ii) विभिन्न पक्षो के आपसी सामूहिक सबध। व्यक्तिगत सबधो मे मजदूरी, कार्य के घटे, अधिसमय, सवेतन अवकाश, रोजगार समाप्ति हेतु अवकाश काल तथा सामूहिक सबधो मे सामूहिक समझौतो का क्रियान्वयन, विवाद-निवारण समझौता एव पचनिर्णय, समझौता अवधि, समझौता काल मे कोई हडताल या तालाबदी नही आदि शर्तें सम्मिलित रहती हैं।[1]

सामूहिक सौदेबाजी के सिद्धात

अरनोल्ड ई० कैम्पो (Arnold E Campo) के अनुसार सामूहिक सौदेबाजी के निम्नलिखित सिद्धात हैं—

1. I L O. Cc 'ect Bargaining, p 46.

1 प्रबधकों के लिए सिद्धात

(i) उचित श्रमनीति प्रबधको को एक उचित श्रम नीति का अनुकरण करना चाहिए और यह भी सतकता रखनी चाहिए कि सभी कर्मचारी उसका अनुकरण करें।

(ii) नीतियो का पुनरावलोकन प्रबधको को नीतियो एव नियमो मे परिवर्तन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करते रहना चाहिए।

(iii) श्रम सघ को मान्यता श्रम सघ को उचित मान्यता प्रदान करनी चाहिए और उसे यह जानना चाहिए कि श्रम सघ एक महत्त्वपूर्ण सस्था है। अत सघ के साथ उसका व्यवहार मधुर होना चाहिए।

(iv) स्वत प्रयास प्रबधको को समस्या का समाधान करन का प्रयास स्वत. भी करते रहना चाहिए। उन्हे यह प्रतीक्षा नही करनी चाहिए कि श्रम सघ द्वारा विवाद प्रस्तुत किए जाने पर ही समस्या पर विचार किया जायेगा।

(v) सामाजिक विचारो को महत्त्व प्रबधको को आर्थिक प्रभावो को मानने की दृष्टि मे सामाजिक विचारो को भी अधिक महत्त्व देना चाहिए।

2 श्रम सघो के लिए सिद्धात

(i) उपयुक्त मागें श्रम सघ के नेताओ को सामूहिक सौदेबाजी के फलस्वरूप होने वाले आर्थिक प्रभावो को ध्यान मे रखते हुए ऐसी मागें प्रस्तुत नही करनी चाहिए जो उद्योग की देय क्षमता से परे हो अथवा राष्ट्रीय नीतियों के विरुद्ध हो।

(ii) प्रजातत्र विरोधी बातो का विरोध श्रम सगठन के रूप मे स्वीकृत अधिकारो की दृष्टि से यह आवश्यक है कि श्रम सघ अपने कार्यस्थल पर प्रजातत्र विरोधी बातें नही पनपने दें।

(iii) ऊचा मनोबल एव अधिक उत्पादन श्रम नताओ को अपना ध्यान केवल ऊची मजदूरी, कम काय के घटे तथा अच्छी कार्य की दशाओ की ओर ही केंद्रित नही रखना चाहिए बल्कि अपने सदस्यो का मनोबल ऊचा करने तथा अधिक उत्पादन की ओर प्रेरित करने का प्रयास करना चाहिए।

(iv) हडताल का उपयोग श्रम सघो को हडताल का उपयोग उसी समय करना चाहिए, जब सभी प्रयास निष्फल हो गये हो।

3 श्रम सघ एव प्रबधक दोनो के लिए सिद्धात

(i) विवेकपूर्ण निर्णय श्रम सघ और प्रबधक दोनो को ही यह समझना चाहिए कि अधिक विवेकपूर्ण निर्णय लेने के लिए सामूहिक सौदेबाजी एक अच्छी विधि है। अत समस्याओ के समाधान के लिए ईमानदारी से विचार-विमर्श करना चाहिए।

(ii) शैक्षणिक आधार - सामूहिक सौदेबाजी का आधार शैक्षणिक होना चाहिए। श्रम सघ के नेताओ को यह अवसर मिलना चाहिए कि वे प्रबधको के समक्ष अपनी मागें, आवश्यकताए, श्रमिको की मनोवृत्ति आदि प्रस्तुत कर सकें और प्रबधक

पुन उन्हे परिस्थितिया समझाने का प्रयास करें।

(iii) **पारस्परिक सद्भावना :** दोनो पक्षो मे पारस्परिक सद्भाव तथा सौदेबाजी करने की क्षमता होनी चाहिए।

(iv) अन्य बातें : (अ) दोनो पक्ष यह अनुभव करें कि मूल्य स्थिरीकरण आवश्यक है तथा बाजार मूल्य एव मजदूरी मे पर्याप्त तालमेल होना चाहिए, (ब) दोनो पक्ष राजकीय नियमन का पालन करने के लिए तैयार होने चाहिए, (स) समझौता हेतु ईमानदार, योग्य तथा उत्तरदायित्वपूर्ण नेतृत्व आवश्यक है तथा (द) वे अनुबध को क्रियान्वित करने मे सक्षम हो।

सामूहिक सौदेबाजी के स्वरूप
(Forms of Collective Bargaining)

सामूहिक सौदेबाजी के प्राय निम्नलिखित तीन स्वरूप होते हैं—

1 **एक सयन्त्र सौदेबाजी** (Single Plant Bargaining) जब सौदेबाजी एक सघ और एक सेवायोजक के मध्य होती है तो इसे सयत्र सौदेबाजी कहते हैं। इसका प्रचलन अमरीका और भारत मे है।

2 **बहु सयत्र सौदेबाजी** (Multi plant Bargaining) : जब सौदेबाजी एक इकाई (जिसके कई सयत्र हो सकते हैं) के मध्य और उन सभी सयत्रो मे नियोजित श्रमिको एव श्रमिक सघो के मध्य होती है तो इसे बहु-सयत्र सौदेबाजी कहते है।

3 **बहु सेवायोजक सौदबाजी** (Multi-employer Bargaining) जब एक ही उद्योग के समस्त सघो की उनकी विभिन्न फेडरेशन के माध्यम से सेवायोजको एव उनके फेडरेशन से सौदेबाजी होती है तो इसे बहु-सेवायोजक सौदेबाजी कहते है।

सामूहिक सौदेबाजी का विकास

यद्यपि सामूहिक सौदेबाजी की प्रणाली श्रमिक सघ के विकास के कारण ही हुई है, परन्तु सामूहिक सौदेबाजी विभिन्न देशो मे विकास की विभिन्न परिस्थितियो मे है और अलग-अलग देशो मे उसके विकास की गति, रूप और यहा तक कि क्रम भी भिन्न है जो कि आशिक रूप से औद्योगिक ढाचे मे विभिन्नता, राज्य हस्तक्षेप की मात्रा व श्रम आदोलन के आदर्शवाद मे विभिन्नता द्वारा निर्धारित है। उदाहरण के लिए इग्लैंड मे केवल राष्ट्रीयकृत उद्योगो मे ही यह सभी पक्षो पर अनिवार्य है कि वे एक-दूसरे के साथ सामूहिक रूप से स्वतत्र अनुबध एव स्वैच्छिकता का त्याग किये बिना सौदबाजी करें। अमेरिका मे सामूहिक सौदेबाजी को सरक्षण प्राप्त करने के लिए कानून बनाए गए हैं और उन्हें प्रभावकारी बनाने के लिए हर तरह का प्रयास किया जाता है। कनाडा मे विधान द्वारा यह आवश्यक है कि सबधित पक्ष सामूहिक रूप से सौदबाजी कर सकें। सोवियत कानून सभी उद्योगो मे सामूहिक सौदेबाजी प्रदान करता है। फ्रांस मे सरकार **विभिन्न तरीको से सामूहिक सौदेबाजी अनुबध की प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करती है।**

सामूहिक सौदेबाजी को प्रभावित करने वाले घटक

सामूहिक सौदेबाजी को प्रभावित करने वाले बहुत से घटक हैं, जैसे औद्योगिक उपक्रम का आकार, उपक्रम की आर्थिक स्थिति, कार्य की प्रकृति, उत्पादन में होने वाली वृद्धि, श्रमिक संघों के राजनैतिक गठबंध, उद्योग व श्रमिक संघों का कार्यकाल, उत्पादित वस्तुओं की बाजार में विक्रय की स्थिति श्रमिक व सेवायोजकों में पाया जाने वाला पारस्परिक विश्वास आदि। यदि सेवायोजकों व श्रमिकों के प्रतिनिधि एक दूसरे का विश्वास करते हुए उपयुक्त विचारों को स्वीकार करने के लिए तत्पर हो तो विचार-विमर्श की प्रक्रिया के दौरान शीघ्रता से समझौता करने में सहायता मिल सकती है।

सामूहिक सौदेबाजी के लाभ

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि सामूहिक सौदेबाजी श्रमिक संघों की वह प्रणाली है, जिसके द्वारा वे श्रम का मूल्य और कार्य की शर्तें उद्योगपतियों के साथ निर्धारित करते हैं। निर्माता मजदूरों से मनमानी शर्तें न मनवा सकें व उनका शोषण न कर सकें व श्रमिकों को भी प्रत्येक बात के लिए हड़ताल का आश्रय न लेना पड़े इसके लिए सामूहिक सौदेबाजी प्रणाली का जन्म हुआ। तब से यह निरंतर विकसित हो रही है। **प्रो० ए० बी० रमनराव** के शब्दों में सामूहिक सौदेबाजी सेवायोजकों और श्रमिकों दोनों में ही सुलह और समन्वय के लिए इच्छुक होने और उनहितों को मान्यता देने के लिए तत्पर रहने की माग करती है। अब वे दिन हमेशा के लिए चले गये जब सेवा-योजकों द्वारा एकपक्षीय रूप में रोजगार की शर्तें निरूपित होती थी और कर्मचारी उन्हें अपरिहार्य रूप में स्वीकार कर लेते थे। राज्य ने सामूहिक सौदेबाजी के प्रमापीकरण और नियमन द्वारा सक्रिय रुचि लेना आरंभ कर दिया है ताकि श्रमिकों और सेवायोजकों दोनों के हितों की आवश्यकताओं की सामान्य रूप से देखभाल की जा सके। संक्षेप में सामूहिक सौदेबाजी के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं —

1 **औद्योगिक शांति** सामूहिक सौदेबाजी का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें श्रम और पूंजी दोनों काफी समीप आ जाते हैं और उनमें पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ जाती है फलत औद्योगिक विवादों की संख्या घट जाती है। औद्योगिक संघर्ष (हड़तालें व तालाबंदियों) के अभाव में शांति का वातावरण विस्तृत हो जाता है। इससे समस्त राष्ट्र लाभान्वित होता है क्योंकि उत्पादन बढ़ने से राष्ट्रीय आय बढ़ जाती है।

2 **शांति की परंपरा** सामूहिक सौदेबाजी में उद्योग में शांति की परंपरा पड़ जाती है। इसमें छोटे-मोटे विवाद उत्पन्न भी होते हैं, तो वे पूर्व उदाहरणों के आधार पर तय हो सकते हैं। प्रो एल० जी० रेनाल्ड्स ने उचित ही कहा है— जब किसी कारखाने में सामूहिक सौदे बीस या तीस वर्षों तक स्थापित हो जाते हैं तो फिर कोई **ऐसी बात उदित नहीं हो सकती, जो पहले नहीं हुई हो और जो परंपरागत नियमों से**

बाहर हो।"[1] अतः यदि विवाद होता भी है तो वह शीघ्र समाप्त हो जाता है।

3 **निरीक्षक की मनमानी का अन्त :** रेनाल्ड्स का यह भी मत है कि सामूहिक सौदेबाजी का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह होता है 'निरीक्षक एक निरंकुश शासक न रहकर *वैधानिक सम्राट रह जाता है, जिसको समझौते की शर्तों को मानना पडता है* और जिसके फैसले के विरुद्ध आगे अपील हो सकती है।" प्राय यह देखा गया है कि सामूहिक सौदेबाजी के अभाव मे सभी कार्य प्रबधको की मर्जी से होते हैं, परन्तु सामूहिक सौदेबाजी के अनुबध के बाद उनको अनुबधो की शर्तों का पालन करना पडता है तथा किसी भी नीति के निर्धारण न पूर्व उन्हे यह भी विचार करना पडता है कि श्रमिक सघ को वह मान्य होगा अथवा नही।

4 **श्रमिक वर्ग का महत्त्व बढना :** सामूहिक सौदेबाजी से श्रमिक के सामाजिक स्तर मे वृद्धि हो जाती है, फलस्वरूप श्रमिक का उद्योग मे महत्त्व बढ जाता है।

5 **कृषि पर जनसख्या का दबाव कम होना** सामूहिक सौदेबाजी से औद्योगिक श्रम अधिक लाभदायक हो जाता है। अत उद्योग मे कार्य करने के लिए कृषक मजदूर तत्पर रहते है। परिणामत कृषि पर से जनसख्या का दबाव कम हो जाता है।

6 **औद्योगिक शोध को प्रोत्साहन** चूकि सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत नवायोजको का व्यय बढ जाता है, इसलिए उन्हे उत्पादन की विधियो मे सुधार करने के लिए अनवरत प्रयास करना पडता है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी औद्योगिक शोध मे सहायक होती है।

7 **आदेशो का स्वागत** सामूहिक सौदेबाजी के परिणामस्वरूप एक तो प्रबधको द्वारा श्रेष्ठ निर्णय लेने मे सहायता मिलती है और दूसरे प्रबधको के आदेश आसानी से स्वीकार किये जाते है, इससे प्रभावी प्रेरणा मिलती है।

सामूहिक सौदेबाजी के दोष

जैसाकि **एच० एच० सिलिस्टर** ने कहा है—"सामूहिक सौदेबाजी एक साधन है जिसका उपयोग अच्छा और बुरा दोनो ही हो सकते है। इसके परिणाम इस बात पर निर्भर करते है कि सौदे कितनी बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से किये जाते हैं।" उदाहरण के लिए यदि सामूहिक सौदेबाजी उचित ढग स न की गई तो निम्नलिखित दोष उत्पन्न हो सकते है—

(अ) यदि बिना औद्योगिक समस्याओ पर पर्याप्त विचार किये हुए श्रमिको की मजदूरी बढा दी जाती है तो उद्योग के अन्य साधनो को पर्याप्त पुरस्कार नही मिलेगा और उद्योग का विकास अवरुद्ध हो जायेगा।

(ब) सामूहिक सौदेबाजी से जो मजदूर सघ के सदस्य नही हैं, वे नुकसान मे रहेगे क्योकि उन्हे सौदे का लाभ नही मिल सकेगा।

(स) यदि श्रमिको के प्रतिनिधि अयोग्य है उनमे तकनीकी ज्ञान व अनुभव का

1 L. G. Reynolds Labour Economics and Labour Relations, p, 207.

अभाव है, तो वे उद्योग की प्रगति मे सही ढग से योगदान देने मे सर्वथा अनुपयुक्त रहेगे।

(द) *सामूहिक सौदेबाजी* रोजगार पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। कारण यह है कि उद्योगपति मजदूरो को मजदूरी उनकी उत्पादकता से अधिक नही दे सकते। अत. उन्हें उत्पादन और रोजगार घटाने पड सकते हैं।

सामूहिक सौदेबाजी को सुदृढ बनाने के उपाय

- सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं—

1. सामूहिक सौदेबाजी से सबधित दलो की **मनोवृत्तियों में मूलभूत परिवर्तन** आवश्यक है ताकि वे सामूहिक सौदेबाजी के महत्त्व को स्वीकार करने लगें और उनमे एक-दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान की भावना जागृत हो सके।

2. **श्रम संघो को शक्तिशाली** होना चाहिए और उनमे उत्तरदायित्व का अहसास होना चाहिए। अपने लक्ष्यो की पूर्ति के लिए वैधानिक उपायों के प्रयोग मे उनका दृढ विश्वास होना चाहिए।

3. श्रमिक सघ आदोलन को श्रमिक सघ के बाहुल्य के कारण पैदा हुई प्रतिस्पर्धा और स्वार्थपरक राजनैतिक दलो एव नेताओ के अवाछनीय प्रभावो से बचाना चाहिए।

4. प्रबधको मे **प्रगतिशील और उदार दृष्टिकोण** की उपस्थिति सामूहिक सौदेबाजी की सफलता के लिए आवश्यक है।

5. श्रमिक वर्ग मे **शिक्षा, ज्ञान, चेतना एवं जागरूकता** की कमी सफल सामूहिक सौदेबाजी के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करते हैं, जिसे दूर करना चाहिए।

6. तथ्यो की खोजबीन और निष्पक्ष जाच-पडताल करने मे आस्था होनी चाहिए और औद्योगिक विवादो को सुलझाने के लिए नये प्रगतिशील साधनो व उपायो को प्रयोग मे लाने की इच्छा होनी चाहिए।

7. **सफल सामूहिक सौदेबाजी** के लिए यह भी आवश्यक है कि दोनों पक्ष अपने आपको उत्पादन-क्रिया मे उत्तरदायी साझेदार के रूप मे मानें। एक-दूसरे के दृष्टिकोण को पूर्ण तथा वास्तविकता मे समझना और उनकी कदर करनी चाहिए।

8. चूकि ऐच्छिक आधार पर किये गये ठहराव की शर्तों और दशाओ के पाले कोई वैधानिक समर्थन नही होता, इसलिए सबधित पक्षो को पारस्परिक ठहराव के आधार पर विश्वास के साथ अपनी कार्यवाहियो को करना चाहिए।

9. उन क्षेत्रो के विषय मे किसी प्रकार की अनिश्चितता नही होनी चाहिए जिनमे सम्बधित पक्षो को वैधानिक दृष्टि से सामूहिक रूप से सौदा करना होता है।

औद्योगिक सौदेबाजी और सामाजिक परिवर्तन प्रक्रिया
(Collective Bargaining and Process of Social Change)

सामूहिक सौदेबाजी का प्रभाव समाज पर भी पडता है। यह केवल आर्थिक क्रियाओ तक ही सीमित नही है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन मे भी सहायक है, जैसाकि श्री पर्लमैन ने कहा है—"यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे निर्धन वर्ग (श्रमिक वर्ग) सदैव धनी वर्ग (पूजीपति वर्ग) के लिए उनकी सामाजिक प्रमुखता पर भार बना रहता है और अपने सदस्यो के लिए अधिक सुरक्षा, कल्याण एव स्वतन्त्रता की माग करता रहता है। सामूहिक सौदेबाजी से व्यक्ति स्वत राजनैतिक, वैधानिक, न्यायिक, राजकीय प्रशासन, धर्म, शिक्षा और प्रचार की दृष्टि से परिपक्व हो जाता है।"[1]

मार्क्स की भाषा मे सामूहिक सौदेबाजी केवल वर्ग-सघर्ष को ही व्यक्त नही करती बल्कि यह स्पष्ट करती है कि दलित वर्ग पुराने शासक वर्ग को समाप्त नही करना चाहता बल्कि वह स्वय भी उसके समान होना चाहता है।

यह उल्लेखनीय है कि सामूहिक सौदेबाजी अभी निरतर विकास की ओर उन्मुख है, इसलिए प्रत्येक सयत्र और उद्योग मे इसका स्वरूप पृथक्-पृथक् है। उदाहरण के लिए किन्ही सयत्रों मे दिन-प्रतिदिन हडतालो के परिणामस्वरूप सामूहिक सौदेबाजी की जाती है तो कही न्यूनतम मजदूरी आदि के लिए सौदेबाजी की जाती है।

भारत में सामूहिक सौदेबाजी
(Collective Bargaining in India)

सामूहिक सौदेबाजी की परम्परा भारत में नवीन है। यद्यपि उन्नत देशो मे सामूहिक सौदेबाजी काफी सफल रही है, जिसका मुख्य कारण यह था कि वहा के श्रमिक सगठन अपने सेवायोजको या प्रबध सगठनो से बराबरी के साथ जूझ सकते थे, पर भारत जैसे अर्द्धविकसित देश मे जहा अधिकाश श्रमिक अभी भी अशिक्षित या असगठित हैं और जिनमे शक्ति, उनके नेताओ मे बातचीत करने तथा देर तक लडने की ताकत की कमी है, सामूहिक सौदेबाजी अधिक लोकप्रिय नही हो पाई है। 1969 मे राष्ट्रीय श्रम आयोग[2] ने उचित ही लिखा है कि केवल कुछ राज्यो मे ही औद्योगिक अधिनियमो मे श्रमिक सघ को मान्यता प्राप्त है और अधिकतर स्थितियों मे मजदूरो और मालिको के बीच सौदो का कोई प्रावधान नही है। परिणामतः देश मे सामूहिक सौदेबाजी की कोई विशेष प्रगति नही हुई है। यह भी देखने मे आया है कि भारत मे सामूहिक सौदेबाजी के परिणाम प्रायः श्रमिको के हितो के विरुद्ध ही रहे हैं।

1. Selig Perlman, "The Principal of Collective Bargaining, 'The Annals of the American Academy of Political and Social Science." 1936, p 154.
2. Report of the National Commission on Labour, p 321.

(शाही आयोग के मतानुसार औद्योगिक सबधो को नियत्रित करने का प्रथम प्रयास अहमदाबाद मे हुआ था। परतु 1931 व 1947 के बीच इस क्षत्र मे कोई विशेष प्रगति नही हुई। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ सामूहिक सौदे हुए हैं। भारत के सेवायोजक परिषद के अनुसार 1956 के एक सर्वेक्षण के अनुसार 32% विवादो का निपटारा सामूहिक सौदे स हुआ था। 1960 मे 49% विवादो मे सामूहिक सौदो से निर्णय हुआ। 1954 और 1971 के बीच देश मे लगभग 121 सामूहिक सौदे हुए।

भारतवर्ष मे सामूहिक समझौते के स्तर भारतवर्ष मे सामूहिक समझौते निम्नलिखित तीन स्तरो पर हुए हैं—

(i) **सयत्र स्तर पर समझौते** (Agreements at Plant Level) इस प्रकार के समझौते कवल इकाई विशेष मे ही मान्य होते हैं। सन् 1955 स अब तक इस प्रकार के कई समझौते हुए हैं—इनमे से महत्त्वपूर्ण बाटा शू कपनी समझौता, 1955, टाटा आयरन स्टील कपनी समझौता 1956, मोदी स्पिनिग एड वीविंग मिल समझौता, 1956, वैलूर समझौता, 1956, नेशनल न्यूज प्रिंट नेपानगर का समझौता, 1956, तथा मैटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लि० समझौता 1960 मुख्य हैं। इन समझौतो के फलस्वरूप औद्योगिक विवाद निवारण की दिशा मे नये आधार तैयार हुए है।

(ii) **उद्योग स्तरीय समझौते** (Industry Level Agreements). उद्योग स्तर पर प्राप्त निर्णय एक उद्योग विशेष मे ही मान्य होते हैं। बबई एव अहमदाबाद जैसे महत्त्वपूर्ण केन्द्रो मे उद्योग के स्तर पर इस प्रकार के समझौते सामान्य रूप मे पाये जाते है। अहमदाबाद मिल मालिक सघ और अहमदाबाद सूती मजदूर सघ के बोनस चुकाने के लिए तथा औद्योगिक विवाद निवारण के लिए 27 जून, 1955 को दो समझौते किये गये।

(iii) **राष्ट्रीय स्तर पर समझौता** (Agreement at the National Level) ऐसे समझौते प्राय द्विपक्षीय होते हैं तथा सरकार द्वारा आयोजित गोष्ठियो मे लिये जाते हैं। 7 जनवरी, 1951 का दिल्ली समझौता, तथा जनवरी, 1956 का बागान श्रमिको का बोनस समझौता इसके उदाहरण हैं।

विदेशो मे सामूहिक सौदे ही मजदूरी, कार्य के घण्टे अवकाश सामाजिक सुरक्षा इत्यादि प्रश्नो को हल करते हैं, परतु भारत मे अभी यह स्थिति नही आ पाई है और सामूहिक सौदेबाजी शैशवावस्था मे है। इसके कई कारण हैं—

1 भारतीय श्रमिक सघ आदोलन अभी भी विदेशो से काफ़ी पिछडा हुआ है। यहा पर अशिक्षा, निर्धनता व जागरूकता की कमी के कारण श्रमिक सघ शक्तिशाली नही हो सके हैं।

2 श्रम सघो की विभिन्नता तथा उनकी आपसी प्रतिद्वद्विता के कारण भी सामूहिक सौदेबाजी अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाई है।

3 इस योजना को सफलता न मिलने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि भारत के प्रबधको ने सामूहिक सौदेबाजी में कोई विशेष रुचि नही ली है। प्रबधको को

यह भय है कि इससे उनके अधिकारो में कमी आ जायेगी।

4 यहा के श्रम विधान ने भी सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन नहीं दिया है। औद्योगिक विवाद अधिनियम मे भी सामूहिक सौदेबाजी को कोई विशेष महत्त्व नही दिया गया है।

क्या सामूहिक सौदेबाजी भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल है ?

यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है कि सामूहिक सौदेबाजी भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल है या नही? राष्ट्रीय श्रम आयोग ने स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त किया था कि सामूहिक सौदेबाजी का जो प्रारूप विदेशो मे देखने को मिलता है वह भारत के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है क्योकि, नियोजित अर्थव्यवस्था के उत्पादन के कुछ लक्ष्य होते हैं। उनकी पूर्ति सभव है कि सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा न हो सके। आयोग ने आगे कहा कि श्रम न्याय प्रणाली के स्थान पर सामूहिक सौदो का प्रयोग वर्तमान स्थिति में न तो सभव है और न ही उचित। इसी प्रकार स कुछ अन्य लोगो का मत है कि भारत मे जहा अधिकाश श्रमिक अभी भी असगठित हैं, जिनमे शक्ति और शिक्षा का अभाव है, जहा श्रमिक सघो के बाहुल्य के कारण उनमे प्रतिद्वद्विता है, जहा स्वार्थ-परक राजनैतिक दलो व नेताओ का श्रम सघो पर अनुचित प्रभाव है, सामूहिक सौदेबाजी सफल नही हो सकती।

उपर्युक्त विचार उपयुक्त नही है। भारत मे सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था अपनाना हितकर ही होगा। एक विस्तृत क्षेत्र मे इसका विस्तार निश्चित रूप से वाछनीय है, परतु भारत मे सामूहिक सौदेबाजी एक औद्योगिक समाज के भीतर जीवन यापन के एक ढग के रूप मे अभी विकसित होनी है और इसे श्रमिको तथा उद्योग पर अपने प्रभाव को प्रभावपूर्ण बनाना है। जैसा कि प्रथम पचवर्षीय योजना मे कहा गया था कि सामूहिक सौदेबाजी की धारणा उसी समय एक वास्तविकता का रूप ले सकती है जबकि श्रमिक सगठित हो और सेवायोजको मे सहयोग की सच्ची भावना हो। सामूहिक सौदेबाजी व्यवस्था धीरे-धीरे अपनाई जा सकती है। भारत मे मुकदमेबाजी का श्रम न्याय प्रणाली ने श्रमिको का बहुत अहित किया है। देश की वर्तमान परिस्थिति मे जबकि प्रत्येक पचवर्षीय योजना के अतर्गत अच्छे से अच्छे श्रम प्रबध सबधो के लिए नवीनतम नीति प्रयासो की अनवरत खोज होती रही है, हमे न्यायालय के महत्त्व को घटाना होगा और सामूहिक सौदो को उनका स्थान लेना ही चाहिए। द्विपक्षीय समझौता वार्ता औद्योगिक शाति को स्थिर करने वाली होनी चाहिए। श्रम और प्रबध को एक दूसरे के साथ शातिपूर्वक रहना सीखना चाहिए, क्योकि सामजस्यपूर्ण औद्योगिक सबध राष्ट्रीय शाति के लिए अग्रदूत होगे। जहा तक उत्पादन के लक्ष्यों का प्रश्न है, हमारा विचार है, कि सामूहिक सौदेबाजी से औद्योगिक उत्पादन बढेगा, घटेगा नही, क्योकि इससे श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है, प्रबध की क्षमता बढती है, अच्छे औद्योगिक सबधो की स्थापना होती है, प्रबधको के आदेश का तत्परता मे कार्यान्वयन किया जाता है। औद्योगिक झगडों के कारण जो उत्पादन की हानि होती है, वह नहीं होगी।

इसलिए उत्पादन की कुल मिलाकर वृद्धि होगी। अत भारत मे सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहित करना चाहिए और इसके मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो को दूर किया जाना चाहिए। प्रो० ए० व्ही० रमनराव के शब्दो मे "सामूहिक सौदेबाजी [illegible] सुदृढ करने के लिए श्रम सघो, प्रबंध और सरकार को रचनात्मक प्रयास करने हैं [illegible] सैकार्य रोजगार की शर्तों के कार्यान्वियन मे सहकारी हस्तक्षेप आवश्यक न रहे।"

विगत वर्षों मे भारत सरकार ने सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से श्रमिक शिक्षा योजना, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता योजना, अनुशासन संहिता का विकास कारखाने मे कार्य समितियो सयुक्त परिषदो और शिकायत सबधी क्रियाविधि आदि की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त त्रिदलीय सम्मेलनो सयुक्त परामर्श बोर्डों, औद्योगिक समितियो ने भी सामूहिक सौदेबाजी पद्धतियो के सचालन में व्यापक सहायता दी है। भारत मे सामूहिक सौदेबाजी के क्षेत्र में शनै -शनै वृद्धि हो रही है और यदि प्रोत्साहन मिले तो यह देश को औद्योगिक शाति और सपन्नता की ओर ले जा सकती है।

भारत म सामूहिक सौदेबाजी के विकास हेतु निम्न कारण उत्तरदायी हैं—

(अ) वैधानिक तथा राजकीय व्यवस्था, जिसके अतर्गत आदान प्रदान के सिद्धात, सामूहिक समझौतो की प्रणाली तथा विवादपूण पक्षो के प्रतिनिधित्व का रूप स्पष्ट किया गया है।

(ब) ऐच्छिक उपाय, जैसे त्रिपक्षीय सम्मेलन, औद्योगिक समितिया कार्य समितिया तथा सयुक्त सलाहकार बोर्ड आदि द्वारा सामूहिक सौदेबाजी के लिए आवश्यक आधार तैयार कर दिया गया है।

(स) केंद्रीय सरकार के वर्तमान उपाय जैसे—अतर्संगठन शाति सहिता (Code of Inter-Union Harmony), अनुशासन सहिता (Code of Discipline), सयुक्त प्रबध समिति (Joint Management Councils), प्रबध सह भागिता योजना, श्रमिक शिक्षा याजनाए, कार्य समितिया (Works Committees) विवादनिवारण प्रणाली (Grievarce Redressol Procedure) आदि से भी सामूहिक सौदेबाजी को बल मिला है।

परीक्षा प्रश्न

1 सामूहिक सौदेबाजी से आप क्या आशय समझते हैं? सामूहिक सौदेबाजी क महत्व का मूल्याकन कीजिये।
2 सामूहिक सौदेबाजी के लाभ-हानियो का वर्णन कीजिये। क्या सामूहिक सौदेबाजी भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी है?
3 योजनाबद्ध विकास द्वारा लागू शर्तों के अतर्गत सामूहिक सौदेबाजी की क्या सीमाए होनी चाहिए।
4 वैधानिक और स्वैच्छिक सामूहिक सौदेबाजी में आप क्या मतभेद करेंगे? किसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए और क्यो?

5 क्या आप इस बात से सहमत है कि (क) सामूहिक सौदेबाजी हितकर होती है जब श्रम सघ अपनी शक्ति पर्याप्त मात्रा मे बढा लें, उसी प्रकार श्रम सघो को मजबूत बनाने के लिए सामूहिक सौदेबाजी भी लाभदायक है, (ख) अदालती फैसले बिना किसी खुले सघर्ष के विवादरत पक्षो को सतोष प्रदान कर सकते हैं ?

6 सामूहिक समझौते के विभिन्न स्तरो का उल्लेख कीजिए। भारत मे प्रच लित सामूहिक सौदेबाजी प्रणाली का मूल्याकन कीजिए।

7 सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति सरचना एव महत्त्व पर प्रकाश डालिए एक आदर्श सौदेबाजी की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।

अध्याय 12

औद्योगिक आवास
(Industrial Housing)

औद्योगिक आवास से आशय . सामान्यत आवास से आशय श्रमिको के लिए रहने के लिए मकान की व्यवस्था से है। रहने की व्यवस्था अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी, किन्तु आवास-व्यवस्था का यह अर्थ अत्यत ही सकुचित है।

व्यापक अर्थ मे आवास-व्यवस्था से आशय श्रमिको के लिए ऐसे आश्रय से है, जो आरामदायक हो, श्रमिको की आवश्यकताओं के अनुरूप हो और जहा श्रमिक और उनके परिवार के सदस्य सुखमय जीवन व्यतित कर सकें। स्पष्ट शब्दो मे श्रमिको की आवास-व्यवस्था वहा होनी चाहिए जहा चिकित्सा, शिक्षा, क्रीडा, मनोरजन, स्वच्छ वायु, प्रकाश व जल, आग आदि की समुचित व्यवस्था हो।

आधुनिक दृष्टिकोण से आवास या मकान से आशय आयोजित मकानो से है। आधुनिक आवास-व्यवस्था के सबध मे **कैथेराइन बौर** ने लिखा है—"आधुनिक आवास-व्यवस्था मे कुछ विशेष गुण होते हैं तथा इसमे कुछ ढग व उद्देश्य सम्मिलित होते हैं, जो आधुनिक एव प्राचीन आवास-व्यवस्था के अतर को स्पष्ट करते है। पहली बात तो यह है कि आधुनिक मकान वर्षो तक के कुशल प्रयोग के लिए बनाये जाते है। प्रारंभिक रूप से कोई तात्कालिक लाभ कमाना इनके निर्माण का उद्देश्य नही होता। आधुनिक मकान आयोजित होता है, इसलिए इसमे अनुमान का कोई भी प्रश्न नही उठता। आवास की यह आधुनिक धारणा इस बात को स्वीकार करती है कि आयोजन इकाई, निर्माण और व्यवस्था की आर्थिक इकाई तथा रहन-सहन की सामाजिक इकाई का आपस मे घनिष्ठ सबध है, अत आधुनिक आवास-व्यवस्था का विकास केवल गलियो का यात्रिक विस्तार एव रहने के मकानो का झुण्ड मात्र नही है। इसका आदि भी है और अंत भी। इसका एक मूर्त स्वरूप भी है जिसको हम देखते हैं। इसका एक भाग दूसरे भाग से सबधित है और प्रत्येक भाग का एक विशेष पूर्व निश्चित उपयोग है। इसके अतिरिक्त आधुनिक आवास-व्यवस्था प्रत्येक आवास के स्थान मे न्यूनतम सुविधाओ को स्वीकार करती है, जिसमे हवा को इस पार से उस पार जाने, प्रकाश, प्रत्येक खिडकी मे सुखद एव शांति दृश्य, पर्याप्त एकान्तता, समुचित सफाई, बच्चो के लिए खेलने व मनोरजन के स्थान आदि का समावेश होता है। अत मे यह आवास स्थान एक ऐसी कीमत पर उपलब्ध हो

सके, जो औसत दर्जे का नागरिक दे सकता हो।"[1]

इस प्रकार हम देखते है कि आवास की आधुनिक धारणा के अनुसार आवास मे निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए—

(अ) मकान मे परिवार के सदस्यो के अनुपात मे पर्याप्त कमरे होने चाहिए।

(ब) मकान ऐसी जगह पर स्थितहोना चाहिए जहा स्वच्छता का अभाव न हो।

(स) मकान के प्रत्येक अग को सही तौर पर प्रयोग मे लाना चाहिए। उदाहरण के लिए सोने के कमरे को पढने का कमरा बनाना उचित न होगा।

(द) पत्येक मकान के मध्य कुछ जगह अवश्य खुली होनी चाहिए।

(य) मकान इस ढग से बना होना चाहिए कि उसम हवा को इस पार से उस पार जाने व रोशनी को पर्याप्त रूप मे आने की सुविधा हो।

(र) मकान मे बच्चो को खेलने-कूदने व अन्य कार्यों के लिए आगन की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(ल) इस प्रकार का मकान ऐसे मूल्य या किराये पर उपलब्ध होना चाहिए, जिसे की औसत वेतन पाने वाला व्यक्ति भी सरलता मे भुगतान कर सके।

औद्योगिक क्षेत्र मे आवास दशाये
(Housing Conditions in Industrial Centres)

भारत के औद्योगिक क्षेत्रो मे आवास की व्यवस्था अत्यत शोचनीय है। औद्योगिक केंद्रो मे जनसख्या तेजी से बढती जा रही है, परतु मकानो का निमार्ण उसी गति से नही हो पा रहा है। प्रत्येक बडे औद्योगिक नगरो मे भूमि की कीमतें बहुत अधिक बढ गई हैं। फलत सब मकान एक-दूसरे से मिले हुए बनते हैं और कमरे मे हवा और रोशनी आने का एकमात्र रास्ता एक दरवाजा होता है। अनेक स्त्री-पुरुषो को एक ही कमरे मे रहना पडता है। श्रमिको के मकान जिन क्षेत्रो मे बने हैं, वहा पर सफाई का नाम तक नही होता। वस्तुतः अनेक नगरो मे तो उनके निवास-स्थानो को मकान की सज्ञा देना ही लज्जा की बात है। इसीलिए 1952 मे भारत के तत्कालीन प्रधानमत्री प्र० जवाहरलाल नेहरू ने 2 अक्टूबर को कानपुर मे श्रमिको के निवास स्थान का निरीक्षण करते हुए इन्हें 'नरक कुण्ड' कहकर सबोधित किया था। भारतीय औद्योगिक केंद्रों मे आवास की स्थिति कितनी दयनीय है, यह श्रम जाच समितियो के प्रतिवेदनो से स्पष्ट हो जाता है। श्रम के शाही आयोग के शब्दो मे "अधिकतर मकानो मे एक ही कमरा होता है, न दरवाजे, न खिडकिया और न रोशदान होते है। इनका दरवाजा इतना छोटा होता है कि बिना झुके अदर प्रवेश नही *किया जा सकता। कुछ आड करने या परदा करने के लिए* पुराने कनस्तरो के टीनो या पुरानी टाट की बोरियो को काम मे लाया जाता है, जिनमे हवा और रोशनी के आने-जाने मे और भी बाधा पडती है। इस प्रकार के मकानो मे

1. Cathrine Baur, Quoted in Labour Investigation Committee Report, p. 211

मनुष्य उत्पन्न होते हैं, सोते हैं, भोजन करते हैं, जीवित रहते हैं और मर जाते हैं।' ब्रिटिश श्रमिक सघ सभा ने भी औद्योगिक केंद्रों की आवास व्यवस्था के सबध म इस प्रकार लिखा है—"जहा कहीं भी हम लोग ठहरे वहीं हम सब श्रमिकों के मकान देखने गये और अगर हम लोग अपनी आखो मे न देखते तो शायद यह विश्वास भी न कर पाते कि ऐसे खराब स्थान भी हो सकते हैं।'

श्रम शाही आयोग व ब्रिटिश श्रमिक सघ सभा ने भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के मकानों की दशा के सबध मे जो विवरण दिया है, उनमें आज भी कोई उल्लेखनीय सुधार नही हुआ है। उपलब्ध सूचना के अनुसार, इस देश मे आवासीय स्तर, विशेषकर बडे शहरों में बहुत ही असतोषजनक है और हमारी सभी कोशिशों के बावजूद काफी गिर गया है। 1971 में मकानों की कमी का अनुमान 2 2 से 2 7 करोड था। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 18वें अध्याय के अनुसार, विभिन्न प्रातों मे प्रति परिवार औसत निवास-स्थान 20 से 25 मीटर के बीच है। आवासीय क्षेत्र का 20 से 25 प्रतिशत भाग राष्ट्रीय भवन-निर्माण सगठन के प्रतिमानों के अनुरूप नही है। कुछ अपवादों को छोडकर, 80 प्रतिशत से अधिक परिवारों और कुछ प्रातों में तो 95 प्रतिशत से भी अधिक परिवारों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों मे शौचालय की सुविधा भी नही है और शहरी क्षेत्रों म भी 25 से 50 प्रतिशत परिवारों की यही स्थिति है।

भारत के कुछ औद्योगिक नगरों मे श्रमिकों के मकानों की जो वास्तविक अवस्था है, वह निम्नलिखित विवेचना से स्पष्ट हो जाएगी—

1 **बबई** इस शहर मे अधिकाश श्रमिक चालों मे रहते है, जिनकी दशा अत्यधिक असतोषजनक है। श्री शीवाराम ने चालो का जो वर्णन दिया है, वह इस प्रकार है—अधिकाश चालें बहुत ऊची और पक्की इमारतें हैं जो प्राय 4-5 मजिल तक होती है। इनमें अधिकाशत एक कमरे के मकान होते हैं। इनमे प्रकाश और वायु की कोई व्यवस्था नही होती। श्री शिवाराम ने लिखा है कि जब बबई मे मजदूरों की बस्ती मे एक लेडी डाक्टर मरीज देखने गई तो उसने देखा कि एक कमरे में चार परिवार रहते है जिनके सदस्यों की सख्या 24 थी। चारों कोनो मे चूल्हे बने हुए थे, सारा कमरा धुए से काला हो रहा था। श्री हर्स्ट ने इस प्रकार मजदूरों के बसने को गोदामों मे माल भरने के समान बताया है। शाही श्रम आयोग ने बबई की चालो के सबध में अपने प्रतिवेदन में लिखा था—"अधिकाश चालो में कोई भी सुधार करने की गुजाइश नही है और उनको नष्ट कर देने की आवश्यकता है।"

1981 की जनगणना के आकडों के अनुसार 82 लाख की आबादी वाले इस महानगर मे 35 लाख लोगो के पास रहने को कोई घर नही है। 1941 म जब इस महानगर की आबादी केवल 18 लाख थी तब यहा 30 000 मकानों की कमी थी। 1979 म जब आबादी 77 लाख हो गई तो मकानों की कमी भी बढकर आठ लाख हो गयी और 1981 के आकडे ऊपर लिखे ही जा चुके हैं। अनुमान किया जाता है कि इस शताब्दी के अन्त तक जब महानगर की जनसख्या 1 60 करोड हो जायगी सिर पर बिना छत वाले लोगों की सख्या भी 1 20 करोड हो जायेगी।

बबई महानगर की जनसंख्या जितनी तेजी से बढ रही है उसे देखते हुए इस शताब्दी के अन्त तक 15 लाख और मकानो की आवश्यकता होगी जिसके लिए 10 000 एकड भूमि की आवश्यकता पडेगी। लेकिन बबई के उपनगरो मे 15 लाख तथा स्वय बम्बई म सिर्फ 1000 एकड भूमि रिक्त है। यदि इसमे से अधिकाश पर मकान बना दिये जायेंगे तो शुद्ध वायु की समस्या पैदा हो जायेगी। प्रति एक हजार की आबादी के लिए कम स कम 1 2 हेक्टयर खुली जगह जरूरी होती है। किन्तु बबई महानगर म केवल 0 08 एकड भूमि ही उपलब्ध है।

बम्बई म मकानो का किराया और विक्रय मूल्य सभवत भारत भर म सबसे अधिक है। पिछले 5 वर्षों म ही इसम तीन सौ प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। कलकत्ता म चार कमरो वाला एक फ्लैट अढाई तीन लाख रुपये मे मिल जाता है किन्तु बम्बई म उसकी कीमत 20 लाख रुपये तक देनी पडती है।

बबई म पेइंग गेस्ट जैसा वग भी है। अकेला आदमी किसी जरूरत मन्द परिवार के साथ महमान के रूप म रहता है। बम्बई पेइंग गेस्ट बनान के लिए भी 300 स 2 000 रुपये प्रतिमाह दने पडते हैं।

कलकत्ता यूयार्क के पत्र म एक टिप्पणी छपी थी कि यदि भारत म कभी क्रान्ति होगी तो वह कलकत्ता म होगी क्योकि यहा पर एक ओर जहा वैभव की प्रतीक ऊची ऊची अट्टालिकाए हैं तो दूसरी ओर चरम गरीबी की प्रतीक गन्दी बस्तिया हैं। जहा मनुष्य जानवरो स भी बदतर हालत म रहता है।

कलकत्ता मैं करीब 3 000 हजार गन्दी बस्तिया हैं और महानगर की करीब 1/3 आबादी इनम निवास करती है। करीब 57% परिवार एक कमरे वाले घरो म रहते हैं जिनम औसतन तीन वग मीटर जगह होती है।

कलकत्ता म भी मकान प्राप्त करन के लिए मोटी पगडी अथवा सलामी देनी पडती है। विनयबादल दिनेश बाग (डलहौजी) अलीपुर पाक स्ट्रीट तथा बडा बाजार म एक कमरे के लिए 10 स 25 हजार रुपये तक की पगडी देनी पडती है। अग्रिम के नाम पर ली गई इस रकम का कहीं लेखा जोखा नही होता। न यह किराये म समायोजित होती न ही मकान छोडने पर वापस। इस पगडी के अलावा किराया 3-4 रुपये प्रतिवग फीट है।

मध्य कलकत्ता म इद गिद साधारण स बने फ्लैटो की विक्रय दर एक सौ स तीन सौ रुपये वग फीट है। मध्य कलकत्ता म अपेक्षाकृत अच्छे ढग स बने मकानों। फ्लैटो की विक्रय दर 450 रुपये प्रति वग फीट है।

कलकत्ता म प्रति वर्ष औसत रूप स 6 000 नयी आवास इकाइयो का निर्माण होता है जो आवश्यकता की दृष्टि से काफी कम है।

दिल्ली आवास की समस्या दिल्ली म भी विकराल बनती जा रही है। अन्य नगरो की तरह यहा भी मकानो के निर्माण की गति मद है और बेघरबार लोगों की सख्या बढती जा रही है।

हर महीने 16 000 लोग बाहर स आकर दिल्ली को अपना सघर्ष क्षेत्र बनाते हैं।

इस समय दिल्ली में लगभग 650 अनाधिकृत बस्तियां है जो 3,500 एकड भूमि पर फैली हुई है। *इन 650 बस्तियों में करीब 3,50,000 मकान हैं जिनमें 15,00,000 व्यक्तियों* ने अपना सिर छुपाया हुआ है।

प० जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से दिल्ली विकास प्राधिकरण ने आवासीय समस्या के समाधान हेतु 30,000 एकड भूमि के अधिग्रहण के नोटिस जारी किए थे जिसमें से अब तक 16,000 एकड भूमि अधिगृहीत की जा चुकी है। 1962 से 1967 तक केवल 400 मकान बनाये गए थे। लेकिन इस क्षेत्र में प्राधिकरण के प्रवेश करने के बाद 1967 से 1976 तक 40,000 मकान बनाए गए। इसके बाद के दो वर्षों में मकान निर्माण में और भी गति आई। *1979 तक 20 000 मकान बना डाले गए।* पिछले वर्ष के अन्त तक लगभग 70,000 आवास इकाइयां लोगों को वितरित की जा चुकी है।

दिल्ली विकास प्राधिकरण ने झुग्गी झोपडियों में रहने वालों के लिए 44 पुनर्वास कालोनियां बनाई हैं जिनमें 25 वर्ग मीटर के दो लाख प्लाट निर्धारित किए गए है किन्तु आर्थिक कारणों से केवल 40% प्लाटों पर ही मकान बन पाए हैं।

प्राधिकरण ने करीब 2 50 अरब रुपए की लागत वाली रोहिणी आवास परियोजना बनाई है 11,17,000 फ्लैटों वाली यह परियोजना चडीगढ से चार गुना बड़ी होगी।

3 **कानपुर** . 1971 की की जनगणना के अनुसार कानपुर की जनसख्या 12 73 लाख है, जिनमे एक विशाल सख्या मजदूरों और उनके परिवारों के सदस्यों की है। यहां के मजदूर बस्तियों को 'अहाता' कहा जाता है जिनमे बहुत-सी कोठरियां बनी होती हैं, जिनके सामने कभी कभी बरामदा भी होता है। एक कमरे और बरामदे की जगह मिलाकर औसतन 80 वर्ग फुट होती है जिनमे दो अथवा तीन और कभी-कभी चार परिवार तक रहते हैं। इनकी छतें बहुत नीची हैं तथा सफाई, प्रकाश एव वायु का कोई प्रबंध नहीं है। इस नगर मे इतनी गदी बस्तियां हैं जिन्हे देखकर स्वर्गीय प० जवाहरलाल नेहरू को इतना आश्चर्य और दुःख हुआ कि उन्होंने कहा—"ऐसी गदी बस्तियां मानवीय पतन की चरम सीमा का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को फांसी पर लटका देना चाहिए।"

कानपुर मे सरकारी योजना के अनुसार लगभग 20 000 आवास निर्मित किये गए हैं, परतु इससे समस्या की गभीरता में कोई खास अंतर नहीं आया है।

4 *अहमदाबाद 1971 की जनगणना के अनुसार अहमदाबाद की जनसंख्या* 17 46 लाख है। यहां भी श्रम निवास की स्थिति बहुत सतोषजनक नही है। यहां की नगरपालिका ने हरिजनो व अन्य श्रमिकों के लिए कुछ मकानों का निर्माण किया है। अहमदाबाद मिल हाउसिंग कम्पनी एव सूती वस्त्र मिल श्रम सघ की ओर से भी मकानों का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद मे श्रमिकों की गृह निर्माण सहकारी समितियां भी हैं। परतु श्रमिकों की वास्तविक संख्या देखते हुए ये सभी मकान न होने के बराबर हैं। अत: अधिकांश मजदूर चाल मे ही रहते है, जिनमे एक कमरा होता है जिसका क्षेत्रफल 12 × 10 फुट होता है। शौचालय, पीने के पानी, रोशनी, हवा आदि

घनिष्ठ रूप मे जुडी हुई है। भारत मे श्रमिको की आवास व्यवस्था को देखकर महात्मा के शब्द स्मरण हो आते हैं—"विश्व की रचना ईश्वर न की है, नगरों की मानव ने और श्रम बस्तियो की शैतानो ने।" आवास की त्रुटिपूर्ण व्यवस्था कितने व्यक्तिगत, आर्थिक व सामाजिक दोषो को जन्म देती है, इसका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षको द्वारा करेंगे :

1 **स्वास्थ्य ह्रास** आवास-व्यवस्था की हीन दशाओ का श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए शुद्ध वायु व प्रकाश बहुत आवश्यक है। भारतीय श्रमिकों के लिए जो भी मकान बने हुए हैं, उनमे वायु और प्रकाश के आने की कोई व्यवस्था नहीं है, जिसके कारण भारतीय श्रमिको का स्वास्थ्य दुर्बल है और वे अधिक बीमार रहते हैं। साथ ही श्रमिको के मकान ऐसी गदी गलियो मे स्थित हैं जिनके आस-पास कूडा-करकट व अन्य बहुत-सी सडी गली वस्तुए पडी रहती हैं। इससे भी वातावरण दूषित होता है और स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पडता है। डा० अमर नारायण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक Industrial Housing in India' मे लिखा है ' बबई की पास-पास बनी हुई चालें, अहमदाबाद के भूमि के नीचे बने हुए मकानो की कतारें, कानपुर, लखनऊ और हावडा की आन्तरिक बस्तिया, जूट मिल के गाव वाले छप्पर, कोयले की खानो के गदे धावरे तथा मद्रास के औद्योगिक कस्बो के गदे छप्पर —सभी तपेदिक और दूसरे श्वास रोगो के घर बन गए है।" वस्तुत: मकान और स्वास्थ्य परस्पर सबधित समस्याए हैं, बिना वायु और प्रकाश वाले मकान क्षयरोग तथा शिशु मृत्यु की ऊची दर का एक महत्वपूर्ण कारण होते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार सबसे गदे स्थानो मे मृत्यु दर 295 प्रति हजार थी जबकि साधारण 200 से 250 प्रति हजार ही थी। यह भी पाया गया कि मृत्यु सख्या निवास ने कमरो के विपरीत अनुपात मे है। एक कमरे वाले निवास स्थानो मे मृत्यु सख्या 78 3 प्रतिशत थी।

2 **नैतिक पतन और अपराध को प्रोत्साहन** . मनुष्य जैसे वातावरण मे रहता है उसकी मनोवृत्ति वैसी हो जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार गदे वातावरण मे रहने वाले श्रमिको की मनोभावना भी गदी हो जाती है। उनमे चोरी की आदत, शराब पीने की आदत, जुआ खेलने का शौक और वेश्यावृत्ति आदि दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। श्रमिको के निवास की व्यवस्था न होने के कारण वे अपने परिवार को औद्योगिक क्षेत्रो मे नही ला पाते जिसके परिणामस्वरूप वे या तो वेश्यावृत्ति की ओर अग्रसर होते हैं अथवा अन्य श्रमिकों की स्त्रियो से अनुचित सबध स्थापित करते है। **डा० राधाकमल मुखर्जी** ने वेश्यावृत्ति के लिए आवास की अपर्याप्तता को उत्तरदायी ठहराया है। वेश्यावृत्ति के कारण श्रमिको का चरित्र व स्वास्थ्य दोनो नष्ट हो जाता है। एक ही कमरे मे पुरुष व स्त्री के साथ रहने के कारण निरतर सयम से जीवन व्यतीत करना कठिन हो जाता है। ऐसे मकानो मे माता-पिता व अन्य वयस्क व्यक्तियो के यौन व्यवहारो को बच्चे देखते और सीखते रहते हैं। इसी कारण श्रमिको की गदी बस्तियो मे यौन अपराध अधिक होते हैं। गोपनीय स्थान के अभाव के कारण पुरुष व स्त्रियो के यौन व्यवहारो मे भी निर्लज्जता पनपती है तथा महिला श्रमिको के नैतिक पतन की अधिक आशका रहती

है। डा० मुखर्जी के शब्दो मे मिदनापुर के बगाल के जूट के मिलो मे आई हुई 300 स्त्रियों ने यह स्वीकार किया कि उनम से 3 मे एक वेश्यावृत्ति करती है और हुगली मे जितने परिवार पैदा हुए है, उनमे म एक-तिहाई मिलो मे काम करते हैं तथा उनमे से 4 मे 1 वेश्यावृत्ति करती है।

आवास-व्यवस्था की असुविधा के कारण श्रमिक स्थायी रूप से उद्योग मे नही टिक पाते। इसलिए उद्योगपति बस्ती के निर्माण के साथ ही वेश्यागृहो का निर्माण भी कर देते है जिससे श्रमिक ग्रामो से स्वस्थ व कार्यक्षमता को लेकर आते है, परतु नगरो से वे अपनी जवानी तथा कार्यक्षमता को लुटाकर गाव वापस जाते हैं। इस अभाग्यशाली परिस्थिति म विवश होकर डा० **राधाकमल मुखर्जी** ने लिखा है, 'भारतीय औद्योगिक केंद्रो की इन असख्य गदी बस्तियो मे मनुष्यता का निःसदेह ही निर्दयता के साथ गला घोटा जाता है, नारित्व का अपमान होता है और शिशुता को प्रारभ मे ही विषपान कराया जाता है।"[1]

3 **श्रमिको की कुशलता पर कुप्रभाव** श्रमिको की कुशलता के लिए अच्छा स्वास्थ्य आवश्यक है। परतु अच्छे मकानो के अभाव मे श्रमिक को गहरी नीद नही आती। गहरी नीद के लिए स्वच्छ वायु, उचित कमरा और शातिपूर्ण वातावरण बहुत आवश्यक है। पर बुरी आवास-व्यवस्था मे श्रमिको को यह सब सुविधाए नही मिल पाती, इससे उसकी थकावट दूर नही होती और सोने के बाद जब दूसरे दिन वह उठता है तब भी वह थका हुआ ही रहता है और उसका मन कार्य मे नही लगता। फलत. उसकी कार्यक्षमता मे कमी आती है।

4 **सेवायोजकों को हानि :** अपर्याप्त आवास-व्यवस्था के कारण सेवायोजको को भी श्रमिको की न्यून कार्यक्षमता, बुरे स्वास्थ्य, अनुपस्थिति आदि के कारण बहुत हानि सहनी पडती है। आवास की हीन दशाए **औद्योगिक सघर्षों** को भी जन्म देती हैं। मकानो के अभाव के कारण श्रमिक को अनेक कष्ट उठाने पडते हैं, जिससे वह समझने लगता है कि सेवायोजक उसके हितो की उपेक्षा कर रहा है। इस भावना के आते ही श्रमिक भी सेवायोजको के हितो की उपेक्षा करता है। धीमे चलो की नीति अपनाता है, उत्पादन कार्य मे अपव्यय अधिक करता है तथा मशीनो की तोड-फोड करने लगता है। जब सघर्ष और बढता है तो हडताल और तालाबदी की क्रियाए होने लगती है। कभी-कभी यह सघर्ष समाज क्रातिकारी प्रवृत्तियो को जन्म दे देता है।

5. **सास्कृतिक स्तर मे ह्रास** बुरी गृह-व्यवस्था क कारण श्रमिको का सास्कृतिक स्तर मे भी ह्रास होता है। श्रमिको का वेश्यागमन आदि कुप्रवृत्तियो के कारण नैतिक पतन हो जाता है। डा० **राधाकमल मुखर्जी** न एक स्थान पर लिखा है, 'वेश्यागमन की प्रवृत्ति से स्त्री और पुरुष दोनो ही के चरित्र दूषित होते हैं। उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है और राष्ट्र का सास्कृतिक स्तर गिर जाता है।"[2]

1. R. K. Mukharjee *Indian Working Class*, p. 230.
2. *Ibid*, p. 201.

6 **राष्ट्र को हानि :** आवास की दुर्व्यवस्था से राष्ट्र को भी हानि होती है, क्योंकि आवास की अपर्याप्त व्यवस्था से श्रमिकों की कार्यकुशलता कम हो जाती है तथा औद्योगिक संघर्षों के कारण राष्ट्रीय उत्पादन कम हो जाता है। साथ ही साथ श्रमिकों के लिए दशा सुधारने के लिए सरकार को सामाजिक कल्याण पर बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

गंदी बस्तियों की सफाई
(Slum Clearance Scheme)

भारत के सभी औद्योगिक केंद्रों में अधिकांश श्रमिक गंदी बस्तियों में ही निवास करते हैं। इन बस्तियों को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है, जैसे बम्बई में चाल, तमिलनाडु में चेरि, कानपुर में अहाता व कलकत्ता में बस्ती।

समस्या का स्वरूप

गंदी बस्तियां प्रायः दो प्रकार की होती हैं—(अ) कच्ची और (ब) पक्की। कच्ची श्रम बस्तियां घास-फूस व बांसों की सहायता से तैयार की जाती हैं और इनके निर्माण में किसी योजना से काम नहीं लिया जाता। इसके विपरीत पक्की श्रम बस्तियां ईंट और चूने की सहायता से तैयार की जाती हैं। इसके कमरे छोटे होते हैं तथा वे भी बिना किसी योजना के बने होते हैं। उनमें वायु अथवा प्रकाश का कोई प्रबंध नहीं होता। यह गंदी बस्तियां जिनमें श्रमिक अत्यंत अस्वास्थ्यकर गंदी कोठरियों में नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं, वर्तमान युग में समाज के माथे पर एक कलंक का टीका है। मानव को जीवित रहने के लिए कितना दुःख, कष्ट और दर्द सहना पड़ता है, इसका ज्वलंत उदाहरण ये गंदी बस्तियां हैं। इन बस्तियों को बिल्कुल समाप्त कर देने की समस्या पर सर्वप्रथम स्व० पं० नेहरू ने सन् 1952 में कानपुर में गंदी बस्तियों को देखकर समाज-सुधारकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। उनके शब्दों में, "मेरे विचार में तो इन सब गंदी बस्तियों को जला दिया जाये ताकि विकास अधिक तेजी से हो सके। जब तक निरोधात्मक उपायों का उपयोग नहीं किया जायेगा, तब तक अस्पतालों के निर्माण से क्या लाभ होगा? यदि बस्तियों को साफ कर दिया जाये और श्रमिकों को रहने के लिए अच्छे मकान दिये जायें तो निश्चय ही उत्पादन बढ़ेगा। मैं चाहता हूं कि अस्पतालों पर व्यय किया जाने वाला संपूर्ण धन गंदी बस्तियों की सफाई पर व्यय किया जाय।" मई, सन् 1952 में लोकसभा के सदस्य श्री **शिवाराम** ने संसद में कहा था—"अब समस्त देश में गंदी बस्तियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा का समय आ गया है।"

गंदी बस्तियों की सफाई

अब यह अधिकाधिक लोगों द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है कि गंदी बस्तियों **को साफ करना न केवल श्रमिकों के शारीरिक, आर्थिक और नैतिक दृष्टिकोण से आवश्यक है, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र के कल्याण के दृष्टिकोण से भी जरूरी है। परंतु आवश्यकता**

इस बात की है कि गंदी बस्तियों की समस्या के निवारण के लिए एक ऐसी *सुगठित* योजना बनाई जाये, जिसमें एक ओर तो विद्यमान गंदी बस्तियों को समाप्त करने के लिए क्रमबद्ध प्रयत्न किये जायें और दूसरी ओर उनके भावी विस्तार को नियंत्रित किया जाये। इस दिशा में जो किंचित् प्रयास किये गये हैं, वे इस प्रकार के हैं—

प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया *था और स्वीकार किया गया था कि गंदी बस्तियों को हटाने के लिए आवश्यक धन* निश्चित होना चाहिए और गंदी बस्तियों की सफाई की योजना हमारी आवास संबंधी नीति का एक आवश्यक अंग होना चाहिए। योजना में यह सुझाव रखा गया था कि मकानों के निर्माण के लिए स्वीकृत 38 5 करोड़ रुपयों में प्रति वर्ष गंदी बस्तियों के लिए अलग से आयोजन होना चाहिए। इस सबके फलस्वरूप सन् 1956 में गंदी बस्तियों *की सफाई की योजना का श्रीगणेश हुआ। इस योजना के अंतर्गत गंदी बस्तियों की* सफाई के लिए राज्य सरकारों तथा उनके द्वारा नगरपालिका व अन्य स्थानीय संस्थानों को आर्थिक सहायता प्रदान् की जाती है।

द्वितीय व तृतीय योजना के अंतर्गत गंदी बस्तियों की सफाई के लिए अनेक सुझाव रखे गए थे जैसे—(i) वर्तमान गंदी बस्तियों को साफ करना, (ii) नई गंदी *बस्तियां बनने से रोकना, (iii) गंदी बस्तियों में रहने वालों में सामाजिक शिक्षा के* प्रसार द्वारा चेतना भरना (iv) गंदी बस्तियों के संबंध में नगरपालिकाओं द्वारा कठोर नियमों का निर्माण करना (v) राज्य सरकारों द्वारा गंदी बस्तियों को खत्म करने के लिए **मास्टर प्लान** बनाना तथा स्थानीय संस्थाओं द्वारा पूरा करना। **चौथी पंचवर्षीय योजना** में भी ऐसी ही व्यवस्था की गई है।

योजना आयोग के आग्रह पर एक विशेष दल ने भी इस समस्या का गंभीरता से अध्ययन किया और यह सुझाव दिया कि जिन नगरों में जनसंख्या बहुत घनी है उनमें से उद्योगों को हटाकर उन्हें गाँव में स्थापित किया जाये, घनी बस्तियों में रोजगार के विस्तार को रोका जाये नगरों में जो नागरिक सुविधाएं उपलब्ध हैं उनमें से अधिकांश सुविधाओं की व्यवस्था गांव में की जाये, आदि।

अन्य सुझाव एवं निष्कर्ष

गंदी बस्तियों की सफाई की परियोजनाओं में और अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार दिये जा सकते हैं

1 *गंदी बस्तियों की सफाई की योजना के साथ साथ गंदी बस्तियों के सुधार की भी योजना शुरू की जानी चाहिए।*

2 नगर से दूर बसाई जाने वाली बस्तियों से कारखानों तक **आवागमन की सुविधाएं** सस्ती दर पर उपलब्ध होनी चाहिए और साथ ही ऐसी बस्तियों में बाजार, औषधालय, स्कूल पार्क डाक व तार घर आदि समस्त सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

3 नगरपालिकाओं के *अधिनियमों में आवश्यक संशोधन किये जाने चाहिए* और इन्हें कड़ाई के साथ लागू किया जाना चाहिए ताकि भविष्य में गंदी बस्तियों के

निर्माण को किसी प्रकार का प्रोत्साहन न मिले।

4 गंदी बस्तियों की सफाई और सुधार के कार्यक्रमों को चलाने के लिए स्वयंसेवी संगठनों और सामाजिक कार्यकर्ताओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए।

5 गंदी बस्तियों के क्षेत्र में शिक्षा का प्रचार किया जाना चाहिए ताकि लोगों में जागरूकता बढ़े और वे स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए उत्सुक हों।

6 नए मिल या कारखाने नगर से दूर खोले जाने चाहिए, और उनमें जितने श्रमिक कार्य करें उनकी आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मालिकों पर हो।

7 प्रत्येक नगर के लिए मास्टर प्लान होना चाहिए जिसके अनुसार नगरों का भावी विकास हो।

8 बड़े-बड़े नगरों में वर्तमान उद्योगों और सहकारी कार्यालयों का विकेंद्रीकरण होना चाहिए।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि गंदी बस्तियों की सफाई कोई एक पृथक समस्या नहीं है। यह संपूर्ण आवास नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वास्तव में आवास की प्रत्येक योजना में गंदी बस्तियों की सफाई की भी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे कि जब भी कोई नवीन गृह व्यवस्था की जाये गंदी बस्तियों में रहने वाले व्यक्तियों को इन नये मकानों में ले जाया जा सके और संबंधित गंदी बस्तियों में सफाई के लिए कार्य किये जा सकें।

आवास-समस्या को सुलझाने के लिए किए गए प्रयास
(Efforts to Solve the Housing Problem)

भारत में आवास की समस्या अत्यंत जटिल है क्योंकि गृह निर्माण बहुत व्यय साध्य कार्य है। साथ ही दिन प्रतिदिन जनसंख्या बढ़ती जा रही है। अत प्रति वर्ष नये नये गृहों का निर्माण करना आवश्यक है। तेजी से विकसित होने वाले नगरों में मकान बनाने के लिए पर्याप्त भूमि नहीं मिल रही है। परंतु आवास की समस्या को इस प्रकार छोड़ा नहीं जा सकता। डा० राधाकमल मुखर्जी ने उपयुक्त ही कहा था— 'कुछ लोग यह कहते हैं कि भारत औद्योगिक आवास के लिए अधिक व्यय करने की स्थिति में नहीं है। उनको केवल एक ही उत्तर दिया जा सकता है कि भारत इस व्यय से बचने की स्थिति में भी नहीं है।'

भारतीय श्रमिकों के निवास की समस्या के समाधान के लिए केंद्रीय व राज्य सरकारों, उद्योगपतियों व नगरपालिकाओं द्वारा प्रयास चल रहे हैं। सुधार के प्रयत्नों की विवेचना हम निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं

1 **राज्य क्षेत्र की योजनाएं** आवास समस्या के समाधान के लिए राज्य [illegible] की जा रही प्रमुख योजनाएं निम्नलिखित हैं—

(i) *एकीकृत सहायता प्राप्त आवास योजना* यह योजना जो 19[illegible] [illegible] कम वेतन पाने वाले औद्योगिक श्रमिकों और समाज के आर्थिक दृष्टि से दुर्बल [illegible] के लिए है। इस योजना के अंतर्गत मकान प्राप्त करने के लिए 500 रुपया [illegible]

आमदनी की सीमा रखी गई है। जिनकी आमदनी या मजदूरी प्रति माह 351 रु० से 500 रु० तक है उन्हे कुछ अतिरिक्त भारवहन करना होता है। 31 दिसम्बर, 1980 तक इस योजना मे 1,87,580 मकान बन चुके थे।

(ii) **निम्न आय वर्ग आवास योजना** : इस योजना के अतर्गत जो 1954 मे चालू हुई थी, ऐसे व्यक्तियो को (या उनकी सहकारियो को) मकान बनाने के लिए ऋण दिया जाता है, जिनकी वार्षिक आय 7,200 से अधिक नही है। ऋण की राशि विकसित भूमि की लागत के 80 प्रतिशत तक होती है और अधिकतम ऋण राशि 14,500 रु० तक होती है। 31 दिसम्बर, 1982 तक 4,15,320 मकान बनाए जा चुके थे।

(iii) **मध्यम आय वर्ग योजना** : इस योजना के अतर्गत जो 1959 मे प्रारभ हुई थी मकान बनाने के लिए ऋण सामान्यतया उस धन राशि मे से दिया जाता है जिसे जीवन बीमा निगम ऋण के रूप मे राज्यो को देता है। केंद्र शासित प्रदेशो को यह धन केंद्रीय सरकार देती है। इस योजना के अतर्गत मकान बनाने के लिए ऋण उन व्यक्तियो को दिया जाता है जिनकी वार्षिक आय 7,201 रुपये से 18,000 के बीच होती है। ऋण मकान की लागत का 80 प्रतिशत तक होता है। और यह अधिकतम 27,500 रुपये तक हो सकता है। ऋण के पात्र व्यक्तियो को बने बनाए मकान खरीदने के लिए भी ऋण मिलता है। 31 दिसम्बर 1982 तक 45,252 मकान बनाये जा चुके थे।

(iv) **ग्रामीण आवास परियोजना कार्यक्रम** : इस योजना के अतर्गत ग्रामीणो को मकान बनाने के लिए ऋण देने की व्यवस्था है। यह ऋण निर्माण लागत का 80 प्रतिशत तक हो सकता है और अधिकतम 5,000 रुपये होता है। ग्रामो का वातावरण सुधारने के लिए गलिया और नालियां बनवाने के लिए भी इस कार्यक्रम के अतर्गत ऋण दिया जाता है। 31 दिसम्बर 1982 तक लगभग 70,000 मकान बनाए जा चुके हैं।

(v) **किराया आवास योजना** : इस आवास योजना मे राज्य सरकारो के कर्मचारियो के लिए है और यह 1959 मे प्रारभ की गई थी। इस योजना के अतर्गत राज्य सरकारें अपने कर्मचारियो के लिए मकान बनवाती है और उन्हे किराये पर देती है। 31 दिसम्ब 1982 तक 35,000 मकान बनाए जा चुके थे।

(vi) **1959 मे प्रारभ भूमि अधिग्रहण और विकास योजना** : इस योजना के अतर्गत राज्य सरकारें और केंद्र शासित क्षेत्रो के शासन शहरी क्षेत्रो मे भूमि का अधिग्रहण और विकास करते हैं, ताकि मकान बनाने के लिए इच्छुक व्यक्तियो को, विशेषकर निम्न आय वर्ग के व्यक्तियो को उचित मूल्य पर विकसित प्लाट मिल सकें। इसका उद्देश्य भूमि के मूल्य मे स्थिरता लाना, नगर विकास के कार्य को युक्तिसगत बनाना और अपने आप मे पूर्ण सुविधा युक्त बस्तियो के निर्माण को बढावा देना है। 31 दिसम्बर, 1982 तक विभिन्न राज्य सरकारो ने लगभग 15,000 हेक्टर से अधिक भूमि का अधिग्रहण और 1,243 हेक्टर भूमि का विकास कर लिया था।

2. **केंद्रीय क्षेत्र की योजनाएं** : आवास समस्या के समाधान के लिए केंद्र द्वारा क्रियान्वित की जा रही प्रमुख योजनाएं निम्नलिखित हैं—

(i) **बागान मजदूरो के लिए** : बागान मजदूरो के लिए सहायता-प्राप्त आवास

योजना 1956 से चालू है। इस योजना के अंतर्गत केंद्रीय सरकार बागान श्रमिकों को किराया लिए बिना मकान देने के वास्ते मकान तैयार करने के लिए 50 प्रतिशत ऋण और 37 5 प्रतिशत अनुदान देती है। बागान मजदूर छ राज्यों असम कर्नाटक, केरल तमिलनाडु त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल मे है। बागान श्रमिकों की सहकारियों को परियोजना की स्वीकृत लागत का 90 प्रतिशत तक वित्तीय सहायता के रूप में मिलता है— 65 प्रतिशत ऋण के रूप में मिलता है और 25 प्रतिशत अनुदान के रूप में।

1956 मे स्वीकृत एक कल्याण योजना केंद्रीय सरकार को भी है जिसके अनुसार यह अपने कर्मचारियों को जिनमे वे कर्मचारी शामिल हैं जिनको 'वेतन कानून' के अनुसार भुगतान होता है मकान बनाने और बने बनाये मकान खरीदने के लिए ऋण देती है। एक अप्रैल 1978 से ऋण स्वीकृत करने का अधिकार मंत्रालयों विभागों को दे दिया गया है। बजट और फंड मे हिस्से का निर्धारण निर्माण तथा आवास मंत्रालय करता है। 1983-84 **वर्ष के लिए 42 50 करोड़ रुपये का प्रावधान था।**

(ii) **ग्रामीण क्षेत्रों मे भूमिहीन श्रमिकों के लिए** ग्रामीण क्षेत्रों मे भूमिहीन श्रमिकों को मकान बनाने के लिए भूमि उपलब्ध करवाने की योजना राष्ट्रीय न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का एक अंग है। पांचवी योजना के शुरू होने से अर्थात एक अप्रैल 1974 से यह केंद्रीय क्षेत्र से राज्य क्षेत्र मे हस्तांतरित कर दी गई है।

30 सितम्बर 1982 तक विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों मे लगभग 80 24 लाख परिवारों **को मकान बनाने के लिए** जमीन दी जा चुकी थी। इस योजना को और व्यापक बनाया गया और मकान बनाने के लिए सहायता भी दी जाने लगी है। अब तक 12 राज्यों 4 राज्य शासित केंद्रों मे 9 62 लाख परिवार अपने रहने के लिए मकान बना सके है।

3 **अन्य योजनाएं**

(i) **गंदी बस्तियों की सफाई और सुधार योजना** गंदी बस्तियों की सफाई और सुधार योजना एक केंद्र प्रेरित कार्यक्रम के रूप मे 1956 में चालू की गई थी। इसके अंतर्गत गंदी बस्तियों की सफाई और सुधार तथा गंदी बस्तियों के ऐसे निवासियों को जिनकी मासिक आय 350 रुपए से अधिक नहीं है स्वच्छ क्षेत्रों मे मकान देने के लिए राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को वित्तीय सहायता दी जाती है। 1 अप्रैल 1969 से यह योजना राज्य सरकारों को सौंप दी गई।

(ii) **गंदी बस्तियों के पर्यावरण का सुधार** गंदी बस्तियों के पर्यावरण को सुधारने के लिए गंदी बस्ती पर्यावरण सुधार केंद्रीय योजना कार्यक्रम 1972 में 10 शहरों अहमदाबाद बंबई बंगलौर, दिल्ली, हैदराबाद कानपुर लखनऊ मद्रास, नागपुर और पुणे में शुरू किया गया। 1973-74 के दौरान 10 और शहर कलकत्ता, **कोचीन,** कटक, गोहाटी, इन्दौर, जयपुर, लुधियाना, पटना, रोहतक और श्रीनगर इस कार्यक्रम के अंतर्गत आ गए। गंदी बस्तियों के पीने के पानी की व्यवस्था करने, जलमल का निकास का प्रबंध करने, गुसलखाने और शौचालय बनाने, सड़कों पर रोशनी का इन्तजाम करने

और मौजूदा गलियो को चौडा और पक्का करने के लिए सम्बद्ध राज्य सरकारो को पूरी वित्तीय सहायता दी गई। 31 मार्च 1974 तक 24 60 करोड रुपये से अधिक लागत की 854 परियोजनाओ को स्वीकृति दी जा चुकी थी। इन परियोजनाओ के लिए राज्यो को 20 23 करोड रुपये से अधिक की राशि दी गई। इस राशि मे से 14 21 करोड रुपये से अधिक मार्च 1974 के अत तक खर्च किए जा चुके थे।

यह योजना 1 अप्रैल 1974 से केंद्रीय क्षेत्र से निकालकर राज्य क्षेत्र को सौंप दी गई जिससे कि राज्य सरकारें इसे एक न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के रूप मे कार्यान्वित करें। इस योजना के कार्यक्षेत्र का तीन लाख या उससे अधिक जनसख्या वाले नगरो तक या प्रत्येक उस राज्य के एक नगर मे जहा यह योजना अभी तक लागू नही की गई है विस्तार कर दिया गया है। अब बिना किसी जनसख्या आधार के सभी शहरी क्षेत्र इस योजना के अधीन आ गए हैं।

(iii) **झुग्गी झोपडी हटाने की योजना** झुग्गी झोपडी हटाने की योजना का उद्देश्य उन लोगो के लिए वैकल्पिक आवास की व्यवस्था करना है जिन्होने दिल्ली और नई दिल्ली मे सरकारी और सार्वजनिक भूमि पर गैर कानूनी रूप से कब्जा कर रखा है। इस योजना के अतर्गत अब तक लगभग 2 लाख मकानो और प्लाटो का निर्माण/विकास किया जा चुका है।

पचवर्षीय योजनाओ के अधीन प्रगति

1 **प्रथम पचवर्षीय योजना** इस योजना की अवधि मे राष्ट्रीय आवास कार्यक्रम तैयार करने की ओर ध्यान दिया गया। इस योजना मे औद्योगिक केंद्रो की आवास व्यवस्था का वित्तीय उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से केंद्र सरकार पर ही था और औद्योगिक श्रमिको तथा कम आय वाले समूहो मे आवास सबधी परिस्थितियो को छ का प्रावधान करते हुए सुधारने पर बल दिया गया। सहकारी आवास समितियो की भूमिका पर विशेष बल दिया गया। स्वास्थ्य और एकातता को ध्यान मे रखते हुए मकानो के लिए न्यूनतम मानदड निर्धारित किया गया। इस योजना मे 48 7 करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी जिसके द्वारा नागरिक क्षेत्रो मे मकानो का निर्माण करना था। अनुमान है कि पहली योजना की अवधि मे सरकारी सस्थाओ द्वारा लगभग 7 लाख मकान बनाये गए थे।

2 **द्वितीय पचवर्षीय योजना** द्वितीय योजना मे गृह निर्माण के लिए 120 करोड रु० की व्यवस्था की गई थी लेकिन वास्तव मे 80 3 करोड रु० ही व्यय किये गये। इस योजना काल मे उत्पादन औद्योगिक आवास योजना के अतर्गत 1 लाख 28 हजार मकान बनाने का लक्ष्य सामने रखा गया था तथा गदी बस्तियो मे रहने वाले श्रमिको व भगियो के लिए 1 लाख 10 हजार नये मकान बनाये जाने थे। इनके अतिरिक्त पुनर्वास सुरक्षा रेल फौलाद खान ईंधन तथा सचार मत्रालयो और राज्य सरकारो तथा स्थानीय प्राधिकारो ने अपनी अपनी मकान योजनाए बनाई हैं। कोयला और अभ्रक उद्योगो ने अपने श्रमिको के मकान निर्माण के लिए अलग योजनायें बनाई है। इस प्रकार

दूसरी पंचवर्षीय योजना में आवास योजनाओं पर सरकारी क्षेत्र में 250 करोड़ रु० लगाया गया और पांच लाख मकान बनाए गए।

3. **तीसरी पंचवर्षीय योजना** . इस योजनावधि में सामाजिक मकान योजना पर 1.7455 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इसमें से 87.55 करोड़ रु० योजना साधनों से और 60 करोड़ रु० जीवन बीमा निगम से प्राप्त किए गए थे। इस अवधि में लगभग 1 लाख 87 हजार मकानों का निर्माण किया गया। इसके अतिरिक्त दिल्ली नगर में झुग्गी व झोपड़ियों को हटाने की योजना कार्यान्वित की गई।

सन् 1966 से 1969 की अवधि में आवास-व्यवस्था पर 62.85 करोड़ रु० व्यय किए गए और 74,776 मकानों का निर्माण हुआ।

4 **चतुर्थ योजना** में आवास पर कुल 237.03 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई, जिसमें से 188.43 करोड़ विभिन्न आवासी योजनाओं पर व्यय होना था।

5 **पांचवीं योजना** में राज्यों की योजनाओं पर 343 करोड़ रु० तथा केंद्र की योजनाओं पर 237.16 करोड़ रु० की व्यवस्था की गई। पांचवीं योजना में करीब 70 लाख भूमिहीन मजदूरों को घर बनाने के लिए जगह दी गई थी, किंतु उन्हें विकसित करने या उन पर घर बनाने के लिए कोई सहायता नहीं दी गई।

6 *छठी योजना में (1980-85) सार्वजनिक और निजी क्षेत्र कुल मिलाकर* 12900 करोड़ रुपये व्यय करेंगे। इनमें से 3500 करोड़ रुपये ग्रामीण आवास के लिए और 9400 करोड़ रुपये शहरी आवास के लिए होंगे। इतने खर्चे से ग्रामीण इलाकों में *1 करोड़ 30 लाख मकान और शहरी इलाकों में 57 लाख मकान बन पायेंगे।* सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान, विभागीय उपक्रम और सरकारी अनुदान और सहायता पाने वाली संस्थाएं भी 250-300 करोड़ रुपये इस कार्य में लगा सकती हैं। समाज के कमजोर और निम्न आय वर्ग के लोगों को मकान दिलाने पर पहले की तरह विशेष बल दिया जाता है।

आवास-योजना की धीमी प्रगति के कारण

आवास-समस्या को सुलझाने के लिए किए गए प्रयत्नों से स्पष्ट है कि देश में *आवास-समस्या की गंभीरता पर इन प्रयासों का प्रभाव नगण्य रहा है। यही कारण है* कि समस्त प्रयत्नों के होते हुए भी आज देश में आवास-समस्या अत्यंत गंभीर बनी हुई है। अनेक प्रयत्न करने पर भी आवास-योजनाओं में प्रगति धीमी ही रही है। इस धीमी प्रगति के कारणों को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं—

1 ***राज्य सरकारों की ओर से धीमी प्रगति :***

राज्य सरकारों द्वारा जो आवास-योजना चल रही है उसमें गति धीमी के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

(अ) *राज्य सरकारों की योजनाओं में सरकारी* **लालफीताशाही तथा मंद गति से कार्य करने की प्रवृत्ति अधिक है।**

(ब) आवश्यक टेक्निकल ज्ञान व यन्त्रो की कमी अनुभव की जाती है।

(स) भवन निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री देश मे पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध नही है और न ही वह सस्ते मूल्य पर प्राप्त हो सकती है, जिसके कारण मकानो की लागत ऊची बैठती है। ऊची लागत राज्य सरकारो को भवन निर्माण के लिए हतोत्साहित कर रही है।

(द) राज्य सरकारें जो मकान बनाती हैं, उनको किराये पर श्रमिको को दिया जाता है। परतु कुछ विशेष स्थानो पर श्रमिक इतने निर्धन हैं कि वे मकानो का 10 रु० मासिक किराया देने मे भी असमर्थ रहे हैं, जिससे राज्य सरकारो को अधिक मकान बनाने के लिए कोई प्रेरणा नही मिली।

(य) कुछ अपवादो को छोडकर राज्य सरकारें व्यापक भवन निर्माण कार्यक्रमो को सहायता देने और उन्हे हाथ मे लेने के लिए पर्याप्त रूप से सगठित नही है।

2 सेवायोजको द्वारा मकानो के निर्माण मे धीमी प्रगति

सेवायोजको को भी भवन-निर्माण मे निम्न कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है, जिसके कारण वे इस ओर अधिक रुचि नही ले रहे हैं—

(अ) मकानो को बनाने के लिए भूमि प्राप्त करने मे कठिनाई का सामना करना पडता है।

(ब) भवन-निर्माण की कुल लागत का 37-1/2% अश सेवायोजको को अपने पास से व्यय करना पडता है। अत इससे बचने के लिए वे भवन-निर्माण की ओर कोई विशेष रुचि नही लेते।

(स) भवन निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री का आवश्यकतानुसार और कम मूल्य पर प्राप्त न होना।

(द) भवन-निर्माण से मकानो के मालिक बनकर श्रमिको के साथ सघर्ष का एक नया कारण उत्पन्न हो जाने के भय से भी सेवायोजक भवन निर्माण की योजना की उपेक्षा करते हैं।

(य) सेवायोजक यह भी सोचते हैं कि राज्य सरकारें तो मकान का निर्माण कर ही रही हैं, इसलिए उनको मकान बनाने की क्या आवश्यकता है।

(र) अधिकतर सेवायोजको मे आज भी यह भावना प्रबल है कि श्रमिको के लिए मकान बनवाने पर व्यय होने वाला रुपया व्यर्थ का खर्च है और इसलिए उद्योग पर वह एक आवश्यक भार है।

3 श्रमिको की सहकारी समितियों द्वारा धीमी प्रगति :

निम्नलिखित पाच बाधाए ऐसी हैं जो सहकारी समितियो को भी धीमी प्रगति पर चलने के लिए बाध्य कर रही हैं

(अ) श्रमिको का इन समितियो मे विशेष रुचि न लेना।

(ब) भूमि का उचित दर पर न मिल सकना।

(स) इन समितियों की स्थापना व रजिस्टर्ड करने के ज्ञान की कमी।
(द) भवन-निर्माण की लागत का 25% अश के व्यय के लिए धन न होना।
(य) सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता की उचित विज्ञप्ति का न होना।

आवास-योजना की तीव्र प्रगति के लिए सुझाव

औद्योगिक आवास योजना को अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए श्री वी० वी० गिरि के निम्नलिखित सुझाव अनुकरणीय हैं

1 भवन-निर्माण के लिए विभिन्न सस्थाए जो ऋण देती हैं उनकी वापसी की किस्तो म कुछ रियायत कर देनी चाहिए, विशेषकर श्रमिको की सहकारी समितियो के लिए।

2 श्रमिको का निवास स्थान अगर औद्योगिक क्षेत्रो से अधिक दूर हो तो निवास स्थान से लेकर औद्योगिक सस्थान तक यातायात की व्यवस्था राज्य सरकारो व स्थानीय सस्थाओ को कर देनी चाहिए।

3 श्रमिको की बस्तियो म बाजार, औषधालय, स्कूल, खेल के मैदान, पार्क, डाक व तारघर आदि समस्त सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिए।

4 मजदूरी भुगतान अधिनियम मे इस प्रकार सशोधन किया जाना चाहिए, कि राज्य सरकारें सीधे श्रमिको के वेतन से ऋण की राशि प्राप्त करें।

5 यह योजना उन औद्योगिक श्रमिको के लिए भी काम मे लानी चाहिए जो राज्य सरकारो और केंद्रीय सरकार के कर्मचारी हैं।

6 उपक्रम मे जो श्रमिक ऐसे रह गये हो, जिनके लिए मकानो की व्यवस्था न हो सकी हो उनमे से अगर सेवायोजक कम से कम 20% श्रमिको के लिए मकान बनवाने को तैयार हो जाते हैं तो उनकी बढी हुई दर पर ऋण और आर्थिक सहायता 3 से 5 वर्ष तक प्रदान करने की व्यवस्था की जाए।

7 राज्य सरकारें सेवायोजको को भवन निर्माण के लिए भूमि उचित मूल्य पर प्रदान करें।

8 वित्तीय सहायता और ऋण मे वृद्धि करके श्रमिको की सहकारी समितियो को प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

9 जहा पर श्रमिक स्वय अपने श्रम से मकान की व्यवस्था कर सकता हो, वहा पर श्रमिको को एक अलग भूमि का टुकडा दिया जाना चाहिए जिसमे उसको समस्त सुविधाए प्राप्त हो सकें।

10 यदि कोई अन्य योजना बनाई जाती है तो उसके लिए भी वित्तीय सहायता देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

11 इतनी सुविधायें दे देने पर यदि सेवायोजक अपने श्रमिको के लिए मकान नही बनवाते तो उनको कुछ मकान बनवाने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए।

आवास-समस्या पर राष्ट्रीय श्रम आयोग के सुझाव[1]

1 औद्योगिक नगरो मे स्वय सरकार को आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व लेना चाहिए। उद्योगपतियो से इस दशा मे सहायता ली जा सकती है, परतु आवास-व्यवस्था को उद्योगपतियो के लिए अनिवार्य बनाने मे कोई लाभ न होगा।

2 कम आय वाले वर्ग के लिए उत्पादन औद्योगिक आवास-योजना जारी रहनी चाहिए।

3 प्रत्येक राज्य मे आवास बोर्ड सगठित होने चाहिए। केंद्रीय सरकार इन बोर्डों को सहायता दे जो 50% उपादान और 50% ऋण के रूप मे हो।

4 सहकारी समितियो का गठन प्रोत्साहित करना चाहिए।

5 यदि नये आवास औद्योगिक केंद्रो से दूर पडते हैं तो यातायात की व्यवस्था सरकार, उद्योगपति व यातायात कपनियो की सहायता से होनी चाहिए।

6 भूमिहीन मजदूरो को अपने घर के स्वामित्व का अधिकार मिलना चाहिए।

7 ग्रामीण मजदूरो तथा अन्य व्यक्तियो के लिए सरकारी योजनाए चलती रहनी चाहिए।

आवास मत्री सम्मेलन सन् 1971 की सिफारिशे

नवम्बर, सन 1971 मे नई दिल्ली मे आवास मत्री सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमे आवास-समस्या पर गभीरता से विचार किया गया तथा निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत की गई

1 राज्य सरकारो को चाहिए कि वे एक स्वस्थ नगरीय भूमि नीति का निर्माण करें, जिससे राज्य आवास बोर्ड को अपने कार्य-सचालन मे अधिकतम स्वतत्रता एव सुगमता हो।

2 राष्ट्रीय नियोजन मे आवास-व्यवस्था व नगरीय विकास को उच्चतम प्राथमिकता दी जानी चाहिए तथा इस हेतु राज्य सरकारो को चाहिए कि वे पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था करें।

3 बडी-बडी राजधानियो मे फ्लैट्स के क्रेताओ के हितों की सुरक्षा के लिए महाराष्ट्र एपार्टमेंट ओनरशिप एक्ट सन् 1970 के आधार पर अन्य राज्य सरकारो को भी उपयुक्त सन्नियम बनाना चाहिए।

4 कम आय वर्ग आवास योजना तथा मध्यम आय वर्ग आवास योजना के अतर्गत मिलने वाले ऋण की सीमा क्रमश 14,500 रु० व 27,500 रु० तक बढा देनी चाहिए।

भारत सरकार ने चौथी सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और शेष तीनो सिफारिशो का क्रियान्वयन राज्य सरकारो पर निर्भर करता है।

1. National Commission or Labour, p. 448 9.

परीक्षा-प्रश्न

1 भारत मे किसी बडे नगर म औद्योगिक श्रमिक की निवास दशाओ का वणन कीजिए और उनके सुधार के लिए उपर्युक्त सुविधाओ का सुझाव दीजिए।

अथवा

"भारत म एक बडे औद्योगिक केंद्र मे उनके साधनो के साथ लगान पर कम आय के श्रमिको के निवास को एक सार्वजनिक सेवा के रूप म स्वीकार किया जाना चाहिए।"

कानपुर के औद्योगिक श्रमिको के मकानो की समस्या के उदाहरण सहित उक्त कथन को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

कानपुर के औद्योगिक श्रमिको की निवास-दशाओ का वर्णन कीजिए और हाल के वर्षों म इसके सुधार के लिए जो कदम उठाए गए हैं, उनका वर्णन कीजिए। इस ओर आप अन्य कौन-कौन से सुझाव देंगे।

अथवा

भारत मे औद्योगिक श्रम के निवास पर एक सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। देश म श्रमिको के लिए अच्छे और स्वस्थ निवास के लिए सुझाव दीजिए।

अथवा

क्या इस देश के औद्योगिक क्षेत्र मे औद्योगिक श्रमिको की निवास दशाए सतोष-जनक हैं? अगर नही तो इन दशाओ के लिए उचित उपायो का सुझाव दीजिए।

2 अगर भारत मे आज का औद्योगिक श्रमिक शारीरिक रूप मे अकुशल और अस्वस्थ है तो असहनीय आवास-दशाए इनके लिए कम उत्तरदायी नही हैं।—श्रम अनुसधान समिति।

3 औद्योगिक श्रमिको के मकानो के सुधार के लिए भारत सरकार और राज्य सरकारो के द्वारा उठाए गए पगो का वर्णन कीजिए। इस ओर आप और कौन-कौन-से सुधारो के सुझाव देंगे?

अथवा

देश मे मकानो की कठिनाइयो का सामना करने के लिए केंद्रीय और राज्य सरकारो के विचाराधीन और व्यवहार मे लाई गई क्रियाओ का निरीक्षण कीजिए। स्थिति का मूल्याकन कीजिए।

अथवा

औद्योगिक श्रमिको के लिए भारत सरकार की वर्तमान नीति की मुख्य विशेषताओ का वर्णन कीजिए। सेवायोजकों और राज्य सरकारो ने इसे किस प्रकार व्यावहारिकता प्रदान की है ?

4 'जब तक श्रमिक को उसके काम के अनुसार अच्छा तथा सुविधाजनक मकान रहने के लिए नही मिलता, तब तक वह एकाग्रता से कार्य नही कर सकता।" इस सबध मे अपने विचार प्रकट कीजिए।

5 "भारतीय औद्योगिक केंद्रो की हजारो श्रम-बस्तियो मे मानवता को निर्दयता के साथ अभिशापित किया जाता है, महिलाओ के सतीत्व का अपमान किया जाता है एव देश के भावी आधार-स्तभ शिशुओ को आरभ मे ही शोषित किया जाता है।" इस कथन के प्रकाश मे श्रमिको की कार्यक्षमता पर गदी घनी बस्तियो के प्रभाव का परीक्षण कीजिए।

6 'भारत मे औद्योगिक केंद्रो मे गदी बस्तियो का होना हमारी सभ्यता के लिए एक अभिशाप है।" इस दोष के निवारणार्थ भारत सरकार ने क्या कदम उठाए हैं·· ? इस सबध मे भारत सरकार को और क्या करना चाहिए ?

7 "गदी बस्तियो की सफाई कोई एकाकी समस्या नही है। यह वास्तव मे आवास नीति का एक अग है।" इस कथन को विस्तार से समझाइए।

अध्याय 13

भारत में श्रम कल्याण

(Labour Welfare in India)

श्रम कल्याण का अर्थ एव परिभाषा : श्रम कल्याण का अर्थ विभिन्न व्यक्तियो द्वारा विभिन्न अर्थों मे लगाया जाता है, यद्यपि इसकी महत्ता एव उद्देश्य विभिन्न देशो मे समान है। अर्थर जेवस टार्ड ने उपयुक्त ही लिखा है—'कल्याण कार्य के समप्रेरको एव योग्यताओ के विषय मे तीव्र भिन्नता वाले विचारो की एक श्रृखला पाई जाती है।" इस विविधता को उपयुक्त ठहराते हुए शाही आयोग ने लिखा है—"श्रम कल्याण एक ऐसा शब्द है, जो बहुत ही लचीला है। इसका अर्थ एक देश मे दूसरे देश की तुलना मे उसकी विभिन्न सामाजिक नीतियो औद्योगीकरण की स्थिति व श्रमिको की शिक्षा *सबधी प्रगति के अनुसार भिन्न भिन्न लगाया जाता है।"* **राष्ट्रीय श्रम आयोग (1969)** के विचार मे भी "श्रम कल्याण का विचार आवश्यक रूप मे प्रगतिशील है जिसका अर्थ देश मे समय-समय पर यहा तक कि एक देश मे ही उसके मूल्याकन, सामाजिक सस्थाओ, औद्योगीकरण की मात्रा व सामाजिक तथा आर्थिक विकास के स्तर से भिन्न-भिन्न होता है।" इस प्रकार श्रम कल्याण को एक निश्चित सीमा के अदर बाधना असभव तो नही, कठिन अवश्य ही है, क्योकि इसका अर्थ बहुत लचीला है। फिर भी व्यवस्थित अध्ययन के लिए निम्न परिभाषाओं को दिया जा सकता है

(i) **कु० ई० टी० केली :** "श्रम कल्याण से तात्पर्य किसी फर्म द्वारा श्रमिको के व्यवहार और कार्य के लिए कुछ नियमो को अपनाया जाता है।"

(ii) **सर एडवर्ड पेंटन** "श्रम कल्याण का अर्थ श्रमिको को सुख, स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए उपलब्ध की जाने वाली दशाओ से है।"

(iii) **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ :** "श्रम कल्याण से आशय ऐसी सेवाओ और सुविधाओ से समझना चाहिए, जो कारखाने के अदर या निकटवर्ती स्थानो मे स्थापित की गई हो, ताकि उनमे काम करने वाले श्रमिक स्वस्थ और शान्तिपूर्ण परिस्थितियो मे अपना कार्य कर सकें और अपने स्वास्थ्य तथा नैतिक स्तर को ऊचा उठाने वाली सुविधाओ का लाभ उठा सकें।"

(iv) **सामाजिक विज्ञानों का विश्व कोष :** "श्रम कल्याण से तात्पर्य कानून, औद्योगिक प्रथा और बाजार की दशाओ के अतिरिक्त मालिको द्वारा वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के अतर्गत श्रमिको के काम करने और कभी जीवन-निर्वाह और सांस्कृ-

तिक दशाओ को उपलब्ध करने के ऐच्छिक प्रयत्न मे है।"[1]

(v) श्रम जाच समिति, 1945 "श्रमिको के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक व आर्थिक कल्याण के लिए किया गया कोई भी कार्य जो वैधानिक कानून तथा सेवायोजको एव श्रमिको के मध्य हुए अनुचित लाभो के अतिरिक्त हो, चाहे वह सेवायोजको, सरकार अथवा अन्य किसी भी संस्था द्वारा किया गया हो, श्रम कल्याण कहलाता है।"[2]

उपरोक्त परिभाषाओ के आधार पर हम कह सकते है **श्रम कल्याण कार्यों से हमारा आशय ऐसे कार्यों से है, जो श्रमिको, सेवायोजको व समाजसेवी संस्थाओ द्वारा श्रमिको के जीवन-स्तरो को ऊचा उठाने, उनके सर्वांगीण विकास करने, उन्हे कुशल श्रमजीवी व उत्तम नागरिक बनाने के दृष्टिकोण से कारखानो के अदर या बाहर किये जाते हैं।**

श्रम कल्याण के अन्तर्गत किये जाने वाले कार्य

डा० ब्राउटन (Dr Brougnton) ने श्रम कल्याण कार्यों को दो भागो मे बाटा है--(अ) *आतरिक श्रम कल्याण कार्य अर्थात कारखाने के अदर किये जाने वाले कार्य* और (ब) बाह्य श्रम कल्याण कार्य अर्थात् कारखाने के बाहर किये जाने वाले कार्य।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसगठन ने भी श्रम कल्याण कार्यों का विभाजन इसी प्रकार किया है। इस सगठन द्वारा इस वर्गीकरण मे निम्नलिखित कार्यों का समावेश किया गया है--

(अ) कारखाने के अदर के कल्याण कार्य 1 शौचालय एव मूत्रालय, 2 स्नान व कपडा धोने की सुविधायें, 3 शिशुगृह, 4 विश्रामालय एव जलपानगृह 5 पेयजल की व्यवस्था, 6 थकान निरोध की व्यवस्था, 7 व्यवसायिक सुरक्षा-युक्त स्वास्थ्य सबधी सेवायें 8 *कल्याण की देख-रेख के लिए समय के अतर्गत की गई प्रशासकीय* व्यवस्था, 9 वर्दी तथा सरक्षक वस्त्र, 10 पाली भत्ता।

(ब) कारखाने के बाहर के कल्याण कार्य : 1 भ्रातृत्व हित लाभ, 2 सामाजिक बीमा उपाय, जिसमे ग्रेच्युएटी, पेंशन, प्रावीडेंट फंड तथा पुनर्वास शामिल है, 3 बोनस कोष, 4 चिकित्सा सुविधायें जिनमे शारीरिक जाच क्षमता, परिवार नियोजन तथा शिशु कल्याण की सुविधायें शामिल हो, 5 शैक्षणिक सुविधायें; 6 आवास सुविधायें, 7 खेल-कूद, पुस्तकालय, वाचनालय, सास्कृतिक कार्यक्रमो सहित मनोरजन की सुविधाए, 8 श्रमिको की सरकारी सस्थायें, 9. स्त्रियो, बच्चो एव युवकों के लिए अन्य प्रोग्राम, तथा 12 काम पर जाने व वहा से आने के लिए परिवहन की सुविधायें।

श्रम कल्याण का महत्त्व

(भारत मे श्रम कल्याण कार्य की आवश्यकता)

प्राचीन भारत मे जब श्रमिक एव कारीगर, पूजीपति व सब कुछ था, कल्याणकारी कार्यों की कोई महत्ता नही थी। पर आज जब कि श्रमिक केवल मजदूरी कमाने

1. Encyclopaedia of Social Sciences Vol. *XV 1935, p. 395.*
2. Labour Investigation Committee Report, p, 345,

वाले के रूप मे रह गया है और जब यहा के श्रमिक औद्योगिक आजीविका को एक आवश्यक बुराई मानकर सदैव इससे छुटकारा पाने के लिए प्रयास कर रहा है, श्रम कल्याण कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण व आवश्यक हो गया है। श्रम कल्याण श्रमिको के माध्यम से हम न केवल श्रमिकों के मानवीय जीवन के लिए उचित एव आवश्यक सुख-सुविधायें जुटा सकते हैं, बल्कि उनमे नागरिक उत्तरदायित्व की भावना भी विकसित कर सकते है।

भारतीय परिस्थितियो के सदर्भ मे श्रम कल्याण कार्यों का विशेष महत्त्व है जिनको निम्न तथ्यो के आधार पर समझा जा सकता है

1 **औद्योगिक शान्ति की व्यवस्था** . श्रम कल्याण औद्योगिक कल्याण की व्यवस्था म सहायक होते हैं, क्योकि जब श्रमिको को इस बात का अनुभव होने लगता है कि वे सेवायोजक और राज्य उनके ही कल्याण के लिए अनेक योजनायें क्रियान्वित कर रहे है तो उनके मन मे एक स्वस्थ भावना पैदा हो जाती है जो औद्योगिक सबधो को मधुर बनाये रखती है।

2 **श्रमिक के उत्तरदायित्व मे वृद्धि** श्रम कल्याण के कार्य की व्यवस्था से श्रमिको को यह अनुभव होने लगता है कि वे उद्योग के प्रति हिस्सेदार हैं इसलिए वे उस सस्था के कार्य मे विशेष रुचि लेने लगते हैं।

3 **कुशलता मे वृद्धि** कल्याण कार्य से श्रमिको की कार्यक्षमता म वृद्धि होती है क्योकि अनेक प्रकार से उनका मानसिक और बौद्धिक विकास होता है तथा उनकी कई परेशानियां दूर हो जाती हैं।

4 **कल्याण कार्यों का सामाजिक महत्व** श्रम कल्याण कार्यों के द्वारा सामाजिक लाभ भी होत है जैसे—कैंटीन की व्यवस्था जहा श्रमिको को स्वच्छ और सन्तुलित भोजन मिल सकता है श्रमिकों के स्वास्थ्य मे सुधार करती है। स्वस्थ मनोरजन के द्वारा उनकी बुरी आदतें जैसे मदिरापान जुआ खेलना आदि दूर हो जाती है तथा उनमे स्वस्थ आदत चारित्रिक विकास होता है।

5 **श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति, अनुपस्थिति एव दुर्बल स्वास्थ्य सबधी समस्याओ का निवारण** भारतीय श्रमिको की प्रवासी प्रवृत्ति का मूल कारण यह है कि उन्हे नगरो म अनेक असुविधाओ का सामना करना पडता है जैसे बुरी आवास व्यवस्था, दूषित वातावरण का अभाव व खाने-पीने का कष्ट आदि। श्रम कल्याण कार्यो के द्वारा श्रमिक ... रहने के लिए मकान स्वास्थ्यप्रद सस्ता भोजन तथा बीमारी म दवा ... और सपरिवार खुशी से रह सकेंगे।

6 सेवाओ को आकर्षक बनाना जिन औद्योगिक सस्था म कल्याण कार्य की योजना लागू होती है वहा की सेवाये अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक हो जाती हैं और अधिकाश श्रमिक ... पसद करते हैं। इससे स्थायी श्रम शक्ति की वृद्धि होती है।

7 श्रम सगठन को शक्तिशाली बनाने के लिए पश्चिमी देशो म श्रम सघो ... विकसित है। यही कारण है कि पाश्चात्य श्रमिक सघ अपने

श्रमिकों के लिए श्रम कल्याण की पर्याप्त सुविधाए प्रदान करते है, परतु भारत के श्रमिक न तो सगठित है और न उनके श्रम सघो की वित्तीय स्थिति ही सतोषजनक है। अत ऐसी पारस्थितिया म भारतीय श्रामकों के लिए उचित जीवन स्तर के लिए श्रम कल्याण कार्यो का करना आवश्यक है।

8 **श्रमिकों को शिक्षित करने के लिए** भारत के अधिकाश श्रमिक अशिक्षित हैं और अपनी स्थिति तथा अधिकारा के प्रति जागरूक नही है। श्रम कल्याण कार्य के अतगत श्रमिको को जो शिक्षा मिलती उसस उनकी परिवारिक और आर्थिक समस्याओ का समाधान सभव होगा जोकि एक प्रजातान्त्रिक देश के लिए आवश्यक है।

9 **राष्ट्रीय समृद्धि** देश की आर्थिक व सामाजिक समस्याओ के समाधान के उद्देश्य स हमारी राष्ट्रीय सरकार ने पचवर्षीय योजनाओ का कायक्रम अपनाया है। प्रत्यक योजना की सफलता कठोर श्रम पर निभर है। अत श्रमिक ही हमारी योजना के आधारस्तभ हैं। श्रमिक उसी समय पूण सहयोग और सदभावना से काय करेंगे जब वे समझ लगे कि उद्योगपति और सरकार दोनों ही उनके वतमान तथा भावी जीवन को उन्नत बनान म क्रियाशील है।

10 **श्रम कल्याण औद्योगिक प्रशासन का अग** प्रगतिशील देशो म श्रम कल्याण को औद्योगिक प्रशासन का एक अग स्वीकार किया गया है। अब श्रम कल्याण कार्यो का आयोजन करना उद्योगपति का उत्तरदायित्व बन गया है। इमस श्रमिक वग मे एक नवीन स्वाभिमान की भावना जागृत होती है।

उपयुक्त विवेचन स स्पष्ट है कि भारत मे श्रम कल्याण कार्यो का महत्व और आवश्यकता पाश्चात्य देशो की तुलना मे कही अधिक है। श्रम कल्याण कार्यों के लाभो स प्रभावित होकर **वस्त्र श्रम अनुसधान समिति** ने कहा था— कायक्षमता का उन्नत स्तर केवल उसी समय हो सकता है जबकि श्रमिक शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व मानसिक दृष्टि से सतुष्ट हो। इसका तात्पर्य यह है कि केवल वही श्रमिक कुशल हो सकते है, जिनके लिए शिक्षा आवास योजना तथा वस्त्र आदि का उचित प्रबध हो।

भारत मे श्रम कल्याण कार्य

भारत मे श्रम कल्याण कार्यो का प्रारभ 1914 17 के महायुद्ध स हुआ। प्रथम महायुद्ध से ही श्रमिको म जागृति प्रारभ हो गई थी। औद्योगिक अशाति अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का दबाव राज्य के कल्याणकारी होने के विचार तथा बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का ध्येय रखने वाले व्यक्तियों की मानवीय भावनाओ आदि ने श्रम कल्याण कार्यो मे रुचि स्थापित की। श्रम कल्याण कार्यो की दिशा म उत्तरोत्तर प्रगति होती जा रही है। भारत मे किये गये श्रम कल्याण कार्यो को हम निम्नलिखित चार शीर्षकों के अतर्गत अध्ययन **कर सकते हैं —1 केंद्रीय व राज्य** सरकार द्वारा कल्याण कार्य 2 सेवायोजको **द्वारा किये गये कल्याण कार्य**, 3 श्रमिक सघो द्वारा कल्याण कार्य, और 4 **स्वायत्त शासन और धार्मिक तथा सामाजिक** सस्थाओ द्वारा कल्याण कार्य।

केन्द्रीय सरकार द्वारा श्रम कल्याण कार्य

(i) **कोयला खान श्रमिक कल्याण कोष** (Coal Mines Labour Welfare Fund) कोयला क्षेत्रों मे सगठित कल्याण कार्य शुरू करने तथा शेष कार्य की वित्त व्यवस्था के लिए एक कोष को कायम करने के लिए भारत सरकार ने 31 जनवरी 1944 को कोयला खान श्रमिक कल्याण कोष अध्यादेश जारी किया जिसका स्थान बाद मे कोयला खान श्रमिक कल्याण एक्ट 1947 ने ले लिया जो जन 1947 से लागू हुआ। एक्ट के अन्तर्गत कोयला खान श्रमिक आवास और सामान्य कल्याण कोष कायम करने के लिए व्यवस्था की गयी। जिसके अन्तर्गत दो खाते रहेंगे—आवास खाता (Housing Account) और सामान्य कल्याण खाता (General Welfare Account) इन खाते मे 7 5 के अनुपात मे राशि जमा की जाती है। इस कोष मे जमा राशि को कल्याणकारी कार्य, जैसे डाक्टरी सुविधा मनोरजन शिक्षा शिशु सदन आवास प्रसूता आदि पर व्यय किया जाता है। इस कोष का प्रशासन एक परामर्शदात्री समिति करती है जिसमे सरकार खान मालिक व श्रमिक के बराबर-बराबर प्रतिनिधि होते है।

(ii) **अभ्रक खान श्रमिक कल्याण कोष** 1946 (Mica Mines Labour Welfare Fund 1946) अभ्रक का भारत से निर्यात होता है अत निर्यात पर 3 1 2 ad Valorem शुल्क लगाकर इस कोष की स्थापना की गयी है जिससे चिकित्सा मनोरजन, प्रसूति एव बाल कल्याण केन्द्र बच्चो के स्कूल आदि पर व्यय किया जाता है। इस कोष मे बच्चो को छात्रवृत्ति दी जाती है तथा पुस्तकें व पठन सामग्री निःशुल्क वितरण की जाती है। अभ्रक की खानें आन्ध्र बिहार व राजस्थान मे है अत इस कोष का उपयोग उन्हा राज्यो के अभ्रक खान श्रमिको के हित के लिए किया जाता है।

(iii) **कच्चा लोहा खान श्रमिक कल्याणकारी कोष** (Iron Ore Mines Labour Welfare Fund) कच्चा लोहा खान श्रमिक कल्याण कोष एक्ट 1961 म पास किया गया जिसे मन 1963 म लागू किया गया है। इस कोष के अन्तगत डाक्टरी देखभाल तथा दवा की व्यवस्था खास तौर पर की जाती है। इसके लिए केन्द्रीय, क्षेत्रीय स्तर पर अस्पताल इमरजेंसी अस्पताल चलती फिरती डिस्पेंसरी तथा स्वास्थ्य केन्द्र खोले गए हैं। तपेदिक के मरीजो के लिए खास सुविधा की व्यवस्था है।

(iv) **मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम** 1961 (Motor Transport Employees Act 1961) मोटर परिवहन कर्मचारियो की दशाओ म सुधार करने और उनके कल्याण के लिए मई 1961 म मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम म परिवहन कर्मचारियो के कल्याण और उनके काय की परिस्थितियो को नियमन करने का प्रावधान है। इस अधिनियम के अनुसार जलपान गृह, विश्राम के लिए कमरे (वर्दी) छुट्टीयो और कार्य के घण्टे तय करने की विभिन्न योजनाएं चालू है इस अधिनियम का परिपालन राज्य सरकारें कराती है जिसके लिए उन्होने आवश्यक नियम बनाये है।

(v) **बीड़ी एव सिगरेट श्रमिक अधिनियम** इस अधिनियम मे बीडी एव सिगरेट

के कारखानो मे कार्य करने वाले श्रमिको के लिए कुछ कल्याणकारी कार्य करने की व्यवस्था की गई है जिसके अन्तर्गत श्रमिको की चिकित्सा, शिक्षा, मनोरञ्जन, आवास आदि की सुविधायें दी जाती हैं।

(vi) कच्चा लोहा खान तया मैंगनीज खान श्रमिक कल्याण कोष (Iron Ore Mines and Manganese Ore Mines Labour Welfare Fund 1976) यह एक्ट 1976 म पास किया गया। इसके अन्तर्गत कच्चा लोहा तथा मैंगनीज की खाना मे काम करन वाले श्रमिको के लिए समान सुविधाए देन के लिए सयुक्त कोष की व्यवस्था की जाती है।

(vii) बन्दरगाह श्रमिकों की सुविधाए ववई, कलकत्ता, कोचीन, मद्रास, विशाखापटनम, तया अन्य बन्दरगाहो पर बन्दरगाह श्रमिको के लिए अनेक कल्याण-कारी सुविधाए प्रदान की जा रही हैं। इन सुविधाओ म आवास, चिकित्सा, शिक्षा और मनोरजन व्यवस्था शामिल हैं कुछ बदरगाहा पर उचित मूल्य की दुकाना और सरकारी उपभोक्ता समितिया भी शामिल की जा सकती हैं।

(viii) राष्ट्रीय सुरक्षा पुरस्कार 1948 के कारखाना अधिनियम के अतर्गत आन वाल कारखानो तथा बन्दरगाहा म सुरक्षा का अच्छा प्रवध करन के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा पुरस्कार देने की कई याजनाए हैं। हर योजना म नगद पुरस्कार और श्रेष्ठता का प्रमाण पत्र देन का प्रावधान है। 1977 के वष क लिए 73 कारखानो 2 नौभरण फर्मों और तीन बदरगाह प्राधिकरणा को 1980 म पुरस्कार दिए गए।

(ix) श्रमवीर पुरस्कार यह पुरस्कार' कारखाना, खाना, वगानो, गोदियो म काम करने वाले श्रमिको क लिए 1965 म शुरु किय गए। य पुरस्कार श्रमिको के श्लाघ्य कार्यों—जैसे ऐसे सुझाव देना जिनम अधिक उत्पादन या मितव्ययता हो या कायक्षमता वढे—के लिए दिए जाते हैं। 1976 क पुरस्कार वष क लिए विभिन्न श्रेणियो म 50 विजताओ को 32 पुरस्कार 1978 म दिए गए।

(ब) *राज्य सरकार द्वारा* राज्य सरकारो द्वारा भी श्रम कल्याण के क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किए जा रहे है। स्थानीय परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए राज्य सरकार ने श्रम कल्याण के लिए आवश्यक अधिनियम बनाये है। अधिकाश राज्य सरकारो द्वारा श्रम कल्याण केंद्र स्थापित किये गये हैं जिनमे श्रमिको को शिक्षा व व्यायामशाला, वाचनालय, पुस्तकालय व मनोरजन आदि की व्यवस्था की जाती है। कुछ राज्यो के अतर्गत कार्य करने वाले श्रम कल्याण केंद्रो की सख्या व उनके द्वारा आयोजित की गई विभिन्न प्रकार की क्रियाओ का विवरण नीचे तालिका मे दिया जा रहा है।

सारिणी 1 कुछ राज्य सरकारो द्वारा सचालित कल्याण केंद्र

राज्य का नाम	कल्याण केंद्र की सख्या	आयोजित किये गये कार्यक्रम
1 उत्तर प्रदेश	71 श्रम कल्याण केंद्र तथा दो बाल मनोरजन केंद्र।	चिकित्सा सहायता, वाचनालय, पुस्तकालय आतरिक व बाह्य खेल, सिलाई, कढाई, बुनाई बनाने का प्रशिक्षण तथा मनोरजन सुविधायें।
2 महाराष्ट्र	72	वाचनालय व पुस्तकालय, आतरिक व बाह्य खेल-कूद व्यायामशाला, हाथकरघा उद्योग, प्रशिक्षण शिशु शिक्षा।
3 मध्य प्रदेश	33	वाचनालय एव पुस्तकालय, आतरिक व बाह्य खेल-कूद, प्रौढ शिक्षा सास्कृतिक कार्यक्रम, मनोरजन।
4 राजस्थान	29	वाचनालय एव पुस्तकालय, चिकित्सा सबधी सहायता, मातृत्व एव शिशु कल्याण सुविधायें, प्रौढ शिक्षा, हाथकरघा उद्योग का प्रशिक्षण आदि।
5 गुजरात	38	मनोरजनात्मक एव शैक्षिक सुविधायें आदि।
6 बिहार	25	मनोरजनात्मक तथा सास्कृतिक गतिविधियाँ खेल-कूद, शिल्प सबधी प्रशिक्षण।
7 पजाब	21	पुस्तकालय एव वाचनालय, आतरिक व बाह्य खेल-कूद मनोरजनात्मक तथा शैक्षणिक सुविधायें स्त्री श्रमिको के लिए सिलाई बुनाई।
8 मैसूर	16	वाचनालय, पुस्तकालय, खेलकूद, व्यायामशाला हाथकरघा उद्योग का प्रशिक्षण, सिलाई सबधी प्रशिक्षण

Source Report of the National Commission on Labour in India, pp 143 44

सेवायोजको द्वारा किये जाने वाले कल्याण-कार्य

यद्यपि भारतीय उद्योगपति श्रम कल्याण कार्यों के प्रति उदासीन रहे हैं, परन्तु हाल के वर्षों मे कल्याण सुविधाओ का आयोजन करने मे सेवायोजको ने बहुत प्रगति की है। विभिन्न उद्योगो मे सेवायोजको द्वारा सपन्न विविध कार्यों की व्याख्या नीचे प्रस्तुत की जा रही है—

1. **सूती वस्त्र मिल उद्योग** अधिकांश उद्योगपतियो द्वारा सूती वस्त्र मिलो म चिकित्सालय, मनोरजन केंद्र, वाचनालय, शिशुगृह तथा कैंटीन आदि स्थापित किये गये हैं। जिन मिलो मे श्रम हित कार्य अधिक किये गए है उनमे दिल्ली क्लाथ एड सेंट्रल मिल्स दिल्ली, बकिंघम एड कर्नाटक मिल्स मद्रास, एमप्रेस मिल नागपुर, कैलिको मिल्स अहमदाबाद, मद्रास मिल्स कपनी मदुरा तथा बगलौर वूलेन-काटेन एण्ड सिल्क मिल्स विशेष उल्लेखनीय है।

2 **जूट उद्योग** जूट उद्योग मे मिलो की ओर से कल्याणकारी कार्य सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व भारतीय जूट मिल मालिक सघ को है। इस सघ ने पाच स्थानों पर श्रम कल्याण केंद्र खोले हैं, जहा वाचनालय के अतिरिक्त खेल तथा अन्य प्रकार की सुविधाए उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त मिलो ने अपनी ओर से कैंटीन, शिशुगृह, प्राइमरी स्कूल पुस्तकालय तथा औषधालय की व्यवस्था की है। सभी मिलो मे श्रम अधिकारी नियुक्त किये गये हैं जो श्रम कल्याण व्यवस्था की देखरेख करते हैं। उन्होने पाठशालाओ, अस्पतालो, मनोरजनगृहो की व्यवस्था की है।

3 **चीनी उद्योग** चीनी के सभी बडे कारखानो मे चिकित्सा की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त स्कूल, मनोरजन केंद्र, कैंटीन आदि की सुविधायें उपलब्ध है।

4 **इजीनियरिंग उद्योग** बडे पैमाने के सभी इजीनियरिंग सस्थानो मे चिकित्सालयो, श्रमिको व उनके बच्चो के लिए शिक्षा तथा जलपानगृहो की व्यवस्था है। टाटा आयरन एड स्टील कपनी, जमशेदपुर विशेष रूप से श्रम कल्याण कार्यों के लिए उल्लेखनीय है। कपनी द्वारा चिकित्सालयों, आरामगृहो शिशुगृहो, पाठशालाओ, रात्रिकक्षाओ, प्राविधिक कार्यक्रमो आदि का प्रावधान है।

भारत के अन्य प्रमुख उद्योगो जिनमे लोहा और इस्पात, सीमेंट, कागज, रसायन उद्योग उल्लेखनीय हैं, आदि मे श्रमिको के लिए कैंटीन, शिशु-गृह, मनोरजन, वाचनालय तथा चिकित्सालय सबधी सुविधायें प्रदान की गई है। रेलवे विभाग द्वारा कर्मचारियो *के कल्याणार्थ चिकित्सालयो, जलपानगृह व एक्स-रे आदि की व्यवस्था की गई है। डाक तथा तार-विभाग द्वारा* चिकित्सा पर होने वाले व्यय के भुगतान का प्रावधान किया गया है तथा सरकारी साख समितियो जलपानगृहो, रात्रि पाठशालाओं मे मनोरजक कार्यक्रमो का भी सगठन किया गया है, जहा जहाजरानी श्रमिक सुरक्षा एव कल्याण योजना के 1961 के अधीन पेयजल, शौचालय, वाचनालय, आरामगृहो तथा जलपानग्रहो की व्यवस्था की गई है। मैसूर कोलार स्वर्ण क्षेत्र मे निश्चित पैमाने पर श्रम कल्याण योजना चलाई जा रही है, जिसके अधीन नि शुल्क स्वास्थ्य सेवाओ, मातृत्वगृहो, शैक्षिक एव

मनोरंजनात्मक सुविधाओ का प्रावधान किया गया है। बदरगाह न्यास कर्मचारी कल्याण कोषो की सहायता से बदरगाह न्यास आवास शिक्षा तथा मनोरजन सबधी सुविधायें प्रदान करते हैं।

5 **श्रमिक सघों द्वारा कल्याण कार्य** पाश्चात्य देशो मे जहा श्रमिक सघो का पर्याप्त रूप से विकास हो चुका है, श्रमिकों के कल्याण सबधी कार्य बहुत हुए हैं, परतु भारत मे श्रम कल्याण के क्षेत्र मे श्रम सघो द्वारा किये गये कार्य नगण्य हैं। फिर भी कुछ श्रम सघो न इस दिशा मे कुछ प्रयत्न किये हैं, जिसमे अहमदाबाद टैक्सटाइल श्रमिक सघ, कानपुर मजदूर सभा, मिल मजदूर सघ इदौर, रेलवेमेस यूनियन आदि उल्लेखनीय हैं। अहमदाबाद टेक्सटाइल श्रमिक सघ ने विशेष रूप से प्रशसनीय कार्य किये हैं। यह सघ प्रति वर्ष 60%से लेकर 70% तक अर्थात् लगभग 45 हजार रुपये श्रम कल्याण कार्यों पर व्यय करता है। इस सघ द्वारा 25 सास्कृतिक और सामाजिक केंद्र चलाये जाते हैं। इस सघ ने श्रमिको के बच्चो के लिए विद्यालयो, लडकियों के लिए विद्यालयो, छात्रावासो व छात्रवृत्ति, व्यावसायिक प्रशिक्षण, कक्षाओं, वाचनालयो चिकित्सालयो, स्त्री व बालक कल्याण केंद्रो व सहकारी समितियो का भी प्रावधान किया है। इसी प्रकार अन्य श्रम सघो ने भी अपने सदस्यों के लाभार्थ पुस्तकालय, वाचनालय, विद्यालय, चिकित्सालय व सहकारी समितियो आदि की व्यवस्था की है।

मौलिक रूप से श्रमिक सघो की स्थापना श्रम कल्याण के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु होने के बावजूद भी वे निर्बल आर्थिक स्थिति श्रमिक सघो की बहुलता बाह्य नेतृत्व की प्रमुखता व उसके निहित स्वार्थों के कारण अपनी भूमिकाओ को भी नहीं निभा पाये हैं।

6 **स्वायत्त शासन और धार्मिक तथा सामाजिक सस्थाओ द्वारा कल्याण कार्य** भारत म नगरपालिकाओं और नगर निगमो के द्वारा भी श्रम कल्याण कार्य किये गये है। इनके द्वारा पाठशालाओं वाचनालयो अस्पताला और मनोरजनगृहो की स्थापना की गई है जिनस श्रमिक लाभ उठाते हैं। कई धार्मिक व सामाजिक सस्थायें भी श्रम कल्याण का कार्य करती है, जैसे युवा पुरुषों की क्रिश्चियन समिति (वाई० एम० सी० ए०) बबई समाज सेवा लीग सेवासदन समाज व मातृत्व एव शिशु कल्याण समिति आदि।

श्रम कल्याण कार्यो के असफलता के कारण

पीछे दिए विवेचन से स्पष्ट है कि श्रम कल्याण कार्यों के प्रति सरकार व श्रमिक सघो ने उत्तरोत्तर अधिक रुचि ली है, लेकिन फिर भी देश के श्रमिको की दयनीय दशा तथा उनकी वास्तविक आवश्यकताओं को देखत हुए अब तक होने वाले श्रम कल्याण कार्य बहुत ही कम हैं। श्रम कल्याण कार्यो की असतोषजनक प्रगति के कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

1 भारतीय उद्योगपतियो व सेवायोजकों की एक बडी सख्या कल्याण कार्य की ओर उदासीन है और वे कल्याण कार्यों को अपने पर एक विशेष प्रकार का भार समझते हैं।

2 हमारे देश म श्रम कल्याण सबधी अधिनियम अनियोजित एव अवैज्ञानिक

ढग से पास हुए हैं।

3 भारतीय मिल मालिको अथवा सरकारो द्वारा सगठित किये गये कल्याण कार्यों मे नियोजन एव वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है।

4 श्रम कल्याण कायक्रमो के प्रशासन के लिए सस्थान के कल्याण अधिकारी तथा इसके बाहर राज्य निरीक्षालय अपनी भूमिका अनेक कारणो मे समुचित रूप से नही निभा सके हैं।

5 एक तो धनाभाव के कारण श्रमिक सघ अधिक कल्याण कार्य करने मे असफल रहे हैं। साथ ही इस देश मे यह समझा जाता है कि श्रमिक सघ केवल हडताल कर वाने या मालिकों से अधिक मजदूरी वसूल करने का एक साधन मात्र है।

सुझाव

श्रम कल्याण कार्यक्रमो की सफलता के लिए निम्नलिखित सुझाव दिय जा सकते हैं—

1 वर्तमान समय मे श्रम कल्याण कार्य विभिन्न प्रकार की सस्थाओ द्वारा किया जा रहा है। इन सभी प्रयासो को सबधित करते हुए एकीकृत योजना के निर्माण की आवश्यकता है।

2 श्रम कल्याण कार्यों के लिए बहुत से अधिनियम बनाये गये है, किंतु आव श्यकता इस बात की है कि इन अधिनियमों को ठीक प्रकार से लागू किया जाये और श्रम के जिस वर्ग पर ये लागू नही हुए हैं उन पर यह लागू किए जाए।

3 कल्याण कार्यक्रम मे तीव्र गति से प्रगति लाने के लिए श्रमिको को कल्याण समितियो मे अधिकाधिक भाग लेने का अवसर देना चाहिए।

4 श्रम सबधी सस्थाओ का और अधिक विकास किया जाना चाहिए।

5 विभिन्न प्रकार के उद्योगो मे विभिन्न श्रेणी के कल्याण कार्यों को प्राथ मिकता दी जानी चाहिए। जैसे जिन उद्योगो मे स्त्रिया काय करती है उनमे मातृत्व एव शिशुगृहो की व्यवस्था बागान म श्रमिको के लिए निवास व्यवस्था, खानो के श्रमिको के लिए मकान शिक्षा एव दवा की सुविधा मे प्राथमिकता देनी चाहिए।

6 केंद्रीय एव राज्य सरकारो को श्रम कल्याण कार्यों म अधिकाधिक रुचि लेनी चाहिए।

7 श्रम कल्याण अधिकारी की केवल नियुक्ति ही सरकार द्वारा न की जाये, बल्कि उसे अपने कर्त्तव्यो की पूर्ति के लिए उचित सरकारी हस्तक्षेप भी प्राप्त हो। निरीक्षालयो द्वारा निरीक्षण कार्य मे ढील दिये जाने पर उनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए।

8 उद्योगपतियो को श्रमिको के हित मे अधिक कार्य करना चाहिए।

9 श्रम सगठनो द्वारा भी अपने सदस्यो के कल्याण के लिए रचनात्मक कदम उठाने चाहिए।

10 श्रम कल्याण अधिकारियो तथा कारखाना अधीक्षको की उचित शैक्षणिक

पृष्ठभूमि होनी चाहिए तथा उन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। जहा तक सभव हो सके, समाज-कार्य के व्यवसाय मे प्रशिक्षित व्यक्तियो की ही नियुक्ति की जानी चाहिए।

श्रम कल्याण पर मालवीय समिति ने श्रमिक सुविधाओ के लिए जो सिफारिशें दी हैं, उनमे से कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित हैं

1 सरकार को सब उद्योगो के लिए न्यूनतम सुविधाए निश्चित कर देनी चाहिए और जो उद्योग आर्थिक दृष्टि से ये सुविधाए नही दे सकते, उन्हे एक अवधि विशेष तक छूट मिलेगी।

2 जिस भी फार्म मालिको ने पाच या उससे अधिक मजदूर रखे हो, उसके लिए यह कानूनी बधन होना चाहिए कि वह उनके लिए पीने के जल, प्राथमिकता सहायता, आरामगृहो, रक्षात्मक उपकरणो आदि की व्यवस्था करे।

3 श्रमिक कोष की स्थापना होनी चाहिए। इस कोष की धनराशि से स्कूल, दवाखानो और घरो का निर्माण किया जाना चाहिए।

4 विभिन्न उद्योगो द्वारा सयुक्त आधार पर श्रमिको को चिकित्सा सबधी सुविधाए देने की व्यवस्था होनी चाहिए तथा केंद्र द्वारा बीमार श्रमिको के लिए सेनीटोरियम बनाना चाहिए।

5 महिला-श्रमिको के बच्चो के लिए शहरो के केंद्रीय स्थानो पर सबके सहयोग स शिशु गृह कायम किया जाना चाहिए।

यदि उपरोक्त सिफारिशोको कार्यान्वित किया जायेगा तो इससे न केवल श्रमिक वग बहुत सुखी और सतुष्ट होगा, बल्कि उनका यह सुख व सतोष देश के औद्योगिक विकास और समृद्धि मे भी सहायक होगा।

श्रम कल्याण कार्य को नई दिशाए

1 **परिवार नियोजन को प्राथमिकता** श्रम कल्याण कार्यों के क्षेत्र मे परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जाने लगी है। इसकी सफलता के लिए कर्मचारियो की नियुक्ति की जाती है। कर्मचारी श्रमिको मे परिवार नियोजन की चेतना पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त नियोजन के विभिन्न साधन उपकरण आदि मुफ्त वितरित किए जाते हैं। परिवार नियोजन कराने पर नगद राशि भी दी जाती है।

2 **सतुलित भोजन को प्राथमिकता** श्रमिको को सतुलित भोजन अनुदान मूल्य पर उपलब्ध किये जाते हैं। उनकी कायक्षमता मे वृद्धि करने के लिए आवश्यक पौष्टिक पदार्थ एव सतुलित भोजन निश्चित किए जाते हैं।

3 **सस्ती दर पर वस्तुए** श्रमिको के कल्याण मे वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे सुविधाओ, वस्तुओ एव सवाओ की पूर्ति सस्ती दर पर उपलब्ध कराई जाय क्योकि केवल मौद्रिक आय मे वृद्धि करने से वास्तविक आय मे वृद्धि नही हो जाती। अत सरकार को चाहिए कि श्रमिको को नि शुल्क शिक्षा का प्रबध एव सहकारी समितियो अथवा दुकानो मे सस्ती दर पर वस्तुए उपलब्ध कराये।

4. **दृष्टिकोण मे परिवर्तन** . अब उद्योगपति यह अनुभव करने लगे है कि मानवीय आधारो पर श्रम कल्याण कार्यों पर व्यय करना व्यवसाय के हित मे होता ह। उद्योगपति बिना मजदूरी की दर मे कटौती किए हुए ही उत्तम कार्य की दशायें तथा सुरक्षा आदि की *व्यवस्था करते हैं। श्रमिक सहभागिता पद्धति का प्रयोग किया जा रहा है।*

5. **स्थानीय सहयोगियों को सहयोग** - व्यवसाय समाज का ही अग होता है, अतः उद्योगपति स्थानीय सहयोगियो को सहयोग दे सकते हैं। आज हम देखते हैं कि कई उद्योगपति *अस्पताल, धर्मशाला, पुस्तकालय, वाचनालय आदि की स्थापना करते हैं,* और सुचारु रूप से चलाने के लिए बडी उदारता से दान देते हैं।

राष्ट्रीय श्रम आयोग एव श्रम कल्याण
(National Commission on Labour and Welfare)

श्रम कल्याण कार्यों का मूल्याकन करने के लिए राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा एक श्रम कल्याण समिति का गठन किया गया था। इस समिति द्वारा किए गये मूल्याकन के आधार पर आयोग ने स्पष्ट किया है कि "श्रमिको को विधान के अनुसार निर्धारित श्रम कल्याण सुविधाए ठीक ढग से और पर्याप्त रूप से उपलब्ध नही की गई है"'। बहुत से उद्योगो मे, विशेषकर मध्यम और छोटे आकार के उद्योगो मे, श्रम कल्याण कार्यों का स्तर बहुत ही खराब है"'। कुछ राज्यो द्वारा श्रम कल्याण के विभिन्न अगो जैसे स्वास्थ सबधी सुविधाओ, कपडे धोने की सुविधाओ, प्राथमिक उपचार के उपकरण, पेयजल, जलपानगृह, आश्रय-स्थल, विश्रामगृह और शिशुगृह आदि के बारे मे अध्ययन किया गया। इनकी सामान्य धारणा यह रही कि वैधानिक श्रम कल्याण कार्यों की व्यवस्था अपर्याप्त है।"

राष्ट्रीय श्रम आयोग की श्रम कल्याण के सबध मे प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं .

1 शिशु गृह की व्यवस्था 50 स्त्री श्रमिको की सीमा मे कमी होनी चाहिए। स्थानीय परिस्थितियो या 20 योग्य बच्चो (Eligible children) के आधार पर शिशु *गृह की व्यवस्था की जानी चाहिए।*

2. जब किसी कारखाने मे निर्धारित लक्ष्य से अधिक श्रमिक नियुक्त हो तो सेवानियोजको को स्वत ही जलपान गृह की व्यवस्था कर देनी चाहिए।

3 जलपान गृह की व्यवस्था हेतु जहा माग है उन कारखानो मे श्रमिको की सख्या 250 या इससे अधिक मे कम करके 200 होनी चाहिए।

4 यदि जलपान गृह सहकारिता के आधार पर नही चलाए जाते तो श्रमिको को उनके प्रबध मे सम्मिलित किया जाना चाहिए।

5. यदि जलपान गृह सहकारिता के आधार पर चलाए जाते हैं तो सेवानियोजको को सहायतार्थ मुफ्त मकान एव फर्नीचर प्रदान करना चाहिए।

6 जलपान गृहो को कम से कम दिन मे एक बार श्रमिको के लिए पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना चाहिए।

7 कारखानो के सबध मे आयोग ने सिफारिश की कि कारखाना श्रमिको को सामयिक डाक्टरी जांच हेतु प्रभावी कदम उठाये जाने चाहिए तथा श्रम कल्याण केंद्रो पर श्रमिक एव उनके बच्चो को शिक्षित करने की सुविधाओ मे वृद्धि की जानी चाहिए।

8 आयोग के विचार मे श्रम कल्याण के अन्य अगो के सबध मे वैधानिक प्रावधान पर्याप्त है लेकिन इन वैधानिक प्रावधानो का अवश्य पालन किया जाना चाहिए। इस सम्बध मे आयोग ने सिफारिश की कि ऐसे प्रावधान जिनका, सामान्यत पालन नही किया जाता, उनके सम्बध मे आवश्यक दण्ड की व्यवस्था की जाना चाहिए।

9 कोयला खान श्रमिको की समय-समय पर डाक्टरी जाच कराई जानी चाहिए।

10 ठेके पर कार्य करने वाले श्रमिक श्रम कल्याण सुविधाओ के प्रयोग के अधिकारी होने चाहिए।

11 सरकार को श्रमिको की सुविधा हेतु उचित मूल्य की दुकानें खोलनी चाहिए।

12 बागानो के सम्बध मे आयोग ने सिफारिश की कि बागान श्रम अधिनियम (Plantations Labour Act, 1961) के कार्य क्षेत्र मे वृद्धि की जानी चाहिए। राज्य सरकारो को अस्पतालो के लिए दवाइयो, उपकरणो आदि की सूची निर्धारित करनी चाहिए। व्यावसायिक बीमारियो की रोकथाम और उपचार के लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

13 खानो के सम्बध मे आयोग ने सिफारिश की कि कर (cess) लगाकर सामान्य खान श्रम कल्याण कोष (General Miner's Welfare Fund) का निर्माण किया जाना चाहिए और इस कोष से सभी खान श्रमिको को चिकित्सा, शिक्षा और मनोरजन सम्बधी सुविधाए उपलब्ध होनी चाहिए।

14 कानून के अनुसार की जाने वाली श्रम कल्याण कार्यों की जाच का कार्य मान्यता (Unions) या कार्य समितियो (Works Committees) की सहायता से सुविधापूर्वक और ठीक ढग से किया जा सकता है।

15 सरकार द्वारा श्रमिको को उपभोक्ता सहकारी भण्डारो की स्थापना के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

16 ऐसे श्रम सघ जो स्वीकृत श्रम कल्याण कार्य कर रहे हैं, उन्हें श्रम कल्याण मण्डल द्वारा सहायता दी जानी चाहिए।

17 जिन राज्यो मे त्रिपक्षीय और वैधानिक श्रम कल्याण मण्डल (Labour Welfare Boards) नही है, उनमे इनकी स्थापना की जानी चाहिए।

परीक्षा-प्रश्न

1 श्रम कल्याण के क्षेत्र की परिभाषा कीजिए और इनके महत्त्व का वर्णन कीजिये।

2 भारत मे इस प्रकार के कल्याण-कार्य मे लगाई गई विभिन्न सस्थाओ के कार्यों

का वर्णन करते हुए श्रम कल्याण की व्याख्या कीजिए।

3. भारत मे किये जाने वाले कल्याण-कार्य की सीमा और स्वभाव का वर्णन कीजिये।
4 श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र की परिभाषा दीजिये और भारत की कुछ बडी औद्योगिक सस्थाओ मे सेवायोजको द्वारा दी गई कल्याण-क्रियाओ का सक्षिप्त विवरण दीजिये।
5. "श्रम कल्याण का महत्त्व पश्चिम की अपेक्षा भारत मे अधिक है।" इस कथन की विवेचना कीजिये और भारत मे विभिन्न सस्थाओ द्वारा श्रमिक वर्ग के लिए किए जाने वाले कल्याण-कार्यों के स्वभाव का आलोचनात्मक विवरण दीजिये।
6 श्रम कल्याण कार्य एक बहुत ही लोचदार शब्द है। भारत मे विभिन्न सस्थाओ द्वारा श्रमिक वर्ग के लिए किये जाने वाली कल्याण क्रियाओ का सक्षिप्त विवरण दीजिये।
7 "श्रम कल्याण कार्य सेवायोजको के द्वारा एक व्यर्थ की जिम्मेदारी के स्थान पर बुद्धिमत्तापूर्ण विनियोग समझा जाना चाहिए।" कथन की विवेचना कीजिये।
8. "भारत मे इस समय कल्याण-कार्य जिस प्रकार चल रहे है, उस पर हमारा सामान्य निकर्ष यही है कि यह एक इद्रजाल और फुसलाने की विधि है।" आप इस मत से कहा तक सहमत हैं ? क्या उपरोक्त निष्कर्ष न्यायप्रद है ?

अध्याय 14

सामाजिक न्याय का सिद्धांत
(Theory of Social Justice)

समाजिक न्याय क्या है ? समाजिक न्याय वह न्याय है, जो समाज के सभी नागरिको के लिए केवल जीवित रहने के लिए ही नही, बल्कि स्वतन्त्रतापूर्वक और न्याय-पूर्ण ढंग से उत्तम जीवन व्यतीत करने के लिए समान साधनो और सुविधाओ को भी जुटाने पर बल देता है।

प्रसिद्ध दार्शनिक श्री अरस्तू ने बहुत पहले कहा था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अपने इस स्वभाव के कारण ही वह दूसरो के साथ रहना पसद करता है। इसके साथ ही उसकी कुछ आवश्यकताए और आकाक्षायें होती हैं, जिनकी पूर्ति वह स्वय अकेले ही नही कर सकता है। इसलिए उसे बाध्य होकर दूसरो के साथ अपना सबध स्थापित करना पडता है। अन्य शब्दो मे, आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए व्यक्ति को बाध्य होकर दूसरो पर निर्भर रहना पडता है। इस अर्थ मे प्रत्येक व्यक्ति का समाज से कुछ दावा हो जाता है, क्योकि व्यक्ति और समाज अतर्संबधित है। व्यक्तियो की अतर्क्रियाओ के कारण समाज का जन्म होता है। समाज के अस्तित्व व निरतरता को बनाये रखने मे समाज के प्रत्यक सदस्य का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अत समाज का प्रत्येक व्यक्ति समाज से कुछ आशा और अपेक्षा करता है। वह आशा व अपेक्षा इस रूप मे होती है कि व्यक्ति को अपने समाज से नियमित रूप मे और पर्याप्त मात्रा मे भोजन, कपडा, आवास, सुरक्षा, शिक्षा, चिकित्सा आदि सुविधाए प्राप्त होती रहेगी। यही सामाजिक न्याय है।

सामाजिक समानता और न्याय का सिद्धात इस बात पर आधारित है कि सभी सामाजिक प्राणी समान हैं, इसलिए समाज का यह कर्तव्य है कि वह समाज के प्रत्येक सदस्य के साथ पक्षपात-रहित व्यवहार करे और प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास करने तथा समाज की प्रगति मे उचित योगदान करने का अवसर उपलब्ध हो।

यहा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वे कौन-से आधार हैं, जिनकी सहायता से व्यक्तियो मे समानता रखी जा सकती है और उनके साथ न्याय किया जा सकता है ? इसके लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं —

(अ) समाज द्वारा उन साधनो और सुविधाओ को उपलब्ध किया जाना चाहिए जिसमे उसके समस्त सदस्य स्वास्थ्य, आर्थिक सुरक्षा और सभ्य प्राणी के न्यून-तम तक पहुचने का समान अवसर पा सकें और अपनी क्षमतानुसार सामाजिक व

सास्कृतिक प्रगति मे हाथ बटा सकें ।

(ब) प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक प्रकार के सामाजिक अन्यायो से सुरक्षा प्रदान की जाये ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक न्याय समाज द्वारा योजनायें बनाकर समस्त नागरिको की उन्नति के लिए प्रयत्नशील होना है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन सबधी आवश्यक वस्तुए मिल सकें और हर नागरिक की प्रत्येक प्रकार की सामाजिक अन्यायो से रक्षा की जा सके। इस आदर्श की प्राप्ति सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक सभी क्षेत्रो मे राज्य द्वारा समानता के सिद्धात के पालन और प्रयोग से हो सकती है ।

यहा यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक न्याय की धारणा **स्थैतिक नही बल्कि प्रावैगिक है**, क्योकि समाज प्रगतिशील है और इस गतिशीलता के परिणामस्वरूप सामाजिक प्राणियो तथा उनकी समस्याओ का स्वरूप तथा उनकी आवश्यकताए बदलती ही रहती हैं। बदली हुई सामाजिक परिस्थिति मे प्रत्येक विचारक ने अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण और अनुभवो के आधार पर अपने अपने विचारों को प्रस्तुत करना है। इस प्रकार के व्यक्तिगत विचारो की पूर्ति और विस्तार उस विचारक के अनुयायियो द्वारा होता है। ऐसी स्थिति मे यह विचार एक 'वाद' (ism) बन जाता है।

वर्तमान युग मे सामाजिक न्याय के प्रमुख सिद्धात निम्नलिखित हैं —

उपयोगितावाद (Utilitarianism)

उपयोगितावाद के प्रमुख विचारक जर्मो बेन्थम हैं। अपने इस सिद्धात का प्रतिपादन बेन्थम ने अपनी पुस्तक Introduction to the Principles of Morals and Legislation (1798) मे किया है। इस पुस्तक का प्रथम वाक्य है "प्रकृति ने मानव जाति को दो सत्ताधारी स्वामियो—दु ख और सुख—के अधीन रखा है।" बेंथम का मत है कि किसी कार्य व वस्तु की उपयोगिता इस बात पर निर्भर है कि उसके द्वारा व्यक्ति को कितना सुख, हर्ष, लाभ व आनद होता है अथवा उसकी पीडा, दु ख या हानि का कितना निवारण होता है। बेंथम का विचार है कि सुख और दु ख को अकगणित की भाति नापा जा सकता है।' इस सबध मे उन्होने 6 तत्त्व निर्धारित किये हैं (i) तीव्रता, (ii) अवधि, (iii) निश्चितता (iv) निकटता या दूरी, (v) उर्वरता, (vi) विशुद्धता ।

उपयोगितावाद और सामाजिक न्याय

श्री बेंथम के अनुसार · सामाजिक न्याय की प्रत्येक योजना का अतिम उद्देश्य अधिकतम लोगो का अधिकतम हित होना चाहिए। सामाजिक न्याय के सबध मे उपयोगितावाद की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित हैं —

1 **व्यक्ति को सर्वोपरि महत्त्व** उपयोगितावाद सिद्धात मे व्यक्ति को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया गया है। व्यक्ति को सामाजिक चक्र व्यूह का मुख्य द्वार माना

गया है। इस सिद्धात के अनुसार व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। व्यापार पर राज्य की ओर से कम से कम प्रतिबंध होना चाहिए। आर्थिक प्रगति की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यापार की नीति ही लाभदायक होगी।

2 *सुख की प्राप्ति* *सुखवाद इस सिद्धात का मुख्य आधार है। इस सिद्धान्त के* अनुसार राज्य को केवल वे ही कार्य करने चाहिए, जिनसे अधिकतम लोगो को अधिकतम सुख की प्राप्ति हो। यह सिद्धात व्यक्ति को उपयोगी कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

3 **समाज सुधार :** उपयोगितावाद मे सामाजिक न्याय की स्थिति को प्राप्त करने के लिए समाज-सुधार कार्यों को प्रोत्साहित करने पर जोर दिया गया है। समाज-सुधार की अनेक योजनाए प्रस्तुत की गई हैं जिनमे से मुख्य हैं—कानूनी सुधार, जेल सुधार, दड व्यवस्था मे सुधार, न्याय प्रणाली मे सुधार, आर्थिक सुधार, राजनीतिक सुधार, शिक्षा सबधी सुधार आदि। बेन्थम का मत है कि सामाजिक न्याय हेतु यह आवश्यक है कि पुराने और व्यर्थ अधिनियमो को रद्द कर दिया जाय और ऐसे सरल और सादे कानून बनाये जायें जिन्हें आम जनता सरलता से समझ सके।

4 *शिक्षा प्रणाली : सामाजिक न्याय की दृष्टि से बेन्थम ने दो शिक्षा योजनायें* बनाई—(अ) गरीब लडको के लिए, जिसमे चरित्र-निर्माण को महत्त्व देते हुए *व्यावहारिक कार्य सिखा जायें, जिससे वे अपनी रोजी-रोटी कमा सकें। (ब) मध्य व उच्च*-वर्गीय बालको के लिए बौद्धिक शिक्षा का प्रबंध किया जाये।

5 *प्रजातात्रिक व्यवस्था : इस सिद्धात मे यह विश्वास किया गया है कि प्रजा*-तत्र के द्वारा ही सभी व्यक्तियो के साथ समानता का व्यवहार किया जा सकता है और सभी व्यक्तियो को न्याय दिलाया जा सकता है।

व्यक्तिवाद (*Individualism*)

इसके प्रमुख समर्थक बेन्थम मिल तथा स्पेन्सर हैं। इस सिद्धात मे व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सामाजिक न्याय की आधारशीला माना गया है। हमबोल्ट के शब्दो मे—'राज्य को नागरिको के कल्याण की समस्त चिताओं से दूर रहना चाहिए और पारस्परिक सुरक्षा एव वाह्य शत्रुओ मे रक्षा के कार्य से आगे नही जाना चाहिए।" श्री फ्रीमैन के शब्दो में— सरकार का बिलकुल न होना ही सरकार का सर्वोत्तम स्वरूप है।" अन्य व्यक्तिवादी विचारको ने इसी विचार को इन शब्दो मे कहा है कि "सबसे अच्छी सरकार वही है जो कम स कम शासन करती है।" प्रो० मिल भी सामाजिक न्याय की प्राप्ति हतु व्यक्ति के लिए पूर्ण स्वतत्रता के पक्षपाती थे क्योकि इसके बिना व्यक्ति की बौद्धिक व नैतिक उन्नति कदापि सभव नहीं है। इस प्रकार व्यक्तिवादी विचारको ने राज्य के कार्यों को सम्मिलित रखने का प्रयास किया और उनके दृष्टिकोण मे राज्य को केवल 3 कार्य करने चाहिए—(अ) देश मे आतरिक शाति बनाये रखना, (ब) वाह्य आक्रमणो से देश की रक्षा करना और (स) देश मे न्याय-व्यवस्था की स्थापना करना।

व्यक्तिवाद और सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय के संबध मे व्यक्तिवादी विचारको की विशेषताओ को निम्न-लिखित शीर्षको के आधार पर समझाया जा सकता है—

1 **सामाजिक आधार** सामाजिक आधार पर व्यक्तिवाद की मूल धारणा यह है कि प्रत्येक सामाजिक न्याय का केन्द्र और मौलिक इकाई व्यक्ति ही है। इसलिए सामाजिक न्याय की दृष्टि से सभी क्षेत्रो मे व्यक्ति को ही सर्वोच्च स्थान दिया जाना चाहिए। इसका तर्क यह है कि व्यक्ति और समाज अतर्सबधित है। इसलिए जो बात व्यक्ति के हित की होगी, वह सपूर्ण समाज के लिए भी हितकर होगी।

2. **नैतिक आधार** व्यक्तिवाद का नैतिक आधार यह है कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए राज्य का कर्तव्य है कि वह ऐसा वातावरण उत्पन्न करे कि जिसमे व्यक्ति स्वतत्रतापूर्वक अपने व्यक्तित्व, चरित्र, विचार और कार्यों का सुसगठित विकास कर सके। अनुचित हस्तक्षेप व्यक्तित्व के विकास मे सबसे बडा गतिरोध है। इसलिए **जे० एम०** मिल ने लिखा है—"कम हस्तक्षप व्यक्ति के आचरण को विकसित और शक्तिशाली बनाता है तथा व्यक्ति को प्रगति की ओर उन्मुख करता है।"

3 **राजनैतिक आधार** सामाजिक न्याय की दृष्टि से राजनैतिक क्षेत्र मे व्यक्तिवाद की मूल धारणा यह है कि राज्य एक आवश्यक बुराई है। इसलिए सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए राज्य की कोई आवश्यकता नही है। राज्य शक्ति के बल पर कार्य करता है और अपने आदेशो का सबसे पालन कराता है। यह कष्टदायक है और व्यक्ति स्वतत्रता और सामाजिक न्याय मे बाधक है। इसके बावजूद भी सामाजिक नियत्रण के लिए राज्य अनिवार्य है, क्योकि इसके द्वारा समाज-विरोधी व्यक्तियो, जैसे चोर, डाकू, धोखेबाज आदि पर नियत्रण रखा जाता है और व्यक्ति के जान-माल की रक्षा की जाती है। अत राज्य व्यक्ति की स्वतत्रता का बाधक होते हुए भी आवश्यक है।

4 **आर्थिक आधार** व्यक्तिवाद का आर्थिक आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र मे पूरी स्वतत्रता प्राप्त होनी चाहिए। इसमे केवल व्यक्ति को ही लाभ नही होगा, बल्कि सपूर्ण समाज भी निम्न दो प्रकार से लाभान्वित होगा—

(अ) समाज के सभी व्यक्ति परिश्रम करेंगे जिससे कामचोरी की प्रवृत्तिया हतोत्साहित होगी, और (ब) आर्थिक क्षेत्र मे सभी व्यक्तियो को समान लाभ होगा और सभी के साथ न्याय हो सकेगा।

5 **प्राणिशास्त्रीय आधार** प्राणिशास्त्रीय नियम के अनुसार अस्तित्व के लिए सघर्ष निरतर चलता रहता है। प्रत्येक जीवित प्राणी जीवित रहने के लिए दूसरे प्राणियो से सघर्ष कर रहा है। इस सघर्ष की दो प्रवृत्तिया हैं—

(अ) इस सघर्ष मे केवल सबसे उपयुक्त प्राणी ही जीवित रहते है और अयोग्य नष्ट हो जाते है। जो लोग जीवन-सघर्ष मे अयोग्य प्रमाणित हो जायें, सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए उनका नष्ट हो जाना ही उचित है।

(ब) सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों के साथ अपने को समायोजित करना सीखता है।

सघवाद
(Syndicateism)

फ्रासीसी भाषा मे सिडीकेट शब्द का अर्थ मजदूर सघवाद होता है, अत सघवाद का अर्थ ऐसे मजदूर सघवाद से है, जो क्राति मे विश्वास रखता है। मजदूर सघवाद का जन्म फ्रास मे श्रमिक आदोलन के फलस्वरूप हुआ। इस विचारधारा के अनुसार उद्योगो पर सपूर्ण समाज अथवा राज्य का स्वामित्व और अधिकार न होकर केवल मजदूर सघ का ही नियत्रण व प्रबध होना चाहिए। इसका कारण यह है कि सरकारी कर्मचारियो मे नौकरशाही की प्रवृत्ति पाई जाती है और वे श्रमिक तथा उपभोक्ताओ पर अत्याचार करते है। श्री गोड ने सघवाद की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "सघवाद वह सामाजिक सिद्धात है, जो श्रमिक सघो को नवीन समाज की आधारशिला और इसके साथ साधन भी स्वीकार करता है, जिसके आधार पर नवीन समाज की स्थापना की जायेगी।'

सक्षेप मे, इस सिद्धात की धारणा यह है कि उत्पादन के समस्त साधनो पर श्रमिक का आधिपत्य होना चाहिए।

सघवाद और सामाजिक न्याय

सघवाद मे सामाजिक न्याय से सबधित प्रमुख बातें निम्नलिखित है—

(अ) श्रमिक सघ द्वारा ही एक आदर्श समाज का निर्माण और सामाजिक न्याय की प्राप्ति सभव है।

(ब) सघवादी राज्यविहीन समाज की कल्पना करते हैं। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए राज्य की कोई आवश्यकता नही है बल्कि उसके स्थान पर प्रत्येक उद्योग कला या कार्य के लिए एक सघ होगा। यह सघ इस उद्योग या कार्य मे लगे हुए श्रमिको का होगा, अथात् इस प्रकार श्रम सघ ही श्रमिको के हितो की रक्षा करेगा।

(स) प्रशासन के साधारण कार्य स्थानीय श्रमिक सघो के अधीन होगे, परतु डाक व्यवस्था, यातायात मुद्रा आदि राष्ट्रीय सेवाए श्रमिको के राष्ट्रीय सघो को सौपी जायेंगी।

(द) देश की रक्षा के लिए वेतनभोगी सेना आदि की कोई आवश्यकता नही होगी, क्योंकि समाज म प्रत्येक सघ के पास अपनी रक्षक सेना होगी।

(य) सघवादी समाज मे शोषण और असमानता या सामाजिक अन्याय न रहेगा। अत जेलखानो या न्यायालयो की कोई आवश्यकता नही रह जायेगी।

समष्टिवाद या राजकीय समाज
(Collectivism or State Socialism)

18वी शताब्दी के अतिम दिनो मे जर्मनी मे एक नये ढग का समाजवाद—राज-

कीय समाजवाद जोकि वैज्ञानिक वास्तविकता पर आधारित था, पनपा। इसके जन्म का श्रेय रोडबर्टस को है। बाद में वैगनर, श्मोलर और ब्रेटोनो आदि विद्वानो ने इस विचारधारा का विकास किया। इसको जर्मनी मे कुर्सी का समाजवाद भी कहते हैं, क्योंकि कई विद्वान प्रोफेसर और समकालीन लेखको का इससे सबध था।

(1) **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका** मे दी हुई परिभाषा के अनुसार—"राजकीय समाजवाद वह नीति अथवा सिद्धात है, जो प्रजातान्त्रिक राज्य द्वारा सपत्ति का इस समय की अपेक्षा अधिक वितरण और उत्पादन कराने म विश्वास करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजकीय समाजवाद के अनुसार सामाजिक न्याय के दो प्रमुख आधार हैं—प्रथम, प्रजातान्त्रिक राज्य द्वारा सामाजिक जीवन का अधिकाधिक नियमन व नियत्रण और द्वितीय सपत्ति का उचित वितरण।

राजकीय समाजवाद और सामाजिक न्याय

राजकीय समाजवाद मे सामाजिक न्याय की जो प्रमुख बातें हैं, उन्हें हम निम्नलिखित शीर्षको के अतर्गत अध्ययन कर सकते हैं—

1 **उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियत्रण** इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के समस्त साधनो पर राज्य का नियत्रण या राष्ट्रीय अधिकार स्थापित हो जायेगा। इसमे दो लाभ होंगे—(अ) सामाजिकता की भावना का विकास होगा, क्योंकि व्यक्तिगत लाभ को कोई महत्त्व नही देंगे। (ब) श्रमिको का जीवन-स्तर उन्नतिशील होगा।

2 **राष्ट्रीयकरण** इस सिद्धात का आधार राष्ट्रीयकरण है। चूंकि उद्योगो और कारखानो का राष्ट्रीयकरण हो जाने पर पूजीवादी व्यवस्था और शोषण का अत अपने आप हो जायगा। इसके लिए क्राति या हिंसात्मक उपायो को अपनाने की आवश्यकता नही है। कारण यह है कि कोई भी सामाजिक न्याय की योजना बिना बहुमत की अभिमति के सफल नही हो सकती।

3 **लोक-कल्याण मे वृद्धि** इस सिद्धान्त के अनुसार उद्योगो से जो अतिरिक्त आय होगी उसे सामाजिक कल्याण के कार्यो मे लगाया जायेगा तथा लोक कल्याण को प्रोत्साहन दिया जायेगा। ऐसा करने का उद्देश्य व्यक्तित्व का समुचित विकास करना है।

4 **व्यक्तिगत सपत्ति का विरोध नहीं** इसमे व्यक्तिगत सपत्ति व व्यक्तिगत उद्योग भी रहेंगे। उत्पादन के केवल प्रधान साधनो का ही राष्ट्रीयकरण किया जायगा। लोगों की आय मे उनके कार्यानुसार अतर भी रहेगा।

5 **कार्य देना राज्य का कर्तव्य** सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए सभी लोगो को कार्य देना राज्य का कर्तव्य होगा। यदि राज्य किसी व्यक्ति को कार्य देने म असमर्थ है तो राज्य उसे भरण पोषण के लिए आवश्यक आर्थिक सहायता देगा।

6 **नैतिक विकास** यह सिद्धात समाज से प्रतियोगिता ईर्ष्या द्वेष जैसी भावनाओं को समाप्त करता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का नैतिक विकास होता है। इसके अतर्गत निश्चित आयु (16 या 18 वर्ष) तक के सभी बच्चो को केवल नि शुल्क शिक्षा का ही प्रबध नही किया जायेगा, बल्कि विद्यार्थियो को पुस्तकें व अन्य

आवश्यक सामग्री तथा स्कूल मे एक बार भोजन या जलपान देने की व्यवस्था की जायेगी।

7 **वर्ग सहयोग** समाज मे न्याय की स्थापना के लिए वर्ग सहयोग आवश्यक है। इस सिद्धात मे वर्ग सहयोग को महत्त्व प्रदान किया गया है।

करो का उचित वितरण सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से करो का उचित वितरण भी आवश्यक है। इस सिद्धात मे कर इस प्रकार लगाये जायेंगे कि एक निश्चित आमदनी तक तो कुछ भी न देना पडेगा या बहुत कम देना पडेगा, पर उसके ऊपर आय के साथ ही साथ कर की मात्रा भी बढा दी जायेगी।

अराजकतावाद (Anarchism)

अराजकतावाद 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का एक अत्यत महत्त्वपूर्ण राजनैतिक सिद्धात है, जिसके प्रमुख प्रवर्त्तक सर्वश्री माइकेल बाकुनिन व प्रिन्स क्रोपोटकिन हैं।

साधारण बोलचाल की भाषा मे अराजकता का तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से लगाया जाता है, जिसमे किसी प्रकार की व्यवस्था नियत्रण व अनुशासन का अभाव रहता है, किन्तु यह अराजकता का गलत अर्थ है। अराजकता वस्तुत एक राज्यविहीन समाज की स्थिति की द्योतक है। साम्यवाद और गाधीवाद भी अपने अन्तिम विश्लेषण मे राज्यविहीन समाज की कल्पना करते हैं। अराजकतावाद के समर्थकों का कथन है कि आज का मनुष्य राज्य पूजीवाद व धर्म जजीरो से जकडा हुआ है। ऐसी व्यवस्था मे व्यक्ति को सामाजिक न्याय की प्राप्ति होना असभव है। अत अराजकतावाद का उद्देश्य व्यक्ति को इन बेडियो से मुक्ति दिलाना है। अराजकतावाद की कुछ परिभाषाए इस प्रकार है—

(अ) हेन्सले 'अराजकतावाद समाज की वह स्थिति है, जिसमे प्रत्येक मनुष्य अपना शासक स्वय होगा।"

(ब) डिकिन्सन 'अराजकता व्यवस्था का अभाव नहीं, बल्कि शक्ति का अभाव है। सरकार का अर्थ है अनिर्मांता, अपवर्जन, पृथककरण व विकर्षण जबकि अराजकता स्वतत्रता एकता और प्रेम है।"

(स) जेनकर आदर्श की दृष्टि से अराजकता का अर्थ है कि व्यक्ति का पूर्ण व अनियत्रित स्वशासन जिसका परिणाम किसी बाह्य शासन का अभाव है।"

सक्षेप मे अराजकतावाद की निम्नलिखित विशेषताए होती है

1 अराजकतावाद का विचार साम्यवाद म ही उत्पन्न हुआ है।

2 आर्थिक दर्शन के रूप मे अराजकतावाद राज्य या शासन के अभाव को सूचित करता है।

3 अराजकता मे कोई ऐसी सत्ता नही होगी, जिसके अधीन रहने के लिए व्यक्ति बाध्य है।

4 इसके अतर्गत कोई ऐसी विधिया नही होगी, जिनका अनुकरण करना मनुष्य के लिए अनिवार्य हो।

5. साम्यवाद के इस रूप के अनुसार आर्थिक और सामाजिक जीवन का सगठन स्वशासित सस्थाओ व सभाओ द्वारा होगा, जिसका सगठन ऐच्छिक समझौते के आधार पर किया जायेगा। इस प्रकार इस व्यवस्था मे सेना, पुलिस, न्यायालय और राज्य सभी अनावश्यक हो जायेंगे और आर्थिक व सामाजिक सगठन पारस्परिक सहयोग के आधार पर होगा।

अराजकतावाद और सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय के सबध म अराजकतावाद की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित है —

1 राज्य केवल निरर्थक सस्था ही नही, बल्कि समाज के लिए एक हानिकारक सस्था है। इसमे सामाजिक न्याय की दृष्टि से कई दोष है, जैसे—(अ) राज्य मानव-स्वभाव के सर्वथा अस्वाभाविक व अप्राकृतिक सस्था है। (ब) राज्य समाज मे असमानता को जन्म देता है। (स) राज्य शोषण को प्रोत्साहित करता है। (द) राज्य ही व्यभिचार व बुराइयो को जन्म देता है तथा निरकुश वातावरण पैदा करता है।

2 पूजीवाद मे असमानता फैलती है। पूजीवाद के कारण श्रमको को अपार कष्टो का सामना करना पडता है, जबकि थोडे से पूजीपति ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करते हैं। इसलिए सामाजिक न्याय के लिए अराजकतावाद पूजीवाद का विरोधी है। अराजकतावाद मे भूमि और उत्पादन के समस्त साधनो पर समाज का स्वामित्व होगा। प्रिंस कोपोलीन ने लिखा है— 'अराजकतावादी समाज मे इन सभी पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होगा और बशर्ते कि प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन क्रिया मे अपना उचित योग दे। प्रत्येक व्यक्ति को सपूर्ण उत्पादन मे से अपना उचित भाग पाने का अधिकार है।"

3 अराजकतावादी व्यवस्था मे सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से कार्य करने की दशाए अत्यत सतोषजनक होगी। कार्य करने हेतु आयु की सीमा 24 वर्ष से लेकर 50 वर्ष के मध्य होगी।

4 इसमे प्रजातत्र का विरोध किया जाता है। अराजकतावादियो का कहना है कि प्रजातत्र मे जन-कल्याण की अपेक्षा जन शोषण ही अधिक होता है।

5 अराजकतावाद के अनुसार धर्म एक बुराई है क्योकि धर्म से व्यक्तियो मे अविश्वास का जन्म होता है, जिससे सामाजिक न्याय की प्राप्ति मे बाधा उत्पन्न होती है।

6 अराजकतावादी समाज मे अगर कोई असामाजिक कार्य करता है तो इसके लिए एक ही दण्ड होगा और वह यह है कि उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाय।

साम्यवाद (Communism)

साम्यवाद समाजवाद का ही एक रूप है और इसके जन्मदाता कार्ल मार्क्स हैं। जिन विद्वानो ने साम्यवाद की विचारधारा को प्रोत्साहित किया है, उनमे मार्क्स, ऐंजिल, लेनिन व स्टालिन आदि के नाम प्रमुख है। यद्यपि साम्यवाद की परिभाषा देना बहुत

कठिन है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि साम्यवाद से तात्पर्य एक ऐसी विचारधारा से है, जो आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक समानता पर बल देती है। कार्ल मार्क्स द्वारा साम्यवादी घोषणा मे साम्यवाद की जो विवेचना की गई है उसे जोड ने निम्न शब्दो मे अभिव्यक्त किया है—"साम्यवादी निश्चनात्मक रूप से साधन का सिद्धात है। यह उन नियमो का प्रतिपादन करता है, जिनके आधार पर समाज की पूजीवादी व्यवस्था को साम्यवादी व्यवस्था मे परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है।" सक्षेप मे, साम्यवाद की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार हैं—

1 वर्गहीन समाज का निर्माण।
2 जाति, धर्म, रग और राष्ट्रीयता के भेदो से मुक्ति।
3 भूमि से व्यक्तिगत सपत्ति का उन्मूलन।
4 शोषण की समाप्ति।
5 पराधीन जाति का अभाव।
6 एक पूर्वनिश्चित योजना द्वारा समाजीकृत उत्पादन की सभावना।
7 स्त्रियो को समान स्थान।
8 समस्त नागरिको द्वारा भविष्य के निर्माण मे योगदान।
9 नगर व देहात मे अतर की समाप्ति।
10 सच्चे सामाजिक दृष्टिकोण का विकास आदि।

साम्यवादी घोषणा मे मार्क्स और एजिल ने 'साम्यवाद' की स्थापना की निम्न विधिया बतलाई है—

1 श्रमिको को सगठन के द्वारा ऊपर उठाकर उन्हे शासको मे परिवर्तित करना।

2 भूमि मे व्यक्तिगत सपत्ति का उन्मूलन करना और भूमि के लगानो को सार्वजनिक उद्देश्यो के लिए प्रयोग करना।

3 प्रगतिशील आय कर लगाना।

4 सभी प्रकार के उत्तराधिकारो को समाप्त करना।

5 देशद्रोही तथा देश को छोडकर जाने वाले सभी व्यक्तियो की सपत्ति को जब्त कर लेना।

6 साख का राज्यो के हाथ मे केंद्रीयकरण।

7 यातायात और सवादवाहन के साधनो का राज्य के हाथो मे केंद्रीयकरण।

8 उत्पत्ति के साधनो पर राज्य का नियत्रण।

9 सभी प्रकार के श्रम का समान उत्तरदायित्व और श्रम सेना की स्थापना।

साम्यवाद और सामाजिक न्याय

साम्यवादी घोषणा पत्र मे यह निर्देश है कि "सर्वहारा वर्ग अर्थात् (श्रमिक वर्ग) अपने राजनैतिक प्रभुत्व का प्रयोग इस रूप मे करेंगे कि धीरे-धीरे पूजीपतियो से सभी पूजी छीन ली जाये और उत्पादन के सभी साधन राज्य के अर्थात् शासक वर्ग के रूप मे

संगठित कर सर्वहारा वर्ग के हाथो मे केंद्रित हो जायें और कुल उत्पादन साधनो को अधिक से अधिक तेजी से बढ़ाया जाये।" सामाजिक न्याय के सबध म साम्यवाद की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं—1 पूजीवादी सामाजिक न्याय का निर्देशक सिद्धात यह है कि—'जो काम करेगा अर्थात् (श्रमिक) वह किसी भी चीज का स्वामी नही बनेगा और जो स्वामी बनेगा अर्थात् (पूजीपति) कोई कार्य नही करेगा।" इसके विपरीत साम्यवादी व्यवस्था का सामाजिक न्याय यह है कि इसमे श्रमिक वर्ग की समृद्धि और सुविधाओ को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है।

2 सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए राज्य का पूर्ण लोप होना आवश्यक है। साम्यवादी दृष्टिकोण से सामाजिक न्याय की पराकाष्ठा समाज की वह राज्यविहीन स्थिति है, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति आत्म-नियन्त्रित है और इसमें इस प्रकार का आत्म-नियत्रण मनुष्य के स्वभाव का ही एक अनिवार्य अग बन जाता है।

3 प्रत्येक नागरिक को अनिवार्य रूप से कोई न कोई काम करना होगा। जो व्यक्ति किसी प्रकार का काम ठीक नही करता है, उसे भोजन पाने का अधिकार भी नही होगा। इस प्रकार समाज मे बेरोजगारी नही होगी। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता और आवश्यकता के अनुसार पारिश्रमिक प्राप्त होगा।

4 सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए समाजवादी व्यवस्था के अतगत राष्ट्रीय आय का कुछ भाग उत्पादन के साधन के उचित वितरण, प्राकृतिक साधनो से रक्षा, सामान्य प्रशासन सबधी व्यय, सामाजिक कल्याण और सुरक्षा आदि के लिए निकालकर शेष भाग श्रमिको को मजदूरी के रूप मे दिया जायेगा।

5 साम्यवादी विचारको में सामाजिक न्याय के लिए धर्म को कोई विशेष महत्त्व नही दिया। धर्म, कर्मफल, स्वर्ग-नरक तथा भाग्य आदि की धारणायें, मनुष्य को अत्याचार को सहन करने के लिए प्रेरित करते हैं। साम्यवादी इसलिए धर्म को जनता के लिए अफीम के समान मानते हैं। अत सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए धर्म का परित्याग आवश्यक है।

6 साम्यवादी योजना मे सामाजिक न्याय के लिए शिक्षा, कला, न्याय, विज्ञान, दर्शन आदि सभी व्यावहारिकता पर आधारित होनी चाहिए। इसी प्रकार समस्त सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक योजनाओ का एक वास्तविक और व्यावहारिक आधार होना चाहिए।

7 समाज मे सभी व्यक्तियो के कल्याण और सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

गांधीवाद (Gandhism)

महात्मा गांधी भारत के महान कर्मयोगी और सत्याग्रही थे। महात्मा गाधी के विचार गांधीवाद के नाम से जाने जाते हैं। गाधीवाद के मूल आधार सत्य, अहिंसा और जन-कल्याण हैं। अत बिना महात्मा गाधी के विचारों को प्रस्तुत किये सामाजिक न्याय सबधी सिद्धांतों का यह अध्याय अधूरा ही रह जाता है।

वस्तुत गाधीवाद सामाजिक समानता और न्याय पर आधारित है। डॉ० महा-वीरप्रसाद शर्मा के शब्दो मे—"गाधीवाद वह सिद्धात है, जो सब प्राणियो को भगवत रूप और इस कारण सामान्य जानकर सत्य और अहिंसापूर्ण साधनो द्वारा सभी के कल्याण अथवा सर्वोदय का प्रयत्न करता है और जिसके मतानुसार सभी व्यक्तिगत और सार्वजनिक समस्याए सत्य और अहिंसा के द्वारा सुलझाई जा सकती हैं।"

सामाजिक न्याय मे सबधित गाधी जी के विचार इस प्रकार थे—

(1) समानता जन्मजात है इसलिए न्याय की दृष्टि से सभी व्यक्ति को समान अवसर और सुविधाए प्राप्त होनी चाहिए। इसी कारण जाति-पाति के आधार पर छुआ-छूत को गाधीजी ने हिंदुओ की वर्ण व्यवस्था पर काला धब्बा कहा है। इस काले धब्बे को धोये बिना सामाजिक न्याय की प्राप्ति सभव नही है।

(2) सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए स्त्री और पुरुष दोनो को ही समान सामाजिक अवसर प्राप्त होने चाहिए। स्त्रियों के व्यक्तित्व के विकास के लिए सब प्रकार के साधनो को जुटाना सामाजिक न्याय का प्रथम चरण है।

(3) शिक्षा के प्रसार के द्वारा समाज मे व्याप्त सामाजिक असमानता और अन्याय को समाप्त किया जा सकता है।

(4) आर्थिक असमानता को समाप्त करने के लिए गाधीजी ने प्रन्यास के सिद्धात को मानने का सुझाव दिया। उनका सुझाव है कि पूजीपति अपने को निर्धनो का सरक्षक समझें तथा धन स्वेच्छा से सर्वसाधारण के हित मे लगायें।

(5) सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए गाधीजी ने सर्वोदय धारणा का प्रति-पादन किया। गाधीजी के अनुसार सर्वोदय या सामाजिक न्याय का अर्थ सभी के जीवन के सभी पक्षो की सपूर्ण प्रगति है। सर्वोदय ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषण-विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन और अवसर मिलेंगे। इसके अतिरिक्त सामाजिक न्याय की सर्वोच्च स्थिति के रूप मे सर्वोदय का विश्वास राजनीति मे नही है।

परीक्षा-प्रश्न

1. सामाजिक न्याय के प्रमुख सिद्धातो का उल्लेख कीजिए।

अध्याय 15

भारत में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in India)

सामाजिक सुरक्षा की धारणा—सामाजिक सुरक्षा की धारणा सामाजिक न्याय के सिद्धात पर आधारित है। समाज के अधिकाश सदस्यो के जीवन मे अनेक आकस्मिक विपत्तिया, जैसे बीमारी, वृद्धावस्था, असमर्थता, दुर्घटना, बेरोजगारी, माताओ की प्रसूतावस्था आदि आती है, जबकि वे इन आकस्मिकताओ का सामना करने हेतु साधन नही जुटा पाते। यदि समाज इन आकस्मिकताओ के समय इनकी सहायता न करे तो उनका शारीरिक व नैतिक पतन होने की बहुत सभावना रहती है। यही कारण है कि समाज अपने साधनो को सगठित करके अपने सदस्यो के ऊपर आने वाली विपत्तियो से उनकी रक्षा की कोई समुचित व्यवस्था करता है। यही सामाजिक सुरक्षा है। सक्षेप मे **सामाजिक सुरक्षा से तात्पर्य उस सुरक्षा से है, जिसके अतर्गत उपर्युक्त सगठन के माध्यम से समाज अपने सदस्यो की विभिन्न प्रकार के जोखिमो से रक्षा करता है।** श्रमिको के समक्ष उपस्थित होने वाली आकस्मिकताए और असुरक्षा कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे (अ) **आय की असुरक्षा** और उससे उत्पन्न होने वाला सकट श्रमिको के सामने आ सकता है। इस प्रकार की असुरक्षा बेरोजगारी छटनी मजदूरी भुगतान मे अनियमितता, अवैध कटौतिया, अपर्याप्त मजदूरी आदि के कारण उत्पन्न होती है। (ब) **व्यावसायिक असुरक्षा** जो कार्य की खतरनाक दशाओ, व्यावसायिक बीमारियो तथा औद्योगिक दुर्घटनाओ के कारण उपस्थित होती हैं। (स) **प्राकृतिक कारणों**, जैसे वृद्धावस्था आय प्राप्त करने वाले की मृत्यु अथवा अस्वस्थता व महिला श्रमिको के सबध मे मातृत्वकाल आदि हो सकती है। इस प्रकार **सामाजिक सुरक्षा "प्राकृतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत और आर्थिक कारणो से उत्पन्न होने वाली अनेक असुरक्षाओ के विरुद्ध समाज द्वारा प्रदान की गई एक विधि है।"**

सामाजिक सुरक्षा की धारणा उतनी ही पुरानी है, जितना कि समाज, क्योकि आदिकाल से ही प्रत्येक समाज अपने सदस्यो की आवश्यकताओ की पूर्ति करने के प्रयास मे किसी न किसी रूप मे सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता रहा है। गभीरता से मनन करने पर यह अनुभव होता है कि पहले सुरक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व देश मे परिवार, जाति तथा धार्मिक सस्थाओ के माध्यम से निभाया जाता था, किंतु समाज

कल्याण की अवधारणा की स्वीकृति के साथ साथ यह उत्तरदायित्व राज्य द्वारा स्थापित विशिष्ट सगठनो द्वारा किया जाने लगा है।

'सामाजिक सुरक्षा' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिका के अतर्गत 1933 में अब्राहम एप्स्टीयो द्वारा किया गया था। सन 1935 मे सर्वप्रथम इस शब्द का अधिकाधिक रूप से प्रयोग किया गया था, जबकि अमेरिका ने अपना सामाजिक सुरक्षा अधिनियम बनाया। 10 दिसबर, 1948 को सयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा द्वारा मानवीय अधिकारो की सार्वभौमिक घोषणा किये जाने के कारण विभिन्न देशो मे सामाजिक सुरक्षा को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई।

सामाजिक सुरक्षा की परिभाषा

सामाजिक सुरक्षा की धारणा को भली भाति समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओ का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है—

1 **अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन** '*सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो कि समाज उपयुक्त सगठन द्वारा अपने सदस्यो के जीवन मे आने वाले विभिन्न सकटो मे प्रदान करता है। सुरक्षा एक मानसिक स्थिति है और एक वास्तविक व्यवस्था भी है। सुरक्षा प्राप्त होने का अर्थ है कि मनुष्य को यह विश्वास हो कि आवश्यकता पडने पर सुरक्षा प्राप्त होगी। सुरक्षा गुण और परिमाण म सतोषजनक भी होनी चाहिए।*' [1]

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि सामाजिक सुरक्षा के दो आवश्यक तत्व हैं, प्रथम, वास्तविक स्थिति अर्थात सुरक्षित होने का अनुभव और द्वितीय आपत्तिकाल मे सहायता का पर्याप्त मात्रा मे होना।

2 **सर विलियम बेवरिज** '*सामाजिक सुरक्षा से अभिप्राय एक ऐसी पद्धतियुक्त योजना से है जिसके द्वारा आवश्यकता, बीमारी अज्ञानता गदगी और बेकारी इन पाच दानवो पर विजय मिले।*'[2] इस परिभाषा मे बेवरिज ने सामाजिक सुरक्षा की धारणा को पाच दानवो मे सबधित कर दिया है। आवश्यकता के विरुद्ध सुरक्षा से अभिप्राय है कि प्रत्येक नागरिक को उनकी सेवाओ के बदले इतनी पर्याप्त आय दिलाना जो कि उसके लिए पर्याप्त हो। अज्ञानता के विरुद्ध सुरक्षा से आशय समाज के सभी सदस्यो को अधिकाधिक शिक्षा सबधी सुविधाए उपलब्ध कराना है। बीमारी से सुरक्षा का अभिप्राय अस्वस्थता के समय प्रत्येक नागरिक को चिकित्सा सबधी सुविधाए

1 Social Security is the security that society furnishes through appropriate orga ization against certain risk to which its members exposed '

—*Approaches to Social Security*, III O p 83.

2. Social Security is an attack on five giants, namely, Want, Disease, Ignorance Squalor and Idleness "

—*Sir William Beveridge*

दिलाना है। गदगी के विरुद्ध सुरक्षा से आशय उन दोषो को रोकना है, जो कि नगरो की अनियोजित वृद्धि से उत्पन्न होते हैं। बेरोजगारी के विरुद्ध सुरक्षा के अतर्गत प्रत्येक नागरिक को अपनी सेवाओ के बदले यथोचित आय का समुचित अवसर प्रदान करना सम्मिलित किया जाता है। सन् 1942 मे अपनी सामाजिक सुरक्षा की योजना को प्रस्तुत करते समय बेवरिज ने कहा था कि सामाजिक व आर्थिक पुनर्निर्माण के मार्ग पर ये पाच दानव सबसे प्रमुख बाधाए है। अतः वह सस्थात्मक व्यवस्था व सगठन जो इन्ही पाच दानवो पर आक्रमण करने के उद्देश्य से सगठित हो, उसे सामाजिक सुरक्षा कहते हैं।

3 **मारिस स्टेक** "सामाजिक सुरक्षा से आशय समाज द्वारा दी गई उस सुरक्षा से है, जोकि आधुनिक जीवन मे उत्पन्न होने वाली आकस्मिक विपत्तियो, जैसे—बीमारी, बेकारी, वृद्धावस्था, औद्योगिक दुर्घटना तथा अपगता के विरुद्ध प्रदान की जाती है जिससे अपने तथा अपने परिवार को अपनी क्षमता या दूरदर्शिता के आधार पर रक्षा की आशा एक व्यक्ति से नही की जा सकती।"[1]

उपरोक्त परिभाषाओ के अध्ययन के उपरात हम सामाजिक सुरक्षा को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं, "सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है, जो समाज द्वारा एक उपयुक्त सगठन के माध्यम से अपने सदस्यो की कार्यशक्ति को क्षति पहुचाने तथा जीवन-स्तर को गिराने वाली आकस्मिक घटनाओ, जैसे—बीमारी, बेकारी, दुर्घटनाओ, औद्योगिक रोग, मातृत्व, बुढापा, परिवार मे जीविका कमाने वाले की मृत्यु आदि के विरुद्ध एक वाछित न्यूनतम जीवन-स्तर प्रदान करने की दिशा मे किया गया सामूहिक प्रयास है।"

इस परिभाषा से हमे सामाजिक सुरक्षा की निम्नलिखित विशेषताओ का आभास होता है—

1 सामाजिक सुरक्षा किसी देश के नागरिको का वह मानवीय अधिकार हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक नागरिक को सामाजिक आपत्तियो से सुरक्षा मिलनी ही चाहिए। इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा का उत्तरदायित्व समाज पर है, जिसका वहन वह एक उपयुक्त सगठन की स्थापना करते हुए करता है।

2 सुरक्षा एक विशिष्ट आकस्मिकताओ से ग्रस्त व्यक्तियों को ही प्रदान की जाती है।

3 सामाजिक सुरक्षा से जो लाभ व्यक्तियों को मिलते हैं, वह दान के रूप मे

1. "By social security we understand a programme of protection provided by society against those contingencies of modern life—sickness, unemployment, old ages, dependency, industrial accidents and invalidity—against which the individual cannot be expected to protect himself and his family by his own ability or foresight."

—*Maurice Stack.*

प्राप्त होते हैं।

4 सामाजिक सुरक्षा गुण और परिणाम मे सतोषजनक होनी चाहिए।

5 सामाजिक सुरक्षा का उद्देश्य व्यक्तियो को एक न्यूनतम जीवन स्तर बनाये रखने मे असमर्थ होने से बचाना तथा आय का न्यायपूर्ण वितरण करना है।

यहा यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक सुरक्षा एक प्रादेशिक धारणा है। इसका स्वरूप व क्षेत्र समय की गति के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है।

क्षमता के अनुसार प्रत्येक समाज अपने सदस्यो के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करता है। यही कारण है कि कुछ देशों मे सामाजिक सुरक्षा का आशय केवल आय सबधी सुरक्षा से है, जब कि अन्य देशो मे इसके अतर्गत आय सुरक्षा, स्वास्थ्य एव कल्याण सुरक्षा का सपूर्ण क्षेत्र सम्मिलित है और कुछ देशो मे तो इसके अतर्गत आवास-व्यवस्था भी सम्मिलित की जाती है।

सामाजिक सुरक्षा के तत्त्व

किसी भी सामाजिक सुरक्षा मे निम्नलिखित तीन तत्त्व आवश्यक रूप से होने चाहिएं—

1 **निरोधात्मक या उपचारात्मक चिकित्सा** सामाजिक सुरक्षा का उद्देश्य निरोधात्मक या उपचारात्मक चिकित्सा का प्रबध करना होना चाहिए या काम से अनैच्छिक आय की सपूर्ण या आशिक हानि की स्थिति मे आय की पूर्ति के सबध मे सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिये या जिन श्रमिको के आश्रितो की सख्या अधिक है, उनको अतिरिक्त आय देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2 **सविधान द्वारा व्यवस्था** सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था सविधान द्वारा की जानी चाहिए जिसमे व्यक्तियो को कुछ अधिकार दिये गये हो तथा आर्थिक रूप मे सार्वजनिक या स्वतत्र सगठनो पर कुछ उत्तरदायित्व सौंपे गये हो।

3 **प्रशासन** सामाजिक सुरक्षा का प्रशासन सार्वजनिक या आशिक रूप मे सार्वजनिक तथा स्वतत्र सघो द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रकार किसी भी राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के अतर्गत वे सभी योजनाए आती है, जो उपरोक्त तीन शर्तों को पूरा करती हो।

सामाजिक सुरक्षा सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता

(Social Security, Social Insurance and Social Assistance)

सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक धारणा है और इसके दो महत्त्वपूर्ण अग हैं—सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता।

1 सामाजिक बीमा

सामाजिक बीमा सामाजिक सुरक्षा का एक अग है और इसका मुख्य उद्देश्य आय सुरक्षा प्रदान करना है। यह श्रमिको को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का सर्वोच्च

विवेकपूर्ण एव सबसे प्रभावपूर्ण तरीका माना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक बीमा, मालिको एव श्रमिको की वह सहकारी व्यवस्था है, जिसके अतर्गत बेरोजगारी, बीमारी, मातृत्व, दुर्घटना आदि आकस्मिकताओ के समय बीमा कराये हुए श्रमिको या उनके परिवार या दोनो ही को निश्चित अधिकार के रूप मे आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है ताकि वह जीवन के एक न्यूनतम स्तर को बनाये रख सके। सर विलियम बेवरिज के अनुसार—"सामाजिक बीमे से अभिप्राय चदे के बदले मे जीवन-निर्वाह स्तर, अधिकार के रूप मे बिना साधनो पर विचार किये हित लाभ प्रदान करता है ताकि व्यक्ति स्वतत्रतापूर्वक उस पर निर्भर रह सके।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक बीमा एक अनिवार्य युक्ति है, जिसमे सब लोग एक-दूसरे के मददगार होते हैं व प्रत्येक पक्ष सामर्थ्य के अनुसार बोझ उठाता है।

विशेषतायें : सामाजिक बीमा के आवश्यक तत्त्व या विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

1 यह अनिवार्य रूप से प्रदान किया जाता है।

2 एक सामान्य मुद्रा-कोष से लाभ दिये जाते हैं।

3 श्रमिको द्वारा दिये जाने वाले चदे और उन्हे मिलने वाले हित लाभो मे कोई निकटस्थ सबध नही होता, क्योकि श्रमिको से केवल नाममात्र का ही चदा लिया जाता है।

4 लाभ एक अधिकार के रूप मे स्वीकार किये जाते हैं।

5. हित लाभो को एक निश्चित सीमा के अतर्गत दिया जाता है, अर्थात् लाभ पाने वाले को जो काम दिये जाते हैं, उनकी सीमायें निश्चित होती है।

6 जोखिम की पूर्णतया रोकथाम तो नही हो पाती परतु इनके सहारे श्रमिको को इस योग्य बनाया जा सकता है कि वे जोखिम का सामना करने मे समर्थ हो।

इनका उद्देश्य खोई हुई अर्जन शक्ति को शीघ्र से शीघ्र वापस पाना व वर्तमान कार्यक्षमता को बनाये रखना है।

क्षेत्र उपर्युक्त विवेचन से सामाजिक बीमे के क्षेत्र का भी आभास मिलता है। इसके दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं —(अ) नैतिकता और न्याय के नाम पर गरीबी से लैडना और (ब) श्रमिक वर्ग का अपने को निर्भरता की स्थिति से मुक्त करने का प्रयास करना और अनिश्चितताओ मे सुरक्षित करना। इन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति के लिए सामाजिक बीमा की योजना मे निम्नलिखित विपत्तियो से नागरिको की सुरक्षा का प्रबध होता है, जैसे बीमारी के समय मे चिकित्सा व आर्थिक सहायता, काम की अवधि में चोट लग जाने की स्थिति मे चिकित्सा एव आर्थिक सहायता, बेकारी हित लाभ, मातृत्व हित लाभ, आश्रित हित लाभ, अपगता की स्थिति मे पेंशन आदि।

महत्त्व सामाजिक बीमे की पद्धति सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यत महत्त्व की है। अमेरिकन राज्यो के द्वितीय सम्मेलन ने अपने प्रस्ताव मे कहा था, "उत्पादन बढाने व जीवन-स्तर को ऊचा उठाने के इच्छुक देशो द्वारा विकसित की गई युक्तियो मे सामाजिक बीमे की युक्ति सबसे श्रेष्ठ है।" सामाजिक बीमे के अतर्गत विशेष रूप से

निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

1. इसमें चंदे के आधार पर श्रमिकों के स्वास्थ्य, कुशलता और कार्यक्षमता की रक्षा होती है।

2. यह निश्चित अधिकारों के रूप में लाभ स्वीकृत करती है, जिससे लाभार्थी के स्वाभिमान को चोट नहीं लगती।

3. इसका उद्देश्य इस प्रकार के सहयोगी संगठन का निर्माण करना है, जिसका त्रिपक्षीय उद्देश्य होता है—खतरों को रोकना, जीवन-स्तर को बनाये रखना और खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करवाना।

4. इसके अंतर्गत प्राप्त होने वाले लाभों की मात्रा पर्याप्त होती है।

5. इस योजना की सहायता से देश की आर्थिक समृद्धि व सामाजिक न्याय की प्राप्ति दोनों ही संभव हो सकती हैं।

6. इससे श्रमिक पर इस बात का जोर पड़ता है कि वह अपनी आय का सदुपयोग करे। वस्तुतः उसकी आय का कुछ भाग उचित मार्ग में लगा दिया जाता है।

7. दूरदर्शिता के दृष्टिकोण से देखा जाय तो सामाजिक बीमा समाज के लिए एक अत्यंत हितकर योजना है, जिससे कि समाज के अधिकांश सदस्यों के सुख व कल्याण के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमे में अंतर साधारणतः लोग सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमे के बीच में कोई अंतर नहीं करते, परंतु यह ठीक नहीं है। दोनों में निम्नलिखित भेद हैं—

1. सामाजिक सुरक्षा शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ में किया जाता है और सामाजिक बीमे का संकुचित अर्थ में। सामाजिक बीमा सामाजिक सुरक्षा का ही एक अंग है। सामाजिक सुरक्षा से अभिप्राय तो एक ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक नीति से है जिसमें पूर्ण रोजगार, पूर्ण चिकित्सा, आय, सुरक्षा आदि योजनाओं का समावेश रहता है, परंतु सामाजिक बीमे का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है। इसके अंतर्गत कार्य-क्षमता और स्वास्थ्य आदि को बनाये रखने के लिए कुछ हित लाभ की व्यवस्था ही रहती है। अन्य शब्दों में सामाजिक सुरक्षा पाचों दानवों पर आक्रमण है, जब कि सामाजिक बीमा केवल आवश्यकता के मानव पर आक्रमण है।

2. सामाजिक सुरक्षा एक संपूर्ण व्यवस्था है जब कि सामाजिक बीमा उस व्यवस्था के लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन मात्र है। कारण यह है कि सामाजिक सुरक्षा दो प्रकार से दी जाती है—सामाजिक बीमा द्वारा व सामाजिक सहायता द्वारा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का सामाजिक बीमा एक साधनमात्र है।

सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों में समन्वय व एकरूपता होना आवश्यक है, जबकि सामाजिक बीमे के कार्यक्रम में ऐसा आवश्यक नहीं है।

सामाजिक सहायता

सामाजिक सहायता वह व्यवस्था है, जिसके अतर्गत राज्य अपने साधनो मे से उन श्रमिको को जो कुछ शर्तों को पूरा करते हैं, हित-लाभ कानूनी अधिकार के रूप मे देता है। सामाजिक सुरक्षा के अतर्गत जीवन की आकस्मिकताओ से ग्रस्त सभी व्यक्तियो को हित-लाभ उनके द्वारा किसी अशदान के बिना उनके साधनो की जाच के पश्चात् निर्धारित की गई वर्तमान वास्तविक आवश्यकता के आधार पर प्रदान किये जाते हैं। ये लाभ उन्ही व्यक्तियो को प्राप्त होते हैं, जिन्हे अत्यधिक बीमे के लाभ नही प्राप्त होते।

सामाजिक सहायता और सामाजिक बीमा मे अतर

सामाजिक सहायता	सामाजिक बीमा
1 यह सहायता व्यक्ति की आय के साधनो पर विचार किए बिना आवश्यकतानुसार प्रदान की जाती है।	1. यह पारस्परिक अशदान पर आधारित है।
2 यह सहायता अभावग्रस्त व्यक्तियो के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व का द्योतक है।	2 यह जोखिम को सामूहिक रूप से वहन करने का साधन है।
3 सामाजिक सहायता कार्यक्रम मे मानवीय दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाती है।	3 सामाजिक बीमा एक वैज्ञानिक उपाय है, जिससे बडी जोखिम का बटवारा बडे समुदाय म करना सभव होता है।
4 सामाजिक सहायता कार्यक्रम मे लाभ स्वीकृत करने की दशा मे श्रमिक क अशदान जमा पर विचार नही किया जाता।	4 सामाजिक बीमा कार्यक्रम के अतर्गत लाभ स्वीकृत करने की दशा मे श्रमिक के अशदान जमा पर विचार किया जाता है।
5 इसकी सपूर्ण राशि राजकोप अथवा नियोक्ता से प्राप्त होती है।	5 सामाजिक बीमा कार्यक्रम से त्रिपक्षीय का अशदान होता है।
6 इसके अतर्गत सरकार या नियोक्ता द्वारा धन दिया जाता है, जिससे श्रमिक हीन अनुभव करता है।	6 सामाजिक बीमा के अतर्गत सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने आप को किसी प्रकार का हीन अनुभव नही करता।
7 यह सहायता कार्यक्रम वहा लागू होते हैं, जहा श्रमिक गरीब, असगठित, अशिक्षित,	7 सामाजिक बीमा कार्यक्रम वहा लागू होते हैं, जहा श्रमिक सगठित नियम, वित्तीय दृष्टि से सबल तथा कोप का

दान देने मे असमर्थ हो।	सदुपयोग करने की दृष्टि से सजग हो।
8 यहा सहायता प्राप्त करने के लिए साधन तथा स्रोतो का ध्यान रखा जाता है।	8 सामाजिक बीमा बिना आय के साधनो का पता लगाये अधिकार के रूप म श्रमिक को प्रदान किया जाता है।
9 इसके अतर्गत जोखिम तथा अशदान मे सबध आवश्यक नही है।	9 सामाजिक बीमा के अतर्गत जोखिम तथा अशदान मे एक उचित अनुपात रखा जाता है।
10 यह सहायता नियोक्ता या सरकार की इच्छा तथा बजट प्रावधान पर निर्भर करती है।	10 सामाजिक बीमा कार्यक्रम मे स्वार्थ अशदान के आधार पर निश्चित कोष का निर्माण होता है।

भारत मे सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in India)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : भारत के प्राचीन इतिहास से स्पष्ट होता है कि भारत मे सामाजिक सुरक्षा की परपरा बहुत पुरानी है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मनुस्मृति और शुक्रनीति मे सामाजिक सुरक्षा के बहुत-से नियमो की व्यवस्था दी है। प्राचीन काल से ही भारत मे सयुक्त परिवार, जातीय पचायत, अनाथालय, विद्या-आश्रम आदि के माध्यम से उन लोगो को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती रही है, जिनके पास जीवन-निर्वाह का कोई साधन नही होता था और जो कार्य करने मे भी असमर्थ होते थे।

कारखाना उद्योगवाद के आगमन के बाद भारत मे सामाजिक सुरक्षा आदोलन पाच अवधियो से गुजरा 1 उदासीनता की अवधि, 2 अव्यवस्थित विकास की अवधि, 3 सुविचारित आयोजन की अवधि, 4 क्रियान्वयन की अवधि 5 समन्वय और सुदृढ़ी-करण की अवधि।

उदासीनता की अवधि

सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था के सबध मे उदासीनता की अवधि 1920 के साथ समाप्त हो जाती है। 1920 के पूर्व यद्यपि उत्पादन की कारखाना प्रणाली का प्रादुर्भाव हो चुका था, लेकिन श्रम आदोलन ने अखिल भारतीय रूप धारण नहीं किया था। 1855 मे घातक दुर्घटना अधिनियम पास किया गया जिसके अनुसार यदि कोई मजदूर कार्य करने मे मर जाय तो उसके आश्रितो को यह अधिकार था कि वे मुकदमा चलाकर हरजाने का दावा करें। परतु अशिक्षित और निर्धन मजदूर इस स्थिति मे कभी नही थे कि सपन्न उद्योगपतियो पर मुकदमा चलायें। अत यह अधिनियम कभी व्यवहार मे नही आया। इसके अतिरिक्त इस अवधि मे किसी और अधिनियम के सबध म कोई प्रमाण नही है, जो सामाजिक आकस्मिकताओ से जनता वर्ग की रक्षा करता है।

2. अव्यवस्थित विकास की अवधि

चूंकि 1921 से 1941 के दो दशकों में आकस्मिक विपत्तियों से संरक्षण की कुछ योजनाओं का सूत्रपात हुआ। इसलिए इस अवधि को हम अव्यवस्थित विकास की अवधि कह सकते हैं। इस अवधि में प्रथम सामाजिक सुरक्षा अधिनियम श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 के नाम से पारित हुआ। इसका वर्णन हम आगे करेंगे। इसके पश्चात् सन् 1929 में बबई सरकार ने मातृत्वहित अधिनियम पास किया और इसी आधार पर अन्य राज्यों ने भी इसका अनुकरण किया। सन् 1941 में केंद्रीय सरकार ने खानों में काम करने वाली स्त्रियों के लिए मातृत्व अधिनियम पास किया। योजनाए परिस्थितियों की परिणाम थी। ये भावी सामाजिक सुरक्षा का कोई चित्र हमारे सामने प्रस्तुत नही करती थी। इसके अतिरिक्त अधिनियम अतर्राष्ट्रीय निर्माण के अनुरूप नही थे और न ही इसके अतर्गत राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को किसी योजना का अनुसरण किया जाता था।

3 सुविचारित आयोजन की अवधि

सामाजिक सुरक्षा अधिनियम के सबध मे सुविचारित आयोजन की अवधि 1942 से शुरू होती है और पूरे दशक तक जारी रहती है। इस अवधि मे सयोग से 1942 मे सामाजिक बीमा और सबद्ध सेवाओं पर प्रसिद्ध बेवरिज रिपोर्ट का प्रकाशन हुआ और यही आजकल सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे बेवरिज प्लान के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद 1943 मे कनाडा मे 'मास योजना का प्रकाशन हुआ। इसके बाद अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के दो अध्ययन —सामाजिक सुरक्षा सबधी धारणाए, एक अतर्राष्ट्रीय सर्वेक्षण (1942) और विशेष सुरक्षा युद्ध अन्य सिद्धात और समस्याए (1944) प्रकाशित हुए। इन सबका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। अत: 1943 मे भारत सरकार ने देश के लिए एक निश्चित सामाजिक सुरक्षा सबधी योजना तैयार करने हेतु प्रो० बी० पी० अदारकर को नियुक्त किया गया, जिन्होने 1944 मे अपनी निश्चित रिपोर्ट प्रस्तुत की। अदारकर योजना की व्यवहारिकता की जाच करने हेतु भारत सरकार द्वारा अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अधिकारी श्री आर० राव को नियुक्त किया गया। इन विशेषज्ञों ने कुछ साधारण परिवर्तनों के साथ-साथ योजना की सपुष्टि की तथा भारत सरकार ने 1948 मे कर्मचारी राज्य बीमा नियम पास किया जोकि अपने प्रकार का पश्चिमी-पूर्वी एशिया मे पहला ही अधिनियम था, परतु नियोजकों के विरोध के कारण कर्मचारी राज्य बीमा नियम 1952 मे सशोधन किया गया है। इस प्रकार यद्यपि इस अवधि मे सामाजिक सुरक्षा की योजना को व्यवहारिक स्वरूप नही दिया गया, तथापि भावी रूपरेखा को पूरी तरह ध्यान मे रखते हुए सोच-विचारकर आयोजित किया गया।

4 क्रियान्वयन की अवधि

1942 से प्रारभ अवधि सामाजिक सुरक्षा की कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं को

अमली जामा पहनाने की अवधि है। 20 फरवरी, 1952 को स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू द्वारा राज्य कर्मचारी बीमा योजना को कानपुर मे कार्यान्वित किया गया तथा उसी दिन यह योजना दिल्ली मे भी लागू की गई। उसी दिन से यह योजना अन्य क्षेत्रो मे धीरे-धीरे फैलाई जा रही है। इसके अतिरिक्त कर्मचारी प्राविडेंट फड योजना भी इसी वर्ष चालू की गई। इसी अवधि मे उत्तर प्रदेश सरकार ने 1 दिसबर, 1957 से वृद्धावस्था पेंशन की प्रथम सामाजिक योजना शुरू की। इसके अतिरिक्त कई राज्यो मे विशेष रूप से अकाल-पीडित क्षेत्रो मे रोजगार के अवसर जुटाने के उद्देश्य से राहत कार्य शुरू किये।

5 समन्वय और सुदृढीकरण की अवधि

1958 से आगे की अवधि को हम समन्वय और सुदृढीकरण की अवधि कह सकते हैं। सन् 1958 मे भारत सरकार ने देश में कार्यान्वित सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के एकीकरण के सबध मे आवश्यक सुझाव देने हेतु एक अध्ययन दल की नियुक्ति की। इस दल ने अपनी रिपोर्ट 1958 मे दी और इसने कहा कि कर्मचारी राज्य बीमा योजना व कर्मचारी प्राविडेंट फड योजना के प्रशासन के दायित्व एक ही सस्था को सौंपे जायें। बाद मे कर्मचारी राज्य बीमा समीक्षा समिति ने 1965 में यह सिफारिश की कि भारत सरकार को एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना की रूपरेखा तैयार करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति करनी चाहिए। 1969 म श्रम सबधी राष्ट्रीय आयोग ने यह विचार प्रकट किया आदर्शगत व्यवस्था तो यह होगी कि धीरे धीरे एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा की योजना बनाई जाय और इसके लिए एक निधि का निर्माण किया जाय, जिसमे सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का अशदान सामूहिक रूप से एकत्र हो और फिर इस निधि से विभिन्न एजेंसियां आवश्यकतानुसार विभिन्न योजनाओं को मूर्त-रूप देने के लिए धनराशि निकालें। भारत मे एक पूर्ण सामाजिक सुरक्षा के समन्वय और आयोजन की दिशा मे प्रयत्न जारी है और सामाजिक सुरक्षा सरचना का एक स्पष्ट चित्र उभरकर हमारे सामने आ रहा है।

भारत मे वर्तमान व्यवस्था

सामाजिक सुरक्षा की दिशा मे हमारे देश मे वर्तमान समय मे निम्नलिखित आयोजन हैं –

1 श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम
2 कर्मचारी प्राविडेंट फड अधिनियम
3 कोयला खान प्राविडेंट फड, योजनायें तथा बोनस योजनायें,
4 मातृत्व लाभ अधिनियम,
5 कर्मचारी राज्य बीमा योजना तथा अन्य योजनायें।

उपर्युक्त योजनाओं के अध्ययन के पूर्व हम भारत मे सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता व उद्देश्य पर प्रकाश डालेंगे।

भारत मे सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता व उद्देश्य

श्री बेवरिज का कथन है, 'जितने आप गरीब होंगे उतनी ही अधिक आपको सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता पडती है।" यह कथन भारत की परिस्थितियो मे पूर्णत सही है। भारत मे भुखमरी, बेरोजगारी, दरिद्रता, अज्ञानता और विभिन्न प्रकार की बीमारियो का साम्राज्य है, इसलिए भारत मे सामाजिक सुरक्षा का महत्व अन्य देशो की तुलना मे अधिक है। सक्षेप मे भारत मे सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता निम्नलिखित कारणो से है :—

1 **निधन श्रमिको का सहारा** . भारत एक अत्यत निर्धन देश है, फलत श्रमिको को इतनी अधिक मजदूरी नही मिलती है कि वे अपने जीवन की अनिवार्यताओ को भी पूरा कर पायें। बीमारी, बेकारी, अस्थायी योग्यता अथवा परिवार के मालिक की अचानक मृत्यु हो जाने पर परिवार पर कठिनाइयो का पहाड टूट पडता है। सामाजिक सुरक्षा ऐसी स्थिति म मुसीबतो मे सहारा प्रदान करती है।

2 **भयकर रोगों से मुक्ति** भारतीय श्रमिक मलेरिया, हैजा, प्लेग, तपेदिक, इन्फ्लुएजा आदि भयकर रोगो से अक्सर ग्रस्त रहते हैं। इन सब रोगो को दूर करने के लिए चिकित्सा सबधी सुविधाओ का अभाव है, सामाजिक सुरक्षा चिकित्सा की सुविधा प्रदान करती है।

3 **दुर्घटना के समय मे लाभकारी** यदि किसी औद्योगिक दुर्घटना का शिकार होकर श्रमिक का कोई अग स्थायी या अस्थायी रूप मे बेकार हो जाता है या दुर्घटना के कारण मृत्यु हो जाती है तो परिवार को अत्यत कष्ट उठाने पडते हैं। श्रमिक परिवार की आय बद हो जाती है और परिवार के सदस्य निराश्रित हो जाते हैं। सामाजिक सुरक्षा ऐसी स्थिति मे श्रमिक परिवार को सुरक्षा प्रदान करती है।

4 **बेरोजगारी की दशा मे सहायता** भारत मे बेकारी-समस्या अत्यत उग्र है। अन सामाजिक सुरक्षा के अतर्गत बेकारी की व्यवस्था मे श्रमिको को कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकेगी और श्रमिक तथा उसका परिवार एक न्यूनतम जीवन स्तर बनाए रख सकते हैं।

5 **सामाजिक बुराइयों से सुरक्षा** : अत्यत निर्धनता व बेकारी अनेक सामाजिक बुराइयो—भिक्षावृति, वेश्यावृति, चोरी, बाल व स्त्री श्रम अपराध आदि को जन्म देती है। भूख सब कुछ करवा सकती है। अतः इन सब सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सामाजिक सुरक्षा एक उपाय है।

6 **भावी पीढी का उत्तम लालन-पालन** . भारतवर्ष मे निर्धनता के कारण बच्चो का लालन-पालन उचित ढग से नही हो पाता। सामाजिक सुरक्षा की योजना के अतर्गत परिवार के प्रत्येक बालक के लिए कुछ आर्थिक सहायता माता-पिता को मिल जाती है जिससे वे बच्चो का लालन-पालन उचित ढग से कर सकते हैं।

7 **वृद्धावस्था मे सहायता** : आज जो वृद्ध हैं उन्होने अपनी युवावस्था मे अपनी क्षमतानुसार समाज या राष्ट्र की सेवा की है परतु अब वे वृद्धावस्था के कारण उत्पादन

कार्यों मे सक्रिय भाग नही ले पा रहे हैं अतः समाज का कर्त्तव्य है कि वह उनके बुढापे के लिए व्यवस्था करे। मामाजिक सुरक्षा योजना इन कर्त्तव्यो के पालन मे सहायक होगी।

अत हम कह सकते हैं कि सामाजिक सुरक्षा योजना द्वारा बेकारी, बीमारी, अज्ञानता व गदगी के दानवो से समाज की रक्षा होगी और श्रमिक का जीवन अधिक सुखी और सपन्न होगा।

1 श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम
(Workmen's Compensation Act)

यह अधिनियम 1923 मे पास किया गया और 1 जुलाई 1924 को लागू किया गया था। इस अधिनियम मे 1926, 1929, 1933, 1937, 1938 1939, 1946, 1959 और 1962 मे सशोधन किये गए हैं।

उद्देश्य एव क्षेत्र : यह अधिनियम सेवायोजको पर दायित्व डालता है कि वे श्रमिको को उन दुर्घटनाओ के लिए जिनके कारण मृत्यु हो जाती है अथवा सात दिन से अधिक के लिए वे पूर्ण रूप मे या अपूर्ण रूप से अयोग्य हो जाते हैं क्षतिपूर्ति प्रदान करें। कुछ व्यवसाय-जनित बीमारियो के लिए भी क्षतिपूर्ति करने का प्रावधान है।

यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर को छोड कर शेष समस्त भारत पर लागू होता है। यह अधिनियम रेलवे, कारखानो, बागानो, खाना मशीनो से चलने वाले वाहनो व निर्माण कार्यों पर लागू होता है जहा दस मजदूर तथा शक्ति या पचास मजदूर विना शक्ति काम करते हैं। इसके अतर्गत वे कर्मचारी नही आते जो दफ्तरो मे काम करते हैं, सुरक्षा सेवाओ मे हैं अथवा 500 रु० से अधिक वेतन पाते हैं।

क्षतिपूर्ति का अधिकार इस अधिनियम के अतर्गत कार्य करते समय चोट लग जाने से या दुर्घटना हो जान की स्थिति मे श्रमिक को क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है। यह क्षतिपूर्ति केवल तभी दी जाती है जब कि हानि नशे या किसी आदेश के स्वायपूर्ण खडन स नही हुई है। इसके अतिरिक्त कुछ व्यावसायिक रोगो म भी क्षतिपूर्ति की व्यवस्था इस अधिनियम मे है।

क्षतिपूर्ति की दर इस अधिनियम के अतर्गत दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि हानि की प्रकृति व श्रमिको की औसत मासिक मजदूरी पर निर्भर करती है। क्षति को कई वर्गों मे बाट दिया गया है (अ) मृत्यु, (ब) स्थायी पूर्ण असमर्थता, (स) स्थायी आशिक असमर्थता, और (द) अस्थायी असमर्थता। मृत्यु, स्थायी पूर्ण असमर्थता और अस्थायी असमर्थता की स्थिति मे क्षतिपूर्ति की राशि अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका से जानी जा सकती है—

सारणी 1 . क्षतिपूर्ति की राशि (अनुसूची 4)

रुपये मे

मासिक वेतन	मृत्यु	स्थायी पूर्ण असमर्थता	अस्थायी असमर्थता (अर्ध मासी)
0-10	1000	1400	आधी मजदूरी
10-13	1100	1540	आधी मजदूरी
13-18	1200	1680	6 50
18 21	1260	1764	7 00
21-24	1440	2016	8 00
24-27	1620	2268	8 50
27-30	1800	2520	9 50
30 35	2100	2940	9 50
35-40	2400	3360	10 00
40-45	2700	3780	13 00
45 50	3000	4200	13 00
50 60	3600	5040	18 50
60 70	4200	5880	18 50
70-80	4800	6720	20 00
80 100	6000	8400	27 00
100-150	7000	9800	37 50
150 200	7000	9800	52 50
200 300	8000	11 200	60 00
300 400	9000	12 600	75 00
400 तथा ऊपर	10 000	14 000	87 50

अस्थायी असमर्थता म अधिक से अधिक पाच वर्ष तक के लिए क्षतिपूर्ति की राशि मिल सकती है। स्थायी आंशिक असमर्थता होने पर पूर्ण असमर्थता का वह प्रतिशत मिलता है जिस प्रतिशत मे मजदूर की धन उपार्जन की शक्ति की क्षति हुई हो। उदाहरणार्थ यदि धन कमाने की शक्ति मे 60% हानि हुई है और 1400 रु० पूर्ण असमर्थता की स्थिति मे मिलते हैं तो उसे आंशिक असमर्थता मे 840 रु० मिलेगा।

आश्रितो की क्षतिपूर्ति यदि कार्य करते हुए दुर्घटना के फलस्वरूप श्रमिक की मृत्यु हो जाती है तो उसके आश्रितो को क्षतिपूर्ति दी जाएगी। आश्रितो को दो वर्गों मे बाटा गया है—(अ) वे आश्रित जो बिना प्रमाण के ही आश्रित समझे जाते है, जैसे, विधवा, अवयस्क, वैध पुत्र, अविवाहित वैध पुत्री अथवा विधवा माता। (ब) वे आश्रित जिन्हे यह प्रमाणित करना पडता है कि मृत व्यक्ति के आश्रित थे जैसे—विधुर पिता,

बालिग भाई, अविवाहित अवैध पुत्री, अविवाहित अथवा विधवा बहन, विधवा पुत्रवधू, मृतक पुत्र का अवयस्क बच्चा, मृतक पुत्री का अवयस्क बच्चा आदि।

क्षतिपूर्ति का वितरण सेवायोजकों को दुर्घटनाओं की सूचना कर्मचारी क्षतिपूर्ति आयुक्त को दे देनी चाहिए। यदि सेवायोजक दायित्व को स्वीकार कर लेता है तो क्षतिपूर्ति की राशि आयुक्त के पास जमा करनी पड़ती है। यदि सेवायोजक दायित्व को स्वीकार नहीं करता तो आयुक्त को आश्रितों को यह सूचना देनी पड़ती है कि वे अपना दावा प्रस्तुत करें।

प्रशासन : इस अधिनियम का प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा कर्मचारी क्षतिपूर्ति संबंधी आयुक्त के माध्यम से किया जाता है।

अधिनियम की कार्यप्रणाली की आलोचना

यद्यपि यह नियम पचास वर्ष से अधिक पुराना हो गया है और इसमें कई बार संशोधन किया जा चुका है फिर भी इसमें कुछ दोष हैं—

1 **सीमित क्षेत्र :** इस अधिनियम का क्षेत्र बहुत सीमित है क्योंकि अनेक व्यवसाय जैसे— कृषि, घरेलू उद्योग-धंधे व अनियंत्रित कारखाने इसके अंतर्गत नहीं आते हैं।

2 **क्षतिपूर्ति राशि का एकमुश्त दिया जाना** इसमें क्षतिपूर्ति राशि एक साथ दे दी जाती है जिसे कि अधिकतर श्रमिक या उसके परिवार के लोग कुछ ही दिनों में खर्च कर डालते हैं और अधिनियम के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाती।

3 **क्षतिपूर्ति देने से बचना** यह देखा गया है कि सेवायोजक क्षतिपूर्ति देने से बचने का भरसक प्रयत्न करते हैं। छोटी-मोटी चोट लग जाने पर उद्योगपति क्षतिपूर्ति आयुक्त को कोई सूचना नहीं देते अथवा श्रमिक को डरा-धमकाकर मामले को वहीं दबा देते हैं अथवा कभी बहुत ही कम रकम देकर उसमें हर्जाने की पूरी रकम पाने की रसीद पर हस्ताक्षर या अंगूठा लगवा लिया जाता है। ठेकेदार भी प्राय ऐसा ही करते हैं। सेवा कार्ड न रखे जाने पर श्रमिकों के संबंध में कोई भी जानकारी प्राप्त करना कठिन होता है क्योंकि दुर्घटना के बाद वे अपने घर को चले जाते हैं।

इस अधिनियम के अंतर्गत सेवायोजकों के लिए गैर-घातक घटनाओं की सूचना आयुक्त को देना आवश्यक नहीं है, इसलिए यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि गैर-घातक घटनाओं में क्षतिपूर्ति के दावे किए गए हैं अथवा नहीं।

इस नियम के उल्लंघन होने के बहुत से कारण हैं, जैसे— (अ) अधिकांश श्रमिकों के अनपढ़ होने के कारण यह भी मालूम नहीं रहता कि उन्हें हर्जाना मिलने का अधिकार है या नहीं। उद्योगपति इस अज्ञान का लाभ उठाते हैं। (ब) अधिकांश भारतीय श्रमिक इतने गरीब होते हैं कि मालिक द्वारा हर्जाना देने से इंकार करने पर कार्यवाही कर उसे वसूल करने की क्षमता भी उनमें नहीं होती है। (स) बहुधा मजदूर संगठन इतना कमजोर होता है कि इस नियम का पालन नहीं करवा पाता।

4 **अन्य दोष :** इस अधिनियम में कुछ दोष इस प्रकार हैं—

(1) अनेकानेक छोटे संस्थानों में दुर्घटनाग्रस्त कर्मचारियों के लिए कोई भी

चिकित्सा सबधी सुविधा उपलब्ध नही है।

(2) इस अधिनियम का प्रशासन सबधी उत्तरदायित्व आयुक्त पर है। पर यह अधिकारी इस अधिनियम के अतर्गत आने वाले मामलो का निपटारा जल्दी नही कर पाते क्योकि वे अपने अन्य कामो मे व्यस्त रहते हैं।

(3) विभिन्न काच की फैक्ट्रियो मे चोट इस प्रकार की होती है कि वह सात दिन की प्रतीक्षा काल मे ठीक हो जाती है इसलिए सेवायोजक अपने दायित्व न बच जाते हैं।

सुझाव उपरोक्त दोषो को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1 अशिक्षित श्रमिको को अधिनियम की धाराओ स अवगत कराने के लिए श्रम सघो को इस ओर विशेष प्रयत्न करना चाहिए। श्रम कल्याण अधिकारियो या श्रम सघो को व्याख्यान और सभाओ के द्वारा श्रमिको को शिक्षित करना चाहिए। इस अधिनियम की आवश्यक धाराओ को क्षत्रीय भाषाओ मे छपवा कर प्रत्येक श्रमिक को एक प्रति दी जानी चाहिए।

2 प्रशासन सबधी दोषो को दूर करना आवश्यक है ताकि सवायोजक क्षतिपूर्ति देने के उत्तरदायित्व से न बच सके। इसीलिए पृथक् अधिकारी की नियुक्ति परमावश्यक है ताकि समस्त मामलो का निपटारा व निरीक्षण शीघ्रता से हो सके। अधिनियम के अतर्गत मामलो के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि वे उन समस्त घटनाओ की सूचना आयुक्त के पास भेजें जिनम कि श्रमिक को हर्जाना मिलेगा और फिर आयुक्त क निरीक्षण मे श्रमिक को हजाना दिया जाना चाहिए।

3 अधिनियम के अतर्गत नौकरी से सबधित सभी दुर्घटनाओ को सम्मिलित कर लेना चाहिए जैसे कि—कार्य-स्थान स आने या जाने मे हुई दुघटनाए भी इसम सम्मिलित कर लेनी चाहिए।

4 क्षतिपूर्ति की राशि श्रमिक के परिवार के आकार तथा बढती हुई कीमत स्तर को ध्यान मे रखते हुए निश्चित करनी चाहिए।

5 अधिनियम के अन्तर्गत सवायाजक सात दिन स अधिक की पूव व आशिक असमथता के सबध म क्षतिपूर्ति करत है। पर चूकि भारत म श्रमिक अत्यत निधन हैं इसलिए सात दिन की अवधि को घटाकर तीन दिन कर दना चाहिए। कनाडा जमनी, इग्लंड व फ्रास आदि म यह अवधि तीन दिन की है।

6 राष्ट्रीय श्रम आयोग न यह सुझाव दिया है—(क) सब प्रकार क मजदूरो और निरीक्षको के सबध मे यह अधिनियम लागू होना चाहिए चाह वे जितना भी वतन पाते हो। (ख) एक क्षतिपूर्ति कोष की स्थापना होनी चाहिए जिसका सचालन कर्मचारी राज्य बीमा निगम कर। इसम उद्योगपति मजदूरी का कुछ प्रतिशत जमा करें और क्षतिपूर्ति इसमें से दी जाय।

7. अन्य सुझाव : (अ) श्रमिक की मृत्यु हो जाने पर उसके आश्रितो को एक निश्चित बधी रकम देने के बजाय दीर्घावधि के लिए थोडी-थोडी सहायता देने की

व्यवस्था होनी चाहिए। (ब) सभी औद्योगिक बीमारियो को सम्मिलित करने के लिए व्यावसायिक बीमारियो की सूची का विस्तार किया जाना चाहिए। (स) दाह-संस्कार के व्यय के रूप मे कम-से-कम एक माह का वेतन दिया जाना चाहिए, भले ही घातक दुर्घटनाओ के होने पर कर्मचारी के आश्रित जीवित हो। (द) चोट पीड़ित कर्मचारियो की कार्यक्षमता सुधारने हेतु कृत्रिम हाथो व टागो की व्यवस्था तथा अन्य शल्य चिकित्सा सुविधा जुटाई जानी चाहिए।

2 कर्मचारी प्राविडेड फड अधिनियम, 1952 — (Employees Provident Fund Act, 1952)

औद्योगिक श्रमिको के लिए सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे कर्मचारी प्राविडेंट फड 1952 मे पास किया जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। अवकाश प्राप्त वृद्ध कर्मचारी को भुखमरी और तबाही से बचाने के लिए किसी न किसी प्रकार की योजना का सर्वथा अभाव रहा है। इस अधिनियम ने इस महान कमी को पूरा किया है। इस अधिनियम की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

क्षेत्र · जम्मू और काश्मीर को छोडकर यह अधिनियम भारत के उन सभी कारखानो मे लागू होता है जिन्हे स्थापित किए हुए तीन वर्ष हो गए है तथा श्रमिको की संख्या पचास या इससे अधिक है। *यह अधिनियम उन कारखानो मे भी लागू होता है* जिन्हे पाच वर्ष पूरे हो गए हैं तथा जिनके श्रमिकों की संख्या बीस से अधिक तथा पचास से कम है।

उद्देश्य इस अधिनियम का उद्देश्य अनिवार्य रूप से प्राविडेट फड की व्यवस्था करना है ताकि श्रमिक के सेवामुक्त होने के पश्चात उसके भविष्य का प्रबध हो सके तथा उसकी असामयिक मृत्यु पर उसके आश्रितो को कुछ राशि मिल सके। इस योजना का लाभ उन सभी कर्मचारियो को मिलता है जिनकी मूल मजदूरी महगाई व भत्ता मिलकर 1000 रु० मासिक से अधिक न हो तथा जिन्होने एक वर्ष निरतर सेवा पूरी कर ली हो। बारह महीने या कम की अवधि मे 240 दिन वस्तुत काम किया हो।

अशदान प्राविडेंट फड मे कर्मचारी और मालिक दोनो को ही समान अश दान देना पडता है। प्रारभ मे कर्मचारियो को अपने पूरे वेतन (मजदूरी व महगाई) का 6 1/4 प्रतिशत जमा करना होता था। 1 जनवरी 1962 से यह अशदान उन कारखानो मे जिनमे पचास से अधिक कर्मचारी हैं और जो सिगरेट व बिजली के समान लोहा कागज आदि का उत्पादन करते हैं यह अशदान 8 कर दिया गया। इतनी ही राशि उद्योग-पति को भी जमा करनी पडती है। सरकार ने सेवायोजक के द्वारा कर्मचारी के प्राविडेंट फड की राशियो मे कुछ ऋण या दायित्व या मजदूरी की कटौती की कोई रकम काटने के विरुद्ध कर्मचारी को सुरक्षा प्रदान की है। जीवन बीमा पालिसी के सबध मे फड मे से भुगतान कर दिए जाने की अनुमति है।

रकम का वापस मिलना इस फड की कोई भी रकम सदस्य निम्न परिस्थितियों मे पाने का अधिकारी होगा—

(अ) नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के बाद।

(ब) स्थायी या अस्थायी असमर्थता या शारीरिक या मानसिक असमर्थता के कारण रिटायर होने के बाद।

(स) विदेश मे जाकर स्थायी रूप मे बस जाने के बाद।

(द) यदि कोई सदस्य एक उद्योग छोडकर किसी दूसरे उद्योग म चला जाता है और वहा यदि इस प्रकार की योजना लागू नही है तो एक वर्ष उस उद्योग मे नौकरी करने के बाद।

(य) पाच वर्ष की सेवा के पश्चात कर्मचारी मालिक द्वारा जमा किए गए अश का आधा और 20 वर्ष के पश्चात पूरा अश लेने का अधिकारी होगा।

(र) कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसका जितना भी रुपया इस फड मे जमा हुआ है उसके कानूनी उत्तराधिकारी को या जिसे वह मनोनीत कर गया हो उसे फड की पूरी राशि दी जाएगी।

प्रशासन इस योजना के प्रशासन के लिए एक केंद्रीय ट्रस्ट मडल बनाया गया है। यह मडल त्रिपक्षीय सस्था है अर्थात इसमे कर्मचारी, मालिक व सरकार के प्रतिनिधि होते हैं। केंद्रीय प्राविडेंट फड कमिश्नर इस केंद्रीय मडल का प्रधान कार्यकारी अधिकारी होता है। प्रत्येक राज्य मे स्थापित एक क्षेत्रीय प्राविडेंट कमिश्नर उसकी सहायता करता है।

यह कानून 31 मार्च, 1982 को जम्मू और काश्मीर को छोडकर देश भर के 160 उद्योगो पर लागू था। मार्च, 1982 के अत तक मे भविष्य निधि अशदाताओ की सख्या 108 74 लाख थी। भविष्य निधियो मे जमा धनराशि ब्याज समेत 8,554 26 करोड रुपये थी और ममताई रकम 3,780 60 करोड रुपया थी।

अधिनियम का मूल्याकन इस अधिनियम के कुछ प्रमुख दोष इस प्रकार हैं —

(अ) मजदूर को सेवायोजक का अशदान पाने का तभी अधिकार है जब वह दीर्घकाल तक काम करता है। तीन वर्ष से कम कार्यावधि होने पर उद्योगपति का अशदान केवल 25% ही मिलता है। यह नियम मजदूर की गतिशीलता को कम करता है और उसकी उन्नति मे बाधा उत्पन्न करता है।

(ब) इस योजना की आलोचना सेवायोजक इस आधार पर करते है कि उनके ऊपर जो भार डाला गया है उससे उत्पादन लागत बढ जाती है और लाभ का मार्जिन कम हो जाता है।

(स) इस योजना का लाभ कुछ निश्चित उद्योगो व विशिष्ट कर्मचारियो तक ही सीमित है। बहुत से सस्थान कमीशन गृहो विक्रय एजेंसियों व कार्यशालाओ के रूप मे काफी व्यापार करते हैं, परतु उनमे 20 से कम कर्मचारी लगे होने से इस योजना का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता।

(द) सेवायोजक द्वारा एकत्र की गई प्राविडेंट फड राशि के दुरुपयोग के भी बहुत से उदाहरण मिलते हैं। कुछ कपनियो मे कर्मचारियो से एकत्र किए गए प्राविडेंट फड का उपयोग कपनी के व्यवहारो मे या सट्टे के व्यापार में किया जाता है। यह भी

देखने मे आता है कि उद्योगपति अपने अंशदानों को नियमित रूप से जमा नही करते। कुछ मामलो मे तो मजदूर के अंशदान भी कट जाते हैं और जमा नही किए जाते।

(य) प्राविडेंट फंड की राशि का भुगतान कभी-कभी वर्षो बाद किया जाता हैं।

(र) स्वर्गीय राममोहन लोहिया का विचार था कि जब मजदूर फंड मे रुपया जमा कर आते हैं तब क्रय-शक्ति अधिक रहती है परन्तु जब राशि का भुगतान किया जाता है तब बढती हुई कीमतों के कारण क्रय-शक्ति कम हो जाती है। अत सरकार को इस हानि की क्षतिपूर्ति करनी चाहिए।

3 कोयला खानो की प्राविडेंट फंड योजना (Coal Mines Provident Fund Scheme)

क्षेत्र : यह अधिनियम प्रारंभ मे पश्चिमी बंगाल तथा बिहार की कोयला खानो पर लागू किया गया था। धीरे धीरे अन्य राज्यों की कोयला खानो पर भी यह अधिनियम लागू किया गया। 1 अक्टूबर 1971 से जम्मू-काश्मीर मे भी इसे लागू किया गया। अब यह अधिनियम देश के समस्त कोयला खानो पर लागू होता है।

योग्यता काल : जिन कोयला खानो मे प्राविडेंट फंड योजना लागू है वहा प्रत्येक कर्मचारी को उस तिमाही के बाद तत्काल ही सदस्य बनना पडता है जो तिमाही कोयला खान बोनस योजना के अंतर्गत बोनस पाने योग्य होने की तिमाही के बाद आती है। किसी भी तिमाही मे योग्यता काल बिहार और पश्चिमी बंगाल को छोडकर अन्य सभी राज्यो मे खान के नीचे काम करने वाले श्रमिको के लिए 60 दिन की उपस्थिति तथा खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिको के लिए 65 दिन की उपस्थिति निश्चित की गई है। परन्तु बिहार और पश्चिमी बंगाल मे यह योग्यता काल क्रमश 54 और 66 दिन है।

अंशदान इस योजना के सदस्य श्रमिको को मजदूरी के आठ प्रतिशत के बराबर चंदा देना पडता है। इस मजदूरी मे मौलिक मजदूरी, भत्ता, अतिरिक्त काम का भत्ता व सार्वजनिक छुट्टी की मजदूरी सम्मिलित है। खान मालिको को भी श्रमिक की मजदूरी का 8% चंदे के रूप मे देना पडता है। सन् 1962 के पश्चात यह आयोजन कर दिया गया है कि कोई भी श्रमिक अनिवार्य चंदे के अतिरिक्त स्वेच्छा से मजदूरी का 8% और चंदे के रूप मे दे सकता है। ऐसी दशा मे मालिक को चंदा नही देना पडेगा।

धनराशि का वापस मिलना : कोई भी सदस्य पचास वर्ष की आयु या पूर्णरूप से असमर्थ होने पर या नौकरी से स्थायी रूप से अवकाश ग्रहण करते समय इस फंड से पूरी रकम ले सकता है।

प्रशासन व प्रगति : इस योजना का प्रशासन एक न्यास बोर्ड के द्वारा होता है जिसके सदस्य सरकार, मालिको और मजदूरो के बराबर संख्या मे प्रतिनिधि होते हैं। कोयला खान प्राविडेंट फंड आयुक्त इसका मुख्य अधिकारी होता है।

31 दिसम्बर 1978 को 1001 कोयला खानो और सहायक संगठनो मे भविष्य निधि मे धन जमा करने वाले कर्मचारियो की संख्या 6 78 लाख थी।

इस योजना के अंतर्गत श्रमिको को नियमित काम पर जाने व गैर-कानूनी हड-

तालो में भाग न लेने के लिए प्रेरणा हेतु बोनस देने की भी व्यवस्था की गई है। जो श्रमिक निश्चित दिनो की हाजिरी पूरी कर लेते है उन्हे त्रैमासिक बोनस दिया जाता है, जो उस तिमाही मजदूरी का दस प्रतिशत होता है।

4. मातृत्व हित-लाभ (Maternity Benefits)

स्त्री श्रमिको के लिए बच्चा पैदा होने के पहले और बाद मे आराम, उचित भोजन और चिकित्सा की व्यवस्था करने के लिए 1929 मे बबई सरकार ने मातृत्व हित-लाभ अधिनियम पास किया। इसके बाद 1930 मे मध्य प्रदेश, मद्रास 1938 म, उत्तर प्रदेश 1939 मे, बगाल 1943 मे, पजाब 1944 मे, बिहार 1952 मे, व केरल 1953 मे इसके अतर्गत आए। उडीसा और राजस्थान सरकारो ने भी मातृत्व हित-लाभ अधिनियम पास किए। इस प्रकार के अधिनियम सभी राज्यो मे हैं।

केंद्रीय सरकार ने 1941 मे काम करने वाली स्त्रियो के लिए मातृत्व हित-लाभ अधिनियम बनाया। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 व बागान अधिनियम 1951 के अतर्गत भी मातृत्व हित-लाभ की व्यवस्था है। विभिन्न राज्यो मे अधिनियम का क्षेत्र, हित-लाभ पाने की शर्तें, हित-लाभ की दरें आदि अलग अलग निश्चित की गई।

मातृत्व हित लाभ मे विभिन्नता दूर करके एकरूपता लाने के लिए केंद्रीय सरकार ने 1961 मे मातृत्व हित लाभ एक्ट पास किया। 1972 मे इस अधिनियम मे कुछ सशोधन भी किए गए है। यह अधिनियम फैक्ट्री अधिनियम, खान अधिनियम व बागान अधिनियम के अतर्गत आने वाले उन समस्त सस्थानो पर लागू होता है जो कर्मचारी बीमा योजना के अतर्गत नही आते। यह अधिनियम 1961 से खानो मे लागू हुआ यह अधिनियम जब लागू हुआ तो इसमे खान मातृत्व हित अधिनियम 1941 व बबई मातृत्व हित अधिनियम 1939 को निरस्त कर दिया गया जो केंद्रशासित दिल्ली मे लागू हुआ था।

यहा यह ध्यान देने योग्य है कि जिन क्षेत्रो मे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू है वहा सेवायोजको को मातृत्व हित-लाभ के दायित्वो से मुक्त कर दिया गया है।

मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 की मुख्य बातें इस प्रकार है :

योग्यता काल एक स्त्री श्रमिक 160 दिन से अधिक कार्य करने पर मातृत्व हित-लाभ पाने की अधिकारिणी हो जाती है। यदि 160 दिन की सेवा का अधिनियम उन महिलाओ पर लागू नही होता जो आसाम म अन्य जगहो से आई है तथा आने के समय गर्भवती थी।

लाभ की अवधि · हित लाभ मिलने की अवधि 12 सप्ताह है यानी 6 हफ्ते प्रसव के दिन तक तथा 6 हफ्ते प्रसव दिन के बाद।

लाभ राशि की दर छुट्टी के समय मे स्त्री श्रमिक को पिछले 6 सप्ताह की मजदूरी के औसत के बराबर वेतन दिया जाता है। यदि सेवायोजको द्वारा स्त्री-श्रमिक

को बच्चा पैदा होने के समय नि शुल्क चिकित्सा सुविधाए न दी गई हो तो उसे 25 रुपया डाक्टरी बोनस भी दिया जाता है।

अतिरिक्त लाभ कुछ राज्यो मे अतिरिक्त लाभ जैसे नि शुल्क चिकित्सा सहायता, मातृत्व बोनस, बच्चो के लिए झूलो की व्यवस्था तथा अतिरिक्त आराम के घटे आदि की सुविधाए प्रदान की गई हैं।

सुरक्षा दड एव प्रशासन गर्भवती कर्मचारियो के हितो की रक्षा करने हेतु केंद्रीय व राज्य अधिनियमो मे इनको नौकरी मे न हटाने के लिए प्रावधान बनाए गए हैं। किसी भी स्त्री-श्रमिक को गर्भ रह जाने पर अथवा मातृत्व अवकाश के दौरान काम से अलग नही किया जा सकता। बच्चा पैदा होने म पूर्व व बाद मे स्त्री-श्रमिक से कठोर कार्य नही कराया जा सकता। राज्यो मे प्रशासन के लिए कारखाना निरीक्षक उत्तरदायी है।

1961 के मातृत्व हित लाभ अधिनियम को 1972 मे सशोधित किया गया और उसम यह प्रावधान किया गया कि यदि किसी कारखाने या सस्थान मे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 लागू होता तो भी स्त्री कर्मचारियो को मातृत्व हित-लाभ अधिनियम के प्रसव काल सबधी लाभ तब तक मिलते रहेगे जब तक कि वे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अतर्गत इसी प्रकार के लाभ की अधिकारिणी नही हो जाएगी।

आलोचनात्मक मूल्याकन नि सदेह मातृत्व हित लाभ सबधी अधिनियमो से देश की स्त्री-श्रमिको को बहुत लाभ पहुचा है। फिर भी इनमे कुछ आधारभूत दोष होने के कारण इनका वास्तविक लाभ उन्हे नही मिल पाता है—

1 मालिक पर ही हित-लाभ देने का सपूर्ण उत्तरदायित्व होने के कारण वह ऐसा प्रयत्न करते हैं जिससे कि उन्हे यह हित-लाभ न देना पडे।

2 इस अधिनियम मे योग्यता काल बहुत अधिक और हित-लाभ की राशि बहुत कम है। आजकल की महगाई आदि को देखते हुए हित-लाभ की रकम इतनी बढा देनी चाहिए जिससे कुछ वास्तविक लाभ माताओ को प्राप्त हो।

3 अधिकतर महिला कर्मचारी निम्नलिखित कानून मे सबधित आवश्यकताओ की जानकारी के अभाव मे उन्हे पूरा करने मे कठिनाई का अनुभव करती हैं— (अ) समयानुसार सवायोजक को नोटिस देना, (ब) मान्यता सबधी सेवा-काल पूरा करना, (स) प्रसव काल के 4 हफ्ते बाद नौकरी पर आ जाना, व (द) लाभो को प्राप्त करने के लिए जन्म का प्रमाणपत्र प्राप्त करना।

4 अधिनियम का पालन उचित ढग से हो रहा है या नही, इस सबध मे पर्याप्त निरीक्षण का अभाव है। यद्यपि शाही श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि अधिनियम का प्रशासन महिला कारखाना निरीक्षको को सौंप देना चाहिए, परतु अधिकतर राज्यो मे अभी तक इस दिशा मे कोई कदम नही उठाया गया है।

उपरोक्त दोषो को दूर करने के लिए कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 म मातृत्व हित-लाभ के कुछ प्रावधानो को सम्मिलित किया गया है। आशा है समस्त

देश मे लागू होने के उपरात यह सब राज्यो मे मातृत्व हित-लाभ सबधी अधिनियमो मे एकरूपता लाकर वर्तमान मे प्रचलित दोषो को दूर कर देगा।

5 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948
(Employees State Insurance Act 1948)

भारत मे सामाजिक बीमा की दिशा मे यह प्रथम प्रयास कहा जा सकता है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम **प्रो० बी० पी० अदरकर** द्वारा 1944 मे प्रस्तुत योजना का सशोधित रूप है। 1945 मे भारत सरकार ने **प्रो० अदरकर** की योजना पर विशेष विचार करने के लिए अतर्राष्ट्रीय कार्यालय के दो विशेषज्ञ सर्वश्री **एम० स्टेक** तथा **आर० राव** को आमत्रित किया। उनकी सिफारिशो के आधार पर 6 नवम्बर, 1946 को एक बिल प्रस्तुत किया जो अप्रैल, 1948 मे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के रूप मे पास हुआ।

अधिनियम का क्षेत्र : यह अधिनियम पूरे देश मे प्रभावशाली है। यह अधि-*नियम उन समस्त कर्मचारियो पर लागू होता है जिसका मासिक वेतन 1,000 रु० से* अधिक नही है और जो ऐसे चिरस्थायी कारखानो मे लगे हुए हैं जिनमे विद्युत शक्ति का प्रयोग होता है तथा जिनमे 20 या अधिक व्यक्ति काम करते हैं।

राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम से परामर्श करके तथा भारत सरकार की अनुमति लेकर किसी भी उद्योग, वाणिज्य, कृषि अथवा अन्य दूसरे सस्थान मे इसे लागू कर सकते हैं।

प्रशासन : इस योजना का प्रशासन कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा किया *जाता है*। इसमे *कर्मचारियो व मालिको, केंद्रीय व राज्य सरकारो तथा लोक सभा व* डाक्टर पेशे के कुल मिलाकर 39 प्रतिनिधि सदस्य हैं।

निगम के कार्य चलाने के लिए एक स्थायी समिति है। इसके सदस्य निगम के कर्मचारियो मे से चुने जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक तीसरी सस्था चिकित्सा लाभ परिषद् भी होती है जोकि चिकित्सा हित-लाभ सबधी विषयो पर निगम को परामर्श देती है। निगम का प्रमुख कार्यवाहक महासचालक होता है जिसकी सहायता 4 मुख्य अधिकारी करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक क्षेत्र मे स्थानीय समितिया स्थापित की गई हैं, जहा योजना चल रही है या चलने की सभावना है। इन स्थानीय समितियो का निर्माण भी सभी वर्ग के प्रतिनिधियो को मिलाकर किया जाता है।

वित्त व्यवस्था इस योजना की वित्त व्यवस्था कर्मचारी राज्य बीमा कोष से होती है। इस कोष का निर्माण श्रमिको व सेवायोजको के अशदान, *केंद्रीय व राज्य* सरकारो के अनुदान तथा स्थानीय सत्ता, व्यक्तियो या सस्थाओ के दान व उपहार से होता है। राज्य सरकारें विभिन्न व्यक्तियो की देखभाल और चिकित्सा पर होने वाले व्यय का कुछ भाग देती है। आजकल निगम और राज्य सरकार के बीच इसका अनुपात तीन और एक है परतु जिस तिथि से परिवारो को भी चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाने लगी है, अश घटाकर 1/8 कर दिया गया है।

अशदान • बीमा कोष मे अशदान करने के लिए कर्मचारियो को 9 श्रेणियो म बाटा गया है। अशदान निम्नलिखित तालिका के अनुसार होते हैं—

सारिणी 2 साप्ताहिक अशदान

क्रम	वेतन क्रम मे कर्मचारी (दैनिक मजदूर) वेतन क्रम	कर्मचारी का अशदान रु० पै०	उद्योगपतियो का अशदान रु० पै०	योग रु० पै०
1	1 रु० से कम	शून्य	0 45	0 45
2.	1 रु० से 1 50	शून्य	0 45	0 45
3	1 50 से 2 00	0 25	0 50	0 75
4	2 00 से 3 00	0 40	0 80	1 20
5	3 00 से 4 00	0 50	1 00	1 50
6	4 00 से 6 00	0 70	1 40	2 10
7	6 00 से 8 00	0 95	0 90	2 85
8	8 00 से 15 00	1 25	2 50	3 75
9	15 रु० स अधिक	1 75	3 50	5 25

1951 मे एक सशोधन के द्वारा यह नियम बनाया गया कि सेवायोजक उपरोक्त तालिका के तीसरे कालम के अनुसार अशदान न देकर पूरे मजदूरी बिल का एक निश्चित भाग अपने अशदान के रूप म देंगे। मजदूरी के आधार पर वर्गीकृत कर्मचारियो के अशदान की चालू दर उनकी मजदूरी की लगभग 2 1/2 प्रतिशत आती है। जिन क्षत्रो म योजना कार्यान्वित हुई है उनमे सवायोजको के विशेष अशदान मजदूरी की 2·1/2% है।

कमचारियो की कटौती प्रति सप्ताह होती है। यदि वे नियमित छुट्टी पर हो या वैध हडताल पर हो अथवा उद्योग म तालाबदी हो तो भी यह राशि कटती है, यदि इस समय का पूण या आशिक वेतन उनको मिलता है।

हित लाभ *कमचारी राज्य बीमा क अतगत 5 लाभ प्रदान किए जाते है।* पचदीप शब्द इन पाच लाभो का द्योतक है जिनमे से 4 लाभ अर्थात बीमारी हित लाभ मातृत्व हित लाभ, असमर्थता हित लाभ और आश्रित हित लाभ नगदी म प्रदान किए जाते हैं और पाचवा लाभ अर्थात चिकित्सा हित लाभ गैर मौद्रिक रूप म प्रदान किया जाता है।

1 **बीमारी हित-लाभ** *बीमा कराने वाला कमचारी बीमार पडता है तो उस* नक्द सहायता दी जाती है। वर्ष के 365 दिनो मे यह लाभ अधिक स अधिक 56 दिन के लिए प्रदान किया जा सकता है। लाभ की प्रतिदिन दर औसत प्रतिदिन मजदूरी क लगभग आधे के बराबर होती है। यह लाभ उसी अवस्था म प्राप्त होगा जबकि रोगी का इलाज निगम के निर्दिष्ट चिकित्सा सस्थान म हो रहा हो। कुछ विशेष रोगो मे जैसे क्षय, कुष्ट, कैसर या मानसिक रोगो म 309 दिनो तक की सहायता दी जा सकती है।

इस विशेष लाभ को Extended Sickness Benefit कहते हैं।

2 मातृत्व हित-लाभ यह स्त्री-श्रमिका को गर्भवती होने की स्थिति मे दिया जाता है। यह हित-लाभ कम से कम 12 सप्ताह तक (6 सप्ताह बच्चा पैदा होने से पूर्व और 6 सप्ताह बाद म) दिया जाता है। सहायता की दर 75 पैसे प्रतिदिन अथवा बीमारी सहायता का दुगुना, जो अधिक हो, दिया जाता है।

3 असमर्थता हित-लाभ अधिनियम के अतर्गत असमर्थता हित-लाभ निम्नलिखित तीन श्रेणियो मे विभक्त किया गया है—

(अ) अस्थायी असमर्थता यदि असमर्थता अस्थायी है तो असमर्थता की अवधि म पूर्ण मजदूरी की दर मे लाभ दिया जाता है।

(ब) स्थायी आशिक असमर्थता यदि असमर्थता स्थायी है परतु आशिक है तो जीवन-भर क्षतिपूर्ति कर्मचारी क्षति नियम की धारा 4 के अतर्गत मान्य प्रतिशत के हिसाब म दी जाती है।

(स) स्थायी पूर्ण असमर्थता जीवन पर्यंत रहन वाली असमर्थता मे पूरी दर स जीवन-भर सहायता दी जाती है।

4 आश्रित हित-लाभ यदि किसी बीमित कर्मचारी की काम के समय मे दुर्घटनाग्रस्त होकर मृत्यु हो जाती है तो उसके आश्रितो को पेंशन प्राप्त होती है। आश्रितो म आशय उसकी विधवा प नी वैधानिक पुत्रो और वैधानिक और अविवाहित पुत्रियो से है। यह पेंशन निम्नलिखित दरो से सामयिक भुगतान के रूप मे दी जाती है :

(क) कर्मचारी की विधवा स्त्री के लिए उसके जीवन-पर्यंत अथवा पुनर्विवाह कर लेने तक पूर्ण दर का 3/5वा भाग दिया जाता है।

(ख) मृत कर्मचारी के प्रत्येक पुत्र के लिए 18 वर्ष की आयु तक 2/5वा भाग दिया जाएगा तथा उसकी प्रत्येक अविवाहित पुत्री को 18 वर्ष की आयु तक या शादी होने तक पूर्ण दर का 2/5वा भाग दिया जाएगा।

यदि मृतक के पुत्र या विधवा न हो तो यह लाभ उसके माता-पिता अथवा दादा-दादी को अथवा अन्य किसी आश्रित को कर्मचारी राज्य बीमा न्यायालय द्वारा निश्चित की गई दर मे प्रदान किया जाएगा। मृत्यु की स्थिति में 100 रु० अतिम सस्कार के लिए दिया जाता है।

5 चिकित्सा हित-लाभ बीमित कर्मचारी या परिवार के सदस्यो को निगम द्वारा प्रदान की गई चिकित्सा का लाभ उठाने का अधिकार होता है। निगम द्वारा औषधालय अस्पताल तथा डाक्टरो की व्यवस्था की गई है जिनके द्वारा मरीजो का नि शुल्क इलाज होता है। चिकित्सा लाभ या तो चिकित्सा केंद्र पर इलाज के रूप मे या इश्योरेंस मेडिकल प्रेक्टिशनरो द्वारा अपने क्लीनिको पर प्रदान की जाती है अथवा कर्मचारियों के घरो पर जाकर डाक्टर य सुविधाए प्रदान करते हैं अथवा कर्मचारियो को अस्पतालो मे भर्ती करके उनकी चिकित्सा की जाती है। क्षय रोगी की बीमारी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अस्पताल म प्रति 1000 बीमित श्रमिको पर क्षय रोग के लिए बिस्तर की व्यवस्था है।

6 विविध लाभ : अधिनियम मे इन लाभो के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे-मोटे लाभो का भी प्रावधान हैं, जैसे (अ) यदि बीमित कर्मचारी को किसी चिकित्सा बोर्ड मे दिखाने के लिए जाना पडता है तो उस यात्रा व्यय या मजदूरी का नुकसान (अथवा दोनो) दिए जाते है। (ब) निगम के व्यय मे नकद लाभो को मनीआर्डर द्वारा भेजा जाता है। (स) बिना लाभ के लिए चश्मे दिए जाते है। (द) पेशे सबधी चोट मे यदि आखो को नुकसान हो तो मुफ्त चश्मे प्रदान किए जाते है। (स) यदि काम करते समय दात टूट जाए तो नकली दात निगम के व्यय पर लगवाए जाते हैं।

31 दिसम्बर, 1979 को 83 कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल और 39 उप-अस्पताल थे जिनमें बिस्तरो की सख्या 17,665 थी और औषधालयो की सख्या 1,117 थी। एक जनवरी, 1982 तक इस योजना को 64 30 लाख कर्मचारियो तक पहुंचाया गया।

निगम को वर्तमान वार्षिक आय जोकि मुख्य रूप मे अशदानो से प्राप्त होता है, लगभग 20 करोड है। योजना के निरतर विकास प्रगति की तीव्र गति प्रदान किए जाने वाले लाभो की मात्रा मे वृद्धि ने पिछले वर्षो मे आय और व्यय के अतर को बहुत निकट ला दिया है। नि सदेह इस योजना ने कर्मचारी वर्ग की न्यूनतम सामाजिक आकस्मिकताओ के विरुद्ध सरक्षण प्रदान करने का अच्छा प्रयास किया है। यह बात माननी पडेगी कि इस योजना ने औद्योगिक श्रमिको की आय म सहायता करके चिकित्सा सुविधाए जुटाकर काफी महत्त्वपूर्ण काय किया है। इस योजना का नैतिक और वैज्ञानिक पहलू भी कम महत्वपूण नही है। किसी बीमित व्यक्ति को कोई कष्ट होता है तो अब उसके कष्ट निवारण मे सहायता करने के लिए कर्मचारी राज्य बीमा योजना है जिसमे उसका सबध है।

अधिनियम की कार्य-प्रणाली की आलोचनात्मक समीक्षा

1 **राजनीति का प्रभाव** इस योजना का प्रशासन कर्मचारी राज्य बीमा निगम को सौपा गया है जोकि पूर्णतया स्वतत्र सस्था नही है। प्रशासन निर्देश और विधियो के कार्यान्वयन मे निगम को केंद्रीय सरकार व राज्य सरकार के साथ मिलकर काय करना पडता है। इसलिए यह सदेह किया जाता है कि निगम की स्वतत्र कार्य-प्रणाली राजनीति से सबधित है।

2 **सीमित क्षेत्र** यह योजना कृषक श्रमिक और ऐसे श्रमिक जो ऐसी फैक्ट्रियो मे काम करते हैं, जिनमे विद्युत शक्ति का प्रयोग नही होता लागू नही होती। यद्यपि राज्य सरकारो को इस बात का अधिकार प्राप्त है कि वे निगम से परामर्श करके काय क्षेत्र बढा सकती हैं परतु व्यवहार मे यह देखने को मिला है कि राज्य सरकार ऐसा नही करती।

3 **कर्मचारियो की आपत्ति** कर्मचारियो का एक वग इस योजना से विशेष सतुष्ट नही है क्योंकि (अ) यदि बीमारी की अवधि 7 दिन से कम होती है तो इस योजना के अतर्गत उन्हे लाभ नही प्राप्त होता। इसका अर्थ यह है कि यदि एक कर्मचारी 6 दिन के लिए बीमार है तो उसे कोई लाभ नही मिलता और इसके विपरीत एक कर्मचारी जो

8 दिन के लिए बीमार है उसे पूरा लाभ प्राप्त होना है। (ब) योजना के परिवार के सदस्यों को लाभ प्राप्त नहीं होते है। यद्यपि बीमित व्यक्ति के परिवार के लोगों के लिए चिकित्सा सुविधाओं का आयोजन है परंतु चाहे किसी की हालत कितनी ही गंभीर क्यों न हो, कर्मचारी राज्य बीमा निगम का डाक्टर बीमित व्यक्ति के परिवार को घर जाकर नहीं देखता। (स) अधिकांश केंद्रों पर जो चिकित्सा-सहायता प्रदान की जाती है यह अपर्याप्त है। (द) श्रमिकों का यह भी कहना है कि निगम के कार्यों पर उनका न्यूनतम नियंत्रण है। (म) यदि कोई सेवायोजक कर्मचारी के अंशदान का भुगतान निगम को नहीं करता है तो कर्मचारी अपनी गलती के बिना ही लाभ से वंचित रह जाता है। इसके अंतर्गत बेरोजगारी, वृद्धावस्था आदि जैसी जोखिमों से सुरक्षा की व्यवस्था नहीं है।

4 **राज्य सरकार का मंद उत्साह** योजना के लिए नियमित रूप से राज्य, सेवायोजकों और कर्मचारियों ने त्रिपक्षीय अंशदान प्रदान होना चाहिए। परंतु राज्य को केवल चंदा या दान ही देना पड़ता है। ऊँची लागतों के कारण राज्य सरकारों ने भी इस योजना में उत्साह नहीं दिखाया है। अतः यह संदिग्ध है कि बिना राज्य के योगदान के यह योजना सुदृढ़ रूप से कार्य कर सकेगी।

5 **सेवायोजकों के सहयोग का अभाव** इस अधिनियम के क्रियान्वयन में सेवायोजकों ने पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं किया है। उनकी ओर से यह आपत्ति उठाई जाती है कि एक तो इस योजना के कार्यान्वियन से उनके खर्चे बहुत बढ़ गए हैं और दूसरे उन्हें श्रमिकों से चंदा वसूल करने में बहुत कठिनाई होती है और साथ ही इससे उनका प्रशासनिक उत्तरदायित्व और भी अधिक हो गया है।

6 **भ्रष्टाचार** बीमा दवाखानों और डाक्टरों में भ्रष्टाचार की भी रिपोर्ट मिलती है कि वे न तो रोगियों को ठीक से देखते हैं और न ही उचित दवाइयां की व्यवस्था करते है। कीमती दवाइयां, इंजेक्शन आदि किस खाते में चले जाते हैं यह ईश्वर ही जानता है। कभी-कभी कर्मचारी राज्य बीमा निगम के डाक्टरों द्वारा गलत मेडिकल सर्टिफिकेट दे दिए जाते है जिससे सामाजिक लाभ प्रदान किए जाने का सारा उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

7 **दोषपूर्ण संचालन** कर्मचारी राज्य बीमा योजना को सामाजिक कल्याण के रूप में न चलाकर किसी सरकारी विभाग की तरह चलाया जाता है। फलतः इस माध्यम सामाजिक कल्याण योजना के पीछे जो उद्देश्य है वह प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

8 **श्रमिक वर्ग की अशिक्षितता** यद्यपि इस योजना का कार्य क्षेत्र सीमित है तथा अन्य प्रगतिशील देशों की तरह हमारे देश में राष्ट्रव्यापी सामाजिक बीमा योजना की कोई व्यवस्था नहीं है फिर भी जिन क्षेत्रों में इस योजना को लागू किया गया है वहां श्रमिक अपनी अशिक्षितता के कारण इस योजना के महत्व को पूर्ण रूप से न तो समझते ही है और न इसके नियमों के अनुसार लाभ पाने की मांग ही करते हैं।

सन 1963 में भारत सरकार ने एक समीक्षा समिति की स्थापना की थी जिसका कार्य निगम के कार्यों का मूल्यांकन करना था। इसका प्रतिवेदन फरवरी 1966

म प्रस्तुत किया गया। इस समिति ने यद्यपि निगम की उपलब्धियों की प्रशंसा की है परन्तु बहुत सी त्रुटियां भी बताई है। समिति ने 170 सुझाव दिए हैं जो इसके काय पारक तन्त्र लाभ का बटवारा करने आदि से सबधित है। उनमें से अधिकांश को निगम ने स्वीकार कर लिया है।

निगम अधिनियम के अतगत क्षत्रीय बोर्डों की स्थापना नई है परन्तु इनमे मजदूरो और उद्योगपतियो को अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए तथा बोर्ड के अध्यक्ष का चनाव भी क्रम से होना चाहिए अथात मजदूरा सरकार और उद्योगपतियो के प्रति निधियो म से बारी बारी चुना जाना चाहिए।

समीक्षा समिति का एक सझाव यह है कि जहा निगम की बडी स्वास्थ्य व्यवस्था हो वहा मडिकल कालेज भी खोले जाने चाहिए। यदि निगम अस्पताल म सामान्य जनता क उपचार का भी व्यवस्था की जाए तो समीक्षा समिति ने सुझाव दिया है कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि बीमा कृत कमचारियो को असुविधा न हो।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का कथन है कि महगाई को देखते हुए चार रुपये दैनिक पाने वाले मजदूरो को अंशदान से मुक्त किया जाए।

6 कमचारी परिवार पेन्शन योजना 1971 (Employees Family Pension Scheme 1971) औद्योगिक श्रमिकों की आकस्मिक मृत्यु की अवस्था मे उनके परिवारो को दीघकालीन वित्तीय सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से मार्च 1971 म दो योजनाए प्रारभ की गई हैं (i) कोयला खान परिवार पेंशन योजना 1971 व (ii) कमचारी परिवार पेन्शन योजना 1971। ये योजनाए उन कमचारियो व श्रमिको पर लागू होती है जो कोयला खान भविष्य निधि एव बोनस योजना अधिनियम 1948 व कमचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952 के सदस्य है।

पूव परिपक्व मृत्यु म अथवा 69 वष की आयु प्राप्त करने से पूर्व ही किसी कारण से मृत्यु हो जाने पर इस योजना के अन्तगत ये लाभ मिलते है—(i) श्रमिक या कमचारी की मृत्यु पर 40 रु० से लेकर 1 रु० प्रति माह परिवार पेन्शन (ii) सेवाकाल म मृत्यु होने पर अधिकतम 1000 की जीवन बीमा राशि (iii) 60 वष की आयु पर अवकाश ग्रहण करने पर 4000 रु० तक की नकद धनराशि (iv) 60 वष की आयु होने पर भविष्य निधि की राशि निकालने की छूट। अक्टूबर सन 1978 को इस योजना के अन्तगत 1001 कोयला खाना के 6 78 लाख अशदायी थ।

7 रेल कमचारियो के लिए बीमा योजना सन 1976-77 के रेलवे बजट म रेल कमचारियो के लिए भविष्य निधि म जमा राशि पर से सबद्ध बीमा योजना प्रारभ करने की घोषणा की गई है। इस योजना के अतगत किसी भी रेल कमचारी की कम से कम 5 वष की सेवा के बाद सेवाकाल के दौरान मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी अतिरिक्त रकम पाने के अधिकारी होगे।

8 ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम 1972 विस्तृत अध्ययन हेतु 'भारत म श्रम सन्नियम' नामक अध्याय देखिए।

विक्रेता अधिनियम (Salesman Act) विक्रय सवर्द्धन कर्मचारी (रोजगार

दशाए) अधिनियम 1976 [The Sales Promotion Employees (Condition Service) Act 1976] विभिन्न श्रम अधिनियमो के अतर्गत विक्रय संम्बर्द्धन क्रियाओ मे सलग्न व्यक्तियो को अनेक प्रकार की सुविधाए प्रदान करता है। रोजगार दशाओ के नियमन के अतिरिक्त सेवा, सुरक्षा, न्यूनतम मजदूरी, मातृत्व लाभ, बोनस, ग्रेच्युटी व क्षतिपूर्ति का भुगतान, अवकाश की व्यवस्था आदि से सबधित श्रम अधिनियमो के लाभ भी इस अधिनियम द्वारा प्रदान किए जाते हैं। यह अधिनियम 6 मार्च 1976 से क्रियान्वित हुआ और वर्तमान समय मे औषधि (Pharmaceutical) उद्योग मे कार्य करने वाले कर्मचारियो पर लागू होता है।

9 **औद्योगिक विवाद अधिनियम** (Industrial Disputes Act 1947) इस अधिनियम के अधिन सेवायोजको को जबरन छुट्टी या छटनी के लिए क्षतिपूर्ति देनी होती है। यह व्यवस्था कारखानो, खानो और बागानो पर लागू है। इसके अतर्गत 50 या इससे अधिक कर्मचारियो वाले प्रतिष्ठानो को जबरन छुट्टी की अवधि मे कुल वेतन का आधा भाग देना होगा। छटनी की स्थिति मे कर्मचारियो को प्रत्येक वर्ष की सेवा के लिए 15 दिन का औसत वेतन तथा एक महीने का वेतन दिए जाने की व्यवस्था है।

10 **कर्मचारी जमा सबध बीमा योजना** (Employees Deposit Linked Insurance Scheme) यह योजना 1 अगस्त 1976 से लागू की गई है जिसके अनुसार कर्मचारी की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी को भविष्य निधि की धनराशि के अतिरिक्त एक और धनराशि दी जायेगी जो पिछले तीन वर्षो मे निधि मे जमा औसत धनराशि के बराबर होगी लेकिन यह धनराशि 10,000 रुपए से अधिक नही होनी चाहिए। इस योजना के अतर्गत अधिकतम भुगतान 10 000 रुपए होगा लेकिन इसके लिए कर्मचारी को कोई अशदान नही करना पडेगा।

31 दिसम्बर, 1982 तक योजना के अतर्गत भुगतान के 34,444 प्रार्थना पत्रों का फसला किया गया और 20 51 करोड़ रुपये प्रार्थियों को दिए गए।

11 **कोयला खान भविष्य निधि जमा से सबधित बीमा योजना**—यह योजना एक अगस्त 1976 से लागू है। इस योजना के अतर्गत कर्मचारी की मृत्यु पर उसके वारिस को भविष्य-निधि की धनराशि के अतिरिक्त बीमे की धनराशि भी मिलती है। बीमे की धनराशि भविष्य निधि मे पिछले तीन वर्षों मे मजूर औसत धनराशि के बराबर होती है। शर्त यह है कि औसत धनराशि 1,000 रुपये से कम न हो। बीमे की धनराशि के रूप मे अधिकतम 10,000 रुपयें का भुगतान होना है। बीमे के लिए कर्मचारी को कोई चन्दा नही देना पड़ता। बीमा राशि का भुगतान और बीमा योजना चलाने के खर्च का दो तिहाई प्रबधक मालिक देते हैं और एक तिहाई केंद्र सरकार देती है। 31 दिसम्बर 1978 तक 317 दावों का भुगतान किया गया जिनमे 7 27 लाख रुपए की अदायगी की गई।

भारत में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की विशेषताए

(Characteristics of The Social Security System in India)

उपर्युक्त वर्णित सामाजिक सुरक्षा योजनाओ के अध्ययन के आधार पर भारतीय

सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की निम्नांकित विशेषताए स्पष्ट हैं—

(i) स्वतन्त्रता के पश्चात देश मे सामाजिक सुरक्षा सुविधाओ म तेजी से वृद्धि हुई है।

(ii) कर्मचारी राज्य बीमा और कर्मचारी भविष्य निधि योजनाए देश की प्रमुख सामाजिक सुरक्षा योजनाए है।

(iii) सरकार के द्वारा इन योजनाओ हेतु किसी प्रकार का अनुदान नही दिया जाता। सरकार अपने कर्मचारियो के भविष्य निधि, पेन्शन योजनाए एव डाक्टरी देखभाल पर अवश्य ही राशि व्यय करती है।

(iv) सगठित क्षेत्रो मे कार्य करने वाले औद्योगिक श्रमिको को ही इन सामाजिक सुरक्षा योजनाओ के अतर्गत सम्मिलित किया जा सका है।

(v) सगठित क्षेत्रो मे कार्य करने वाले श्रमिक अभी भी अनेक सुरक्षा योजनाओ के लाभो से वचित हैं।

भारत मे किए गए सामाजिक सुरक्षा कार्यों की आलोचनाए

यद्यपि भारत मे सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे सराहनीय काय किया गया है किन्तु फिर भी वर्तमान योजनाओ तथा अधिनियमो की अग्रलिखित आधारो पर कटु शब्दो मे आलोचनाए की जाती हैं—

(i) भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारी जनसख्या का 75 फीसदी से भी अधिक भाग प्रत्यक्ष रूप म इस धधे मे लगा हुआ है किन्तु फिर भी यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि सामाजिक सुरक्षा की प्रत्येक योजना म खेतिहर श्रमिक को शामिल नही किया गया है। वास्तविकता यह है कि अन्य उद्योगो मे लगे श्रमिको की दशा अत्यन्त शोचनीय है।

(ii) बेरोजगारी लाभ की कोई व्यवस्था नही है।

(iii) चिकित्सा का बहुत ही अपर्याप्त प्रबध है।

(iv) य लाभ कुछ स्थानो के विशेष प्रकार के श्रमिको को ही मिलते हैं।

(v) बीमारी लाभ बहुत ही अल्प काल के वास्ते हैं।

(vi) योजनाओ का बहुत सा काय फाइलो तक ही सीमित है।

(vii) विवाद का निपटारा करने मे बहुत देरी लगती है।

(viii) लालफीताशाही जोरो पर है।

सामाजिक सुरक्षा योजनाओ को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक सुझाव

(The Necessary Suggestions For Making Social Security Schemes More Effective)

भारतीय परिस्थितियो को देखते हुए एक विस्तृत राष्ट्रीय सुरक्षा योजना बनायी जानी चाहिए। इस योजना का निर्माण करते समय निम्न बातो का ध्यान रखा जाना

चाहिए—

(i) सामाजिक सुरक्षा का सम्पूर्ण प्रशासन विकेन्द्रित किया जाना चाहिए। कुछ केन्द्रीय सरकार द्वारा कुछ राज्य सरकार द्वारा एवं कुछ समाज द्वारा प्रशासन किया जाना चाहिए।

(ii) राष्ट्र की नवागीण चिकित्सा सेवाओं का पुनर्संगठन किया जाना चाहिए।

(iii) सभी नागरिकों को आय की सुरक्षा का गारन्टी दी जानी चाहिए।

(iv) सभी सामाजिक सेवाओं कल्याण कार्यक्रमों सामाजिक सहायता योजनाओं एवं सामाजिक सुरक्षा विधान में समन्वय होना चाहिए तथा एक ही संस्था में एकीकृत होना चाहिए।

(v) योजनाएं ऐसी होनी चाहिए जिसमें कि कर्मचारी जीवन निर्वाह कर सके और आवश्यकता एवं संकट के समय सहायता कर सके।

(vi) पारिवारिक जीवन में मदद करने के लिए प्रत्येक स्थान पर परिवार कल्याण केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिए।

उपर्युक्त निर्देशों के अतिरिक्त निम्नांकित सुझावों पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है —

(i) भारत में से दरिद्रता को हमेशा के वास्ते दूर भगाने के लिए खेतिहर श्रमिक को भी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का सदस्य बनाना आवश्यक है।

(ii) न्यूनतम मजदूरी नीति शीघ्र से शीघ्र अपनायी जाय। न्यूनतम मजदूरी की मात्रा निश्चित करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि कम से कम प्रत्येक श्रमिक की आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक ही हो जाय।

(iii) वर्तमान सामाजिक सुरक्षा की समस्त योजनाओं में समन्वय होना चाहिए।

(iv) सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं को कार्यान्वित करते समय अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ की सलाह प्राप्त की जानी चाहिए।

मेनन समिति की सिफारिशें—दिसम्बर 1958 में श्री वी० के० मेनन की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गई थी। समिति ने भारत में सामाजिक सुरक्षा हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत किए—

(i) वर्तमान श्रमिक प्राविडण्ड फण्ड योजनाओं को एक वैधानिक पेंशन योजना में परिणित किया जाय। इसमें ग्रेच्युटी भी शामिल किया जाय।

(ii) श्रमिक राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत मिलने वाले लाभों में वृद्धि की जाय।

(iii) श्रमिक राज्य बीमा योजना तथा श्रमिक प्रोविडेण्ट फण्ड योजना को मिला कर दोनों का प्रशासनिक उत्तरदायित्व संभालने के लिए केवल एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना की जाय।

(iv) बेरोजगारी लाभ शुरू किये जाय।

(v) चदे की दर 6 25% से बढाकर 8.33 कर दी जाय।

परीक्षा-प्रश्न

1 1948 के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए। विभिन्न केंद्रो पर इसकी व्यावहारिकता मे किन-किन कठिनाइयो का सामना करना पडता है ?

अथवा

1948 के राज्य बीमा अधिनियम के अतर्गत आए व्यक्ति के लिए कौन-कौन-सी सुविधाए उपलब्ध हैं ? अधिनियम की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

अथवा

भारत मे कर्मचारी राज्य बीमा योजना का सक्षिप्त विवरण दीजिए। इसकी मुख्य सीमाए कौन-कौन सी है ?

अथवा

उन विभिन्न सविधाओ का आलोचनात्मक विवरण दीजिए जो 1948 के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अतर्गत है।

अथवा

भारत मे लागू की गई स्वास्थ्य बीमा योजना की मुख्य विशेषताओ का निर्देशन कीजिए। औद्योगिक श्रमिक के स्वास्थ्य और कार्यक्षमता के सबध मे इसकी सामर्थ्य का वर्णन कीजिए।

2 व्यक्तिगत कर्मचारियो के लिए सामाजिक बीमा योजनाओ के महत्व का वर्णन कीजिए। इस ओर भारत सरकार द्वारा उठाए गए पगो का उल्लेख कीजिए।

अथवा

भारत मे सामाजिक बीमे को मुश्किल से अतिशयोक्ति कहा जा सकता है। पूर्णतया स्पष्ट कीजिए कि राज्य बीमा अधिनियम भारत मे सामाजिक सुधार का एक विशिष्ट पग है।

3 स्त्री-श्रमिको के लिए मातृत्व लाभ योजना की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

4 कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के प्रावधानो की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए। क्या आप इसे सामाजिक सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था मानते हैं ?

5 निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

(अ) कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम।

(ब) श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम।

(स) बेरोजगारी अधिनियम।

6 भारत मे सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से चलाई गई विभिन्न योजनाओ का उल्लेख कीजिए। इस सबध मे हुई प्रगति का आलोचनात्मक मूल्याकन कीजिए।

7 'एक अर्द्धविकसित देश अपने आर्थिक विकास की प्रारभिक अवस्थाओं मे पुनर्वितरण प्रयासो, जिनको विकसित देशो मे सामाजिक सुरक्षा के नाम से जाना जाता है, के बारे मे अधिक व्यय सहन नही कर सकता।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

अध्याय 16

विदेशों में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security Abroad)

1 ग्रेट ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in Great Britain)

ग्रेट ब्रिटेन मे सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था काफी समय से विद्यमान रही है। मध्यकालीन युग मे धार्मिक मठो के द्वारा निराश्रित व्यक्तियो को सहायता दी जाती थी। परतु जब उन मठो का उन्मूलन हुआ तो यह काम राज्य को अपने ऊपर लेना पड़ा। अतः एक निर्धन कानून पास किया गया। **महारानी एलिजाबेथ** के शासन मे निर्धनो को सहायता देने के लिए व्यवस्थित अधिनियम बनाए गए। सन् 1601 मे निर्धन सहायता कानून पास किया गया। सन् 1834 तक इस अधिनियम के अतर्गत गरीबो को सहायता प्रदान की जाती रही। सन् 1834 मे इसमे सुधार किया गया। इस सुधार के अतर्गत एक **सेंट्रल बोर्ड ऑफ पुअर ला कमिशनर्स** बनाया गया, जोकि निर्धनता अधिनियम के प्रशासन के लिए उत्तरदायी था। सरकार ने कार्य करने मे समर्थ लोगो के लिए कर्मशालाओ का निर्माण किया और उन्हे सहायता दी। सन् 1848 मे सहायता कार्य के निरीक्षण के लिए **'पुअर ला बोर्ड की'** स्थापना की गई। यह बोर्ड सन् 1871 तक चलता रहा। इसके पश्चात् इसका स्थान लोकल गवर्नमेट बोर्ड ने ले लिया जो 1919 तक चलता रहा। सन् 1919 मे सरकार ने श्रम मत्रालय बनाया जिसने 'लोक सहायता प्रशासन' का कार्य स्वय ले लिया। सन् 1929 मे स्थानीय सरकार अधिनियम बनाया गया। इसने निर्धनता अधिनियम का एक नया ढाचा आरभ किया। इस अधिनियम के अतर्गत निर्धनता अधिनियम प्रशासन का कार्य कॉउटी काउसिल और कॉउटी बोरो काउसिल्स के सुपुर्द कर दिया गया। इन्हें लोक सहायता समितियो के द्वारा कार्य करना था। इस प्रकार इस अधिनियम के अतर्गत निर्धनता कानून का प्रशासन स्थानीय जिलो का उत्तरदायित्व बन गया।

सन् 1907 मे **अनिवार्य राजकीय बीमा** बेरोजगारी के विरुद्ध बनाया गया। सन् 1920 मे यह योजना सभी सार्वजनिक श्रम करने वाले और गैर-शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिको के लिए बढा दी गई जिनकी वार्षिक आय 250 पौंड नही थी। सन् 1931 मे राष्ट्रीय बचत अधिनियम के अतर्गत बेरोजगारी बीमा योगदान को बढा दिया गया था।

सन् 1911 मे एक अनिवार्य **स्वास्थ्य बीमा** की योजना चलाई गई जोकि चदों पर आधारित थी। इस योजना मे वे सभी व्यक्ति शामिल थे जिनकी आयु 16 वर्ष से 65 वर्ष के बीच थी और जिनकी आय 250 पौंड मे कम थी।

सन् 1908 मे **वृद्धावस्था पेंशन योजना** को लागू किया गया। इस योजना के अधिनियम मे सन् 1925, '29 और '37 मे अनेक सशोधन किए गए।

सन् 1925 मे **विधवा माताओ व अनाथो** के लिए एक योजना बनाई गई जोकि योगदान के सिद्धातो पर आधारित थी।

सन 1906 मे **श्रमिक क्षतिपूर्ति** की योजना आरभ की गई। इस योजना के अतर्गत सेवायोजको को श्रमिको की क्षतिपूर्ति करनी थी जो उन्हे रोजगार के दौरान किसी दुर्घटना या किसी बीमारी के फैल जाने से होती थी। सन् 1923 म इस अधिनियम में सुधार किया गया जिससे इसका क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया।

सामाजिक सुरक्षा की बेवरीज योजना

सन् 1941 मे सर विलियम बेवरीज को देश मे प्रचलित सामाजिक बीमे और इससे सबधित सेवाओ की योजनाओ का सर्वेक्षण करके अपन सुझाव पेश करने के लिए नियुक्त किया गया। दिसबर 1942 मे बेवरीज ने अपनी रिपोर्ट ससद म पेश की। इस रिपोर्ट को बेवरीज रिपोर्ट का नाम दिया गया और इस रिपोर्ट को विभिन्न अधिनियम पास करके कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया है। वास्तव म इग्लैंड की सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था बेवरीज योजना के चारो ओर ही घूमती है।

योजना के आधारभूत सिद्धात यह योजना निम्नलिखित 6 आधारभूत सिद्धांतों को लेकर बनाई गई है—1 सामाजिक बीमे और सामाजिक सहायता की सभी विद्यमान योजनाओ का एकीकरण करना, 2 इस शक्ति के द्वारा योजना का नियत्रण करना, 3 चदे से इसके वित्त की व्यवस्था करना, 4 आय की हानि म समान हित लाभ प्रदान करना, चाहे इस प्रकार की हानि का कुछ भी कारण रहा हो, 5 इसम श्रमिको, मालिकों और राज्य से चदे लिए जाएगे, और 6 चदो और हित लाभो को आय से स्वतत्र निश्चित करना।

क्षेत्र योजना का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इस योजना मे प्रत्येक व्यक्ति को शामिल किया गया है। प्रशासन की सुविधा के लिये जनसख्या को जीविका के आधार पर 6 भागो मे बाटा गया है—1 कर्मचारी, चाहे उनकी आय कुछ भी हो, 2. मालिक और मजदूर व्यक्ति, जो लाभ के लिए काम कर रहे हो, 3 काम करने योग्य आयु की गृहिणिया जो किसी कमाने वाले रोजगार पर न लगी हो और जिनकी आयु पेंशन की आयु म कम हो, 4 कार्य करने योग्य आयु वाले अन्य व्यक्ति जो रोजगार पर न लगे हो, 5 कार्य योग्य आयु से कम आयु के व्यक्ति अर्थात् 16 वर्ष से कम आयु के बालक; और 6 काम करने की आयु से अधिक आयु वाले अनवकाश प्राप्त व्यक्ति।

योजना मे आठ प्रकार की विभिन्न आपदाओ को सम्मिलित किया गया है—1 बेकारी, 2. असमर्थता, 3 बीमारी, 4 वृद्धावस्था, 5. जीविका की हानि, 6. बच्चों

का खर्च, 7 दाह सस्कार का खर्च, और 8 विवाहित स्त्रियो की आवश्यकता जैसे विवाह पर व्यय पति की कमाई का रुक जाना, मातृत्व पर व्यय, विधवा की पेंशन सबध विच्छेद भत्ता इत्यादि।

चंदे की दर इस योजना के अतर्गत चदे की दरें निम्नलिखित हैं:—

सारिणी 1 • योगदान की दरें

	पुरुष		स्त्री	
	शिलिंग	पेंस	शिलिंग	पेंस
नियोजक द्वारा	3	3	3	6
नौकरो द्वारा	4	3	3	6
योग	7	6	6	12

लेकिन ऊपर लिखी चदे की दरें आयु के अनुसार बदलती रहती है। इस प्रकार सभी बीमित व्यक्ति यो को अपनी आय मे से समान दर पर चदा देना होता है।

योजना के अन्तगत हित लाभ योजना के अतगत निम्नलिखित हित लाभो की व्यवस्था है।

1 **गृहिणी को हित लाभ** इसके अतगत विवाह के लिए 10 पौंड का लाभ मातृत्व हित के लिए 4 पौंड का हित लाभ उपस्थित हित लाभ 36 शिलिंग के हिसाब से 13 सप्ताह तक सरक्षणता हित लाभ 24 शिलिंग के हिसाब से। यदि गृहिणी को बिना उसकी गलती के तलाक मिला तो उसे वैसे ही लाभ मिलेगा जैसा विधवा को मिलता है।

2 **बेकारी और बीमारी हित लाभ** बेकारी और बीमारी हित लाभ जिसकी दर अकेले व्यक्ति के लिए 24 शि० प्रति सप्ताह और विवाहित युगल के लिए 40 शि० प्रति सप्ताह होगी।

3 **बच्चो के लिए भत्ता** इसके अन्तगत प्रत्येक परिवार मे प्रथम आश्रित बालक के अतिरिक्त हर बालक को 8 शिलिंग प्रति सप्ताह भत्ता दिया जाएगा चाहे उनके माता पिता की आय व सामाजिक स्थिति कैसी भी हो।

4 **असमर्थता की स्थिति मे** 13 सप्ताह तक क्षतिपूर्ति और घातक दुघटनाओ की स्थिति में आश्रितो को 300 पौंड की सहायता।

5 **प्रौढ की मृत्यु** होने की दशा मे **दाह सस्कार** के लिए 20 पौंड की सहायता।

6 **वृद्धावस्था पेंशन** जिनकी दर अकेले व्यक्ति के लिए 24 शि० प्रति सप्ताह और विवाहित युगल के लिए 40 शि० प्रति सप्ताह होगी।

योजना की पात्रता-अवधि इस योजना के अन्तगत पूरी दर पर लाभ पाने के लिए पात्रता अवधि पिछले वर्ष 48 चदो की सख्या रखी गई। बेकारी और असमर्थ हित लाभ की स्थिति मे किसी भी व्यक्ति को उस समय तक हित-लाभ नही मिलेगा जब तक

उसने 26 चदे न दे दिए हो।

प्रशासन और योजना का व्यय : बेवरीज ने प्रस्ताव रखा कि प्रशासन के लिए प्रशासकीय एकरूप दायित्व एक सामाजिक बीमा राष्ट्र के साथ सामाजिक मत्रालय का हो। प्रारभ मे सरकार ने इस सुझाव को स्वीकार नही किया। परतु अब एक अलग राष्ट्रीय बीमा मंत्रालय बना दिया गया है।

इस योजना पर सन् 1945 मे 6 970 लाख पौंड के व्यय का अनुमान लगाया गया और सन् 1965 मे 8,580 लाख पौंड का। वास्तविक कीमतो मे जितना परिवर्तन होगा उसके हिसाब से इस व्यय मे भी अधिकता या कमी हो जाएगी।

योजना का मूल्याकन बेवरीज योजना एक व्यापक योजना है जो किसी व्यक्ति को जीवन की समस्त प्रभावित विपत्तियो से छुटकारा दिलाने मे सहायक सिद्ध हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को इस योजना द्वारा जीवन पर्यंत किसी-न-किसी रूप मे सरक्षण मिलता रहता है और व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके आश्रितो की भी रक्षा की व्यवस्था है। इस दृष्टिकोण मे यह योजना एक उत्तम योजना है। परतु फिर भी इस आदर्श तक पहुचना सरल नही है क्योंकि राष्ट्र इतनी उच्च कोटि की सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाली योजना का व्यय सहन करने मे सामान्यत असमर्थ रहते हैं। इस योजना का पूर्ण रूप से लागू करने मे एक भय यह भी है कि यह योजना काम करने की प्रेरणा को कम कर सकती है। बेवरीज योजना तब तक सफल नही हो सकती जब तक लोग शिक्षित नही हो जाते और उनमे राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और स्वाभिमान नहीं आ जाता। इन सब सीमाओ के होते हुए भी यह योजना कार्यकुशलता बढाएगी। उत्पादन बढाने मे सहायक होगी और बढती हुई जनसख्या को नियत्रित करेगी।

इग्लैड मे सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान स्थिति

सन् 1942 मे बेवरीज योजना के प्रकाशित होते ही सरकार ने इसके मुख्य सिद्धांतो को स्वीकार कर लिया और फिर उसे एक व्यावहारिक रूप देने के लिए अनेक अधिनियम पास किए जो कि निम्नलिखित हैं—

1 **पारिवारिक भत्ता अधिनियम 1945 :** इस अधिनियम के अतर्गत परिवार मे प्रत्येक 15 वर्ष से कम आयु वाले बालक के लिए, सबसे बडे बालक को छोडकर, 5 शिलिंग प्रति सप्ताह देने की व्यवस्था की गई थी। लेकिन 1952 मे पारिवारिक भत्ता और राष्ट्रीय बीमा अधिनियम पास होने के पश्चात् यह दर बढाकर 8 शिलिंग प्रति सप्ताह कर दी गई है। फिर सन् 1956 के एक ऐसे ही अधिनियम द्वारा इस भत्ते की दर तीसरे तथा उसके बाद के बच्चो के लिए प्रति सप्ताह 10 शिलिंग निश्चित कर दी गई है।

2 **राष्ट्रीय बीमा अधिनियम 1946** यह अधिनियम 5 जुलाई सन् 1948 को लागू हुआ और सन् 1949, 1951, 1952, 1953, 1954 1955, 1956, 1957, 1958 और 1959 मे इसमे अनेक सशोधन हुए। यह अधिनियम स्कूल जाने वाली आयु के सभी बच्चो पर लागू होता है। बीमित व्यक्तियो को मोटे तौर पर तीन वर्गों मे बाटा गया है।

(क) रोजगार पर लगे हुए व्यक्ति (employed persons) अर्थात वे व्यक्ति जो किसी नौकरी के समझौत के अतर्गत काम करते हैं।

(ख) स्वय रोजगार करने वाले व्यक्ति (self-employed persons) अर्थात् वे व्यक्ति जो किसी लाभ के काम म लगे हुए है लेकिन नौकरी के समझौते के अनुसार बधे नही हैं।

(ग) जो किसी रोजगार में नही लगे हुए है। (Non emlpoyed persons)

ये सभी वर्ग विभिन्न हित लाभो के लिए निर्धारित दर से चदा देते है। राज्य भी एक निर्धारित दर के अनुसार इसमे चदा देता है। बेकारी, बीमारी या दुर्घटना या विधवा होने की स्थिति मे हित-लाभ पाते हुए चदा नही देना पडता।

इस अधिनियम के अतगत बेरोजगारी, बीमारी, मातृत्व व विधवा हितलाभ, सरक्षक भत्ता, अवकाश प्राप्ति की पेंशन और मृत्यु अनुदान की व्यवस्था है। प्रथम वर्ग के व्यक्तियो को सब लाभ मिलते हैं, द्वितीय वर्ग के लोगो को बेरोजगारी और औद्योगिक क्षति लाभ के अतिरिक्त अन्य सब लाभ उपलब्ध हैं और तृतीय वर्ग के व्यक्तियों के लिए बेरोजगारी मातृत्व हित बीमारी और औद्योगिक क्षति क अतिरिक्त समस्त लाभ उपलब्ध हैं।

इन हितलाभो को प्राप्त करने के लिए दो शर्तें है—(अ) एक विशेष काल के लिए कम-से-कम कुछ अशदान लाभ देने मे पूर्व दिए जाए (ब) पूर्ण दर लाभ प्राप्त करने के लिए अशदानो की एक विशेष सख्या एक विशेष अवधि तक दी जानी चाहिए।

3 **राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक चोट) अधिनियम** 1946 श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के स्थान पर जुलाई 1948 म इस नए अधिनियम को लागू कर दिया गया। इसके अतगत चोट हितलाभ अपगता हितलाभ और मृत्यु हितलाभ को सम्मिलित किया गया है। आश्रितो को भी हितलाभ देने की व्यवस्था है। साथ ही साथ व्यावसायिक रोगो की अवस्था मे भी हितलाभ की व्यवस्था की गई है। क्षति लाभ किसी वयस्क के लिए 6 पौंड 15 शि० तथा दो पौंड 10 शिलिंग उसके आश्रित क लिए है। 1 पौंड 2 शि० 6 पैं० किसी प्रथम या एकमात्र बच्चे क लिए और 14 शि० 6 पैं० प्रत्येक आगत बच्चे के लिए पारिवारिक भत्ते के अतिरिक्त मिलता है। अपगता लाभ मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रमाणित अपगता की सीमा तक ही मिलता है। मृत्यु हितलाभ भी आश्रितो का देने की व्यवस्था है जिसकी मात्रा मरने वाले के लिए पाने वाले के सबधो के ऊपर निर्भर करेगी।

4 **राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा अधिनियम**, 1948 यह अधिनियम 5 जुलाई, सन् 1948 मे लागू हुआ। इस योजना के अतर्गत चदा देने की व्यवस्था नही रखी गई है और प्रत्येक व्यक्ति को चिकित्सा सबधी देखभाल की सुविधा प्रदान की गई है। प्रत्येक व्यक्ति का नाम किसी न किसी डाक्टर के यहा दर्ज होगा और यह डाक्टर उस व्यक्ति को मुफ्त सेवाए तथा दवाइया प्रदान करेगा। इसके प्रशासन के लिए पेंशन और राष्ट्रीय बीमा मत्रालय बनाया गया। इसका मुख्य कार्यालय लदन मे है। क्षेत्रीय कार्यालय और स्थानीय कार्यालय भी बनाए गए हैं।

5. **राष्ट्रीय सहायता अधिनियम, 1948 :** यह अधिनियम 7 जुलाई सन् 1948 को लागू हुआ। इस अधिनियम का उद्देश्य वर्तमान निर्धनता कानून को खत्म करके एक राष्ट्रीय सहायता बोर्ड स्थापित करने की व्यवस्था की गई ताकि बेकारी सहायता, सहायक पेंशन, नेत्रहीन सहायता, क्षयरोग इलाज भत्ता इत्यादि देने के लिए एक व्यापक सेवा का निर्माण किया जा सके। जो व्यक्ति राष्ट्रीय बीमा योजना के अतर्गत हित-लाभ पाने के अधिकारी नही हैं वे इन विपत्तियो के समय आर्थिक सहायता के लिए योजना के बोर्ड को प्रार्थना-पत्र देंगे।

6 **बाल अधिनियम**, 1948 • इस अभिनियम के अतर्गत प्रत्येक स्थानीय सस्था के लिए एक बाल समिति की स्थापना करना अनिवार्य होगा। इस समिति का काम अदालत के आदेश से घर से अलग किए गए बच्चो की देख-रेख करना होता है। ये समितिया बच्चो के सरक्षण का भी कार्य करती हैं। असहाय बच्चो के सर्वस्व पालन-पोषण के लिए इस अधिनियम मे बहुमूल्य सहायता की व्यवस्था की गई है।

7 **शिशु और युवा अधिनियम, 1963 :** यह अधिनियम शिक्षा, मार्गदर्शन और सहायता उपलब्ध करना है जिससे बच्चो का कल्याण बढे। यह अधिनियम बच्चो को अधिकारियो की देख-रेख या उन्हे बच्चो की अदालत मे लाने की आवश्यकता को कम करता है। यह सहायता सामाग्री या धन के रूप मे हो सकती है।

8 **ऐच्छिक सगठन** इन वैधानिक अधिनियमो के अतिरिक्त ब्रिटेन मे अनेक ऐसे ऐच्छिक सगठन भी हैं जो जनता के कल्याण का कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार के सगठनो के कुछ नाम इस प्रकार हैं। राष्ट्रीय सामाजिक सेवा समिति, पारिवारिक कल्याण परिषद, राष्ट्रीय वृद्ध कल्याण समिति, राष्ट्रीय युवक ऐच्छिक सघ का स्थायी सम्मेलन, शिशुगृहो की राष्ट्रीय सगठित विचार सभा, राष्ट्रीय मातृत्व-हिन एव शिशु कल्याण विचार सभा, अपगो की देखभाल के लिए केंद्रीय सभा इत्यादि।

ग्रेट ब्रिटेन मे हुए सामाजिक सुरक्षा मे नए परिवर्तन

ग्रेट ब्रिटेन मे विगत वर्षों मे निम्नलिखित दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं—

(अ) आय सबधी अल्पकालीन लाभ योजना 6 अक्टूबर 1966 मे शुरु हुई और यह सभी रोजगार प्राप्त व्यक्तियो पर लागू होती है। यह लाभ रोजगार की अवधि मे रुकावट के तेरहवें दिन से शुरू होता है और यह बेरोजगारी या असमर्थता मे 156 दिन तक जारी रहता है। 9 पौंड मे 30 पौंड साप्ताहिक आय प्राप्त करने वालो मे आय सबधी लाभ की राशि साप्ताहिक औसत आय को एक तिहाई के बराबर होती है। यह राशि वर्तमान समान दर लाभो के अतिरिक्त है।

(ब) दूसरा मनोरजक विकास यह है कि 28 नवबर 1966 से राष्ट्रीय सहायता योजना का स्थान एक नई योजना अशदान रहित लाभ ने ले लिया है जिसका प्रशासन सामाजिक सुरक्षा मत्री द्वारा होता है। वे लाभ जो पेंशन योग्य व्यक्तियो को दिए जाते थे उन्होने पूरक भत्तो का रूप ले लिया है और जिन लोगो की पेंशन प्राप्त करने की आयु नहीं थी उनके लिए पूरक भत्ते या किन्ही विशेष परिस्थितियो से एक बडी धनराशि

उनकी विशेष आवश्यकताओ के लिए दी जाती है। यह योजना ग्रेट ब्रिटेन मे रहने वाले उन सभी व्यक्तियो पर लागू होती है जिनकी आयु 16 साल से अधिक है।

निष्कर्ष उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ग्रेट ब्रिटेन मे सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक व्यवस्था विद्यमान है जिनका मुख्य उद्देश्य समाज की शक्ति को ग्रसने वाले अभाव, बीमारी, अज्ञानता, गदगी और बेरोजगारी के दानवों को समाप्त करना है। ग्रेट ब्रिटेन मे वस्तुत सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था काफी सीमा तक एक आदर्श स्तर पर है विशेष कर इस अर्थ मे कि इस अर्थव्यवस्था मे वर्ग और परिस्थिति मे किसी प्रकार का भेद नही किया गया है। यहा तक कि विदेशियो को भी लाभ प्राप्त है। जन कल्याण और जन-सुरक्षा इसका मुख्य आधार है।

2 अमेरिका मे सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in America)

अमेरिका मे सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था का प्रारभ सन् 1935 मे हुआ था जबकि सामाजिक सुरक्षा अधिनियम पास किया गया था। तब से अब तक अधिनियम में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो चुके हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन 1939 और 1950 में किए गए थे। वर्तमान मे अमेरिका की सामाजिक सुरक्षा योजना के अतर्गत निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सुविधाए प्रदान की जाती हैं :

1. वृद्धावस्था और उत्तरजीवी बीमा . राष्ट्रीय बीमा योजना बीमित श्रमिको, उनकी पत्नियो को जबकि वे वृद्ध हो जाए और श्रमिको के परिवारो को जबकि श्रमिक छोटे-छोटे बच्चो को छोडकर मर जाए, मासिक लाभ प्रदान करती हैं। इसकी प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

(अ) वृद्धावस्था बीमा लाभ का भुगतान उन श्रमिको को दिया जाता है जोकि 65 वर्ष की आयु होने पर अवकाश प्राप्त करते हैं।

(ब) पत्नी का लाभ वृद्धावस्था बीमा लाभ के आधे के बराबर होता है और एक अवकाश प्राप्त श्रमिक की पत्नी को दिया जाता है। यदि वह 62 वर्ष की आयु की है या वह श्रमिक के बच्चे को अपनी देख-रेख मे रखती है।

(स) एक विधवा का लाभ वृद्धावस्था बीमा लाभ के तीन-चौथाई के बराबर होता है और 62 वर्ष की आयु मे मृत श्रमिक की आश्रित विधवा को देय होता है।

(द) विधुर का लाभ वृद्धावस्था बीमा लाभ के तीन चौथाई के बराबर होता है और 62 वष की आयु मे मृत श्रमिक के आश्रित विधुर को देय होता है।

(य) बच्चे का लाभ वृद्धावस्था बीमा लाभ के आधे के बराबर होता है और अवकाश प्राप्त श्रमिक के 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे को देय होगा।

(र) माता का लाभ वृद्धावस्था बीमा लाभ का तीन चौथाई होता है।

(ल) माता-पिता का लाभ वृद्धावस्था बीमा लाभ का तीन-चौथाई होता है और 62 वर्ष की आयु मे मृत श्रमिक के आश्रित माता पिता को देय होता है। यदि श्रमिक की विधवा पत्नी या बच्चा मासिक लाभ लेने के योग्य नहीं है।

(ब) मृत्यु के पश्चात एकमुश्त राशि वृद्धावस्था बीमा लाभ की तीन गुनी होती है जो बीमित श्रमिक की मृत्यु पर देय होती है।

(स) ये लाभ फेडरल ओल्ड एज एड सरवाइवर्स इश्योरेंस ट्रस्ट फंड मे दिए जाते हैं।

2. बेरोजगारी बीमा विभिन्न राज्यो के बेरोजगारी मे सबधित मन्नियम भिन्न-भिन्न हैं किंतु मौलिक विशेषताए लगभग समान हैं जो निम्नलिखित हैं।

(i) बेरोजगारी बीमा की प्रणाली कृषि और घरेलू श्रमिको तथा सार्वजनिक कर्मचारियो को छोडकर सभी कर्मचारियो को शामिल करती है।

(ii) किसी भी बेरोजगार को प्राय उस समय हित लाभ मिल सकता है जब उसने ये शर्तें पूरी कर ली हो—(अ) उसने रोजगार केंद्रो मे अपना नाम रजिस्टर्ड करा लिया हो, (ब) वह काम करने के योग्य हो (स) यदि कोई उचित काम उसको दिया जाता है तो वह उसे करने के लिए तत्पर हो, (द) उसने एक निश्चित अवधि तक काम मिलने की प्रतीक्षा की हो, (य) उसकी कुछ मजदूरी प्राप्त हो।

(iii) लाभ की राशि जिसका कि एक श्रमिक अधिकारी है व कुछ सीमा तक उस दर से सबधित है जिस पर एक श्रमिक प्राप्त रोजगार मे अपनी मजदूरी कमाता है।

(iv) भुगतान की अवधि प्रत्येक राज्य म बदलती रहती है।

(v) लगभग सभी राज्यो की प्रतीक्षा अवधि एक सप्ताह है। एक सप्ताह के समय की प्रतीक्षा के पश्चात् अधिकतर राज्य 26 सप्ताहो तक बेरोजगारी भत्ता देते हैं। हाल ही मे इन भुगतानों की बढी अवधि तक के लिए बढा दिया गया है।

(vi) लाभ की वास्तविक राशि प्रत्येक राज्य मे अलग-अलग है और 10 डालर की न्यूनतम सीमा तथा 20 से 30 डालर की अधिकतम सीमा है।

3 सार्वजनिक सहायता सन् 1935 के सामाजिक सुरक्षा अधिनियम मे सार्वजनिक सहायता के लिए एक योजना बनाई गई जिसके तीन आधारभूत अग हैं—

(अ) उन जरूरतमद वृद्ध व्यक्तियो को सहायता जो नौकरी से रिटायर हो चुके हैं और बीमा योजना के अधीन सहायता नहीं पा सकते। इसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

(ब) उन बच्चो को सहायता जिनका पालन-पोषण उनके माता पिता की मृत्यु या उनकी अयोग्यता अथवा अनुपस्थिति के कारण नही हो पाता और (स) जरूरतमद अधे व्यक्तिओ की सहायता। सन 1950 मे इस योजना म एक चौथा वर्ग भी शामिल कर लिया गया जो पूर्ण रूप से असमर्थ व्यक्ति है। इस योजना का प्रशासन राज्य सरकार के द्वारा किया जाता है और इसके लिए केंद्रीय सरकार आवश्यक आर्थिक राज्य सहायता प्रदान करती है।

4 श्रमिक क्षतिपूर्ति 1908 का सघीय कर्म[illegible] [illegible] [illegible] प्रथम कानून था [illegible] मे श्रमिक क्षतिपूर्ति कानून शामिल [illegible]। सन 1948 [illegible] सभी [illegible] ने यह सुरक्षा दे रखी है। यह अधिनियम उन व्यक्तियो को सुरक्षा प्रदान करता [illegible]

काय करते हुए दुघटनाग्रस्त हो जाते हैं । एक राज्य स दूसरे राज्य मे यह अधिनियम बदलता रहता है । कुछ राज्यो म अविवाहित व्यक्तियो के लिए क्षतिपूर्ति की दर ऊची है । क्षतिपूर्ति की राशि सेवायोजको द्वारा दी जाती है ।

5 **बीमारी से सबधित बीमा** अमेरिका म बीमारी से सुरक्षा प्रदान करने के लिए कई प्रकार की योजनायें लागू की गई हैं । बीमार पडने मे नगद हित लाभ देने की भी व्यवस्था है । इसके अतिरिक्त बीमार श्रमिको को मुफ्त चिकित्सा और सवेतन छुट्टिया भी दी जाती हैं । यदि बीमार श्रमिक को अस्पताल की सुविधा की आवश्यकता है या उसका आपरेशन होना है तो इस प्रकार की सुविधा प्रदान करने के लिए जो खर्चा होता है वह अस्पताल बीमा योजना के अतगत किया जाता है । श्रमिक को व्यावसायिक रोग लग जाते हैं जिनसे उसके आय कमाने की क्षमता कम हो जाती है तो उस राज्य द्वारा सवायोजको के चदे स स्थापित कोष म हर्जाना दिया जाता है ।

6 **मातृत्व सबधी सुरक्षा** मातृत्व सबधी लाभ सेवायोजको या श्रमिक सघो के द्वारा उपलब्ध कराया जाता है । रेलो सडको और सशस्त्र सेना के लिए सघीय कानून भी विद्यमान हैं । गर्भवती स्त्रियो की प्रसूति सबधी देखभाल व अन्य सुविधाए सावजनिक सेवाओ का तरह प्रदान की जाती हैं । कुछ राज्यो ने स्त्रियो के प्रसव के तुरत बाद और पहले काय पर जाने पर प्रतिबध लगा रखा है ।

7 **व्यावसायिक पुनर्वास** व्यावसायिक पुनर्वास का सघीय राज्य कायक्रम असहाय रोगो को सेवाए उपलब्ध कराता है । इन सेवाओ के माध्यम से ये लोग अपनी कामकलाऊ जीवन म आ जाते हैं

निष्कष उपरोक्त विवचन स यह स्पष्ट है कि अमेरिका मे सपूण जनसख्या को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए अनेक योजनाए चल रही हैं । अमेरिका की सामाजिक बीमे की योजना के दो प्रमुख लक्षण है—(अ) सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न कायक्रमो म विभिन्न सरकारी स्तरो पर सहायता मिलती है जैसे—कुछ कायक्रमो का प्रशासन केवल कद्रीय सरकार के द्वारा होता है कुछ का कवल राज्य सरकारो द्वारा और कुछ का स्थानीय सस्थाओ द्वारा कुछ म कद्रीय और राज्य सरकारो का इत्यादि । (ब) जोखिमो के आधार पर अनक सुरक्षा कायक्रमो की भरमार है । प्रत्येक जोखिम के लिए एक अलग कायक्रम है ।

3 रूस मे सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in Russia)

रूस मे सामाजिक सुरक्षा का प्रारभ सन 1912 म हुआ । जबकि बीमारी बरोजगारी के सबध म अनिवाय बीमे का सवप्रथम प्रचलन हुआ । लेकिन 14 नवबर 1917 को रूस सरकार द्वारा सामाजिक बीमे की प्रथम घोषणा सामाजिक सुरक्षा के क्षत्र में एक महत्वपूण घटना मानी जाती है । कुछ कठिनाइयो के कारण इस घोषणा को सन् 1922 मे नवीन आर्थिक नीति के अतगत ही कार्यान्वित किया जा सका ।

रूस में सामाजिक बीमे की विशेषताएं

1. **मुख्य सिद्धांत** (अ) सामाजिक बीमे का सचालन श्रम-सघो द्वारा होता है, (ब) केवल नौकरी में लगे व्यक्तियो का ही सामाजिक बीमा होता है, (स) श्रमिको के बीमे का प्रीमियम सेवायोजको द्वारा दिया जाता है, (द) प्रीमियम की राशि मजदूरी के बिल के अनुपात में होती है (र) लाभ प्राप्त करने की योग्यता सेवा की अवधि पर निर्भर होती है, (ल) बीमे से पूरा-पूरा लाभ तभी उठाया जा सकता है जबकि श्रमिक किसी-न-किसी श्रमिक सघ का सदस्य हो, (व) सामाजिक बीमा सरकार द्वारा प्रेरित है जिससे कि श्रम का स्थायित्व व उत्पादन बढे, (श) बेरोजगारी सन् 1930 मे कानूनी रूप से समाप्त कर दी गई थी। अत. बेरोजगारी के लिए कोई स्थान नही है।

2. **क्षेत्र** सामाजिक बीमे के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यक्तियो को सम्मिलित किया गया है—(अ) समाजवादी क्षेत्र में रोजगार पर लगा हुआ प्रत्येक मजदूर तथा वेतन पाने वाला व्यक्ति, (ब) सार्वजनिक संस्थाओ और प्राइवेट फार्मों पर काम करने वाले वैतनिक कर्मचारी, (स) प्रशिक्षण प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति जिसको मजदूरी या वेतन मिल रहा हो।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित को विशेष सामाजिक बीमे की योजना के अतर्गत लिया गया है जिनका प्रशासन पारस्परिक सहायता कोषों में किया जाता है— (अ) सामूहिक कृषक, (ब) फर्म के स्वामी व उनके परिवार, तथा (स) पेशेवर काम करने वाले जैसे मरम्मत आदि का काम करने वाले व्यक्ति।

3. **वित्त व्यवस्था** सामाजिक बीमे की योजना राज्य के व्यय पर चलती है। एक सामाजिक बीमा कोष भी है जोकि सभी औद्योगिक सस्थानों व दफ्तरों के भुगतान से बनाया गया है। उन्हे सपूर्ण वेतन राशि का एक निश्चित प्रतिशत उक्त कोष में देना पड़ता है। श्रमिको को इस कोष में किसी प्रकार का चदा नहीं देना पड़ता।

4. **प्रबध व प्रशासन** सामाजिक बीमे की सपूर्ण योजना का प्रशासन स्वय श्रमिको द्वारा होता है। श्रमिको के श्रम-सघ बने है जो इस कार्य को करते है। कारखानों और दफ्तरो द्वारा दिया गया चदा उस क्षेत्र के केंद्रीय श्रमिक सघ को भेज दिया जाता है और ये केंद्रीय समितिया यहा के श्रमिको को सामाजिक बीमे की सुविधाएं प्रदान करती हैं। सामाजिक बीमा कोष श्रमिको के सार्वजनिक निरीक्षण में रहता है। प्रत्येक कारखाने या दफ्तर की एक सामाजिक बीमा परिषद् भी होती है जिसको चुने चुनाव के आधार पर बनाया जाता है। यह परिषद् उस कारखान या दफ्तर में सामाजिक बीमा योजना को लागू करती है। बीमारियों की रोकथाम करना इस परिषद् का मुख्य कार्य है।

5. **हितलाभ एवं पेंशन** सामाजिक बीमा कोष से कर्मचारियो को निम्नलिखित सुविधाएं दी जाती हैं—

(अ) **बीमारी हितलाभ** खानो, मेटालार्जीकल, रसायन और दूसरे महत्वपूर्ण उद्योगो के कर्मचारियो को जिन्होंने सबधित सस्था में कम से कम एक वर्ष लगातार

काम किया हो, उनकी औसत आय का 100 प्रतिशत तक बीमारी लाभ दिया जाता है। एक वर्ष से कम कार्य करने की स्थिति मे यह प्रतिशत 60 रहता है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की दूसरी शाखाओ मे यह लाभ सेवा अवधि के आधार पर 50% से 100% के बीच मे मिलता है।

यदि किसी स्त्री श्रमिक का 2 वर्ष तक का बच्चा बीमार पड जाता है तो माता को कार्य से छुट्टी दे दी जाती है चाहे कोई दूसरा व्यक्ति घर पर देखभाल करने वाला हो या न हो।

बीमारी हित लाभ बीमारी शुरू होने के दिन से पूरी तरह अच्छा होने के दिन तक दिया जाता है। यदि बीमारी 4 6 महीने तक चलती है तो पूरी दर पर हितलाभ प्रदान किया जाता है।

(ब) **पेंशन :** सभी श्रमिक बिना किसी अपवाद के, कार्य करते समय हुई दुर्घटना के कारण स्थायी असमर्थता, व्यावसायिक बीमारी या किसी साधारण बीमारी की स्थिति मे पेंशन लेने के अधिकारी हैं। पेंशन की राशि निर्धारित करते समय कई बातो पर ध्यान दिया जाता है, जैसे असमर्थता के कारण, असमर्थता के पूर्व की औसत आय व राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की वह शाखा जिनमे कर्मचारी काम कर रहा है।

विभिन्न प्रकार की पेंशन निम्नलिखित हैं -

(क) **वृद्धावस्था पेंशन** सभी श्रमिक एक निश्चित आयु प्राप्त करने और निश्चित वर्षों तक कार्य करने के पश्चात् वृद्धावस्था पेंशन पाने के अधिकारी हैं। पुरुषो को 60 वर्ष का होने पर तथा 25 वर्ष काम करने के पश्चात् तथा स्त्रियो को 55 वर्ष की होने पर तथा 20 वर्ष काम करने के पश्चात् पेंशन मिलती है। पेंशन प्राप्त व्यक्ति चाहें तो बाद मे भी काम करते रह सकते हैं और अतिरिक्त पारिश्रमिक कमा सकते हैं।

(ख) **उत्तर जीवी पेंशन :** श्रमिक की मृत्यु होने पर उसके आश्रितो को पेंशन देने की व्यवस्था की गई है। पेंशन की मात्रा जीविका कमाने वाले की मृत्यु के कारणो, उसके रोजगार की अवधि, आय की राशि और परिवार के कार्य करने के अयोग्य सदस्यो की सख्या पर निर्भर रहती है।

(ग) **निरतर रोजगार की पेंशन :** इस प्रकार की पेंशन उन व्यक्तियो को दी जाती है जैसे डाक्टर, पशु-चिकित्सक, शिक्षक इत्यादि जिन्होने अपने क्षेत्र मे लगातार 26 से 30 वर्ष तक काम किया हो। उदाहरणार्थ शिक्षको को उनके वेतन का 40 प्रतिशत पेंशन मे मिलता है, पशु चिकित्सको को उनके वेतन का 50 प्रतिशत दिया जाता है आदि। ऐसे पेंशन वाले व्यक्ति की यदि मृत्यु हो जाती है तो यह पेंशन इसके परिवार के अयोग्य व्यक्तियो और वृद्ध सदस्यो को दी जाती है।

(स) **अतिरिक्त सुविधाए** पेंशन देने के अतिरिक्त सरकार पेंशन पाने वाले व्यक्तियो को उनके स्वास्थ्य की दशा के अनुरूप कुछ रोजगार देने की व्यवस्था करती है। सामाजिक बीमा कोष मे सनेटोरियम की सुविधाए प्रदान की जाती है। जिनकी देख-भाल करने वाला कोई नही है उनके लिए सरकार विशेष गृह चलाती है।

अन्य सामाजिक सेवाए व सुविधाएं

सामाजिक बीमा प्रणाली की पूर्ति सामाजिक सेवाओ द्वारा होती है। रूस मे सामाजिक बीमा की योजना के साथ-साथ अन्य हितकारी सस्थाए भी श्रमिको को सुविधाए देने मे सलग्न हैं। सक्षेप मे ये इस प्रकार है :

(अ) अस्पताल, क्लिनिक, पोलीक्लिनिक, फर्स्ट एड स्टेशन, रिसर्च इस्टीटयूटस लेबोरेटरीज एव मेडिकल कालेज मे चिकित्सा सबधी सुविधाए सभी नागरिकों को नि.शुल्क राज्य के खर्चे पर प्रदान की जाती हैं।

(ब) एक ही उद्योग मे कम से कम 11 माह तक निरतर कार्य करने के पश्चात सवेतन 2 सप्ताह का अवकाश प्रदान किया जाता है।

(स) नगरो मे विश्राम और सास्कृतिक कार्यों के लिए पार्कों की व्यवस्था है जिनमे रविवारो व अन्य सार्वजनिक छुट्टियो मे लोग जाया करते है।

(द) *प्रारभिक शिक्षा के लिए नि शुल्क सुविधाए उपलब्ध है।*

(य) *गर्भवती माताओ को और प्रसवकाल के तुरत बाद ही महिला श्रमिको* को मातृत्व लाभ दिया जाता है। इस कार्य के लिए प्रसूति गृहो व परामर्श केंद्रो का एक जाल-सा बिछा दिया गया है। मातृत्व लाभ प्राप्त करने के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि उस स्त्री श्रमिक ने सबधित सस्था म कम-से-कम तीन माह काम किया हो। सामान्यत लाभ की मात्रा स्त्री श्रमिक के काय के रिकार्ड पर उस शाखा के महत्त्व पर जिसमे वह कार्य करती है तथा सेवा की अवधि पर निर्भर होती है। गर्भवती माताओ के लिए कुछ श्रम-अधिनियम बनाए गए हैं। उनके अनुसार गर्भवती माताओ को काय पर लगे रहने का आश्वासन रहता है। किसी महिला को गर्भवती होने के कारण काय न देने पर 6 मास का कारावास अथवा 1 000 रूबल का दड दिया जाता है। गर्भवती माता को वही मजदूरी दी जाती है जोकि गर्भवती होने क पूर्व मिलती थी। गर्भावस्था म उसको हल्का कार्य करने को दिया जाता है। गर्भवती स्त्री को पूर्ण वेतन पर 112 दिन की छुट्टिया प्रसूति के लिए मिलती हैं

माताओ और बच्चो की रक्षा करने की उपरोक्त सभी सुविधाए अविवाहित स्त्रियो को भी उपलब्ध होती है। अधिक बालको वाली माताओ को राज्य द्वारा विशेष भत्ते दिए जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन स स्पष्ट है कि रूस म सामाजिक सुरक्षा से सबधित विस्तृत व्यवस्था के अतर्गत अनेक सुविधाए वहा के नागरिको को प्राप्त हैं।

परीक्षा-प्रश्न

1 बेवरीज की प्रमुख विशेषताओ का वणन कीजिए तथा उन मान्यताओ को बताइए जिन पर यह योजना आधारित है।

2 ग्रेट ब्रिटेन मे सामाजिक सुरक्षा पर एक टिप्पणी लिखिए।
3 सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रचलित सामाजिक सुरक्षा प्रणाली के मुख्य लक्षणो की व्याख्या कीजिए। क्या ये योजनाए एक सपन्न राष्ट्र के लिए आवश्यक हैं ?
4 सोवियत रूस मे सामाजिक सुरक्षा योजना की प्रमुख विशेषताओ की विवेचना कीजिए। यह योजना अपने उद्देश्यो मे कहा तक सफल हुई है ?

अध्याय 17

भारत मे श्रम सन्नियम
(Labour Legislation in India)

भारत मे श्रम सबधी अनेक सन्नियम हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए उनका हम निम्न शीर्षकों के अतर्गत अध्ययन करेंगे

1 कारखाना अधिनियम
2 भारतीय खान अधिनियम
3 बागान अधिनियम
4 परिवहन अधिनियम
5 मजदूरी सम्बन्धी अधिनियम
6 सामाजिक सुरक्षा सबधी अधिनियम
7 श्रम कल्याण सबधी अधिनियम
8 अन्य श्रम सबधी अधिनियम

1 कारखाना अधिनियम
(Factory Legislation)

देश के श्रम सन्नियमो मे कारखाना अधिनियम का विशेष महत्त्व है। सर्वप्रथम कारखाना अधिनियम सन् 1881 मे पारित हुआ, जिसका उद्देश्य कारखानो म काम करने वाले श्रमिको के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के लिए विभिन्न व्यवस्थाए करना था। इस कानून द्वारा बच्चो के श्रम को ही सीमित सरक्षण प्राप्त हुआ वयस्को की स्थिति प्राय ज्यो की त्यो रही। अत वयस्को की स्थिति मे सुधार के उद्देश्य से 1891 ई० मे एक दूसरा कारखाना अधिनियम पास हुआ। जिसमे बच्चो को और सुविधाए प्रदान करने के अतिरिक्त, स्त्रियो को भी सुरक्षा मिली। सन 1911 म तीसरा कारखाना अधिनियम पास होने पर ही पहली बार पुरुषो को कुछ सुविधाए प्राप्त हुई। उनक दिन मे कार्य के घटे 12 कर दिए गए। इस अधिनियम की व्यवस्थाए दोषपूर्ण थी जिन्हें ठीक करने के लिए इसमे कई बार सशोधन किए गए।

पहले के सभी कारखाना अधिनियम समाप्त करके सन् 1948 मे कारखाना श्रम से सबधित एक व्यापक कानून पास किया गया। सन 1948 के कारखाना अधिनियम की कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

(अ) क्षेत्र : यह अधिनियम उन सभी कारखानों में लागू है जहा दस या अधिक

श्रमिक कार्य करते हैं और विद्युत् शक्ति का प्रयोग होता है अथवा जिनमे शक्ति का प्रयोग तो नही होता किंतु 20 या अधिक श्रमिक काम करत हैं। इस अधिनियम का क्षेत्र बढान क उद्देश्य से इसमे यह भी आदेश दिया गया है कि जहा कही भी निर्माण का कार्य हो रहा ह (भले ही उसमे कितने ही श्रमिक कार्य करते हो) यह सन्नियम लागू होगा।

(ब) सुरक्षा सबधी प्रादेश · (1) मशीनें, जो विद्युत शक्ति से चलती है वे ठीक प्रकार स फिट होनी चाहिए।

(2) ट्रासमीशन तथा दूसरे खतरनाक यत्रो को चारो तरफ स आड लगाकर रखा जाना चाहिए तथा उनकी देखभाल के लिए केवल विशेष रूप स प्रशिक्षित पुरुष श्रमिक ही नियुक्त किए जाने चाहिए।

(3) बाल अथवा महिला श्रमिक खतरनाक मशीनो पर काय नही करेंगे।

(4) श्रमिको से उनकी सामथ्य से अधिक बोझ ढोने का काम नही लेना चाहिए।

(5) यदि किसी काय विशेष मे आखो पर कुप्रभाव पडने की आशका हो तो उसकी राक के लिए सेवायोजको को विशेष प्रकार के चश्मे आदि का प्रबघ करना चाहिए।

(स) स्त्री श्रमिक को सरक्षण (1) खतरनाक मशीनो पर स्त्री श्रमिको को काम पर लगाना निषेध घोषित कर दिया गया है।

(2) चलती मशीन की सफाई करने उसमे तेल डालने अथवा उसे सुधारने के लिए किसी भी स्त्री श्रमिक को काम पर नही लगाया जा सकता।

(3) अगर किसी कारखाने म कम से कम 50 स्त्रिया काय कर रही है तो उस कारखाने मे सवायोजक को 6 वष से कम आयु के बच्चो के लिए शिशु गृहो की व्यवस्था करनी होगी।

(4) स्त्री श्रमिक से सप्ताह मे अधिक मे अधिक 38 घटे तक और प्रतिदिन 9 घटे तक काम लिया जा सकता है।

(5) अगर किसी कारखाने मे कपास की धुनाई का यत्र प्रयोग किया जा रहा है और धुनाई का कमरा व प्रस का कमरा दोनो ही पास पास है तो किसी भी स्त्री को कपास पर प्रस करने के काय पर नही लगाया जा सकता।

(द) कल्याण काय सबधी आदेश श्रमिको के लिए जलपान गृहो विश्रामालयो स्त्री श्रमिको के छोटे बच्चो को दिन म रखने के लिए शिशु गृहो बैठने की व्यवस्था प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा वस्त्र धोने के स्थान की सुविधा आदि होनी चाहिए। 500 मे अधिक श्रमिक वाले कारखानो के लिए राज्य सरकारो की सहायता से हितकर अफसर रखना अनिवाय कर दिया गया। व्यावसायिक रोगो आदि क विषय म सभी कारखाना मालिको के लिए यह आवश्यक है कि दुघटना या बीमारी होने पर तत्काल सूचना दें।

(य) सफाई व स्वास्थ्य (1) कारखानो की सफाई की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। (2) प्रत्येक कारखाने मे शुद्ध वायु के आने के लिए तथा गन्दी वायु के जाने क लिए पर्याप्त झरोखे होने चाहिए। (3) कारखाने म पीने के पानी पेशाबघर तथा

शौचालयों का भी प्रबंध आवश्यक है। (4) कारखाने के तापक्रम का श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नही पड़ना चाहिए।

(र) काम के घंटे व नियुक्ति से संबंधित आदेश : (1) काम करने के लिए बच्चों की आयु 14 वर्ष और युवकों की आयु 18 वर्ष होनी चाहिए। (2) वयस्कों के लिए सप्ताह मे काम के घंटे 48 तथा 1 दिन मे 9 घंटे से अधिक नही हो सकते। (3) कम से कम आधे घंटे का विश्राम दिए बिना किसी भी श्रमिक से लगातार 5 घंटे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता। (4) विश्राम के समय को सम्मिलित करते हुए किसी भी दिन काम के घंटो का फैलाव साढे दस घंटे मे अधिक नही हो सकता। (5) राज्य सरकारों को अधिनियम की उक्त धाराओं म कुछ छूट देने का अधिकार दिया गया है, परंतु किसी भी अवस्था मे वे निम्न नियमो का उल्लघन नही कर सकती (अ) किसी भी दिन कुल कार्य के घंटे 10 से अधिक नही होने चाहिए, (ब) 3 माह की अवधि मे कुल अतिरिक्त कार्य के घंटे 50 से अधिक नही होने चाहिए, तथा (स) अतिरिक्त कार्य के लिए दूनी दर से वेतन और पूरे सप्ताह मे एक दिन की छुट्टी की व्यवस्था होगी।

(ल) सवेतन छुट्टी : साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त प्रत्येक श्रमिक को 12 माह की निरंतर सेवा के पश्चात निम्न दर पर अतिरिक्त सवेतन छुट्टियों का भी अधिकार होगा—(अ) एक प्रौढ श्रमिक 20 दिन काम करने के बाद एक दिन की सवेतन छुट्टी प्राप्त कर सकता है। वह एक वर्ष मे कम से कम 10 दिन सवेतन छुट्टी का अधिकारी है। (ब) एक बाल श्रमिक 15 दिन काम करने के बाद एक दिन की तथा एक साल मे कम से कम 14 दिन की सवेतन छुट्टी ले सकता। (द) यदि कोई श्रमिक अपनी अर्जित छुट्टी लेने मे पहले काम से हटा दिया जाता है अथवा स्वयं नौकरी छोड देता है, तो मालिक पर उस अर्जित छुट्टी की मजदूरी देने का उत्तरदायित्व है।

अधिनियम सबंधी प्रशासन राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व है, जो इसे अपने फैक्टरी निरीक्षणालय के माध्यम से पूरा करती हैं। राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे दुर्घटना के किसी मामले मे अथवा व्यावसायिक रोग के किसी मामले मे कारखाने की जाच के लिए उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति कर सकती है।

फैक्टरी एक्ट का संशोधन 1926 अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन उपसधि सख्या 89 व 90 (जो स्त्रियो व बच्चो के कार्य के सबध मे थी) के अनुसमर्थन के लिए अधिनियम मे 1950 म संशोधन किया गया। इस संशोधन के अनुसार सवेतन छुट्टी के लिए आवश्यक उपस्थिति एक कलैंडर वर्ष मे 240 दिन निश्चित की गई। सरकार ने छुट्टी की सीमा बढा दी है जो आगे जोडी जा सकती है ताकि कर्मचारी लम्बी छुट्टी पर जा सकें। यदि कर्मचारी छुट्टी को अस्वस्थता की अवधि मे शामिल कराना चाहता है तो इसके लिए छुट्टी की पूर्व सूचना देने की आवश्यकता नही है जबकि 1948 के फैक्टरी अधिनियम के अतर्गत आवश्यक था।

भारतीय फैक्टरी अधिनियम की आलोचना

भारत मे कारखाना अधिनियम के संबंधों में सन् 1946 की श्रम जांच समिति ने

कई दोष बतलाए थे, जिनमें से कुछ अब भी विद्यमान हैं जैसे :—

1. ऐसे अनेक उपाय हैं जिनकी आड़ में रहकर सेवायोजक मनमानी करते हैं।

(अ) श्रमिकों से अधिक काम लेने के लिए, घड़ी को पीछे कर देते हैं।

(ब) सामयिक श्रमिकों को कार्य पर लगाते है और उन्हें पदमुक्त करके एवं पुनः नियुक्त करके सवेतन छुट्टी के प्रावधान के प्रति वंचना करते हैं।

(स) ओवर टाइम के प्रावधान से बचाव करने के लिए गलत उपस्थिति रजिस्टर रखा जाता है। झूठा प्रमाण-पत्र प्राप्त करके बाल श्रमिकों को काफी संख्या में काम पर लगाया जाता है।

2. निरीक्षक, जिसे कारखानों के निरीक्षण का कार्य सौंपा गया है, बहुत कम ही अपना कर्तव्य निभाता है। निरीक्षक कारखाने में निरीक्षण करने की पूर्व सूचना दे देते हैं जिससे सेवायोजक पहले से ही जागरूक हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त फैक्टरी निरीक्षक तकनीकी व्यक्ति होते हैं, इसलिए कर्मचारियों के कल्याण एवं स्वास्थ्य को नियंत्रित करने के मामले में अयोग्य हैं।

शाही आयोग ने पूंजी निरीक्षकों की व्यवस्था करने का सुझाव दिया था जिसे केवल बंबई और मद्रास ने ही अपनाया गया है।

3. राज्य सरकारें कुछ व्यक्तियों को आदेशों का पालन करने से मुक्त कर सकती हैं किंतु वह छूट सब दशाओं में समान नहीं है और प्रायः न्यायसंगत नहीं होती।

4 अनियंत्रित कारखानों जैसे बीड़ी, कालीन और छोटे चमड़े के कारखाने आदि में काम करने वाले मजदूर जो कि औद्योगिक मजदूरों का काफी बड़ा भाग है, कदाचित् ही सुरक्षित हैं एवं उनकी स्थिति अत्यंत शोचनीय है।

5. स्वच्छता एवं सुरक्षा के प्रावधानों का भी उल्लंघन किया जाता है। अधिकांश कारखानों में तो प्राथमिक चिकित्सा पेटिकाएं भी नहीं हैं।

6 बहुत-से कारखानों में आवश्यक श्रम कल्याण अधिकारी भी नियुक्त नहीं किए गए हैं। कुछ ऐसे मामले भी देखने में आए हैं कि इन कल्याण अधिकारियों के ऊपर, अन्य कार्यों का बोझ भी डाल दिया गया जो कि इनका अधिकांश समय ले लेता है। चूंकि ये कर्मचारी अपने रोजगार व निलंबन के संबंध में फैक्टरी मालिकों की दया पर निर्भर रहते हैं अतः निलंबन का भय उन्हें कर्मचारियों के कल्याण के लिए कार्य करने की अनुमति नहीं देता।

इस अधिनियम को श्रमिकों के लिए वास्तविक लाभकारी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उक्त कमियों को दूर करने के लिए, आवश्यक कदम उठाए जाएं। अतः यह आवश्यक है कि (अ) अधिनियम के आदेशों का पालन हो रहा है या नहीं, इसे देखने के लिए राज्यों में निरीक्षक अधिकारियों की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। फैक्टरियों के निरीक्षण के दौरान निरीक्षकों को श्रम प्रतिनिधियों से भी परामर्श करना चाहिए ताकि वे अपनी शिकायतों के विषय में बता सकें। (ब) अधिनियम के आदेशों का उल्लंघन करने वाले मालिकों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था होनी चाहिए। (स) 500 अथवा इससे अधिक कर्मचारियों से युक्त फैक्टरियों में स्वास्थ्य के स्तर में सुधार लाने के लिए

अधिकारियों की नियुक्ति अनिवार्य होनी चाहिए। (य) राज्य सरकारों के अधिकारों में एकरूपता लाई जानी चाहिए।

2 भारतीय खान अधिनियम

भारत में सर्वप्रथम खान अधिनियम सन् 1901 में पास हुआ। इसे 1923, 1935, 1936, 1937, 1940, 1946 में संशोधित किया गया। 1 जुलाई सन् 1952 में नया खान अधिनियम बना जिसे सन् 1959 में संशोधित किया गया। नए खान अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं

(अ) अधिनियम का क्षेत्र : यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोडकर देश की समस्त खानो पर लागू होता है।

(ब) सुरक्षात्मक व्यवस्थाएं : यह अधिनियम कार्य करने वाले सभी श्रमिको को कारखाना अधिनियम के अंतर्गत प्रदान की गई सुरक्षाओं एवं कल्याण सबधी सुविधाओं को प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, सभी खानो के मालिको के लिए आवश्यक है कि वे पीने योग्य शीतल जल, शौचालय, पेशाबघर तथा औषधि-पेटी की व्यवस्था करें।

(स) कार्यविधि : खान के भीतर अथवा बाहर कार्य करने वाले दोनो प्रकार के वयस्क श्रमिकों के लिए कार्य के घंटे प्रति सप्ताह 48 हैं।

(द) पहले अनुसूचित उद्योगो म न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण हेतु जो समय-सीमा रखी गई थी उसे अब सन 1961 के एक सशोधन के अनुसार हटा लिया गया है।

सन् 1967-68 मे एक सशोधन प्रस्ताव था कि यदि कोई श्रमिक कुछ अधिकार एव सुविधाए किसी करार अथवा परपरा आदि द्वारा प्राप्त कर चुका है और ये सुविधाए अपेक्षाकृत अधिक अच्छी हैं तो उन सुविधाओ मे कमी न होने दी जाएगी।

3 बागान अधिनियम
(Plantation Legislation)

भारत मे चाय, रबड, कहवा आदि के बागानो मे बहुत बडी सख्या मे श्रमिक कार्य करते हैं। अत: मजदूरो की सुरक्षा के सरक्षण के लिए निम्नलिखित प्रमुख अधिनियम पारित किए गए हैं

1 चाय जिला प्रवासी श्रमिक अधिनियम, 1962 (Tea District Emigrant Labour Act, 1932) इस अधिनियम की प्रमुख बातें इस प्रकार है :—

(अ) यह अधिनियम मुख्य रूप से अन्य प्रांतो से जाने वाले आसाम के चाय के बागानो के श्रमिकों की भर्ती से सबंधित था।

(ब) इसके अनुसार वहाँ सेवायोजकों अथवा उनके एजेंट दूसरे क्षेत्रो से आसाम के चाय बागानो के क्षेत्र में श्रमिकों को ले जा सकते थे जिन्हें लाइसेंस प्राप्त था।

(स) सोलह वर्ष से कम आयु के बालको को बागानो के लिए तभी ले जाया जा सकता था जबकि वे अपने माता-पिता आदि के साथ हो।

(द) विवाहित महिलाएं अपने पति की अनुमति से ही चाय बागानो को ले जायी

जा सकती थी ।

(य) अधिनियम का प्रशासन प्रवासी श्रमिक नियत्रक के द्वारा होता था ।

2 बागान श्रमिक अधिनियम 1951 (Plantation Labour Act, 1951) · इस अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाए इस प्रकार हैं :

(अ) यह अधिनियम चाय, काफी, रबर आदि के बागानो पर लागू होता है जिनका क्षेत्रफल 25 या अधिक एकड है और जिनमे 30 या अधिक व्यक्ति कार्य करते हैं या पिछले 12 महीने मे एक दिन काम कर चुके हो। नियम 1960 मे सशोधित किया गया।

(ब) श्रमिको के स्वास्थ्य, सामाजिक हितो, कार्य के घटो, छुट्टी के नियमो व बच्चों के रोजगार व श्रमिको के लिए बीमारियो इत्यादि से बचने और उनकी चिकित्सा सबधी नियमो की पूर्ण व्यवस्था की गई है ।

(स) बागान के मालिको को श्रमिको के पीने के लिए शुद्ध पानी, स्त्री और पुरुषो के लिए पर्याप्त सख्या मे पृथक्-पृथक् शौचालयो और पेशाबघरो सबधी सुविधाओ की व्यवस्था करना आवश्यक है ।

(द) प्रत्येक बागान मालिक का उत्तरदायित्व है कि बागान के कर्मचारियो के आवास की व्यवस्था करें । आवास के आकार, उससे सबधित भूमि आदि के नियम बनाने का आदेश राज्य सरकारो को दिया गया ।

(य) जिन बागानो मे 300 से अधिक श्रमिक कार्य करते है, उनमे एक कल्याण कार्य अधिकारी भी रहेगा ।

(र) 15 से 18 वर्ष की आयु के बच्चे किशोर माने जाते है। 12 वर्ष से कम आयु वाले बच्चो की नियुक्ति पर प्रतिबध लगाया गया है। बच्चो और किशोरो की आयु सबधी प्रमाणपत्र देना पडता है ।

(ल) वयस्को के लिए कार्य के घटे सप्ताह मे 54 और बच्चो तथा किशोरो के लिए 40 निश्चित किए गए हैं। एक दिन मे कार्य के घटे 12 से अधिक (विश्राम या प्रतीक्षा समय सहित) नही होने चाहिए। सध्या के 7 बजे से 6 बजे प्रात तक बच्चो व स्त्रियो के लिए कार्य का निषेध है। पाच घटे कार्य के पश्चात् आधे घटे का विश्राम आवश्यक है ।

(व) सप्ताह मे एक दिन छुट्टी होनी चाहिए। वयस्को को 20 दिन कार्य पर एक दिन वेतन सहित अवकाश और बच्चो व किशोरो को 15 दिन काम पर एक दिन वेतन सहित अवकाश पाने का अधिकार है ।

(स) आधी, तूफान, अग्नि व अन्य किसी प्राकृतिक बाधा से काम पर न आ सकने वाले श्रमिक के लिए वह दिन अवकाश का दिन गिना जा सकता है ।

(द) बीमार होने पर प्रत्येक श्रमिक को चिकित्सक के प्रमाण पत्र देने पर बीमारी का भत्ता दिया जाएगा। महिला श्रमिको को भी प्रसूति काल के लिए भत्ता दिया जाएगा।

(ह) अधिनियम का प्रशासन राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है। मुख्य बागान निरीक्षक इसका प्रधान अधिकारी होता है।

4 परिवहन अधिनियम
(Transport Legislation)

1 भारतीय रेलवे अधिनियम, 1890 (The Indian Railways Act, 1890) . भारत मे परिवहन सेवाओ मे लगे श्रमिको के लाभार्थ सर्वप्रथम वैधानिक सुविधाए रेलवे कर्मचारियो के लिए सन् 1890 के भारतीय रेलवे अधिनियम द्वारा दी गई। यह अधिनियम सन् 1930 मे सशोधित होकर रेलवे वर्कशापो को छोडकर समस्त कर्मचारियो पर लागू हो गया और उनके विश्राम तथा काम करने के घटो का नियमन करने लगा। इसके अनुसार निरतर काम करने वाले कर्मचारियो के काम के घटे एक महीने मे लगभग 60 घटे प्रति सप्ताह निश्चित किए गए थे। साथ ही प्रति सप्ताह 24 घटे लगातार विश्राम की भी व्यवस्था की गई। सन् 1931 मे भारत सरकार ने काम के घटो का नियमन करने के लिए कुछ और नियम बनाए।

सन् 1946 म अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी सघ के प्रतिनिधिमडल ने रलवे कर्मचारियो के घटे, अवकाश आदि विषयो पर कुछ मागें सरकार के समक्ष रखीं। सरकारो ने इन मागो पर विचार करने पर जस्टिस श्री जी० एस० राजाध्यक्ष को निर्णायक नियुक्त किया। उन्होने मई सन् 1947 मे अपना निर्णय दिया, जिसके अनुसार काम के घटे, छुट्टी के नियम, साप्ताहिक अवकाश इत्यादि के विषय मे उन्होने अपना निश्चित मत दिया जिसे भारत सरकार ने स्वीकार किया। परिणामस्वरूप 31 मार्च 1951 से भारत मे सभी रेलो मे वे नियम लागू कर दिए गए हैं।

2 भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम, 1958 (Indian Merchant Shipping Act 1958) इस अधिनियम का पूर्वज 1923 का व्यापारी जहाज अधिनियम था जिसमे 1931, 1949 और 1951 मे सशोधन किए गए थे। 1958 मे पूरा अधिनियम सशोधित किया गया। इसके अनुसार 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चो की नियुक्ति निषेध है और 18 वर्ष तक टिमर या स्कोटर के काम पर नही लगाया जा सकता। अधिनियम मे प्रशासन, विकास आदि मे सबधित कई बातो का प्रावधान है।

3 डॉक कर्मचारी (रोजगार नियमन अधिनियम, 1948) [The Dock Workers (Regulation of Employment Act, 1948)] : बदरगाहो पर जहाजो पर से माल उतराने और जहाजो पर माल लादने वाले श्रमिको के सबध मे सर्वप्रथम सन् 1908 मे भारतीय बदरगाह अधिनियम पास किया गया जिसका सन् 1921 व 1931 म सशोधन किया गया। इस अधिनियम के अनुसार श्रमिको की भर्ती का नियमन किया गया। इसके पश्चात् अतर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ तथा शाही श्रम आयोग की सिफारिशो के आधार पर सन् 1934 भारतीय डॉक श्रमिक अधिनियम पास किया गया, किंतु इसे 1949 तक कार्यान्वित नही किया जा सका। मार्च 1949 मे भारत सरकार ने डॉक कर्मचारियों की कठिनाइयो का निवारण करने हेतु डॉक कर्मचारी रोजगार नियमन अधिनियम 1949 पास किया। यह अधिनियम रोजगार कार्य के घटे, कल्याण कार्य, सुरक्षा आदि के नियमों का वर्णन करता है। इन नियमो का पालन करने के सबध मे सलाह देने

के लिए अधिनियम में एक सलाहकार समिति स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। इस समिति में श्रमिकों, मालिकों तथा सरकार के 15 प्रतिनिधि होंगे। सरकारी प्रतिनिधियों में से समिति का अध्यक्ष सरकार द्वारा मनोनीत होगा।

4. मोटर यातायात कर्मचारी अधिनियम, 1961 (Motor Transport Workers Act, 1961) : यह अधिनियम उन मोटर यातायात कंपनियों पर लागू होता है जिनमें 5 या अधिक कर्मचारी काम करते हैं। कार्य के घंटे सप्ताह में 48 और दैनिक 8 से अधिक नहीं हो सकते। 15 वर्ष से कम उम्र के बालकों की नियुक्ति निषेध है। किशोरों के लिए कार्य के घंटे 1 दिन में 6 से अधिक नहीं हो सकते और उन्हें रात्रि 10 बजे से प्रातः 6 बजे तक कार्य पर नहीं लगाया जा सकता। किशोरों को 15 दिन के कार्य पर 1 दिन की छुट्टी का प्रावधान है।

5 मजदूरी संबंधी सन्नियम

मजदूरी संबंधी संरक्षण बहुत सीमा तक मजदूरी भुगतान अधिनियम सन् 1936 और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम सन् 1948 के द्वारा प्राप्त होता है।

1. मजदूरी अधिनियम, 1936 : यह अधिनियम कारखानों, रेलों, कोयले की खान तथा असम एवं मद्रास के बागानों में कार्य करने वाले श्रमिकों पर लागू होता है। इस अधिनियम के अंतर्गत 400 रु० या इससे कम मासिक वेतन पाने वाले श्रमिक ही आते हैं। अधिनियम के अनुसार मजदूरी चुकाने की अधिकतम अवधि एक माह निश्चित की गई है। मजदूरी नकद मुद्रा के रूप में दी जानी चाहिए।

2. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 : मार्च 1948 में यह अधिनियम पारित हुआ। इसके अनुसार केंद्रीय और राज्य सरकारों को किसी भी उद्योग में जिसमें 1,000 व्यक्ति लगे हैं उनकी न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का अधिकार दिया गया है।

2 **श्रमिक संघ अधिनियम,** 1926 (Trade Union Act, 1926) : इस अधिनियम के अतर्गत श्रमिक सघो के पजीयन तथा कर्तव्यो का नियमन किया गया है।

3. **औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम,** 1946 (Industrial Employment (Standing Orders) Act, 1946) इस अधिनियम के अतर्गत जिन औद्योगिक सस्थानो मे 100 या अधिक व्यक्ति काम करते हो उनमे भर्ती, बर्खास्तगी, अनुशासन, छुट्टी आदि सबधी नियमो की व्यवस्था है।

4 **औद्योगिक विवाद अधिनियम,** 1947 (Industrial Disputes Act, 1947) . देश मे औद्योगिक शाति को दूर करने के लिए इस अधिनियम की रचना हुई है।

5 **मध्य प्रदेश औद्योगिक सबध अधिनियम,** 1960 (Madhya Pradesh Industrial Relations Act, 1960) इस कानून का उद्देश्य उद्योगपतियो और मजदूरो के सबधो को नियमित करना और विवादो को सुलझाना है। यह नियम श्रमिक सघो को मान्यता देने, श्रम अधिकारियो और कर्तव्यो का वर्णन करता है।

6 **बोनस भुगतान अधिनियम,** 1965 (The Payment of Bonus Act, 1965) यह अधिनियम उन सब कारखानो और औद्योगिक सस्थानो पर लागू होता है जिनमे 20 या अधिक व्यक्ति किसी भी दिन पिछले एक वर्ष मे काम कर रहे हो। कर्मचारी से तात्पर्य उन सब वेतन या मजदूरी पाने वालो से है जो प्रति मास 1,600 रुपये से कम पाते हो। इस अधिनियम के अतर्गत कर्मचारी को उद्योगपति से बोनस पाने का अधिकार होता है।

7 **दुकान वाणिज्य सस्थान अधिनियम** (Shops and Commercial *Establishment Acts) : यह राज्यो के अधिनियम हैं और देश के सब राज्यो ने पास* किए हैं। इनके अनुसार कर्मचारियो के कार्य के घटे, साप्ताहिक अवकाश आदि का नियमन किया गया है।

8 **बीड़ी तथा सिगार कर्मचारी (रोजगार की दशा) अधिनियम** 1966 [Bedi and Cigar Workers (Conditions of Employment) Act, 1966] यह कानून जम्मू और काश्मीर को छोडकर शेष पूरे देश मे लागू हो सकता है, और इसका उद्देश्य बीडी तथा सिगार के उत्पादन मे लगे हुए मजदूरो की दशा को सुधारना है। कोई भी राज्य इसे किसी तिथि म लागू कर सकता है।

9 **बधक मजदूरी प्रथा अधिनियम,** 1976 (Bonded Labour System Act, 1976) · यह अधिनियम आपात्कालीनयुग मे पास किया गया। इसके द्वारा ऋण आदि को अदायगी के लिए बधक मजदूरी की बर्बर प्रथा की समाप्ति कर दी गई। बधक मजदूरों को मुक्त कर दिया गया और बधक रखना एक दडनीय अपराध घोषित कर दिया गया। इस प्रकार मुक्त किए गए मजदूरो को उनके घर, खेत आदि से बेदखल नही किया जा सकेगा।

10 **ठेकेदारी मजदूर (नियत्रण एवं उन्मूलन) अधिनियम,** 1970 [Contract Labour (Regulation and Abolition) Act, 1970] : इस अधिनियम के अतर्गत ठेकेदारी प्रथा के अतर्गत मजदूरो के कार्य का नियत्रण किया गया और कुछ

परिस्थितियो मे ठेकेदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया।

11. **समान मजदूरी अधिनियम**, 1976 (Equal Remuneration Act, 1976) : यह अधिनियम आपातकालीन युग की देन है। इसके द्वारा पुरुष एव महिला मजदूरो को बराबर मजदूरी पाने का अधिकार मिला है।

परीक्षा-प्रश्न

1. भारत मे फैक्ट्री विधान के विकास का वर्णन कीजिए। सन् 1948 के फैक्ट्री अधिनियम की कौन-कौन-सी मुख्य व्यवस्थाए हैं ? **अथवा**
   भारत मे 1948 के फैक्ट्री अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाओ का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए तथा आपके विचार मे इसमे कोई अन्य सुधार की आवश्यकता है ? **अथवा**
   हाल मे होने वाले मुख्य परिवर्तनो की ओर सकेत करते हुए भारत के फैक्ट्री विधान के सक्षिप्त इतिहास का वर्णन कीजिए।
2. भारत के प्रमुख श्रम सन्नियमो का उल्लेख कीजिए और सक्षेप मे प्रमुख विशेषताओ को बतलाइए।
3. भारत मे खान, उद्यान तथा परिवहन सन्नियम की श्रम सबधी विशेषताओ की विवेचना कीजिए।
4. "श्रम सन्नियमो का लाभ उनकी सख्या बढाने मे नही, वरन उनको कार्यान्वित करने की भावना एव विधि मे निहित है।' विवेचना कीजिए।

अध्याय 18

बेरोजगारी की समस्या
(Problem of Unemployment)

परिभाषा विस्तृत रूप से बेरोजगारी कार्य न मिलने की स्थिति होती है। पीगू के मतानुसार एक मनुष्य तब ही बेरोजगार होता है जब एक तो उसके पास कोई कार्य नहीं होता और दूसरे वह कार्य करना चाहता है।' यहाँ रोजगार प्राप्त करने के विचार की विवेचना प्रतिदिन काम करने के घंटे, मजदूरी की दरें व मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा का ध्यान में रखकर करनी चाहिए। यदि किसी कारखाने में कार्य करने के घंटे 6 हैं परंतु कोई श्रमिक 7 घंटे कार्य करने की इच्छा रखता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह व्यक्ति 1 घंटे बेरोजगार रहता है। दूसरे मजदूरी प्राप्त करने की इच्छा का अर्थ अप्रचलित मजदूरी की दरों पर काम करने की इच्छा से लेना चाहिए। इसी प्रकार, ऐसे व्यक्ति को भी बेरोजगार नहीं कहा जा सकता जो कार्य करने की इच्छा तो रखता है परन्तु बीमारी के कारण काम नहीं कर पाता।

बेरोजगारी की परिभाषा जो आठवीं अंतर्राष्ट्रीय श्रम सांख्यिकीविद सम्मेलन ने बताई है वह निम्नलिखित है[1] —

1 बेरोजगार व्यक्तियों में निश्चित आयु से ऊपर के वे सभी व्यक्ति शामिल हैं जो निश्चित दिन या निश्चित सप्ताह में निम्नलिखित वर्गों में थे

(अ) श्रमिक जो कार्य के लिए तत्पर हैं लेकिन सेवा-अनुबंध समाप्त या स्थगित रूप से निलंबित कर दिया गया है और जिनके पास कार्य नहीं है और कार्य को वेतन या लाभ के लिए चाहते हैं।

(ब) व्यक्ति जो एक निश्चित समय में कार्य के लिए तत्पर थे (केवल छोटी-मोटी बीमारी को छोड़कर) और जो कार्य को वेतन या लाभ के लिए चाहते थे, जिनको पहले कभी कार्य नहीं मिला था और जो कभी भी कर्मचारी नहीं थे (जैसेकि भूतपूर्व सेवायोजक आदि) अथवा जोकि सेवा से निवृत्त हो चुके थे।

(स) बेरोजगार व्यक्ति जो कार्य के लिए तत्पर हों जिन्होंने निश्चित अवधि से पहले नया कार्य करने का प्रबंध किया हो।

(द) स्थायी या अनिश्चित रूप से जबरिया छुट्टी पर जाने वाले व्यक्ति जिन्हें वेतन नहीं मिलता हो।

1 I L O, Employment Unemployment Labour Force Statistics, 1948 p 3

(vi) **अर्द्ध-बेरोजगारी** (Under-Employment) जब लोगो को पूरा कार्य नही मिलता या कम वेतन पर कार्य मिलता है जैसे कृषि मे, तो इसे अर्द्ध-बेरोजगारी कहते हैं।

(vii) **अदृश्य बेरोजगारी** (Disguised Unemployment) · सर्वप्रथम इस शब्द को श्रीमती जोन राबिन्सन ने दिया था। अर्द्ध-विकसित देशो मे अदृश्य बेरोजगारी से हमारा आशय ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उस स्थिति से है जहा अधिकाश व्यक्तियो को पूरा काम नही मिल पाता। भूमि पर जनसख्या के दबाव व सयुक्त कुटुब प्रणाली के कारण बहुत-से श्रमिक एक ही खेत मे काम करते है जो ऊपर से देखने पर तो कार्यरत रहते हैं परतु वस्तुत बेकार रहते हैं—वे अदृश्य रूप मे बेकार रहते हैं क्योकि उनके द्वारा सपूर्ण उत्पादन मे कोई वृद्धि नही की जाती है। दूसरी जगह कार्य न मिलने के कारण वे कृषि मे लगे रहते है किंतु वस्तुत वे कुछ उत्पादन नही करते, बल्कि वे अनुत्पादक होते है। इसका अर्थ यह है कि कृषिरत श्रमिको मे से कुछ को दूसरे व्यवसाय मे लगा दिया जाए तो कृषि का उत्पादन उतना ही हो सकता है जितना कि पहले होता था। इसस स्पष्ट है कि वे बेकार ही कृषि म लगे रहते हैं—अन्य कोई काम न पाने के कारण। अत वे अदृश्य रूप म बेरोजगार रहते हैं।

बेरोजगारी का सिद्धात

बेरोजगारी के सबध मे हम निम्नलिखित दो प्रमुख सिद्धातो का अध्ययन करेगे—

1 बेरोजगारी का प्रतिष्ठित सिद्धात
(The Classical Theory of Unemployment)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो की मान्यता यह है कि श्रम एवं उत्पादन के अन्य साधन हमेशा ही पूण रोजगार' की स्थिति म रहते है। **प्रो० टी० आर माल्थस** जैसे कुछ अप वादो को छोडकर लगभग सभी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक समस्याओ पर अपनी रचनाओ मे सर्वत्र ही पूर्ण रोजगार की दशा एक साधारण या सामान्य दशा है और उसमे किसी भी प्रकार के परिवर्तन असाधारण दशा के द्योतक हैं। यदि कभी कभी किसी समय रोजगार पूर्ण रोजगार की स्थिति म कम भी होता है तो उनके विचार भी इसके लिए सरकारी हस्तक्षेप अथवा सरकारी एकाधिकार या ऐसे ही अन्य कारण दोषी होते है जो कि माग एव पूर्ति कार्य-वाहन मे अडचनें पैदा कर देते है। इन अर्थशास्त्रियो का विचार था कि यदि माग और पूर्ति की शक्तियो को स्वतत्र छोड दिया जाए तो वे पूर्ण-रोजगार की स्थापना कर देंगी। इसी आधार पर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो का मत था कि श्रम व अन्य साधनो को पूर्ण-रोजगार प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार आर्थिक क्षेत्र मे किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। यदि किसी समय पूर्ण-रोजगार की वास्तविक स्थिति नही होती है तो प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के अनुसार पूर्ण-रोजगार की प्रवत्ति सदैव विद्यमान रहती है। प्रतिष्ठित विश्लेपण मे सामान्य बेरोजगारी असभव है। सामान्य परिस्थितियो मे सदा ही पूर्ण-रोजगार तक पहुचने की

प्रवृत्ति बाजार में दिखाई पडती है तथा स्थिर सतुलन बिंदु केवल पूर्ण-रोजगार की स्थिति पर आने वाला सतुलन बिंदु ही नही हो सकता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो का उपयुक्त विचार जे० बी० से के विचारो पर आधारित है। 'से' के नियम के अनुसार देश मे सामान्य अति उत्पादन एव सामान्य बेरोजगारी की दशाए उत्पन्न हो ही नही सकती क्योकि जो कुछ उत्पादन किया जाता है उसका उपयोग भी आवश्यक हो जाता है। उनका कहना था, 'पूर्ति स्वत ही मदैव अपनी माग को उत्पन्न करती है।" प्रो० 'से' का कहना है कि बाजार ही उत्पादन का सृजन करता है। उनके मतानुसार माग का मुख्य स्रोत उत्पादन के विभिन्न साधनो मे *प्राप्त होने वाली आय होती है और यह आय उत्पादन प्रक्रिया से स्वत ही उत्पन्न होती* है। जब कभी उत्पादन की कोई नवीन प्रक्रिया शुरू की जाती है और उसके परिणामस्वरूप एक निश्चित उत्पादन उपलब्ध होता है तो उत्पादन के साथ ही साथ माग इसलिए *बढती है कि उत्पादन मे लगे हुए साधनो को पारिश्रमिक मिलता है।* दूसरे शब्दो मे उत्पादन प्रक्रिया काल मे ही इतनी क्रय-शक्ति का सृजन हो जाता है कि फलत जितना माल तैयार होता है वह माग स्वत बिक जाता है।

इस प्रकार, चूकि प्रो० 'से' के अनुसार सामान्य अति उत्पादन' असभव है, इसलिए सामान्य अति उत्पादन के अभाव मे सामान्य बेरोजगारी भी असभव है। प्रो० डिलार्ड के कथनानुसार से' का बाजार का नियम सामान्य अति उत्पादन की सभावना अस्वीकृत करता है। अधिक साधनो का प्रयोग हमेशा लाभदायक रहेगा और इस प्रकार पूर्ण-रोजगार की स्थिति कायम हो जाएगी। उत्पादन के साधनो को उस समय तक नियोजित रखा जाएगा जब तक कि वे अपनी भौतिक उत्पादकता के बराबर पुरस्कार स्वीकार करने के लिए तैयार हो। मजदूरो को जो मिलना चाहिए यदि वे उसे स्वीकार कर लेते हैं तो इस दृष्टिकोण के अनुसार सामान्य बेरोजगारी नही रहेगी।"

2 प्रो० कीन्स का बेरोजगारी का सिद्धान्त
(Prof Keynes Theory of Unemployment)

प्रो० कीन्स के मतानुसार पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे प्रचलित अनैच्छिक बेरोजगारी कभी मजदूरियो के कारण नही बल्कि प्रभावपूर्ण माग की कमी के कारण होती है।

हम जानते है कि स्वतत्र अर्थव्यवस्था मे व्यक्तिगत फर्मों द्वारा रोजगार दिया जाता है और वस्तुओ का उत्पादन होता है। व्यक्तिगत फर्में ही यह निश्चित करती हैं कि कितनी मात्रा मे किसी वस्तु का उत्पादन किया जाए और कितने व्यक्तियो को रोजगार दिया जाए। किसी एक फर्म मे कितने व्यक्तियो को रोजगार पर लगाया जाएगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस फर्म के उद्यमी के विचार मे कितने व्यक्तियो को लगाने मे उसका लाभ अधिकतम होगा। उदाहरण के लिए यदि एक फर्म 10 व्यक्तियो को रोजगार देकर 100 रुपय लाभ कमाती है, परतु यदि 9 व्यक्तियो को काम पर लगाकर 300 रुपये लाभ कमाती है तो 9 व्यक्तियो को ही रोजगार पर रखेगी न कि 10 व्यक्तियो को। फर्म वास्तव मे जितने व्यक्तियो को रोजगार पर लगाती है वह उसके द्वारा

उत्पादित वस्तु की माग पर निर्भर करता है। यदि उनके द्वारा उत्पादित वस्तु की माग अधिक है तो वह अधिक वस्तुओ का उत्पादन करेंगी और लोगो को अधिक सख्या मे रोजगार मिलेगा। जिसको अन्य लेखको ने माग कहा है, कीन्स उसे ही 'प्रभावी माग' कहते हैं। माग मे दो बातें निहित होती हैं : (अ) किसी वस्तु की इच्छा (ब) उस वस्तु को खरीदने के लिए पर्याप्त क्रयशक्ति (आय)। कीन्स ने माग के स्थान पर 'प्रभावपूर्ण माग' शब्द का प्रयोग इसलिए किया जिससे वस्तु को खरीदने की इच्छा और उसके खरीदने की सामर्थ्य मे भेद किया जा सके। अतः किसी समुदाय या समाज की प्रभावपूर्ण माग से हमारा तात्पर्य वस्तुओ और सेवाओ की समस्त मागो के कुल योग से है। हम किसी समाज की प्रभावपूर्ण माग को केवल व्यय द्वारा ही जान सकते हैं।

स्पष्ट है कि माग मे वृद्धि फर्म को अधिक वस्तुओ का उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित करती है और परिणामत पहले से अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। इसी प्रकार माग में कमी के कारण रोजगार व उत्पादन मे कमी आती है। अर्थव्यवस्था मे कुल रोजगार मे लगाये गये श्रमिको की सख्या अर्थव्यवस्था मे व्यक्तिगत फर्मो द्वारा लगाए गए श्रमिको की सख्या के बराबर होती है। अत समस्त फर्मों की उत्पादित वस्तुओ की कुल प्रभावपूर्ण माग मे परिवर्तन के कारण ही अर्थव्यवस्था मे उत्पादन व रोजगार मे उच्चावचन होते हैं।

सक्षेप मे कीन्स के आय और रोजगार सिद्धात को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

(i) किसी विशेष अवधि मे किसी देश मे आय और रोजगार का स्तर 'प्रभावपूर्ण माग पर निर्भर करता है।

(ii) प्रभावपूर्ण माग मे वृद्धि, आय और उत्पादन मे वृद्धि की ओर ले जाती है और रोजगार के स्तर मे वृद्धि करती है।

(iii) प्रभावपूर्ण माग मे कमी, आय और उत्पादन मे कमी की ओर ले जाती हैं और रोजगार के स्तर मे गिरावट आती है।

कीन्स के अनुसार चूकि रोजगार प्रभावपूर्ण माग पर निर्भर है और प्रभावपूर्ण माग के दो अग है—(अ) उपभोग पर व्यय, तथा (ब) विनियोग पर व्यय, अत रोजगार मे वृद्धि करने के लिए अथवा बेरोजगारी को दूर करने के लिए या तो उपभोग व्यय मे वृद्धि की जाए अथवा विनियोग व्यय को बढाया जाए।

परन्तु जब उपभोग पर किए जाने वाले व्यय की मात्रा घटने लगती है और बचत की मात्रा बढने लगती है तो बेरोजगारी फैलने लगती है।

3 **मजदूरी की अधिक दर** कुछ अर्थशास्त्रियो का मत है कि जब मजदूरी की दर ऊची होती है तो श्रमिको की माग कम हो जाती है और माग कम होने से बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है।

4 **जनसख्या में वृद्धि** माल्थस ने जनसख्या के सिद्धात का प्रतिपादन करके यह स्पष्ट कर दिया है जिस अनुपात मे जनसख्या मे वृद्धि होती है उसी अनुपात में रोजगार के अवसरो मे वृद्धि नहीं हो पाती, जिसके कारण अनेक श्रमिको को रोजगार से वचित रहना पडता है और बेरोजगारी फैलती है।

5 **तकनीकी परिवर्तन** कई बार तकनीकी परिवर्तन के कारण बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। ऐसा नई मशीनो या नई पद्धतियो के उपयोग के कारण उद्योग को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के कारण होता है। विवेकीकरण व स्वचालित मशीनो मे भी ऐसी ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है क्योकि नए तरीको से कम श्रमिक उतना ही उत्पादन कर लेते हैं, फलत श्रम का एक भाग काम से हटा दिया जाता है और जब तक वैकल्पिक काम उपलब्ध नही हो जाते वह बेकार ही होता है।

6 **करों मे वृद्धि** कुछ अर्थशास्त्रियो का मत है कि करारोपण के कारण भी बेरोजगारी फैलती है। उदाहरण के लिए यदि सरकार निर्यात कर मे वृद्धि कर देती है अथवा उत्पादन कर मे वृद्धि करती है तो वस्तुओ की कीमतें बढ जाती हैं जिससे उनकी माग कम हो जाती है। माग म कमी के कारण उत्पादन भी कम हो जाता है और कम उत्पादन के लिए कम श्रमिको की आवश्यकता पडती है। फलत बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं।

7 **अन्य कारण** इनके अतिरिक्त कुछ और भी कारण है जो बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार हैं।

(i) **उत्पादकों मे समन्वय की कमी** इससे अधिक उत्पादन या मदी की दशाए उत्पन्न हो जाती हैं।

(ii) **श्रम की गतिहीनता** इसके कारण माग और पूर्ति का उचित सतुलन नहीं होने पाता।

(iii) **श्रम की अकुशलता** जैसे अपर्याप्त औद्योगिक प्रशिक्षण जिससे अकुशल श्रमिको की सख्या अधिक हो जाती है।

(iv) आय का असमान वितरण।

(v) औद्योगिक सघर्ष जैसे हडतालें, तालाबदी आदि जो कि श्रम बाजार को अस्त व्यस्त कर देती हैं।

(ix) कुछ धधो मे माग का अनियमित होना।

(x) उद्योग से अशिक्षित और अकुशल श्रमिको को निकालना जबकि वे अधिक वेतन मागते हैं।

(xi) उद्योग मे फैशन म परिवर्तन विदेशी प्रतियोगिता या प्राकृतिक प्रसाधनो की समाप्ति के कारण होन वाले परिवर्तन।

(xii) **श्रम सघ के प्रभाव** से किसी उद्योग मे अधिक वेतन वृद्धि होने पर भी बेरोजगारी हो जाती है। क्योकि सेवायोजक कम योग्य श्रमिक को निकाल देते हैं, क्योकि सेवायोजक उन्हे उतनी ऊची मजदूरी पर रखने मे असमर्थ हो जाते हैं।

(xiii) **सामाजिक सुरक्षा** और अन्य सरकारी सहायता जैसे बेरोजगारी भत्ता आदि भी बेरोजगारी उत्पन्न करते हैं। क्योकि ऐसा होने पर श्रमिक कार्य के लिए बहुत प्रयत्न नही करते।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि जब तक उत्पादन का ध्येय लाभ कमाना है और सरकार द्वारा देश के साधनो का जनता के लिए पूरा विकास नहीं किया जाता, तब तक बेरोजगारी आधुनिक औद्योगिक प्रणाली की एक नियमित विशेषता बनी रहेगी।

बेरोजगारी के दुष्परिणाम

बेकारी के दुष्परिणाम इतने अधिक और इतने गभीर है कि यदि हम यह कहे कि विश्व म बेरोजगारी से बढकर कोई समस्या नहीं है तो यह अतिशयोक्ति न होगी। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति **आईजन हावर** ने तो यहा तक कह दिया है कि बेरोजगारी म बढकर विश्व म कोई भी बडा अभिशाप नही है और काम करने के इच्छुक व्यक्ति को रोजगार के न मिलने पर कितना कष्ट होता है उससे बढकर विश्व में कोई कष्ट नही है। सक्षेप मे बेरोजगारी के दुष्परिणामो पर निम्नलिखित दृष्टिकोण से विचार कर सकते हैं—

1 **आर्थिक दोष** आर्थिक दृष्टि से बेरोजगारी एक बहुत बडा अभिशाप है। इससे पूरे देश को आर्थिक हानि होती है। जनशक्ति धन है और इसे वस्तु तथा सेवाओ म परिवर्तित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए **वी० पी० अदारकर** के अनुसार भारत मे बेरोजगारी के कारण एक हजार करोड रुपये की क्षति प्रतिवर्ष होती है।

बेरोजगारी के कारण श्रमिक की कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पडता है, इससे उसकी आय कम हो जाती है और उसका जीवन स्तर निम्न हो जाता है। उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। उसका दृष्टिकोण निराशावादी व विनाशकारी हो जाता है और औद्योगिक शाति व आर्थिक उत्पादन सकट मे पड जाता है।

2 **सामाजिक दोष** सामाजिक दृष्टिकोण म भी बेरोजगारी भयकर अभिशाप है। बेरोजगारी समाज म अपराधो, पापो और दुराचारो को जन्म देती है। बेरोजगार व्यक्ति आर्थिक कठिनाइयो के कारण चोरी व बेईमानी की तरफ प्रवृत्त होते हैं। स्त्रिया वेश्यावृत्ति और दुराचार की ओर उन्मुख होती हैं तथा समाज मे भिक्षावृत्ति बढती है।

3 **नैतिक पतन** : नैतिक दृष्टि से बेरोजगारी की समस्या अत्यत घृणाप्रद है। बेरोजगारी मनुष्य के चरित्र, आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की शत्रु है। बेरोजगार व्यक्ति स्वय अपनी और समाज की दृष्टि मे गिर जाता है। हजारो व्यक्ति बेरोजगारी के कारण आत्महत्या कर लेते हैं अथवा घर छोडकर भाग जाते हैं।

4 **राजनीतिक दोष** राजनीतिक दृष्टि से भी बेरोजगारी की समस्या उतनी ही भयकर है जितनी आर्थिक अथवा सामाजिक दृष्टिकोण से। बेरोजगारी देश मे अशाति और क्राति को जन्म देती है। समाज मे प्रजातत्र का विनाश होता है और अराजकता फैलती है। जिस समय मे बेरोजगारी की अधिकता होती है वहा तोड-फोड, दगे, हडतालें आदि घटनाए सामान्य हो जाती हैं।

5 **सास्कृतिक दोष** : सास्कृतिक दृष्टिकोण से भी बेरोजगारी की समस्या बडी भयकर है। इससे मानव व समाज की सास्कृतिक दशा दयनीय हो जाती है, क्योंकि जब मनुष्य की आवश्यकताओ को सतुष्ट करने के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध नही होता, उसका मानसिक व सास्कृतिक विकास सभव नही हो पाता। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व के केवल उन्ही क्षेत्रो मे सास्कृतिक विकास हुआ है तथा हो रहा है जहा के निवासी पूरी तरह स रोजगार मे लगे हैं।

बेरोजगारी दूर करने के उपाय

बेरोजगारी को दूर करने का सरल उपाय यही है कि बेरोजगारी को जन्म देने वाले कारणो को समाप्त कर दिया जाए। सक्षेप मे, बेरोजगारी को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं :

1 **बेरोजगार कार्यालयो की स्थापना** राज्य द्वारा बनाए गए रोजगार दफ्तर विशेष प्रकार के कार्यालय होते है। ये कार्यालय रोजगार की नई सुविधाओ को तो जन्म नही देत परतु ये श्रमिको की माग और पूर्ति मे सतुलन स्थापित करने मे सहायक होते है। ये रोजगार-स्थिति के विभिन्न पहलुओ पर उपयोगी सूचना प्रदान करते हैं। उपलब्ध रोजगार सुविधाओ की जानकारी के अभाव के कारण भी बेरोजगारी का आकार बडा हो जाया करता है। रोजगार कार्यालय इस कठिनाई को समाप्त कर देते है।

2 **शिक्षा प्रणाली मे सुधार** वह शिक्षा प्रणाली जो शारीरिक श्रम से घृणा करना सिखाती है उसमे सुधार किया जाना चाहिए और साथ ही तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल दिया जाना चाहिए, ताकि उचित स्थान के लिए योग्य और कुशल श्रमिक को काम पर लगाया जा सके।

3 **जनसख्या नियत्रण** जनसख्या की तीव्र वृद्धि पर नियत्रण लगाया जाना चाहिए। बेरोजगारी को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि जिस अनुपात मे रोज-गार सुविधाए बढ रही हैं उससे कम अनुपात मे ही जनसख्या मे वृद्धि हो तो बेरोजगार श्रमिको को रोजगार मिल सकें और नए श्रमिको के आने पर भी बेरोजगारी का आकार छोटा होता चला जाए।

4 **कुटीर उद्योगों का विकास** . कताई-बुनाई, मिट्टी का काम, चर्म उद्योग आदि

कुटीर व लघु उद्योगो का विकास किया जाना चाहिए ताकि ऐसे श्रमिको को जो बडे-बडे औद्योगिक उपक्रमो मे कार्य करने योग्य नही हैं अथवा उनके लिए औद्योगिक उपक्रमो मे कार्य नही है, रोजगार की सुविधाए प्रदान की जा सकें।

5. **बेरोजगारी बीमा :** बेरोजगारी बीमे की व्यवस्था कर देने से बेरोजगारी के आकार मे तो कोई कमी नही हो पाती, परतु यह रोजगार श्रमिको के लिए एक प्रकार की आर्थिक सहायता है जिससे सकट-काल मे श्रमिको को अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने मे सहायता करती है।

6. **चक्रीय उतार-चढ़ाव को घटाने हेतु सरकारी उपाय :** कीन्स के मतानुसार जब देश मे प्रभावपूर्ण माग मे कमी हो जाती है तो बेरोजगारी फैलती है। प्रभावपूर्ण माग के दो अग हैं : (अ) उपयोग पर व्यय, और (ब) विनियोग पर व्यय। अत· बेरोजगारी को दूर करने के लिए उपभोग व्यय और विनियोग व्यय को बढाना चाहिए। उपभोग को प्रोत्साहित करने व विनियोग की मात्रा मे वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं :

1 **देश के उपभोग को प्रोत्साहित करने के उपाय :** उपभोग प्रवृत्ति मे कई प्रकार से वृद्धि की जा सकती है जैसे—

(1) आय का पुनर्वितरण करके, चूकि अमीरो की अपेक्षा गरीबो की उपभोग प्रवृत्ति ऊची होती है, इसलिए अमीरो पर भारी कर लगाना चाहिए और इस प्रकार प्राप्त की गई आय को सरकार द्वारा गरीबो के कल्याण हेतु व्यय करना चाहिए।

(ii) गरीबो पर लगाए जाने वाले परोक्ष करो मे कमी कर देनी चाहिए जिससे उनकी उपभोग-शक्ति बढे और माग जागृत हो सके।

(iii) सरकार को वृद्धावस्था, बेकारी, अपाहिजो को सहायता इत्यादि के रूप मे आर्थिक सहायता देनी चाहिए ताकि वे अपने उपभोग-स्तर को पूर्ववत् बनाए रख सकें।

2 **देश के विनियोग की मात्रा मे वृद्धि के उपाय :** विनियोग दो प्रकार के हो सकते हैं—

(अ) निजी विनियोग (Private Investment)

(ब) सरकारी विनियोग (Public Investment)

प्रो० कीन्स के मतानुसार इन दोनो प्रकार के विनियोगो मे वृद्धि करके ही हम रोजगार मे वृद्धि कर सकते हैं।

(अ) **व्यक्तिगत विनियोगों को प्रोत्साहित करने के उपाय :** व्यक्तिगत विनियोगो को प्रोत्साहित करने के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं :—

(1) **व्यापारिक करो मे कमी :** उद्यमियो पर लगाए गए करो मे पर्याप्त कमी कर देनी चाहिए जिससे कि व्यापारियो को 'बचत' हो और वे उस बचत को विनियोग कर सकें।

(ii) **ब्याज की दर में कमी :** व्यक्तिगत विनियोग मुख्यत· लाभ के ऊपर आधारित होते हैं। अत. लाभ को बढाने के लिए सरकार को अपनी निति द्वारा ब्याज

की दर को घटा देना चाहिए।

(iii) मूल्य स्थैर्य उपाय (Price-Support Policy) मूल्यों मे बहुत अधिक उतार-चढ़ाव रोकने के लिए जिससे व्यक्तिगत पूजी को विनियोग मे प्रोत्साहन मिले, सरकार को मूल्य स्थैर्य' नीति का अनुकरण करना चाहिए।

(iv) एकाधिकार विरोधी नीति व्यक्तिगत विनियोगो मे वृद्धि करने के लिए सरकार को एकाधिकारी विरोधी नीति का अनुसरण करना चाहिए क्योकि ये एकाधिकारी व्यवसाय नए नए उद्यमियो को बाजार मे प्रविष्ट नही होने देते और तरह-तरह की बाधाए मार्ग मे उपस्थित करते हैं।

(v) विदेशी पूजी को आमन्त्रित करना देश मे विनियोग की मात्रा बढाने के लिए, देश के हितो का ध्यान रखते हुए, विदेशो से पूजी आमन्त्रित की जा सकती है।

(ब) सार्वजनिक अथवा सरकारी विनियोग मे वृद्धि - उद्यमियो मे मदी काल के समय प्राय निराशा की लहर दौड जाती है। इस निराशापूर्ण मनोवृत्ति के कारण यह निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता कि उपर्युक्त उपायो का व्यक्तिगत विनियोग पर आशातीत प्रभाव पडेगा और व्यक्तिगत पूजीपति उससे उचित रूप मे प्रोत्साहित होकर कार्य करेंगे। इस भय के कारण प्रो० कीन्स ने मदी काल मे जहा निजी विनियोग को प्रोत्साहन देने को कहा वहा साथ ही साथ सरकारी विनियोग का भी जोरदार शब्दो मे समर्थन किया। सरकारी विनियोग निम्नलिखित प्रकार से किये जा सकते हैं

(i) लीफ रैकिंग (Leaf Racking) यह सार्वजनिक व्यय के द्वारा अनुत्पादक कार्यों को चलाने की एक विधि है। जैसे बेकार व्यक्तियो के द्वारा गड्ढे खुदवाकर भरवाना आदि।

(ii) सामाजिक सेवा के लिए विनियोग जैसे स्कूल, अस्पताल, सडको, नहरो इत्यादि का निर्माण करना।

(iii) उपभोग के लिए विनियोग जैसे स्कूलो मे मुफ्त भोजन देना।

(iv) उत्पादक उद्यमो के लिए विनियोग करना जैसे सार्वजनिक क्षेत्र मे सरकारी उद्यमो का विकास करना।

इस प्रकार की योजनाओ से बेरोजगार व्यक्तियो को रोजगार के नए-नए अवसर उपलब्ध होते हैं। उनकी आय मे वृद्धि होने के कारण वे अधिक वस्तुओ की माग करते हैं परिणामत प्रभावपूर्ण माग में वृद्धि होती है और गुणाक (Multiplier) की क्रियाशीलता के कारण रोजगार की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उपर्युक्त कार्यों के लिए वित्त कहा से लिया जाए? कीन्स का मत था कि प्रचलित स्रोतो जैसे करारोपण या सार्वजनिक ऋण की अपेक्षा हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Finance) द्वारा धन प्राप्त करना अधिक श्रेष्ठ-कर है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सार्वजनिक निर्माण कार्य योजना सम्यक और उचित मात्रा मे हो, जिससे किसी प्रकार भी व्यक्तिगत विनियोग हतोत्साहित न हो।

अन्य सुझाव • (अ) औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए स्वस्थ्य श्रमसघों

को प्रोत्साहन देना, (ब) आय के पुर्नवितरण द्वारा वर्तमान औद्योगिक सगठन मे परिवर्तन करना, (स) अतिरिक्त सुरक्षित श्रम को कार्य कम करके, उद्योग का क्षेत्र बढाकर, पेंशन की आयु को कम करके कार्य देना, (द) जो श्रमिक शारीरिक रूप से आयोग्य हैं उनको चिकित्सा-सहायता देकर ठीक करना।

भारत में बेरोजगारी की समस्या
(Unemployment Problem in India)

बढती हुई जनसख्या के साथ-साथ समाज की श्रम-शक्ति मे वृद्धि होती है। श्रम की अधिकता के कारण भारत मे बेरोजगार तथा अल्परोजगारी की समस्या बहुत उग्र होती जा रही है। श्री जगजीवन राम के शब्दो मे, 'पिछले 15 वर्षो मे रोजगार के जो अवसर प्राप्त हुए थे, वे बहुत सीमा तक बढती हुई जनसख्या मे समा गए।" वास्तव मे बेरोजगारी का दानव हमारे सपूर्ण राष्ट्र-जीवन को आक्रांत किए जा रहा है, और यह एक बुराई हैं जिसके कारण न केवल मानवीय ससाधन का अपव्यय होता है, बल्कि इससे देश का भावी आर्थिक विकास रुकता है और विभिन्न सामाजिक एव राजनीतिक विषमताए उत्पन्न होती हैं। जनसख्या विस्फोट की भाति 'बेरोजगारी विस्फोट' भी हमारे लिए एक महान चुनौती है। भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि के शब्दो मे, "हमारी समझ से हमारी सबसे बडी समस्या बेरोजगारी और गरीबी की है। हम निस्सदेह एक दुश्चक्र मे फस गए हैं। साधनो की कमी मे और अधिक रोजगार के अवसर नही बन पाते और इसमे गरीबी निरतर बनी रहती है। लेकिन अगर हमे राष्ट्र के रूप मे जीवित रहना है, तो इस दुश्चक्र को समाप्त करना होगा।"

भारत में बेरोजगारी की स्थिति

विश्वसनीय आकडो के अभाव मे बेरोजगारी के सबध मे पूर्णतया सही स्थिति का अनुमान नही लगाया जा सकता, लेकिन जो भी आकडे प्राप्त है उनके ही आधार पर सारिणी 1 द्वारा देश मे बेरोजगारी की स्थिति अगले पृष्ठ पर दिखाई गई है।

आगे दी गई सारिणी से स्पष्ट है कि प्रत्येक उत्तरोत्तर योजना के साथ बेरोजगारी बढती ही गई है। दो सूख के वर्षो, वार्षिक योजनाओ की अवधि मे सरकारी व्यय के तुलनात्मक निम्न स्तर, चौथी पचवर्षीय योजना के लक्ष्यो की प्राप्ति मे पूर्ण असफलता के कारण बेरोजगारी की मात्रा मे वृद्धि हुई है। कारण चाहे कुछ भी हो, इतनी भारी मात्रा मे बेरोजगारी का विद्यमान होना देश की सामाजिक स्थिरता के लिए भारी खतरा है। गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक एशियन ड्रामा मे बेरोजगारी के सबध मे योजना आयोग के आकडो और उसकी हिसाब पद्धति मे गहरा सदेह प्रकट किया है।

बेरोजगारी पर विशेषज्ञो की समिति, जिसके अध्यक्ष श्री बी० भगवती थे, ने अपनी रिपोर्ट मई, 1973 मे भारत सरकार को प्रस्तुत की। उन्होंने बताया कि उपलब्ध आकडो के आधार पर सन् 1911 मे देश मे बेरोजगारो की सख्या 1 87 करोड थी। इसमे से 161 लाख बेरोजगार व्यक्ति ग्राम-क्षेत्र से हैं और 26 लाख शहरी-क्षेत्र से हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगार व्यक्तियों में 76 लाख पुरुष और 85 लाख स्त्रियां थी। शहरी क्षेत्र में बेरोजगारों में पुरुषो और स्त्रियों की संख्या 16 लाख और 10 लाख थी। कुल श्रम-शक्ति के प्रतिशत के रूप में बेरोजगार व्यक्तियों की मात्रा 10 4% थी। रोजगार दफ्तरों के उपलब्ध आकड़ो के मतानुसार दिसबर 1971 की अपेक्षा दिसबर 1972 में बेरोजगारो की सख्या 15 1% अधिक थी।

सारणी 1 भारत मे बेरोजगारी की स्थिति (लाखों मे)

योजना	रोजगारों को बकाया सख्या (Back-log)	नव आगतुक (New Entrants)	अतिरिक्त रोजगार (Additional Employment)	अतराल (Gap)
प्रथम योजना	33	90	70	53
द्वितीय योजना	53	118	100	71
तृतीय योजना	*71*	*170*	*145*	*96*
वार्षिक योजनाएं	96	—	—	136
चतुर्थ योजना	126	273	180	219
पचम योजना	140	220	150	210
छठी योजना	*206*	*295*	*492*	—

1971 की जनगणना के अनुसार देश म लगभग 9 5 करोड़ व्यक्ति रोजगार चाहते हैं। भारत में दो करोड़ व्यक्ति रोजगार मे हैं। इस दृष्टिकोण से भारत में *बेरोजगारी का प्रतिशत 20 है जोकि निश्चित ही गभीर और चिंताजनक है।*

भारत में बेरोजगारी की प्रकृति

भारत मे बेरोजगारी का अध्ययन हम दो शीर्षको के अतर्गत कर सकते हैं :

(अ) ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी : कृषि बेरोजगार।

(ब) नगरीय क्षेत्रो मे बेरोजगारी।

(अ) ग्रामीण क्षेत्रों मे बेरोजगारी कृषि बेरोजगार : भारतवर्ष के ग्रामीण क्षेत्रों म दो प्रकार की बेरोजगारी पाई जाती है—मौसमी तथा स्थायी या छिपी हुई बेरोजगारी।

भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसख्या कृषि पर निर्भर है, और कृषि अधिकतर एक मौसमी उद्योग है। मौसमी बेरोजगारी के अतर्गत ग्रामवासी फसल कट जाने के बाद बेकार हो जाते हैं तथा जब तक दूसरी फसल का कार्यक्रम प्रारभ नही हो जाता तब तक बेकार ही रहते हैं। भारतवर्ष में सिचाई व पूजी का अभाव होने से तथा कृषि सहायक व अन्य कुटीर उद्योगो का पर्याप्त विकास न होने से लोगो को वर्षभर कार्य नही मिल

पाता है। मौसमी बेरोजगारी के सबध मे अलग-अलग अनुमान लगाए गए हैं। **रायल कमीशन** (शाही आयोग) के अनुसार कृषक वर्ष मे कम से कम 4-5 माह तक अवश्य ही बेरोजगार रहते हैं। **डॉ० राधाकमल मुकर्जी** के अनुसार उत्तर प्रदेश मे सघन कृषि क्षेत्रो मे किसानो को साल-भर मे केवल 200 दिन ही काम मिलता है। **श्री जैक** के अनुसार बगाल मे पटसन की खेती करने वाले लगभग 9 माह व चावल की खेती करने वाले लगभग 7 माह खाली बैठे रहते हैं। **डॉ स्लेटर** के अनुसार दक्षिण भारत मे किसानो को साल-भर मे केवल 200 दिन ही काम मिलता है।

भारत मे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे छिपी हुई बेरोजगारी भी अत्यत व्यापक है। छिपी हुई बेरोजगारी से हमारा तात्पर्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उस स्थिति से है जिसमे श्रमिक काम पर तो लगा हुआ मालूम होता है किंतु उत्पादन मे उनका अशदान नही के बराबर होता है। भारत में भूमि पर जनसख्या का अत्याधिक दबाव होने के कारण कृषि मे आवश्यकता से अधिक श्रमिक लगे हुए हैं। उनकी सीमात उत्पादकता बहुत ही कम होती है या शून्य होती है। कृषि मे सलग्न इन अतिरिक्त व्यक्तियो को यदि कृषि स हटा लिया जाए और अन्य व्यवसायो मे लगा दिया जाए तो भी कृषि उत्पादन मे कोई कमी नही होगी। अर्थात् उनका उत्पादन मे अशदान नही के बराबर होता है, जिसके फलस्वरूप छिपी बेरोजगारी की समस्या पाई जाती है। उदाहरण के लिए यदि कृषि पर निर्भर जनसख्या का अनुपात 70 प्रतिशत स कम करके 60 प्रतिशत कर दिया जाए और देश मे कृषि-उत्पादन पर कोई प्रभाव न पडे, तो हम कह सकते हैं कि 10 प्रतिशत लोग छिपी बेरोजगारी से प्रभावित हैं। कृषि मे ऐसे अतिरिक्त श्रमिको की सख्या का अनुमान कई विद्वानो ने लगाया है। जैसे **श्री नवगोपालदास** के अनुसार सन् 1939 मे ऐसे अतिरिक्त कृषि श्रमिको की सख्या 1 55 करोड थी। **श्री दत्ता** ने यह सख्या सन् 1951 मे 1 94 करोड अनुमानित की थी। हाल ही मे **राष्ट्रीय श्रम आयोग** के अध्ययन दल के अनुसार कम से कम 1 60 करोड व्यक्तियो के पास पूरा काम नही है। श्री गिरि के अनुसार देश मे अर्द्ध-बेरोजगारो की सख्या 10-15 करोड है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने देहात मे रोजगारी का जुलाई 1960 से जून 1961 तक अनुमान लगाया है जिसके अनुसार ग्रामीण भारत में कुल जनसख्या का 42% काम करने योग्य है, इसमे से केवल 40% जनसख्या काम मे लगी हुई है। कार्यरत लोगो मे से 72 88 प्रतिशत सप्ताह मे सातो दिन काम करते हैं और 11 17 प्रतिशत 4 दिन से 1 दिन काम करते हैं।

श्रीमती शकुंतला मेहरा ने अपने एक लेख "भारतीय कृषि मे अतिरेक श्रम' (Surplus Labour in Indian Agriculture) मे इस सबध मे कुछ तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उन्होने अतिरेक श्रम को इस प्रकार परिभाषित किया है कि "ये वे है जिनको कृषि क्षेत्र से हटा लिया जाए तो कृषि के उत्पादन मे कोई कमी नही होगी।" इन्होने इसमे मौसमी बेरोजगारी को नही सम्मिलित किया है। उनके अनुसार भारतवर्ष मे कुल कृषि श्रम शक्ति का 17.1 प्रतिशत अतिरेक है। परतु भारत के विभिन्न राज्यो मे अतिरेक कृषि-श्रमिक के प्रतिशत मे काफी विभिन्नता है।

ग्रामीण क्षेत्र मे बेरोजगारी की सख्या अत्यन्त तीव्र दर से बढ रही है। प्रथम कृषि जाच समिति के अनुसार 1950 51 म भारत मे कुल ग्रामीण बेरोजगारो की सख्या 28 लाख थी जबकि राष्ट्रीय प्रतिदश सर्वेक्षण के 16वें दौर मे 1960 61 मे यह अनुमान लगाया गया था कि उस वर्ष ग्रामीण क्षेत्र मे कुल 56 4 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। ग्रामीण बेरोजगारी की सख्या मे बढने की यह प्रवृत्ति अगली दशाब्दी मे भी बनी रही और फलस्वरूप 1971 मे ग्रामीण बेरोजगारो की सख्या बढकर 77 लाख हो गई। वर्ष 1973 और 1978 मे ग्रामीण बेरोजगारो की सख्या का एक अनुमान भारतीय योजना आयोग ने पचवर्षीय योजना 1978 83 के प्रारूप मे प्रस्तुत किया। इस अनुमान के अनुसार 1973 म भारत मे कुल ग्रामीण बेरोजगारो की सख्या 1 करोड थी जबकि 1978 में इनकी अनुमानित सख्या 1 करोड 12 लाख हो गई थी।

भारत मे अदृश्य बेरोजगारी अथवा कृषि बेरोजगारी के कारण भारत मे अदृश्य बेरोजगारी के कुछ प्रमुख कारण सक्षेप मे इस प्रकार हैं

(i) भारत म जनसख्या म तेजी से होने वाली वृद्धि।

(ii) औद्योगीकरण का अभाव।

(iii) कृषि की मौसमी प्रकृति जिसके कारण वर्ष मे कई महीने कृषको को अनिवार्य रूप से बेरोजगार रहना पडता है।

(iv) कृषि के अलाभदायक होने पर भी लोगो द्वारा भूमि को नही छोडा जाना, क्योकि भूमि के स्वामित्व से सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

(v) कुटीर उद्योगो का पतन।

(vi) उत्तराधिकारी कानून के कारण पिता की सपत्ति मे भाग मिलना जिससे बहुत स लोग बिना लाभदायक कार्य किए ही ग्रामीण क्षेत्रो मे बने रहते हैं।

(vii) ग्रामो का अनुकूल वातावरण भी व्यक्तियो को अपनी ओर आकर्षित करता है।

(viii) सयुक्त परिवार प्रणाली भी विद्यमान अदृश्य बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण है।

समस्या को हल करने के उपाय देश मे अदृश्य बेरोजगारी की समस्या को सतोषप्रद ढग से हल करने के लिए उत्तरदायी उक्त मूल कारणो का निवारण करना परमावश्यक है। इसके लिए तीन प्रकार के उपायो की आवश्यकता है—

(अ) जनसख्या नियत्रण के उपाय। (विस्तृत विवरण के लिए 'जनसख्या नीति' नामक अध्याय देखिए।)

(ब) आर्थिक विकास की गति को तेज करने के उपाय। (विस्तृत विवरण के लिए 'आर्थिक विकास नीति' नामक अध्याय देखिए।)

(स) भूमि व्यवस्था मे सुधार। (विस्तृत विवरण के लिए 'भूमि-व्यवस्था व भूमि सुधार' नामक अध्याय देखिए।)

नगरीय क्षेत्रो मे बेरोजगारी

नगरीय क्षेत्रो मे मुख्य रूप से दो प्रकार की बेरोजगारी देखने को मिलती है :

(अ) औद्योगिक बेरोजगारी,

(ब) शिक्षित वर्ग व मध्यम श्रेणी के लोगो मे पाई जाने वाली बेरोजगारी।

(अ) **औद्योगिक बेरोजगारी** : देश मे जनसख्या की तेजी से वृद्धि के कारण श्रमिको की सख्या भी बढ रही है। ज्यो-ज्यो नगरो का विस्तार होता जा रहा है, त्यो-त्यो ग्रामीण क्षेत्रो से जनसख्या शहरी क्षेत्रो मे स्थानातरित होती जा रही है। इसके अतिरिक्त कम कामकाज वाले मौसम मे अनेक कृषि श्रमिक रोजगार की तलाश मे औद्योगिक केंद्रो मे आते हैं। इस तरह उद्योगो मे काम मागने वाले व्यक्तियो की सख्या तो बढती जाती है, किंतु औद्योगीकरण की गति धीमी होने के कारण रोजगार के इच्छुक श्रमिकों को उद्योगो मे पूरी तरह खपाया नही जा पा रहा है। इस प्रकार औद्योगिक श्रमिको मे बेरोजगारी निरंतर बढ रही है।

(ब) **शिक्षित वर्ग मे बेरोजगारी** . भारतवर्ष मे शिक्षित बेकारी की समस्या मुख्यत: शहरी क्षेत्रो मे है। शिक्षित लोगो मे बेरोजगारी का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमे मैट्रिक या उससे ऊची शिक्षा प्राप्त लोग बेकार रहते हैं। शिक्षित वर्ग मे पाई जाने वाली बेरोजगारी एक भीषण समस्या है। शिक्षा क्षेत्र में 'सख्या-विस्फोट' अर्थात् अति सख्या मे विद्यार्थियो का शिक्षा प्राप्त कर निकलने के कारण, शिक्षित बेरोजगारी भी बढती जा रही है। शिक्षित व्यक्तियो की बेकारी का सही अनुमान लगाना बहुत कठिन है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस प्रकार के बेकार व्यक्तियो की सख्या रोजगार के अवसरो की उपलब्धि तथा पूर्ति और माग मे असतुलन पैदा हो जाने के कारण अधिक हो रही है। प्रति वर्ष कितने ही नए कालेज तथा स्कूल खुलते हैं और प्रत्येक वर्ष शिक्षा प्राप्त करके युवक ज्यादा से ज्यादा सख्या मे निकल रहे हैं और इस प्रकार रोजगार या काम की तलाश करने वाले व्यक्तियो की सख्या रोजगार के अवसरो की तुलना मे बढती जा रही है। दोषयुक्त शिक्षा-प्रणाली से भी यह बेकारी बढती है। हमारी शिक्षा प्रणाली पुस्तकीय है, उससे व्यावसायिक या प्राविधिक स्वरूप बहुत कम है। वह किसी विशेष कार्य के लिए प्रशिक्षित नही करती। यही कारण है कि बहुत से शिक्षित लोग बेरोजगार रहते हैं। भारतवर्ष मे शिक्षित बेरोजगारो की समस्या अत्यत गभीर होती जा रही है, जिसका अनुमान सारिणी 2 के अको से लगाया जा सकता है।

अतः सबसे अधिक चिंता की बात यह है कि हमारे देश मे शिक्षक, इजीनियर तथा अन्य व्यवसाय वाले बेरोजगारो की एक सेना बन गई है।

शिक्षित बेरोजगारी की समस्या को हल करने को प्राथमिकता देनी चाहिए। क्योंकि "शिक्षित बेरोजगार अपनी आवाज उठा सकता है, उसका अपने क्षेत्र मे प्रभाव होता है, वह यह अनुभव करता है कि उसके साथ अन्याय हुआ है, अगर उसे लबे समय तक बेकार रहना पडा तथा बेरोजगारो की सख्या मे उसरोत्तर वृद्धि होती रही जैसा

कि भारत मे है तो उनमे विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है और यह स्थिति निश्चय ही विस्फोटक रूप धारण कर सकती है।" अत शिक्षित बेरोजगारी देश की सुरक्षा तथा स्थिरता के लिए भयानक सिद्ध हो सकती है। यही नही, लोगो को शिक्षित करने मे राष्ट्र की काफी सपत्ति खर्च करनी पडती है।

सारणी 2. भारत मे शिक्षित वर्ग मे बेरोजगारी

(हजारो मे)

	1951	1961	1966	1971	1976
1 मैट्रिक	187 0	463 6	619 5	1101 2	2829
	(76 5)	(78 5)	(65 7)	(69 4)	(55 4)
2. स्नातकपूर्व (हायर सेकेंड्री तथा इटर आदि)	30 6	70 8	204 4	443 9	1255
	(12 5)	(12 0)	(23 1)	(24 4)	(24 6)
3. स्नातक तथा स्नातकोपरात शिक्षा प्राप्त	26 8	55 8	93 6	276 5	1020
	(11 0)	(9 5)	(11 2)	(15 8)	(20 0)
	244 4	590 2	917 5	1821 6	5104

नोट— कोष्टक मे दिए गए आकडे कुल के प्रतिशत के रूप मे है।

शिक्षित व्यक्तियो मे बढती हुई बेकारी के खतरे के साथ साथ कई व्यवसायो मे जनशक्ति की कमी का विरोधाभास पाया गया है। हाल ही मे इजिनियरिंग ग्रेजुएट और डिप्लोमा होल्डर की बेकारी देश के कई भागो मे बताई गई है। एक अनुमान के अनुसार इजीनियर स्नातको तथा डिप्लोमा वालो की कुल सख्या का 20% 1970 म बेरोजगार था। लेकिन साथ ही कुछ व्यावसायिक और तकनीकी क्षेत्रो मे श्रमिको का अभाव भी है। जैसे—इलेक्ट्रिकल इजीनियर, कैमिस्ट, टर्नर फार्मसिस्ट व ड्राफ्टसमैन आदि की कमी बनी हुई है। कुछ व्यवसायो मे आवश्यक जनशक्ति की कमी और कुछ व्यवसायो में आवश्यक जनशक्ति से अधिक लोग उपलब्ध होना इस बात का प्रमाण है कि शिक्षा और व्यवसाय मे समुचित सतुलन नही रखा गया है अर्थात् हमारे देश म मनुष्य शक्ति के नियोजन मे काफी दोष है। फलत एक ओर रोजगार चाहने वालो की सख्या बढती जाती है और दूसरी ओर कई काम धधे ऐसे हैं जिनके लिए उपयुक्त व्यक्ति नही मिलते हैं।

कारण इस प्रकार की बेरोजगारी के प्रमुख कारण सक्षेप म इस प्रकार हैं—

(i) विद्यार्थियो की बढती हुई सख्या।

(ii) सैद्धातिक शिक्षा प्रणाली।

(iii) भारतीय विद्यार्थियो द्वारा शारीरिक श्रम करने म सकोच।

(iv) प्रशिक्षण सस्थाओ का अभाव।

(v) विभिन्न व्यवसायो के सबध मे प्रदर्शन व सूचना प्रदान करने वाले सगठनो का अभाव।

(vi) सयुक्त परिवार प्रणाली के कारण युवको में कार्य ढूढने की चिंता का अभाव।

(vii) अर्थव्यवस्था का अल्प विकसित रूप।

उपाय : देश मे शिक्षित बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए हमे (i) शिक्षा-प्रणाली को व्यवसायमूलक बनाना पड़ेगा, और (ii) आर्थिक विकास की गति को तीव्रतर करना पड़ेगा ताकि प्रशिक्षित व्यक्तियो को शीघ्र ही कार्य मिल सके।

बेरोजगारी के कारण

भारतवर्ष मे विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी के कारण भिन्न भिन्न हैं तथापि हम कतिपय सामान्य कारणो का उल्लेख कर सकते हैं जो निम्न है

1 **जनसख्या मे तीव्र वृद्धि :** हमारी जनसख्या मे प्रतिवर्ष लगभग 2 5% से वृद्धि हो रही है। जनसख्या की इस तीव्र वृद्धि के कारण हमारी श्रम शक्ति भी तेजी से बढ रही है, परतु रोजगार के अवसर उसी गति से नही बढ सके हैं। फलत देश मे बेरोजगारी की समस्या उग्र है।

2 **कृषि का पिछड़ापन** भारतीय कृषि करने का ढग अब भी पुराना है। कृषि उद्योग अविकसित है और वर्षा पर अधिक निर्भर है जिससे उसका स्वरूप अधिक मौसमी है। कृषि की इस पिछडी हुई अवस्था के कारण इसमे अधिक लोगो को रोजगार प्रदान नही किया जा सकता।

3 **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली** हमारी शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है क्योकि वह अधिक तर साहित्यिक है व्यावसायिक नही, जिसके फलस्वरूप शिक्षित बेकारी देश मे अधिक है। प्रत्येक वर्ष हमारे विश्वविद्यालयो मे हजारो विद्यार्थी बी० ए०, एम० ए० पास करते हैं, लाखो की सख्या मे विद्यार्थी हाईस्कूल व इटर की परीक्षाए पास करते हैं। फलत प्रतिवर्ष शिक्षित वर्ग मे कार्य ढूढने वाले तथा कार्य अवसरो मे अतर बढता जाता है।

4 **अन्य कारण** उपर्युक्त आधारभूत कारणो के अतिरिक्त देश मे व्याप्त बेरोजगारी की समस्या के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं—

(क) ब्रिटिश काल मे जो नीति अपनाई गई उससे हमारे देश मे कुटीर व लघु उद्योग का ह्रास हुआ है, वे अभी तक पर्याप्त मात्रा मे उचित ढग से विकसित नही हो सके।

(ख) देश के प्राकृतिक साधनो की क्षमता का पूर्णतया उपयोग नही किया गया है।

(ग) कृषि तथा अन्य उद्योगो मे पूजी का अभाव है।

(घ) भारत मे श्रमिको की गतिशीलता का अभाव है।

(ङ) देश मे अशिक्षित व अकुशल श्रमिको का आधिक्य है।

(च) बहुत से उद्योगो मे लागत कम करने के उद्देश्य से **नवीनीकरण व आधु-**

निकीकरण के कार्यक्रम अपनाए गए हैं जिससे थोड़े-बहुत श्रमिकों की छटनी हो गई है।

(छ) पिछले कई वर्षो मे कई विभाग जो युद्धकाल म स्थापित किए गए थे जैसे नागरिक सभरण विभाग आदि अब बद कर दिए गए हैं।

(ज) देश का औद्योगीकरण भी धीमी गति से हो रहा है। हाल ही मे विदेशी मुद्रा की कठिनाइयो के कारण आयात पर बहुत से प्रतिबध लगा दिए गए हैं जिससे कि औद्योगीकरण की गति मे शिथिलता आ गई है।

(झ) देश मे मानवीय शक्ति का उचित नियोजन नहीं हुआ है। देश की सामाजिक स्थिति ने कुछ अश तक बेरोजगारी की समस्या को और अधिक कठिन कर दिया है जैसे जातिप्रथा, बालविवाह व अन्य सामाजिक कुरीतियो के कारण श्रम की गतिशीलता मे अभाव पाया जाता है।

(ञ) इसके अतिरिक्त लघु व कुटीर उद्योग का ह्रास, उपलब्ध औद्योगिक क्षमता का पूर्ण उपयोग न होना, ऊची लागत अर्थव्यवस्था, सूखा मदी व अवमूल्यन की दशाए तथा समाज की बदलती परिस्थितियो मे मध्यम श्रेणी की स्त्रियो का श्रमबाजार मे प्रवेश आदि को बेरोजगारी के अन्य कारणो के अतर्गत उल्लेख किया जा सकता है।

सुझाव

बेरोजगारी की समस्या देश मे अत्यत गभीर है और इसको शीघ्र से शीघ्र दूर करना अत्यत आवश्यक है। यदि 'साठ' का दशक भारत मे खाद्य समस्या हल करने का दशक रहा है, तो 'सत्तर' का दशक हमारे लिए बेरोजगारी दूर करने का दशक रहना चाहिए। विकास कार्यक्रम इस आधार पर बनाए जाने चाहिए कि "सब लोगों को रोजगार मिले।" श्री वी० वी० गिरि के अनुसार बेरोजगारी को दूर करने के लिए हमे शीघ्र ही सबके लिए रोजगार की भावना से युद्ध-स्तर पर सक्रिय उपाय करने होगे।

बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए निम्नलिखित दीर्घकालीन और अल्पकालीन उपायो का उपयोग किया जाना चाहिए—

1 **दीर्घकालीन उपाय** बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए अपनाई गई दीर्घकालीन नीति मे निम्नलिखित बातो का होना अत्यत आवश्यक है—

(i) **जनसख्या नियत्रण** जनसख्या की तीव्र वृद्धि पर शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण नियत्रण लगाना अत्यत आवश्यक है। इसके लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रभावशाली ढग से तेजी के साथ चलाया जाना चाहिए और जन्म दर शीघ्रातिशीघ्र 40 से 25 तक घटाने के प्रयत्न होने चाहिए। चीन मे भी पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने के लिए जनसख्या नियत्रण नीति अपनाई गई है।

(ii) **तीव्र आर्थिक विकास** देश मे आधारभूत उद्योगो का विकास शीघ्रता से होना चाहिए जिससे रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होगे। विशेषकर शिक्षित तथा कुशल व्यक्तियो के लिए तथा कृषि मे अतिरिक्त जनशक्ति हटाकर उद्योगो मे लगाई जा सकेगी लेकिन औद्योगीकरण के ये लाभ तभी मिल सकेंगे जबकि वह विकेंद्रित हो, छोटे सहायक उद्योगो व बृहद उद्योगो के बीच उचित समन्वय रखा जाए और पूजी

प्रधान उद्योगो की अपेक्षा श्रम प्रधान उद्योगो के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाए।

सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पादन मे वृद्धि होती है और रोजगार का विस्तार होता है। किन्तु अतर्राष्ट्रीय श्रम सघ द्वारा एकत्र किए आकडा मे स्पष्ट होता है कि उत्पादन और रोजगार मे विस्तार के बीच सह सबध (Correlation) का अभाव है जैसा कि नीचे की तालिका के अका से पता चलता है। उदाहरणार्थ कनाडा मे 1967 व 1969 के बीच उत्पादन मे 47% की वृद्धि हुई किंतु रोजगार मे केवल 18% की वृद्धि हुई।

सारणी 3

1967 और 1969 के दौरान उत्पादन और रोजगार मे प्रतिशत वृद्धि

देश	उत्पादन मे प्रतिशत वृद्धि	रोजगार मे प्रतिशत वृद्धि
कनाडा	47	18
यू० एस० ए०	46	19
प० जर्मनी	47	3
यू० के०	26	शून्य
जापान	127	14
भारत	15	9

हाल मे प्राप्त प्रमाणों ने इस बात को भी गलत सिद्ध कर दिया गया है कि आर्थिक विकास मे बेरोजगारी कम करने की सामर्थ्य होती है। कम से कम विकसित देशो के सबध मे यह बात ठीक है जैसे ब्रिटेन मे 1970 71 की अवधि मे सभी उद्योगो मे उत्पादन मे 2% की वृद्धि हुई परतु रोजगार मे 5% की कमी हुई। विकसित देशो मे विद्यमान इस परिस्थिति का मुख्य कारण तकनीकी परिवर्तन है जिसस उत्पादन मे वृद्धि हुई है परन्तु इससे रोजगार के प्रत्यक्ष विस्तार पर कोई प्रभाव नही हुआ। इसस यह सार निकलता है कि तीव्र आर्थिक विकास का अनिवार्य रूप से अथ कम से कम समय मे अधिक रोजगार नही होता बल्कि बेरोजगारी समस्या को हल करने के लिए विशिष्ट प्रोग्राम बनाने की आवश्यकता है।

प्रश्न यह उठता है कि रोजगार के स्तर मे विस्तार करने के लिए अतिरिक्त विनियोग के लिए पूजी कहा से प्राप्त होगी। अथशास्त्रियो ने पूजी एकत्र करने के लिए विभिन्न उपाय बताए है। वाचू समिति के अनुसार लगभग 7 हजार करोड रुपए का काला धन है। इसी प्रकार करों और सरकारी आय के अन्य साधनो म 840 करोड रुपये की वसूली बकाया है। इसके अतिरिक्त कृषि आय पर कर तथा सपत्ति पर करारोपण की वतमान प्रणाली मे सुधार करने पर (राजसमिति के अनुसार) सरकार द्वारा प्रति

वर्ष 400 करोड रुपये प्राप्त किया जा सकता है। नगरीय क्षेत्र म खाली भूमि के राष्ट्रीय करण म तथा सार्वजनिक क्षेत्र की उत्पादन इकाइयो के सगठन व प्रबंध व्यवस्था मे सुधार म भी विनियोग को बढाया जा सकता है।

(iii) **शिक्षा-प्रणाली मे सुधार** वर्तमान पुस्तकीय शिक्षा प्रणाली को तकनीकीय और व्यावसायिक रूप दिया जाना चाहिए। शिक्षा-प्रणाली को इस तरह व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि कर्मचारियो की आवश्यकताओ के बदले हुए ढाच स उसका सामजस्य हो सके।

(iv) **निर्माण-कार्यों मे वृद्धि** देश मे यातायात सेवाओ तथा जनकल्याण सेवाओ के विकास की आवश्यकता है। यातायात के क्षेत्र मे रोजगार की सभावनाए बहुत अधिक हैं। अत इस क्षेत्र का तेजी स विकास किया जाना चाहिए क्योंकि इसके द्वारा राष्ट्रीय सपत्ति बढेगी तथा साथ ही-साथ रोजगार भी बढेगा। इसी प्रकार हमारे देश म सामाजिक तथा लोकहितकारी सेवाओं जैसे शिक्षा स्वास्थ्य चिकित्सा आदि का अत्याभाव है अत इन सामाजिक सेवाओ के विस्तार म जनकल्याण म वृद्धि होन के साथ साथ बेरोजगारी निवारण मे सहायता मिलगी।

(v) **रोजगार कार्यालय का विस्तार** सारे राज्य म रोजगार कार्यालयो का जाल सा बिछा देना चाहिए ताकि श्रम की गतिशीलता म वृद्धि हो और जो बेरोजगारी केवल कार्य खोजने के कारण है वह दूर हो। विभिन्न विश्वविद्यालयो म रोजगार विभाग खोलकर शिक्षितो को उचित काम के बारे मे मार्गदर्शन कराना आवश्यक है।

(vi) **मनुष्य शक्ति का नियोजन** भारत म मनुष्य शक्ति के नियोजन म काफी दोष है इसलिए आवश्यक है कि देश म वैज्ञानिक ढग से मनुष्य-शक्ति का नियोजन किया जाए। कायकुशल जनशक्ति की कमी को समाप्त हुए प्रशिक्षण-प्राप्त और अनुभवहीन जनशक्ति का सही अनुमान लगाते हुए रोजगार के अवसर अधिकाधिक उपलब्ध कराकर जनशक्ति योजना को उचित ढग से क्रियान्वित किया जाए। यह सन्तोष की बात है कि पिछले कुछ वर्षों म इस दिशा मे प्रयत्न किए गए है। इसके लिए सन 1962 म केन्द्रीय मनुष्य शक्ति अनुसधान सस्था दिल्ली म स्थापित की गई है।

(vii) **सामाजिक सुधार** भारत मे सामाजिक ढाचे म उपयुक्त परिवर्तन किया जाए ताकि जाति प्रथा संयुक्त परिवार प्रणाली आदि के दोष दूर हो सके और श्रमिकों की गतिशीलता म वृद्धि होकर रोजगार के अवसर बढ सकें।

(viii) **अनुकूल उत्पादन तकनीक का चुनाव** भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश म जहा बहुत अधिक मात्रा म श्रम शक्ति पाई जाती है और जिसम जनसख्या वृद्धि के साथ साथ वृद्धि होती जा रही है पूजी प्रधान तकनीको का अधाधुध उपयोग रोजगार की दृष्टि स हानिकारक सिद्ध हुआ है। वस्तुत हम श्रम प्रधान तकनीको का उपयोग करना चाहिए जिसस उत्पादिता तथा रोजगार म एक साथ वृद्धि प्राप्त की जा सके। इसी तथ्य को निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है—

चित्र म OW रेखा श्रम के विभिन्न स्तरो पर अर्थ व्यवस्था म मजदूरी की मात्रा प्रदर्शित करती है तथा TP रेखा उस उत्पादन की मात्रा को बतलाती है जो श्रम व
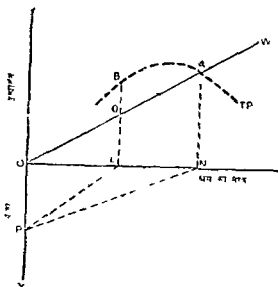
चित्र स० 1

पूंजी की मात्रा के विभिन्न संयोगो से प्राप्त की जा सकती है। यदि पूंजी की OP मात्रा लेकर और श्रम की OL मात्रा से उत्पादन किया जाता है तो उत्पादन BL और मजदूरी CL होगी अर्थात् BC विनियोजन योग्य आधिक्य प्राप्त होगा। यह पूंजी प्रधान विधि है। अब यदि हम पूंजी की पूर्ववत् मात्रा अर्थात OP के साथ श्रमिकों की अधिक मात्रा ON (अर्थात् श्रम प्रधान विधि का सहारा लें) से उत्पादन करें तो विनियोजन आधिक्य शून्य होगा, क्योंकि मजदूरी AN उत्पादन AN के बराबर है। परन्तु जहा तक रोजगार की मात्रा व कुल उत्पादन की बात है श्रमप्रधान विधि पूंजीप्रधान विधि से उत्तम है क्योकि श्रमप्रधान विधि मे रोजगार की मात्रा ON है जबकि पूजीप्रधान विधि मे रोजगार की मात्रा केवल OL है। कुल उत्पादन श्रमप्रधान विधि मे ON × NA है जबकि पूंजी प्रधान विधि मे केवल OL × LB ही है। ON × NA निश्चित ही OL × LB से अधिक है। स्पष्ट है कि श्रमप्रधान विधि मे विनियोग योग्य आधिक्य तो कम है लेकिन यह अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगार प्रदान करती है।

2 **अल्पकालीन उपाय** अल्पकाल मे बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए निम्न उपाय किए जाने चाहिए

(i) **सघन कृषि** सिंचाई की सुविधा बढ़ाकर उन्नत बीज खाद दवा आदि कृषि की आवश्यक वस्तुएं किसानो को उपलब्ध कराकर हम अधिक से अधिक क्षेत्र सघन कृषि के अतर्गत लाना चाहिए जिससे प्रति हक्टर उत्पादन बढ़ेगा और साथ ही इस क्षेत्र मे रोजगारी भी बढ़ेगी।

(ii) **सघन फसल कार्यक्रम** अधिक से अधिक क्षेत्र मे प्रतिवर्ष एक से अधिक फसलें होने के लिए सघन फसल कार्यक्रम कार्यान्वित किया जाना चाहिए जिससे वर्ष भर मे एक से अधिक फसले उगाने से मौसमी बेरोजगारी की समस्या हल होगी।

(iii) **कृषि सहायक उद्योगो को प्रोत्साहन** पशुपालन, दुग्धव्यवसाय, मुर्गी पालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, सुअर पालन, आदि कृषि सहायक उद्योगो को

अपनाकर रोजगार के अवसर म पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है।

(iv) **कृषि उद्योगो का विकास** कृषि म वैज्ञानिक ढग अपनाकर इसकी रोजगार प्रदान करने की क्षमता को बढाया जा सकता है। रासायनिक खादो उर्वरक, मिश्रण तथा कीटनाशक दवाइया आदि की सुविधा उपलब्ध होने से न केवल भूमि के प्रति एकड उत्पादन मे वृद्धि होगी बल्कि इनके निर्माण से सबधित उद्योगो का भी विकास होगा। इसमे ग्रामीण क्षत्र मे रोजगार बढेगी।

(v) **कुटिर व लघु उद्योगो का विकास** कताई-बुनाई, मिट्टी का काम, चम उद्योग आदि कुटीर व लघु उद्योगो का विकास किया जाए ताकि एक ओर कृषक वर्ग की आय बढे और दूसरी ओर भूमि पर जनसख्या का दबाव घटे। श्री वी० वी० गिरि के अनुसार, 'हर घर म एक कुटीर उद्योग तथा हर एकड भूमि पर चरागाह हमारा ध्येय होना चाहिए।

(vi) **अन्य अल्पकालीन सुझाव** बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए बाहर से आने वाले शरणार्थियो पर प्रतिबध लगाना चाहिए। गदी बस्तियो की सफाई के तथा कम आय वालो के लिए गृह निर्माण के कायक्रम शहरी क्षेत्रो मे अपनाए जाने चाहिए। अधिकाश अतिरिक्त श्रमशक्ति का प्रयोग ग्रामो म उत्पादन काय आरभ करक करना चाहिए,जैसे कि उाम और मध्यम सिचाइ काय भूमि का सुधार व वृक्षो का लगाना आदि।

लघु उद्योगो द्वारा रोजगार बढाने के लिए प्रत्यक गाव व कुछ गावो के समूह का औद्योगिक बस्तियो के आधार पर सगठित करना चाहिए। इन औद्योगिक बस्तिया म साधारण मशीनें लगा दे ी चाहिए जहा श्रमिक आकर काय करें और वस्तुओ का निर्माण कर सकें।

पचवर्षीय योजनाओ के अतर्गत बेरोजगारी को दूर करने के प्रयत्न

1 **प्रथम पचवर्षीय योजना** प्रथम योजना मे खाद्य समस्या, कच्च माल का अभाव आदि अन्य समस्याओ के कारण बेरोजगारी की समस्याओ व इनके समाधान पर गहराई म विचार नही किया गया। यह ठीक है कि बाद म 1953 म इस समस्या का स्वरूप कुछ स्पष्ट होता गया। 1953 के अत म योजना आयोग ने रोजगार अवसर की उन्नति के लिए 11 सूत्री कायक्रम बनाया जिसम लघु उद्योग यातायात शिक्षा के विकास के लिए सुझाव दिए। प्रथम योजना म 75 लाख व्यक्तियो को काम दिलाने का लक्ष्य रखा गया। परतु इस अवधि म अनुमानत 54 लाख बरोजगारो के लिए काम धधो की व्यवस्था की जा सकी।

2. **द्वितीय योजना** द्वितीय योजना के आरभ म बेकारी की समस्या भीषण रूप म थी। इस योजना के आरभ के समय 53 लाख व्यक्ति बेरोजगार थ। इन पाच वर्षो मे कार्य ढूढने वालो की सख्या म 1 करोड की वृद्धि हो जाने की सभावना थी। दूसरी योजना मे 96 लाख व्यक्तियो को रोजगार दिलाने का लक्ष्य था जिसम 16 लाख कृषि क्षेत्र मे और 80 लाख गैर कृषि क्षत्र म थ। किंतु साधनो की कमी के कारण दूसरी

योजना का आकार घटा दिया गया तथा गैर कृषि क्षेत्र मे 65 लाख व्यक्तियो को ही रोजगार दिया गया। इस योजना के अत मे बेरोजगारो की सख्या 71 लाख हो गई। इससे स्पष्ट है कि द्वितीय योजना के अत तक बेरोजगारी की समस्या सुधरने के बजाय और भी अधिक गभीर हो गई।

3 **तृतीय योजना** तृतीय योजना मे कहा गया है कि रोजगार देना भारत मे नियोजन का एक प्रमुख लक्ष्य है। अनुमान किया गया है कि तृतीय योजना मे श्रम शक्ति मे लगभग 1 करोड 70 लाख व्यक्तियो को प्रवेश दिया जाएगा। परतु इस योजना मे *केवल 140 लाख व्यक्तियो को रोजगार देने की व्यवस्था की गई। तीसरी योजना मे* रोजगार सबधी प्रयत्न मुख्यत. तीन दिशाओ मे किए गए है—

(अ) यह प्रयत्न किया गया है कि पहले की अपेक्षा इस बार रोजगार का लाभ अधिक लोगों को समान रूप मे मिले।

(ब) गाव मे औद्योगीकरण का व्यापक कार्यक्रम चलाया जाए जिससे ग्रामीण *अर्थव्यवस्था* मे चेतना जागृत हो।

(स) गावो मे निर्माण कार्य चलाया जाए, जिसमे 25 लाख व्यक्तियो को वर्ष मे औसतन 100 दिन काम मिल सके। स्पष्ट है कि तृतीय योजना मे बेकारी व अर्द्ध बेकारी की समस्या को हल करने के लिए पर्याप्त उपाय सोचे गए। किंतु दुर्भाग्यवश विभिन्न आर्थिक और राजनैतिक सकटो के कारण इस योजना मे लगभग 1 करोड 30 लाख व्यक्तियों को ही रोजगार प्रदान किया जा सका। जबकि 2 करोड 36 लाख रोजगार अवसरो की आवश्यकता थी।

4 **चौथी योजना** (1969-74) *इस योजना की रूपरेखा मे रोजगार के सबध* मे आकडो का प्रयोग नही किया गया। इसमे केवल इतना ही कहा गया कि विभिन्न क्षेत्रों के विकास कार्यक्रम चौथी योजनावधि मे रोजगार के काफी अवसर उत्पन्न कर देंगे और इसके लिए कई कारण बताए गए हैं जैसे—

1 श्रम प्रधान योजनाओ पर अधिक बल देना, 2 गैर कृषि क्षेत्र मे रोजगार मे *अधिक तेजी से वृद्धि, 3 कृषि विकास की बढती हुई गति, 4 खनिज तथा निर्माण* उद्योगो पर अधिक जोर, 5 ग्रामीण क्षेत्रो के विद्युतीकरण, 6 शिक्षा, स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन जैसी सेवा व्यवस्थाओ मे रोजगार वृद्धि 7 व्यापार, वाणिज्य और वित्तीय क्रिया-कलापो के क्षेत्र मे विस्तार।

5 **पाचवीं पचवर्षीय योजना** पाचवी योजना मे बेरोजगारी को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चुनौती के रूप मे स्वीकार किया गया। पिछली योजनाओं में किए गए विनियोग अपेक्षित मात्रा मे रोजगार के अवसर उत्पन्न नही कर पाए। अत चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अनुभवों के आधार पर पाचवी पचवर्षीय योजना मे ऐसी परियोजनाओं को महत्त्व दिया गया जो श्रम प्रधान हो। शिक्षित बेरोजगारो की समस्या को हल करने के लिए नये उत्पादन कार्य खोजने तथा रोजगार के लिए बैंको के माध्यम से सभी आवश्यक सुविधाए उपलब्ध करने के प्रयास किए गए। इसके अतिरिक्त शिक्षा को रोजगार-उन्मुख करने का प्रयास किया गया।

रोजगार व्यूह-रचना का प्रमुख अग ग्रामीण लोगो की आय मे वृद्धि करना है। पाचवी योजना मे SFDA एव MFAL योजनाओ पर अधिक ध्यान दिया गया। 1976-77 मे इन योजनाओ के लिए 260 करोड रुपये स्वीकृत किए गए। तकनीकी योग्य व्यक्ति ग्रामीण प्रमुख सेवा केंद्रों की स्थापना कर सकते हैं। वे कृषकों को उत्तम तकनीकी एव प्रबध व विपणन के अच्छे ढग एव अच्छी तकनीक म सहायता कर सकते हैं। पाचवीं योजना का मुख्य अग प्रशिक्षण के गुण का एकत्रीकरण एव विकास करना रहा है।

छठी योजना मे रोजगार नीति

छठी योजना मे रोजगार जनन गरीबी हटाओ प्रोग्राम का एक प्रधान अग ही समझा गया था। गरीबी हटाने के लिए विधि का उल्लेख करते हुए नयी छठी योजना (1980-85) का मत इस प्रकार है इस समस्या के समाधान के लिए केवल विकास प्रक्रिया पर ही निर्भर रहना युक्ति सगत नही होगा। इसके लिए विशेष नीति सबधी उपायो की आवश्यकता होगी ताकि न केवल उत्पादन की सरचना को जनोपभोग की वस्तुओ के पक्ष म प्रभावित किए जाए बल्कि एक अधिक सतुलित क्षेत्रीय एव वर्ग सबधी वितरण का भी आश्वासन देना होगा। पिछड क्षेत्रो मे विकास को त्वरित करने के लिए विशेष ध्यान देना होगा। श्रम प्रधान ग्राम तथा लघु उद्योगो के विकास के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन देने होगे। हमारी सार्वजनिक नीतियो के वितरण सबधी प्रभाव को निर्धन वर्गों के पक्ष म परिवर्तित करने के लिए सस्थानात्मक सुधार अपेक्षाकृत अधिक तेजी से लागू करने होगे।

रोजगार बढाने के मुख्य क्षेत्र हैं कृषि ग्राम विकास ग्राम तथा लघु उद्योग भवन निर्माण, सार्वजनिक प्रशासनिक सेवाए। छठी योजना (1980 85) म 341 लाख मानव वर्ष रोजगार कार्यक्रम किया जाएगा जो योजनाकाल के दौरान श्रम शक्ति मे वृद्धि के लगभग बराबर होगा। इस प्रकार रोजगार म 4 17 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि होगी जो श्रम शक्ति म 2 54 प्रतिशत की इस काल मे वार्षिक वृद्धि स कही अधिक है। छठी योजना के प्रारूप म राष्ट्रीय ग्रामीण सेवायोजना कार्यक्रम (एन० आर० ई० पी०) के अन्तर्गत 50 लाख श्रम के कार्य का प्रावधान था पर अतिम दस्तावेज म इसमे काफी कमी हो गई। समन्वित ग्रामीण विकास के अन्तर्गत 150 लाख परिवारो को गरीबी की रेखा म ऊपर उठाने का लक्ष्य है लेकिन इसमे ध्यान उन्ही 100 लाख परिवारो पर दिया जा रहा है जो कृषि तथा आनुषगिक कार्यों मे लगे हैं अत इसकी भी सभावनाए उज्ज्वल नही दिखाई पड रही हैं।

भार क्षमता में 0.4% से अधिक की वृद्धि नही होगी और यदि श्रम समावेश की दृष्टि से देखें तो भी यह 1.5% से अधिक नही आती है।

स्व-रोजगार के लिए मार्ग-दर्शन समिति का गठन

योजना आयोग ने केंद्रीय सरकार को रोजगार योजना के बारे मे सलाह देने के लिए "स्व-रोजगार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मार्ग-दर्शन समिति" गठित की है। यह समिति रोजगार सृजन परिषद और जिला मानव शक्ति योजनाओ के कार्यों पर नजर रखेगी।

योजना आयोग के सदस्य डा० एम० एस० स्वामीनाथन की अध्यक्षता म उच्च स्तरीय राष्ट्रीय समिति की पहली बैठक 2 मई, 1981 को होनी थी। राष्ट्रीय समिति के विचारणीय विषय इस प्रकार हैं—

1. सभी आर्थिक क्षेत्रो मे स्व-रोजगार को प्रोत्साहन देने के तौर-तरीको के बारे मे सुझाव देना।

2. रोजगार कार्यालयो के पुनर्गठन से सबधित विषयो पर सलाह देना ताकि रोजगार कार्यालय स्व-रोजगार शुरू करने के लिए इच्छुक लोगो का मार्ग-दर्शन कर सकें।

3 जिला ऋण योजनाओ को आधारभूत प्रशिक्षण, सरचना, विपणन सुविधाएं और मार्ग निर्देशन सेवाओ के समन्वय के लिए जिला स्तर पर उचित कदम उठाने के बारे मे सुझाव देना।

राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष डा०एम० एस० स्वामीनाथन के अतिरिक्त 69 सरकारी और गैर सरकारी सदस्य शामिल हैं।

परीक्षा-प्रश्न

1 बेकारी की अवधारणा को समझाइए तथा इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए कि 'किसी व्यक्ति को तभी बेरोजगार कहा जा सकता है जबकि उसे रोजगार प्राप्त करने की इच्छा तो हो परतु यह उसे मिलता नही।"

2. बेरोजगारी से उत्पन्न होने वाली विभिन्न बुराइयो का उल्लेख कीजिए तथा उनके निवारणार्थ उपाय बताइये।

3 बेरोजगारी से सबधित विभिन्न सिद्धातो का विवेचन कीजिए। कीन्स के बेरोजगारी के सामान्य सिद्धात को भी समझाइये।

4. भारत म बेरोजगारी की समस्या का विवेचन कीजिए। इस समस्या के समाधान के लिए सरकार ने क्या उपाय किए हैं? अपने सुझाव भी दीजिए।

5. "चारो योजनाओ के क्रियान्वित होने के बाद भी देश मे बेरोजगारी की समस्या को समाप्त नहीं किया जा सका है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए और समस्या को दूर करने के उपाय बताइए।

6 "मानव-शक्ति के समुचित उपयोग की समस्या जितनी भारत के समक्ष आज उग्र है उतनी सभवतः अन्य किसी देश के समक्ष नही है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

अध्याय 19

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
(International Labour Organisation)

संक्षिप्त इतिहास : अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सन् 1919 में वर्सलीज की संधि के फलस्वरूप स्थापित हुआ। इस संघ का प्राथमिक उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शांति बनाए रखना था, परंतु यह अनुभव किया गया कि शांति केवल उसी स्थिति में स्थापित हो सकती है, जब कि वह सामाजिक न्याय पर आधारित हो। इसलिए इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक था कि विश्व में कठिन परिश्रम का काम करने वाले अर्थात् श्रमिकों के साथ भी सामाजिक न्याय किया जाए। अतः जून 1919 को उच्चकोटि के समझौते करने वाले दल श्रमिकों की दशा में सुधार करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय आधार पर एक स्थायी संगठन की स्थापना करने पर सहमत हो गए। इसे अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कहा गया। इसे लीग ऑफ नेशन्स का एक अंग माना गया।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मूलभूत सिद्धांत

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का आधार ऐसे 9 आधारभूत सिद्धांतों पर है, जो कि श्रमिक चार्टर में दिए गए हैं। राष्ट्र-संघ के प्रत्येक सदस्य को इन सिद्धांतों को स्वीकार करना पड़ता है—

1 श्रम को एक वस्तु अथवा व्यापार योग्य पदार्थ के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

2. सेवायोजकों और कर्मचारियों के सभी प्रकार के वैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए श्रम बनाने के अधिकार को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।

3 देश तथा काल के अनुसार एक वांछनीय जीवन-स्तर को बनाए रखने के लिए श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4 दिन में 8 घंटे के कार्य और सप्ताह में 48 घंटे के कार्य के सिद्धांत को उन स्थानों पर लागू कर देना चाहिए, जहां ये अभी लागू नहीं।

5 सप्ताह में एक दिन अवकाश मिलना चाहिए।

6 बच्चों से काम लेना बंद होना चाहिए।

7 समान कार्य के लिए स्त्री और पुरुषों की मजदूरी में अंतर नहीं होना चाहिए।

8 प्रत्येक देश म सब देशी-विदेशी मजदूरो से समान व्यवहार तथा समान मजदूरी की व्यवस्था होनी चाहिए।

9 प्रत्येक राज्य अपने यहा ऐसा प्रशासन बनाये कि कर्मचारियो के हितो की रक्षा हो।

अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के इन उद्देश्यो मे अतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के 26वें अधिवेशन मे पुन मई 1944 मे सशोधन किया गया जिसे फिलाडेल्फिया घोषणा पत्र के नाम से जाना जाता है। यह घोषणा-पत्र उपर्युक्त आधारभूत सिद्धातो को प्रतिपादित करते हुए निम्नलिखित विशेष सिद्धातों पर बल देता है—

1 श्रमिक कोई वस्तु नही है।

2 समाज मे सगठन और बोलने की स्वतत्रता होनी चाहिए।

3 कही भी पाई जानेवाली निर्धनता प्रत्येक स्थान की समृद्धि के लिए खतरा है।

4 प्रत्येक राष्ट्र की निर्धनता और अभाव दूर करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रमुख उद्देश्य

1 प्रत्येक कार्य करने योग्य व्यक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना।
2 श्रमिको को शिक्षा और उनके प्रशिक्षण का प्रबध करना।
3 श्रमिको के कार्य व आवास की परिस्थितियो मे सुधार करना।
4 श्रमिको की आय मे वृद्धि करके उनके जीवन-स्तर को ऊचा उठाना।
5 श्रमिको की सामाजिक सुरक्षा का समुचित प्रबध करना।
6 सामूहिक सौदे के अधिकार को सम्मान व प्रोत्साहन देना।
7 प्रत्येक श्रमिक को उसके योग्य कार्य मे लगाना।
8 श्रमिको के लिए मनोरजन आदि की व्यवस्था करना।
9 समान श्रम के लिए समान मजदूरी दिलाना।
10 बाल-कल्याण की व्यवस्था करना।
11 काम करने की दशाओ म आवश्यक सुधार करना।
12 बच्चो को काम मे लगाने की मनाही करना।
13 प्रसूती सरक्षण की व्यवस्था करना।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का सविधान

1972 मे 118 राष्ट्र अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सदस्य थे। इस प्रकार यह विभिन्न राष्ट्रो का सगठन है जो कि सरकारो द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करता है और प्रजातात्रिक आधारो पर सरकारो सेवायोजको और श्रम सगठनो के प्रतिनिधियो द्वारा नियत्रित किया जाता है।

अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन अपने तीन अगो के माध्यम से कार्य करता है—(अ) अतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जो इसका स्थायी सचिवालय है (ब) अधिशासी या प्रशासन

समिति जो इसकी कार्यकारिणी है तथा (स) अतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन।

(अ) **अतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय** यह इस सगठन का स्थायी सचिवालय है जो सगठनात्मक कार्य और अन्य गतिविधियो के लिए उत्तरदायी है। यह श्रम मे सबधित सूचनाए एकत्रित और वितरित करके सम्मेलनो एव समितियो के सम्मुख पाने वाले विषयों की परीक्षा करने के बाद उन पर दस्तावेज तैयार करने और विशेष जाच-पड़ताल करने के लिए उत्तरदायी है। इसके कर्मचारी मडल मे विभिन्न देशो की श्रम-विशेषज्ञ होते हैं।

इनका मुख्य कार्यालय जिनेवा मे है। इसके क्षेत्रीय कार्यालय पाच देशो में हैं। भारत म इसकी एक शाखा दिल्ली मे है। इसके अतिरिक्त 12 देशो मे शाखा कार्यालय एव 37 देशों मे सवाददाता हैं।

(ब) **अधिशासी श्रम या प्रशासन समिति** यह सगठन भी कार्यकारिणी है। यह कार्यालय क कार्यों का सामान्य परिवेक्षण करती है। यह इसका बजट बनाती है। यह नीति निर्धारण करती है व विशेषज्ञ समितिया सगठित करती है। यह सामान्यत वर्ष मे चार बैठक करती है। यह भी त्रिदलीय आधार पर सगठित की जाती है। इसमे 24 सरकारी प्रतिनिधि, 12 उद्योगपतियो के प्रतिनिधि और 12 कर्मचारियो के प्रतिनिधि होते हैं। 24 सरकारी प्रतिनिधियो मे 10 औद्योगिक महत्व के 10 राष्ट्रो की सरकारो द्वारा नियुक्त थे।

(स) **अतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन** साधारण सभा और सगठन की सर्वोच्च-शक्ति इसमे निहित है। इसमे प्रत्येक देश चार प्रतिनिधि भेजता है जिनम से दो सरकार के, एक सेवायोजको का और एक कर्मचारियो का प्रतिनिधि होता है। इस प्रकार यह एक त्रिदलीय सभा होती है। इसका सम्मेलन वर्ष मे एक बार होता है। प्रत्येक सदस्य अपना अलग अलग मत दे सकता है।

श्रम सम्मेलन म राष्ट्रो का सविधान बनाने के लिए कुछ निर्देश दिये जाते हैं जो कि दो प्रकार के प्रस्तावो के रूप मे सामने आते हैं—(क) अभिसमय (Convention) और (ख) अभिमत या अनुशसा (Recommendation)। सम्मेलन मे 2/3 बहुमत से निर्णय होता है। दोनो प्रस्तावों मे अतर यह होता है कि अभिसमय को स्वीकार करने का नैतिक उत्तरदायित्व अधिक होता है और उसे सशोधित करके स्वीकार नही किया जा सकता।

दोनो ही प्रस्तावों को सम्मेलन की समाप्ति के 18 माह के अदर देश की विधान सभा के सामने रखना आवश्यक होता है परन्तु कोई सदस्य देश उनको मानने के लिए बाध्य नही है।

भारत एव अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन

भारत का अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन और हमारे देश की व्यवस्था दोनो ही सामाजिक न्याय के सिद्धात पर आधारित हैं। अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के त्रिदलीय सहयोग का सिद्धात, जो वर्ग सघर्ष के बिना ही सामाजिक न्याय के उद्देश्य की प्राप्ति पर जोर

देता है, का प्रभाव हमारे देश मे अत्यधिक पडा है।

आजकल भारत अनर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की प्रशासन समिति का स्थायी सदस्य है। सगठन द्वारा स्वीकृत अभिसमयो मे से भारत 30 को स्वीकार कर चुका है जिन्हें निम्न तालिका मे सग्रहीत किया जा रहा है—

सारणी : I

श्रम सगठन के अभिसमय की सख्या	विषय व वर्ष जिसमे श्रम सगठन ने पारित किया	भारत द्वारा स्वीकृत करने की तिथि
1	काम के घटे प्रतिदिन आठ और सप्ताह मे 48 मागन के लिए सप्ताह मे 60/1919	जुलाई 1921
2	बेकारी दूर की जाय 1919	1921 मे स्वीकृत 1938 मे त्याग
4	भारत मे स्त्रियो के कार्य का निषेध 1919	1921
5	न्यूनतम मजदूरी निधारण 1919	1955
6	वालको स रात्रि मे काम न लिया जाय 1919	1921
11	कृषि श्रमिकों को सगठन का अधिकार 1921	1923
14	सप्ताह म एक अवकाश दिया जाय 1921	1923
15	न्यूनतम आय निर्धारण हो। ट्रिमट तथा स्टोकर्स काम करन वालो के लिए	1922
16	समुद्र मे काम करन वाल किशोरों की डॉक्टरी जाच	1922
18	श्रमिकों की क्षति पूर्ति की जाय, यदि व्यवसाय मे कोई रोग हो। 1925	1927
19	दुर्घटना म क्षतिपूर्ति मे देशी और विदेशी मजदूरो के साथ समानता हो 1915	1927
21	उत्प्रवासी निरीक्षण अभिसमय 1926	1928
22	समुद्री व्यक्तियों की स्वीकृति की वस्तुओं का अभिसमय 1928	1932
2,	न्यूनतम मजदूरी निर्धारण व्यवस्था अभिसमय 1928	1955
27	भार चिह्नित करने वाले (नावों द्वारा ले जाय गए पार्सल) अभिसमय 1929	1931
29	बेगर्म श्रम अधिनियम 1930	1954
32	दुर्घटना के विरुद्ध सरक्षण (जहाजरानी के श्रमिक) अभिसमय (सशोधित) 1932	1948
41	रात्रि के कार्य (स्त्रिया) अभिसमय (सशोधित) 1934	1935

45	भूमिगत कार्य (स्त्रियां) अभिसमय 1935	1938
80	श्रमिक संघ के अंतर्नियमों का पुनर्वलोकन का अभिसमय 1946	1947
81	श्रम निरीक्षण अभिसमय (संशोधित) 1948	1950
89	रात्रि कार्य (स्त्रियां) अभिसमय (संशोधित) 1948	1950
90	किशोर श्रमिकों से रात्रि में कार्य न लेने संबंधी अभिसमय 1948	1950
100	समान पारितोषिक अधिनियम 1948	1950
107	देशी एवं जनजातीय जनसंख्या अधिनियम 1957	1958
111	रोजगार व धंधे में मजदूरों में भेदभाव न करने से संबंधित अधिनियम 1958	1960
116	अंतिम अंतर्नियमों में संशोधन का अभिसमय 1961	1962
118	व्यवहार की समानता (सामाजिक सुरक्षा) अधिनियम 1962	1964

इस अधिनियमों के आधार पर भारत में अधिकांश श्रम अधिनियम बनाए गए हैं। समय-समय पर इसके आधार पर बागान, कारखाना आदि अधिनियम में संशोधन भी किए गए हैं। भारत ने 31 सिफारिशें भी स्वीकार की हैं।

भारत सभी अभिसमयों को स्वीकार नहीं कर सका है। इसके कई कारण हैं जैसे—(अ) अभिसमय का यह नियम है कि उसे पूरा ही स्वीकार करना होता है। भारत में बहुधा ऐसी परिस्थितियां रही हैं कि पूरी तरह से अभिसमयों को स्वीकार करना संभव नहीं था। भारत की आंतरिक परिस्थितियां इस प्रकार की हैं कि अनेक अभिसमयों को कुछ शर्तों के आधार पर ही अपनाया जा सकता है। परंतु अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के नियमों में इस प्रकार की कोई छूट नहीं है। (ब) भारत में सन् 1947 तक विदेशी सरकार थी जो कि श्रम-हित के संबंध में उदासीन थी। (स) भारतीय श्रम-आंदोलन की शिथिलता के कारण भी सरकार पर जोर नहीं डाला जा सका कि वह आवश्यक विधान बनाए। (द) अनेक अभिसमय इस प्रकार के हैं कि जिनके लागू होने से वर्तमान व्यवस्थाओं में उद्योगों पर अत्यधिक भार पड़ेगा।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का भारतीय श्रम संघ आंदोलन पर प्रभाव

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारत में श्रमिक संघ आंदोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में आधुनिक श्रम संघ आंदोलन का प्रारंभ प्रथम महायुद्ध के बाद ही हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत में श्रमिक संघ आंदोलन का प्रारंभ भी अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना के साथ ही हुआ। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने भारतीय श्रम संघ आंदोलन को कई प्रकार से प्रभावित किया है। इसने भारतीय श्रमिक वर्ग में सुरक्षा व एकता की भावना पैदा कर दी जो कि अब तक अपने को बहुत ही असहाय अनुभव कर रहे थे। इसने श्रमिकों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना उत्पन्न

की ओर उन्हे अन्य देशो के श्रम आदोलना की प्रगति से, पत्रिकाओ एव श्रम रिपोर्टों आदि के माध्यम से अवगत कराया है। उनके प्रतिनिधियो ने अतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो मे भाग लिया है। अन्य देशों के प्रतिनिधि मडलो ने अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के विचार विमर्शो मे भारत के कर्मचारियो की सक्रिय रुचि को बढाया है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के माध्यम से अतर्राष्ट्रीय सपर्कों ने भारतीय श्रम आदोलन की महान् सहायता की है। नई दिल्ली में क्षेत्रीय सम्मेलन सन् 1947 मे हुआ जिसने भारत के श्रम आदोलन को बडी प्रेरणा प्रदान की। श्रमिक सघो के प्रतिनिधियो ने भारत सरकार द्वारा गठित त्रिदलीय सगठनो मे श्रम सन्नियम, श्रम नीति एव श्रम प्रशासन सबधी बातो पर विचार विमर्श करने के लिए समय समय पर भाग लिया है। दक्षिण पूर्व एशिया मे स्वतत्र श्रमिक सघवाद को विकसित करने के लिए इटरनेशनल कान्फेडरेशन आफ दि ट्रेड यूनियन्स ने एक एशियाई क्षत्रीय सगठन भी स्थापित किया जिसका मुख्य कार्यालय कलकत्ता मे है।

इस प्रकार अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठनो के प्रयासों के कारण ही भारत मे श्रम आदोलनो को इसका वतमान रूप मिला है। श्री आर० के० दास ने ठीक ही लिखा है कि "भारतीय प्रतिनिधियो विशेषकर मजदूरो के प्रतिनिधियो को इन सम्मेलनो के माध्यम से अन्य देशो के अपने साथियो से मिलन के अवसर प्राप्त हुए है और इस प्रकार अतर्राष्ट्रीय बधुत्व एव सामाजिक न्याय की भावना को महान प्रेरणा एव प्रोत्साहन मिला है। भारतीय श्रम आदोलन के विकास पर अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का प्रभाव इसी से स्पष्ट है।'[1]

भारत को अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा दी गई सहायता

भारत ने समय समय पर सगठन द्वारा प्रदत्त तकनीकी सहायता एव सलाह व प्रशिक्षण सबधी सहायता का लाभ उठाया है। सन 1951 से भारत को निम्नलिखित क्षेत्रो मे तकनीकी सहायता प्राप्त हो रही है -

(अ) सामाजिक सुरक्षा . कमचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 ने भारत कारखाना मजदूरो के लिए सामाजिक सुरक्षा की बुनियाद रखी। इस अधिनियम को लागू करने के मामले मे कार्यकर्ताओ को प्रशिक्षित करने व उन्हे परामर्श दन के लिए अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने विशेषज्ञो को भारत भेजा। प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए जो फलोशिप अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन देता है भारत ने उनका भी यथेष्ट लाभ उठाया है।

(ब) कारखानों मे प्रशिक्षण . इस कार्य के लिए भारत सरकार ने दो विशेषज्ञ मागे थे। इनमे से एक विशेषज्ञ को अगस्त 1952 मे अहमदाबाद क्षेत्र मे काम सौंपा गया और दूसरे विशेषज्ञ ने नववर, सन् 1954 से मध्यप्रदश मे कारखानो मे प्रशिक्षण प्रदान

1 R K Das Problems and Methods of Indian Labour Legislation, pp. 162-63

करने के लिए प्रतिष्ठान का सगठन व सचालन किया। इन्ही विशेषज्ञो के प्रयत्न के फलस्वरूप बम्बई, कानपुर, बगलौर, बड़ौदा, कोयम्बटूर और जमशेदपुर मे 17 प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाये गए।

(स) **व्यावसायिक शिक्षको का प्रशिक्षण** अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन समय-समय पर औद्योगिक शिक्षकों को प्रशिक्षण के लिए विशेषज्ञों को भेजता रहा है। जिसके फलस्वरूप इस दिशा मे भारत म कुछ महत्वपूर्ण प्रगति हो गई है।

(द) **रोजगार सेवा** - इस काम के सिलसिले मे भारत ने सगठन से दो विशेषज्ञ मांगे थे। इन दोनो विशेषज्ञो ने दिल्ली और आध्रप्रदेश म व्यावसायिक जानकारी युवक रोजगार सेवा और रोजगार सबधी परामर्श देने के कार्यक्रम के विकास के सबध म परामर्श दिया। इसके फलस्वरूप रोजगार सेवा के विस्तार मे देश को काफी सहायता मिली है।

(य) **उत्पादकता** उत्पादकता के क्षेत्र मे भी अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन भारत को सितंबर, 1952 स लगातार विशेषज्ञो की सेवाए उपलब्ध कर रहा है।

इसके अतिरिक्त अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के 50वें वर्ष मे चलाए गए विश्व रोजगार कार्यक्रम के अतर्गत विभिन्न क्षेत्रो के लिए क्षेत्रीय जनशक्ति योजनाए बनाई गई हैं। भारत भी एशियाई जन शक्ति योजना स लाभान्वित हुआ है। युवक को अशाति की समस्या का समाधान प्रस्तुत करने व विभिन्न पृष्ठभूमि के व्यक्तियो को एक साथ रखने म अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का विशेष योगदान रहा है।

अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यों का मूल्याकन

उपर्युक्त विवेचन मे यह स्पष्ट है कि अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन सपूर्ण मानवता के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ है। इसके द्वारा प्रदान की गई सेवाए सक्षेप म इस प्रकार है—(अ) विश्व के अधिकाश देशो मे श्रम कल्याण सबधी अधिकाश अधिनियमो की रचना अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रभाव से हुई है, (ब) अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का प्रभाव श्रम आदोलन पर भी पड़ा है। 1919 म इसके निर्माण के साथ ही ससार का श्रम आदोलन प्रभावित हुआ है, (स) श्रम की विविध समस्याओ स सबधित तथ्यो को एकत्र करने और प्रकाशित करने म अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने बहुत योगदान दिया है, (द) श्रमिक को समाज म एक महत्वपूर्ण एव सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने म इसका महत्वपूर्ण स्थान रहा है, (य) इस सगठन न श्रमिको के जीवनस्तर को ऊचा उठाने, स्वास्थ्य और सुरक्षा की व्यवस्था व कार्य की दशाओ म सुधार करवाने म महत्वपूर्ण योगदान दिया है, (र) श्रम सगठन न ससार म औद्योगिक विकास म भी सहायता दी है, (ल) श्रम सगठन न विश्व म बधुत्व, मानवता और समानता की भावना का प्रसार किया है, (व) विश्व रोजगार कार्यक्रम के अतर्गत विभिन्न क्षेत्रो के लिए क्षेत्रीय जनशक्ति योजनाए बनाई गई है।

सक्षेप म हम कह सकते हैं कि सगठन अपने सदस्यो को तीन प्रकार की सेवाए प्रदान करता है—(अ) तथ्यो की खोज करने वाली सस्था के रूप म, (ब) सदस्यो का

श्रम सबधी सूचनाएँ, परामर्श और व्यावहारिक सहायता देने वाली सस्था के रूप मे, व (स) श्रमिको के लिए सामाजिक न्याय के मापदड का निधारण करने की सस्था के रूप मे।

निष्कर्ष के रूप मे हम कह सकते हैं कि यह सगठन श्रमिको के लिए सामाजिक न्याय की सभावनाओ को वढाकर केवल औद्योगिक शक्ति ही नही बल्कि विश्वशाति की स्थापना मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। हा, आवश्यकता इस बात की है कि अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन अपने प्रस्तावो को लोचपूर्ण बनाए, ताकि विभिन्न देशा की आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियो के अनुसार उसे बदला जा सके। जनवरी, 1969 म एशिया के श्रम मत्रियो की जो सभा नई दिल्ली मे हुई थी उसम यह प्रस्ताव रखा गया था कि अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन अपने प्रस्ताव आदि पर विचार करते समय विकासशील देशो की समस्याओ को भी ध्यान मे रखें।

परीक्षा-प्रश्न

1 *अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सविधान, सगठन और मुख्य कार्यों का वर्णन कीजिए।*

2 भारत मे श्रम नियमो तथा श्रम सघ आदोलनो व अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

3 भारत मे श्रम सघ आदोलन पर अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रभाव का मूल्याकन कीजिए।

4 हाल के वर्षों मे अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन, सामाजिक सुरक्षा विधान के लिए दो प्रकार के महत्त्वपूर्ण पग उठा सकता है—प्रथम, न्यूनतम अतर्राष्ट्रीय विकास और दूसरा, एशियाई देशो को टेक्निकल सहायता प्रदान करना। इन पगो की विवेचना कीजिए।

5 भारत मे पिछले 200 वर्षो म श्रम कल्याण को उत्साहित करने वाले अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की प्राप्तियो का उल्लेख कीजिए।

अध्याय 20

औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता
(Indebtedness of Industrial Workers)

ऋणग्रस्तता की समस्या भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के आर्थिक जीवन की एक गंभीर समस्या है। श्रम के शाही आयोग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है, "भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर का प्रधान कारण उनकी ऋणग्रस्तता है। भारत के अधिकांश श्रमिक ऋण में ही जन्म लेते हैं। ऋणी के रूप में ही जीवन व्यतीत करते हैं और ऋण के भार से दबे हुए ही इस संसार से प्रस्थान कर जाते हैं। इतना ही नहीं, मृत्यु के उपरांत भी वह ऋण का उत्तरदायित्व वसीयत के रूप में अपने उत्तराधिकारियों के कंधों पर छोड़ जाते हैं।"[1] श्रम आयोग का यह कथन सन् 1929 में जितना सत्य था उतना ही आज भी है।

ऋणग्रस्तता की समस्या
(Extent of Indebtedness)

औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता की सीमा के विषय में सही व विश्वसनीय आंकड़ों का सर्वथा अभाव है। इस दिशा में जिन व्यक्तियों व संस्थाओं ने प्रयास किया है उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1 **श्रम के शाही आयोग** के अनुसार विभिन्न औद्योगिक केंद्रों में दो-तिहाई परिवार ऋणग्रस्त थे।

2 **श्रम जांच समिति** के अनुसार बम्बई में 63% परिवार ऋणग्रस्त थे और ऋण की मात्रा 10 रुपये से लेकर 700 रुपये तक थी, अहमदाबाद में 57% परिवारों पर ऋण था और औसत ऋण 266 रुपया था। शोलापुर में 34% मजदूर परिवार ऋणग्रस्त थे, औसत ऋण 234 रुपया था। बंगाल की जूट मिलों में 76% ऋणग्रस्त थे। नागपुर में 82% व्यक्ति ऋणी थे और औसत ऋण 139 रुपए था। चमड़ा उद्योग कलकत्ता में 100%, कानपुर में 69 3% और मद्रास में 64 4% मजदूर परिवारों पर ऋण था।

3 डा० अग्निहोत्री ने कानपुर के औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता के विषय में जांच की और यह बताया गया कि लगभग दो-तिहाई परिवार ऋणग्रस्त थे तथा प्रति

1 Report of the Royal Commission on Labour, p. 224.

परिवार ऋण की राशि लगभग 135 रु० थी।

4 **प्रो० पी० सी० महालानोबिस** के अनुसार बंगाल के जगादार क्षेत्र मे लगभग 91% श्रमजीवी ऋणग्रस्त थे।

5 1956 मे बिहार सरकार की एक जाच स पता चला कि जमशेदपुर मे 79 61 प्रतिशत, मिट्टी मे 76 91 प्रतिशत डालमिया नगर मे 71 9 प्रतिशत, कटिहार मे 75 प्रतिशत श्रमिक परिवार ऋणग्रस्त थे।

6 **चीनी** के कारखाने के केंद्रो म किए गए सर्वेक्षण से यह निष्कष निकाला कि 64% से 87% श्रमिक ऋणग्रस्त थे।

7 **मध्यप्रदेश** के मैगनीज खान उद्योग म ऋण की औसतन मात्रा 10 रु० से अधिक नही थी परतु ब्याज की दर 75% थी।

8 **कोलार की सोने की खानो** मे 50% स अधिक श्रमिक ऋणग्रस्त थे तथा ऋण की मात्रा एक माह के वेतन से लेकर चार माह के वेतन तक थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिको की ऋणग्रस्तता उनकी प्रमुख विशेषता है जो उनकी अदक्षता व निम्न स्तर का भी एक प्रधान कारण है।

ऋणग्रस्तता के कारण

1 **पैतृक कारण** भारतवर्ष मे पिता या अन्य पूवजो द्वारा लिए गये ऋण को चुका देना प्रत्येक सतान अपना एक पवित्र कर्तव्य मानती है। वह इस कानूनी स्थिति मे परिचित नही है कि किसी मृत व्यक्ति द्वारा लिये गये ऋण के लिए उसका उत्तराधिकारी उसी सीमा तक उत्तरदायी होता है जितने की सपत्ति उसे उत्तराधिकार मे मिलती है। बिहार के कर्मचारियो की ऋणग्रस्तता की सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार पैतृक ऋण की राशि कुल ऋण का 2 27 प्रतिशत है।

2 **सामाजिक अवसरो पर अपव्ययता** **श्रम जांच समिति** के शब्दो मे भारत मे रीति रिवाज बहुत कठोर शासक है, क्योकि उनके पालन के लिये अपना सब कुछ न्यौछावर करना पडता है। विवाह मुण्डन, श्राद्ध व अन्य त्यौहार बडे धूम धाम से मनाये जाते है और ऐसे अवसरो पर ऋण लेकर भी खर्च किया जाता है। जाबर्स, मिस्त्री व पठान लोग प्रतिक्षण ऐसे ही अवसरो की ताक मे रहते है और सहर्ष ऋण प्रदान करने को तत्पर रहते हैं। कुछ सर्वेक्षणो के अनुसार 75% ऋण सामाजिक व धार्मिक उत्सवो के अवसर पर लिए जाते है।

3 **प्रवासी स्वभाव** भारतीय श्रमिको का प्रवासी स्वभाव होने के कारण ग्रामो मे आने जाने की प्रवृत्ति जारी रहती है। प्रवासी स्वभाव के कारण गाव म जाने पर उसका व्यय अधिक हो जाता है तथा अनुपस्थिति की अधिकता के कारण प्राप्त मजदूरी की मात्रा भी कम हो जाती है। फलत श्रमिक को ऋणदाता की शरण लेनी पडती है।

4 **अशिक्षा और अज्ञानता :** हमारे अधिकाश श्रमिक अशिक्षित हैं। उनकी इस कमी का लाभ उठाकर ऋणदाता मनमानी रकम उनस लिखवा लेता है और ऋण का

हिसाब भी गलत बनाता है। श्रमिक को कम रुपया दिया जाता है जबकि कागज पर ऋण की मात्रा अधिक लिखकर हस्ताक्षर करा लिए जाते हैं। इस प्रकार से श्रमिकों पर ऋण का बोझ बढ जाता है।

5 **जुआ, नशा आदि पर फिजूल खर्च** विवेकहीन होने के कारण श्रमिक अपनी आय का सदुपयोग नहीं कर पाते। जुआ खेलना व नशा करना भारतीय श्रमिकों की बहुत बुरी आदत है। औद्योगिक केंद्रों में मकानों की समस्या [illegible] होती है इस कारण अधिकतर श्रमिक परिवार सहित नहीं रह पाते। फलतः वह वेश्यागमन में पड जाता है। इन सब पर जो फिजूलखर्ची होता है उसके लिए इसको ऋण लेना पडता है।

6 **कम आय** हमारे देश के औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी की दर बोनस व महगाई की दरें बहुत कम हैं जिनके कारण उनकी आय बहुत कम होती है। फलत इसमें से बचाना तो दूर रहा, न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती हैं। अनेक केंद्रों में मजदूरी का भुगतान भी बडी देर में किया जाता है। यह देरी भी श्रमिक की आर्थिक परेशानी को बढाने का प्रबल कारण है यहाँ तक कि दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी उसे ऋण लेना पडता है।

7 **बेरोजगारी** हमारे देश में जनसंख्या की वृद्धि व महायन्त्र व कुटीर उद्योग [illegible] पतन के कारण बेरोजगारी की समस्या काफी विस्फोटक होती जा रही है। [illegible] [illegible] परिवारों पर आर्थिक बोझ [illegible] है। एक श्रमिक कमाने वाला है तो 10 [illegible] हैं। [illegible] मजदूरी [illegible] पाता है उससे परिवार का भरण पोषण नहीं हो पाता और उसे बाध्य होकर ऋण लेना पडता है।

8 **बीमारी की अधिकता** औद्योगिक [illegible] में काम करने का वातावरण दूषित है तथा श्रमिकों की बस्तियां गंदी हैं। इस दूषित वातावरण में श्रमिकों को अनेक प्रकार की बीमारियों का शिकार बनना पडता है। बीमारी की दशा में एक ओर काम से अनुपस्थित रहने के कारण आय बद हो जाती है और दूसरी ओर चिकित्सा के लिए रुपया की अधिक आवश्यकता पडती है। ऐसी स्थिति में बिना ऋण लिए श्रमिक अपनी रक्षा नहीं कर पाता।

9 **ऋण-प्राप्ति की सुविधा** औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि उनको ऋण बडी सुविधा से मिल जाता है। शहरों में अनेक महाजन पठान मध्यस्थ आदि श्रमिकों को ऋण देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। जहा तक कि इस देश के मदिरा विक्रेता व परचून वाले दूकानदार भी श्रमिकों को उधार माल बेचकर उनकी ऋणग्रस्तता को बढाते हैं। कभी कभी वेश्याएँ व विधवाएँ भी अपने लाभ की दृष्टि से इन्हें ऋण प्रदान करती हैं।

10 **दोषपूर्ण भर्ती प्रणाली** भारत के उद्योगों में प्रचलित दोषपूर्ण भर्ती प्रणाली श्रमिकों को काय पर [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] श्रमिक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उद्योगों में [illegible] प्रणाली प्रचलित है श्रमिक [illegible] [illegible] [illegible] ऋणदाता का [illegible] है।

11 **ब्याज की ऊची दर :** यद्यपि श्रमिको को ऋण सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाता है, परतु ब्याज की दरें बहुत ऊची होती हैं, क्योकि बचारे श्रमिको के पास ऋण लेने के हेतु गिरवी रखने के लिए कुछ नही होता। उनकी प्रवासी प्रवृत्ति होने के कारण भी ऋणदाताओ को अधिक जोखिम उठानी पडती है। दूसरी ओर श्रमिक प्रायः ऐसी आर्थिक स्थिति मे ऋण लेता है जबकि ब्याज की अधिक से अधिक दर भी उसे स्वीकार करनी पडती है। ब्याज की ऊची दर होने के कारण ब्याज की कुल मात्रा ही इतनी अधिक हो जाती है कि श्रमिक बडी कठिनता से उसका भुगतान कर पाता है और मूलधन का भुगतान करने मे असमर्थ रह जाता है। इसी कारण यह ऋण भार पीढी दर पीढी चलता रहता है।

12 **अन्य कारण :** इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता के लिए उत्तरदायी हैं जैसे (अ) सरकार की उदासीनता की नीति, (ब) बाल विवाह की प्रथा के कारण छोटी आयु से ही श्रमिको को गृहस्थी का भार उठाना, (स) अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण लिया जाना, (द) महगाई बढना तथा विभिन्न कर।

ऋणग्रस्तता के दुष्परिणाम

1 **निम्न जीवन-स्तर :** श्रम जाच समिति के अनुसार श्रमिको की निर्धनता एव निम्न जीवन-स्तर का प्रधान कारण उसकी भारी ऋणग्रस्तता है। भारतीय श्रमिको की आय पहले से ही उनके जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त नही है। ऐसी स्थिति म ऋणग्रस्त हो जाने से उनकी इसी आय मे से ही ऋण व ब्याज का भुगतान करना पडता है जिससे उपभोग व्यय के लिए श्रमिको के पास धन की बहुत ही थोडी मात्रा रह पाती है। इस बची हुई राशि मे वह अपने परिवार के उपभोग के लिए न्यूनतम आवश्यकताओ का भी प्रबध नही कर पाता। फलत अनुचित एव अपर्याप्त आहार के कारण उसका व उसके परिवार के अन्य व्यक्तियो का स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

2 **कार्यकुशलता में कमी .** जब श्रमिको को उचित भोजन और आवास नही मिल पाता और जब ऋण के बोझ को उतारने की चिंता से वह सदैव पीडित रहता है, तो उसका बुरा प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पडता है। स्वास्थ्य खराब होने के साथ साथ श्रमिक की कायकुशलता भी कम हो जाती है। अतः श्रम जाच समिति का कहना कि ऋण की क्रूरता श्रमिक का पतन कर देती है और उसकी कार्यक्षमता का क्षीण कर देती है, पूर्णतया ठीक ही जान पडता है।

3 **आत्म-सम्मान को ठेस :** ऋणग्रस्तता से श्रमिको के आत्म सम्मान को भारी ठेस लगती है क्योकि आय दिन ऋणदाता श्रमिक को मूलधन अथवा ब्याज की अदायगी का स्मरण दिलाता रहता है। साथ ही जिस दिन इनकी मजदूरी सेवायोजको से प्राप्त होती है उसी दिन ऋणदाता स्वय कुछ गुण्डो को लेकर कारखाने के द्वार पर पहुच जाते हैं और श्रमिको को लाठी के बल पर भुगतान करने के लिए दबाव डालते हैं। ये सब परिस्थितियां श्रमिको के आत्म-सम्मान को भारी ठेस पहुचाती हैं।

4 नैतिक पतन : श्रमिकों को ऋण के बोझ से दबे रहने के कारण दासता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है जिससे उनका जीवन निराशापूर्ण एवं असन्तोषमय हो जाता है तथा वे अनैतिक कार्यों को करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। ऋण के बोझ को उतारने की चिंता से अपने को विमुक्त करने के लिए वह शराब की बोतल का सहारा लेता है, जुआ खेलकर ऋण को चुकाने की आशा से वह जुआ खेलना शुरू करता है व अन्य दूसरे अनैतिक तरीकों से अपनी आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करता है।

5. वर्ग-संघर्ष की भावना : जब महाजनों व साहूकारों द्वारा श्रमिकों को सताया जाता है तो उनमें वर्ग संघर्ष की भावना बढ़ जाती है। श्रमिक इन लोगों को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं जिसका परिणाम कभी-कभी बहुत भयंकर होता है। डॉ० थामस के शब्दों में "एक ऋणग्रस्त समुदाय निश्चयात्मक रूप से एक सामाजिक ज्वालामुखी है। विभिन्न वर्गों के बीच असंतोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक है तथा शनैः-शनैः बढ़ता हुआ असन्तोष एक दिन भयानक सिद्ध होता है।'

ऋणग्रस्तता को दूर करने के उपाय

औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता को दूर करने के प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं :—

1 शिक्षा का प्रसार : शिक्षा के प्रसार से श्रमिक जागरूक हो जायेंगे, उनके अनेक कुसंस्कार दूर हो जायेंगे, उनकी कार्यक्षमता बढ़ेगी और महाजन उल्टा सीधा समझाकर उनका शोषण नहीं कर पायगा। शिक्षित श्रमिक स्वयं ही ऋणग्रस्तता के दोषों को समझकर ऋण लेने की प्रवृत्ति से घृणा करने लगेगा।

2 श्रमिकों की आय में वृद्धि : श्रमिकों की आय बढ़ाना उनकी ऋणग्रस्तता को दूर करने का प्रमुख उपाय है। एक श्रमिक को कम से कम इतनी आय मिलनी चाहिए कि वह अपने परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति सरलतापूर्वक कर सके और साथ ही बीमारी, दुर्घटना आदि की हालत में खर्च करने के लिए कुछ रुपया बचा भी सके। श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के लिए (अ) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा निर्धारित मजदूरी की दर बढ़ानी चाहिए (ब) श्रमिकों को महंगाई व बोनस उचित रूप में दिया जाए, (स) श्रमिकों को सहभागिता की योजना के अंतर्गत प्रबंध व लाभांश में भी भागी बनाया जाना चाहिए।

3 भर्ती की वैज्ञानिक प्रणाली : श्रमिकों की भर्ती एक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार होनी चाहिए जिससे मध्यस्थों द्वारा घूस लेने की प्रथा का अंत हो जाय।

4 अनैतिक व्ययों पर कड़े नियंत्रण : ऋणग्रस्तता को कम करने के लिए औद्योगिक नगरों में मदिरापान को निषेध घोषित किया जाना चाहिए और वेश्यावृत्ति पर कड़ा नियंत्रण रखा जाना चाहिए। औद्योगिक नगरों में श्रमिकों के आवास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। इससे श्रमिक अपने परिवारों को भी गांवों से ले आयेंगे जिससे मनोरंजन के लिए कुवृत्तियों की शरण लेने की आवश्यकता ही न रहेगी और इनके कारण जो ऋण लेना पड़ता है उसके लेने की आवश्यकता न रहेगी।

5 ऋण पूर्ति के स्रोतो पर नियत्रण (अ) महाजनो व साहूकारो की दोषपूर्ण नीतियो पर प्रतिबध लगा देना चाहिए, (ब) श्रमिको की भर्ती करने वाले मध्यस्थो को श्रमिको के साथ किसी प्रकार का लेन-देन नही करना चाहिए।

6 सहकारी साख समितियो की स्थापना सहकारी साख समितियो की स्थापना करनी चाहिए ताकि श्रमिको को सरलता से एव कम ब्याज की दर पर ऋण मिल सके। ये समितिया श्रमिको के अज्ञानता के कारण किसी प्रकार की हिसाब म गडबडी नही करती और श्रमिको को केवल आवश्यकतानुसार ही ऋण प्रदान करती हैं।

परतु दुर्भाग्यवश भारत म ये समितिया सफल नही हो पाई है। सन 1946 की **सहकारी नियोजन** समिति ने यह सुझाव दिया है कि यद्यपि भारतीय श्रमिको की ऋणग्रस्तता की समस्या को साख समितिया हल नही कर पाई है परतु इसका यह अर्थ नही है कि इन समितियो की पूणतया उपेक्षा कर दी जाये। कारखानो म काम करने वाले श्रमिको मे मितव्ययिता की आदत डालने व उनकी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए इन समितियो की स्थापना आवश्यक है।

7 अन्य सुझाव

(अ) सरकार को कानून द्वारा एक उचित ब्याज की दर निश्चित कर देनी चाहिए और इसी के आधार पर ही श्रमिको से ब्याज वसूल किया जाना चाहिए।

(ब) ऋण की वसूली के लिए महाजनो पठानो आदि का औद्योगिक सस्थानो के चक्कर लगाना अपराध घोषित कर दिया जाना चाहिए।

(स) ऋण सबधी अधिनियम के निर्माण से भी स्थिति का सुधार किया जा सकता है।

(द) प्रत्येक औद्योगिक केंद्र मे पचायतो की स्थापना कर दी जानी चाहिए ताकि श्रमिको के छोटे छोटे झगडो का निपटारा सरलता से हो जाय।

ऋणग्रस्तता सबधी वैधानिक व्यवस्था

ऋणग्रस्तता की समस्या को सुलझाने के लिए समय-समय पर जो अधिनियम पास किये गये हैं उनमे से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1 **मजदूरी कुर्की सबधी अधिनियम** श्रम के **शाही आयोग** का सुझाव था कि ऋणग्रस्त श्रमिकों को महाजनो द्वारा प्राप्त हुई कुर्की से सरक्षण प्राप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिए। भारत सरकार ने इसे मान्यता देते हुए नागरिक दड सहिता' 1937 (Indian Civil Procedure Code 1937) मे सशोधन करके इस बात की व्यवस्था कर दी है कि जिन श्रमिको का वेतन 100 रु० प्रति मास से कम है उनकी कुर्की नही की जा सकती है। इसी प्रकार प्रत्येक सरकारी कर्मचारी के वेतन के पहले 100 रु० और शेष के आधे भाग को कानूनी कुर्की की छूट दे दी गई है। अधिनियम मे यह भी व्यवस्था की गई था कि यदि किसी श्रमिक के आधे वेतन की लगातार 24 महीने तक कुर्की होती रही है तब उसके बाद एक वर्ष तक उसकी कुर्की रोक दी

जायगी। अक्टूबर सन् 1950 में एक विज्ञप्ति के द्वारा सरकार ने बोनस व अन्य भत्तों को भी कुर्की से वंचित कर दिया।

2 **ऋण मुक्ति अधिनियम** आयोग का दूसरा सुझाव था श्रमिकों को पूर्व ऋण से मुक्ति दिलाना। ऐसा अधिनियम पास किया जाये ताकि महाजनों का समस्त ऋण बिना भुगतान किए हुए समाप्त हो जाय। इस आशय का कानून मध्यप्रदेश सरकार ने सन 1936 में पास किया था जिसके अंतर्गत यह व्यवस्था की गई है कि 90 रु० से कम पाने वाले श्रमिक, जिन पर उनके तीन महीने के वेतन से अधिक ऋण है अदालत में प्रार्थना पत्र देकर ऋण से मुक्ति पा सकते हैं।

3 **ऋण हेतु कारावास के विरुद्ध अधिनियम** बहुत से महाजन श्रमिकों को ऋण का भुगतान न करने की स्थिति में जेल भिजवा देते हैं। इस दोष को दूर करने के लिए सन 1934 में पंजाब सरकार ने ऋणग्रस्तता सहायता अधिनियम पास किया जिसके अनुसार किसी भी श्रमिक को उसकी ऋण की धनराशि के लिए तब तक जेल नहीं भेजा जा सकता जब तक कि वह उतनी धनराशि देने को तैयार है जितनी कि उसकी संपत्ति की सामर्थ्य है। भारत सरकार ने भी इसी आधार पर सन 1936 में नागरिक दंड संहिता में संशोधन किए। इस संशोधन के द्वारा केवल उन अवस्थाओं को छोड़कर जबकि ऋणी से यह संभावना हो कि वह न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर चला जायेगा अथवा सरकारी आदेश के निष्पादन में बाधा डालेगा या देर करेगा ऋण की धनराशि के लिए उसे कारावास का दंड नहीं दिया जा सकता है।

4 **औद्योगिक संस्थानों को घेरने पर प्रतिबंध** बंगाल बिहार व तमिलनाडु सरकारों ने अधिनियम द्वारा यह व्यवस्था की है कि कारखानों के निकट श्रमिकों को घेरकर अथवा जोर जबर्दस्ती अथवा डरा धमकाकर ऋण की वसूली नहीं की जा सकती है। यदि ऋणदाता इस प्रकार से ऋण वसूल करने का प्रयास करता है तो उसको दंडित किया जाए अथवा छः मास का कारावास दिया जा सकता है।

निष्कर्ष यह सच है कि औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता से संबंधित बुराइयों को दूर करने व श्रमिकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए कुछ अधिनियम पारित किए गए हैं परंतु ये **प्रतिबंधात्मक** उपाय हैं परंतु समस्या तभी हल होगी जब हम वास्तविक उपायों—मजदूरी का बढ़ना शिक्षा का प्रचार नैतिक उत्थान—पर ध्यान देंगे। सहकारिता व सामाजिक सुरक्षा का विकास इस संबंध में एक आशीर्वाद सिद्ध हो सकता है।

परीक्षा प्रश्न

1 भारत में औद्योगिक श्रमिकों के बीच ऋणग्रस्तता के कारणों और सीमाओं का वर्णन कीजिये। क्या यह दूर किए जा सकते हैं? आपके विचार में सहकारिता कहाँ तक इस समस्या को हल करने में सहायता कर सकती है।

अथवा

भारत में औद्योगिक श्रमिकों के बीच ऋणग्रस्तता के कारणों और सीमाओं का

वर्णन कीजिए। आपके विचार मे 'सहकारिता' कहा तक इस समस्या को हल करने मे सहायता कर सकती है।

2. भारतीय औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता के कारणो और सीमा का वर्णन कीजिए। इसके सुधार के लिए आप क्या सुझाव दे सकते हैं?
3. "ऋणग्रस्तता की समस्या के विश्लेषण ने औद्योगिक श्रमिको की दयनीय आर्थिक. स्थिति प्रकाश मे आती है।" इस कथन के प्रकाश मे औद्योगिक ऋणग्रस्तता की सीमा, कारणो व दुष्परिणाम की विवेचना कीजिए।
4. "ऋण की निर्दयता श्रमिको का अपमान करती है और उसकी कार्यकुशलता को क्षीण करती है।"

औद्योगिक श्रमिको के बीच ऋणग्रस्तता के कारणो के विशेष उदाहरणो सहित उक्त कथन का स्पष्टीकरण कीजिए और इन दोषो को दूर करने के लिए सम्भावित उपायों का भी वर्णन कीजिए।

अध्याय 21

बाल एव महिला श्रम
(Child and Women Labour)

बाल श्रम की समस्या
(Problem of Child-Labour)

भारत मे बाल-श्रमिको को दो भागो मे बाटा जा सकता है—(अ) वैधानिक बाल श्रमिक—वैधानिक रूप से बाल श्रमिको के अतर्गत वे ही मजदूर आते हैं जो न्यूनतम आयु मे अधिक हैं और वयस्क नही हैं। कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार 14 से 15 वर्ष के श्रमिको को बालक तथा 15 से 18 वर्ष की आयु के लोगो को किशोर कहा जाता है। 14 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियो की नियुक्ति निषेध है। अत उनको बाल श्रमिक भी नही कहा जा सकता। खदानो मे 15 से 16 वर्ष के मजदूरो को बाल श्रमिक कहा जाता है। बागानो मे 12 से 15 वर्ग तक के व्यक्तियो को बाल मजदूर कहा जाता है। (ब) अवैधानिक बाल श्रमिक—यह श्रेणी बहुत विस्तृत है इसके अतर्गत असगठित उद्योगो मे लगे हुए बच्चे, खेतिहर मजदूर तथा वे सब बच्चे आ जाते हैं जो गैरकानूनी ढग से कारखानो, खदानो और बागानो आदि मे अधिक उम्र दिखाकर भर्ती कर लिए जाते हैं। श्रमशास्त्र मे मुख्यत वैधानिक बाल श्रमिको की समस्याओं पर ही विचार किया जाता है।

समस्या का स्वरूप

श्री वी० वी० गिरि[1] ने उचित ही लिखा है कि बाल श्रमिक शब्द की व्याख्या सामान्यत दो तरह से की जाती है—(अ) एक आर्थिक व्यवसाय के रूप मे, और (ब) एक सामाजिक बुराई के रूप मे। प्रथम सदर्भ मे बाल श्रमिक आर्थिक क्षेत्र मे लाभप्रद रोजगार को बताता है। इससे परिवार की आय बढती है। दूसरे सदर्भ मे बाल श्रमिक उन बुराइयो या शोषणो की अभिव्यक्ति है जो कि बालको को रोजगार मे लगाने के कारण पनपते हैं। आधुनिक समय मे बाल श्रम शब्द सामाजिक बुराइयो को ही बताता है। बाल श्रम का उपयोग सामान्यत. बुरा नही है, परतु जिन परिस्थितियो एव जिन शर्तों पर इन्हें कार्य पर लगाया जाता है वह बुरा है। इस सबध मे यह कहावत

1. V. V. Giri - Labour Problems in Indian Industries.

ठीक जान पडती है, "बचपन मे काम करना सामाजिक अच्छाई है और राष्ट्रीय हित मे है। लेकिन बाल श्रम एक सामाजिक बुराई और राष्ट्रीय अपव्यय भी है।" सामाजिक अच्छाई से अथवा बुराई से हमारा आशय यह है कि जब तक किसी भी वस्तु का सदुपयोग होता है, वह सामाजिक हित कहलाती है। किंतु जब उनका दुरुपयोग होने लगता है तब वह सामाजिक बुराई का कारण बन जाती है। समाज के लिए यह अच्छी ही बात है कि समाज म कोई व्यक्ति बेकार न बैठे, सभी व्यक्ति कुछ न कुछ कार्य करें। बच्चे भी कार्य करें यह सामाजिक हित की बात है और इससे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है। परतु बाल श्रमिको को काम मे लगाकर जिस रूप मे उनका शोषण किया जाता है व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक सुविधाओ से उन्हे दूर रखा जाता है और जिस रूप म उनके नैतिक पतन का पथ प्रशस्त किया जाता है वह वास्तव मे एक भयकर सामाजिक बुराई है। यदि बच्चो की कोमलता को निर्दयता से कुचल दिया जाय उनकी महत्त्वाकाक्षाओ का गला घोट दिया जाय तो हम उसस औद्योगिक समृद्धि की आशा नही कर सकत। बच्चो के श्रम का उनके स्वास्थ्य से प्रत्यक्ष सबध रहता है। जिस प्रकार का कार्य बच्चो से उद्योगो मे लिया जाता है उनका उनके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पडता है। बच्चों के इस प्रकार के काम करने स परिवार के सामान्य जीवन मे बाधा पहुचती है व सामाजिक नियत्रण टूटने लगता है जो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। बच्चो को उचित शिक्षा नही मिल पाती और उनका बौद्धिक विकास रुक जाता है। इस प्रकार अतिम रूप मे देखने पर बच्चे नागरिकता के अधिकारो और कर्तव्यो मे अत्यधिक लाभदायकपूर्ण ढग से भाग नही ले पाते।"

बाल श्रम की समस्या का एक आर्थिक पहलू भी है। बच्चो को काम पर लगाने का अर्थ यह है कि हम उद्योगो मे श्रम को उसकी न्यूनतम उत्पादकता के बिंदु पर उत्पादन करने मे लगाते हैं और इसलिए यह श्रम-शक्ति का अकुशल प्रयोग हुआ। समाज को इससे आर्थिक हानि होती है। साथ ही जिन कार्यों को पुरुष अधिक कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं वे यदि छोटे-छोटे बच्चो को सौंप दिये जाते हैं तो निश्चय ही उत्पादन कु-प्रभावित होगा। छोटी आयु के कारण बच्चो मे पुरुषो की अपेक्षा ज्ञान और अनुभव दोनो ही कम होते हैं। अत. वे पुरुषो के बराबर उत्पादन करने मे सदैव ही असमर्थ रहते हैं।

अत सामाजिक और आर्थिक दोनो ही दृष्टिकोणो से यह आवश्यक है कि जहा तक सभव हो सके बाल श्रम का शोषण नहीं किया जाना चाहिए।

बाल श्रम को रोजगार पर लगाने के कारण

1 **निर्धनता** भारत मे बालको को कार्य पर लगाने का सर्वप्रमुख कारण भारतीय श्रमिको की निर्धनता है। भारत मे मा बाप बहुधा इतने गरीब है कि वे अपने बच्चों को पढा नही सकते और उनके लिए खान-पहनने की व्यवस्था भी नही कर सकते। अत वे चाहते हैं कि बच्चे कुछ कमा कर लायें और उनकी आर्थिक सहायता करें। देश की वर्तमान परिस्थितियो मे निर्धन एव असहाय माता-पिता के ये तर्क बिल्कुल निरर्थक नही हैं।

2 कुटीर उद्योगों का पतन : भारत में बाल श्रमिकों को रोजगार पर रखने का दूसरा प्रमुख कारण कुटीर उद्योग धंधों का पतन है। पहले बाल्यावस्था में ही बच्चे घर के कुटीर धंधों में हाथ बटाते थे, परन्तु औद्योगीकरण के साथ-साथ जब गृह उद्योगों का पतन हुआ तो घर के अन्य लोगों के साथ बच्चों को भी अन्य उद्योगों में कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

3 उद्योगपतियों को लाभ उद्योगपतियों के दृष्टिकोण से बालकों को रोजगार पर लगाना अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि सेवायोजक बच्चों को सरलता से अनुशासन में रख सकते हैं, उनको कम मजदूरी दे सकते हैं और अधिक काम ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त सेवायोजकों को यह निश्चितता रहती है कि बाल श्रमिकों में संगठन का सर्वथा अभाव है और अपने अधिकारों के सबंध में वयस्कों की भांति जागरूक भी नहीं हैं। इसलिए उनमें मोल-भाव करने की शक्ति बहुत कम होती है।

4 नियमों की शिथिलता . भारत में बाल श्रमिकों की भर्ती पर नियंत्रण है और इनके लिए बहुत से अधिनियम भी पारित किये गए हैं परन्तु उनका उचित रूप से पालन नहीं होता है। बाल श्रमिकों के अभिभावक और सेवायोजक झूठे डाक्टरी प्रमाण पत्र व रिश्वत आदि के द्वारा अपना काम निकाल लेते हैं, इसलिए कुछ उद्योगों में बालकों को अब भी अवैध रूप से रोजगार में लगाया जाता है।

5 अन्य कारण भारत में बालकों को रोजगार पर लगाए जाने के कुछ अन्य कारण इस प्रकार हैं—

(अ) भारत में रोजगार बीमा और सामाजिक सुरक्षा की अन्य सुविधाओं का नितांत अभाव है। अतः परिवार के बालकों, स्त्रियों सभी को नौकरी करने भेजकर लोग आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयत्न करते हैं।

(ब) भारत में ऐसी भी कोई योजना नहीं है जिसके अनुसार एक निश्चित आयु तक बच्चा को अनिवार्य रूप से शिक्षा लेनी जरूरी हो।

(स) कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण सभी को लाभदायक रोजगार देना संभव नहीं है। इसलिए कुछ तरुण व बालक मिल या अन्य उद्योगों में कार्य करने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

(द) भारत में बालकों को नौकरी पर इसलिए भी भेज दिया जाता है कि यहां पर कम पढ़े लिखे या अनपढ़ बच्चों के लिए तकनीकी शिक्षा देने वाली संस्थाएं बहुत कम हैं।

(य) निरंतर बढ़ती हुई कीमतों के कारण भी श्रमिक अपनी अनिवार्यताओं को पूरा करने में सर्वथा अपने को असमर्थ पा रहा है। इसलिए अपने बच्चों को भी कार्य में लगाने के लिए बाध्य हो गया है।

इसके अतिरिक्त श्रीमती पद्मिनी सेन गुप्त ने लिखा है कि बड़े बच्चों को, शिशु गृहों के अभाव में उनके काम पर जाने के बाद की अनुपस्थिति के काल में छोटे बच्चों की देखभाल के लिए भी रखा जाता था। इस सबंध में इनका यह उल्लेख विशेष रूप से विचारणीय है—"वास्तव में, श्रमिक स्त्रियों के बच्चों, इनकी शिक्षा, पोषण और लालन-

पालन की समस्या कही अधिक महत्वपूर्ण है…श्रमिको के बच्चो की समस्या अपने मे विशेष महत्व की है।'

विभिन्न उद्योगो मे बाल-श्रमिक
(Child Labour in Different Industries)

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न कार्यो मे लगे हुए बाल श्रमिको को निम्नलिखित वर्गों मे बाटा जा सकता है—

1 **कारखानो मे बाल-श्रम** हमारे भारतवर्ष मे कारखानो का प्रसार औद्योगिक क्राति के बाद शुरू हुआ और तभी से बालको को कारखानो म लगाया जाने लगा। पहले कारखानो मे बाल श्रमिको की सख्या बहुत अधिक थी, परतु अधिनियमो के नियन्त्रण के कारण इनकी सख्या मे निरतर कमी होती जा रही है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट पता चलता है :

सारणी 1

वर्ष	बाल श्रमिकों की सख्या	सपूर्ण श्रम-शक्ति में बालकों का प्रतिशत
1892	18,888	5 9
1912	53,700	6 2
1923	74,220	5 3
1933	19,091	1 4
1937	9,403	0 5
1943	12,484	0 5
1948	11,444	0 48
1950	7,764	0 31
1955	4,975	0 10
1960	3,220	0 10
1970	2,800	7 8
1981	13,530	06

यद्यपि उपर्युक्त आकडो को पूर्णत विश्वसनीय नही कहा जा सकता, परतु यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि कारखानो मे बाल-श्रमिको की सख्या काफी है। श्रम ब्यूरो के एक सर्वेक्षण मे कहा गया है कि 'कारखाना अधिनियम के अतर्गत प्राप्त सूचना द्वारा बाल श्रमिको का विवरण सत्य होने मे सदेह है। कारखाने के निरीक्षक का यह अनुभव है कि जैसे ही वे निरीक्षण के लिए पहुचते हैं वैसे ही बहुत स बाल मजदूर कारखानो से हट जाते हैं। इनमे बहुधा न्यूनतम आयु से कम के मजदूर होते हैं।" तात्पर्य यह है कि कारखाना अधिनियम मे न्यूनतम आयु 14 वर्ष की है परतु उससे कम

आयु के बालको को भी कार्य पर रखा जाता है और उनका कोई विवरण कागजो पर नही होता। बहुत से बालको को डाक्टरी झूठे प्रमाण-पत्रो के द्वारा अधिक उम्र का दिखाकर इन्हे किशोर श्रेणी मे दिखा दिया जाता है।

वर्तमान शताब्दी के प्रारंभिक चरण मे कुल औद्योगिक श्रमिको मे बाल श्रम का प्रतिशत 6 था जो 1973 मे घट कर 0 8% रह गया। बाल श्रमिको की सख्या सबसे अधिक तमिलनाडु मे है और फिर क्रमश असम, महाराष्ट्र, गुजरात, बगाल व बिहार में है। बालको को अधिक सख्या मे काम मे लगाने वाली औद्योगिक इकाइया रासायनिक पदार्थ, पेय पदार्थ, खनिज व तबाकू उद्योग हैं। बाल-श्रमिको मे भी लडको की सख्या लडकियो की सख्या से अधिक है।

2 **खनिज उद्योगो मे बाल-श्रम :** खनिज उद्योगो मे भी प्रारभ मे कुल श्रम-शक्ति का अधिकाश भाग बच्चे ही थे। परतु इस उद्योग मे भी बाल श्रमिको की सख्या मे कमी हुई है। सन 1901 मे भारतीय खानो मे 12 से कम आयु के बाल श्रमिको की सख्या 5,147 थी परतु 1922 मे अधिनियम बनाकर 13 वर्ष से कम आयु के बच्चो की नियुक्ति अवैध कर दी गई। फिर भी इस समय खानो मे काम करने वाले बाल श्रमिकों की सख्या 6 381 थी। सन् 1925 मे यह सख्या घटकर 4,135 रह गई थी। 1935 से आयु सीमा बढाकर 15 वर्ष कर दी गई है। किंतु फिर भी यह अनुभव किया गया है कि बिहार, तमिलनाडु, और राजपूताने मे 15 वर्ष से कम आयु के बालक खानो में काम कर रहे हैं। सन् 1952 के खान अधिनियम से खानो मे जमीन के नीचे किसी भी भाग में बच्चो की उपस्थिति पर रोक लगा दी गई है जहा खान खोदने का काम किया जा रहा है। यद्यपि अब 15 वर्ष से अधिक उम्र के बच्चे ही खदानो मे काम कर सकते हैं परतु श्रम जाच समिति के अनुसार अधिनियम के प्रावधानो की अवहेलना बडे पैमाने पर की जाती है।

3 **बागानो मे बाल श्रम** · भारतीय बागानो मे काफी सख्या मे बाल श्रमिक काम करते हैं। 1948 के बागान अधिनियम के अनुसार बागानो के काम में 12 वर्ष से कम आयु के बालक कार्य पर नही लगाये जा सकते हैं परतु ऐसे बच्चो की सख्या भी कम नहीं है। झूठे प्रमाण पत्रो के आधार पर अभी भी 8 से 9 वर्ष के बच्चे काम करते हैं। आंकडों से पता चलता है कि कुल कर्मचारियो का बगाल मे 25 7%, दार्जलिंग मे 12%, असम की घाटी मे 14 4%, सुरमा की घाटी मे 16% तथा दक्षिण भारत मे चाय व कॉफी के बागानो मे 11% बालक कार्य करते है।[1]

4 **अनियत्रित उद्योगों में बाल श्रम** बाल श्रमिको की एक भारी सख्या इस देश मे विभिन्न अनियत्रित उद्योगो मे लगी हुई है। इन उद्योगो मे बीडी उद्योग, चमडा उद्योग, दरी उद्योग, छापाखाना और चूडी उद्योग आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। क्योकि ये छोटे उद्योग हैं इसीलिए ये कारखाना अधिनियम के अतर्गत नही आते। यही कारण है कि हमारे देश के अनेक अनियत्रित उद्योगो मे बाल श्रम का बहुत बुरी तरह

1 Child Labour in India, Ministry of Labour Bureau, 1954, p. 8

शोषण होता है।

श्रम ब्यूरो ने सन् 1954 मे घरेलू उद्योगो मे बाल श्रम की मात्रा का अनुमान लगाने के उद्देश्य से राज्य सरकारो से सूचनाए एकत्रित की थी जिसका महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार है · (अ) आसाम मे बीडी व कपडा बुनाई उद्योग मे बाल श्रम का उपयोग होता है, (ब) बाल श्रम का अत्यधिक उपयोग बिहार मे बीडी, चमडा, अभ्रक काच उद्योगो मे होता है, (स) केरल राज्य के ट्रावनकोर-कोचीन क्षेत्र मे 17,000 से अधिक बाल श्रमिक केवल कोयर (Coir) उद्योग मे लगे हुए है, (द) बगाल के वस्त्र बुनाई उद्योग मे लगभग 50 हजार बाल श्रमिक नियुक्त हैं, (य) उत्तर प्रदेश म बाल श्रम खिलौना, बीडी ताला, कपडा बुनाई व नमदा उद्योग मे लगे हैं।

5 **कृषि उद्योग में बाल श्रम :** चूकि भारत एक कृषि-प्रधान देश है इसलिए कृषि मे बाल श्रमिको की सख्या काफी विशाल है। ग्रामीण क्षेत्रो मे बच्चे अपने बडो को कृषि-कार्यों मे सहायता पहुचाते है। श्रम मत्रालय की कृषि श्रमिक जाच के निष्कर्षों के अनुसार कुल कृषि श्रमिको का लगभग 6% बाल श्रम है।

बाल श्रम की प्रमुख समस्याए

यद्यपि विभिन्न उद्योगो मे बाल श्रमिको की समस्याए विभिन्न है, किंतु कुछ समस्याए ऐसी है जो समस्त क्षेत्रो मे पाई जाती हैं। इनमे स कुछ प्रमुख समस्याए इस प्रकार हैं :

1 **कम आयु में कार्य करना :** बालको को ऐसी कच्ची उम्र से ही काम पर लगा दिया जाता है और उनसे कठोर परिश्रम कराया जाता है जबकि उनमे काम करने की पर्याप्त क्षमता नही होती। बचपन मे शरीर और मन दोनो ही कोमल होते हैं, परतु बचपन से ही इन्हे कठोर कामो मे लगा देने से उनकी कोमलता नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति बालक के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास मे बाधक होती है। "परिवार के निर्वाह के लिए मजदूरी कमाने की आर्थिक आवश्यकता बालक को शिक्षा, खेल-कूद एव मनोरजन के अवसरो स वचित कर देती है, उसके शारीरिक विकास को रोकती है, उनके व्यक्तित्व के सामान्य विकास मे बाधा डालती है तथा वयस्क जिम्मेदारी के लिए उसके तैयार होने मे रोडे अटकाती है।"

2 **दूषित दशाओ के अतर्गत कार्य करना** लगभग सभी उद्योगो मे बच्चो को अत्यत दयनीय दशाओं के अतर्गत काम करना पडता है, जिसमे वे शीघ्र ही रोगग्रस्त हो जाते हैं और चिकित्सा के समुचित अभाव मे अपने को हमेशा के लिए खो बैठते हैं।

3 **नैतिक पतन .** वयस्क श्रमिको के साथ काम करने से उनकी अनेक बुरी आदतें बच्चे भी सीख जाते है। विभिन्न खोजो से पता चलता है कि इन बुरी आदतो मे दो आदतें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—एक तो बीडी या सिगरेट पीने की आदत और दूसरी जुआ खेलने की आदत। इसके अतिरिक्त उनसे अनेक अनुचित अनैतिक और अमानवीय कार्य कराए जाते हैं जिससे उनका चारित्रिक ह्रास होता है।

4. **शिक्षा से वचित :** बचपन से ही बालको को रोजगार पर लगा देने का अर्थ

है उन्हे शिक्षा प्राप्त करने के अवसरो से वंचित करना। इससे देश में अशिक्षा में वृद्धि होती है तथा व्यक्ति और राष्ट्र की प्रगति रुक जाती है।

5 **अनिश्चित कार्य के घंटे, मजदूरी आदि** बाल श्रमिकों के कार्य करने के घंटे, मजदूरी व छुट्टी के संबंध में कोई निश्चित स्थिति नहीं है। नाम मात्र मजदूरी देकर लंबे समय तक कार्य लेना श्रमिकों से संबंधित एक अन्य समस्या है। उन्हें सामान्यतः वयस्क श्रमिकों की मजदूरी का 30 । 50% अंश दिया जाता है।

6 **अधिनियम का शिथिल पालन** यद्यपि सरकार ने बाल श्रमिकों के संबंध में कुछ अधिनियम बनाये हैं किंतु उनका पालन कठोरता से नहीं किया जाता। फलतः बच्चों को निश्चित सुविधाओं से भी वंचित रहना पड़ता है।

बाल श्रमिकों की अवस्था में सुधार के राजकीय प्रयत्न
(Government Efforts to Improve the Condition of Child Labour)

1. **बाल (श्रम अनुबंधन) अधिनियम**, 1933 श्रम के शाही आयोग ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि इस देश में बीडी और दरी बनाने के उद्योग में बच्चों के श्रम को गिरवी रखने को एक अत्यंत हीन दशा प्रचलित है। इसे दूर करने के लिए सन् 1933 में बाल श्रम अनुबंध अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित है—(अ) यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोड़कर सारे भारत में लागू होता है। (ब) कोई भी ऐसा समझौता अवैध होगा जिसके अंतर्गत किसी बालक के माता-पिता या उसके संरक्षक किसी लाभ या धन के बदले में उस बालक की सेवा या श्रम को किसी भी रोजगार में उपयोग करने की अनुमति देकर उसके श्रम को मालिक के पास गिरवी रखते है। (स) इस अधिनियम को तोड़ने वालों को 200 रुपये तक जुर्माना तथा मा-बाप पर 50 रु० तक का जुर्माना किया जा सकता है।

2. **बाल रोजगार अधिनियम**, 1938 इस अधिनियम का उद्देश्य कारखानों यातायात आदि में बच्चों की भर्ती व अन्य कार्य की दशाओं को नियंत्रित करना था। इस अधिनियम में 1939, 1948, 1949 1950, व 1951 में संशोधन किये गए। इस अधिनियम की मुख्य बातें इस प्रकार है—(अ) यह अधिनियम जम्मू काश्मीर को छोड़कर संपूर्ण भारत में लागू होता है। (ब) अधिनियम में 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों की भर्ती का निषेध उन सब यातायात रेल आदि में है जिनमें यात्रियों, माल या डाक तार का आना-जाना होता है अथवा बन्दरगाह में सामान आदि चढाने-उतारने का काम होता है। (स) जो बच्चे प्रशिक्षण में हैं उनको छोड़कर किसी भी बच्चे को, जिसकी आयु 15 और 17 वर्ष के बीच है, किसी भी दिन 12 घंटे के लगातार अवकाश के बिना नहीं लगाया जा सकता। (द) बीडी बनाने, दरी बुनने, कपडे की छपाई, रंगाई व बुनाई, दियासलाई, अभ्रक, लाख, साबुन, चमडा तथा उनकी सफाई से संबंधित उद्योगों में बाल श्रमिकों की न्यूनतम आयु 14 वर्ष निर्धारित की गई है। उन संस्थानों में यह शर्त लागू न होगी जहां मालिक अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से इस प्रकार का

उद्योग चलाते हैं। (य) रेल और बदरगाह के अधिकारियो को एक रजिस्टर रखना होता है उसमें काम पर लगाए गए 17 वर्ष से कम आयु के बच्चो की जन्मतिथि, अवकाश, कार्य की प्रकृति आदि लिखना होता है। (र) अधिनियम का उल्लघन करने वालो को एक माह के कारावास अथवा 500 रु० के अर्थदड या दोनो से दडित किया जा सकता है। (ल) इस अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व कारखानो के मुख्य निरीक्षक का है।

3 **खान अधिनियम, 1952 :** खानो मे रोजगार सबधी न्यूनतम आयु 15 वर्ष निर्धारित की गई। अधिनियम ने इस आयु से कम के बालको को किसी भी भाग मे, चाहे यह भूमिगत हो या खुले मे खुदाई का कार्य हो, कार्य पर रखने का निषेध किया है। इसमे प्रावधान किया है कि किसी भी दिन किशोरो से साढे चार घटे से अधिक कार्य नही लिया जा सकता।

4 **बागान अधिनियम, 1951** इसके अतर्गत रोजगार के लिए न्यूनतम आयु 12 वर्ष रखी गई है।

5 **कारखाना अधिनियम, 1948** (i) भारतीय कारखाना अधिनियम सन् 1948 के अनुसार कोई भी बालक, जिसकी आयु 14 वर्ष से कम है, कारखानो मे काम नही कर सकता। 15 से 18 वर्ष के बालक किशोर की श्रेणी मे आते है। (ii) 17 वर्ष से कम आयु वाले बालक व किशोर श्रमिको के काम के साढे चार घटे प्रतिदिन निर्धारित किए गए हैं तथा उनका फैलाव 5 घटे से अधिक नही हो सकता (iii) बच्चे को 15 दिन के कार्य करने के बाद 1 दिन का सवेतन अवकाश और वर्ष मे 14 दिन सवेतन अवकाश देना निश्चित हुआ है।

भावी नीति एवं सुझाव

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यद्यपि बाल-श्रमिको के हितो की रक्षा करने के लिए सरकारी प्रयत्न हुए हैं और अब भी हो रहे हैं, परतु इनमे बाल-श्रमिको की समस्याओ का कोई उल्लेखनीय हल सभव नही हुआ। इसका प्रमुख कारण यह है कि अधिकतर सेवायोजक इन अधिनियमो को तोडते हैं और अवैध रूप म बालको को काफी सख्या मे रोजगार पर लगाते हैं। अत बाल-श्रमिको की समस्याओ के सुलझाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं—

(अ) बालको के सरक्षको की आय इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि वे अपनी समस्त आवश्यकताओ को सरलता से पूरा कर सकें। जब तक श्रमिक परिवारो को अपना जीवन-निर्वाह चलाने के लिए अपनी मजदूरी के अतिरिक्त और आय की आवश्यकता रहेगी तब तक बाल श्रम को बराबर रोजगार पर लगाया जाता रहेगा। पालडू-ग्लॉस के शब्दो मे "समाज के बच्चो को सरक्षण प्रदान करने का सबसे प्रभावपूर्ण ढग बच्चों के माता पिता को इतनी आय प्रदान करना है जिससे वह उनका उचित रूप से पालन-पोषण कर सकें। कम आय वाले श्रमिको से यह आशा करना बिलकुल मूर्खता है कि वह अपनी इस आय मे अपने बच्चो को ठीक से खिला-पिला सकेंगे। किसी भी परि-

वारों को कौशल बुद्धि और पर्याप्त धन देने से वह अपने बच्चों का ठीक से पालन-पोषण करना सीख जायेगा। सबसे अधिक उत्तरदायित्व तो उद्योगों के ऊपर है कि वे मजदूरी देने की प्रणाली को उचित आधार पर बनायें, जिसके अभाव में हर प्रकार का सामाजिक सुधार विफल सिद्ध होगा।" इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है "बाल श्रम को रोकने की समस्या बच्चे के पालन-पोषण और सभी श्रमिकों को एक स्तर पर बनाये रखने योग्य जीवन निर्वाह मजदूरी देने की समस्या के साथ संबंधित है।" (ii) भारत की वर्तमान परिस्थितियों में निर्धनता के पूर्ण रूप से उन्मूलन की आशा करना मृग तृष्णा मात्र है, अतः सरकार को चाहिए कि बाल-श्रमिकों संबंधी अधिनियमों को अधिक कठोरता से लागू करे। (iii) जिन उद्योगों में बच्चों को कार्य पर लगाया गया है, उन उद्योगों में उनकी शिक्षा का भी साथ-साथ प्रबंध होना चाहिए। श्रीमती पद्मिनी सेन गुप्ता के शब्दों में चूंकि शिक्षा का काफी महत्त्व है और आर्थिक दबाव इतना अधिक है कि बच्चों को भी अपना तथा अपने परिवार वालों का पेट पालने के लिए काम करने की आवश्यकता है, इसलिए 'बेसिक-शिक्षा' का यह आदर्श कि 'पढ़ो और कमाओ' ही एकमात्र उपाय मालूम पड़ता है। श्रमजांच समिति ने उचित ही कहा है "श्रमिकों की भावी संतान की ओर ध्यान देना सरकार का कर्तव्य है और सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि कहीं बालकों का बचपन स्कूलों में पढ़ने शिशुगृहों में पालित-पोषित होने तथा खेल के मैदानों के स्थानों पर कारखानों व कार्यशालाओं के गंदे स्थानों में तो नष्ट नहीं हो रहा है।" अतः इस हेतु सरकार को चाहिए कि वह अनिवार्य शिक्षा स्वस्थ मनोरंजन व अन्य कल्याण योजनाओं की व्यवस्था करे।

दिसंबर 1975 में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक कोआपरेशन एण्ड चाइल्ड मैनेजमेंट ने इस विषय पर एक सम्मेलन का आयोजन किया था। सम्मेलन का भी यह मत था कि बच्चों को काम देने पर रोक लगाने के बजाय ऐसे कानून बनाना जरूरी और उचित है जिसमें बच्चों का शोषण रोका या कम किया जा सके। इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय कानून भी है। उन्हें कठोरता के साथ लागू किया जा सकता है। साथ ही ऐसे उद्योगों की सूची को क्रमशः बढ़ाया जा सकता है जिनमें बच्चों को रोजगार नहीं दिया जाएगा। उनके काम के घंटे, अवकाश, छुट्टी आदि को नियमों के अंदर लाया जा सकता है। यह उनकी सही मदद होगी।

राष्ट्र के दीर्घकालीन हित की दृष्टि से सरकार को गांव-गांव में ऐसे स्कूल खोलने चाहिए जिनमें बच्चों को पढ़ाने लिखाने के अलावा उनसे खेती बाड़ी या किसी शिल्प का कामकाज कराया जाए। उन्हें बाकायदा पारिश्रमिक दिया जाए। उनकी मदद से जो उत्पादन हो उसकी बिक्री से यह पारिश्रमिक दिया जा सकता है। ऐसी हालत में माता-पिता भी बच्चों को स्कूल भेजने में आनाकानी न करेंगे। बच्चे भी पढ़ने लिखने के साथ साथ कोई हुनर सीख सकेंगे जो भविष्य में उनके काम आयेगा।

आपातकालीन स्थिति वह मौका है जिसमें राष्ट्र निर्माण की इन योजनाओं का सफलता के साथ कार्यान्वयन किया जा सकता है।

महिला-श्रम
(Woman Labour)

आर्थिक क्रियाओ मे स्त्रियो द्वारा भाग लेना कोई नई बात नहीं है। सास्कृतिक विकास के प्रत्येक स्तर पर तथा प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्था मे स्त्रियो का किसी न किसी रूप मे अपना अशदान अवश्य ही रहा है। पहले महिलाओ की उत्पादन-क्रियाए इसी बात तक सीमित थी कि वे मनुष्यो को कृषि, हाथ के काम, पशुपालन और घरेलू कार्यों मे सहायता करें। परतु औद्योगीकरण नारी-शिक्षा व बड़े पैमाने के उत्पादन के प्रारभ होने से अधिक से अधिक महिलाओ ने लाभप्रद रोजगार क्षेत्र मे प्रवेश किया है और अब तक का इतिहास यह बताता है कि किसी भी रूप मे वे पुरुषो से पीछे नही हैं और आवश्यकता पड़ने पर पुरुषो की भाति ही प्रत्येक प्रकार के कार्य कर सकती हैं। श्री वी० वी० गिरि ने उचित ही लिखा है, यदि उद्योगो मे काम करने वाली स्त्रियो की सख्या कम है तो इसका यह कारण नही कि भारत की स्त्रिया उद्योग मे काम करना नही चाहती, बल्कि केवल इस कारण कि देश मे औद्योगीकरण मे अभी पर्याप्त प्रगति नही हो पायी और अब भी लाखो पुरुषो को रोजगार देना बाकी है। स्त्रियो मे भी श्रम-शक्ति का विशाल भण्डार है और उनमे भी कार्य करने की इच्छा एव आग्रह दोनो ही विद्यमान है और जब तेजी से औद्योगीकरण करने का समय आयेगा तो उनकी सेवाओ का भी उचित प्रयोग किया जा सकेगा।"[1]

भारतीय सविधान के अनुच्छेद 16 (1) तथा 16 (2) पुरुषो और महिलाओ को बिना किसी सविधान के रोजगार के समान अवसरो का अधिकार प्रदान करते है। इससे सबधित राज्यनीति का निर्देशक सिद्धान्त 39 (अ) है। इन्ही तथ्यो के सदर्भ मे महिलाओ के रोजगार पर विचार किया जाता है।

सारिणी 1 महिला श्रमिकों की सख्या

भारत मे महिला श्रमिको की सख्या तालिका मे दर्शायी गई है :

वर्ष	महिला श्रमिक (लाखो मे)
1901	373
1911	418
1921	401
1931	376
1951	404
1961	595
1971	313
1977	315

1 V. V. Giri : Labour Problems in Indian Industries, p. 375.

इन अंकों का तुलनात्मक महत्व इसलिए कम है कि समय-समय पर श्रमिक शब्द की परिभाषा में परिवर्तन होता रहा है उसी के अनुसार महिला श्रमिकों की संख्या में भी परिवर्तन हुआ है।

1971 में देश की कुल कार्यशील जनसंख्या में 83% पुरुष और 17% स्त्रियां थीं। 1981 में संगठित उद्योगों में महिलाओं का प्रतिशत 13·8 था :

कारखाना उद्योग में महिला श्रम : कारखाने उद्योग में अधिकतर महिला श्रमिकों को (i) सूती वस्त्र (ii) बीडी (iii) माचिस (iv) भारी रसायन (v) तम्बाकू (vi) काजू (vii) अभ्रक और कच्चे लोहे की खानों (viii) कागज और कागज की बनी हुई वस्तुओं (ix) आधारित धातु उद्योग में लगाया जाता है। सन् 1971 में कारखानों में लगभग 9 5 लाख महिलाओं को रोजगार प्राप्त था।

यद्यपि महिला श्रमिकों की कुल संख्या में वृद्धि हुई है, परन्तु कुल श्रमिकों के अनुपात में उनका प्रतिशत घटा है। यह कमी विशेष करके सूती वस्त्र, रसायन चाय **कागज और कागज से बनी वस्तुओं में हुई है। 1981 में कारखानों में कुल श्रम-शक्ति में महिलाओं का प्रतिशत 10.81% था।**

बागानों में महिला-श्रम : बागानों में भी स्त्री श्रमिकों की संख्या उल्लेखनीय है। सन् 1972 में बागानों में कुल-शक्ति में से महिलाओं का प्रतिशत 41 6 था। बागानों में इतनी अधिक संख्या में महिलाओं को लगाने के निम्नलिखित कारण है—(अ) चाय की पत्तियां तोड़ने का कार्य पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं के कोमल हाथों द्वारा अधिक सुगमता और शीघ्रता से सम्पन्न किया जा सकता है, (ब) इस कार्य के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती। गांव की महिलाएं तो परंपरा से यह कार्य कर रही हैं, आसानी से यह कार्य कर लेती हैं। (स) बागानों में श्रमिकों की भरती अधिकतर पारिवारिक आधार पर की जाती है। पुरुष कठिन कार्य करते हैं व महिलाएं अपेक्षाकृत सरल कार्य (द) बागान में वेतन कम होने के कारण महिलाओं और बच्चों को भी कार्य करना पड़ता है।

खनिज उद्योगों में महिला-श्रम : खनिज उद्योगों में भी बड़ी संख्या में महिला श्रमिकों का उपयोग किया जाता है। सन् 1960 में इस उद्योग में लगभग 6 लाख महिलाएं कार्य करती थीं। सन् 1971 में इनकी संख्या लगभग 8 लाख थी। 1972 में खानों में कुल श्रम शक्ति में महिलाओं का प्रतिशत 19 3 था।

खानों की महिला श्रमिकों के संबंध में एक बात उल्लेखनीय है कि प्रारंभिक काल में जब स्त्रियों के लिए जमीन के नीचे काम करने पर किसी प्रकार निषेध नहीं था, उस समय आदिम जन जातीय लोगों एवं अन्य परिवार कोयले की खानों के पास जाकर बस गए और खानों में समूह बनाकर काम करने लगे। किंतु जमीन के अंदर खानों में काम करना महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होता है तथा इसमें सामाजिक और नैतिक जोखिम भी होती है। अत: भारतीय खान अधिनियम के अंतर्गत इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप इनके रोजगार की संख्या में कुछ कमी आई है।

अन्य कार्यों में महिला श्रम : उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त महिला श्रम का उपयोग अन्य कार्यों मे भी किया जाता है, जैसे चाय व दाल कूटने तथा सुखाने का कार्य, बीडी बनाने के कार्य घरो मे खाना बनाना, बर्तन माजना, बच्चो को खिलाना, सडको पर झाडू लगाना, शिक्षण सस्थाओ मे छोटा मोटा काम करना इत्यादि। ऐसे स्थानो मे महिलाओ की काम करने की दशाए अत्यत शोचनीय है। उनसे कम वेतन पर अधिक कार्य लिया जाता है तथा बुरे से बुरा व्यवहार किया जाता है।

महिला श्रमिको की समस्याए

यद्यपि विभिन्न उद्योगो मे महिला श्रमिको की समस्याए अलग-अलग हैं, किंतु कुछ प्रमुख समस्याए निम्नलिखित है .

1 **मजदूरी की समस्या** महिला-श्रमिको की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि उन्हें पुरुष-श्रमिको की अपेक्षा समान काम करने के लिए कम मजदूरी दी जाती है। भारतीय सविधान की धारा 39 (द) के अनुसार समान मूल्य के कार्य के लिए स्त्रियो और पुरुषो को मजदूरी समान दी जानी चाहिए। परतु व्यवहार मे महिलाओ को कम वेतन मिलता है। प्राय यह देखा गया है कि महिलाओ को घटे के हिसाब से या 'जितना काम उतनी मजदूरी' के आधार पर रखा जाता है। उद्योगपति अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए स्त्री श्रमिको को काम पर लगाते है क्योकि वे जानते हैं कि इन स्त्रियो की मजदूरी व अज्ञानता से फायदा उठाकर कम से कम मजदूरी पर अधिक से अधिक काम उनसे लिया जा सकेगा। प्राय महिलाओ की उत्पादकता कम होती है और उनको मातृत्व व अन्य लाभ देने होते हैं। उनको कार्य की विशेष सुविधाए देनी पडती हैं। इसलिए उद्योगपति महिलाओ को कम मजदूरी देते हैं। उद्योगपतियो का यह मनोभाव महिला श्रमिको के लिए समस्या बन गया है। भारतवर्ष मे अब अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठनो के प्रयत्नो के परिणामस्वरूप महिला श्रमिको को पुरुष श्रमिको के बराबर ही मजदूरी देने की प्रवृत्ति बढती जा रही है। इसके कई कारण हैं—(अ) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अतर्गत न्यूनतम मजदूरी की कानूनी व्यवस्था, (ब) औद्योगिक अदालतो, अधिकरणो द्वारा दिए गए फैसले के कारण मजदूरी का प्रमाणीकरण हो जाना, (स) जनमत का दबाव, व (द) अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रयत्न। अभी हाल ही मे सरकार ने 'अतराष्ट्रीय श्रम सगठन' के उस अधिनियम को मान्यता प्रदान की है जिसमे पुरुष एव महिला श्रमिको को एक समान मजदूरी देने की बात कही है।

2 *पुरुषो की भांति कठोर कार्य करना* . *प्राचीन काल मे स्त्रियों को मुख्यतः* पुरुषो का मन बहलाने व मनोरजन करने वाले कार्यो मे ही लगाया जाता था। परतु आधुनिक युग मे उनसे ऐसे कार्य भी लिए जाते हैं जिनके लिए वे सर्वथा अयोग्य हैं। यह सत्य है कि पुरुष की भाति महिलाए अधिक कठोर कार्य नहीं कर सकतीं। अत इस बात की आवश्यकता है कि उन्हें ऐसे कार्यों से बचाया जाए जिनसे उनको सार्वजनिक दृष्टि से हानि पहुचती है।

3 **पारिवारिक उत्तरदायित्व :** स्त्रियों का एक मुख्य कार्य बच्चो का पालन-

पोषण आदि का सचालन करना है । महिला श्रमिको को दो मोर्चों पर कार्य करना पड़ता है, एक तो कारखाने में और दूसरे घर पर । इन दोनो स्थानो पर कुल लगभग दिन मे 15 घटे कार्य करना पडता है जिससे उनका शरीर बहुत अधिक थक जाता है जिससे उनकी कार्यक्षमता और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। मनोरजन और आराम के लिए उन्हें बिल्कुल समय नही मिलता। यही नही, महिला श्रमिको के बच्चे और परिवार बहुधा उपेक्षित हो जाते है और इस प्रकार के बच्चे अधिकतर असामाजिक बनते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि महिला श्रमिको के बच्चो की देख-भाल करने के लिए शिशु गृह पाठशालाए आदि हो जहा उनको स्वास्थ्यपूर्ण वातावरण मे रखा जा सके। महिलाओ के रोजगार का पति-पत्नी के सबधो पर भी कुप्रभाव पडता है। जब स्त्रिया कमाने लगती हैं तो यह सोचने लगती हैं कि पुरुषो को भी घर मे काम मे हाथ बटाना चाहिए। हमारे देश मे घर का सपूर्ण उत्तरदायित्व महिलाओ के ही कधो पर होता है। यही कारण है कि वे पुरुषो को अपने कार्य मे भागी बनाना चाहती है। नवीन वातावरण के अतर्गत पति-पत्नी के सबध कहा तक मधुर रहेंगे यह तो समय ही बताएगा।

4 **मातृत्वकाल की समस्या** मातृत्वकाल के दिनो मे महिलाए कठोर परिश्रम करने मे असमर्थ होती हैं और साथ ही उनका स्वास्थ्य भी गिर जाता है। फलत इलाज और पथ्य के लिए उनको काफी धन की आवश्यकता पड जाती है। परतु भारत वर्ष मे गर्भावस्था मे महिलाओ को पर्याप्त अवकाश व चिकित्सा तथा आर्थिक सहायता नही दी जाती जिससे उनको शारीरिक हानि होती ही है, उनकी सतानें भी दुर्बल व अनेक रोगो का शिकार हो जाती हैं।

5 **दुर्व्यवहार** जिन स्थानों मे महिला श्रमिको का उपयोग किया जाता है वहा पर अधिकाशत उनके साथ दुर्व्यवहार होता है। शायद ही ऐसा कोई औद्योगिक सस्थान हो जहा पर व्यभिचार जैसे हीन कार्य को स्थान न मिलता हो।

6 **प्रतिकूल वातावरण में कार्य करना** . भारतवर्ष मे काफी बडी सख्या मे स्त्रियो को कार्य पर लगाया जा रहा है, परतु अधिकाश दशाओ मे स्त्रियो को अत्यत प्रतिकूल वातावरण मे काम करना पडता है जिससे शरीर और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है।

7 **अनुपस्थिति व श्रम परिवर्तन** · महिलाओ मे पारिवारिक उत्तरदायित्व बीमारी व प्रसव आदि के कारण अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन की दरें पुरुषो की अपेक्षा ऊची होती हैं। विवाह के बाद लडकियां कार्य छोडकर या ससुराल चली जाती हैं अथवा अन्य किसी स्थान पर कार्य करने लगती हैं। पारिवारिक कलह आदि के कारण उनकी अनुपस्थिति की दर भी अधिक होती है।

महिला-श्रमिको की सुरक्षा के राजकीय प्रयास

भारत मे महिला श्रमिको के हित के लिए कई अधिनियम बनाए गए हैं। विभिन्न अधिनियमो मे किए गए प्रावधान संक्षेप में निम्नलिखित हैं।

1. **कार्य के घंटे : कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम सन् 1952**

और बागान श्रम अधिनियम सन् 1957 के अनुसार महिला श्रमिको को सध्या के 7 बजे से प्राय.काल 6 बजे तक के लिए काम पर नही लगाया जा सकता। कारखानो मे अधिकतम काम की सीमा 48 घटे प्रति सप्ताह और बागानो मे 55 घटे प्रति सप्ताह रखी गई है। इसके अतिरिक्त 5 घटे लगातार काम करने के बाद आधे घटे के विश्राम की भी व्यवस्था है। खानो के अदर जमीन के नीचे स्त्रिया काम नही कर सकती।

2 **स्वास्थ्य और सुरक्षा** बोझा उठाने के लिए देश के लगभग सभी राज्यो मे इस प्रकार की सीमा निर्धारित कर दी गई है—प्रौढ स्त्रियो के लिए 65 पौड, वयस्क स्त्रियो के लिए 45 पौंड तथा बालिकाओ के लिए 30 पौड।

3 **मातृत्व लाभ :** भारत के विभिन्न राज्यो ने अपने उद्योग मे काम करने वाली महिला श्रमिको को गर्भ धारण के समय अनेक सुविधाए प्रदान करने के लिए अधिनियम बनाये है जिनका विस्तृत उल्लेख हम सामाजिक सुरक्षा नामक अध्याय मे कर चुके है।

4 **महिलाओ की मजदूरी पुरुषो के समान :** एक महत्वपूर्ण कार्य यह किया गया कि कानून बनाकर 11 फरवरी, 1976 से पुरुष तथा महिलाओ की मजदूरी बराबर कर दी गई है। मजदूरी की दृष्टि से पुरुषो और महिलाओ मे भेद नही किया जा सकता। परतु इस अधिनियम स एक आशका यह है कि महिलाओ को काम मिलने मे और कठिनाई हा जायेगी क्याकि उनको विशेष सुविधाए देनी होती हैं और उनकी उत्पादकता पुरुषो से कम होती है अत उद्योगा म महिलाआ की अपेक्षा की जा सकती है।

5 **स्नानादि की पृथक व्यवस्था** कारखाना, खानो और बागानो आदि उद्योगो म यह प्रावधान है कि स्त्रियो के लिए शौचालय, स्नानघर, विश्रामघर आदि की अलग व्यवस्था होनी चाहिए।

6 **श्रम कल्याण** राज्य सरकारा न बडे-बडे औद्योगिक नगरो मे माता एव शिशु कल्याण केंद्र खाले है जहा महिलाओ की चिकित्सा, मनोरजन और प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था है। उद्योगो मे भी महिलाओ के लिए कल्याण-काय किया गया है।

7 **खतरे का काम करना** कारखाना अधिनियम सन् 1948 के अनुसार महिला श्रमिको को जाखिम वाले कार्यो पर नही लगाया जा सकता। इसी प्रकार खानो म भी ऐस कार्यो के लिए उनकी सवाओ का उपयोग नही किया जा सकता जिसस उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा एव जीवन पर बुरा प्रभाव पडे।

8 **शिशुगृह की व्यवस्था :** कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार जहा 50 या अधिक महिलाए कार्य करती है वहा शिशुगृह होना आवश्यक है। खानो म भी शिशुगृह का होना आवश्यक है।

सुरक्षा व दड श्रम अधिनियमो के अतर्गत यह भी व्यवस्था की गई है कि किसी भी स्त्री श्रमिक को प्रसव काल के समय नौकरी स निकाला नही जा सकता। प्रसव काल के समय दी गई छुट्टी की अवधि म काम लेना दडनीय अपराध है।

महिला श्रमिक व श्रम-संघ

भारत मे स्त्रियो मे श्रम सघ का अधिक विकास नही हुआ है। इसके दो परिणाम हुए, प्रथम तो श्रमिक सघ अधिक शक्तिशाली नही होता और द्वितीय महिलाओ की विशेष समस्याओ को भी कम कर दिया जाता है। महिलाओ की इस व्यवस्था का मुख्य कारण पारिवारिक उत्तरदायित्व है। महिला श्रमिको के पास इतना समय नही होता कि वे मजदूरी और गृहकार्य का सचालन भी करें और सामाजिक कार्यों मे भी भाग लें। भारतीय महिलाओ की परपरागत झिझक भी एक कारण है इसके अतिरिक्त जब पुरुष श्रमिको मे श्रम सघ सगठन सफल नहीं हो सका है तो स्त्री श्रमिको मे क्या सफल हो सकेगा? लेकिन इसका अर्थ यह भी नही है कि स्त्री श्रमिकों मे श्रम-सघ के प्रति कोई रुचि नही है। स्वतन्त्रता के उपरात महिला श्रम सघ आदोलन मे कुछ वृद्धि हुई है। अन्य उद्योगों की अपेक्षा बागान उद्योगों मे स्त्रियो की सख्या अधिक है। बागानो मे कुल श्रम सख्या मे महिलाओ का अनुपात यद्यपि 45% है किंतु स्त्री श्रमिको की सख्या कुल श्रम सघ सदस्यता मे केवल 15% है। खाद्य तबाकू, सूती वस्त्र व एक सीमा तक खानो मे महिलाओ की श्रमिक सघो मे सदस्यता बढ रही है।

महिला श्रमिकों की स्थिति मे सुधार हेतु अन्य सुझाव

(i) महिलाओ को प्राथमिकता कुछ उद्योगो मे महिलाओ को ही प्राथमिकता दी जाय जैसे प्रारम्भिक पाठशालाए, टेलीफोन एव तार विभाग, अस्पतालो मे नर्स एव परिचारिकाए, हल्के कुटीर उद्योग आदि।

(ii) सरकारी कार्यालयों में सुरक्षित स्थान सरकारी कार्यालयो मे महिलाओ के लिए सुरक्षित स्थान होने चाहिए। यहा तक कि रेलवे, पोस्ट आफिस, प्रशासनिक सेवाओ मे भी उनके लिए स्थान सुरक्षित होने चाहिए।

(iii) कुछ विशेष उद्योगों मे सुरक्षित सख्या . कुछ उद्योगो मे महिला श्रमिको की एक सुरक्षित सख्या होनी चाहिए। फैक्ट्री खदान बैंक, बीमा, बागान इत्यादि मे एक निश्चित सख्या या प्रतिशत मे महिला श्रमिक होनी ही चाहिए। ऐसा इसलिए जरूरी है कि पुरुष श्रमिको से स्पर्धा होने पर महिलाओ को हानि उठानी ही पडेगी और उनको बेकारी का सामना करना पडेगा।

(iv) प्रसूति काल मे सुरक्षा प्रसूति काल के समय महिलाओ को सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। उनको कार्य से हटाना एक दण्डनीय अपराध घोषित होना चाहिए। उनके निरीक्षण के लिए विशेष व्यवस्था की जाय। उनके लिए जो वैधानिक सुविधाए हैं उनका निरीक्षण किया जाना चाहिए।

(v) कल्याण गृह की व्यवस्था . प्रत्येक सस्थान मे शिशु गृह, शिशु कल्याण गृह, महिला कल्याण गृह, आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि उद्योगो मे इतनी क्षमता नहीं है तो सरकारी अनुदान दिया जाए। एक स्थान के कई उद्योगो को मिलाकर भी इस प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था की जा सकती है।

(vi) **आवास की पर्याप्त व्यवस्था** महिलाओ श्रमिको के लिए आवास की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए तभी स्थायी श्रमशक्ति का विकास हो सकता है। इसके अभाव मे महिला श्रमिको का नैतिक पतन होता रहेगा जो न केवल उद्योग के लिए बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिए विष का काम करेगा।

(vii) **परिवार नियोजन का प्रचार** महिला श्रमिको मे परिवार नियोजन का प्रचार करने के लिए जिन महिलाओ को मातृत्व कालीन लाभ न दिया गया हो तो उन्हें विशेष बोनस दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष के रूप मे हम कह सकते है कि भारतवर्ष के भावी औद्योगिक विकास मे स्त्रियो के महत्त्व को हमे भूल नही जाना चाहिए। औद्योगिक विकास की जो भी नीति बनाई जाए उसमे महिलाओ का स्थान स्पष्ट रूप से निश्चित किया जाना चाहिए। जैसा कि गिरि ने कहा है कि यह प्राचीन धारणा है कि महिलाओ को केवल स्वस्थ्य और घर की देखभाल करनी चाहिए यह धीरे धीरे समाप्त हो रही है और आज देश की जनशक्ति का अनुमान लगाने मे महिलाओ की सेवाओ पर बराबरी से ध्यान दिया जाता है। सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा 1975 वर्ष 'अतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया जाना, भारत सरकार द्वारा नियुक्त Committee on Status of Women की रिपोर्ट तथा जून 1975 मे मैक्सिको मे अतराष्ट्रीय सम्मेलन का होना इस सबध मे महत्व-पूर्ण है।

परीक्षा प्रश्न

1 भारत मे किन उद्योगो मे बाल श्रम का अधिक उपयोग किया जाता है? आपकी सम्मति मे बाल-श्रम के सरक्षण के लिए क्या अतिरिक्त व्यवस्था करनी चाहिए?

2 भारत के नियमित तथा अनियमित उद्योगो मे बाल तथा महिला श्रम के रोजगार से सबधित विशिष्ट समस्याए क्या हैं? आप उनका निवारण किस प्रकार करेंगे?

3 "बचपन में काम रना सामाजिक अच्छाई है एव यह राष्ट्रीय हित मे भी है परतु साथ साथ बाल श्रम एक सामाजिक बुराई व राष्ट्रीय अपव्यय भी है। भारतीय उदाहरणो द्वारा इस कथन को समझाइये।

4 भारतीय उद्योगो मे महिला श्रमिको की विशिष्ट समस्याओ की विवेचना कीजिए। उन समस्याओ के निवारणार्थ क्या कदम उठाये गये हैं।

5 "उद्योगो म महिलाओ की नियुक्ति पर पूर्ण वैधानिक निषेध होना चाहिए।' नीति एव अर्थ व सामाजिक दृष्टिकोण से इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

6 भारत की वर्तमान सामाजिक व आर्थिक दशाओ के सदर्भ मे, महिला-श्रम के बेरोजगारी की भावी सभावनाओ पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

7 भारत के उन बड़े स्तर के उद्योगों के नाम बताइये जिनमे बडी सख्या मे स्त्री श्रमिको को लगाया जाता है। उन वैधानिक सीमाओ का भी वर्णन कीजिए जो उनके रोजगार को नियत्रित करते है। क्या वे उनको पर्याप्त सरक्षण प्रदान करते हैं ?

अध्याय 22

बोनस की समस्या
(The Bonus Issue)

बोनस की धारणा शब्दकोश मे बोनस शब्द का उपयोग कई अर्थों मे किया गया है, जैसे—(अ) श्रमिको को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त अनुग्रह राशि (Gratuity) का दिया जाना, (ब) भले के लिए कुछ दिया जाना, (स) किसी कपनी के अंशधारियो को विशेष अतिरिक्त राशि दिया जाना, (द) बीमा पालिसी लेने वालो को लाभ का बटवारा आदि।

सर्वप्रथम धारणा के अनुसार बोनस मालिक द्वारा की गई अनुग्रहपूर्ण अदायगी है। इस धारणा को अर्थशास्त्रियो द्वारा स्वीकार नही किया गया है। इसी प्रकार औद्योगिक न्यायालयो के अधिकरणो द्वारा दिये गये निर्णयो के अनुसार भी बोनस को अनुग्रहपूर्वक की गई अदायगी नही माना गया है। इसको श्रमिक अपने अधिकार के रूप मे माग सकते हैं।

आधुनिक समय मे बोनस को श्रमिको की स्थगित मजदूरी माना गया है जिसकी वे अपने मालिको से अधिकारपूर्वक माग कर सकते हैं। उनके इस अधिकार को न्यायालयो द्वारा वैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। इसे सामाजिक न्याय पर आधारित श्रमिको का अधिकार माना गया है। इस दृष्टिकोण से श्रमिको को बोनस का भुगतान मालिकों की इच्छा पर आधारित नहीं है। उद्योग का लाभ, श्रम तथा पूजी के सयुक्त प्रयासो का फल है। अत पूजी को जिस प्रकार उद्योग के लाभ मे हिस्सा लेने का अधिकार है उसी प्रकार श्रम को भी उद्योग के लाभ को प्राप्त करने का पूरा अधिकार है।

उपर्युक्त विवेचन स स्पष्ट है कि बोनस श्रमिको का अधिकार है जो कानून तथा सामाजिक न्याय द्वारा समर्पित है।

विकास . यद्यपि भारत मे यूरोपीय सेवायोजक औद्योगिक श्रमिको को अक्सर त्योहार आदि पर भेंट या बख्शीश के रूप मे कुछ अनुग्रह रकम भुगतान दिया करते थे लेकिन नियमित रूप से बोनस की प्रथा का प्रारभ प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हुआ जबकि अनेक उद्योगो ने खुशहाली या तेजी का अनुभव किया। जुलाई, 1917 मे बबई और अहमदाबाद के मिल मालिको ने अपने श्रमिको को युद्ध बोनस देना मजूर किया। किंतु युद्धोत्तर काल मे जब तेजी समाप्त हुई तो मिल मालिको ने बोनस का भुगतान भी बद कर दिया। फलत एक महत्वपूर्ण औद्योगिक विवाद खडा हुआ और 1924 मे एक

बोनस विवाद समिति की नियुक्ति की गई। समिति ने बोनस भुगतान को श्रमिको का कानूनी अधिकार स्वीकार नही किया किंतु समिति ने यह स्वीकार किया कि चूंकि श्रमिक बोनस को एक स्थगित मजदूरी मानते थे इसलिए समानता के सिद्धात पर विचार किया जा सकता था। इस प्रकार बोनस को काफी समय तक श्रमिको को न्याय एव समानता के सिद्धात पर उन्हें किये गए एक अनुग्रह अदायगी भुगतान के रूप मे लिया गया।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान युद्धकालीन बोनस का अर्थ ऐसा भुगतान समझा जान लगा जो कि युद्ध के दौरान *कमाये अतिरिक्त मुनाफे मे मे मजदूरो को दिया जाता था।* न्यायालयो का कहना था कि श्रम और पूंजी के सहयोग से ही लाभ प्राप्त हुए हैं इसलिए श्रमिको को अधिकार है कि वे अतिरिक्त लाभ मे हिस्सा बटाने की माग करे। तब तक भी बोनस का दावा एक कानूनी अधिकार नही था। केवल उसे मजदूरो को सतुष्ट रखने की दृष्टि से न्याय तर्क और सदभावना के सिद्धातो के आधार पर स्वीकार किया गया था। यह स्थिति तब तक चलती रही जब तक इस प्रश्न पर बवई उच्च न्यायालय ने यह सुझाव नही दे दिया कि बोनस की माग श्रमिको का अधिकार माना जाना चाहिए।

बोनस विवाद समिति बवई के सूती कपडा मिल कामगारो को वष 1920 1921 तथा 1922 के लिए 1921 1912 तथा 1923 मे भी बोनस दिया गया था। 1923 के लिए बोनस न देने के विरोध मे जनवरी, 1924 म एक-आम हड़ताल हुई थी। इसके फलस्वरूप बवई उच्च न्यायालय क तत्कालीन मुख्यन्यायाधीश की अध्यक्षता मे एक बोनस विवाद समिति स्थापित की गई थी। मिल मजदूरो को पाच वर्षों तक जो बोनस दिया गया था उसकी प्रकृति और आधार की जाच करने के बाद समिति ने यह घोषित किया कि मिल मजदूरो का वार्षिक बोनस के भुगतान का कोई ऐसा कानूनी दावा नही बनता जिसे अदालत मे सही ठहराया जा सके।

1921 मे अहमदाबाद म भी उद्योग के सामने एसी ही समस्या उठ खडी हुई। बोनस की विस्तृत शर्तों पर विवाद हो गया था। स्वर्गीय प० मदनमोहन मालवीय जी की मध्यस्थता से ही इस समस्या का हल निकला था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान समस्त उद्योगो को अनिवार्य सेवाए अध्यादेश के तहत ले आया गया था। अभावो व युद्धकालीन परिस्थितियो के कारण कुछ कपनियो ने बहुत अधिक मुनाफा कमाए और औद्योगिक प्रतिष्ठानो के मालिको ने खुद इस बात को अच्छा समझा कि मजदूरो को खुश तथा सतुष्ट रखा जाए।

श्रमिक अधिकार *बोनस के बारे म पहले समझा जाता था कि यह मालिक द्वारा* अपने कर्मचारी को अपनी मर्जी से दी जाने वाली भेंट है किंतु बवई उच्च न्यायालय के *इडियन ह्यूम पाइप कपनी बनाम ई० एम० ननवुट्टी* के मामले मे निर्णय से श्रमिको द्वारा बोनस की मांग को अधिकार के रूप म स्वीकार की गई और यह स्वीकार किया गया कि उद्योग म लगे हुए श्रमिको एव पूंजी दोनो का ही योगदान लाभ मे होता है इस लिए दोनो को लाभ मे हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है। जहां तक श्रमिको का सबध

है ऐमा ठीक हिस्सा निर्वाह मजदूरी-स्तर पर ही आधारित होना चाहिए। इसके अलावा यह भी स्वीकार किया गया कि यदि निर्वाह मजदूरी-स्तर पूरी तरह से मिल भी जाए तो भी श्रमिक उचित रूप से बोनस का दावा इस बात से कर सकते हैं कि किसी उद्योग को मिलने वाला लाभ श्रम एव पूजी दोनो के योगदान का फल है।

अप्रैल, 1948 मे आयोजित इडियन लेबर कान्फ्रेंस ने लाभ बाटने के विषय पर विचार-विमर्श करते हुए कहा था कि यह मामला इस प्रकार का है कि इस पर विशेषज्ञो द्वारा विचार किया जाना चाहिए। मई 1948 मे भारत सरकार ने लाभ बाटने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति गठित की। इस समिति ने सुझाव दिया कि कुछ *सुव्यवस्थित उद्योगो मे लाभ बाटने की बात प्रायोगिक तौर पर लागू की जा सकती है।* ये उद्योग हैं 1 सूती वस्त्र, 2 जूट 3 इस्पात, 4 सीमेंट, 5 टायर, 6 सिगरेट।

प्रायोगिक तौर पर लाभ बाटने का सुझाव देने के पीछे औद्योगिक शाति बनाए रखने की भावना ही काम कर रही थी।

केंद्रीय परामर्शदात्री परिषद ने उक्त समिति की रिपोर्ट पर विचार किया किंतु कोई समझौता नही हो सका। *व्यवहार रूप मे लाभ के बटवारे की प्रक्रिया समय समय* पर औद्योगिक अदालतो तथा न्यायाधिकरणो द्वारा बोनस अदायगी के निर्णय देने के रूप मे चलती रही, लेकिन इसके लिए कोई समरूप या स्पष्ट आधार उभरकर सामने नही आ सका, क्योकि समिति का विचार था कि बोनस के भुगतान के सबध मे कोई आदर्श नियत करना बहुत कठिन होगा। कारण यह है कि उद्योग द्वारा कमाया गया लाभ श्रमिको के अलावा दूसरी बहुत-सी बातो पर निर्भर करता है। फिर भी समिति ने सिफारिश की कि श्रमिको का हिस्सा मूल्य ह्रास सुरक्षित कोष एव कमाई गई पूजी पर उचित लाभ निकालने के बाद अतिरिक्त लाभो का 50% होना चाहिए। चूकि मिलने *वाले अतिरिक्त लाभ की मात्रा मे भिन्नता होने के कारण बोनस सबधी विवादो मे काफी* मतभेद पाया जाना है। उद्योगो के अतिरिक्त लाभ की मात्रा को निर्धारित करने के लिए कुछ निर्देशक सिद्धात 1950 मे बबई वस्त्र उद्योग के एक विवाद के फैसले मे लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल के द्वारा निश्चित किए गए ये जिसे बोनस निर्धारण का L A T फार्मूला कहते हैं।

सारे देश मे L A T फार्मूला ही बोनस का फैसला देने मे मान्य रहा, किंतु समय-समय पर इसमे सशोधन की माग की जाती रही। 1959 मे यह मामला एसोसियेटेड सीमेंट कपनी की एक अपील के सबध मे सुप्रीम कोर्ट के सामने आया जिसने बढते हुए असतोष को रोकने के उद्देश्य से बोनस के सारे मामले पर विचार करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की सिफारिश की।

बोनस आयोग 1960 मे स्थायी श्रम समिति के 18वें अधिवेशन मे यह निश्चय किया गया कि एक बोनस आयोग की नियुक्ति की जाय। इसकी सिफारिशो के आधार पर 6 दिसबर, 1961 को त्रिपक्षीय आयोग श्री एम०आर० मेहर की अध्यक्षता मे नियुक्त *किया गया।*

सार्वजनिक क्षेत्र को भी इस आयोग के विचार क्षेत्र मे शामिल करने की माग जोर-शोर से उठाई गई थी, लेकिन फैसला यह हुआ कि सार्वजनिक क्षेत्र मे उन्ही सस्थानो को आयोग के विचार क्षेत्र मे रखा जाना चाहिए जो विभागीय तौर पर नही चलाए जाते है, और जो निजी क्षेत्र के अपने जैसे प्रतिष्ठानो से स्पर्धा करते है।

सरकार को बोनस आयोग की रिपोर्ट 21 जनवरी, 1964 को मिली। रिपोर्ट सर्वसम्मत नही थी। आयोग की सिफारिशो पर सरकार के निर्णय 2 सितबर 1964 को घोषित किए गए।

बोनस सबधी विधेयक : सरकार द्वारा स्वीकृत बोनस आयोग की सिफारिशो को व्यवहारिक रूप देने के लिए प्रस्तावित विधेयक के मसौदे पर स्थायी श्रम समिति ने अपनी दिसबर, 1964 तथा मार्च, 1965 की बैठको मे विचार-विमर्श किया। सरकार ने जिस विधेयक को अतिम रूप दिया उसमे विभिन्न पक्षो द्वारा दिए गए सुझावो का भी ध्यान रखा गया था। इसे 29 मई, 1965 को 'बोनस भुगतान अध्यादेश 1965 के नाम से जारी किया गया। 25 सितबर, 1965 को बोनस भुगतान अधिनियम 1965 ने इस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

29 मई, 1965 को बोनस अध्यादेश जारी होने के तुरत बाद ही सर्वोच्च न्यायालय मे और विभिन्न उच्च न्यायालयो मे इस विधेयक के महत्त्वपूर्ण प्रावधानो की वैधता को चुनौती देते हुए याचिकाए दायर की गई।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर सबद्ध पक्षो द्वारा विचार किया गया लेकिन फिर भी विभिन्न पक्षो के बीच कोई समझौता नही हो सका।

बोनस भुगतान अधिनियम 1965

अधिनियम का क्षेत्र यह अधिनियम जम्मू तथा काश्मीर को छोडकर समस्त भारत मे लागू होता है। यह उन प्रत्येक औद्योगिक सस्थानो मे लागू होता है जिनमे किसी लेखा वर्ष के अतर्गत 20 या इससे अधिक कर्मचारियो की नियुक्ति हुई है। किसी निगम के सदर्भ मे लेखा वर्ष का अभिप्राय वर्ष की उस समाप्ति से है जब खानो को बन्द कर नये खान खोले जाते हैं। इसी प्रकार किसी कपनी के सदर्भ मे लेखा वर्ष का अभिप्राय वर्ष की उस समाप्ति से है जब कपनी के लाभ-हानि के हिसाब को कम्पनी की सामान्य मीटिंग के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। लेकिन अन्य स्थितियो मे लेखा वर्ष का अभिप्राय पहली अप्रैल से आरभ होने वाले वर्ष से है। यह अधिनियम निम्नलिखित वर्ग के कर्मचारियो पर लागू नही होता--

1 बीमा अथवा भारतीय बीमा निगम के कर्मचारियो, 2 डाक कर्मचारी अधिनियम 1948 के अतर्गत पजीकृत कर्मचारी, 3 केन्द्र तथा राज्य सरकारो द्वारा किसी सस्थान मे नियुक्त कर्मचारी, 4 भारतीय रेडक्रास सोसाइटी द्वारा नियुक्त कर्मचारी, 5. विश्वविद्यालय तथा शिक्षा सस्थाओ द्वारा नियुक्त कर्मचारी, 6 रिजर्व बैंक तथा औद्योगिक वित्त निगम द्वारा नियुक्त कर्मचारी आदि।

बोनस का भुगतान : अधिनियम के अनुसार प्रत्येक मालिक अपने कर्मचारियो

को न्यूनतम बोनस के भुगतान के लिए उत्तरदायी है जिन्होने लेखा वर्ष के अतर्गत कार्य किया है। न्यूनतम वार्षिक बोनस मजदूरी तथा महगाई भत्ते के 8 33% से या 40 रुपये जो भी अधिक है होना चाहिए तथा अधिकतम बोनस 20% होना चाहिए। भारतीय फर्मों के लाभ की 60% राशि तथा विदेशी फर्मों को 67% राशि बोनस के लिए दी जानी चाहिए।

बोनस प्राप्ति के लिए योग्यता ऐसा कोई भी कर्मचारी अपने मालिक से बोनस प्राप्त करनेका अधिकारी है जो लेखा वर्ष के अतर्गत कम से कम 30 दिन कार्य कर चुका है और जिसे 1600 रुपये माह मजदूरी या वेतन मिलता हो। लेकिन यदि उसकी सेवाओ को जालसाजी, उत्तेजक व्यवहार, धोखा अथवा गबन के अपराध मे समाप्त कर दिया गया है तो उसे किसी प्रकार बोनस पाने का अधिकार न होगा।

बोनस से कटौती • अधिनियम के अनुसार यदि कर्मचारी ने लेखा वर्ष के अतर्गत पूरा कार्य नहीं किया है तो उसी अनुपात मे उनके बोनस से कटौती की जा सकती है, लेकिन यदि कर्मचारी किसी समझौते, सवेतन अवकाश या मातृत्व अवकाश मे है, तो उन दिनो को अनुपस्थिति के दिनो मे न जोडा जाएगा। इसके अतिरिक्त यदि कर्मचारी को पूजा बोनस या किसी अन्य प्रकार का प्रथागत बोनस दिया गया है तो उसकी कटौती की जा सकती है। बोनस का भुगतान नगद मे किया जाना चाहिए। यदि किसी कर्मचारी को भुगतान नही दिया गया है तो वह इस सबध मे सरकार को आवेदन-पत्र दे सकता है।

दड अधिनियम के अतर्गत यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि कोई अधिनियम का उल्लघन करता है तो उसे छह माह की सजा और एक हजार रुपया जुर्माना अथवा दोनो दड दिये जा सकते हैं। बोनस सबधी किसी भी मामले की सुनवाई केवल प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट अथवा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के न्यायालय से छोटे न्यायालय मे नही हो सकती है।

बोनस अधिनियम सशोधन 1969 मेटल बाक्स कम्पनी और उसके कर्मचारियो के बीच बोनस विवाद पर सर्वोच्च न्यायालय न जो फसला दिया उससे श्रमिक और दुखी हो गए। वे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 34(2) रद्द कर देने से भी दुखी थे, क्योकि इन दोनो निर्णयो का उन्हे मिलने वाली बोनस राशि पर दुष्प्रभाव पडा था। इसलिए 10 जनवरी, 1969 को एक अध्यादेश जारी करके अधिनियम की धारा 5 मे सशोधन कर दिया गया। बाद मे एक कानून ने इस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

बोनस पुनरीक्षण समिति बोनस भुगतान अधिनियम म सशोधन करने के लिए 19 अगस्त 1966 को श्री चित्तबसु द्वारा राज्यसभा मे बोनस भुगतान (सशोधन) विधेयक 1966 के नाम से एक विधेयक प्रस्तुत किया गया। उस समय सरकार ने यह आश्वासन दिया कि सरकार उचित समय पर स्वय उचित विधेयक पेश करेगी ताकि 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम को व्यापारिक स्पर्धा न करने वाली सार्वजनिक कम्पनियो पर लागू किया जा सके जो वर्तमान मे अधिनियम की धारा 20 के अधीन इसस अछूती रह गई हैं। उक्त विधेयक को राज्यसभा ने 26 मार्च, 1971 को अस्वीकृत

कर दिया। बहस के दौरान श्रममंत्री ने यह आश्वासन दिया कि सरकार अतीत के अनुभवो को देखते हुए कानूनी बोनस मुगतान की पूरी योजना का पुनरीक्षण करेगी।

इस आश्वासन के अनुरूप 28 अप्रैल, 1972 को एक समिति गठित की गई, जिसे 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम के पुनरीक्षण की जिम्मेदारी सौंपी गई।

बोनस पुनरीक्षण समिति ने 13 सितबर, 1972 को अपनी अतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। समिति की अतरिम रिपोर्ट पर गभीरतापूर्वक विचार कर निम्नलिखित निर्णय लिए गए—

1 बोनस अधिनियम के तहत आने वाले श्रमिको को मिलने वाले न्यूनतम कानूनी बोनस को 4 प्रतिशत से बढाकर लेखा वर्ष 1971-72 के लिए 8.33 प्रतिशत कर दिया जाय।

2 बोनस भुगतान अधिनियम के तहत आने वाले समस्त व्यक्तियो को 8 33 प्रतिशत तक पूरा नगद भुगतान किया जाय। यदि दिए जाने वाले बोनस की राशि 8 33 प्रतिशत से अधिक हो तो देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति को ध्यान मे रखते हुए इसे कर्मचारियो के भविष्यनिधि खाते मे जमा कर दिया जाए।

3 उपर्युक्त व्यवस्थाओं को गैर प्रतियोगी सार्वजनिक क्षेत्र प्रतिष्ठानो पर भी लागू किया जाय।

1965 के बोनस भुगतान अधिनियम मे सितबर, 1973 मे फिर सशोधन किया गया और यह व्यवस्था कर दी गई कि श्रमिको को बोनस की सम्पूर्ण राशि नगद दी जाएगी।

बोनस सबंधी अध्यादेश

3 सितम्बर 1977 को जनता सरकार ने बोनस के पुराने अधिनियम मे एक अध्यादेश द्वारा फिर से सशोधन कर दिया। इस अध्यादेश के द्वारा फिर से 8 33% बोनस को देने का आदेश दिया गया। अध्यादेश के प्रधान प्रावधान इस प्रकार थे—

(i) आपातकाल मे 8 33% न्यूनतम बोनस समाप्त कर दिया गया था, वह फिर से दिया जाना चाहिए।

(ii) उद्योगो को चाहे लाभ हो अथवा हानि, बोनस देना अनिवार्य होगा परतु सरकार को यह अधिकार होगा कि वह असमर्थ उद्योगो की रक्षा के लिए इस आदेश से छूट दे सकती है।

(iii) बोनस की राशि 1976 के हिसाब वाले वर्ष के लिए देय होगी।

(iv) बोनस की अधिकतम राशि 20% हो सकती है जैसा कि पुराने अधिनियम मे प्रावधान था।

(v) बोनस के लिए बैंक तथा औद्योगिक पुनर्स्थापना निगम को सम्मिलित कर लिया गया है।

(vi) यदि कोई उद्योग किसी अन्य व्यवस्था के अनिवार्य बोनस देना चाहता है तो ऐसा सरकार की अनुमति लेकर कर सकता है।

बोनस संबंधी 1979 का अध्यादेश

30 अगस्त, 1979 को राष्ट्रपति नीलम सजीवा रेड्डी ने एक बोनस के विषय मे एक नवीन अध्यादेश जारी किया जिसके अनुसार न्यूनतम बोनस की दर 8 33% और अधिकतम 20% होगी। इस सबध मे सरकार स्थायी कानून बनाने का विचार कर रही है।

बोनस भुगतान संशोधन पर अध्यादेश 1980

बोनस भुगतान (सशोधन) अध्यादेश 1980 (1980 का दसवा) का स्थान बोनस भुगतान (द्वितीय सशोधन) अधिनियम 1980 ने ले लिया है। यह सशोधित अधिनियम उन सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो जिन्हे निजी उद्यमो से प्रतियोगिता करनी पडती है, को छोडकर अन्य पर लागू नही होता। यह उन सस्थाओ पर भी लागू नही होता जो लाभ के लिए नही जैसे रिजर्व बैक, जीवन बीमा निगम, और विभागो द्वारा चालित उद्यम, सभी बैंक इसके अतर्गत आते हैं। इस अधिनियम मे कम से कम बोनस 8 33 प्रतिशत या 100 रुपये (जो भी अधिक हो) देने की व्यवस्था है। चाहे इसके *लिए धन की व्यवस्था उपलब्ध है या नही। इस फार्मूला के अन्तर्गत कम-से-कम अधिक* मुगतान तभी सम्भव है जबकि उपलब्ध धन मे इसकी व्यवस्था हो और वह अधिकतम 20 प्रतिशत हो। बोनस का भुगतान कर्मचारियो व मालिक के बीच एक आपसी करारनामे के अनुसार एक भिन्न फार्मूले द्वारा उत्पादन उत्पादकता की अधिकता से सबधित होता है। *मुगतान मे अपनायी जाने वाली कोई भी अन्य पद्धति नियम विरुद्ध होगी।*

परीक्षा-प्रश्न

1 भारत मे बोनस की समस्या पर एक निबध लिखिए।